तीसरा यह "दर्शनसंग्रह" पुस्तक का प्रथम और दूसरा भाग कट्ठा बहिन श्री माणेकबाई ने अपना स्वर्गस्थ पिताश्री सेठ बापुजी रुस्तमजी दीवेचा के स्मारक में चीरंजीवी भ्राता फेकोबाद बापुजी दीवेचा की सहायता से प्रकट कर के प्रयोजक तथा प्रकाशकों और गुणग्राही जनता की सेवा में अर्पित किया है.

यह दर्शनसंग्रह, तत्त्वदर्शन अध्याय १ सूत्र ४४७से ४५६ तक-१० सूत्रो के विस्तार-विवरण हैं-तत्त्वदर्शन ग्रंथ ठीक ठीक समझाने की यह पूर्ति है-भारत के और परखंडों के मुख्य मुख्य मतों की अध्यारोप-अपवाद शैली से इसमें समीक्षा है-अनुमान पृष्ट ७५० का दर्शनसंग्रह ग्रंथ है.

आशा है कि सत्य धर्म प्रेमी सज्जन वृंद उसका ठीक लाभ उठायेंगे.

जगतहित आश्रम,
सुंदरी भवानी,
हलवद्-काठियावाड.
आश्विन शुक्ल प्रतिपदा १९९६.
ता. २-१०-४०.

प्रकाशक—
नारायण श्रीशंकर भूमानन्दतीर्थ
स्वामी.

अनुक्रमणिका.

भाग १ ला.

भारतीय दर्शन.

भाग २ रा.

(शेष भारतीय दर्शन और परखंड दर्शन).

तत्त्वदर्शन पक्षाध्यायी अंतर्गत

दर्शनसंग्रह *

(भारतीयदर्शन-परखंड दर्शन)

अनुभूमिका.

धर्मतत्त्वविद्या (रीलीजीयन फिलोसोफी) बोधक तत्त्वदर्शन ग्रंथ के ४ अध्याय हैं. उन ४ अध्याय की दो बुक रोयल ८ पेजी १४० फॉर्म की है. कद ज्यादे हो जाने से उसके अध्याय १ के भाग की यह पुस्तक जुदा की गई है.

इस बुक में तत्त्वदर्शन अ. १ के सूत्र ४४७ से ४५६ तक का व्याख्यान है इसलिये, और इसका यथायोग्य उपयोग तत्त्वदर्शन के चारों अध्याय के विना नहीं हो सकता इसलिये, इसको उसकी एक बुक (वा भाग) मानना चाहिये.

इस में भारतवर्ष में जितने मुख्य मत हैं उनका, और पर खंडों में जितने मुख्य मत हैं उनका दर्शन है इसलिये इसका नाम "दर्शनसंग्रह" रख्खा गया है. जिस करके जाना जाय उसे दर्शन कहते हैं.

इस में जितने धर्म, मत, पंथ हैं उनके नाम अनुक्रमणिका से विदित हो जाते हैं. इसकी भूमिका पहले अध्याय में आ चुकी है. हमारा धर्म, मत, पंथ के इतिहास लिखने में उद्देश नहीं है किन्तु ईश्वरादि विषय में कौन क्या मानता है इतने जनाने में यथाशक्ति प्रयास किया गया है ऐसा जानना चाहिये.

इस दर्शनसंग्रह के बांचने पीछे आपको यह विदित हो जायगा कि मानव मंडल में सब से ज्यादे अद्वैत (एक चेतन वाद, एकेश्वरवाद) वादि हैं. हां, उनके वर्णन करने की शैली में अंतर है (अभिन्न निमित्तोपादान वाद, अभावज वाद,

---

* जिससे जाना जाय सो दर्शन. किंवा उसका जो प्रवर्तक हो उसके नामसे भी दर्शन कहा जाता है यथा-न्यायदर्शन (पंचावयवात्मक-न्याय जिससे जाना जाय उसको न्यायदर्शन कहते हैं) गौतम दर्शन (गौतममुनि प्रवर्तक है जिसका उसका नाम गौतम दर्शन) इसी प्रकार अन्य दर्शनों के नाम यथाविषय है ऐसे जान लेना

स्वाभाविक वाद, पृच्छिक वाद, क्षणिक वाद, विवर्त वाद, विलक्षण वाद, वगैरे) और सब से कम जड़वादि हैं. उन उभय के बीच में द्वैत (चिदचिद) वाद मानने वाले हैं. तथापि वर्तन (प्रवृत्ति) में अद्वैतवाद से ज्यादा द्वैतवादि और प्रकृति वादि हैं. । क्योंकि द्वैतवाद यह करनसी नोट के समान है और प्रकृतिवाद (अचिद वा जड़वाद) रोकड के जैसा जान पडता है. और अद्वैतवाद वही खाने में है.

इस दर्शनसंग्रहगत जितने मत पक्ष जनाये हैं उनमें.से बहोतों का अपवाद भी जाना जाय ऐसी शैली रखी है, तथापि इनके सत्यासत्य के निर्णय वास्ते वक्ष्यमाण अ. २ और ३ की अपेक्षा है. अर्थात् तत्त्वदर्शन के नियमाध्याय २ के नियम जाने विना और उन नियमों द्वारा पक्षों का कैसे निर्णय करना इस शैली सुत्र का विचाराध्याय ३ के जाने विना निर्णय नहीं कर सकते. अतः उन दोनों अध्याय की अपेक्षा है. तत्पश्चात् फल जानना हो तो चोथा अध्याय वांचना चाहिये.

इस दर्शनसंग्रह में कोई स्वतंत्र गण संज्ञा नहीं है, किंतु जो है सो अध्याय १ में है. यथा-वेदादि ४६+५=५१ और इराम्यादि ९ यह हैं. इनका विस्तार इसी में है तथापि ईश्वरादि (ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, बंध, मोक्ष, मोक्ष के साधन, सृष्टि उत्पत्ति, लय,) यह संज्ञा, और अ. ४ में कहे हुये पंचदशांग और सप्तक यहां याद में रखना चाहिये. और विवेचनमें नवीन गण आयेंगे सो भी ध्यान में लेना चाहिये वो यह हैं:—

ईशावतारादि अर्थात् ईशावतार, ईशांश, ईशपुत्र, ईश दूत, सर्वज्ञ, तिर्थंकर, देव, योगी, आचार्य, ईश्वरीय ग्रंथ, सर्वज्ञकृत ग्रंथ, यह ११.

कर्तव्यादि पंच संस्कार अर्थात् कर्तव्य, काल, प्रवर्त्तक, सीमा, असंबंध-यह पंच संस्कार.

यदि ईश्वरादि और ईश्वरावतारादि को बीच में न लेवें और अध्याय ४ जैसा जो संग्रहवाद दाखिल करें तो मानव-मंडल की सुंदर नवीन आकृति बन जाने की संभावना है।

प्रचलित धर्म-मत-पंथोंका खंडन मंडन इस ग्रंथ का अर्थात् तत्त्व-दर्शन ग्रंथ के भाग-दर्शनसग्रह का विषय नहीं है. ग्रंथ के तटस्थ और साम्य

भाव से दूर है इसलिये अ. १ (पक्षाध्याय) में पक्षों का अध्यारोप और अपवाद करके संतोष मान लिया गया था, और इस दर्शनसंग्रह में पक्षकारों के मंतव्य लिखके उनके दूषण भूषण दिखाने से उपेक्षा की गई थी, क्योंकि मेरा यह ख्याल है कि जितने धर्मबोधक ग्रंथ हैं उनका वलन जन-मंडल के लाभ-सुखार्थ लेना चाहिये. उनका वलन यथा देश, काल, स्थिति और अधिकार होके कुछ न कुछ उनका उत्तम-उद्देश और दृष्टिभेद होना चाहिये तथा उनके बयानकी सीमा होनी चाहिये. उन ग्रंथोंके पीछे उनके उपदेश और उद्देश में परिवर्तन होना चाहिये. इस विचार को दृष्टांत से समझाना ठीक जान पड़ता है.

कर्तव्यादि पंचसंस्कार

(क) अफीमके खेतकी ऐसी प्रकृति होती है कि जिस समय उसके वृक्ष वा फल पानी मांगें उस समय पानी न दिया जावे तो खेत बरबाद हो जाय, कारतकार और राज्य का नुकसान हो जावे; इसलिये अज्ञ क कारतकार को रेवेन्युखाते (माल महकमे) का म सिपाही ताकीद करके पानी दिला रहा है. क पर कर्जदारकी डीक्री हो रही है उसके बजाने वास्ते देवानी खाते का द सिपाही समन लाके उसे स्वाधीन करना चाहता है. एक चोरने अपने बचावके लिये चोरीके माल की गाठ क के मकानकी दीवार परसे अंदर को डारु दी थी सो मालूम होनेपर क को तोहमतदार मान के उसके पकडने के वास्ते फोजदारी खाते का फ सिपाही वारंट लिये हुये उसे पकडने वास्ते आता है. यह म, द, फ, तीनों सिपाही अपनी २ डयुटी-कर्तव्य बजाना चाहते हैं. उनमें से म सिपाही क को पराधीन नहीं होने देता. इसलिये तीनों में विवाद चला और अपने २ कानूनकी फर्ज बताने लगे. अपने २ सायी याने दूसरे सिपाही के द्वारा अपने २ हाकिम के पास रपोर्ट कराते हैं. वे हाकिम अपने २ बचाव करके कानून की कलम द्वारा अपना २ पक्ष जनाके राजा के पास रपोर्ट करते हैं. राजा सबकी बातें समझके जमानत लेनेकी आज्ञा करता है. इस प्रसंग में ४ मुद्दा हैः (१) कारतकार और राज्य का हक बरबाद न हो (२) करजदार को नुकसान न हो (३) निरपराधि क न मारा जाय (४) और क अपना वाजबी बचाव कर सके. राजा ने इन सब बातों को समझके हुकम दिया परंतु उससे पहले उन अहलकारोंमें बडा विवाद हुआ. इस संस्कार का नाम

कर्तव्य रखता हूं.

इसी प्रकार आद्य उपदेशक (वेद राजा) के वा उससे पीछे के उपदेशक के अनुयायी अपने २ खयाल-भावना, उद्देश, कोई दृष्टि वा स्वार्थवश हुये सांसारिक लाभ नामक क के लिये अनेक अर्थ, अनेक आरोप, अनेक भाव करके अनेक प्रकार के खंडन मंडन करते हुये स्वपक्ष का प्रतिपादन करते हैं. उससे मुख्य लेख गडबड का विषय हो जाता है. यदि वे मुख्य के अनुसार व्यवस्था करना चाहें ते मुख्य (वेद) द्वारा व्यवस्था हो सकती है, अन्यथा याने स्वदृष्टि-स्वपक्ष से व्यवस्था नहीं हो सकती. और यदि मुख्य लेख का उद्देश-भाव न समझ सकें ते भी व्यवस्था न होगी. प्रत्युत हानी होगी. जैसा कि कर्म खाते वाला उपासना और ज्ञानखाने वाले का, उपासना (भक्ति) का पक्षकार कर्म और ज्ञान तथा व्यवहार का, और ज्ञानवादि कर्म उपासना खानेवाले का (एवं अन्य अन्यों का) खंडन करके स्वपक्ष मंडन कर रहे हैं, ऐसा देखता हैं, उससे हानी होती है. द्वैत अद्वैत की भी ऐसी ही दशा हैं.

(ख) जन मंडल की दुर्दशा देख के पांच योग्य पुरुष (राजा, विद्वान, योगी वा ५ गृहस्थ) मिलके उसके सुखार्थ नियम बांधते हैं और उसको सब पसद करके उनके ताबे हो जाते हैं अर्थात् उनको पालके सुखी होते हैं. पंचों की विद्यमान संतान-प्रजा उन नियमो को सहेतुक अर्थात् देश, काल, स्थिति, अधिकार अनुसार हैं, ऐसा समझके पालती है. दूसरी पीढी में वोह भाव नही रहता किंतु उन नियमो को इत्थम भाव से मानके तिनके अनुसार चलती हैं. तीसरी पीढी में उनके विरुद्ध वर्तनेवाला पापी-शिक्षा पात्र-नास्तिक ठेरता है, ऐसी भावना हो जाती है. चोथी पीढी (साठ-सत्तर वर्ष पीछे) में देश, काल, स्थितिका परिवर्तन होने से उन नियमो में शंका पैदा होती है. कोई उनमें भूल भी निकालने को तैयार होता है, कोई उनके अर्थों में फेरफार करता है. छटी पीढी में तो मतभेद होके जुदा जुदा झुंड होने लगते हैं और सातवीं पीढी में तो वे नियम डुलने लग जाते हैं, उन पर हंसी भी उडाई जाती है. आठवीं पीढी मे तो बंधन-अंकुश का अभाव होके गडबड होने से दुःख होने लग जाता है. ऐसा होते होते फेर योग्य पुरुष यथा देश, काल, स्थिति, परिस्थिति सुधारा वधारा करते हैं. इस प्रकार से जनमंडल में परिवर्तन होता आया, और है, और होगा. अर्थात् ऐसा प्रवाह

है. सर्वांग मे एक मत-पक्ष स्थिर नहीं रहता; क्योंकि देश, काल, स्थिति, परिस्थिति, अधिकार और संस्कार तथा रुचि का परिवर्तन होना कुदरती (सृष्टि) नियम है. इस सस्कार का नाम **काल** कहेंगे.

इसी प्रकार आद्य उपदेशक वेद से लेके वर्तमान तक का इतिहास है. सो आर्य प्रजा मे ही नही किंतु चीनी, पारसी, याहूदी, खिस्ति, कुरानी और बौद्ध, जैन वगेरे तमाम ससार और उनके धर्म मत मे परिवर्तन हुवा है और भविष्यमें होगा.

(ग) हरकोई उद्देश (भावना) चलने चलाने के मुख्य (१) साम (२) दाम (३) भेद और (४) दंड यह चार प्रकार हे. धार्मिक उद्देशके सबंध मे किसी रीफॉर्मर पास दंड भी हुवा है. यथा-मूसा नबी, पोपराज, और नबी मुहम्मदश्री का प्राप्त हुवा था. दाम भेद का उपयोग प्रोटेस्टन्टोने लिया ऐसा जान पडता है. सामका उपयोग आर्य प्रजा मे हुवा है. और कही भेद तथा दंड का भी हुवा है. यद्यपि चारोंका भाव सब मे भी हुवा हो तथापि विशेष रूपमें उपर अनुसार जान पडा है. इस सस्कार का नाम **"प्रवर्त्तक"** कहा जायगा.

(१) स्वधर्म प्रचारार्थ दलील-युक्ति-प्रयुक्ति, शास्त्रार्थका उपयोग करना **"साम"** है. (२) अपने धर्म का अनुयायी बनाने के लिये द्रव्य, स्त्री देना, नोकरी करा देना इत्यादि "दाम" है. (३) स्वधर्म तलवारादिके भय से मनवाना, परधर्मकी स्त्री पुत्रको गुलाम बनाना, परधर्मीका द्रव्य हरण करना-इत्यादि "दंड" का उदाहरण है. (४) भेद के विचित्र दाखलें हैं. यथा (अ) दारू का कतरा पेर पर पड जाय तो उसकी ७ पीढी नरक मे जायं (शराब से बचाने के लिये वचन है) (ब) स्वधर्मकी निंदा और पर धर्मका उपदेश सुने तो नरक मे जायं (स्वधर्म रक्षार्थ) (ज) यावनी भाषा पढने से वा जैन के मंदिर में जाने से हस्तिके पेटमें आके मरना अच्छा है (पर धर्म निंदार्थ) (द) सूर्य के सामने पेशाब करने से पाप होता है (चक्षु को रोग से बचाने वास्ते). (इ) गौ देवोका भी पूज्य है, उसके अग अग में देवता रहते हैं, उसको मारना महान पाप है याने मारने वाला घोर नरकमें जाता है. (गाय बेल भारत निवासियोकी जीवन जेवदी है उसकी रक्षा के लिये) (च) वनस्पति, पानी, पशु पक्षी, हवा और पृथ्वी का बचाव करो-देख के चलो ताके हिंसा न हो. क्योंकि हिंसा पाप है (वनस्पति वगेरे जीवो के लिये उपयोगी पदार्थ है उनकी रक्षा वास्ते और उनको व्यर्थ खराब न करने वास्ते) (झ)

अमुक समय हिंसा पाप नहीं है (आततायी, दुष्ट, प्रगाघातकको मारने वास्ते जो सब बीज वृक्ष नष्ट न हों. सब प्राणी—पशु पक्षीका प्रवाह जीता रहे तो मनुष्य वगैरे प्राणी के रहने के लिये जगह भी न मिले इस वास्ते तथा तमाम मनुष्योंके योग्य वेजीटरन खूराक अभी भूमंडल में उत्पन्न नहीं होती है इस वास्ते) (ह) अहंत्व ममत्व छोडने से मुक्ति हो जाती है (अहंत्व ममत्व विना अपनेको वा जन मंडलको लाभ नहीं पहोंचा सकता, इसलिये बुद्धदेव ने कहा). (त) यादृशि भावना तादृशि सिद्धि, जन मंडलमें नाना मत भेदसे दुर्दशा उनकी शांति अर्थ). (क) जो स्वधर्म रक्षा और स्वधर्म प्रचारके वास्ते मरता मारता है उसको बहिश्त (स्वर्ग) मिलता है (स्वधर्म प्रचारार्थ). (ल) जो मेरा हुकम न मानेगा उसकी ७ पीढी तक दुःख दूंगा. (ईश्वर के वाक्य में श्रद्धा रखाने अर्थ). (म) काशी में मरने से मुक्ति (विद्वानों के सत्संग प्राप्ति वास्ते) (स) गंगा स्नान से मुक्ति (उत्तम आब हवा लेने और देशाटन करने वास्ते).

(प) ग्रंथकार वा उपदेशक का कुछ न कुछ उद्देश होता है. यथा—लोक सुख प्राप्ति, स्वमंतव्य प्रचार, स्वर्ग—मोक्ष प्राप्ति, मान प्रतिष्टा कीर्ति वगैरे, और उसके उद्देश की हद होती है. जैसे के सायंस का उद्देश है कि लोक के सुखार्थ पदार्थों का पृथक्करण करके उनका उपयोग बताना. और उसकी सीमा यह है कि गोचर की परीक्षा तक के एलिमेंट (तत्त्व) मानना तथा कोई दृष्ट नियम मान के दृश्य पदार्थों का उपयोग दरसाना ॥ इसके सिवाय परोक्ष (जीवात्मा, ईश्वर, मूलतत्त्व) इसके विषय नहीं है॥ इस संस्कार का नाम सीमा है. (फ) प्राचीन ग्रंथों के वाक्योंका जान पूछ के दूसरे अनेक अर्थ करना, इतना ही नहीं किंतु उनके पद में न्यूनाधिक कर डालना, क्षेपक भाग बढाना और अमुक भाग निकाल डालना, यह भी भेद का महा पापी भाग है. ऐसा भेद भी लगभग तमाम प्राचीन धर्मशास्त्ररूप ग्रंथों में कुछ न कुछ हुवा है (दर्शनसंग्रह में जानेगे). ऐसे नीच भेद करने का कारण स्वमंतव्य प्रचार और परमंतव्य की निंदा है. (र) अमुक ग्रंथ के पाठ मात्र करनेसे वा अमुक ग्रंथ घरमें रखनेसे ऋद्धि-सिद्धिकी प्राप्ति, मरने पीछे स्वर्गप्राप्ति (स्व धर्म ग्रंथ प्रचारार्थ). (छ) कोई भी प्रकार से चमत्कार बताके अपने में श्रद्धा कराना (स्वार्थ सिद्धि वा स्वमंतव्य प्रचारार्थ). (व) पर की बनावटी स्तुति करके अपना दृढाना (स्व मंतव्य प्रचारार्थ) सर्व मान्य—लोकप्रिय बातें सुनाके अपने में खेंचना (स्वार्थ).

* हा में ना और ना में हा हो ऐसे वाक्य लिखना, उसमे इष्ट की परपरा चल जाने + इत्यादि भेद के अनेक प्रकार होने है.

यथार्थ बोधक याने गुण दोप के बोधक जो वाक्य उनका समावेश साम मे होता है भेद वा दाम वा दन्ड मे नही होता.

(ड) बहुत करके जो कोई प्राचीन हो गया, वा दूर पड गया हो उस पर वेसी भावना नही रहती जैसी कि नवीन और पास वाले पर होती है. † ऐसी मनुष्य की प्रकृति है जेसे कि एक वृद्ध व अपनी सात पीढी तक जीता है (१८० से कुछ उपरमे ७ पीढी हो जाती भी है) उस कुटुब की अतिम सतान को जैसा मा वाप भाई में भाव वा प्रकार होता है वेसा व मे नहीं होता किंतु वोह बृढा एक अन्य मनुष्य जैसा मनुष्य है, एसा भाव होता जाता है, प्रसग पर उसकी मसखरी भी कर डालते है. वे यह नही समझते कि हम सब इसी के प्रताप से (उपदेश-रचना पुरुषार्थ) योग्य हुये है. इस सस्कार का नाम असबध है जैसे कि आद्य उपदेशक वेद ग्रथ के सबध मे देख रहे हे यहा तक कि चीनी, इरानी, याहूदी, खिस्ति, और मुसलमान सतान तो उसका नाम भी नहीं जानती. नाम सुनके उसकी मसखरी करते है.

उपरोक्त क वगैरे ५च अर्थात कर्तव्यादि पंच सस्कारोवश धर्म मत पंथोमें बडा भारी परिवर्तन हुवा है, लाखो, करोडो, कीमती जानो की ख्वारीं हुई है और तदन नवीन रूप बन गये है. *

---

* उपरोक्त भेद में जो रोचक भयानक वचन हैं व यथार्थ, अयथार्थ एव दो प्रकार के होते हैं रोचक भयानक वाक्य सब धर्म वालो में निकलेंग उनमें जो उपयोगी हितकारी हैं वे ग्राह्य होते हैं अहितकारी त्याज्य होते हैं तथापि धर्म म खमा अपन इस विवेक को पास नही आन देने ऐसा कुछ है शेष ज्यादा-कम करना पोलीसी करके दूसरे के तन मनको हरना यह असत्यवादि वा नीचो का काम है परन्तु धर्म के अन्धे श्रद्धालु-पक्षपाती स्वधर्म प्रचार वा स्वधर्म रक्षार्थ असत् नीच तत्त्वोको ध्यान म नहीं लेते!

+ एक प्रकार के भेद का उदाहरण है पेजी ८ ६ १,७ वाचो

† नित्यके परिचय वाले शब्दादि विषय में भी पूर्व जैसी भावना वा रुची नही होती

* सुप्रसिद्ध भट्ट मोक्ष मुलर साहब (इसाइ जर्मनी) लिखते है कि थियोलोजी (धर्म) सायंस (कार्यदर्शन), और फिलोसोफी (विश्व दर्शन), यह ३ प्रकार है मानव सृष्टि में पहेले २ थीयोलोजी का रूप हुआ है जिसेके अदर म फिलोसोफी भी थी, परन्तु सो उसकी दासी रूप

(च) उपरके पांच संस्कारोंका समावेश प्रवर्तिकानीति × में हो जाता है. इसमे इतर एक छठा संस्कार है वोह यह है. जो तटस्थ-शोधक निष्कामी-बुद्धिमान-विद्वान पुरुष होते हैं उनकी दृष्टि सत् पर होती है अर्थात जैसे बालक जेसा देखते, सुनते, जानते, और मानते हैं वेसा ही कहते और वर्तते हैं. वेसे ही वोह सत् पुरुष जैसा देखा, सुना, जाना और माना वेसा ही कहता, जानता और वर्तता है उसको अपनी वा किसी की हानी लाभ पर दृष्टि नही होती; किंतु शुद्ध नीतिपर वर्तता है. वोह में यथार्थ पर हुं ऐसा दावा भी नहीं करता किंतु जैसा ठीक मानता है वेसा कहता और बर्तता है. अर्थात सत्याग्रही होता है.

जिनका कुछ शुद्ध उत्तम लोकहितकारी उद्देश है—जो देशकाल, स्थिति, परिस्थिति, अधिकार को देख के कहते और वर्तते हैं वे सृष्टिमें निपुण कहाते हैं. उनकी प्रवर्तिका नीति उत्तम, उपयोगी और अगाध होती है. (यहां आप-स्वार्थी-कपटी-दंभी का प्रसंग नही है).

मे मददगार थी, सायस चुप थी पीछे सायस ऊठी और शक्तिमान हो गई. व्यवहारमे भी उसका प्रवेश हुवा और नियम पूर्वक चलने लगी.

आरंभ में सायंस को थीयोलोजी के साथ जुडना पडता था, पीछे थीयोलोजी को सायस के अनुसार सिद्ध करना पडा. फिलोसोफी अबजेक्ट और सबजेक्ट इन दोनो रूप मे है. सायस अबजेक्ट है थीयोलोजी सबजेक्ट रूप मे है.

आर्य फिलोसोफर लोकेषणा रहित स्वतंत्रता से अपने सिद्धांत को कहते हैं और यु.प वाले एषणा के साथ कहते है यह दोनोंमें बडा भारी फर्क है

थीयरी दो प्रकार की होती है पोजीटीव याने कार्यसे कारण पर आना (यथा न्याय, वैशेषिक में है). × नेगेटीव याने कार्य पासे कारण पर आना (जैसे कि धर्म संप्रदायवालों मे) है.

× 'तत्वदर्शन" में भी यही है.

× प्रवर्तिका (व्यवस्थापिका) नीति बहुधा सामग्री प्रति संकुचित होती है, और बदलती रहती भी है. इस नीति के अनेक भेद होते हैं यथा पिता-पुत्र पति पत्नी, गुरु शिष्य राजा-प्रजा, मित्र मित्र, शत्रु शत्रु, धर्मी-धर्मी शत्रु आत्मरक्षा, मित्र आपदा. इनमें अनपराधी योग्य को भी हानीप्रद हो वोह त्याज्य है. इसके विचित्र दृष्टांत है कि के मान्य धर्म ग्रंथ और भागवतमे मंदिर मूर्तिपूजामे मोक्ष और मु. के धर्म पुस्तक और उनके विश्वासमे शिर्क-मूर्तिपूजा के नाश करने मे बहिश्त मिलना इनमें से किसको माने? उभय स्वधर्मार्थ लडते हैं, किसको स्वर्ग मिला? धर्मनीति मे कोई मर्यादा नहीं है इस नीति का विस्तार नीति मीमांसा मे किया गया है ॥

अब उपरोक्त कर्तव्यादि पच सस्कारो के उदाहरण दिखाते है :—

पंच संस्कारों के उदाहरण.

(१) वेद ग्रंथ से पहेले का मानव ससार मे कोई ग्रंथ नहीं और उससे पूर्वकी कोई धर्मभावना भी नहीं जान पडी है. * इसलिये उसे आद्य उपदेशक माना जाता है. उसका उद्देश जन मंडल के प्रेयस् और श्रेयस् में है. सूत्ररूप है. कालान्तर मे उसके एक एक विषय को लेके वर्णन हुवा फेर उसके अर्थो में भेद माना गया फेर स्व भावना (मतव्य) अनुसार पक्ष चला, और विकार पसरा. परिचय में न रहने से श्रद्धा का रूपातर हो गया. किंतु उसका नाम भी पृथा में न रहा. इसप्रकार वेद उपरोक्त कर्तव्यादि पाच संस्कार का विषय हुवा है +

(क) पहेले वेद के ६ अग वेद में से बने शिक्षा (वर्णभेद), कल्प (कर्मभेद), व्याकरण (प्रकृति प्रत्यय पद वाक्य की रचना का प्रकार), निरुक्त (पदार्थ और उसके ग्रहण का क्रम), पिंगल (छद पद्धति सूचक) और ज्योतिष (कालक्रम विचार), यह प्रथम तो युक्ति तर्क को छोड के बोधक हुये. पीछे उक्त सस्कारो के विषय हुये.

(ख) ब्राह्मण ग्रंथो ने उसका कर्म भाग, उपनिषदो ने उपासना-ज्ञान और स्मृति ने व्यवहार धर्म भाग हाथ में लिया. सब में धर्म की रगत रखी गई और वेद को शिरोमणि माना है. पीछे यह भी पच सस्कार के विषय हुये.

(ग) उसी वेद के आयुर्वेद, अर्थवेद, धनुर्वेद, और गधर्ववेद ऐसे ४ विषय का व्याख्यान हुवा. पीछे यह भी पच (उक्त कर्तव्यादि पंच सस्कार) के विषय हुये है. यहा तक तर्क युक्ति विना सरल उपदेश था. शब्द पर आधार था. पीछे विशेष गडबड चली

(घ) गृहसूत्र, पूर्व मीमासा वगेरे (कर्म वाद), श्वेताश्वतर, कैवल्यादि अन्य उपनिषद, उत्तर मीमासा (ज्ञान), मनु से इतर अन्य स्मृति (धर्म व्यवहार) और गीता वगेरे हुये. इस प्रकार कर्म, उपासना, ज्ञान और व्यवहार में पंचों का प्रभाव चला. ×

---

* थीयोसोफी कहती है कि 'सीक्रेट डाकट्रन' में जो ज्ञान है वोह वेदों से पहेले था (थोयोसोफीमें बांचोगे) परतु इससे सिद्ध नहीं होता पुरावे विनाकी कल्पना मात्र बात जान पडती है

+ प्रत्येक सस्कारोका विस्तार लिखें तो ग्रथ बढ जाय, अतः लिंक मात्र लिखते है

× गृहसूत्रादिमें श्रुति प्रम नहीं लिया है तथापि तर्क युक्तिवश श्रुति के भेद और अर्थ में मतभेद हुये है

(ड) मत भेद होनेपर न्यायने प्रमाण का निर्णय करने की पद्धति बताई अर्थात् बुद्धि का व्याकरण बनाया-यही उसका उद्देश था. ईश्वर, जीव, प्रकृति, बंध, मोक्ष, वर्णन करने का उद्देश गौण याने सहज था-मुख्य उद्देश नहीं. वैशेषिक दर्शन ने पदार्थों के प्रथक्करण को दरसाया. सोभी सृष्टि उत्पत्ति से लेके प्रलय की पूर्व क्षण तक प्रमाणु रुप और उनके जो कार्य होते हैं उनका वर्णन है ईश्वर, जीव, बंध, मोक्ष और मूल प्रकृति के बयान मे उसका उद्देश नहीं किंतु गौण दृष्टि से कहना पडा है. उपरोक्त अनुमान, न्याय, वैशेषिक के सूत्रों की निरीक्षा से जान सकते हैं + साख्यने उपादान कारणको हाथ में लिया है, ईश्वर जीव प्रसंग गौण है. यह उसके सूत्रों के निरीक्षण मे पाया जाता है; क्योकि आत्मा को असग मानता है, ईश्वर को बीच में नहीं लेता मीमासा शास्त्र ने श्रोत कर्म को हाथ में लिया है, ईश्वर जीव मोक्ष यह उसके मुख्य विषय नहीं. उत्तर मीमासा ने ईश्वर (निमित्त कारण) जीव, मोक्ष इन सब को हाथ में लिया है, कार्य पक्ष उसका मुख्य विषय नही. योग शास्त्र ने जीवात्मा, बंध मोक्ष की परीक्षा का विषय हाथ में लिया है, ईश्वर प्रकृति उसका मुख्य विषय नहीं. न्यायादि ६ शास्त्र वेद को मानते हैं अतः अनीश्वरवादि नहीं हो सकते, तथापि इनके विषय जुदा जुदा होने से जुदा है परंतु वेद के उपाग हैं; क्योकि यह वेद के अग को बताते हैं, इस लिये परस्पर में संबंधी भी हैं. यह न्यायादि षड शास्त्र भी वृत्ति भाष्यकारो द्वारा पाचो संस्कारो के विषय हुये. श्रीमद्भगवद्गीता ने कर्म, उपासना, ज्ञान और व्यवहार इनको हाथ में लिया और उपनिषदों का [illegible] है, सो भी वृत्ति भाष्यकारो द्वारा पंच की विषय हुई. यहा तक वेद के [illegible] तीसरे [illegible]

[illegible] या उदाहरण कहा *

समझ लिया कि बधन-दुःख स्वार्थ का मूल अहत्व ममत्व है उसको छोडने और नीति, सयम, साम्य भाव के विना समाज पर उपकार नही हो सकता, इस लिये बुद्धने शब्द प्रमाण को किनारे रख के स्वतत्र यह उपदेश किया, इसका उपदेश नाना मत की निवृत्ति के लिये हथियार बन गया उसके पीछे यह मंतव्य भी बौद्धो द्वारा ही पचो का विषय हो गया तप के विहून विषयासक्ति नही छूट सकती अनासक्ति के विना परमार्थ पाने के योग्य नहीं हो सकता. और अहिंसा प्रतिपादन के विना उपयोगी वनस्पति, पशु पक्षी की रक्षा नहीं हो सकती. ऐसे गत सस्कारो की आपत्ति होने पर महावीर स्वामी ने तप और अहिंसा का उपदेश किया उसके पीछे इस बोध पर भी उक्त पाचो सस्कार हुये

(३) बौद्ध और जैन द्वारा अनीश्वर वाद पसरा था शकराचार्य का उद्दश था कि वेदबोधक ईश्वरवाद के अभाव से परिणाम में महान हानी है इस लिये एक २ जीव ब्रह्म रूप है, ऐसा सिद्ध कर बताया, और बौद्ध जैन के आसक्ति नाशक अश के विरोधी न पडके उनसे उग्रपद्धति अर्थात् जगत स्वप्नवत् मिथ्या है एसा प्रतिपादन किया श्रुति का प्रचार हुवा उनके पीछे उसका मतव्य भी पचका विषय हुवा ×

(४) वर्त्तमान मे बुद्धि कम हो गई, वेद, शास्त्र, स्मृति समझने की योग्यता न रही, अवेदी मत का प्रवाह चला है उसको अटकाना, नाना मत फेल गये, शब्द पर विश्वास न रहा, प्रमाण को अपूर्णता है. कलि काल में ईश्वर की भक्ति (मुख्यतः नाम भक्ति) के विना शातिफल नही मिलता, एसे विचारो पर पुराण भावना पेदा हुई * और भक्ति पक्ष द्रढाने की कोशीश चली; परतु चाशनी लगाने विना और परधर्मो निंदा स्तुति रूप न जाने वहा तक प्रवृत्ति न होगी, इस लिये ठीक नही एसी रगत में कोई ग्रथ हुवा फेर मन मुखी पृथा के ग्रथ चले प्रथम तो वे आपही पच सस्कारो के रूप थे, उसपर वे पुनः पच सस्कारो के विषय बने

(५) उपरोक्त दशा प्राप्तिने ही बस न किया किंतु अनेक सप्रदाय मत पथ बाडे, इनकी शाखा, उपशाखा चल पडी, और नवीन होती जाती है

× शाकर वेदांत म भी अनेक पथ है बा ब्रह्म मत्य जगत्मिथ्या यह सब मानते हैं

* पुराण भावना प्रतिपादक पुराण ग्रथ कब बने, इस में विवाद है

यह सब उक्त कर्तव्यादि पांचों संस्कारों का फल निकला है.

(६) यहां तक आर्य प्रजा की पंच संधि कही. अब आगे उसी वेद की दूसरी तड याने परखंडकी धर्म स्थिति (परिवर्तन) संक्षेप में कहेंगे.

(क) आर्यावर्त मे उत्तर हिमालय से पार देश (वा तिब्वत से वायव कोनकी तरफ) जब मानव प्रजा थी * तब आर्य प्रजा के टोले में ब्राह्मण मंडल ने अपना स्वत्व करके दूसरे मंडल को स्वाधीन बनाया तो मत भेद हुये. उस आर्य प्रजा में से एक ईरानी (एर्या) टोला बना और ईरान देश की तरफ हुवा. उसने वेद के मंतव्य से कुछ अंतर किया और शब्द भी उल्टे. ईश्वर द्वारा अभावजन्य जीव जंगत माने, देव (देवता) का अर्थ राक्षस और असुर (राक्षस) का अर्थ देव-ईश्वर ऐसे संकेत रखे. ईश्वर स्तुति में वेद समान अवस्ता किये जो कि संस्कृत भाषा से मिलते हुये हैं. धर्म का नरम और थोडा मार्ग कर लिया, पशु यज्ञ का अनादर किया, परंतु मांस भक्ष्य रखा. देव भावना और मूर्ति पूजा न छुडा सका. उसके पीछे इस धर्म पर भी पंचसंस्कार हुये. दूसरा आर्य टोला सिन्ध (हिंद) की तरफ आके बसा जिसकी चर्चा उपर की. *

(ख) जरतोश्त धर्म के अवतरण में मुसा नबी का उद्देश होना चाहिये कि मूर्तिपूजा न रहे, प्रजा को इजिप्त (मिसर) के बादशाह फिरओन के जुलम से बचावे, और एक अद्वितीय ईश्वर ही माना जाय. वैसा ही प्रचार किया. पशुबलि बंद न हुवा किंतु जारी रखा, उसके पीछे उस धर्म पर भी पंच संस्कार हुये.

(ग) मूसाई यहूदी धर्म का अवतरण ख्रिस्ति धर्म है. इसुमसीह ने याहूदी धर्म का कठोर कर्मकांड छुडाया, एक ईश्वर पर विश्वास और सपरा प्रचार किया. कहा जाता है कि ईसुमसीह ने तिब्बत की तरफ बुद्ध के उपदेश की भी तालीम ली थी इस लिये उस प्रकार का भी उपदेश किया. उसके पीछे इसके उपदेश पर भी पन्च संस्कार हुये.

---

* जब चीनी प्रजाकी देवभावना, एकशाकिवाद पर ध्यान देवें तो बोद परम्परा से वेद टोले की शाखा मानी जा सकती है परंतु जब उस प्रजाकी आकृति, अक्षर, लेखन पद्धति, गणित के १० अंक, वार, वगेरे पर ध्यान देवें तो वर्तमान के शोधकों के कथन अनुसार बोद मंगोलियन प्रजा आर्य प्रजा से भिन्न टोला माना जाता है. संभव है कि भविष्य में बोद भी आर्य टोले में से सिद्ध हो. उस प्रजा में भी देव भावना, बुद्ध धर्म पर पंचसंस्कार हुये हैं

(घ) बायबल (तोरेत-इंजील, मूसा-ईसा) के अवतरण में श्री नबी-मुहम्मदने अरब जेसे कठोर जंगली देश में बुतपरस्ती छुडाई, अरब देश में कितनेक सुधारा वधारा किया और एक ईश्वरवाद (शिर्क अभाव-अद्वैत ईश्वर) के झडे नीचे धार्मिक संप से रहना सिखा दिया, उसके पीछे उसके उपदेश पर भी पंचसंस्कार हुये.

(ङ) यूरोपगत् ग्रीस वगेरे खंडों में स्वतंत्र फिलोसोफर भी होते रहें, उन्होंने अपने अपने विचार दरसाये जिन में ईश्वरवाद और जडवाद भी था. वे शब्द को बीच में नहीं लेके विचार बताते थे; इस लिये धर्म संप्रदाय के समान उनकी प्रवृत्ति नहीं हुई. अर्थात् पूरे पंचसंस्कार न हुये तो भी प्रचार में न रहे.

(च) लूथरश्री ने यूरोप के धर्म को (बायबल के धर्म की), बेकनश्री ने यूरोप के प्रवृत्ति मार्ग की, डार्विनश्री तथा हर्बर्टस्पेंसरश्री ने यूरोप की सोसाइटी की काया पलट दी इनका मत पूर्व के फिलोसोफरों से ही उतरा है परंतु इन्होंने उसका विवेचन करके दरसाया. डार्विनश्री और हर्बर्टश्री ने 'माइट इज़ राइट' (निर्बल बलवान का भोग्य है) इस सृष्टि नियम को साबित कर बताया. जिसका प्रभाव यूरोप की वर्तमान प्रजा में देख रहे हैं (कैसरी महाभारत-जरमनी जंग).

उपर आर्यावर्त और पर खंडों की धर्म संबंधि स्थिति का जितना कुछ संक्षेप में कहा उन सब पर पूर्वोक्त कर्तव्यादि पंच संस्कार का प्रभाव हुवा और आद्य उपदेशक से इतर अन्य कितनेक ग्रंथ पर उपदेश तो स्वयं पंच संस्कारों में से कोई प्रकार के संस्कार रूप हुये हैं. इस प्रकार परिवर्तन होते २ यूरोप में तो धर्म के बदले कोम और नेशन का सवाल उठके उस का प्रभाव दृढ हो गया है और भरतखंड में नाना धर्म मत पंथ चलके कुछ का कुछ (शोचनीय) हो पडा है. **"करना था कुछ और, करन लगे कुछ और!"**

उपरोक्त तमाम विकार या तो जंग से या तो भूख से या तो जनरल सर्वे सामान्यनीति, सामान्य धर्म और पदार्थ विद्या के प्रचार से नाश हो सकते हैं, अन्यथा विकार जाना-सुधारा होना कठिन है. यह बात ठीक है कि आकाश को पेबंद (थेगली) नहीं लगती, प्रकृति का नियम परिवर्तन होना है. ऐसा चक्र होता आया है और होगा, इसलिये सुधारना की कोशिश व्यर्थ है और इस दृष्टि से दूषण भूषण दरसाने की अपेक्षा नहीं है. १ कारण. और दूसरा कारण यह है कि जितने बडे २ धर्म-मत उत्पन्न हुये हैं सब की बुनियाद "पिंडे ब्रह्मंडे" है.

इस बात की पद्धति का सार त. द. अ. ४ म के मुनिभाव में बताया है. उसका सार यह है कि जितने तत्त्ववेत्ता रीफॉर्मर हुये हैं वे सब एक जगह पर पहोंचे हैं. हर कोई प्रकार से मन को शुद्ध बनाके उसका निरोध करके (निरुद्ध संस्कार द्वारा) खास एक लक्ष्य पर जा पहोचे हैं. और वहा किसी अधिष्ठान (चेतन–अगम्य शक्ति–ज्ञान प्रसार–मूलसम प्रकाश–अचिंत्य महिमा वाला कोई) में अनिश्चित कोई प्रकार का अगोचर लिंग (फॉर्म–करण–सूक्ष्माकृति–स्फुरण)–परिणामी रूप अकथ्य प्रकार से प्रकाश्य होता है. प्रकाश प्रकाश्य उभय का साक्षात स्वयं अकथ्य प्रकारसे स्वतोग्रह होता है. उससे इतर अन्य मानने जानने की योग्यता मनुष्य में नहीं है. उस प्रकाश्य के लिये सब तत्त्वनेत्ताओं की कल्पना भिन्न भिन्न प्रकार की हो गई है. इसलिये, और दृष्टिभेद को लेके उस प्रकाश्य (माया–प्रकृति–उपादेय) के वर्णन करने की शैली में अतर पड गया और इस अंतर से उस अधिष्ठान (ईश्वर–ब्रह्म) के स्वरूप में भी अनेक भावना, नाना कल्पना करनी पडी हैं तथा देशकाल, स्थिति, अधिकार परत्वे अपनी भावना–कल्पना–मतव्यो को रखना पडा है, इस लिये उनके § निषेध में मेरी प्रवृत्ति नहीं होती थी; क्योंकि जो कोई शोधक–अधिकारी उक्त सर्वतंत्र साधन (अ. ४ सू. २४६ देखो) करेगा, वोह आप ही जेसा (प्रकाश–प्रकाश्य) होगा वेसा अनुभव करके शांत हो के चुप हो जायगा, इसलिये दर्शनकारों के मतव्यगत जो असमीचीन मतव्य उस मतव्य का अपवाद न लिखके उनका मंतव्य मात्र लिखके संतोष मान लिया गया था.

परंतु, जेसा विकार वा परिवर्तन शनैः शनैः क्रमशः हुवा है और वोह पुरुष प्रयत्न से ही हुवा है, एव विकार का परिवर्तन भी शनैः शनैः होनेकी आशा है और वोह पुरुष प्रयत्न से हो सकता है, तथा उन संस्कारो से उत्तरोत्तर मतभेद हुये हैं और उन मतो को इत्थमभाव से मानने लग गये, मूल के उद्देश, देशकाल स्थिति अधिकार पर ध्यान न रहा, इसलिये जनमंडल में हानी हुई और हो रही है. ऐसा जान के कितनेक बहुश्रुत जहादीदः और इतिहासवेत्ताओं ने यह सूचना की कि जबतक शुद्धबुद्धि से सिद्धांतो के दूषण भूषण नहीं दिखाये जावें वहातक उक्त कर्तव्यादि पंचसंस्कार के विवेक पर दृष्टि न आने से अंध परंपरा की निवृत्ति तथा त्याग ग्रहण में प्रवृत्ति नहीं हो सकनी, इसलिये दर्शनसंग्रह बढाया गया-सिद्धांतो

§ उपनिषद, न्यायादि ६ दर्शन, बुद्धदेव, महावीरस्वमी, शंकराचो, मूसो, ईसुमसीह, नबी मुहम्मद की शता के

के दूषण भूषण यथामति दरसाने पडे है इस बात का दावा नही किया जा सकता कि वे दूषण भूषण कहातक ठीक होगे, परतु इतना अवश्य कह सकेंगे कि सृष्टि नियमो के अनुकूल जेसा समझ में आया वेसा शुद्ध बुद्धि से बयान हुवा है, और खंडन मडन वा पक्षपात की दृष्टि से नहीं लिखा गया है.

(श, तुम्हारा (प्रयोजक का) पक्ष–मंतव्य–दूषण भूषण का दर्शन भी पंचसस्कार का विषय क्यो न माना जाय? (उ) मेरा खास एक पक्ष कोइ नही है किंतु यथा अधिकार और उद्देश (विषय) प्रति है. परमार्थ प्रसग में त द अ. १ गत विलक्षण वाद लिखा है सो मुझे ईष्ट है उसको पच संस्कार का परिणाम वा इत्थम् भाव में कोई न मान ले इस लिये उसके दोप भी वहा दरसाये हे, वे दो दोष शैली प्रकरण के विषय है अन जो उसको इत्थम् और पच सस्कारों का विषय आप मानें तोभी ठीक है; क्यो कि मैं भी आप का छोटा भाई मनुष्य हुं पच सस्कार वाली सोसाइटी का ही रिजल्ट हु, स्वतंत्र सर्वज्ञ नहीं हु. वोह सदोष हो तो त्याग दीजिये, मुझे कोई प्रकार का आग्रह नही है

(शं.) हर कोई तटस्थ हो तो भी उसका कोई प्रकार का पक्ष–मंतव्य होता है. जो ऐसा नही हो तो उसका कथन व्यर्थ है इस प्रकार यदि तुम्हारा कोइ पक्ष नहीं तो तुम्हारा कथन व्यर्थ है. तो भी दुसरो का अपवाद जनाते हो इस लिये वितडावादि हो, एसा कहा जा सक्ता है. (उ.) नहीं क्योंकि तत्त्वदर्शन अ ४ में इसलोक सबंधी व्यष्टि समष्टि के प्रेयस् और परलोक सबधी श्रेयस् के लिये अनेक शैली बयान की हैं. और यथाविषय, यथाअधिकार उनको ग्रहण करना माना गया है, वही मेरा मतव्य है. तत्त्वदर्शन की प्रस्तावना के अक (८-९-१०) याद में लीजिये, और भी पर सिद्धातो के भूषण भी कहे हैं. इसलिये वितडावाद नही है तथाहि ब्रह्मसिद्धात में मेरे मतव्य का विस्तार है जिस में कर्म, उपासना और ज्ञान यह ३ डिग्री है और ब्रह्मसिद्धात के अत में द्वैतअद्वैत का झगडा भी सूक्ष्म रूपमें कहके निष्कर्ष जनाया है; इसलिये वितंडा नहीं है उपरात आपको अन्यथा भासता हो तो आपकी आप जानो.
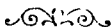
प्रस्तावना.

किसीके मत खंडन वा मंडन वा वर्णन करने वालेको योग्य है कि उसका प्रथम अच्छी प्रकार अभ्यास कर लेवे, क्योंकि हरेक धर्म में कितनीक ऐसी सांकेतिक बातें होती हैं कि, उनका विना अभ्यास के और विना सहवास के परिचय में आना कठिन है. (वेद मंत्रों के कर्म, उपासना और ज्ञान कांड; आध्यात्मिकादि ३ प्रकार के अर्थ; उपक्रमादि ६ *लिंग अथवा द्वि. वाक्य इ. भेद हैं; तद्वत अन्य* धर्म ग्रंथों में संकेत है.

तथाहि आइडिया को शब्द में कहते हैं तो कभी कभी आंतरिय भाव यथायोग्य कहनेमें नहीं आता. यथा स्वप्नका अस्तित्व, नास्तित्व और स्वाद वगेरे विषय हैं; एवं वक्ता के मत का यथावत् स्वरूप नहीं भी जाना जाता. पुनः कालांतर में प्रयोजक के वाक्यों के अनेक अर्थ होते हैं.

जैसे कि वेद, गीता, जैन सूत्र, बायबल, कुरान, वगेरे के अर्थांतर होनेसे मत भेद हो रहा है. उपरांत ग्रंथोंमें सेलभेल भी हो जाती है. जैसे कि आर्य प्रजा और दूसरी प्रजा के मान्य ग्रंथों में कही और मानी जाती है. फेर उनका भाषांतर होनेसे वक्ता के भाव में अंतर पड जाता है. इसके सिवाय प्रेक्टीस, रूढी और टेवमें जो आचार, विचार उच्चार हो जाते हैं उसके अनुसार आद्य वक्ता के भाव लेनेमें स्वाभाविक वृत्ति दोडती है वा उस अनुसार जान पडता है. अभी जान पूछ के स्वार्थवश कुतर्क कर के दूसरा भाव जनाना वा लेना शेष है.

इत्यादि ऐसे विघ्न हैं कि जिससे आद्य वक्ता के मत को जानना-समझना मुशकिल है तो फिर यथावत् उसको लिखना वा उसके खंडन मंडन की तो बात ही क्या करना !

अब और सुनो. हमको जैन धर्म का तत्त्व लिखना है. परंतु उनका यह *मंतव्य है कि नवीन तिर्थंकर होने पर अगले तिर्थंकर के ग्रंथ गायब हो जाते हैं.* दूसरा तिर्थंकर उसानुसार कहता है, जेसा कि पूर्व के कथन समान महावीर स्वामीने कहा है वोह कथन गणधरों के कंठ रहा. ९०० वर्ष पीछे दूसरों ने सूत्रों मे लिखा. उन सूत्र ग्रंथोंमेंसे एक पक्ष ४५ दूसरा ८ सूत्र प्रमाण मानता है. अब उपरोक्त कारण भी शामिल करें तो महावीर स्वामी का आंतरीय अभिप्राय कैसे जाना सक्ता है? अर्थात् जैन धर्म को बताना मुशकिल है. और जो उनमें क्षेपक भाग भी हो तो फिर क्या कहाजाये !

बुद्धदेवने यथा अधिकार उपदेश किया है उस पर से अनेक पक्ष हुये तो बुद्ध का खास धर्म क्या; यह कहना मुशकिल है.

एवं वेद धर्म के लिये है. कितनीक विचारणीय बातें हैं. पौरुषेय, अपौरुषेय, वेद शाखा सहित वा संहिता भाग, वेद उपनिषद सहित वा संहिताभाग, वेद कृष्ण यजुर्वेद सहित वा केवल शुक्ल यजु. और ३ संहिता. (वेद प्रसंग याद करो) पुनः कब लिखा गया, उसके अर्थोंकी तकरार, इत्यादि उपर के दोनों पारिग्राफ वाली तकरार. तो फेर वेद धर्म अमुक ही है, ऐसा कहना मुशकिल है.

एवं बायबल और कुरान के धर्म संबंध में बडी तकरारें हैं.

अब रही नवीन प्रचलित संप्रदाय. उनकी शाखा उपशाखा हुई. उन में अर्थ की तकरार, आद्य स्थापक के वाक्यों की तकरार. इस प्रकार उनको भी यथावत् बताना मुशकिल है.

उन उन धर्म वाले पंडित, आचार्य, पादरी, मौलवियोंमेंसे कोई ही ऐसा निकलेगा कि स्वधर्म को यथावत् जानता होगा * परंतु उन जानने वालें में भी मतभेद निकलेगा, तो फेर दूसरोंकी (तरजुमा करनेवाले, अर्थ करने वाले, खंडन मंडन करनेवाले वगैरे की) तो बात ही क्या करना.

उपर कहे अनुसार है, तो हमारे वक्ष्यमाण अनेक धर्म–मत–पंथो के वर्णन वास्ते क्या मानना चाहिये? इस सवाल पेदा होना स्वाभाविक है. उसका उत्तर हम इतना ही दे सकते हैं कि हमको ग्रंथोंमें जो लिखा हुआ मिला है सो हमने लिखा है. आद्य वक्ता के वा उस धर्म के आंतरिय कटाक्ष के हम अपने को जवाबदार नहीं मान सकते, क्यों कि उपरोक्त कारण से मजबूर हैं. यद्यपि हमने ग्रंथों के कोटेशन्न वा कोटेशनों के भाव दिये हैं तथापि संभव है कि ऊपर कहे हुये कारणों के वश भूल हो; परंतु हमने उपर कहे अनुसार जेसा मिला वेसा शुद्ध बुद्धि से लिखा है, किसीकी अपूर्णता जान पडे वा अन्यथा जान पडे ऐसी दृष्टि से नहीं लिखा है; अतः यदि कहीं भूल हो तो उस धर्म–मत–पंथ के अनुयायी हमको क्षमा करके कृपया जनावेंगे

---

* शुद्धाद्वैत के अविकृत परिणामवाद और आविर्भाव तिरोभाव का भेद आगे जानोगे उस मे यह बात जान लोगे

तो शोध करके दूसरी आवृत्तिमें दुरस्त कर सकेंगे. * कारण कि शुद्ध नीति से इतर अन्य सबका समावेश प्रवृत्तिका नीति (व्यवस्थापक बुद्धि के अनुकूल वर्तन) में हो जाता है. और वोह यथा देश, काल, स्थिति-परिस्थिति परिवर्तन को भी पाती हैं, जेसा कि धर्म, लोक, राज्य के इतिहासों में प्रसिद्ध है.

जो प्रतिष्ठा, कीर्ति के भूखे नहीं हैं, जिनको अपना जाती स्वार्थ नहीं है एसे निःस्वार्थ-रिफॉर्मरों का उद्देश लोक के सुखमें होता है, तथापि (१) उनके लेख-उपदेश का उद्देश क्या है सो जानना चाहिए. अर्थात् लोकहित, देशहित, मोक्ष-श्रेयस्, प्रेयस्, स्वानुभव प्रकाश करना, या प्रवाह में लिखा है या प्रतिष्ठादि स्वार्थ है (२) जीस समय वोह लेख लिखा गया तबके देश, काल, स्थिति, परिस्थिति और आवश्यकता क्या. (३) वक्ता के पदार्थों के संकेत, लक्षण, उन लक्षणों का कटाक्ष. (४) वक्ता की थीयरी (शैली-पद्धति) उसका पूर्वा पर. (५) उस देश काल की परिभाषा और उसकी सेन्स (भाव). (६) उसके उपदेश का उस समय के धर्म, नीति, वहेवार, और राज्य पर एकंदर क्या असर हुवा था-क्या परिणाम आया था और वर्तमान में उसका असर तथा परिणाम क्या है वा होगा. (६) रीत रिवाज वर्तन के रुप पर दृष्टि. (७) वक्ता की स्थिति क्या थी. (८) उसका अंतिम सिद्धांत क्या? इन सब बातें पर ध्यान देना चाहिये. फेर उस वक्ता के लेख के वास्ते कुछ अभिप्राय कहा जा सकता है, वहां तक कुछ (ठीक अठीक) कहना उचित नहीं है. परंतु प्राचीन ग्रंथों के संबंध में उक्त सामग्री का मिलना असंभव जेसा हो गया है, इसलिये उनके खंडन मंडन में प्रवृत्ति होना ठीक नहीं जान पडता; तथापि वर्तमान के देश, काल स्थिति-परिस्थिति देखके

* सांख्ययोग-कर्मयोग में दूसरे प्रसिद्ध लेख पर से हेगल विशिष्टदैत पर और हार्वर्ड की अधिष्ठानवाद पर है ऐसा लिखा गया, परंतु यूरोपीय दर्शनग्रंथ से और प्रकार मालूम हुआ तो इस ग्रंथ मे सुधारणा की गई. इस भूल होने का कारण यह जान पड़ा कि जिसने इंग्रेजी भाषा से हिंदी में तरजुमा किया सो ठीक नहीं हुवा था उस पर से हमने लिया. गीता के इंग्रेजी तरजुमे देखे गये, उनमें कितनी जगह साफ भाव नहीं आया है. तो भी संस्कृत न जानने वाले इंग्रेजी तरजुमे के अनुसार अर्थ और भावार्थ मान बैठते हैं. इसी प्रकार मोक्षमूलर भट्ट इस वेद का तरजुमा है कालिजों में जो वेद का तरजुमा पढाया जाता है वोह भी विचारणीय है

उन ग्रंथों के टीकाकारों के अर्थ लेके उस पर विचार करना अनिवार्य है; क्योंकि उससे लाभ हानि हो रही है; इस दृष्टि से विदूषक और विभूषक की दृष्टिसे सामान्य शैलीमे इस दर्शनसग्रह का रूप है. नहीं कि मूल वक्ता की वा उसके वाक्यकी निंदा स्तुति है, ऐसा जानना चाहिये.

दृष्टिभावना पंचदशांग (अ ० सग्रहवाद मेंसे)

जो व्यक्ति सत्यासत्य के शोधनेमें वा जाननेमे असमर्थ हो और जो कुछ माने सो भावना पूर्वक मानता हो उसको चाहिये कि उपनिषद, षटशास्त्र, वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर्य, गाणपत्य, शुद्धाद्वैत, केवलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, त्रिवाद, बौद्ध, जैन, ब्रह्मो, आर्यसमाज, पुराण, नानक वगेरे, अचिद्वाद तथा पारसी, याहूदि, ख्रिस्ति, कुरान, इवोल्यूशन, थीयोसोफी वगेरे– सारांश चेतनवाद, जडवाद, अद्वैतवाद, द्वैतवाद–इन धर्म, इन धर्म भावनामेंसे हरकोई धर्म भावना अपने दिलमें कायम करे अर्थात् अपने प्राप्त धर्म मे ही स्थित रहके वा किसी धर्म–मत–पंथ का अनुयायी न होके नीचे लिखे अनुसार सत्तक वे विचार पूर्वक पंच दशांगका पालन करे (वैसे वर्ते) तो प्रत्येक धर्म–मतपंथमें रहके वा किसीमें न रहके भी सुखसे जीवन व्यतीत और कल्यान हो सकता है, × क्यों कि (सप्तक)—

(१) मन ही बंध मोक्ष का कारण; तजे कामना बंध निवारण, अर्थात् विषयासक्त मन बंध (दुःख) का और वासनामुक्त मन मोक्ष का कारण है (यह गुह्य रहस्य बहुधा मर्म तंत्र है) * (२) सुख हर कोई चाहता है. (३)

× ईश्वर, जीव, स्वर्गनर्क, पुनर्जन्म है वा नहीं और है तो कैसे है इन भावनाओं का संबंध केवल मन के साथ है लौकिक व्यवहार के साथ वा बाह्य लौकिक क्रिया के साथ नहीं है, अतः यथेच्छा मान के संतोष कर सकते हैं

* इस छद में कहे सिवाय जितने आईडीयल (प्रयोग से परीक्षा में सिद्ध न हो सके-परीक्षा में न आ सके सो यथा ईश्वरादि) सिद्धांत वा थीयरी हैं-वे सदा रहित [illegible] सिद्ध होते हों, ऐसा देखने में नहीं आता किंतु मनुष्य अपूर्ण है इसलिये उसके [illegible] वा कल्पना में कुछ न कुछ अन्तर रहता ही है, और यही नाना मत पंथ होने का कारण है इसलिये जो कुछ माना जाता है उसमें भावना, श्रद्धा और विश्वास ही होता है, फेर उस अनुसार वर्तन होता है वा नहीं यह दूसरी बात है [illegible] सिवाय दूसरे को हानि कर न हो इसलिये [illegible] है, इतना ही नहीं किंतु इस अनुसार वर्तते हो तो [illegible] उच्छेद होना संभव है

दुःख को कोई नहीं चाहता. (४) जन मंडल में दूसरे के विना जीवन नहीं हो सकता ऐसे देख रहे हैं. (५) भावना के विना मनुष्य का जीवन व्यवहार भी नहीं हो सकता; क्योंकि जीवन भावनामय ही है, (६) सृष्टिमें जीनेका हरेक को हक है. (७) कर्म के किये विना जीवन भी नहीं हो सकता.

इस सिद्ध सप्तक को अपने मन में अच्छी प्रकार समझ ले, तो हर कोई (द्वैत, अद्वैत, चिद् वा अचिद्) भावना धारण हो जाने में हानि नहीं जान पडती, परंतु उक्त व्यक्ति का वर्तन नीचे मुजब हो तो ही उक्त भावना दुःखप्रद नहीं हो सकती अन्यथा वर्तमान प्रचारवत् दुःखप्रद होगी उक्त पंच दशांग यह है—

पंचदशांग.

(१) अपनी भावना में श्रद्धा हो और इतना दृढ विश्वास होना चाहिये कि उसमें संशय (सत्य है वा नहीं ऐसा) न हो ताके बाह्यांतर में उस भावना के अनुसार कपट रहित वर्तन हो.

(२) उस भावना के अनुसार जो वर्तन हो उस वर्तन से किसी व्यक्ति के तन, मन वा धनको हानि न पहोचनी चाहिये. *

* यथा हिंद में मूर्ति की यात्रा ताजियों की यात्रा, कबरों की यात्रा तीर्थों की यात्रा, सूवर, गोवध, मंदिरों के आगे मातम, मसजिदों के आगे गानतान, हाद पी के अन्य की सीमा में जाना, गिरजा मंदिर वा मसजिदों के आगे अश्लील क्रिया करना. पब्लिक में स्वधर्म-पंथ का मंडन करना और पर धर्म के ग्रंथ आचार्य का वा मत पंथ का खंडन और निंदा करना वा लिखके प्रसिद्ध कराना इत्यादि प्रकार की अनेक ऐसी धार्मिक-पथाई क्रिया है कि जिनके करन से दूसरों का मन दुःखता है, द्वेष बढता है लड़ाई झगडे होते हैं अतः ऐसी क्रिया न की जावें और यदि की जाय तो अपनी सीमा में ऐसी रीति से हों कि अन्यों के मन को खेद न हो.

हिंदू मूर्ति की पूजा और गोरक्षा करे विना श्रद्धा से करता है उसका फल स्वर्गप्राप्ति मानता है ईसाईली धर्मवत् मूर्ति का भग और इद का गोवध धर्म भावना और श्रद्धा से करता है. उसका फल स्वर्गप्राप्ति मानता है अपने पंथ वा मनव्य से अन्य मत वा मंतव्य को असत्-त्याज्य हेय-हरेक श्रद्धापूर्वक मानता है ऐसी श्रद्धा और उस अनुसार वर्तन से टंटे फिसाद और हजारों का खून हुवा और होता है इसलिये जो संप्रदायी भाई भावना भावना-श्रद्धा श्रद्धा कूटते हैं उस पर विचार करने का है अर्थात् अंधभावना, कुभावना, अंधश्रद्धा, कुश्रद्धा, अंधविश्वास, कुविश्वास, ग्राह्य नहीं है किंतु योग्य भावना, योग्य श्रद्धा और योग्य विश्वास होना चाहिये, अर्थात् विवेकपूर्वक होने योग्य है हृदय (भावना) में स्वार्थ की मुख्यता नहीं होती किंतु भावना मुख्य होती है बुद्धि गौण है और मगज (बुद्धि)

(११) सच्चा और अच्छा उद्यम-धंधा करके निर्वाह करना. कुवृत्ति न करे.

(१२) संतोष पूर्वक अपनी जात से स्वतंत्र और तन मन से सुखी रहना, परंतु सामाजिक नियमों में परतंत्र रहना पडता है, अतः उसकी रीति से उनका पालन करना अर्थात् न्याय नीति से वर्तना.

(१३) जो बन सके तो मित्रभाव, मुदता, करुणा और उपेक्षा यह चार मैत्र्य पालना (तत्त्वदर्शन अ. ४ गत योग प्रसंग में इस का बयान है) और स्थितप्रज्ञ होना (त. द. अ. ९ गत गीता प्रसंग देखो).

(१४) जहां तक बन सके, परोपकार (प्रत्युपकार) अर्थात् तन, मन, धनसे योग्य समष्टि वा व्यष्टि को मदद देना और योग्य दयाका पालन करना, कारण कि दयाके पालन करनेसे साम्यभाव प्राप्त हो सकेगा.

(१५) दुष्ट गुण कर्मोंका निषेध. यथाः- (१) झूठ बोलना. (२) जिना-स्वपत्निसे मन मोड अन्य स्त्री पर काम दृष्टि करना. (३) चोरी करना. (४) खून करना (५) छल करना (६) दम्भ धारण करना. (७) विश्वासघात करना. (८) निंदा, चुगली, चांटी करनेमें प्रवृत्त होना, इत्यादि सर्वमान्य दुष्ट गुण कर्मोंसे वर्जित रहना जरूरी है.

जो अपने धर्म और अपने धर्म के भूमियोंका आदर्श बनके उपरोक्त पंचदशांग यदि व्यक्ति विशेष पाले तो हरकोई प्रकार की धर्मभावना रखने से कल्याण हो सकता है, जैसाकि तत्त्व द. अ. १ गत विभूपक मत विषे भावनाओं का सार बताया है. परंतु जो बाह्यांतर में वर्तन भावना के अनुकूल न हो, धर्म हठ हो, वा कपट हो तथा आपस्वार्थपना हो तो + सत्यासत्य का निर्णय करके सर्व तंत्रमान्य-समष्टि भावना का धारण करना उचित है. उसमें अपना मनमुखीपना नहीं लगाना चाहिये. *

+ हरकोई सम्प्रदाय में हो, परंतु जो कपटी भावना हो, आपस्वार्थपना हो, धर्म हठवश पंचदशांग से विरुद्ध वर्तता हो, स्वधर्म प्रचारार्थ अन्यायतती रीति से भी अन्य को दुःखप्रद हो तो सुख के बदले दुःख का भोग होगा. आगे जानेंगे.

* उपरोक्त सप्तक की समस्त तथा पंचदशांग शंका समाधान सहित विस्तार और हरेक धर्म में इसका कैसे वर्तन करना और कैसे हो सके इसका बयान मूल में है. यह विषय स्पष्ट है इसलिये और संकोचवश उसका विस्तार यहां नहीं लिखा है.

(नोट) वक्ष्यमाण मे जहा कहीं पचदशाग का ग्रहण करना कहा जाय वहा उपरोक्त सप्तक के विचार सहित १५ का ग्रहण है याने उपरोक्त ७ बातोको समझ ले और १५ अगका वर्तन करे, ऐसा जानना चाहिये. *

यहा यह भी जनाना ठीक होगा अर्थात् कोई भी साधन द्वारा जिस दिन यह पंचदशाग पालनेवाला सशय विपरीत भावना रहित अपने स्वरूप का यथावत् अनुभव कर लेगा (आत्मवित हो जायगा और जगतके स्वरूपको समझ लेगा) उस घडी पीछे उसकी और ही रगत हो जायगी, सब मत पक्षो में टोलरेशन (अतिरस्कार–उपेक्षा–क्षमा) हो जायगा और इन सप्तक–पच दशागका मुख्य रहस्य जानके उनका उपदेश करेगा.

पंचदशाग समाप्त हुवा.

दर्शनसग्रह मे अनेक मतो के (भावनाओ के) अपवाद विदूषक–शोधक पक्ष की तरफसे और त. द अ. ७ में अनेक मतो के भूषण सारग्राही विभूषक की तरफ से दिखाये गये है उनको वाचके पाठक को अवश्य विस्मय होगा; दूध और दही दोनो में हाथ रखने जेसा ज्ञात होगा, परन्तु सारग्राही श्री! उस मे गुह्य आशय है, वोह यह है कि जेसे संखिया के दूषण भूषण और प्रकार–प्रयोग जान के उसका त्याग वा ग्रहण हो तो उससे हानी न हो. इसी प्रकार धर्म, मत पथो के दूषण भूषण प्रकार और प्रयोग जान के उसका त्यागग्रहण किया जाय तो हानी न हो, परन्तु जो अधपरपराकी रीति से त्याग वा ग्रहण हो तो हानी होने की सभावना है, इसलिये दूषण भूषण, उनका प्रकार और प्रयोग दिखाया गया है, लोकप्रिय होने की दृष्टि से कथन नही है.

(शं.) जिसका तुम खडन कर चुके उसमें निष्ठा न हो सकने से उसका ग्रहण ही केसे हो सकता है ओर जो यू है तो पचदशाग व्यर्थ रहे.

(उ.) जो असमीचीन, हानीकारक भावना–पक्ष है उनके ग्रहण करने में हमारा आशय नहीं है. अर्थात सत्य का ही ग्रहण होना उचित है, तथापि जो निर्णय करने कराने में असमर्थ हो और जिसे प्राप्त धर्मका आग्रह हो तो वोह जो अपनी भावना को पंचदशांग पूर्वक पाले तो वर्तमान प्रचारवत् वोह भावना पर को हानीकारक न हो, यह मतलब है. और पचदशाग तो ऐसे है कि किसी धर्मका अनुयायी न हो ओर पाले तो भी सुखप्रद होने हैं. अतः सफल है. तथा हिंदी

प्रजामें एक धर्मभावना होना अति कठीन है इसलिये यदि अपने अपने धर्म के भावनावाले इन पंचदशांग को पालने लग जायं तो धर्म द्वेष न हो, धार्मिक दुःख न हो और धार्मिक संप होने का मूल जम जाय, इस दृष्टि से सप्तक की समझ पूर्वक पंचदशांग को लिया है.

गुणग्राहक दृष्टि.

यद्यपि जो धर्म मत प्रवर्तक योग्य पुरुष हुये हैं उनका लक्ष्यबिंदु एक जान पडता है (त.द. अ. ४ में मुनिभाव और अ. १ में विभूषक मतका अंक २९-३० विचारो) तथा जनमंडल दुःखी न रहें किन्तु सुखी हों ऐसी व्यवस्था की जाय, इस उद्देश में सब एक हैं और जो पूर्वोक्त सप्तक को पूर्वोक्त पंचदशांग पूर्वक पाले जाय तो साधक व्यक्ति की कोई हानी हो ऐसा भी नहीं जान पडता, तथापि उनकी शैली –थीयरी–पद्धतिमें अंतर है, जो कि यथा देश काल स्थिति और यथा अधिकार रचनेमें आई होगी उस थीयरी में जो भूषण हों (त. द. अ. १ विभूषक मत अंक ११२ देखो) वो ग्राह्य है. मुझको जो एकंदर ग्राह्य गुण जान पडे उनकी संक्षेपमें लिस्ट यहां ही लिख देता हूं, ताके उन उन प्रसंगों से जुदा जुदा विस्तार न करना पडे.

(१) वेद सब संस्कारों का मूल होने से उसके भूषण की सीमा नहीं बांध सकते.

(२) उपनिषदों में से (१०में से) आत्म अनुभव और शांति.

(३) मनुस्मृति से धर्म व्यवस्था -यथा देश काल स्थिति परिस्थिति.

(४) न्यायदर्शन से निर्णय करने की सामग्री अर्थात् प्रमाण प्रकार बुद्धिका व्याकरण.

(५) वैशेषिकदर्शन से पदार्थों के प्रथकरण की शैली.

(६) सांख्यदर्शन से उपादान (प्रकृति) की रचना.

(७) योगदर्शन मे आत्मा, अनात्मा की (पदार्थों की) परीक्षा होना (विवेकख्याति.)

(८) वेदांतदर्शन से (शारीरिक शंकर भाष्य से) उपनिषद् अनुसार-अनुभव, शांति और धर्म–मत–पंथों के विवाद से उपेक्षा (टोलेरेशन), (योग वासिष्ठ, प्रत्यभिज्ञा, सूफी से भी यही माल्म है).

(९) भगवद्गीता से मानव कर्तव्य और निष्काम कर्म योग. (स्थित प्रज्ञता)

(१०) पाणिनि—शब्द योजना.

(११) जडवाद से प्रवृत्ति-व्यवहार, लोकनीति (अचिद्वाद से भी. अ. १ पृष्ट ८८ देखो)

(१२) सनातनी (जिसमें सब पुराण मानने वाले शामिल हैं) से आस्ता, श्रद्धा; निभाव, स्मार्तपना, वैराग्य (इसमें रामानुज पक्ष से जाति अभेद और भक्ति, रामानंद वैरागी पक्ष से तितिक्षा, तद्वत् शैवि पक्षसे, पुष्टि पक्ष से बाह्य शुद्धता और शृंगारी भक्ति प्रकार. स्वामी नारायण से संग्रह इ.)

(१३) बुद्धदेव से साम्यभाव, संयम नीति और परोपकार.

(१४) जैन—प्रमाद से हिंसा का त्याग—शारीरिक तप.

(१५) कबीर स्वतंत्र विचार करना, शब्दाधीन न रहना.

(१६) गुरुनानक भक्ति, वैराग्य बहादुरी (वीरता).

(१७) चेतन और ब्रह्म से ईश्वर में प्रेम और साम्य भाव.

(१८) आर्यसमाज स्वामी दयानंद निर्णायक युक्ति, नीति और आत्म बल.

(१९) चीन से राज्यधर्म.

(२०) पारसी नम्रता, उद्यम.

(२१) यूरोपीय दर्शन से स्वतंत्र विचार करना. शब्दाधीन न रहना.

(२२) विकासवाद से उन्नति अर्थ प्रवृत्ति. टोलरेशन और माइट इज़ राइट.

(२३) सायंस से पदार्थ उपयोग—और शोध. इत्थम का अनाग्रह.

(२४) याहूदियों से भावना.

(२५) ख्रिस्ति मंडल से धर्म प्रचारका प्रकार.

(२६) मुसलमान मंडल से विश्वास (ईमान) और उसपर दृढता.

(२७) थीओसोफी से थीयरी बांधके प्रसार हो. ऐसे समझाना. सूक्ष्म सृष्टि की परीक्षाकी इच्छा. टोलरेशन.

(२८) फ्रीमेशन मंडल से भ्रातृभाव.

(२९) सनातन धर्म से धार्मिक स्वतंत्रता अर्थात् संसार के सब धर्मों में किसी न किसी व्यक्ति पर आधार रखना पडता है, परंतु आर्य धर्म ऐसा नही है. किंतु वेद मात्र अथवा अध्यात्म विषय पर ही उसकी नींव है, किसी व्यक्ति पर (राम, कृष्ण, व्यास, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवी, देव, जरतोस्त, मूसा, ईसा, मुहम्मद, किंवा,

याज्ञवल्क्य, भारद्वाज, शंकर, रामानुज, वल्लभ, गुप्त महात्मा, राजा राममोहन राय, गुरु नानक, स्वामी दयानंदादि पर) आधार नहीं है यह महत्व केवल आर्य धर्म में ही है. इसी वास्ते इसको सनातन धर्म कहते हैं (जबसे अमुक व्यक्ति के कथन पर आधार होने लगा तब से हिंदु धर्म के टुकडे हो गये, स्वतंत्र न रहा और गड़बड़ हो के पराधीन हो गया है).

उपरोक्त मंडल की थीयरी वा मंडल सर्वथा निर्दोष वा सर्वथा दूषित है ऐसा नहीं कहा जा सकता, तथा उपरोक्त गुण–योग्यता उस उस से अन्य में न होंगे यह भी कहना कठिन है; किंतु कुछ न कुछ अंश में अन्य विषे भी होंगे. तथापि यहां मुख्य दृष्टि लेके कहा है ऐसा जानना चाहिये.

इस दर्शनसंग्रह में जो वेद मंत्र और उनके अर्थ लिखे हैं वे विद्वानों ने जेसे लिखे हैं वेसे लिखे हैं. वे सब ठीक हैं वा नहीं, इसका उत्तरदाता मैं नहीं हो सकता; क्योंकि ऐसे ही परंपरा चलती है.

इसी प्रकार अन्य वंदीदाद, तोरेत, जबूर, इनजील, कुरान, बौद्ध, जैन, न्यायादि शास्त्र, उपनिषद् वगेरे के अर्थ संबंध में जान लेना चाहिये अर्थात् ग्रंथों मे से लिखे हैं.

दर्शन

इस दर्शन संग्रह में जिन भावना वा मत का बयान है वे सब दर्शन पद के वाच्य हैं ऐसा नहीं मान लेना चाहिये; क्योंकि इनमें कोई तो दर्शन रूप है, कोई मत-मात्र है, कोई धर्म रूप है, कोई पंथ रूप मे है, कोई किसी की शाखा रूप और कोई किसी की उपशाखा है. हमने तो शोधक को सुगमता हो जाय इसलिये संग्रह किया है ऐसा जानना चाहिये.

दर्शन ग्रंथ किसको कहना यह विवादित प्रश्न है. यूरोपीय दर्शन मे इसके यथामति जुदा-जुदा लक्षण किये हैं सो आगे बांचोगे.

जिसमें पदार्थों का वर्णन हो, जिसमें किसी को विषय शैली का वर्णन हो, जिसमें मनुष्य कर्तव्य का वर्णन हो, जिसमें मनुष्य की उन्नति के साधन का बयान हो, जिसमें अध्यात्म विद्या का वर्णन हो, जिसमें स्वतंत्र लेख वा मत हो, जिसमें किसी के विषय की पद्धति-थीयरी बना के वर्णन किया हो (वगेरह) उसको

दर्शन कहना वा किसको? इसका व्यापक उत्तर होना कठिन है, क्योंकि लोक में जिनको दर्शन कह रहे हैं उनमे एक रूप वा एक प्रकार नहीं है. (सर्व दर्शन सग्रह ग्रथ देखो)

(शं) वेद को मूल दर्शन और उपनिषदों को तदतरगत ब्रह्म दर्शन, कहने में कोई सशय नही होता, परतु व्यास, कृष्ण, शकर, प्रतिभिज्ञा, रामानुज, वल्लभ इन महोदयो के बनाये हुये ग्रंथो को स्वतत्र दर्शन नही कह सकते, क्योंकि उनमे उपनिषदोक्त विषय की अपनी तरफ से पद्धति बना के उसका व्याख्यान किया है. इसलिये उनको पद्धति दर्शन कह सकते हैं. तद्वत्त पूर्व मीमासा के लिये ज्ञातव्य है क्योंकि उसमें वेदोक्त कर्म की पद्धति का दर्शन है. वे न्याय, वैशेषिक, योग, साख्य, बौद्ध, जैन, चारवाक (अचिद् दर्शन), यूरोपीय दर्शन, विकासवाद (विकास दर्शन) जैसे दर्शन नहीं है, तथापि उक्त दृष्टि से दर्शन कहे जाते हैं क्योंकि जिस कर के जाना जाय सो दर्शन, ऐसा लक्षण करते हैं. उनसे मूल की पद्धति पूर्वक रहस्य जाना जाता है अतः उनको दर्शन कह सकते हैं.

परतु जब जिस कर के जाना जाय सो दर्शन ऐसा लक्षण हो तो मनुस्मृति को 'धर्म दर्शन', पुराणो को सृष्टि दर्शन वा भक्ति दर्शन, शाडल्य सूत्र और नारद सूत्र को भक्ति दर्शन क्यो न कहा जाय? कुरान मे कलामुल्लाह का दर्शन है ऐसा मुसलमान ससार मानती है, अतः उसको कलामुल्लाह दर्शन क्यो न कहा जाय? एव इजील को रुहअल्लाह दर्शन और तौरेत को कलीमुल्लाह दर्शन क्यो न कहा जाय? किंवा तीनों को प्रतिज्ञा दर्शन (ईश्वर का करार नामा) क्यो न माना जाय? एव वैसे अन्य ग्रथो वास्ते ज्ञातव्य हैं.

अब यह कहना बाकी रहा है कि यथार्थ बोध वा अयथार्थ बोध, पर दर्शन शब्द का आधार रखना या नही, इस का फैसला करने जावें तब किस को दर्शन कहना इस का उत्तर होना मुशकिल है. इसलिये लोक में जिस को दर्शन कहते है उनको इस दर्शनसग्रह में दर्शन नाम देना चाहिये. (सर्व दर्शन सग्रह, यूरोपीय दर्शन ग्रंथ देखो)

इस सग्रह में कितनेक ऐसे नाम है कि जिनको दर्शन नाम नहीं दिया जा सकता. यथा—तुलसी, गुरु नानक, चेतन, चरणदास, राजा राममोहनराय, स्वामी दयानन्द, इन के ग्रथो को दर्शन नाम नहीं दे सकते, तथापि कोई भाविक पुरुष वा कोई पक्षकार इन के ग्रथो को भी दर्शन कह दे, तो हम को उसके निषेध में आग्रह नहीं है.

तत्त्वदर्शन ग्रन्थ की प्रस्तावना में और यहां उपर भी दरसाया है कि जो लोकहितैषी रीफ़ॉर्मर. (आचार्य–सुधारक) होते हैं, उनकी तरफ से यथा देशकाल स्थिति परिस्थिति तथा यथा अधिकार भावनाओं का अध्यारोप अपवाद होता आया है और होगा, परिवर्तन का प्रवाह है. अतः वर्तमान देशकाल स्थिति और परिस्थिति में जिस थीयरी, जिस शैली, जिस आरोप से जनमण्डल को सुख हो—उसकी उन्नति हो वैसी शैली–अध्यारोप का प्रचार होना चाहिये. एवं जिस शैली, जिस अध्यारोप से अधिकारी को संशय–भ्रांति रहित आत्मा का अनुभव होके चिद्ग्रंथी भिदा जाय वोह शैली, वोह अध्यारोप अपवाद उसके लिये उत्तम-उपयोगी मान लिया जाय. यथा वेदांत मे अनेक शैली–अध्यारोप हैं. विवर्तवाद, एकजीववाद, दृष्टि सृष्टिवाद–अवच्छेदवाद, आभासवाद, विलक्षणवाद इ. (आगे वांचोगे). और जिससे सत् कर्म उपासना (भक्ति) संपादन हो तथा जीवन सुख से हो वोह अध्यारोप व्यवहार में उत्तम होता है, क्योंकि परमार्थ प्राप्ति में बहिरंग साधन है. इसलिये दर्शनसंग्रह गत जो दूषण भूषण जनाये हैं उनको प्रस्तुत दृष्टि से निरखना चाहिये. पक्षपात खंडन मडन की दृष्टि से देखना उचित नहीं जान पडता. (पंचदशांग ध्यानमें रहे). क्योंकि मनुष्य अपूर्ण है, उसका बुद्धि विलास सर्वथा निर्दोष पूर्ण हो ऐसा मुशकिल है.

इस दर्शनसंग्रह में जहां शोधक, विदूषक वा विभूषक शब्द आवे वे मेरी तरफ से हैं ऐसा जानना चाहिये.

अब आगे तत्त्व दर्शन अध्याय १ सू. ४४७ से ४६९ तक का विवेचन अर्थात् दर्शनसंग्रह का आरंभ होगा.

ज्ञान की ७ भूमिका (१) शुभेच्छा अर्थात् विवेकादि ४ साधन. (२) विचारणा अर्थात् श्रवण-मनन. (३) तनुमानसा अर्थात् निदिध्यास द्वारा बुद्धि की सूक्ष्मता. (४) सत्त्वापत्ति अर्थात् लक्षणा द्वारा जीवगत चेतन प्रत्यगात्मा और ब्रह्म चेतन एक है ऐसा अनुभव हो जाना किंवा चिद्ग्रंथी के भंग हुये अचिद का त्याग हुये चेतन एक विभु है ऐसा अनुभव हो जाना. यह दोनों अनुभव एक ही बात है. दोनों में अहंता ममता, कामना वासना का अभाव हो जाता है. (५) असंसक्ति, अर्थात् निर्विकल्प ऐसी समाधि के उससे स्वयं ही उत्थान हो जाय. (६) पदार्थाभावनी. ऐसी निर्विकल्प समाधि के जिससे पर द्वारा उत्थान हो. इस अवस्थामें पदार्थ चित्राकारवत भासते हैं, स्थूलरूपमे नही. (७) समाधि. जीवन मुक्ति. इसमें शरीरका भी भान नहीं रहता.

स्व० पूज्य ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री आत्मानन्दजी महाराज

स्व० पूज्यब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री भास्करानन्दजी महाराज

ग्रंथारंभ
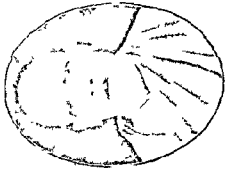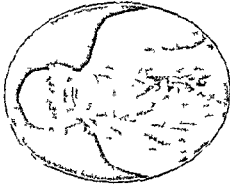
मंगल—शालिनी.

तत्त्वज्ञानां सज्जनानो समानं, सत्यं लक्ष्यं चैकमस्मात्प्रणौमि ।
इष्टस्यैषां सद्गुणानांनिधिनाम्, सत्कारोऽतः स्यादयोग्यो विचारः ॥ १ ॥

भावार्थ—दोहा.

तत्त्वदर्शि सज्जनों का, लक्ष्य समान निदान;
नमस्कार उनको करूं, सद्गुण की हैं खान ।
हो गया उनके इष्ट का, नमनेसे सत्कार;
नहिं आवश्यक्ता यहां, करना शोध विचार ॥

शालिनी और दोहा का भावार्थ—तत्वज्ञानी सज्जनो का सत्य, समान और एक लक्ष्य होता है, इसलिये मैं उनको नमस्कार करता हूं; इस नमनेसे उन सद्गुणों की खान के इष्टका भी सत्कार हो जाता है; अन्य शोध विचार करने की इस प्रसंग में आवश्यकता नही है.

भारतीय दर्शन अंक १ से ५५ तक.

अब आगे तत्त्वदर्शन अध्याय १ सूत्र ४४७ से ४५१ तक (पृष्ठ २२० से २२८ तक देखो) का विवेचन अर्थात दर्शनसंग्रह लिखने का आरंभ करते हैं तहां प्रथम तदंतर्गत जो भारतीय दर्शन हैं सो लिखेंगे (उस पीछे पर खंडदर्शन और कालकर्म का विचार आवेगा).

वेद—उपनिषद.

वेद, उपनिषद् के मंत्र (अवतरण)

वेद के अर्थ करने में अनेक बातों की अपेक्षा है १, कोई श्रुतिकर्म, कोई उपासना, कोई ज्ञानकांड में लगती है इसलिये उस उस प्रसंग संगति अनुसार अर्थ

होते हैं २, श्रुति में उपक्रमादि षडलिंगों पर ध्यान देना पडता है, यह उसके अर्थ की कसौटी है ३, हरेक के आध्यात्मिकादि ३ प्रकार के अर्थ होना मानते हैं; इसलिये एक के यथा प्रसंग तीन तीन अर्थ हो जाते हैं ४, वेदार्थ में उसके षडअंग की आवश्यकता है ५, इत्यादि.

इसलिये आगे जो वेद उपनिषदों के मंत्रों का भावार्थ लिखा है, वोह दूसरे प्रसिद्ध विद्वानों ने जो किया है सो लिखा है. वोह अर्थ कहां तक ठीक है, और कहां किस प्रकार के उसका अर्थ करना और किस प्रसग में लगाना यह बात उन्हीं पर निर्भर है. मैं इस विषय में कुछ नहीं कह सकता. मैंने तो अभिप्राय जानने वास्ते संक्षेप में संग्रह कर दिया है (विशेष संग्रह व्र. सू. में है).

उपरोक्त अवतरण का वर्णन.

(१) वेद (ऋगादि ४ संहिता) यह (धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष याने कर्म, उपासना, ज्ञान, याने वर्णाश्रम और विधिनिषेध का) सूत्र रूप है अतः वेदांत (वेद का सार–अंतिम रहस्य–ज्ञान का सार) शब्द का वाच्य नहीं है. उपनिषद् वेदांत है, क्योंकि वेद का जो अंतिम–मुख्य विषय (ब्रह्मप्राप्ति–मोक्ष) है उसका प्रतिपादक है. इसलिये वेद मूलदर्शन और उपनिषद को ब्रह्मदर्शन यह नाम देना उचित ही है.

(२) गीता और व्यास सूत्र वेदांत है, क्योंकि उपनिषदों का ही सार कहते हैं इसलिये गीता को ब्रह्मविद्या और व्याससूत्र का नाम वेदांत दर्शन कहने हैं.

(३) जो अपनी भावना वा मंतव्य को श्रुतिप्रमाण से सिद्ध करे और उसमे अन्य मंतव्य को श्रुति से अन्यथा बतावे और सिद्ध करने पीछे ऐसा कहे कि यह हमारा नवीन मत नहीं है किंतु श्रुति (वेद–उपनिषद) का है, उसको वेदांती कहते हैं, इस रीति से जितने अपने मंतव्य को वेद के अनुसार बताते हैं उन सबको वेदांती मानना चाहिये, वे चाहे द्वैतवादी हों वा अद्वैतवादि हों. उपनिषदों में जिन वेदवादि ऋषि मुनियों का नाम लिया है, यथा— ब्रह्मसूत्रकार, गीता का उपदेष्टा, गोडपादाचार्य, शंकराचार्य, वल्लभश्री, रामानुजश्री. दयानंदश्री, इत्यादि. रूढी में वेदांती उसको कहते हैं कि जो जीव ब्रह्म का अभेद मानता है. बात यह है कि वर्तमानकाल में अन्य सब नाना चेतन मानके और कर्म उपासना को लेके चलते हैं, और गोडपादश्री तथा शंकराचार्यजी केवलाद्वैत

याने चेतनात्मा एक ही है ऐसा मानते हैं, इससे अन्य के अनात्मा कहता है इसलिये ऐसा कहा जाता है.

(४) स्वामी दयानंदजी वेद से इतर (ब्राह्मण उपनिषदादि) के स्वतः प्रमाण नहीं मानते, और वेदानुसार अपना त्रिवाद बताते है. शंकराचार्यश्री वेद और केनादि १० उपनिषदे के याने श्रुति के स्वतः प्रमाण मानते हैं और उसके अनुसार अपना विवर्त्तवाद (मायावाद–केवलाद्वैत पक्ष) सिद्ध करते है. रामानुजश्री श्रुति के स्वतः प्रमाण मानता है और इसके सिवाय दूसरे १० उपनिषदादि और पुराणे के भी प्रमाण मानता है. तद्वत वल्लभश्री. यहा जैमिनि और गौतमादि की चर्चा का प्रसग नही है, किंतु श्रुति (वेद, उपनिषद), वेदातसूत्र और गीता इन तीन के मानने वाले की चर्चा है.

(५) शंकराचार्यश्री का विवर्त्तवाद (मायावाद) है, अद्वितीय ब्रह्म से इतर मायामात्र (अविद्या कल्पित), और मोक्ष से अनावृत्ति. रामानुजश्री का त्रिवाद, जीव अणु, मोक्ष से अनावृत्ति, और ईश्वर का अवतार, ऐसा मानते है उनका विशिष्टाद्वैतवाद है. वल्लभश्री का अविकृत परिणामवाद (ब्रह्मवाद) है, जीव अणु, ईश्वर का अवतार, सायुज्यमुक्ति, ब्रह्म ही अभिन्न निमित्तोपादान, जीवनित्य, सायुज्यमुक्ति से अनावृत्ति. ब्रह्म का आविर्भाव तिरोभाव. दयानदश्री का आवृत्ति त्रिवाद है. ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनो स्वरूपतः जुदा, ईश्वर का अवतार नहीं, जीव, अणु, मोक्ष से आवृत्ति. भिक्षु–माधव निंबारकादिका उक्तो मे समावेश हो सकता है.

(६) ऊपर थोडी श्रुतिओ का सग्रह किया है. वे नीचे अनुसार लगाते देखा है, इतना ही नहीं किंतु श्रुति का प्रकरणातर बता के वा अर्थातर कर के वा भावार्थ का अंतर बताके एक दूसरे के एक दूसरे प्रसग–पक्ष में भी ले जाते है इसलिये निश्चितरूप से नहीं कह के ऊपर से साधारण भाव से उनके विभाग जनाते है याने जेसा देखा, सुना, पढा वेसा लिखते है. नीचे के अंक ठीक ही हो, यह इस वास्ते नहीं कह सकते कि भाषातर से लिखा है और भाषातर करने मे भाषा कर्ता का आतरीय भाव घुस भी जाता है. निदान शोधक के मंतव्य शोधने वा जानने में सहायभूत हो जावे, इस दृष्टि से लिखते है —

मंतव्य.	वेद की.	उपनिषद् की.
(१) द्वैतवाद (त्रिवाद) संबंध की श्रुति.	१ से २५ तक २०।२१।२३।२५	२।३।४।६।८ से १८ तक. २०।२१।२३।२५ से २९ त. ३९।४०।४२ से ४५ तक. ४७।५९।५२।५४।६३।६९।९
(२) अभिन्न निमित्तोपादान ब्रह्मवाद संबंध की श्रुति	५।७।३४।३७। ११।१४	१।५।७।१०।११।१४।२३।८ ६५ से ६८ तक. ७७।८२ से ८९ तक. ९२.
(३) अर्थापत्ति से विवर्त्तवाद संबंध की श्रुति (केवल अद्वैतवाद)	४।५।९।१०।११।१४ २६ से २९।३३। ३५।३७	१।५।७।१०।११।१४।२२। २४।२९ से ३२ तक. ३४। ४६।५० से ६५ तक. ६८।६९ ७३ से ८१ तक. ८३।८४। ८५।९०।९१।९२।९४.
(४) ब्रह्म, निर्गुण, निष्कल, अक्रिय	३८	३६।३८.
(५) ईश्वर की मूर्ति नहीं	३६	१८
(६) ईश्वर की मूर्ति	११ (विवाद)	६७
(७) जीव परिच्छिन्न	११	१४।१६।४५।६८
(८) जीव अमर	...	२।३।४।१५
(९) मोक्ष से अनावृत्ति	१३।१४।१५।१६	५५।५६।६९.
(१०) मोक्ष से आवृत्ति	१२	२९
(११) सायुज्यमुक्ति	१९	
(१२) उपासक की मुक्ति में भोग	...	२६।२७
(१३) उपनिषद, ब्रह्मपर	...	७०
(१४) वेद अपराविद्या, उपनिषद पराविद्या		७१।७२
(१५) उपनिषद मनु के पीछे		९१
(१६) वेद वाक्य वा	२४।२५	

विरोधाभास का निवारण.

उपर के अंक विचारने से वेद की श्रुतियों में परस्पर, उपनिषदों की श्रुतियों में परस्पर और वेद उपनिषद् की श्रुतियों में विरोध का आभास हुवा होगा, परंतु उनमे विरोध होना वा पूर्वापर विरुद्ध कहना नही बनता. अर्थकारों की बुद्धि का भेद होगा वा क्या, इस विवाद मे उतरने की अपेक्षा नहीं है किंतु उसकी निवृत्ति की तरफ ध्यान खेंचो.

उपरोक्त श्रुतियों के अर्थ करना वा अर्थ करके उन सबका एक सिद्धांत निकालना वा उस अनुसार ब्रह्मवाद, मायावाद, त्रिवाद (द्वैतवाद) इन तीनों पक्षों का समन्वय करना वा भेद बताना— इन बातों को श्रुति अनुसार बयान करने का अधिकार (लियाकत) में नही रखता.

शुद्धाद्वैत, केवलाद्वैत, द्वैतवाद (पुरुषप्रकृतिवाद, त्रिवाद) के विरोध निवारक और एकवाक्यता की पचसामग्री.

अद्वैत और द्वैत बोधक ग्रंथों द्वारा और महात्माओं के संगत द्वारा यत्किंचित जो मेरी समझ में आया सो विचार* मेरी अल्पमति अनुसार नीचे दरसाता हूं, (जो भूलयुक्त हों तो त्याज्य हैं) यह विचार आगे उपयोग में आने वाले हैं और यहां जनाना उचित है इसलिये यहां लिखे हैं.

शक्तिमान ब्रह्म चेतन से इतर अन्य नहीं है.

इस सिद्धांत का विवेचन—

(१) ब्रह्म चेतन शुद्ध, कूटस्थ, निरीह, सर्वाधिष्ठान, निर्विकल्प और सम है उसकी शक्ति अचिंत्य, (अकल) अनिर्वचनीय, विलक्षण, अद्भुत है जिसे माया कहते हैं, वोह ब्रह्माश्रित रही हुई संस्कारी (अभ्यास वाली) है, संस्कार प्रवाह में यथातथ्य प्रकाशित न होने से उसको ही अमुक प्रसंग में अविद्या कहते हैं. ऐसे शक्तिमान् ब्रह्म का नाम महेश्वर (तंत्री परमेश्वर) है इससे इतर अन्य नहीं है.

जैसे स्वप्न सृष्टि का संस्कारी मन और अधिष्ठान चेतन उभय अर्थात् जीव उस सृष्टि का तंत्री है उससे इतर अन्य वहां नहीं है. जैसे वहां हिरण्यगर्भ

---

* ईश, केन मांडूक्य उपनिषद् मर्ता और श्री गौडपादाचार्य और श्री शंकराचार्य से मनन करके

और मन दोनों माया शक्ति ही के भाग हैं तहां मन करण है और हिरण्यगर्भ प्रमेय है. तहां जीव इस माया शक्ति वाला है, वोह जीव ही सृष्टि का अभिन्न-निमित्त उपादान कारण है (क्रिया परिणामादि माया का भाग ज्ञातृत्वादि, चेतन का भाग है). कारण कि जो नाम रूप प्रतीत होते हैं वे मन (माया) से भिन्न नही हैं उसी के आकार हैं, तथा मन अपने अधिष्ठान शक्तिमानवत् (विजली और उसकी शक्तिवत्) ब्रह्म से भिन्न नहीं है किंतु उसी मे व्यक्त अव्यक्त रूप से रहता है.

(२) जैसे स्वप्न में संस्कार स्फुरणतंत्री की इच्छा (यह भी संस्कार का रूप है) उससे यथा संस्कार यथा पूर्व स्थूल सूक्ष्म आकारों की उत्पत्ति, स्थिति और लय (सुषुप्ति) होता है. जैसे सुवर्ण का कुंडल; तहां नाम रूप उपाधि कनक को *अन्यथा दरसाती* है, वस्तुतः कनक जैसा का तैसा है. ऐसे तंत्री की उपाधि जो मन (*माया*) तिसका स्फुरणरूप जो आकार (नाम रूप) उस आकार के कारण चेतन नाम रूपात्मक जान पडता है. वस्तुतः वो पूर्ववत् (आकाशवत्) सम है. *किंवा जैसे रज्जु मे* सर्प यह कल्पिताकार (माया–अविद्या का परिणाम) उस आकार रूप डोरी भासती है, ऐसे ही मनस्फुरित आकार के संबंध से चेतन नाम रूपात्मक भासता है, वस्तुतः पूर्ववत् सम है. जैसे सर्प यह डोरी का विवर्त्त है और डोरी विवर्त्त उपादान है. वैसे मन के आकार चेतन के विवर्त्त हैं और चेतन विवर्त्तोपादान है. ×

जैसे स्वप्न में जीव, प्रकृति और व्यवस्थापक की कल्पना होती है और संस्कारवश वैसे ही मानने में आते हैं, उनमे नित्यत्व जान पडता है.

इसी प्रकार यहां ब्रह्मांड में है. अर्थात् अभिन्न निमित्तोपादानवाद, विवर्त्तवाद और द्वैतवाद घट जाता है (मांडूक्योपनिषद् की कारिका और श्वेताश्वतर को विचारें).

(३) अब माया (अविद्या–*माया का ही रूप*) *उपाधि वा अनिर्वचनीय* त्रिगुणात्म शक्ति. तहां ईश्वरत्व की उपाधि माया, और जीवत्व को उपाधि अविद्या (माया का दबा हुआ सत्व). ऐसे एक चेतन और सत्कारी माया युक्त हुये + *किंवा चेतन उपहित हुये. † इन उभय की ईश्वर संज्ञा (तंत्री) और* सत्कारी अविद्या (अंतःकरण–अष्टपुरी वगैरे) युक्त हुये * किंवा अविद्या उपहित हुये. §

× विशेष वास्ते सम्पादक के मंतव्यगत ऊहापोह देखो.

+ ईश्वर. † ईश्वरसाक्षी चेतन * जीव. § जीवसाक्षी.

इन उभय की जीव संज्ञा. एवं उभय तादात्म्य हुयें की ईश्वर और जीव संज्ञा. ईश्वर एक है जीव नाना हैं. और दृश्य, नाम रूपात्मक आकार माया के हैं वा माया करके भासते हैं किंवा अविद्या कल्पित है. वा तंत्री की माया का स्वभाव ही ऐसा है कि नभ नीलमावत् नाम रूपाकार में भासे और वे चेतन के विवर्त्त हों. †

(४) विशेषण विशेष्य का व्यवहार विशिष्ट में, उपाधि और उपहित का व्यवहार विशिष्ट में भी होता है (अ. २।५३३). इस व्यवहारानुसार यथा प्रसंग अर्थ करना विशेषण वा उपाधि माया. विशेष्य वा उपहित चेतन ब्रह्म, विशिष्ट ईश्वर. विशेषण वा उपाधि अविद्या (अंतःकरण–अष्टपुरी वगेरे) विशेष वा उपहित प्रत्यगात्मा चेतन और विशिष्ट जीव. केवल चेतन ब्रह्म चेतन. केवल माया दृश्यमात्र का लय रूप जो बीज; अनिर्वचनीय: (विस्तार अ. ३।५३९ से ५४९ तक. ५६६।५६७ में).

(क) केवल ब्रह्म के विशेषण अधिष्ठानादि. (त. द. अ. ३।३९४. अ. २।२६८).

(ख) केवल माया के लक्षण त्रिगुणात्मक, परिणामी, (अ. ४ पेज १०९३).

(ग) माया विशिष्ट के विशेषण सगुण, सक्रिय, इच्छा, ज्ञान, प्रयत्न, साकार अभिन्न निमित्तोपादान वगेरे. विवेक प्रसंग में नं. क. ख. ग. को जुदा, जुदा समझाना. यथा ज्ञानवृत्ति माया का भाग, ज्ञान चेतन का भाग, ज्ञातृत्व उभय का. एवं क्रिया, कर्म, कर्ता, साकार, निराकार, निर्गुण, सगुण वगेरे में विवेक है.

(घ) अंतःकरण (अविद्या) और चेतन उभय के अर्थात् जीव के विशेषण रागादि. तहां प्रत्यगात्मा चेतन के क. वत् साक्षी, दृष्टादि और अंतःकरण के कर्तृत्वादि.

(५) जिस शोधक ने अध्यारोप अपवाद को समझ लिया होगा, जिसने अधिष्ठान और उसके स्वरूप में अन्य का अप्रवेश है, ऐसा अनुभव लिया होगा, और जिसने स्वप्न सृष्टि का खूब विवेक, निरीक्षण कर लिया होगा, उसको वेद

† धांग के सार विशिष्ट आकाशवत् तंत्री, जीव वमनी, दृश्य भेजी, "विद्युल्लिंगवत् आधार नाम रूप (जोग जगत्) उपजा प्रकाश मय समुद्र तंत्री, बुदबुदे लहरें. पदार्थ, मच्छी और. स्वप्न सृष्टि में भी ऐसा ही है शरीर में ते केश मल समान.

उपनिषद, व्याससूत्र, गीता, मायावाद, ब्रह्मवाद, द्वैत (द्वैतवाद, त्रिवाद) इनमें कोई विरोध नहीं भासेगा. सबका यथा अधिकार उपयोग समझ सकेगा. *

ऊपर कहे हुये प्रकार से अर्थ करने से और समझने से शास्त्रों में विरोध नही आता.

विरोधाविरोध के उदाहरण.

(१) ब्रह्मअक्रिय असीम (चेतन), ईश्वर सक्रिय (तंत्री) (२) ब्रह्म अमूर्त (चेतन) मूर्त (तंत्री). (३) ज्ञाता दृष्टादि एक ही (ब्रह्म), जीव ज्ञाता दृष्टा (प्रत्यगात्मा). (४) साक्षी निर्गुण, निष्कल इच्छा रहित. असंग (चेतन), सगुण इच्छावाला (तंत्री). (५) सृष्टि पूर्व उस से इतर कुछ भी नहीं था (शक्तिमान ब्रह्म), सृष्टि पूर्व अन्यथा (माया–उपादान). (६) यह सब ब्रह्म ही. (तंत्री), द्वैत है याने नाना जीवादि हैं. (तंत्री का व्यक्त स्वरूप स्वप्न सृष्टिवत्). (७) एक बहु रूप हो जाता है. (तंत्री). (८) आत्मा से आत्मा, आत्मा से तेज (यथाकल्प तंत्री में से). (९) यथापूर्व कल्पता है. (तंत्री स्वप्न, जाग्रत, सुषुप्तिवत्). (१०) अपना आत्मा को सरजा. जाया सरजी (तंत्री). (११) माया को प्रकृति जानो माया वाला महेश्वर है (तंत्री). उसके ज्ञान, बल, क्रिया, स्वाभाविक हैं (तंत्री).

(१२) जीव अणु. जीव मध्यम (अविद्या विशिष्ट). जीव सर्वगत अनंत (प्रत्यगात्मा). (१३) आत्मा मुक्त (चेतन). मुक्त हुवा मुक्त होता है (उपाधि रहित चेतन). (१४) मुक्ति से अनावृत्ति (अविद्या नष्ट होने से). मुक्ति से आवृत्ति (अविद्याविशिष्ट का देव लोक में जाने से). (१५) मुक्ति में अनेंद्रिय (अविद्या वाले उपासक). मुक्ति में सेंद्रिय, (निर्बल उपासक). (१६) ब्रह्मप्रकाश जीव छाया (स्वप्न वाले आभास रूप माया के परिणाम क्योंकि शक्ति छायावत् पुरुष के साथ ही रहती है). (१७) जीव का देवयान पितृयान में गमन (चेतन का गमन नहीं, किंतु उपाधि का गमन. वहां भी चेतन उपहित होता है). (१८) कर्म उपासना से ज्ञान (जीव). ज्ञान से मुक्ति (कर्तृत्व भोक्तृत्व भाव न रहना). (१९) ब्रह्म स्वरूप हो जाता है ब्रह्मवित् ब्रह्मैव (प्रत्यगात्मा).

(शं.) तंत्री में माया भाग तो परिणामी होगा, परंतु उसका चेतन भाग और जीव का चेतन भाग उभय वाला नही होना चाहिये ?, जीव की उपाधि अनादि सांत

* पंच का उपयोग त. द. अ. ४ गत आरण्यक प्रकरण में है और अ. ३ गत सिद्धांत प्रकरण में भी है.

वा सादिसांत. २, (उ.) स्वप्नवत् जलमछलीवत उभय रूप में क्रमशः उपयोग. जीव की उपाधि प्रवाह से अनादि अनंत (गलेवत्).

एवं अन्यत्र भी यथायोग्य.

विद्या, अविद्या, ज्ञान, अज्ञान, बंध, मोक्ष, उत्पत्ति, लय, नियम, अनियम, साधन, साध्य, जड, चेतन और उन के भेद अभेद की कल्पना, द्वैत, अद्वैत, विधि निषेध, त्यागग्रहण इत्यादि सबका माया में समावेश हो जाता है, परमार्थतः यू नहीं हैं किंतु प्रतीत मात्र है. व्यक्तकाल में माया मात्र द्वैत है, और सो सत्य रूपमें जान पडती हैं; परमार्थतः पूर्ववत् शक्तिमान ब्रह्म चेतन ही है. इत्यादि.

इस प्रकार समझ लें तो उपरोक्त त्रिवाद (द्वैतवाद) और अभिन्ननिमित्तोपादान-वाद (ब्रह्मवाद) और विवर्त्त वाद (केवलाद्वैत) की व्यवस्था हो. कर्म, उपासना भक्ति (कर्मकांड वर्णाश्रम-उपासनाकांड) और ज्ञान कांड की सफलता तथा व्यवस्था हो जाती है.

यद्यपि ब्रह्मवाद की शैली से भी विरोधों का निवारण और व्यवस्था हो सकती है; क्यों कि सब ब्रह्म का ही परिणाम है उसने अपनी इच्छा से लीला रूप से नाना आकार धरे हैं; ऐसा माना जाता है. तथापि जहां श्रुति ब्रह्म को निरवयव, अक्रिय, कूटस्थ, निर्विकार, इच्छारहित और सम बताती है वहां ब्रह्मवाद की थीयरी से दोष निवारण नहीं होता. यद्यपि शंकर की थीयरी का खंडन रामनुजश्री ने और श्रीवल्लभाचार्य ने बडे जोर शोर के साथ किया है और आर्यभाष्य में भी है, तथापि वे विरोधाभास का निवारण नहीं कर सके हैं. यदि चेतन को अज्ञान-भ्रम इस पद को बीच में न लें तो उपाधि माया शक्ति शब्द (विवर्त्तवाद) से सब व्यवस्था हो जाती है. उक्त सब पक्षों की एकवाक्यता हो जाती है (शारीरिक भाष्य, श्रीभाष्य, अणु भाष्य, और आर्य भाष्य विचारिये और सायण तथा दयानंद के वेद भाष्य मिला लिजिये).

उक्त मायावत् महेश्वर (तंत्री) ईश्वर माना कि अभिन्न निमित्तोपादानवाद की व्यवस्था, (अविद्या-अष्टपुरी-अंतःकरण और चेतन उभय) जीव कर्ता भोक्ता से त्रिवाद की व्यवस्था, और अधिष्ठान ब्रह्म के ज्ञान हुये उपाधि की निवृत्ति शेष अधिष्ठान इस से विवर्त्तवाद की व्यवस्था हो जाती है. +

+ त द. अ ४ में चिदचिद्विवेक देखिये. (श उ.)

ब्रह्मवाद में ब्रह्म के उपादान और उसकी शक्ति के निमित्त माना है, माया वाद में माया शक्ति के नाम रूप का उपादान और ब्रह्म के निमित्त माना है. विचार के देखे ते शक्ति शक्तिमान अभिन्न होने से एकही आशय निकल आता है. विवर्त्त वाद में नाम रूप नहीं परंतु माया वश से ब्रह्म ही नाम रूप वाला भासता है. वक्ष्यमाण अकलाद्वैत में नाम रूप अभावरूप मानें हैं, विचार के देखे ते एकही आशय निकल आता है. नाम रूप का भाग त्याग करें ते सब ब्रह्म ही है, यह सबका निचोड–सार निकल आता है, वादावादि व्यर्थ जान पडती है. वाहरे गोडपाद श्री तथा शंकर भगवान वाह!

(शं.) जो तुमने उपर पंच सामग्री कही हैं वो तुम्हारी मत की कपोल कल्पना हैं, द्वैतवादि ते कभी भी नही मानेगा और अद्वैतवादि भी हंसी उडावेंगे. निदान व्यर्थ रहेगा (उ.) अस्तु. हमारे विचार में जो जान पडा सो लिखा है. जो माहत्माओं के ग्रंथद्वारा जाना सो कहा है. यदि यह विचार कपोल कल्पना है ते उपेक्षणीय हैं. अस्तु.

अब यहां प्रस्तुत (उपरोक्त) ग्रंथों के मंतव्य वा पक्ष लिखने की आवश्यकता नहीं है, क्यों कि उन उनके प्रसंग पर उन उनका मंतव्य जनाया है और नाना अर्थ तथा अनेक प्रकार के विवाद दर्शन से श्रुतिवाद में (उसका मुख्य क्या मंतव्य है इस में) पडने का हमको अधिकार नहीं है.

* (१) वेद (मूलदर्शन)

(१) ऋग, साम, यजु और अथर्व इन चार सहिता के समूह का नाम वेद है. (२) इसके कर्ता का प्रत्यक्ष न होने से और परंपरा सुनते आने से उसे श्रुति कहते हैं. (३) उसमें ईश्वरदत्त ज्ञान कहाता है. (४) इसमें सब यौगिक शब्द हैं. रौढिक नहीं, यह इसमें अपूर्वता है. (५) दुनिया में इससे पहले का कोई ग्रंथ नहीं है; यह तमाम विद्वान् इतिहासकर्ताओ का निश्चय है. इससे पहले का कोई जडवाद वा चेतनवाद भी नहीं है, किंतु इसका चेतनवाद ही आरंभ से है. और इससे पूर्व का जड वा चेतनवाद का इतिहास भी नहीं मिलता. यद्यपि धर्म

---

* यह अंक धर्म-मत-पंथ की सख्या के किंवा दर्शन क्रम के सूचक नहीं है, किंतु वर्णन क्रम के सूचक है, ऐसा जानना चाहिये; क्योंकि इन अंक की गणना में कोई तो दर्शन का, कोई मंतव्य का, कोई तो मत का, कोई धर्म का, कोई पंथ का, कोई तो किसी की शाखा का, कोई तो किसी की उपशाखा का वाच्य है. अतः यह अंक वर्णन के क्रमांक है; ऐसा मानना चाहिये

अनुयायी अपने अपने धर्म के और धर्म ग्रंथ के सब से पूर्व के मानते हैं तथापि विद्वान् और इतिहाससंशोधक मंडल मे इससे पहले के अन्य नही हैं यह सिद्ध हो चुका है. (६) उत्क्रांतिवाद नवीन (इवेल्यूशन थीयरी) की रीति से विशेष ज्ञान की शनैः शनैः उत्पत्ति मान के वेद के उस ज्ञान का समूह मानें तो इसका कोई इतिहास नही मिलता; इसलिये व्याप्ति विना का अनुमान विश्वासपात्र नहीं. (७) वेद मनुष्य को जंगली अवस्था मे बना हो ऐसा नही कह सकते; क्योंकि ईश्वरादि कितनेक विषयो के ऐसे उत्तम लक्षण इसमें हैं कि जो अभी तक सुधरी हुई दुनिया मे नही मिलते. (८) आरंभ में किसी शिक्षक द्वारा मिला हो ऐसी संभावना है; क्योंकि विना शिक्षक के विशेष ज्ञान नही मिलता, ऐसी व्याप्ति देखते हैं और बालक स्वयं ज्ञान सीख लेते हों ऐसी व्याप्ति नही देखते. जब तक यह व्याप्ति सिद्ध न हो जाय वहां तक दृश्य व्याप्ति ही माननी पडती है (९) आरंभ मे कैसे विशेष ज्ञान प्राप्त हुआ होगा, इस विषय में मान्यता है.

(१) सृष्टि अनादि से है. आरंभ नही, इसी प्रकार पद वाक्य भी अनादि है, सो परंपरा से सुनते चले आते हैं अर्थात् वेद अपौरुषेय है. अनादि है + (२) नही, क्योंकि वेद मे ही वेद की उत्पत्ति कही हैं (पुरुषसूक्त देखो); इसलिये आरंभ मे ४ अधिकारियो के हृदय मे ईश्वर की तरफ से पदार्थों का ज्ञान प्रेरा गया. फेर उसको उन्होंने भाषा मे रचा. (३) नहीं, किंतु छंद, पद, पदार्थ और उनका संबंध हृदय में प्रेरा और उनसे दूसरों ने सीखे. (४) नहीं. एक ब्रह्मऋषि को ईश्वरने उपदेश किये. (५) नहीं, आरंभ मे कितनेक पूर्वजन्म में ईश्वरीय ज्ञान सीखे हुये उत्तम संस्कारी जीव भी शरीरधारी हुये. उनमे पूर्व संपादित उत्तम उपयोगी ज्ञान शीघ्र उदय हुआ सो भाषा रच के उपदेश किया है. ऐसे देव अनेक थे, उन सब का ज्ञान मिल के मनुष्य उपयोगी ज्ञान का संग्रह हुवा याने वेद हुये. जिसको ईश्वरीय (ईश्वर प्रेरित) ज्ञान भी कहते हैं † अहमेव स्वय. ऋ. ८।७।११।६ (मैं आप विद्वानों को यह बात कहता हूं) ब्रह्मवादिनोवदंति (अथर्व) ईश्वरीय वाक्य और इतिशुश्रुमधीराणां. यजु. अ. ४० इत्यादि पर के वाक्यो मे मिश्रण हुवा

+ मीमांसिकों का मत॰र

† मानलो कि शब्द बिना भी चित्त में संस्कार रहते हैं, सबब पडने पर उद्भव होते हैं (पशुओं में देखते हो), मानलो कि वर्तमान युग मे जिन शब्दों द्वारा पदार्थों के संस्कार रहते हैं उन शब्दों से अन्य प्रकार के पदों द्वारा पूर्वजन्म में संस्कार होंगे और उत्तरजन्म में वे अन्य प्रकार द्वारा उद्भव होते होंगे, परंतु जिसने पूर्वजन्म माना के उसको पूर्व पूर्व के

हो ऐसा भी जान पडता है, इसलिये नं. ९ की कल्पना है ऐसी ९ कल्पना हैं. (६) यह ऐतिहासिक बात है, इसलिये इसमें आग्रह की अपेक्षा नही, परंतु वेद ज्ञान जनमंडल के हितकारी है. प्रेयम्, श्रेयम् (धर्म अर्थ काम मोक्ष) का शिक्षक अतः प्रमाण है. इतना ही श्रद्धा भावनापूर्वक मानना बस है.

(१०) वर्तमान में जो उत्क्रांति की कल्पना चली है यदि मूल में वोह कुछ भी सत्यरूप रखती तो इतिहास, दंतकथा वा वेदों में इसका इशारा होता; परंतु कहीं नहीं मिलता. वेद से दस्यु मनुष्यों का होना भी जान पडता है; परंतु इवोल्युशन का नाम भी नहीं; इसलिये सायंस के नियमानुसार परीक्षा के विना उस अनुमान को नहीं मान सकते. (११) आरंभ में पृथ्वी आदि बनने पीछे पूर्वकर्मानुसार उत्तम मध्यम शरीरधारी जीव हुये; किसी को उपदेश लगा, किसी को न बैठा. इसी प्रकार में उनको मैथनी संतान के टोले बंधते चले गये. जिनके शिक्षित और अशिक्षित नाम दिये जा सकते हैं (आर्य, अनार्य, सुर, असुरादि भी. (१२) बहुत काल का होने और उसका प्रचार कम पडने से वेदों के अर्थ में विवाद हो पडा है. यथा पशुयज्ञ, अहिंसा, मांस भक्ष्य अभक्ष्य, जड, (सूर्यादि) देव, चेतन ईश्वर ही देव, देवता उपास्य, ईश्वर से इतर उपास्य नहीं, इत्यादि विषयों में विवाद है. (१३) कोई मुख्य ऋग को, शेष पीछे से बने, कोई ऋग साम को शेष उनमें से बने, कोई ऋग, यजु और साम इन तीन को मूल और अथर्व में उन्हीं के मंत्र हैं ऐसा मानता है. कोई शुक्ल यजुर्वेद से इतर जो कृष्ण यजुर्वेद है वोह वेद नहीं है ऐसा कहता है. (१४) सुनते हैं कि आर्यों के तमाम ग्रंथों में भेल-सेल हुआ है परंतु वेदों में नहीं हुवा है. एक दो जगह पदमात्र का अंतर है, यथा यजु अ. ४० के १६ वें मंत्र में. और इसकी शाखा नष्ट हुई हैं परंतु मूल बना हुवा है. परंतु दूसरे पक्ष में मंत्रों में न्यूनाधिकता होना सिद्ध करता है (आगे वांचोगे). (१५) मानव सृष्टि के आरंभ का जो समय है सो ही इसका है. कौन

ज्ञान-संस्कार की आपत्ति माननी होगी. इसी से यह सिद्ध हो जायगा कि वेद (सत्ज्ञान) पूर्व पूर्व से है और किसी न किसी रचना (पदों) द्वारा सुनते सुनाते चले आये हैं सारांश वेद ज्ञान श्रुति है जिसका कथसमूह ग्रंथ है. ऐसा मानना पडता है. (जो जीव कोई ईश्वर इत माना तो उस द्वारा विशेष ज्ञान मिलना मानना ही होगा), सामान्य जीव को विशेष ज्ञान अन्य शक्ति द्वारा मिलना सिद्ध होता है. असत् का परिवर्तन होता है. सत् का नहीं. इसलिये पूर्व सत् बोध रूप संस्कार मे अन्य जो वेद सो सत् ज्ञान का पुस्तक है ऐसा कहा जाता है या कह सकते है

.से देश में और कब हुवा इस विषय में विवाद है. वेद में बताये हुये समय की रीति से करोडों वर्ष से मानव सृष्टि है. (१६) वेद के ६ अंग कहाते हैं जिनके द्वारा वेद का अर्थ किया जाता है और वे वेदाश्रम से ही बनाये गये हैं. तदंतर्गत व्याकरण में अष्टाध्यायी और कोशों में निरुक्त कोश मान्य किया जाता है. (१७) रावण, उवट, सायण, महीधर और स्वामी दयानंद ने वेदों का भाष्य किया है. अथर्व पर किसी ने नहीं किया है, ऐसा सुनते हैं. महीधर ने 'गणानांत्वा' मंत्रों का जो विभत्स अर्थ किया है और पं. भीमसेन ने उसका रूपांतर कर के शंका निवारण की हैं, जो ऐसा ही हो तो वेद से घृणा उत्पन्न हो यह स्वाभाविक है. स्वामी दयानंद ने वेद भाष्य भूमिका में उसके अर्थों की धूर्तता और असमीचीनता दिखाई है. जो सायणाचार्य के अर्थ का स्वीकार हो तो मोक्ष मूलर के भावानुसार कितनेक अर्थ ऐसी दृष्टि बताते हैं कि "वेद मंत्र अजान में बोले गये हों" (किसी शक्ति से प्रेरित हों) वा मानव सृष्टि की बाल्यावस्था के वाक्य हों (अव्यवस्थित). स्वामी दयानंदजी ने वेद के षडंग के अनुसार उसका परिहार किया है और ऐसे अर्थ जनाये हैं कि जिससे यही कहा जायगा कि वेद में सृष्टि नियम विरुद्ध वा उटपटांग (अडापसडाप) कुछ भी नहीं है किंतु सब ठीक और उपयोगी है.

स्वामी दयानंद कृत ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका. वेद की शब्द संज्ञा प्रसिद्ध ग्रंथ उनके वांचने से आपको वेद संबंधी बहुत कुछ वृत्तांत मिलेगा.

---

१ वेद.

ब्राह्मण भाग को एक मंडल वेद नहीं मानता परंतु संहिता (मंत्र) भाग को सब आर्य प्रजा वेद मानती है, उसे स्वतः प्रमाण रूप स्वीकारती है. इसलिये उपनिषदों (ब्राह्मण भाग) को बीच में न लेके वेद मंत्रों से वेद बोध जनाते हैं. यहां दूसरों के भाष्यों में से अर्थ लिखे हैं.

(१) ईश्वर स्वयंभू, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान (जीवों के कर्मफल भोगार्थ जगत् करता है), पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तर उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता रहता है, उसका यह कार्य सहज स्वाभाविक है और स्वप्रयोजन रहित है; सृष्टि, ईश्वर के अमुक भाग में होती है. ईश्वर द्वारा जीव को यह कर्म उत्तम लोक नीच लोक—

उत्तम योनी-नीच योनी अर्थात् पुनर्जन्म प्राप्त होता है. उत्तम सकाम विधि हैं, निषिद्ध त्याज्य हैं. निष्काम कर्म का बोध है. वेदोक्त कर्म, ईश्वरोपासना और ईश्वर के ज्ञान से जीव के बंध की निवृत्ति होके जीव मोक्ष को प्राप्त होता है. वहां से पीछा संसार बंध में नही आता—अनावृत्ति से पुनर्जन्म मरण को प्राप्त नहीं होता सृष्टि के आरंभ काल में ईश्वर जीवों के कल्याण वास्ते व्यवहार परमार्थ मार्गदर्शक बोध याने वेद का प्रकाश करता है. उसमें वर्णाश्रम के धर्म कर्म, राज्यव्यवस्था, अनेक प्रकार की उपयोगी विद्या के मूल का और ईश्वर प्राप्ति का उपदेश है. कर्मकांड उपासनाकांड और व्यवहार दशा में वेदानुयायी—आर्य प्रजा में उपरोक्त मंतव्य विशेष भाग में निर्विवाद है. परंतु ज्ञानकांड में त्रिवाद (द्वैतवाद) नहीं रहता किंतु अद्वैतवाद है. यह बात भी बहुतों को मान्य है. इन दोनों प्रसंगो की श्रुति उपर जनाई हैं.

(२) सृष्टि से पूर्व एक ईश्वर ही था वा अन्य भी, जीव और जगत् का उपादान क्या, तथा जीव अणु रूप है वा मध्यम परिमाण है, यह विषय विवादित हैं और आर्य समाज के स्थापक स्वामी श्री दयानंदजी ने वेद मंत्र की साक्षी देके (नं. १२ देखो) मोक्ष से आवृत्ति दरसाई है तब से मोक्ष से आवृत्ति और अनावृत्ति यह विषय भी विवादित हो गया है.

(३) नं १९ वाले मंत्र से स्पष्ट होता है कि सृष्टि के पूर्व सद् असद्, परमाणु आकाश, वैराट इत्यादि कुछ भी नहीं था. किंतु वोह एक ही था उस ब्रह्म मे अन्य कुछ भी नहीं था. जो यूं हो तो जीव और प्रकृति का उपादान क्या? ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि अमूर्त निरवयव निरंश और अखंड है (नं. ३।३६). उसकी शक्ति भी नहीं क्योंकि शक्ति अपरिणामिनी और जगत् परिणामरूप है. शक्ति निराकार और जगत् साकार है. शक्ति द्वारा अभाव से उत्पन्न किये हों यह व्याप्ति और युक्ति के विरुद्ध है, अभाव से भावरूप नहीं हो सकता. विभुअक्रिय होता है; इसलिये कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता (नं. ४). और सक्रिय मानें तो देश विना गति नहीं होगी और देश की तो उत्पत्ति मानी जाती है. (५) ईश्वर को अभिन्न निमित्तोपादान मानें तो जगत्‌को उसके एक देश में मानते है (नं. ९), और ईश्वर स्वरूप से निरवयव एक है तो तमाम ही उपादान होना चाहिये; अतः उपादान नही.

(४) जीव (वा ईश्वर) अपनी शक्ति से अपने बहुत रूप धारण कर लेता है (३४). इससे जीव (वा ईश्वर) मध्यम परिमाण ठेरता है; अणु वा विभु नहीं. द्वासपर्णा (नं १०) में जीव को भोक्ता कहा है, संसार वृक्ष को वा जीव को नित्य और जीव को अणु नहीं बताया है; इसलिये जीव मध्यम (परिच्छिन्न) जान पडता है; क्योंकि भोक्तृत्व अवस्था होती है, और अवस्था परिणाम मध्यम में ही घटता है.

(५) संतोषप्रद ऐसा वेद मंत्र प्रसिद्ध नहीं है कि जिसमें जीव को अणुरूप से अमर कहा हो (किंतु नं ३२. अन्यभाव बताता है)

(६) परंतु जबके मोक्षसे अनावृत्ति (नं. १३।१४।१५।१६) मंत्र में है तो अर्थापत्ति से जीव का नित्यत्व और वोह भी अणु परिमाण मात्र पडेगा; क्योंकि विभु में गति नही और मंत्र उसको भोक्ता और उसका पुनर्जन्म (आना जाना) बताता है (नं. १२।१०).

(७) नं. २९ मंत्र में पहेले सत् भी नहीं था असत् भी नहीं था ऐसे कहा है. इसका भाव क्या? सृष्टि कार्यरूप नहीं थी इसलिये सदाभाव और उसका मूल अव्यक्त अदृश्य था, ऐसे असद् का अभाव कहा है. यद्यपि परमाणु और आकाश तथा वैराट की उत्पत्ति में गणना करने से यह अर्थ नही बैठता; तथापि ईश्वर अपनी शक्ति सहित था, यह तो स्वीकारना ही पडेगा (नं. ७); क्योंकि इस मंत्र में जगत्पति का स्वीकार है.

(८) प्रस्तुत नं. ७ मे शक्ति का स्वीकार करें तो जगत् के मूल उपादान का और जीव का उत्तर नही मिलता प्रस्तुत (नं. (३) याद करिये).

(९) जीव की अनावृत्ति (६) के बल से जीव को अणु मानें तो सृष्टि का उच्छेद हो जाना चाहिये क्योंकि जीव जितने हैं उतने ही हैं; नवीन उत्पन्न नहीं होते, इसलिये अनावृत्ति से जब तब अंत आवेगा. जो यह मानें कि जीव अनादि से मोक्ष में जाते रहते हैं वे भी अनंत हैं और जो बंध हैं वे भी अनंत हैं इसलिये सृष्टि का अंत न होगा, यह असंभव है क्योंकि अनंतत्व का ही अभाव है. यदि कहो के आकाश ईश्वर अनंत हैं; अतः जीव भी अनंत हैं सो भी नहीं हो सकता क्योंकि जो जितने हैं उतने ही हैं अतः अनंतत्व नहीं तथाहि अनंत (बंध) — १०० (मुक्त)=अनंत के ऐसा नहीं हो सकता. और जो दोनों अनंत मानें तो दो अनंत नहीं हो सकते अतः बद्ध और मुक्त संख्या

से सांत ही ठेरेंगे. तथाहि जो हठ से अनत मानें तो भी अनंत जीवें के उपयोग वास्ते अनंत प्रकृति की अपेक्षा है परंतु मोक्ष में गये हुयें के प्रकृति की अपेक्षा नहीं, इसलिये प्रकृति का उतना अंश निकम्मा होता जायगा. इस प्रकार जब तब प्रकृति निष्फल रहती जायगी अंत में सृष्टि का उच्छेद होगा, परंतु आज तक ऐसा न हुवा, इसलिये अनावृत्ति नहीं. तथाहि अनावृत्ति पक्ष में मुक्त जीव निकम्मे रहेंगे; क्योंकि अपना आप में तो उपयोग नहीं होता और प्रकृति का संबंध (वैभवभोग) मानें तो बंध होगा. तथा सब मुक्त हुये प्रकृति के संबंध रहने से दूसरी संसार हो जायगी, इस प्रकार मुक्ति सिद्धांत न रहेगा. सारांश अनावृत्ति पक्ष में जीव, ईश्वर, प्रकृति निष्फल हो जाते हैं जो के असंभव है. (यह विषय जीव विभु मानो तो भी उपस्थित हो जाता है और जीव आदि मध्यम मान के अनावृत्ति मानो तो भी जब तब वा उसको उपादान का अंत आने से पूर्वोक्त दोष आ जाता है). इसलिये यदि मुक्तिवाद है तो मोक्ष से आवृति आवृत्ति ही माननी पडेगी (और जो अनावृत्ति है तो इसमें कुछ अन्य रहस्य होना चाहिये). यहां केवलाद्वैतपक्ष (मायावाद–उपाधिवाद) उपस्थित हो के फैसला कर देती हैं. (त. द ३१।३।२२९ से २४१ तक याने पेज ९५८ से ९९३ तक और पेज ९९४ से ९९८ तक और वक्ष्यमाणरूप उपनिषद प्रसंग में शोधक नं. ४ भी बांचो. विवर्त्तवाद के विना फेसला न होगा. त.द. पेज १००९ में कल्पित प्रसग विचारो).

(१०) जबके पूर्व के कर्मानुसार वा यथापूर्व सृष्टि (क. ९ और यजु मंत्र अनुसार १९), तो फेर पूर्व कुछ भी नही था ऐसा क्योंकर मान सकते हैं. और यदि मानें तो पहले जन्म में ही ईश्वर को अन्यायी और निर्दयी कहना पडेगा; सो असंभव है. यहां यथेच्छा यथापूर्व वा यथा जीव कर्म यथा पूर्वम्, यह दो भाव ले सकते है. कर्म की विचित्रता से उत्तर भाव में और पुनरुक्ति दोष आने से पहेले भाव में दोष हैं. अतः जेसे यथा कर्म पूर्व मे सृष्टि (फेसी भी) रची थी वैसे यथा कर्म रचता है यही भाव ठीक जान पडता है. परंतु यथा पूर्व कर्म सृष्टि उत्पत्ति, ऐसा स्पष्ट मंत्र नहीं मिलता. अर्थापत्ति से मानते हैं.

(११) ऊपर की चर्चा से कोई स्पष्ट परिणाम नहीं आता; इसलिये पूर्वापर विचार के एकंदर दृष्टि करके व्यवस्था करना चाहें तो यद्यपि अभिन्ननिमित्तोपादान, वा अभावजन्य मात्र की अपेक्षा से ईश्वर जीव और उपादान (शक्ति–प्रकृति–अव्यक्त) अनादि अनंत, इस मंतव्य द्वारा व्यवहार में उत्तम व्यवस्था हो जाती है; परंतु

वेद के शब्द मे युक्ति या तर्क का निषेध है. तथाहि वेद के अग अप्रसगवक्ता वेद के ज्ञाता नहीं है और न निश्चित भावार्थ कहने का अधिकारी है इसलिये कुछ नही कह सकता. * यदि वेद मंत्रो के अर्थ मे विद्वानो का विवाद न होता तो वेद का यह मत है ऐसा लिख सकता, अतः परीक्षक की इच्छा में आवे वेसा मानें. +

(१२) वेद सूत्र रूप है, उनके व्याख्यान कर्ता उपनिषद् है उनको बीच मे लेके कुछ कहना चाहिये. परतु उपनिषद्, वेदों को अपरा विद्या और उपनिषदो को परा विद्या (उ न. ७०।७१) मानते है. यदि उनका व्याख्यान लेवें तो भी ऊपरानुसार दो धारा चलती है (आगे वाचोगे).

वेद में विद्या (दूसरे ग्रंथो में से)

१. कपडे बनने का वर्णन.....	ऋ. मं. २ सु. ३ म. ६
२. रथ बनाने का बढई का काम. ..	„ ३।९३।१९
३. लुहारी काम...	„ ९।१।९
४. सुनारी काम.... (सोना ताना)	„ ६।३।५
५. लडाई के कवच का विधान...	„ १।१४०।१०
	„ २।३९।४
	„ ४।५३।२
६. सुन्हेरी खोद (टोप)...	„ २।३४।३
७. कंधे भुजा के कवच....	„ ४।२४।९
८. नोकदार तीर की पर ..	„ ६।१६।११
९. रथ ओर ढाल ..	„ ६।८६।२६।३०
१०. उत्तम मकान बनाने की विधि...	„ ५।४।१९
११. राजपुरुषो के हाथी की सवारी....	„ ४।४।१
१२. कृषि विद्या...	„ ४।५७।१ से ८
१३. कुवा और हल, बीज बोना ..	„ १०।१०१।३ से ७
१४. कुवा बनाने की विद्या .	„ १०।२५ ४

* प्रसिद्ध विद्वानों के वे व्याख्यान कि जिनमे विवाद नहीं है उनमे से लेके लिखा है

+ वेदांत दर्शन मे कुछ खुलासा मिलेगा.

१५. कूप में से जल निकाल खेती में देना... ,, १०।९३।१३
१६. नहरों से खेती में पानी देना.... ,, १०।९९।४
१७. सोने का सिक्का... ,, ९।२७।२
१८. जहाज चलाना... ,, १०।२९।७
१९. धन उपार्जनार्थ विदेशों में जल यात्रा.... ,, ४।५५।६
२०. व्याकरण विद्या चत्वारि.... य. अ. मं. ९१
२१. आयुर्वेद... ऋ. मं. २ सू. ७ मं. १६
,, अ. ८ अ. १ व. २३ मं. ६,७
२२. शल्य (सरज्री) विद्या टूटी टांग बदले कृत्रिम टांग लगाना... ,, १।११६।१५
२३. अंधों वास्ते कृत्रिम चक्षु.... ,, १।११६।१६
२४. अर्जुनी, अघा नक्षत्र.... ,, १०।८५।१३
नक्षत्र विद्या... ,, १०।८९
२५. ऋतु (सूर्य से)... ,, १।१६४
२६. वर्ष दिन.... ,, १।१६४।४८
२७. मध्य वर्तिमास.... ,, १।२५।८
२८. राशी मार्ग.... ,, १।२४।८
,, १।४१।४
,, १०।८५।१
,, ५।४५।७
,, १।१६४।११
२९. अयन का व्यास की तरफ सरकना.... ,, १।११०।२
पृथ्वी की कीली ,, १०।८६।४
३०. सप्तऋषि वर्णन... ,, १।२४।१०
३१. सूर्य ग्रहण... ,, ५०।४०
३२. पांच ग्रह... ,, १।१०५।१०

३३. शुक्र मन्थन ग्रह...	,, ३।३२।२ ९।३६।४
३४. वेन विनस ग्रहशतंते. कल्प की मुद्दत ४३२+७ विंदी....	१०।१२३ अथर्व का. ८ अ. १ सू. २ मं. २१
३५. ग्रह अपनी अपनी परिधि में अंतरिक्ष में घूमते हैं.	यजु. अ. ९ मं. ६
३६. पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है....	ऋ. अ. ८ अ. २ व. १ मं. १
३७ चंद्र पृथ्वी के चारों ओर घूमता है....	,, अ. ६ अ. ३ व. १२ मं. ३
३८. सब लोको साथ सूर्य का आकर्षण सब में ईश्वर का	,, अ. ६ अ. १ व. ६ मं. ३,४,५
३९. प्रकाशक और प्रकाशित लोक (ग्रह) -	अथ. कां. १४ अनु. ३ मं. १,२ य. २३ मं. ९।१०
४०. गणित विद्या का वर्णन.... अंक, जोड, गुणन, बीजगणित.	य. अ. १८ मं. २४।२५
४१. रेखागणित...	साम. छं. प्रा. १ खं. १ य. २३ मं. ६२ ऋ. अ. ८ अ. ७ व. १८ मं. ३
४२. आकाशी विमान जिहाज....	,, अ. १ अ. ८ व. ८ मं. ३।४ ,, ,, ,, ,, ९ मं. ५।१ ,, अष्ट १. अ. ३ वर्ग ४ मं. १
४३. तार विद्या का मूल...	,, अ. १ अ. ८ व. २१ मं. १

इससे आप जान सकते हैं कि वेद मानव सृष्टि के आरंभ में किसी स्वतंत्र ज्ञानवान् की तरफ से होना चाहिये.

वेद मंतव्य का भूषण आगे उपनिषद् के मंतव्य के पीछे बांचोगे.

उपरोक्त लिस्ट रामविलास शारदाकृत दयानंद जीवन चरित्र में से लिखी है. वेद के अर्थों मे ऐसा ही आशय है वा नही यह मैं नहीं कह सकता.

मायाच अविद्या स्वयमेव भवति (बापनि उपनिषद्)
माया आभासेन जीवेश्वर करोति (पंचदशीमें).

(१) देवस्यैपस्य भावो गो. कारिका १९. यह सृष्टि देव का स्वभाव है, क्योंकि तिस पूर्ण काम को कौन इच्छा है (निरीह है)

(२) अयमनादिरनन्तो नैसर्गिको अध्यासः (शा. भा. की भूमिका मे शंकर वाक्य) यह (जगत) अनादि अनत नैसर्गिक (स्वाभाविक) अध्यास है. जब के शंकरभी इस प्रपंच को अध्यासरूप कहके उसे स्वाभाविक और अनादि अनत कहते हैं तो उसके मूल माया (अविद्या वा अज्ञान) अनादि अनत कैसे न माना जाय. अर्थात् दृश्य स्वाभाविक अवभास ठेहरता है मूल को स्वरूप से वा प्रवाह से अनादि अनत मानो उभय पक्ष मे वही परिणाम आता है और तब ही मायावाद सिद्ध होता है

(३) पूर्वसिद्ध तमसोहि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापिगोचरः (सक्षेप शारीरिक सर्वज्ञ मुनिकृत) ईश्वर जीव और उनका भेद अज्ञान (माया-अविद्या) के उत्तर भावि होने से अनादि नहीं है.

अजमपिजनियोग. (*शंकराचार्य कृत कारिकाभाष्य के अंत में*) जो ब्रह्म जन्मादि विकार से रहित हुये भी अनिर्वचनीय अज्ञान के शक्तिरूप ऐश्वर्य के योग से आकाशादि कार्यरूप से जन्म के सबध को प्राप्त होता भया. ब्रह्म को जगत् का कारणपना श्रुति से प्रसिद्धहै. और वह ब्रह्म अक्रिय है तिस पर भी उक्त अज्ञान के महातम मे सक्रिय होता भया. ओर ब्रह्म एकरूप अद्वैत है तो भी अनिर्वचनीय अविद्या के वश से अनेक प्रकार के विषय रूप धर्मो को ग्रहण करने वाले अविवेकी को जीव जगत् ईश्वर इस भेद करके नाना रूप भासता है और ब्रह्मनिष्ठ के भय (सकार्य अविद्या) का नाश करता है. तिस ब्रह्म को नमस्कार है.

४. कर्ता को धन्यवाद. (सर्वस्व वेद भाग ? स १९७२ में से)

इसका कर्ता वेदानुयायी है वा क्या? ऐसा हम नही कह सकते तथापि उसका लेख इस प्रसग में टांकने के योग्य जान पडा—

आर्य अर्थात् हिंदू जाति को योग्य है कि आद्य वेद ग्रथो को ईश्वरीय पुस्तक, पूज्यों की बनाई हुई पुस्तक, संस्कृत साहित्य का धर्म पुस्तक, वा अपना प्राचीन धर्म

पुस्तक मान के उसका पठन पाठन किया करें. (बेशक आर्य नेशन और आर्य धर्म की कायमी वास्ते यह उत्तम उपदेश है).

वेद=ज्ञान. वा जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन ४ की प्राप्ति के उपाय जाने जायँ वा इष्टप्राप्ति तथा अनिष्ट की निवृत्ति के अलौकिक उपाय को जो ग्रंथ जानता है सो वेद.

वेद के सब ग्रंथ एक काल में पैदा हुये या जुदा जुदा काल में? तहां जो मंत्र को ही ज्ञानरूप मानें तो इष्टविरुद्ध दोष. जो शब्दरूप मानें तो ईश्वरदत्त स्वतः स्फुर्ति वा बुद्धि पूर्वक रचना? उभय पक्ष में वेद मंत्रों की क्रमशः उत्पत्ति माननी होगी; क्योंकि उसमें काल भेद की आवश्यकता है.

ऋचा=जिस मंत्र से मंत्रार्थ की स्तुति की जाय सो. सूक्त=जिसमें स्पष्ट की जाय. खिलकांड=परिशिष्ट. आश्वानें=अच्छा बडा घोडा एक दिन में जितने कोष जा सके उन कोषों का नाम

जिस पर स्वामी दयानंदजी ने भाष्य किया है वोह वेद की माध्यान्दिनी शाखा है [इसे शुक्ल यजुर्वेद कहते हैं]

वालखिल्य सूक्त खिलिक, महानाम्नि सूक्त खिलिक. एवं ऋग्वेद में ११ सूक्त पीछे से मिलाये गये हैं.

ऋग्वेद के मंत्र परिशिष्ट सहित १०५८०। छंद गणना से। १०३०२। शिव शंकर छंद गणना से १०१३२ यथा गायत्रित्रिष्टुप २४५१० स्वामी दयानंद १०५८९. जगन्नाथ १०४६२. चरणव्यूह १०४७२ सत्यव्रत १०४४२. वर्तमान सख्या १०४४० ऋग्वेद में ४०० मंत्रों की पुनरुक्ति है *

एतरेय में स्वर्ग १००० अश्वनी कोष ऊंचा लिखा है.

गोपथ ब्राह्मण में सर्पवेद, पिशाच, असुर, इतिहास और पुराण यह ५ वेद दूसरे लिखे हैं (अथर्ववेद के उपवेद हैं)

यजुर्वेद के चर्क ऋषि ने विभाग किये, इसलिये चर्क संहिता कहाती है. शुक्ल यजुर्वेद को वाजसनेय संहिता कहते हैं. कृष्ण यजुर्वेद को तैतिरी संहिता कहते हैं इससे याज्ञवल्क्य ने नवीन वचन भी दाखिल किये हैं. यजु के मंत्र १०००, दयानंद १९७५. कल्पतरु में १९७५ पं. सत्यामृत १४०० और शिवशंकर ९८७ कहता है

* ताकीद और अन्य स दृष्टि से पुनरुक्ति होगी.

१. आध्यात्मिक.
२. आधिदैविक.
३. आधिभौतिक.

इतने लिखने का आशय यह है कि श्रुति (वेद वा उपनिषद्) के अर्थ वा उसका विवेचन जब करना हो तब प्रसंग और कांड और उक्त विभागों को देख के करे. और वेद के ६ अंग अनुसार हो.

शब्द संगति के ग्रहण में ८ हेतु होते हैं. १. व्याकरण. २. उपमान. ३. कोश. ४. आप्तवाक्य. ५. वृद्ध व्यवहार. ६. वाक्य शेष. ७. विवरण. ८. सिद्ध पद की सन्निधि

वेदार्थ में ३ प्रकार की लक्षणा होती हैं याने भावार्थ लेने के तीन प्रकार हैं. १. जहति (शब्दार्थ को छोड के तत्संबंधि का ग्रहण). २. अजहति (शब्दार्थ को न छोड के तत्संबंधि अन्य का भी ग्रहण). ३. शब्दार्थ का अमुक भाग छोडना और अमुक लेना. इसे जहति अजहति कहते हैं. (आगे न्याय प्रसंग में बांचोगे).

जो केवल वेदानुयायी हैं (अग्निहोत्री) वेद से इतर को नहीं मानते उनकी श्रोत संप्रदाय कहाती है. और जो वेद से इतर स्मृति, शास्त्र, पुराणों को भी स्वीकारते हैं उनकी स्मार्त संप्रदाय कहाती है.

वेद की हीनोपमा और महत्व.

वर्तमान में नाना धर्म मत पंथ होने, और परिस्थिति अनुकूल न होने से आद्यशिक्षक सनातन वेद की उपमा-महत्व के बदले हीनोपमा भी हो रही है महत्व तो वेद ज्ञाताओं में प्रसिद्ध है.

हीनोपमा होने के निमित्त १. सृष्टि नियम विरुद्ध जुदा जुदा प्रकार के अर्थ करने वाले (महीधर, सायनादि के भाष्य, पुराण और संप्रदाय ग्रंथ बांचो) हैं २. (क) पुरुष अपने इष्ट-साध्य के अनुकूल जो हो सो श्रुति देता है और दूसरी श्रुतियों का तदनुकूल अर्थ कर देता है तथा पर के किये हुये का निषेध करता है (ग) पक्षकार उस अर्थ से दूसरी प्रकार का अर्थ करके अपनी इष्ट बोधक श्रुति बताके दूसरी श्रुतियों का उस अनुसार अर्थ करता है और श्रुति के उपक्रमादि षडलिंगों को अपने मंतव्य के अनुकूल दरसाके पर के अर्थ का निषेध करता है. इस प्रकार उभय पक्षकार अंग और प्रसंग-संगति को लेके जुदा जुदा अर्थ करते हैं

(ऐसा देख रहे हो). दूसरों की दृष्टि में इसका भाव क्या होता है तहां (क) या तो श्रुति व्यभिचारनी (ख) वा तो पूर्वोत्तर विरुद्ध बोधनी (ग) वा तो अपूर्ण (घ) वा तो युक्ति परीक्षा में नापास. यह प्रत्येक (चारों) हेतु वेद प्रति श्रद्धा–भावना के बाधक हो जाते हैं; हीनउपमा के निमित्त हैं. (ङ) या तो श्रुति के सर्वहितकारी–उपयोगी, सृष्टि नियमानुकूल कोई दूसरे अर्थ होंगे, इसलिये यथार्थ अर्थ होने तक वेद से उपेक्षा. यह हेतु प्रवृत्ति का प्रतिबंधक है ३. परोक्ष विषयों पर ही विवाद चलाते हैं जिसका मानने न मानने का आधार श्रद्धा विश्वास है, यह हेतु विवाद और अप्रवृत्ति में सहायक होता है. ४. कॉलेजों में जिस अर्थ वाले वेदों के मंत्र पढाये जाते हैं उन अर्थों का कर्ता और उन अर्थों की प्रवृत्ति हीनउपमा के निमित्त हैं क्योंकि वे अर्थ युक्ति सृष्टि नियम को नहीं सहारते. मंत्रों में स्वरों के लिखने और उनके बोलने का रिवाज न रहने से, इसलिये सामासिक पदों में अर्थ की गडबड हो जाने से वेद के अंगों का प्रचार न होने से और परिस्थिति अनुकूल न होने से वेद का महत्त्व प्रदर्शित नही हो सकता.

इसलिये दूसरों पर अनुचित कटाक्ष न करके आर्य राजा प्रजा को चाहिये कि वेद स्वतः प्रमाणरूप मानते आये हैं, आर्य प्रजा का जीवन है ऐसा मानके वेद के अंग उपांग की उत्पत्ति उसी से हुई है ऐसा जान के उनको सहायक बनाके बुद्धिमान्–जितेंद्रिय–निर्पक्ष–विद्वान् मंडल द्वारा वेद के तीनों प्रकार (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) के एक समत याने सर्वमान्य, हितकारी सृष्टिनियम अनुकूल तथा उपयोगी अर्थ कराके उसका सारसार हिंद की प्रत्येक भाषा में तथा परखंडी इंग्रेजी, अरबी, फारसी वगेरे भाषा मे × प्रचार करे ताकि उसका सत्य और हितबोधक अर्थ सब (परधर्मी भी) ग्रहण करने को उद्यत हो जायंगे. ऐसा होने से वेद की सचाई, हितैषित्व, तथा उसकी महत महिमा आप ही प्रकाशमान हो के प्रवर्त्त हो जायगी और स्वतः प्रमाण ‡ माना जायगा; परंतु वेद ऐसा–वेद ऐसा, इतने कथन मात्र से कुछ नहीं हो सकता. प्रत्युत यह प्रशंसा हजो या कपोलकल्पना में मान ली जाती है. अतः जो उसकी सचाई और सर्वमान्य सर्वहितकर उपयोग है सो प्रसिद्ध करना चाहिये.

× बायबल की प्रवृत्ति का कारण उसका अनेक भाषा में तर्जुमा होना है.

‡ किस्से कहानी वाले ग्रंथ ईश्वरीय पुस्तक और स्वतः प्रमाणरूप माने जाते हैं, तो क्या सर्वहितबोधक आप्तउपदेशक वेद मय स्वतः प्रमाणरूप न माना जायगा ? मानना ही होगा.

जहां तक उपर कहे अनुसार एक संमत अर्थ न हो वहां तक वेद के यथावत् अर्थ ज्ञात नहीं है, इतना कहना ही वस है. नहीं के जेसा वर्तमान मे निंदा सशय के उत्पादक रूप लेते हैं, ऐसा करना; क्योकि वर्तमान में जेसा रूप वा प्रचार है उससे तो प्रतिपक्षीओं को वेद पर आक्षेप करने का अवसर मिला और मिलेगा. अर्थात् हम ही वेद की हीनउपमा कराने के हेतु बनते हैं.

आर्य प्रजा को यह बात भूल जाना नहीं चाहिये अर्थात् (१) आर्य प्रजा दूसरी प्रजा में (परखंडो में) जिस सबब से प्रशसनीय थी–उत्तम शिरोमणि मनाई थी (२) और जिस हेतु से उत्तम आचार विचार और ऊंचे ज्ञान में प्रवृत्ति करती थी और अब भी वेसी कुछ है (३) और जिस कारण से सब से पुरानी आर्य नेशन *अभी तक जीवित है. वोह कारण आद्यशिक्षक वेद और उस पर श्रद्धा विश्वास और* उसके उपदेशानुसार वर्तन है. साराश वेद का ही प्रताप है. और अब हम उससे दूर पडते जाते हैं, उसकी अपने पूर्वजो की महिमा को भूलने लगे हैं, वेद की हीनउपमा दिखाने और आर्य नेशन की जड उखडने के निमित्त होते जाते हैं, यह सब हमारे जेसे सपूतो की महिमा है!!

रोटी के समान हमको याद में रखना चाहिये कि आर्य प्रजा का जागता जीवन वेद है और आर्य धर्म का जीवन वेदोक्त ईश्वर और पुनर्जन्म की भावना है. जो वेद सर्वथा नष्ट हो जाता तो इतिहास मे आर्य नेशन का नाम भी न रहता. ग्रीस और मिस्र के धर्म की जैसी दशा हो जाती.

इस जमाने में यदि वेद की प्रवृत्ति मुश्किल है तो भी उसकी निंदा होने के हेतु न होना चाहिये (त. द. ४१९ विचारो) और यदि उसकी सचाई के वाक्य प्रकट करने हो तो पूर्व कहे हुये विशेषणो से सुशोभित होने चाहियें; क्योकि वेसे वोध के वाक्य सबको सत्कारणीय होते हैं. ऐसा अर्थ वोध हुये विना उसको बीच मे झुकाना उसकी हीनउपमा कराना है, ऐसा मैं मानता हूं. (त. द. पेज ४६९ देखो).

यदि ब्रह्मनिष्ठ (ब्रह्मवित) श्रोत्रिय (वेदज्ञाता) आचार्य–गुरु माना जाय, जो ऐसी प्राचीन उत्तम पद्धति रहती तो आर्य धर्म की पडती न होती, नाना धर्म मतपथ न होते. अब भी यदि सब संप्रदाय वाले इस सूत्र को मान लें तो आर्य में ही आर्य–वेद धर्म की उन्नति होने लग जाय.

जिसने वेद उपनिषदो को सांगोपांग पढा होगा वोह नास्तिक नहीं होगा,

ईश्वर और पुनर्जन्म को अवश्य मानेगा. तमाम मानवमंडल को अपना अंग मान के उसके हित में प्रवृत्त होगा, ऐसा निश्चय जानना चाहिये.

हिंदू प्रजा यद्यपि वेद की छाया में है तथापि उपरोक्त कारणोंवश जुदा जुदा और अनेक विरोधी भावना में फंस के अपनी जाति और अपने धर्म के पैर पर कुहाडा मार रही है, यदि वह इस दोषका निवारण करना चाहे और एक धर्म की भावना में जीवन करना चाहे तो एक मार्ग है और वोह ओ३म् की उपासना और ओंकार की मान्यता है, इसका कुछ बयान (त.द. अ. ४) के परिशिष्ट विषे नवधाभक्ति में लिखा है. जो उस रीति की प्रवृत्ति करी और कराई जावे तो वेद धर्म की भावना का प्रचार हो तथा नाना धर्मभावना का मूल उखड जाय तथा वेद की सुगमता से प्रवृत्ति हो सके.

कहें आत्मा अमर, और मरने मे डरना; सार्वभौम कहें वेद, पुनः संकोची करना.
संप सुखद यूं मान, द्वेष हृदय में भरना; आर्य अनार्य भेद गीत, हृदय में धरना.
(इसका विवेचन अन्यत्र)

(शं) वेद के संबंध में उसकी अपूर्व महिमा कहते हो, और तुम्हारे ग्रथ में उसका प्रमाण नहीं लेते, इसका अर्थ क्या? (उ.) बंधुश्री! मैं ऐसा मानता हूं कि वेद विरुद्ध मेरा मंतव्य न होगा, तथापि उसको बीच में न लेने के कई कारण हैं, सो ग्रंथ की प्रस्तावना में जनाये हैं; उनमें से एक पाश्चातरोशनी और परिस्थिति है, अर्थात् उसको बीच में न लेके भी वर्तमान शैली से उसके अनुसार सिद्ध करना. (यह बात आपके ध्यान में आना कठिन है), ब्रह्म सिद्धांत विचारो.

अविरोध.

वेद की श्रुति द्वारा उपर जो नानात्व, विरोधता वा शंका दरसाई है वैसा वेद में हो, ऐसा नहीं जानना चाहिये, किंतु वेद मूल उपदेशक सूत्ररूप हैं, उसका उपदेश यथा अधिकार व्यवस्था करने वाला है—हितकारक है अर्थात् उपर जो मंत्र द्वैतबोधक हैं जिन पर हद्दा की है वे कर्मकांड और उपासनाकांड में लगते हैं और जो अद्वैतबोधक हैं वे ज्ञानकांड में लगते हैं, इसी प्रकार उसके आध्यात्मिकादि ३ प्रकार के अर्थ यथा प्रसंग लिये जावें तो न विरोध आता है और न शंका रहती है. और ठीक ठीक व्यवस्था हो जाती है. व्यवस्था करने समय द्वैतवादि, अद्वैतवादि, कर्मवादि, उपासनावादि वा ज्ञानवादि की एकदेशी दृष्टि न लेनी चाहिये. श्रीगोडपादाचार्य की कारिका और शंकरश्री का शारीरिक भाष्य और रामानुजश्री का श्रीभाष्य

विचारो, विरोध का निरास हो सकेगा. वक्ष्यमाण वेदांत दर्शन तथा केवलाद्वैत का प्रसंग विचारने से भी अविरोध समझ में आ सकेगा, — कारण कि शोधक को अध्यारोप अपवाद की थीयरी–पद्धति गम्य हो जायगी (त. द. अ. ५ और ब्र. सू. में ऐसा ही प्रकार है). *

मूलदर्शन (वेद)

वेद मंत्रों का अवतरण (वे. क)

(वे. १) ईशावास्यं (य. † अ. ४०।१) भावार्थ — ईश्वर सिद्धि. ईश्वर जगत का व्याप्य व्यापक भाव संबंध. निष्काम भोग का बोधक. (२) कुर्वन्नेव कर्माणि (य. ४०।२) निष्काम कर्म बोधक. (३) सपर्यगाच्छुक्रं (य. ४०।८) ईश्वर अकाय, शुद्ध, पापावद्ध, सर्वज्ञ, शक्तिमान है. (४) हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे (ऋ. अ. ८, अ. ७ व. ३ मं. १) सृष्टि के पूर्व एक ईश्वर ही वर्तमान था वोह इस जगत का स्वामी है वोही सब जगत् को रच के धारण कर रहा है वोही उपास्य है. (५) तम आसीत् तमसा गूढमग्रे (ऋ. अ. ८।७ व. १७ मं. ३) सृष्टि के पूर्व तम था. (६) ऋतं च सत्यं + + + सूर्या चंद्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् (ऋ. अ. ८ अ. ८ व. ४८ मं. १, २, ३). धाता परमेश्वर ने पूर्व समान सूर्य चंद्रादि लोक रचे. रात, दिन, वेद, प्रकृति, पृथ्वी, समुद्रादि रचे यह मंत्र सृष्टि उत्पत्ति स्थिति और लय का सूचक है. + (७) देवापितरो (अथर्व कां. ११ प्र. २४ अनु ४ मं २७) देव, पितृ, मनुष्य, गंधर्व, अपसरा, सूर्यादि प्रकाश वाले लोक और प्रकाशशून्य लोक

---

* उपर जो शोधक (द्वैतवादि वा अद्वैतवादि) की शंकायें हैं उनका सीधा सरल समाधान यह है कि ब्रह्म के स्वरूप में अन्य का अप्रवेश है, इसलिये ब्रह्म केवलाद्वैत है. द्रश्य की व्यवस्था वास्ते सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति लय का और जीवादिका अध्यारोप किया जाता है, वोह व्यवहार और अज्ञान काल में ठीक ही है अर्थात वेदोक्त कर्मकांड उपासनाकांड में उसका निषेध नहीं है (यथा स्वप्न सृष्टि काल में सब सत्य है) और आत्मज्ञान हुये (आत्मा-ब्रह्म स्वप्रकाश हुये) पीछे परमार्थतः वोह सब कल्पित-अज्ञानमात्र प्रतीतमात्र था (जैसे स्वप्न के सिंह दर्शन से जाग्रत होने पीछे स्वप्न) ऐसा अनुभव हो जाता है, यह उसका अपवाद है. *इस रीति से सब प्रकार की शंकाओं का समाधान हो जाता है. वेद वा उपनिषदों के लेख में* कोई विरोध नहीं आता और उसमें संशय विपरीत भावना वा असंभावना की आपत्ति नहीं होती है द्वैत अद्वैत का अधिकार भावना से भेद है वस्तुतः उनकी एकवाक्यता होती है.

† यथेच्छा यथापूर्वं, किंवा यथाकर्म यथापूर्वं। सूर्यादि सृष्टि रची यह २ भाव है पहेला भाव सिद्ध नहीं होता. दूसरे भाव में ईश्वर सापेक्ष ठेरता है.

+ ऋग्वेद=ऋ यजुर्वेद=य. अथर्ववेद=अथर्व. यहां यह संकेत है

ईश्वर की शक्ति (माया) सामर्थ से पेदा हुये. अमैथुनी सृष्टि बोधक. (८) सहस्त्रशीर्षा (पुरुष सूक्त) इसमें वेद, सूर्य, चंद्र, विराट, बिजली, अश्व, गौ, बकरी, पृथ्वी, इंद्रिय, सप्तपरिधि, ब्राह्मणादि ४ वर्ण, पृथ्वी आदि तत्त्व, ईश्वर की शक्ति से रचे गये. ऐसा वर्णन है. (९) पादोऽस्य विश्वा (य. पुरुष सूक्त) तमाम जगत् ईश्वर के एक भाग में है, वोह उससे ३ गुणा ज्यादे याने अधिक बडा है. मोक्ष सुख उसी ज्ञान प्रकाश में है. अभिन्ननिमित्तोपादानवाद का निषेधक. (१०) द्वा सुपर्णा सयुजा (ऋ. अ. २ अ. ३ वर्ग ७) दो पक्षी साथ मिले हुये सखा जेसे हैं, और अपने समान वृक्ष (सृष्टि) के सब ओर (तरफ) से सग हैं, उन दोनों में से एक तो फल को स्वादु मान के खाता है और दूसरा न खाता हुवा साक्षीमात्र है. इस मंत्र में जीव कर्ता भोक्ता है और ईश्वर कर्ता भोक्ता नहीं तथा ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों स्वरूप से भिन्न २ हैं. ऐसा बोध है. (११) नमः शंभवाय (य. १६।४) ब्रह्म आनंद स्वरूप है. (१२) कस्यनूनं कतमस्या मृतानां +++ पुनर्दात पितरंच दृशेयं मातरंच. (उ.) अग्नेर्वयं (ऋ. मं. १ सू. २४ मं. १,२) पुनर्जन्म सूचक और मुक्ति से आवृत्तिबोधक. इस मंत्र में अमृतानां=मुक्तों में वा देवों में. ऐसे दो अर्थ होते हैं. मुक्तों में, ऐसा अर्थ करें तो मुक्ति से आवृत्ति याने जन्म प्राप्ति स्पष्ट होती है. जो देवों में ऐसा अर्थ करें तो आवृत्ति सिद्ध नहीं होती. (१३) तद्विष्णोः परमंपदं सदा पश्यंति सूरयः (ऋ. १।२।७।९) मुक्ति से अनावृत्ति बोधक. (१४) यज्ञे न यज्ञमय जन्त (य. पुरुष सूक्त) मुक्ति से अनावृत्ति बोधक. (१५) यत्र देवा अमृतं (य. ३२।१०) मुक्ति से अनावृत्ति बोधक. (१६) द्वितीया यां सृतौ (य. १९।४७). देवयान में जाने वाले को पुनर्जन्म नहीं होता. अनावृत्ति बोधक. (१७) युक्तेन मनसावयं (य. ११।२) कर्म उपासना का बोधक (१८) प्रातः प्रातः सायं सायं (अथर्व कां. १९ अ. ७ सू. ५५ मं. ३,४) नित्य संध्या हवन विधान का सूचक. (१९) ऋचो अक्षरे (ऋ. अ. २ अ. ३ व. २१) वेद के ज्ञान विज्ञान द्वारा फल है वेद के पाठमात्र से फल नहीं, ऐसा भाव है. (२०) आत्मनाऽऽत्मानमभि सं विवेश (य. ३२।११) सायुज्य मुक्ति बोधक. (२१) अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं (ऋ. मं. १० सू. ४८ मं. १९१) में ईश्वर सब के पूर्व विद्यमान था सब जगत का पति हूं. (२२) अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं दैवभिः (ऋ. ८।७।११।१५) मे आप ही विद्वान् विचारशील को यह बात कहता हूं——जिसको मैं चाहता हूं उस उसको उग्र और ब्राह्मण (ज्ञानवान) और ऋषि और वैज्ञानिक, करता हूं. (२३)

विजानी ह्यार्यान्यच दस्यवो. (ऋ. मं. १ सू. ५१ मं. ८) धार्मिक आप्त आर्य. उससे उलटे दस्यु. दुष्ट. (२५) इति ब्रह्मवादिनो वदंति. (अथर्व कं. १९ अनु १ मं. ८) इतिसुश्रमधीराणां. यजु. अ. ४० मं. १३. ऋचं साम यजामहे. सा. प्र. ४ अ. ९ प्र. २ द. ९ मं. ९।१०. प्रश्न के उत्तर में ऋग. साम यजु. के वाक्यों में कहे अनुसार यज्ञ कर्म करना. आभा कण्वा आहुपत इत्यादि. ऋ. म. १ सू. १४. मं. २. कण्ववंश में उत्पन्न हुये आपका आवाहन करता हूं. तस्मात–ऋचः सामानि. यजु. अ. ३१।३। ऋगादि वेद और अनेक विद्या ईश्वर से उत्पन्न हुये. इतिहास अन्य के वाक्य (२६) यथे मां वाच्यं कल्याणि (य. २६।२) जिस प्रकार में कल्याण की निमित्त यह वेद (चारों वेद) वाणि सब तरफ से उपदेश करता हूं जनों को–ब्राह्मण क्षत्रिओं को, शुद्र को, वैश्य को, अपने सबंधिओं (स्वय) को, सुलक्षणा अत्यज को (वेसे तुम भी करो). ×

वेद मंत्र (ख).

(२६) * न द्वितीयो न तृतीयो एकएव. (अथर्व. कां. १३ अ. ४ मं. १६) ईश्वर चेतन एक ही है. (२७) तदंतरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्य बाह्यतः (य. ४०।५) सर्वत्र ब्रह्मव्यापक है. (२८) अनेजदेकं. तन्नैजति (य. ४०।४।५) ईश्वरक्रियव्यापक. (ईश चलता, न चलता ऐसा कहा है. तहां मुख्य भाव अक्रिय में है). (२९) ना सदा सीत्रो सदासीत तदानीतासीद् रजोनोव्योमा परोयत् किमावरीवः गहनं गंभीरम् ॥१॥ तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास ॥२॥ (ऋ. अ. ८ अ. ७ व. १७) पूर्व में असत, सत, परमाणु, आकाश और वेराट नहीं था. तब मृत्यु, रात और दिन न था, वोह (ब्रह्म) एक ही था, उससे अन्य कुछ भी नहीं था. (३०) ततोविराड जायत (य. पुरुष सुक्त) अभिन्ननिमित्तोपादान बोधक. (३१।३२) पुनर्मनः पुनरायुः (य. ४।१५) पुनर्मैत्विंद्रियं पुनरात्मा (अथर्व कांड ७ अनु. ६ व. ६७ मं. १) जब जब जन्म लेवें तब तब शुद्ध मन, पूर्ण आयु, प्राण, आत्मा उत्तम चक्षु श्रोत्र प्राप्त हों ॥१५॥ पुनर्जन्म में ११ इंद्रिय (मनादि ११) और आत्मा प्राप्त हो ॥१॥ इन मंत्रों से मनादि की उत्पत्ति (जन्म प्रति उत्पत्ति) और विशिष्टात्मा का बोध पाया जाता है. मुक्ति में मनादि न होना जान पडता है.

× २१ से २४ तक का तथार्थ विचारो

* यह और वक्ष्यमाण १, २, वगेरे ब्रह्मसिद्धांत में जिस क्रम से लिखे हैं, वे अंक हैं तद्वत क. च. वगेर.

(३३) वेदाहमेतं नान्यपंथा (य. पुरुष सूक्त) पुरुष (ब्रह्म) के ज्ञान से ही मोक्ष होना और मोक्ष से अनावृत्तिका बोधक है. (३४) इंद्रो मायाभिः पुरुरूपईयते (ऋ. अ. ४ अ. ७. व. ३३ मं. १८) जीव (वा ब्रह्म वा आत्मा) अपनी माया (ज्ञान शक्ति) से बहुत रूप धारण कर लेता है. इस मंत्र से जीव (ब्रह्म, आत्मा) मध्यम परिणामी ठेरता है. वा तो शंकराचार्य प्रणित विवर्त्तवाद (नाम रूप रज्जु सर्पवत कल्पित ठेरता है. + (३५) युंजानः प्रथमं (य. ११।२,३,४) जीव वास्ते साधन सूचक. (३६) नैनमुर्ध्वं नतस्य प्रतिमाऽस्ति (य ३२।२) वोह पकडा नहीं जाता क्योंकि उसके प्रतिमा (आकार) नहीं है, जिसका यश बडा प्रसिद्ध है. इस मंत्र से ईश्वर की मूर्ति तथा परिच्छिन्नरूप अवतार धरने का निषेध पाया जाता है. (३७) पुरुष एवेदंसर्वं यद्भतं यच्च भाव्यम् (य. पुरुषसुक्त) जो जो हुवा और होगा सो सब पुरुषरूप ही है. इस मंत्र से अभिन्ननिमित्तोपादान कारणवाद (ब्रह्मवाद) जान पडता है. यदि ऐसे सब मंत्रों में लक्षणा करें अर्थात् नामरूप का छोड के यह सब ब्रह्म ऐसा भावार्थ लेवें तो नाम रूप माया के कार्य मानने पडेंगे, क्योंकि प्रसिद्ध हैं अर्थात् मायावाद (अध्यासवाद विवर्त्तवाद, विलक्षणवाद) का स्वीकार हो जायगा.

नोट:—

इस मंत्र से केवलाद्वैत का बोध होता है; क्योंकि पूर्व मे ब्रह्म से अन्य कुछ भी नहीं था (छ. ५४ भी देखो). और फेर आप ही दूसरी जगह श्रुति ही द्वैत कहती है (नं. १।७।१०।१२।२४ और ३०।१३) और जगत् का ब्रह्मरूप कहती है (नं. ३७ घ. ६९।६१) और जगत ब्रह्म की शक्ति से हुवा (कं. ७ घ. ६२।६३) इसकी व्यवस्था करने वास्ते अनेक अध्यारोप किये गये हैं—

जब कि पूर्व में कुछ भी नहीं था और दृश्य तो है उसके उपादान का निषेध नहीं हो सकता, तो यही कहना पडता है (१) सर्वशक्तिमान ब्रह्म ने अभाव से भावरूप जगत् जीव बनाये होगे, परंतु श्रुति असत से सद्रूप होने का निषेध करती है और अभाव भाव का विरोध होने से अभाव से भावरूप की उत्पत्ति असंभव है, कोई व्याप्ति नही मिलती. (२) अतः ब्रह्म ही जगत् जीव रूप हुवा होगा याने अविकृत परिणामी हुवा होगा, परंतु ब्रह्म निरवयव–अखंड–अक्रिय–विभु चेतन है, उसका परिणाम नहीं हो सकता. वोह सम चेतन विरुद्ध धर्माश्रय नहीं है, जगत्

+ इद=विद्युत, राजा प्रदेवता का राज्य, जीव ईश्वर.

उससे विधर्म है. और क. ९ के विरुद्ध है क्योंकि जगत् उसके अमुक देश में है. परिणाम तो सब भाग का होता है इसलिये जगत् ब्रह्मरूप नहीं मान सकते (विशेष दोष उपनिषद् प्रसंग अंक ३ में बांचोगे. (द्वैतवाद) ब्रह्म अपनी शक्ति सहित पूर्व में था शक्ति (प्रकृति) जगत का उपादान है. (उ.) जेसे आप शक्ति को मानते हो (अग्निदाह शक्तिवत) उस शक्ति में शक्तिमानके बिदून गति नही हो सकती और वेसी शक्ति का परिणाम भी नहीं होता. और यदि परमाणु पुंज के वा सत्व रज तमात्मक को शक्ति मानते हो तो उसका श्रुति में निषेध है. तथा पूर्व में जीव का अस्तित्व न होने से जीव के वास्ते क्या कहोगे? जो जीव शक्ति का परिणाम (वा अंश) तो जड होने से भोक्ता न होगा और जो ब्रह्म का परिणाम (वा अंश) तो ब्रह्मविकारी सक्रिय भोक्ता-दुःखी होगा; और जो उभय विशिष्ट का परिणाम मानें तो उभय दोष आवेंगे. इस प्रकार जीव और जगत् की कोई व्यवस्था नहीं होती. (द्वैतवादि) उपनिषदों में जीव नहीं मरता, एवं अनादि अनंत कहा है और 'अजामेका' श्रुति में माया को अनादि अनंत कहा है. (उ.) यहां वेद प्रसंग है. उपनिषद् का बयान आगे होगा. वहां कहना. (घ. ६० देखो)

अब जो नाम रूपात्मक जगत् को भ्रम-अजात (अध्यासरूप) मानें तो ब्रह्म को अनादि अज्ञान, अनादि से वस्तु के सस्कार कहना नहीं बनता, जो ऐसा मानें तो विकारी ठेहरता है, तथा जगत और ब्रह्म का सादृश्य नहीं है, इसलिये जगत् को अध्यास-भ्रमरूप कहना नही बनता; क्योंकि अज्ञानादि सामग्री के बिना भ्रम की अनुत्पत्ति है. (विशेष त. द. अ. ३।४०१ याद करो) जो अज्ञानादि बिना प्रतीति मानें तो अनादि नैसर्गिक अवभास ठेरेगा; परंतु उसे जो ब्रह्म से इतर समसत्ता वाली दूसरी वस्तु मानें तो श्रुति का विरोध आवेगा; इसलिये उसकी शक्ति (माया-उपाधि से) नामरूप जगत भासता है (घ. ६२।६३ देखो) याने माया के नाम रूप परिणाम चेतन के विवर्त्त हैं और चेतन विवर्त्त उपादान है (तम वा नभनीलमा वा स्वप्नसृष्टिवत्). वोह माया क्या और केसी? सद्ब्रह्म से विलक्षण अनिर्वचनीय. उस पूर्व पूर्व संस्कारी के परिणामों का अनादि से स्वाभाविक अवभास है. (तम, नीलता और स्वप्नवत्). इस अवभास का अनादि अनंत प्रवाह है. जो शक्ति को ब्रह्म जेसी समसत्ता वाली मानें तो ब्रह्म चिदजडात्मक ठेरता है और स्वरूप अप्रवेश (त. द. २।३८२) बाधक होता है. अतः मायामात्र द्वैत है, इतना कह के चुप होना पडता है.

सारांश या तो अद्वैतबोधक श्रुतियों का अद्वैत में भाव न होगा. वा तो कुछ

अन्य अर्थ होगा. नही तो शंकर प्रणित विवर्त्तवाद (विलक्षणवाद) मानना होगा. उसके विना श्रुतियो का पूर्वा पर विरोध निवृत्त नही हो सक्ता. (विशेष वेदांत दर्शन प्रसंग मे).

विभूषक.

श्रुति याने वेद और उपनिषदो के मंत्रो में अर्थ विषे मत भेद है, बडे बडे प्रसिद्ध भाष्यकारोके अर्थ देख के इतना कह सकते है कि कितनेक का अर्थ सृष्टि नियम के अनुकूल नहीं, कितनेक के अर्थ विरोधि मत के बोधक है. यथा यज्ञार्थ वलिदान (पशुवध) विधि वा निषेध. सूर्यादि चेतन देव जड, ब्रह्म अभिन्न निमित्तोपादान वा ब्रह्म-निमित्त और प्रकृति उपादान, उसमें देव मनुष्य के इतिहास, इतिहास नहीं. इ. इ. मत भेद वाले अर्थ है, मेरी शक्ति इतनी नहीं है कि उनके अर्थो में से कोनसा अर्थ ठीक है, कोनसा अठीक है वा इनसे अन्य हैं अर्थात् वेद वक्ता का आशय क्या है, ऐसा निर्णय कर सकूं, इसलिये कुछ निश्चित नहीं कह सकता. किंतु प्रचलित अर्थो को मान के सारग्राही दृष्टि से हम अपना आशय जनाते है.

हमारे विचार में वेद उपनिषद का निम्नलिखित तीनो मे से हर कोई प्रकार का मतव्य हो सो ठीक है. (यहा लौकिक व्यवहार का प्रसंग नहीं है किंतु ईश्वरादि का प्रसंग है. (यह बात ध्यान में रहे).

वेद उपनिषद के अर्थो से ३ मंतव्य निकल सकते है (१) द्वैतवाद-याने जीव, ईश्वर और प्रकृति अनादि अनत (२) ब्रह्मवाद-याने ब्रह्म ही जीव जगत्‌रूप हुवा है—अभिन्ननिमित्तोपादान कारणवाद (३) मायावाद (यह वाद श्रुति में नहीं जान पडता, किंतु श्रुति की अर्थरुचि से निकाला गया हो ऐसा जान पडता है) याने विवर्त्तवाद-जीव जगत् माया कल्पित है (४) चौथा अभाववाद है याने ब्रह्म ने अभावगर्भ से भावरूप सृष्टि की. इस मतव्य का उभय ग्रंथ मे और भाष्यकारो के भाष्य में भी निषेध है, इसलिये उसकी यहा उपेक्षा है. अतः उक्त तीनो पक्षो के भूषण-लाभ दिखाते हैं—

(१) त्रिवादपक्ष में जीव जवाबदार रहता है, समष्टि में धर्म अर्थ काम और मोक्ष की उत्तम व्यवस्था होती है, पुरुषार्थ की उन्नति होती है. जनमंडल में धार्मिक तत्त्वो की प्रवृत्ति होती है, यह सिद्धांत कर्म उपासना प्राधान्य होने मे चित्तशुद्धि के लिये उत्तम बहिरंग साधन है. इत्यादि इसमें लाभ है (त. द. अ. १ गत विभूषक मत

अंक १२ और अ. ४ गत त्रिवाद देखो). जो पूर्वोक्त पंचदशांग सहित पाला जाय तो व्यष्टि समष्टि को लाभकारी है, इसलिये इसको निषेध में प्रवृत्ति करने की आवश्यकता नहीं है.

(२) यह सब ब्रह्म ही है. ऐसा आशय हो तो यह भी व्यष्टि के लिये उत्तम सिद्धांत है, सब के लिये नहीं क्योंकि ऐसी निष्ठा वाला (सर्व वासुदेव ऐसी भावना वाला) और उसके अनुसार वर्तने वाला किरोडों में से कोई एक निकल सकता है. जिसकी ऐसी निष्ठा हो उसका जीवन सुखमय हो सकता है उसको राग द्वेष हर्ष शोक नहीं हो सकते, साम्यभाव का साम्राज्य हो जाता है, अहंता ममता नहीं रहती; कारण कि सब ब्रह्म की इच्छा—उसकी मरजी ऐसी भावना पर आधार रखना पडता है. यह निर्विवाद बात है कि यह भावना समष्टि में उपयोगी नहीं हो सकती और न समष्टि में इसकी प्रवृत्ति हो सकती है, इसलिये जो पूर्वोक्त पंचदशांग को भी उसी का निमित्त मान के उसी अनुसार वर्ते तो दुःख रहित जीवन हो. शारीरिक जो दुःख होवें तो उसमें भी संतोष रहता है; क्योंकि उसको भी उसी की रचना मानना है और अहंग्रह उपासना में उपयोगी है. यदि वोह ऐसा माने कि मैं ही जगत् का अधिष्ठाता हूं सब मेरा ही रूप है तो वोह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान अवश्य होना चाहिये, (ऐसा होना असभव है) उस विना यह भावना कल्पनामात्र है; इसलिये यही मानना ठीक होता है कि ईश्वर आप ही नाना रूप धारण करता है और उसने उनके नियम भी निर्मित किये हैं. यथा जीव भाग अल्पज्ञ हो, जड भाग पराधीन रहे, इत्यादि. इस रीति से महामंतव्य उपासना में उपयोगी है. (अ. १ गत विभुपकमत नं. ८ वांचो).

(३) जो केवलाद्वैत की अर्थापत्ति से उपाधिवाद – मायावाद – विवर्तवाद (शांकराद्वैत) अर्थ निकलता है तो भी व्यष्टि के लिये ठीक ही है; क्योंकि समष्टि में इस भावना का उपयोग नहीं हो सकता और न समष्टि में इसकी प्रवृत्ति हो सकती है, किंतु ऐसी भावना निष्ठा वाला और उसानुसार वर्तने वाला भी किरोडों में से कोई एक हो सकता है.

इस निष्ठा–भावना वाले को परवैराग्य, अनासक्ति, सतोष, प्राप्त हो जाते हैं; निस्पृह–पूर्णकाम और निष्काम हो जाता है; क्योंकि उसकी चिदग्रंथी भंग होने से ममत्व और अहंत्व का अभाव हो जाने से वासना का अभाव हो जाता है. अतः उसे राग द्वेष हर्ष शोक नहीं होते, सब स्थिति में सुखी–आनंदित रहता है, निंदा स्तुति

मे उसकी प्रवृत्ति नही होती, यथाप्राप्त अप्राप्त मे समचित्त रहता है, किसी धर्म मत पंथ से इसका विरोध नही होता, सब शंकाओं का समाधान हो जाता है, स्वप्नवत् बाधित वृत्ति से इसका व्यवहार होता है, ऐसी यह अद्भुत् शैली है. परंतु खान पानादिक लौकिक और कुछ न कुछ वर्णाश्रम का शास्त्रिय व्यवहार करना ही पडता है; इसलिये जो पूर्वोक्त पंचदशांग को भी स्वप्नदृष्टि में मान के पाले तो अपना उत्तम जीवन हो और पर को आदर्श होनेसे लाभकारी हो; कारण कि जगत् अर्थ शून्य (मिथ्या) इतना कथनमात्र से वदतोव्याघात में फंसता है. इसलिये कमलपत्रवत् बाधित वृत्तिसे उसका वर्तन होता है. अतः उस अपूर्व व्यक्ति वास्ते तो यह सिद्धांत उत्तम ही है; परंतु समष्टि के योग्य नहीं है. समष्टि के योग्य तो त्रिवाद ही ठीक जान पडता है.

इस प्रकार उक्त मंतव्यों में कर्म, उपासना तथा ज्ञान इन तीनों उपयोगी कांडों का लाभ होने से निषेध की आवश्यकता नहीं है.

जिसका जैसा अधिकार होता है उसको उसी विषय मे रुचि होती है, उसी को वोह कर सकता है; उससे अन्य मे उसकी रुचि नहीं हो सकती और न उस अन्य को पाल सकता है, ऐसी मनुष्य की प्रकृति है. और कोई खास अपवाद के बिना यह बात ठीकही है, यथा कर्म के अधिकारी को उपासना-ज्ञान और उपासना के अधिकारी को कर्म-ज्ञान और ज्ञान के अधिकारी को कर्म-उपासना प्रिय नहीं होते और न उनको वोह पाल सकता है; अतः उक्त तीनों कांड उस उसके अधिकारी को उपयोगी हो सकते हैं; इसलिये खंडन मंडन की अपेक्षा नहीं; क्योकि वक्ता (वेद, उपनिषद् का बोधक) का एक (खास) आशय जानने के लिये यथावत् साधन नहीं है. जब आर्य विद्वानो को साधन मिल जावेंगे तब अर्थ निर्णय हो के उक्त में से एक ही आशय निकलेगा. वा तो यथा अधिकार तीनो माने जायंगे.

इसलिये वेद उपनिषद् के एक निश्चित अर्थ होने तक पक्षापक्षी छोड के विवाद में न फंस के तीनो का उपयोग यथा अधिकार कर्तव्य है.

(शं) तुमने तत्व दर्शनग्रंथ में और इस दर्शन संग्रह में उन तीनों का निषेध क्यों किया है ! एक तरफ निषेध करना, दूसरी तरफ प्रवृत्ति कराना यह योग्य पुरुषों का काम नहीं है. (उ.) इसका समाधान ग्रंथ की प्रस्तावना में है. अधिकार और दूषण भूषण जान के प्रवृत्ति करना वा उससे निवृत्ति करना उत्तम है, इसलिये पक्षदृष्टि न रख के उभय का बयान है. अतएव जिसमे व्यष्टि को वा व्यष्टि-समष्टि

को शांति सुख मिलता हो उसी का ग्रहण कर्तव्य है. हमारे लिखे दूषण भूषण पर जाने की अपेक्षा नहीं है.

जो वेद उपनिषद्‌ के अर्थ द्विवाद यानें पुरुष प्रकृतिवाद में होते हो तो ईश्वर तथा नाना विभु जीव मानें तो उसका समावेश त्रिवाद मे हो जाता है, और ईश्वर नहीं किंतु नाना विभु जीव और प्रकृति मानें तो उनके अनुकूल नहीं है, क्योंकि उनमें जीव को गतिमान और भोक्ता माना है, विभु मे यह दोनो बातें नही हो सकती, तथा किसी भाष्य में भी अनीश्वरवाद और जीव नाना विभु, ऐसा अर्थ नही किया है, इसलिये उनकी दृष्टि से यह वाद नहीं है. और जो एक विभु चेतन और प्रकृति ऐसा अर्थ निकलता हो तो उपरोक्त मायावाद के अनुसार परिणाम ज्ञातव्य है, क्योंकि इस प्रकार के पुरुष प्रकृतिवाद में केवल इतना ही अंतर है कि केवलाद्वैतवादि माया उपाधि को ब्रह्मवत् सत्य नही मानता किंतु उससे विलक्षण अनिर्वचनीय मानता है, और दूसरा प्रकृति को ब्रह्मवत् सत्य मानता है. परंतु एक समचेतन मान के उपाधि को ब्रह्मवत् सत्य मानना व्यर्थ ही है; इसलिये द्विवाद यानें पुरुष (१) और प्रकृतिवाद का भूषण उपरोक्त मायावाद समान ज्ञातव्य है.

मैमांसिक वगेरे कितना भी जोर लगावें, परंतु वेद उपनिषद्‌ में अनीश्वरवाद सिद्ध नहीं होता, किंतु कैसे रूप में ही मानो परंतु चेतन ब्रह्म, तथा उपादान और जीव की मुक्ति यह तीन बात जरूर माननी पडेंगी.

ब्रह्म दर्शन (उपनिषद्‌)

उपनिषद्‌ की श्रुतियों का अवतरण (ग).

(उ.) १. सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति. तत्तेजोऽसृजत (छां. * ६।२) अर्थ — (एक कहता है कि पहेले असद् ही था उस अद्वितीय असत् से यह सत् जगत् हुवा है. असत् से सत् कैसे हो सकता है? नहीं) हे सोम्य सब से पूर्व वोह एक अद्वितीय था उसने ज्ञानरूप मे संकल्प (इच्छा) किया कि मैं बहुत सामर्थ वाला हूं जगत् सृजुं यह संकल्प कर के प्रथम उसने तेज को सरजा. इ. ब्रह्म अद्वितीय, इच्छा वाला, अभिन्ननिमित्तोपादान.

---

* ईशोपनिषद्=ई. कन=क कठ=क मुंडक=मु मांडुक्य=मां एतरिय=ए. तैतरिय=तै छांदोग्य=छां. बृहदारण्यक=बृ प्रश्न=प्र श्वेताश्वतर=श्वे. कौषितकी=कौ एव उपनिषदो के नाम की संज्ञा है.

२. उद्गीथ + + तस्मिंस्त्रयं (श्वे. १ मं. ७) पूर्वोक्त उद्गीत में तीन का समुदाय है १. ब्रह्म, २. प्रकृति और ३. अक्षर अर्थात् जीव. इन तीनों के भेद को ब्रह्मज्ञानी जान के ब्रह्म में लीन हुये योनी (जन्म मरण) से छूट जाते हैं. (तीनों अनादि अनंत. जीव ब्रह्म का भेद).

३. संयुक्त मेतत्क्षरमक्षरंच (श्वे. १।८) क्षर (प्रकृति) अक्षर (जीव) मिले हुये और व्यक्ताव्यक्त को परमेश्वर धारण करता है. जीवात्मा भोक्ता होने से बंधन में पडता है, देव-परमेश्वर को जान के सब बंधनों से छूट जाता है. (ईश्वर जीव प्रकृति जुदा, जीव अमर).

४. ज्ञाज्ञौ द्वावजौ. (श्वे. १।९) समर्थ (ईश्वर) असमर्थ (जीव) ज्ञाता (ईश्वर) अज्ञ (जीव) और अजन्मा यह दो और एक अजा (प्रकृति) है, भोक्ता भोग और अर्थों से युक्त है और अनंत आत्मा विश्वकर्ता परंतु अकर्ता है. +

५. यथोर्णनाभि (मु. १।७) ईश्वर जगत् का निमित्तकारण और प्रकृति उपादानकारण है, मकडी तंतुवत. यहां जीव की बाबत अध्याहार है. इस श्रुति को ब्रह्माभिन्न निमित्तोपादान भाव में भी लगाते हैं.

६. क्षरं प्रधानममृताऽक्षरं + + देव एकः (श्वे. १।१०) क्षर प्रधान (प्रकृति) अमृत अक्षर जीव इन दोनो पर संहारकर्ता परमात्मा देव अधिकार भाव से रहता है (तीनो जुदा और अमर).

७. य एको वर्णो बहुधा शक्तियोगात् (श्वे. ४।१) जो अपनी शक्ति से उत्पत्ति स्थिति और लय करता है.

८. अजामेका + + बह्वीः प्रजा सृजमानां सरूपाः (श्वे. ४।५) एक अपनी सी बहुत प्रजा उत्पन्न करती हुई रज सत्व तम वाली अजा (अनादि प्रकृति) को एक अजन्मा (जीव) सेवता हुवा लिपटता है, दूसरा अजन्मा (परमात्मा) जीव से भोगी हुई इस प्रकृति को नहीं लिपटता. क. १० वत्. जीव ईश्वर प्रकृति अनादि अनंत बोधक; क्योंकि जो अज सो अमर होता है.

+ विश्वस्याकर्ता. इस पाठ का एक टीकाकार यह भावार्थ करता है कि प्रकृति और ब्रह्म के सन्निधान से जगत बनता है, उस बिना अकेली प्रकृति से नहीं होता; अतः कर्ता और ब्रह्म राग द्वेष इच्छा प्रयत्न रहित है अतः अकर्ता है परंतु जो मायोपहित वा मायाविशिष्ट ईश्वर को कर्ता अकर्ता कहा जाय तो आशय सरल हो जाता है. ब्र. सू. में इसका स्पष्टीकरण है

९ दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः ++ अक्षरात्परतः परः (मुं. २ खं. १ मं. २) परमात्मा मूर्ति रहित है अक्षर (अविनाशी) सो प्रकृति उससे पर जो जीव उससे भी वोह पर है.

१०।११. प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म. सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म (तैति. २।२) ब्रह्म आनंदस्वरूप और अनंत है.

१२. न तस्य कार्यं करणं च विद्यते +++(श्वे. ६।८) उस (परमेश्वर) का कोई कार्य वा साधन नहीं है, न उसके समान और न उससे कोई अधिक है. उसकी बडी शक्ति और स्वाभाविक ज्ञान, बल तथा क्रिया श्रुति (वेद) में कही है ईश्वर अभिन्न निमित्तोपादान और साकार इन दोनों का निषेध. इस शक्ति, ज्ञान और बल तथा क्रिया की सफलता होनी चाहिये.

१३. सविश्वकृद्विश्वविदा +++ (श्व. ६।१६) जो प्रधान (प्रकृति) और क्षेत्रज्ञ (जीव) का स्वामी संसार के मोक्ष, रक्षा और बंध का हेतु है, सो जगत् का रचने वाला है, जगत् को जानने वाला है, स्वयंभू, चेतन, सर्वज्ञ है और काल का विभागकर्ता सदगुणों से युक्त है. ईश्वर सगुण सक्रिय.

१४. बालाग्रशत भागस्य ++ सचानंताय कल्पते (श्व. ५।९) बाल की नोक के सोवें भाग का भी सोवां भाग जितना हो उतना जीव है परंतु वोह अनंत (असीम) होने के लिये समर्थ है. जीवात्मा व्यापक अथवा असंभव दोष याने अणु विभु नहीं हो सकता. और अणु में अनंत सामर्थ भी नहीं हो सकती.

१५ जीवापेतं ++ न जीवो म्रियत (छां ६।११।३) निश्चित यह शरीर जीव रहित होने पर मर जाता है जीव नही मरता. (जीव अनादि अनंत).

१६. एषोऽअणु † रात्मा चेतसा वेदितव्यो (मुं. ३।१।९) यह अणु (सूक्ष्म) आत्मा चित्त करके ज्ञातव्य (ज्ञेय) है १६. क. अस्मात् शरीरात् लोकात् उत्क्रामति * (कौषीतकि उ. वृहत पष्टगत) शरीर और लोक से गति करने वाला होने से जीव परिच्छिन्न है (अणु है).

१७. नैव स्त्री न पुमानेष. (श्वे. ५।१०) जीव स्त्री, पुरुष, निपुंसक नहीं किंतु यथा शरीर कहाती है.

† अणु=सूक्ष्म, यहां ब्रह्म का वाचक है * यहां सक्रिय होने से जीवात्मा में आशय है

१८. तमेतं वेदानुवचनेन. (वृ. ४।४।२२) ब्राह्मण लोक परमात्मा को यज्ञ, दान, तप और मंत्रों से जानने की इच्छा करते हैं कर्म से मोक्ष.

१९. स्वर्ग कामो यजेत. ज्योतिष्ये मे न स्वर्ग कामो यजेत. (छ) यज्ञ से स्वर्ग प्राप्ति.

२०. प्राणान्प्रवी (श्वे २।९) लघुत्वमारोग्य (श्वे. २।१३) प्राणायाम का विधान और सिद्धि प्राप्ति बोधक.

२१. तत्कर्म कृत्वा. (श्वे. ६।३) आरभ्यकर्माणि (श्वे. ६।४) उत्तम कर्म गुण प्राप्ति करके भक्ति करके ईश्वर के साथ मिलता है और किये कर्मो का क्षय होके ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है. यह इन उभय मंत्रों का भावार्थ है.

२२, आनंद ब्रह्मणो विद्वान. (तै. ९।३) मुक्त ब्रह्मानंद को भोगता हुवा किसी मे भय नहीं करता.

२३. स आत्मा मनो. (छां. ८।१२।९) आत्मा है, आत्मा का मन ही देव चक्षु है, देव इंद्रिय हैं, वोह मुक्तात्मा इस मन द्वारा ही कामनाओं को पूर्ण देखता हुवा क्रीडा करता है. मुक्ति में मन और वैभव सूचक.

२४. स एकधा भवति द्विधा भवति (छां. ७।२६।२) और (छां. ८।१२।९) नं. २८ वत्.

२५. यदा पंचाव. (कठ अ. २ व ६. मं. १०) जब शुद्ध मन युक्त ५ ज्ञानेंद्रिय जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का निश्चय दृढ हो जाता है उसको परमगति मोक्ष कहते हैं.

२६. स यदि पितृलोक कामोभवति + + अथ यदि स्त्रि + + यंयं. (छां. ८।२।१।७।९) उपासक मुक्त जब जिस जिस (पितृ–स्त्री वगेरे) कामनावाला होता है वे संकल्प मात्रसे सामने आ खडे होते है.

२७. एवमेपसम्प्रसादो + + जक्षन् क्रीडन् रंममाण + + पितरः (छां. ८।१२।३) शरीर त्यागने पीछे ब्रह्म को प्राप्त होके स्व स्वरुप में स्थित होता है, सो उत्तम पुरुष है. वहां चारों तरफ फिरता, हंसता, खेलता, रमन करता है. इत्यादि.

२८ पुण्योवै पुण्येन कर्मणाभवति (कौषीतकि श्रुति) जीवों के कर्मानुसार ईश्वर सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति लय करता है.

२९. वेदांत विज्ञान + + । ते ब्रह्मलोकेषु परांतकाले परामृतात् परि मुच्यन्ति सर्वे॥ (तै. प्र. १० अ.१० प्र. २ और मुं. ३ ख. पं. ६ और केवल्य उ.) श्री शंकराचार्य का भावार्थ-मंत्रके पूर्वार्द्ध में कहे हुये सब ब्रह्मज्ञानी परांतकाल में याने शरीरत्याग पीछे ब्रह्मलोक में परामृत हुये सब तरफसे मुक्त होते हैं ॥ स्वामी दयानंदजी का भावार्थ-पूर्वार्द्धवाले (ब्रह्मज्ञानी) सब परांतकाले याने कल्पके अंतमें परामृतात अर्थात् मुक्ति मे परिमुच्यन्ति अर्थात पुनरावृत्ति को प्राप्त होते हैं. (मुक्ति से पीछे संसार में आते हैं). एक महाशयका भावार्थ— वे ब्रह्मकृत पृथ्वी आदि लोकों में परामृत (मरण धर्म रहित परमानंदित हुये) परांत काल (प्रारब्ध भोग पीछे याने शरीर त्यागने पीछे) परिमुच्यन्ति याने मुक्त हो जाते हैं यथा नारदादि हुये हैं.

उपनिषद् श्रुति (घ.)

३०. यस्मात्परं ना परमस्ति + + स्तब्धो+ (श्वे. ३।९) जिससे परे, समीप कुछ नहीं है. ब्रह्म निष्कंप स्थिर है.

३१. सर्वतः पाणिपादं अपाणिपादो० (श्वे. ३।१६।१९) वोह सर्वत्र हाथ पांव शिर आंख वाला है, सबको घेर कर स्थिर है १६. हाथ पांव रहित हाथ पांव का काम करता है, कान बिना सुनता है, आंख नही और देखता है. मन विना का जानता है, उसे महेश्वर कहते हैं.

३२. स आत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽदृष्टो द्रष्टा श्रुतः श्रोता. + + नान्योऽऽतोस्ति द्रष्टा मन्ता ज्ञाता श्रोता. (बृ ३।८।११ और ३।७।२३) यह आत्मा अंतर्यामी है, अमृत है, अदृष्ट है, द्रष्टा है, अश्रुत है, श्रोता है, अमत है, मंता है, अविज्ञात है, विज्ञाता है, उससे अन्य कोई द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञाता नही है. एक कहता है कि तमाम ब्रह्मांड का द्रष्टादि नहीं है. परिच्छिन्न जीव-आत्मद्रष्टा ज्ञाता मंता है परंतु यह कल्पना नं. ६ के विरुद्ध है.

३३. एको द्रष्टा अद्वैतो (बृ). एक द्रष्टा अद्वैत है.

३४. अस्थूलमनणु. (बृ. ३।७।८) वोह स्थूल अणु रहस्व दीर्घ नहीं है. (निराकार है अतः उपादान नहीं).

३५. (क) तेषां न पुनरावृत्ति. (बृ. अ. ८ छां. ४।१५।१ कौ. १।२ में लिखा है ब्रह्मलोक से (मुक्ति से) अनावृत्ति है.

३६. एतद् ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म (मां. २) यह ब्रह्म यह आत्मा (प्रत्यगात्मा)

ब्रह्म है सो आत्मा चार पाद वाला है. आगे आत्मा की जाग्रदादि ३ अवस्था और तुर्याऽतीत का बयान है. माडुक्य उपनिषद् के अर्थ में विवाद है. एक जीवात्मा (अंतःकरणावच्छिन्न चेतन प्रत्यगात्मा) में लगाता है, दूसरा जगत्कर्ता ईश्वर में लगाता है.

३६. साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च (श्वे. ६।११) देव सर्व में बसने वाला द्रष्टा चेतन है और गुणों से रहित है.

३७. नित्योनित्यानां चेतनश्चेतना नाम् (श्वे. ६।१३) ब्रह्म नित्यों में नित्य चेतनों में चेतन है. कोई दूसरा नित्य चेतन मानें तब इस वाक्य की सिद्धि होगी.

३८. निष्कलं निष्क्रियं + निरंजनम् (श्वे. ६।१९) ब्रह्म निष्कलं, (मु. ३।९) एको वशीनिष्क्रियाणाम् (श्वे. ६।१२) ब्रह्म निष्कलं, अक्रिय है.

३९. यद्वाचो (के. ४ से) तदेव ब्रह्म त्वंविद्धी नेदंयदिय मुपासते (८ तक) भावार्थ. जो वाणी, मन, चक्षु, श्रोत्र और प्राण का विषय नहीं है. और जिसके वाणी वगैरे विषय हैं सो ब्रह्म है, जिसको लोक उपासते हैं सो ब्रह्म नहीं है. वाणी आदि को लेके बोध है. इसलिये प्रत्यगात्मा का ब्रह्मरूप से बोध है, ऐसा स्पष्ट हो जाता है.

४०. अद्रश्यमाग्राह्य (मुं. १।१।६) ब्रह्म अदृश्य अग्राह्य है. निरीहः ....परमात्मा इच्छा रहित है.

४१. अथात् आदेशो नेति नेति (बृ. ४) मूर्त अमूर्त उपाधि प्रपंच का निषेध करके ब्रह्म को नेति नेति कहा है.

४२. आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः (बृ) मेत्र्य! आत्मा ही द्रष्टव्य और श्रोतव्य है (ब्रह्म को ज्ञेय बताया है).

४३ संकल्पन् स्पर्शन् (श्वे. ५।११) देही-जीव संकल्प, स्पर्श, दर्शन और मोह से कर्मानुसारी रूपों को प्राप्त होता है. क्रम पूर्वक अन्न पान के सेवन से वृद्धि को पाता है और जन्म को भी पाता है (जीव मध्यम है, ऐसा इस श्रुति से स्पष्ट होता है).

४४. स एष इह प्रविष्ट आलोमभ्यः आनखेभ्यः (बृ. २।३।७ छां). यह जीव रोम और नख तक प्रविष्ट है. इस मंत्र से जीव मध्यम जान पडता है-और यदि उपाधि मानें तो विभु कहना पडेगा

४५. गुणान्वयो यः फल कर्म. (श्वे. ५।७) जीव सगुण कर्ता भोक्ता है, अनेक रूप धारण करता है, त्रिगुणों को धारता है, गुणों का स्वामी यथा कर्म घूमता फिरता है

४६. अंगुष्टमात्रो + + बुद्धेर्गुणेन (श्व. ५।८) जो (जीव) बुद्धि के गुण मे अंगुष्टमात्र है, संकल्प और अहंकार वाला है.

४७. वालाग्रशत (नं १४ ख. समान) (नं. २७) ज्ञाज्ञौ (नं ४ ख. समान).

४८. छाया तपौ ब्रह्म विदोवदन्ति (कठ. १।३।१) ब्रह्म और जीव सूर्य की धूप और छाया समान हैं. (जीव का मध्यम बोधक).

४९. क्षीणैः क्लेशैः (श्वे. १।११) जीव का पंचक्लेश हैं.

५०. एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यते. (श्वे. १।१५) आत्मा से आत्मा ग्राह्य होता है याने उसका साक्षात् होता है.

५१. ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति. (मुं. ३।२९) ब्रह्मज्ञाता ब्रह्मस्वरूपहो जाता है.

५२. यदा चर्मवदाकाशं (श्वे. ६।२०) जब चर्म समान आकाश को लपेटें तब परमात्मा देव के जाने बिना दुःख का अंत होगा. ब्रह्म के ज्ञान बिना मुक्ति नही होती.

५३. भिद्यते हृदय ग्रंथि (मु. २।२।८) अवर मे पर जो ब्रह्म है उसका अनुभव होने पर उस ज्ञानवान की चिद्ग्रंथी भिदा (खुल) जाती है, उसके सब संशय नाश हो जाते हैं और उसके कर्म का क्षय हो जाता है.‡

५४. गताकला पंचदश. (मुं ३।२।७). मुक्ति में प्राणादि स्वकारण में, इंद्रिय, बुद्धि ब्रह्म में लय हो जाती है.

५५ न तस्य प्राण उत्क्रामन्ति ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येति (वृ. ४।४।६) ब्रह्मज्ञानी के प्राणादि लोकांतर में नहीं जाते. ब्रह्म हुवा हुवा ब्रह्म को पाता है (यह रहस्य अनुभवी के बिना अन्य नहीं जान सकता).

५६. न तस्मात् प्राण उत्क्रामन्ति अत्रैव समवलीयन्ते (काण्व शाखा) भावार्थ (नं. ४७ वत्).

‡ सब ग्रन्थो के गोले चला रहे हैं. आत्मा के ज्ञान होने पर जो योग, वेदांत, न्यायादि और शाकर वेदांत जो कहता है सो जाना जाता है, सबका एक लक्ष्य है, ऐसा जान लेगे

५७. यस्मात् भूयो न जायते (कठ. ३।८). ब्रह्मज्ञानी उस पद को प्राप्त होता है कि जहां से फेर जन्म नहीं होता. (अनावृत्ति).

५८. विमुक्तश्च विमुच्यते (कठ. ५।१) मुक्त हुवा मुक्त होता है. आत्मा में बंध मोक्ष भ्रांतिमात्र है; ऐसा इस मंत्र से जान पडता है. (शं.) पूर्व में मुक्त हुवा पुनः बंध में आया पुनः मुक्त होना है, ऐसा प्रवाह है; इसलिये ऐसा कहा है. (उ.) जो ऐसा मानें तो यह पक्ष अयुक्त रहता है और असंभव है.

५९. विमुक्तोऽमृतोभवति (मुं. ३।२।९) भावार्थ नं. ५२ वत.

६०. आत्मा वा इदमेक एवाग्रआसीत् नान्य त्किंचितमिषत्. (ऐत. १) पूर्व में आत्मा से इतर दूसरा कुछ भी नहीं था. सईक्षत लोकान्नुसृजा इति ॥ १ ॥ उसने ज्ञानरूप संकल्प किया कि लोकों को (जगत् को) रचूं. इस श्रुति से पाया जाता है कि जगत् का उपादान ब्रह्म—याने जगत् जीव ब्रह्मस्वरूप है. अथवा ब्रह्म ने अभाव से जगत बनाया; क्योंकि उससे इतर कुछ भी नहीं था; परंतु नं. ६१ में उससे आकाशादि की उत्पत्ति कही है और अभाव से भावरूप होना असंभव इसलिये ब्रह्म अभिन्ननिमित्तोपादान मानना होगा (परंतु यह बात असंभव है).

६१. आत्मैवेदं सर्वं नेहनानास्ति किंचन (यह श्रुति शंकरकृत शारीरिक भाष्य में है. व्यास सूत्र अ. ३।२।२१ देखो) यह सब आत्मा है आत्मा से इतर अन्य कुछ भी नहीं है (अभिन्ननिमित्तोपादान वा विवर्त्तवाद बोधक).

६२. मायांतु प्रकृतिं विद्यान्मायिनतु महेश्वरम्. (श्वे. ४।१०) माया को प्रकृति जानो और माया वाले (मायावी) को महेश्वर जानो. उसके एक देश में यह जगत् व्याप्त है.

६३. छंदांसि + + मायी सृजते + + अन्यो मायया (श्वे. ४।९.) छन्द, यज्ञ, व्रत, भूत, भविष्य और जो वेद कहता है इन सबको और हमको माया वाला ईश्वर रचता है और उसमें जीव माया से बंधाता है.

६४ यो देवानां + + हिरण्यगर्भं जनमा मासपूर्वं (श्वे. ३।४) देवों के उत्पत्ति स्थिति और लय के स्थान सब के स्वामी रुद्र महर्षि ने प्रथम हिरण्यगर्भ (शेषा-सूक्ष्मा) को पैदा किया.

६५ आत्मन आकाशसंभूतः इ. (तै. २।१।१) इस श्रुति से पाया जाता है कि आकाशादि पंचभूतों का उपादान ब्रह्म है और जो तीसरी विभक्ति का अर्थ

करें तो आकाशादि का उपादान अन्य बताना चाहिये. वोह अणु वा विभु न होगा क्योंकि आकाश का उपादान अणु और परमाणु (वायु आदि) का उपादान विभु पदार्थ नही हो सकता. ब्रह्म को उपादान मानें तो भी सिद्धांत निर्दोष नहीं होता. इसलिये श्रीशंकर की माया वा विवर्त्तवाद लेने पडते हैं, उससे दोष निवारण हो सकता है; परंतु इस श्रुति में सो पद नहीं है

६६. एतस्मात् जायते प्राणो मनः (मुं. २।१।३) परमात्मा से प्राण, मन, इंद्रिय और आकाशादि पंचभूत उत्पन्न हुये हैं.

६७. द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे मुर्तंचैवाऽमूर्तंच (बृ. २।३।१) ब्रह्म के मूर्त और अमूर्त यह दो रूप हैं. असंभव है. माया विशिष्ट ब्रह्म के उपाधिवश साकार निराकार रूप कल्पे जा सकते हैं, वस्तुतः वोह अमूर्त होना चाहिये (क. ३ च. १३ छ. ३।१३ ग. ८ ख. ३६ घ. ३१।३८ देखो).

६८. यत्रा सौ केशांतो विवर्त्तते (तै. १।६।२०) छ. २३ घ ४४ वत्. जीव शरीर में केश तक व्यापक है (मध्यम परिमाणी हुवा).

६९. न च पुनरावर्ततः न च पुनरावर्ततः (छां.) मोक्ष से अनावृत्ति.

७०. तत्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि (बृ. ५।९।२६) जो उपनिषदों से जाना जाता है सो पूछता हूं.

७१. तत्रापरा ऋग्वेदो इ. (मुं. १।१।५) अथपरा ययातद् (मु. १।१।५) चार वेद शिक्षा और उसके ६ अंग यह अपरा विद्या है और जिस कर के ब्रह्म प्राप्त होता है सो परा विद्या है.

७२. उपनिषदों को परा विद्या कहते हैं. उप+नि+षद्. इसके अनेक अर्थ होते हैं. यथा (१) ब्रह्म विद्या जिससे प्राप्त हो सो (२) समीप + अत्यंत + नाश–स्थिलगति (३) ब्रह्मविद्या (४) जिसके पठन पाठन से ब्रह्म के पास बेठने के योग्य हो सो इत्यादि.

७३. अथात आदेशो नेति नेति (बृ. २।३।६) मन बुद्धि से जो जाना जाय सो ब्रह्म नहीं वा यह नहीं यह नहीं इसका जो शेष सो ब्रह्म है. वा प्रपंच के निषेध हुये जो शेष सो ब्रह्म है.

७४. अत्र पिता अपिता भवति माता अमाता भवति, लोका अलोका, देवा अदेवा, वेदा अवेदाः. अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति. बृ. अ. ६ ब्रा. ३ मं. २२. यहां आत्मकाम–

आप्तकाम–अकाम आत्मा में–अनुभवस्वरूप में) पिता, माता, लोक, देव, वेद, चोर, पातिक वगैरे क्रमशः पिता वगैरे रूप नही होते (परमार्थतः पितादि अपितादि हैं). न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति. सुषुप्तौ निरस्ताति शून्यात्मकत्वा त्त्देकोऽविशिष्टः शिवः केवलोहम्. (शंकर यहां रहस्य है).

अद्वैत बोधक श्रुति. (च.)

७५. अनेनजीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नाम रूपे व्याकरवाणि. छां. ६।३।२. उस जीवात्मा के साथ अपने आप भी प्रविष्ट हो के नामरूप को प्रकाशित करूं.

७५. (अ). यत्रहि द्वैतमिव भवति (बृ. ४।५।१५) यद्वैतन्न पश्यति (बृ.) न तुतद्वितीयमस्ति (बृ) परमात्मा से दूसरा अन्य नहीं है उससे इतर दूसरा पृथक् भूत अन्य नही है जिसको देखे.

७६. आत्मा वा इदमेक एवाग्रआसीत (एत. १) ख. १ छ. ९४ वत्.

७७ आत्मैवेदंसर्वं (छ. ७।२५।२) ब्रह्मैवेदंविश्वमिदं वरिष्टम् (मुं २।२।११) इदं सर्वं यदयमात्मा (बृ. २।४।६) यह सब (ब्रह्मांड) आत्मा ही है.

७८. मृत्योःसमृत्यु ++ यइहनानेवपश्यति (बृ. ४।४।१९) जो इसमें नानात्व देखता है वोह मर कर मरता रहता है. यहां वदतो व्याघात है; क्योंकि ब्रह्म मरता नही है. और उससे इतर द्रष्टा नहीं है. परंतु जीव दृष्टि से बोध है.

७९. एष महाआत्मा+ +ब्रह्म (बृ. ४।४।१९) यह आत्मा ब्रह्म है.

८०. नान्योतोअस्तिद्रष्टा (बृ. ३।७।२३) छ. ९ वत्.

८१. नेहनानास्तिकिंचन (छं. ९९ घ. ६१ वत्.)

८२. यथा पृथिव्यां औषधयायं भवन्ति (मुं. १।१।७) जेसे पृथ्वी से औषधि और पुरुष से केश निकलते हैं वेसे ब्रह्म में से यह विश्व निकलता है. यह विवादित श्रुति है. अभिन्ननिमित्तोपादान का बोध करती है. ओषधि के उदाहरण से. और केशोत्पत्ति में जीवभिन्न निमितकारण है. तद्वत् ईश्वर निमित्तकारण है, ऐसा भाव निकलता है.

८३. यतो वा ईमानि भूतानि जायन्ते (उप ते.) जिससे यह सब भूत पेदा होते हैं. यहां भी पंचमी और तीसरी विभक्ति से अर्थ हो जाता है (आदित्याद जायते वृष्टि. यहां ५मी का तीसरी में अर्थ है).

८४. येन अश्रुतंश्रुतं + + एक विज्ञानेन सर्वविज्ञानंभवति. (उ.) जिस कर के अश्रुतश्रुत, अविज्ञात विज्ञात, और एक विज्ञान से सर्व विज्ञात होता है ऐसा

जब ही हो सकता है कि ब्रह्म ही जगत का उपादान हो, अथवा ब्रह्म चेतन प्रकाशवत आप सब में अनुस्यूत हो जावे, उस विना सर्वज्ञ नही हो सकता और न कोई आज तक हुवा है या ताे एक अधिष्ठान चेतन के ज्ञान से उसके सब विवर्त्त का विवर्त्तरूप से ज्ञान हो जावे यह भाव निकल सकता है. यह सब अर्थवाद में हैं. यथार्थ रहस्य ताे आत्मानुभव हुये विना समझना मुश्किल है.

८५. यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्व मृत्मयविज्ञातंस्यात. छां. प्र. ६।१. हे सौम्य जेसे एक माटी के पिंड से सब मृतिकामय होते हैं, तेसे एक जानने से सब जाना हुवा होता है. इसी प्रकार आगे लोह मणि का, नहरनी लोह का नाम लेके दृष्टांत दिया है. इसका कटाक्ष अभिन्ननिमित्तोपादानवाद में हे. और नं. १८ अनुसार अन्य भी.

८६. असद् वा इदमग्रासीततताे वैसदजायत, तदात्मानंस्वयमकुरुत यद्वै तत्सुकृतम्. ते. अ. ७. यह पहेले असदरूप था उमसे निश्चय करके सद् उत्पन्न हुआ, उसने आत्मा (जीव) को स्वयं बनाया इसलिये उसका नाम सुकृत हुवा.

८७ आत्मावेदमग्रासीदेक एव. सोकामयत जाया मेस्यादथ प्रजा येय. वृ. ४।१७ पहेले एक ही आत्मा था, उसने कामना की कि मेरे लिये पत्नी हो और मैं उत्पन्न हू (माया चेतन) अभिन्ननिमित्तोपादान).

८८. सवैनैवरेमे. वृ. ४।३. सइममेवात्मानं द्वेधापातयतिः पतिश्चपत्नीचाभूताम्. वृ. ४।३. वोह एकला होने से खुश नही होता उसने अपने अपने आत्मा को दाे प्रकार का बनाया. अर्थात् पति पत्निरूप हो गया (अभिन्ननिमित्तोपादान बोधक).

८९. विस्फुलिंगा ++ विविधश्चिज्जडा चावा ॥ मुंडक॥ जेसे अग्नि में से चिंगारी उद्भवती हैं वेसे जडचेतन ब्रह्म में से होते हैं उसी में लय होते हैं.

९०. सत् एव सौम्य इद अग्र आसीद एकम् एत, अद्वितीयम. एतत् आत्मा इदं सर्वं तत् सत्यंस आत्मा तत् त्वं असी श्वेतकेताे. छां. ६।८।७।६।१।१।३।६ ।१६।३.

अर्थ–हे सौम्य यह ... सत ही आगे होता भया वोह एक ही है अद्वैत रूप है यही सर्व आत्मा (रूप) सो (सर्व) सत है सो आत्मा है सो तू है.

∵ इन वाक्यों में भाग त्याग लक्षणा द्वारा (तत्) अर्थात ईश्वर के सर्वज्ञतादि और त्वं अर्थात् जीव के कर्ता भोक्तादिका त्याग करके चेतन मात्र में लक्षणा है. अर्थात् चेतन ब्रह्म एक ही है १.

उपनिषदों में प्रथमपुरुष की जगह उत्तम वा मध्यम पुरुष का प्रत्यय लग जाता है इसलिये सो 'तत्त्व स्वरूप है' ऐसा अर्थ करते हैं अर्थात् तत्त्वमस्ति पदकी अपेक्षा नही है २. तन्निष्टस्त्वमभव श्वेतकेतोः, ऐसा भी अर्थ करते हैं ३. तस्य तत्त्वमसि- तिसका तू दास है, ऐसा भी अर्थ करते हैं ४. सो आप है, ऐसा भी अर्थ करते हैं. अस्ययदे कां ++ जीवा पेतं वा व किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति ++ स आत्मा तत्त्वमसि. ॥छां.॥ इस मंत्र में जीव का प्रसंग है. श्वेतकेतुने पूछा कि जो जीव नहीं मरता और जिसके जाने से शरीर मर जाता है सो क्या है? उद्दालक उत्तर देता है, सो जीवात्मा है, सो अति सूक्ष्म है, जो (जातित्वेन) सबका आत्मा है सो सत्य है, सो आत्मा कहाता है, सो तू (जीवात्मा) है, हे श्वेतकेतु! ऐसा भी अर्थ करते हैं. सो अपने आप (जगत्‌रूप) हुवा है. इत्यादि विवाद है

९१. पुरुष एवेदं (क. १४ वत्).

९२. यद्वै मनुरवदत तद् भेषजं. छां. प्र. ८।४।९. (मनु का वचन दवाई). उपनिषद् मनुजी के पीछे भी बने है.

९३. न तत्ररथानरथयोगा न पंथनोभवन्ति अथरथान रथयोन्पंथः सृजति. बृ प्र. ६ ब्र ३. स्वप्न मे रथयोग पंथ को जीव नवीन रचता है (स्वप्न नवीन सृष्टि).

९४. सयोगां वेद न हवै तस्य केन च न कर्मणा लोके मीयते न स्त्येयेन न भ्रूण हत्यया कौ. ३।१. शंकर भाष्य अध्याय १।९।११ सू. २८. अर्थ. जो मुझको जानता है उसके किसी भी कर्म से लोक का निर्माण नही होता. जेसे कि चोरी और बाल हत्या (अमुक स्थिति का वर्णन) अर्थात् ऐसा होना ही नहीं बनता और इस कथन में रहस्य भी है

विशेष वर्णन.

अब श्रुति संबंधी मत की चर्चा से उपेक्षा कर के हमको ऐतिहासिक और पक्ष प्रतिपक्ष बोधक ग्रंथों से जो ज्ञात हुवा और महात्माओं से जो सुना उस पर से कुछ बनाते हैं.

---

२. उपनिषद्.

उपनिषद इस शब्द के कई अर्थ हैं. यहां मत बोधक ग्रंथ विशेष का नाम है. (प्र ७२ देखो) उपनिषद ११२७ हैं उनमें परिचित ५२ कहाते हैं. * उनमे

* ५२ का तरजुमा फारसी मे दाराशकोह ने कराया और उर्दू में अबतक प्रकाश है

भी प्रमाण ईशादि १० माने जाते हैं उन १० में से ईशोपनिषद् तो यजुर्वेद का अध्याय ४० वां है. बाकी केन, कठ, मुंडक, मांडुक्य, एतरिय, तैतरिय, प्रश्न, छांदोग्य और वृहदारण्यक हैं. वेद के ज्ञानकांड के व्याख्याता कहाते हैं. श्वेताश्वतर को भी प्रमाण मान लेते हैं यह उपनिषद् भिन्न भिन्न काल में जुदा जुदा ऋषियों के बनाये हुये हैं. इसलिये संभव है कि मत भेद हो किंवा शैली का भेद हो उपनिषदों में यद्यपि जीव की गतिओं का बयान है, परंतु उसके विशेष स्वरूप वर्णन का उद्देश नही है, किंतु उनका मुख्य विषय ब्रह्म आत्मा है उनके विषय में वेद की साक्षी ली जा सकती है, अन्य दर्शन, स्मृति वा गीता पुराण वगेरे की नहीं उनमें त्रेता युग के पीछे का कोई नही है. अन्य उपनिषद पीछे के हैं छांदोग्य और वृहदारण्यक में ब्रह्म वेत्ताओं की वनसावली (ब्रह्मा से ले के पौत्मासी ऋषि तक ६६ पीढो) और ऋषि मुनिओं के संवाद का भी वर्णन है. (१) संभव है कि दूसरे ने दूसरे के नाम से बनाये हों (२) असल में न्यूनाधिक हुआ हो. (३) देश काल और अधिकार उद्देश होने से सब की शैली एक रूप में न हो और मूल जैसा जान पडे. (४) अर्थों की तकरार है, तथा कोई जिसको मुख्य श्रुति कहता है दूसरा उसको गौणी बताता है. इसी प्रकार रोचक, भयानक और अर्थवाद रूप संज्ञा दे देके भ्रम का रूप उत्पन्न हो जाता है—याने अन्यथा रूप जान पडता है. (५) ईशादि १० और श्वेता श्वतर को मिला के बारीकी से देखोगे तो कुछ और ही रूप जान पडेगा (६) परंतु ब्रह्म बोध यह उद्देश सब का समान है.

उपनिषदों पर शंकर भाष्य है. दूसरे उपनिषदों पर भिन्नभिन्न व्यक्तियों ने टीका रची हैं. मानव मंडल के साक्षर मंडल में उपनिषद् और गीता प्रशंसापात्र और नामांकित ग्रंथ हैं; क्योंकि शांतिप्रद विद्या यदि है तो इनमें ही है, ऐसी मेरी मान्यता है.

उपरोक्त श्रुत्यार्थ वा भावार्थ में सदेह हो वहां मूल में उनके शब्दार्थ और पूर्वा पर प्रसंग विचारणीय है, किसी के अर्थ कथनमात्र पर विश्वास अकर्तव्य है †

† क्योंकि हमने जो ग्रंथो (भाष्य वगेरे) में से अर्थ लिये हैं और मूल में मिलाये हैं सो वे ठीक ही हैं ऐसा हमारा आग्रह नहीं है; क्योंकि बहुधा शब्द यह विद्वानो का खिलौना होता है और भाषांतर करने वाले का भावदिया गुप्त रूप में प्रवेश कर भी जाय ऐसी संभावना रहती है.

उपनिषद् का बोध.

१. सब से पूर्व अद्वितीय (सजातीय विजातीय स्वगतभेद रहित) ब्रह्म ही था और कुछ भी नहीं था. उपरोक्त वेद उपनिषद के मंत्र वे. अ २९।१।४ और उ. नं. १०।७१।८६।८७ देखो). उसने इच्छा की कि प्रजा सरजुं (उ. नं ८१।८७।१० देखो) २. उसकी अचित्य शक्ति द्वारा उस में से (वा उस करके) आकाश आदि पंचभूत, काल, इंद्रिय, प्राण, मन, हिरण्यगर्भ, विराट, सूर्यादि, वनस्पति, पशुपक्षी मनुष्यादि सब दृश्य और वेद पेदा हुये (वे. ६ से ९ तक उ. १०।११). ३. जेसे पृथ्वी में से औषधि और शरीर में से केश पेदा होते हैं वेसे ससार उस में से बना है (उ. ८२). ४. वोह अभिन्ननिमित्तोपादान है याने शक्ति (माया) उपादान और स्वयं स्वरूप निमित्त कारण है. (उ. ९). ५. यह सब ब्रह्म का रूप है दूसरा कोई नहीं है (उ. ७२।७७।७८।८१। ८४।८५). ६. उसकी माया को प्रकृति जानो. वोह माया शक्ति वाला ईश्वर है. (उ. ६२।६३). ७. आत्मा ब्रह्म का औपाधिक अंश है. प्रत्यगात्मा ब्रह्मस्वरूप है. शरीर बुद्धि भेद से नाना हैं. उपाधिभेद से सब नानात्व है. उसी से विधि निषेध और बंध मोक्ष तथा साधन अर्थात् शास्त्रों की सफलता है. ऐसा अर्थापत्ति से जाना जाता है. (उ. १२।३९।३२।३३।७५।७९।७२।८२). ८. आत्मा मुक्त हुवा मुक्त होता है * ध. (५८।५९). ९. कर्म उपासना से ज्ञान और ब्रह्म ज्ञान से मुक्ति होती है (वे. ३३ उ. ३।५१।५२) १०. मुक्ति से अनावृत्ति है (पुनः जन्म नहीं होता) अर्थात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है (उ. ५१।५७). ११. नानात्व (माया की) उपाधि से है उस में सब भेद व्यवहार है (उ. ८१।८३।८९) १२. जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय में उसकी इच्छा निमित्त है (और जीवों के कर्म यह विषय सूक्ष्म और विस्तार वाला है. आगे वांचेगे). १३. उपर जो लिखा है उस में "तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मादि" जो वेदांतिओं के महा वाक्य हैं उनको और शुद्धाद्वैत के वोह एकला होने से खुशी नहीं" 'सर्वं खल्विदंब्रह्म' इत्यादि वाक्यों को बीच में न लेके कहा गया है; तथा ब्रह्म को अपना ज्ञान अज्ञान, माया से आवृत्त अनावृत्त, अपने स्वरूप को भूल गया वा नहीं, ब्रह्म को अध्यास (भ्रम) ईश्वर जीव यह ब्रह्म के आभास (प्रतिबिंब) इत्यादि पद्धति, मंतव्य वा शैली को न लेके कहा गया है, ऐसा जानना चाहिये.

परंतु वेद प्रसंग में नं. २ से नं १० तक जो शंका लिखी हैं वेही इस प्रसंग में आ खडी होती हैं, इसलिये पूर्वापर का एकंद्र विचार करें और कृष्ण यजु.

---

* वस्तुतः मुक्त है. औपाधिक बंध है.

वाले श्वेताश्वतर उपनिषद् के साथ में मिला लेवें तो अभिन्ननिमित्तोपादान, § वा अभावजन्य सृष्टि मानने की अपेक्षा से ईश्वर जीव और उपादान अनादि अनंत, इस मंतव्य द्वारा व्यवहार में उत्तम व्यवस्था हो जाती है और नीचे अनुसार उपनिषदों का मंतव्य मान सकते हैं.

१. ईश्वर जीव और प्रकृति अनादि अनंत (उ. नं. २ से ९ तक देखो). २. जीव परिच्छिन्न रागादि वाला (उ. १६।४९ वे. १०). ३. निराकार, विभु चेतन, अखंड, निरवयव, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वाधार, अज, अमर, सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति, लय का निमित्त, सक्रिय, अमूर्त, सगुण, अद्वितीय ईश्वर (वे. ३।४। २९. उ. ९।११।११।३।३०।३१।३४।३७।४०). ४. जगत् का मूलउपादान ज्ञात अज्ञात प्रकृति (उ. ६२।६३ वे. ७). ५. तीनों की सफलता सृष्टि (उ. १२।१३). विभु के असुक भाग में दोनों व्याप्य (वे. १). ६. सृष्टि की रचना उपादान से यथा कर्म नियम से (उ. ४।२८) क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है. ७. पंचभूत, काल, इंद्रिय, प्राण, मन, हिरण्यगर्भ, विराट्, ग्रह, मूल, प्राणी (पशु पक्षी मनुष्यादि) और व्यवहार परमार्थ का मार्गदर्शक वेद यह सब ईश्वर ने रचे. (वे. ६ से ९ तक ३० उ १४।६९) ८. उन मनुष्यों में पूर्व के संस्कारी देव उपदेष्टा भी हुये. (क. २३।२४). ९. तिन से मैथुनी सृष्टि हुई १०. जीव कर्म करने में स्वतंत्र; फल भोगने में परतंत्र (उ ४३।४९). ११. यथा कर्म आवागमन और तीन मार्ग (देवयान, पितृयान और सर्वसाधारण) (वे. १२ उ. ४३।२८). १२. कर्म उपासना ज्ञान यह तीन साधन (वे. २ उ. १८।१९।२०।२१). १३. सत्य संकल्प होने मे विदेही मरने पीछे जो उपासक (उत्तम जीव) को स्वतंत्र भोग (उ २२ से २५ तक) १४. ज्ञान से मोक्ष–ब्रह्मप्राप्ति (वे. ३३). १५. मोक्ष से अनावृत्ति (उ. २९।५७ वे. १३ से १६ तक) कर्म नियमानुसार प्रलय और पुनः सृष्टि उत्पत्ति ऐसे प्रवाह (वे. ६); परंतु उपरोक्त भाव वा मत उपनिषद् कर्ताओं का है या नहीं, ऐसा निश्चय रूप में मैं नहीं कह सकता.

जैसा उपनिषदों में द्वैतवादि द्वैतभाव त्रिवाद निकालते हैं, वैसे ही पूर्वोक्त वेद प्रसंग में निकाला है, क्योंकि उपनिषद् उसमें से हैं; परंतु सर्वांग में सिद्ध होना मुश्किल है, किंतु अद्वैत ही सिद्ध होता है.

---

§ वर्तमान सायंस, हेगल वगैरे फिलोसोफर एक शक्ति (ब्रह्म वा एक वस्तु) का यह दृश्य (जड चेतनात्मक जगत्-त्रिपुटीमात्र सृष्टि) रूपांतर है ऐसा मानते हैं और सिद्ध करते हैं.

विरोधाभास.

उपर जो वेद और उपनिषदों के मंत्र लिखे हैं उनमें परस्पर में विरोध जान पडता है, जेसे कि—

१. ब्रह्म अक्रिय असीम (वे. ४।२८ उ. ३०।३८) और ईश्वर सक्रिय (उ. ९।१२।८८ वे. ६). २. ब्रह्म अमूर्त्त (उ. ३१।३८।८ वे. ३।१३) और मूर्त्त (उ. ६७). ३. ब्रह्म से इतर, ज्ञाता, द्रष्टा, श्रोता और मंता नहीं (उ. ३२।३३) और जीव ज्ञाता द्रष्टा (उ. ४२।९३). ४. परमात्मा निर्गुण, साक्षी, निष्कल, इच्छा रहित, असंग (छ. १० उ. ३६।४०) और ईश्वर सगुण इच्छावाला (उ. ११।१२। ६०।८७।८८). ५. सृष्टि पूर्व ब्रह्म से इतर कुछ भी नहीं था (वे. २९।६०।६१) और सृष्टि पूर्व अन्यथा (वे. ४।६), क्योंकि असत से केसे उत्पत्ति हो सकती है? नहीं (उ. १) याने अन्य था. ६. आत्मा (जीवात्मा) मुक्त है परंतु मुक्त हुवा मुक्त होता है (उ. ९८।९९). ७. अद्वैत अर्थात् एक से इतर वस्तु नहीं यह सब ब्रह्म ही है (उ. ७९ अ. से ८९ तक). और द्वैत है याने एक ही नहीं किंतु एक से इतर भी है (उ. २ से ८ तक). ८. जीव अणु (उ. १४।१६) और जीव मध्यम (उ. ४३ से ४८ तक १८). ९. मुक्ति से अनावृत्ति (उ. २८।९७ वे. १३ से १६ तक) और मुक्ति से आवृत्ति (वे. १२ वे. २९) (ख. ३९ क १२). १०. मुक्ति में इंद्रिय बुद्धि नहीं (उ. ९४) और हैं (उ. २९।११). ११. मुक्ति में सत्संकल्प द्वारा भोग (उ. २३ से २७ तक) और मन बिना संकल्प नहीं होता अर्थात् प्रकृति का कार्य मन यदि मोक्षावस्था में है तो वोह मुक्ति नही और जो मन विना जीवात्मा ही संकल्प करे तो इच्छा संकल्प परिणाम वा अवस्था होने से जीव मध्यम-नाशवान ठेरता है. १२. (उ. ४८।१४) ब्रह्म प्रकाश और जीव उसकी छाया. उपाधि से प्रकाश का अदर्शन छाया है और जीव ज्ञाता है (उ. ४२।९३). १३. जीव अणु है और अनंत हो सकता है, (उ. १३) और एक बहुरूप हो जाता है (वे. ३४). १४. पहिले आत्मा से आकाश आदि पेदा हुवा (वे. १९). पहिले आत्मा से तैजादि पेदा हुये (उ. १). यदि उत्पत्ति में कल्प (प्रलय) का भेद मानें तो यथा पूर्व और पहिले आकाशादि कुछ भी नहीं था इन श्रुतियों का विरोध आता है. इसलिये कभी आकाश ओर कभी तैज से आरंभ मानना नहीं बन सकता.

इन विरोधों के निवारणार्थ यथा बुद्धि अनेकों ने प्रयत्न किये हैं. परंतु पक्ष दृष्टि रहने से यथा योग्य अविरोध देखने में नहीं आया. गति करे तब सक्रिय, न करे

तत्र अक्रिय, अमुक गुण होने से सगुण. अमुक न होने से निर्गुण, उस जैसा अन्य नहीं. इसलिये अद्वैत, इत्यादि. यह विरोध निवारण प्रकार नहीं है, किंतु वोह निवारण सर्वांग में मिलना चाहिये. मेरी अल्पमति में ऐसा जान पडता है कि यदि ब्रह्म ही परिणाम को पा के जगत्‌रूप हो गया इस बात को छोड दें और ब्रह्म नित्यनिर्भ्रान्त शुद्ध स्वरूप है ऐसा निश्चय कर के श्रीगोडपादाचार्य और श्रीशंकराचार्यजी की शैली (मायावाद वा चेतनवाद) का स्वीकार करें. *उपाधिवाद–अवच्छेदवाद–ब्रह्माश्रित* मायावाद को विचारें * तो वेद मंत्रों में वा उपनिषद् की श्रुतियों मे ‡ जो विरोध जान पडते हैं उन सबका निवारण हो सकता है. यहां वेद प्रसंगवाला अविरोध यह विषय ध्यान में लीजिये. और वेद उपनिषद् की एकवाक्यता करने तथा उनका विरोध निवारण करने के लिये अन्यों की साक्षी न लेके उन्हीं के मंत्रों द्वारा प्रयास किया जाय तो इष्ट सिद्ध हो जायगा. उपरोक्त शोधक की तर्क निरर्थक हो जायंगी.

शोधक जिज्ञासु † (अपवादक).

(१) उपरोक्त विरोधाभास ही प्रतिपक्षीपने का काम देता है.

(२) उपनिषद् की श्रुतियों की जुदी जुदी भावना और जुदा जुदा अर्थ (अभिन्ननिमित्तोपादान, जीवेश्वर प्रकृति भिन्न अनादि अनंत वा जगत् मायामात्र) मानें तो वक्ष्यमाण वेदांतदर्शनवाला प्रतिपक्षी सामने आ खडा होता है.

(३) जो ब्रह्म को सापेक्ष (जीव के पूर्व कर्म उपादानादि की अपेक्षावाला) मानें तो निरपेक्ष नहीं–स्वतंत्र नहीं, ऐसा आरोप आता है और जो निरपेक्ष मानें याने अपनी इच्छा से अभाव से सृष्टि की तो गर्जवाला ठेरता है और वक्ष्यमाण इसराइली मत का प्रतिपक्षी आड में आता है. इसलिये अभिन्ननिमित्तोपादान मान के स्वेच्छा से आप ही त्रिपुटीरूप (जीव जगत्‌रूप) हुवा ऐसा मानें तो यद्यपि वे उभय दोष नहीं आते; परंतु *वक्ष्यमाण शुद्धाद्वैतवाला प्रतिपक्षी प्रतिबंध* हो पडता है; इसलिये ब्रह्म को कैवल्य अपरिणामी शुद्ध मान के सब नामरूप माया के परिणाम मानें तो यद्यपि उक्त तीनों दोष नहीं आते; परंतु वक्ष्यमाण शंकर मत का प्रतिपक्षी अपना धोका लेके खडा होता है. इसलिये शोधक परीक्षक को विचारणीय है.

---

* ब्रह्म सिद्धांत का उत्तर अनुशासन इसी में आया है.

‡ वा वेदांत दर्शन और गीता में.

† अपवाद-समीक्षा जो कि विरोधी पक्षकार ने की है सो शोधक दरसाता है; ऐसा भाव आगे सर्वत्र मान लेना.

(७) पहिले ब्रह्म ही था और कुछ नहीं था उसने अनेक प्रजा सरजने की इच्छा की और अपनी शक्ति से आकाशादि रचे और आपही प्रविष्ट हुवा, ऐसा भाव मानें तो पूर्व के कर्म के विना सृष्टि रची है, ऐसा परिणाम आता है. जो यूं हो तो जीव उससे भिन्न वस्तु वा अभिन्न ? इन उभय पक्ष में यह सवाल होता है कि प्रलय कब करेगा? जो सब जीवों के मोक्ष होने पहिले प्रलय करेगा तो बंध विना प्रयत्न मोक्ष (ब्रह्म स्वरूप) हो गये; यहां शास्त्रों की निष्फलता होती है. और यदि बंधों के कर्मानुसार पुनः सृष्टि करेगा तो पूर्व कुछ भी नहीं था, इस मंतव्य का बाध होगा; तथा पहिले जीवों को पहिला जो जन्म वोह अन्याय ठेरेगा. इस पक्ष मे जीव उपाधि (अविद्या माया अंतःकरण) विशिष्ट चेतन मानो किंवा चेतन विशिष्ट उपाधि को जीव मानो किंवा अन्य मानो, सर्व प्रसंग में उक्त शंका खडी रहती है; कोई व्यवस्था नहीं होती; बंध मोक्ष–मोक्ष के साधन का अभाव परिणाम आता है. और यदि सब उत्पन्न जीव जब मोक्ष हो जायंगे तब प्रलय करेगा ऐसा मानें तो पुनः सृष्टि करना व्यर्थ होगा इच्छा निष्प्रयोजन होना असंभव है यथा पूर्व यह श्रुति असत् ठेरेगी; इसलिये विचारणीय है.

(५) कल्पित अर्थात् क्या और क्यों कल्पित इसका विचार और परिणाम आगे गोडपादाचार्य के प्रसंग में बांचोगे. वा त. द. पेज १००५ देखो.

यथापूर्व.

(६) जो अनादि जीवों के कर्मानुसार यथापूर्व सृष्टि रची; जो ऐसा मानें तो उससे पूर्व कुछ भी नहीं था इस वाक्य का विरोध आवेगा. इसलिये इस सृष्टि से पूर्व जीव उपादान अव्यक्त (लय) रूप थे, ऐसा मान सकेंगे. जब यूं है तो द्वैतापत्ति होगी, अर्थात् यथापूर्व यथाकर्म रचता आया है और रचेगा.

---

२. मनुश्री का मंतव्य.

मनुस्मृति कोई दर्शन ग्रंथ नहीं है. किंतु आर्य धर्म का पहिला मूल धर्म शास्त्र है और आर्य प्रजा में प्रमाण माना जाता है कहते हैं कि सत युग के समय से चला आता है. मनु का वाक्य औषधि का औषधि है, ऐसे साम ब्राह्मण में वाक्य है. इससे मनु और ब्राह्मण ग्रंथ का समीपकाल माना जाता है; विचारों के परिवर्त्तन और उनकी

शैली–रचना का भान हो, इसलिये सक्षेप में उसका मत लिखते है. यह मत उसके आरभ में ही लिखा है. (५ से ४१ श्लोक तक देखो) : —

५. पहिले तमाम जगत् तम में था. उसका ज्ञान न था न युक्ति से जाना जाता था किंतु सुषुप्तिवत था. ६ पीछे स्वयभु भगवान (परमात्मा) ने महा भूत और मनोमयी (अमैथुनी) सृष्टि उत्पन्न की–प्रादुर्भाव हुवा. ७ जो इंद्रिय से पर, सूक्ष्म, अव्यक्त, अनादि और सब सृष्टि का जीवन वेसे जीव + आपसे आप मनोमय (साकल्पिक) शरीर में प्रवेश करते हुये. ८. उसको प्रथम यह इच्छा हुई कि मैं अपने में से एक प्रकार की सृष्टि रचू तो उसने पहिले अप (रज) पेदा किया फेर उस में बीज डाला. ९. वोह बीज कुदन सूर्य जेसा गोला बन गया. उस में से ब्रह्मा जी पेदा हुये. ११ परमात्मा ने सब से पहिले ब्रह्मा को पेदा किया. १२. वेद ज्ञाता ब्रह्मा ने उस अडे में रहके परमात्मा का ध्यान करके उस अडे को दो विभाग में विभक्त किया. १३ सतोगुण, तमोगुण 'भूमि', आकाश, दिशा बनाये. १४. फेर ब्रह्मा ने मन को पेदा किया. मन से पहिले शक्ति और अहकार बनाया. १५ अहकार से पहिले बुद्धि (महत्तत्त्व) ज्ञानेंद्रिय ५ कर्मेंद्रिय ५ और शब्दादि तन्मात्रा बनाये. १६ उन बडे शक्ति वालो के सूक्ष्म अवयव को अपने विकार में मिला के तमाम सृष्टि बनाई. परमात्मा के सबध से यह सब पेदा हुवा है २१. फेर परमात्मा ने सब जीवो के नाम (विभाग) और कर्म जुदा जुदा पूर्व समान (जेसे पूर्व में थे वेसे) वेद द्वारा लोक में प्रसिद्ध किये. २२. वेद के पीछे वेद ज्ञाता वेद ऋषि और उनके सूक्ष्म भाग शरीर (सू स्थू शरीर) और यज्ञ बनाया. २८. परमात्मा ने सृष्टि के आरभ में जिस प्राणी को (उसके पूर्व कर्मानुसार) जिस कर्म में लगाया वोह (उसकी सतान–पशु पक्षी आदि) वेसे ही कर्म करता है अर्थात् मनुष्य के सिवाय सब भोग्य योनी है. ३२. फेर मनुष्य जाती को पुरुष स्त्री ऐसे दो भाग में विभक्त किया (दो जाती हुई). ३३. और ऋषियो जिस वैराट ने ध्यान कर के जिसको बनाया वोह (मनु) मैं हू. ओर दूसरे मेरे से पेदा हुये है ३४।३५ मैंने मरीच, भृगु आदि १० ऋषि बनाये (सतान हुई) ३६. उन्हो ने मनु, देव, स्वर्गादि और बडे बडे ऋषि बनाये (सतान हुई) ४१. सब प्राणी यथा कर्म हुये है. आगे भृगु ऋषि तुमको कहेंगे फेर प्रलय, फेर सृष्टि ऐसे प्रवाह है. वेदोक्त सत्कर्म, परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान से मोक्ष होती है, मोक्ष से अनावृत्ति है.

+ जीव पूर्व में विद्यमान थ

वर्तमान काल में पंडित श्री तुलसीरामजी ने प्राचीन मनुस्मृतियें एकत्र करके यह साबित किया है कि प्रचलित मनुस्मृति में बहुत क्षेपक भाग है, जो एक प्रति में है सो दूसरी में नहीं है, पूर्वा पर विरोधी है यह ग्रंथ प्रसिद्ध है.

इसका मूल मानव धर्म शास्त्र है. सुनते हैं कि सींगापुर के टापुओं से पूर्व की तरफ एक बाली टापु है वहा आर्य राज्य है, वहा इसका प्रचार है. यह मनुस्मृति भृगु संहिता है. भृगु और ऋषियों का संवाद है, यह बात इसी के श्लोकों से प्रसिद्ध है.

शरीर में अंतरात्मा है, जिस करके सुख दुःख जनाते हैं उन दोनों (अंतःकरण क्षेत्रज्ञ) में बडा क्षेत्रज्ञ है वोह परमात्मा से व्याप्य है १२।१३।१४. वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, संयम, अहिंसा और गुरु सेवा यह कल्यानकारी कर्म है. १२।८३. आत्मज्ञान रूप कर्म अति उत्तम-सब विद्या में उत्तम, उससे मोक्ष हो जाता है ८५. सब भूतों में आत्मा और आत्मा में सब भूत ऐसे समान जाननेवाला मोक्ष को पाता है. ९१. प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द यह तीन प्रमाण धर्मशुद्धि के वास्ते है. १०५. ऋषियों के कहे हुये धर्म उपदेश को वेदशास्त्र से अविरोधी ऐसे तर्क से जो सिद्ध करता है उसीको धर्म जानो. १०६. सब का नियंता, अणुसे भी सूक्ष्म, प्रकाशमान, स्वप्नवत् बुद्धिगम्य को परमपुरुष जानो. १२२ कोई उस परमात्मा को अग्नि, कोई मनु, कोई प्रजापति, कोई प्राण, कोई ब्रह्म कहता है. १२३. यह आत्मा तमाम प्राणियों को पंचमहाभूतों से व्याप्त करके हमेशा उत्पत्ति प्राप्ति और क्षय करता हुआ चक्र के समान गति कराता है. १२४.

क्षेपक—मनुजी का मत विवाद जैसा है, कहीं कहीं अभिन्ननिमित्तोपादान की छाया आती है. वर्तमान वेदान्त दर्शनवत् और पूर्वोक्त अभिन्ननिमित्तोपादानवत् तथा वर्तमान विवर्तवत् इसका प्रकार है.

विभूषक—पूर्वोक्त अद्वैतवाद वा विवर्तवाद इस मंतव्य में मुख्य है, ऐसा जान लेना चाहिये.

(४-५) "न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन."

वर्तमान यह उभय दर्शन अंतिम उद्देश (मोक्ष प्राप्ति) में समान है; परन्तु न्याय दर्शन का मुख्य उद्देश और है (आगे जानोगे). इन दोनों में से पहिले कौनसा बना है, इसका पता लगना मुश्किल है. अनुमान से ऐसा कह सकते हैं कि इन उभय का मूलरूप एक ही हो और न्याय पीछे बना हो, क्योंकि न्याय में अन्य

अनेक मतों की (कल्पना की) चर्चा है; परंतु विशेष पदार्थ की चर्चा नहीं है. सामान्य (जाति) पदार्थ को उद्देश में नहीं लिया है, और ४ प्रमाण लिये हैं; जो कणाददर्शन से पीछे बनता तो कणाद जैसी शैली वा उससे अन्य उत्तम शैली जरूर होती, और विशेष पदार्थ का भी बयान होता.

हां, यदि वै. दर्शन पर इसी गौतम मुनि का भाष्य हो तो न्याय पीछे बना हो ऐसा मानने को अवसर मिल जाय. (कोई कणाद दर्शन पर गौतमश्री का भाष्य होना मानता है).

ज्ञान में संबंध की अपेक्षा है, इस बात को उभय ने भली भांति प्रतिपादन किया है. कणाद दर्शन का सामान्य (जाति) पर विशेष बल है. अनुमान खंड (व्याप्ति गृह) और हेत्वाभास यह दोनों विषय उभयदर्शन से ग्रहण करने योग्य हैं. तर्क और निर्णय शक्ति के वृद्धि करनेवाले और बुद्धि को सूक्ष्म तथा सूक्ष्मदर्शी बनानेवाले दोनों दर्शन हैं उसमें भी न्यायदर्शन संशयादि १४ का विस्तार करने वाला होने से पदार्थ निर्णय करने में ज्यादा उपयोगी है और वैशेषिक पदार्थों के विभाग जानने में विशेष उपयोगी है.

न्यायप्रकाश (प्रसिद्ध है) ग्रंथ में उभय का समावेश किया है उससे जान पडता है कि इन दोनों में साधारण मतभेद भी है, जैसा कि उभय के सार बाचने से आगे जान सकोगे.

लोक समुदाय में संप्रदाय रूप से इनकी विशेष प्रवृत्ति नहीं हुई और न अब है; किंतु इनको मानने वाले जब तब छूटक छूटक गिनती के ही पुरुष हुये हैं. इसके दो कारण जान पडते हैं. १. उभय स्वतंत्र है. शब्द प्रमाण को विशेषतः दरमियान में नहीं लेते किंतु अनुमान पर विशेष आधार रखते हैं, परंतु अनुमान मात्र से शांति नहीं होती. (उ.) प्रतिपक्षी की तरफ से बहुत आक्षेप हुये हैं; यहां तक कि वर्तमान में जो ग्रंथ छपते हैं उनमें भी वै. को †उलूक दर्शन और न्याय को ‡अक्षपाद दर्शन नाम दे के छापते हैं. तथापि शास्त्रार्थ रूप युद्ध प्रसंग में और विषय निर्णय प्रसंग में इनके निंदक भी इन उभय कि पद्धति की सहायता लेते हैं अर्थात् अनुमान खंड, हेत्वाभास, जाति, निग्रह स्थान—इत्यादि विषयों

† घू घू. (अंधेरी रात में देखने वाला).

‡ अंधा. (पग में भी जिसकी आंखें याने चारों तरफ से देखने वाला)

के दरमियान में लेके अपना इष्ट साधते हैं, यह इन उभय की प्रशंसनीय अलुप्त और उपयोगी महिमा है.

अन्य दर्शनों से इनके विषय का विशेष वर्णन लेने में हमारा उद्देश भी वही है; इसलिये परीक्षक महाशय क्षमा करेंगे.

४. न्यायदर्शन.

इस दर्शन के प्रवर्त्तक श्रीगौतम मुनि हैं; इसलिये इसका नाम गौतमदर्शन है. इसमें जितनीक चाहिये उतनी सामग्री सहित न्याय (पंचावयवात्मक अनुमान) का निरूपण है; इसलिये इसको न्यायदर्शन कहते हैं किस प्रकार से हम किसी विषय में यथार्थ ज्ञान पर पहुंच सकते हैं और अपने वा दूसरे के अयथार्थ ज्ञान की त्रुटि (सीमा) जान सकते हैं. इस विद्या का सिखाना इस दर्शन का मुख्य उद्देश है. इसलिये इस विद्या के आन्वीक्षिकी विद्या (अनुमान प्रधान शास्त्र) कहते हैं. इसके साथ ही मोक्षोपयोगी तत्त्वज्ञान का भी इसमें उल्लेख है कणाद मुनि की तरह तत्त्व-पदार्थ मान के आगे नहीं चलते किंतु जिन पदार्थों से उनका उपरोक्त (निर्णय शिक्षण) उद्देश सिद्ध हो उसको अर्थात् प्रमाणादि १६ पदार्थ का उद्देश, पीछे उनके लक्षण, पीछे उनकी परीक्षा लिखी है. जो कणाद मुनि जैसा उद्देश होता तो आगे जा के जाति (सामान्य प्रमेय) ईश्वरादि का स्वीकार किया है वोह उद्देश में लेते. इसलिये दर्शन पद्धत्ति के अनुकूल ही है.

इस दर्शन पर वात्सायन भाष्य है. और टीका वृत्तिकार अनेक हुये हैं. इस दर्शन के ५ अध्याय हैं. प्रति अध्याय दो दो आह्निक हैं.

गौतम मुनि त्रेता के अंत में (महाराजा रामचंद्रजी के समय) हुये हैं, और इन सुशील स्वतंत्र मुनि पर अमुक ब्राह्मण मंडल की अकृपा हुई थी, ऐसा कथाओं में सुनते हैं. राजा रामचंद्रजी गौतम का सवाद भी हुवा है. गौतम मुनि का पुत्र सदानंद राजा जनक का वजीर था.

गौतम मुनि का मंतव्य.

१. ईश्वर जीवों के कर्मानुसार जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का निमित्तकारण है. (४।१।१९). *

* न्यायदर्शन के ५ अध्याय प्रति अध्याय दो दो आह्निक हैं पहिला अंक अध्याय का दूसरा आह्निक का, तीसरा सूत्रांक है; ऐसा जानना चाहिये.

२. जीव विभु, नाना, इच्छादि गुणवाला, शरीर से भिन्न, पुनर्जन्म पाने वाला, ज्ञानादि गुण जिसके उत्पन्न नाश होते हैं. (क) इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान (बुद्धि) यह ६ आत्मा के लिंग हैं (१।१।१०) बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान यह एक अर्थ के वाची हैं (१।१।१५). (ख) रागादि (ज्ञान इच्छा स्मृति) आत्मा के गुण हैं (३।२।३ से २० तक. ३।२।४१।४२. ३।१।१४. ३।२।३९. ४।१।२). (ग) ज्ञानादि गुण उत्पत्ति नाश वाले हैं (३।२।२५,४४).† (घ) आत्मा संघात (तन मन इंद्रिय) से भिन्न है (३।१।१९). (ङ) आत्मा का पुनर्जन्म है, आत्मा नित्य है, (३।१।१९. ३।२।६३). (च) जीवात्मा विभु है (३।२।२६, २७) की अर्थापत्ति से, क्योंकि वादि के विभु कथन का परिहार नहीं है. जीवात्मा शरीरव्यापी है. (३।२।२१). इसकी अर्थापत्ति से जीव विभु है, नहीं तो मध्यम नाशवान ठेरेगा. (छ) मन के संयोग से ज्ञानादि उत्पन्न होते हैं (२।१।२३). (ज) जीव के बंध का प्रवाह है (१।१।२ ३।२।६३. ४।१।४६,५५). (झ, जीव व्यवस्था से नाना हैं (भाष्य).

३. पंचभूत, काल और मन यह (ईश्वर जीव के समान) नित्य है. (क) पंचभूत नित्य हैं (१।१०।१३. ४।१।३२ की अर्थापत्ति से. और ४।१।११ से). (ख) आकाश विभु और नित्य है. सर्व का संयोगी होने से (२।३।१. ४।२।२१). (ग) काल नित्य है (१।२।५९ की अर्थापत्ति से). (घ) मन अणु है (३।२।६२) इसलिये अर्थापत्ति से नित्य ठेरता है.

४. जीव की मोक्ष होती है (१।१।२. ४।१।६१,६३,६४) प्रमाणादि १६ पदार्थों के तत्त्व ज्ञान से मोक्ष होती है. (सत्संग, उससे तत्वज्ञान, उससे मिथ्या ज्ञान की प्रवृत्ति, उससे दोषभाव, इससे प्रवृत्ति का अभाव, इससे जन्म का अभाव, इससे दुःख (जन्म) का अभाव हो जाता है (१।१।२।४।२,१,३६,४७).

५. दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति का नाम मोक्ष है (१।१९।२२) मोक्ष में तन मन इंद्रिय नहीं होते (४।२।४५).

६. मोक्ष से अनावृत्ति है अर्थात् पुनः जन्म नहीं होता. (३।१।२५).

७. जीवन मुक्त की प्रवृत्ति बंध का हेतु नहीं होती. (४।१।६५).

† आत्मा का ज्ञान गुण नित्य है, जो ऐसा न मानें तो आत्मा जड़ ठेरेगा. (वात्सायन मुनि भाष्यकार).

८. आप्त वाक्य होने से मंत्रायुर्वेद के समान वेद प्रमाण है. (२।१।६९).+

९. प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द यह ४ प्रमाण हैं.

विशेष वर्णन.

प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान इन १६ के तत्त्व ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है (१।१।१) इन में से प्रमेय के तत्व ज्ञान से मोक्ष होती है और प्रमाणादि पदार्थ उस तत्वज्ञान के साधन हैं. यह १६ पदार्थ मूल तत्व हैं ऐसा नही है. किंतु हेय (२१ दुःख), हेय का हेतु (मिथ्या ज्ञान), हान (दुःख निवृत्ति), हानोपाय (तत्त्वज्ञान), इनका ज्ञान प्रमाणादि के ज्ञान से हो जाता है; इसलिये अन्य पदार्थ (समवाय, सामान्य, विशेष आदि) न लेके प्रमाणादि का बयान है. ईश्वर अप्रमेय होने से इनके अंदर नही गिना जा सकता.

दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्या ज्ञान इनमें से उत्तर उत्तर का नाश पूर्व पूर्व के निवृत्त होने से अपवर्ग (मोक्ष) की प्राप्ति होती है. (१।१।२). मिथ्या ज्ञान (अनात्म मे आत्म बुद्धि, उलटा वा झूठा ज्ञान) से दोष (राग द्वेष-मोह), दोष से पुण्य पाप (धर्माधर्म), इस प्रवृत्ति से जन्म (आत्मा का तन मन के साथ संबंध होना) और जन्म से दुःख होता है (स्वर्गादि प्राप्ति का नाश भी दुःख ही है); ऐसा अनादि से प्रवाह हैं. जब तत्त्व (आत्म) ज्ञान हो तब उससे मिथ्या ज्ञान का नाश होता है; उससे रागादि का, उससे प्रवृत्ति (धर्माधर्म संस्कार) का, उससे जन्म का नाश होता है. जन्माभाव से दुःख का नाश होता है. दुःख का अत्यंत नाश ही मोक्ष है.

प्रमाण=प्रमाता, जिस साधन से विषय को उपलब्ध करे याने यथार्थ ज्ञान होने का साधन. **प्रमेय**=जो वस्तु जानी गई-ज्ञेय. **प्रमाता**=विषय को जानने वाला वा त्याग ग्रहण की इच्छा से प्रवृत्त होने वाला. **प्रमिति**=यथार्थ ज्ञान (प्रमा)

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द यह ४ प्रकार के प्रमाण हैं (१।१।३). किसी के शब्द के बिना, भ्रमभिन्न अर्थात न बदले ऐसा अबाधित, संशय रहित और इंद्रिय तथा अर्थ के संबंध से जो ज्ञान उत्पन्न हो उससे प्रत्यक्ष कहते हैं (१।१।४). ५ ज्ञानेंद्रियजन्य और मन द्वारा जन्य होने से ६ प्रकार का प्रत्यक्ष है. आन्तर

+ ईश्वर जीव, उपादान, बंध, मोक्ष, मोक्ष के साधन, सृष्टि पूर्वोत्तर प्रवाह इन विषयों में वैशेषिक और न्याय इन उभय दर्शनकर्ता का समान मत है.

काष्ठाकृति? वैशेषिक में इसे स्वतंत्र संशय नहीं माना है, संशय में अनुमान नियम से होता है. प्रमाण संशय (यह ज्ञान यथार्थ है वा नहीं), प्रमेय संशय (यह जल है वा नही), द्विकोटी (यह स्थाणु है वा क्या), अनेक कोटी (यह स्थाणु वा पुरुष वा चोर वा भूत?) इत्यादि संशय के प्रकार हैं.

प्रयोजन—जिस अर्थ को लक्ष्य में रख के पुरुष की प्रवृत्ति होती है, उसको प्रयोजन कहते हैं. (१।१।२४). दुःख रहित सुख की प्राप्ति मुख्य प्रयोजन है और उसके जो साधन हैं वे गौण प्रयोजन हैं.

दृष्टांत—जिस अर्थ में साधारण लोगों की और परीक्षकों की बुद्धि की समता (समानपना) होती है वोह दृष्टांत है (१।१।२९). जो कार्य, जन्य है वोह अनित्य होता है, इसमें सबकी समान बुद्धि है सूत्र में वादिप्रतिवादि वा सर्वथा मुख्य-जड बुद्धि का पद नहीं है. दृष्टांत के विरोध से परपक्षखंडन और दृष्टांत के समाधान से ही अपना पक्ष स्थापन होता है * दृष्टांत को न्यायमत में उदाहरण रूप से मानते हैं.

सिद्धांत—प्रमाण सिद्ध अर्थ के अबाधित निश्चय को सिद्धांत कहते हैं. सो ४ प्रकार का होता है. (१।१।२६).

१. सर्वतंत्र=जो सब शास्त्रों का हो. यथा नेत्रादि इंद्रिय शब्दादि उनके विषय. अग्नि स्पर्श से जलना इत्यादि. २. प्रतितंत्र=जो स्वमान्य शास्त्र का हो. यथा ईश्वर नहीं यह चार्वाक का. ईश्वर है यह वैशेषिकादि का ३. अधिकरण=जिसकी सिद्धि से दूसरे विषय की सिद्धि होती हो. यथा घट चक्षु से देखता और त्वचा से छू रहा हूं इन दोनों ज्ञान का अधिकरण दोनों इंद्रियों से भिन्न है. यहां आत्मा सिद्धि में इंद्रियों की अनेकता अधिकरण सिद्धांत है किंवा जिस अर्थ की सिद्धि विना अन्य अमुक अर्थ किसी प्रमाण से सिद्ध न हो उसको अधिकरण सिद्धांत कहते हैं यथा—दृश्य पदार्थ की स्थिरता विना (क्षणकत्व खंडन विना) उक्त पदार्थों की स्थूलता किसी प्रमाण से सिद्ध नही हो सकती यहां स्थिरत्व अधिकरण सिद्धात है. ४. अभ्युपगम सिद्धांत=अपरीक्षत पदार्थ को मानके उसकी विशेष परीक्षा का नाम है. जेसे न्याय के सूत्रों में मन को इंद्रिय नहीं कहा है और परीक्षा से इंद्रिय मानना अभ्युपगम है. किंवा वादि के मंतव्यानुसार शब्द द्रव्य हो,

---

* दृष्टांत देने मात्र से साध्य की सिद्धि नहीं होती, यथा ईश्वर व्यापक है आकाशवत्, इतना दृष्टांत मिलने से व्यापकत्व सिद्ध न हुआ. और जो उदाहरण है तो साध्य टेर सकेगी.

परंतु उत्पत्ति नाशवाला होने से नित्य नहीं हो सकता. यहां शब्द को द्रव्य मानना अभ्युपगम सिद्धांत है.

अवयव—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, यह पांच अवयव कहाते हैं (१।१।३२) अनुमान दो प्रकार का है. १. स्वार्थानुमान–धूम अग्नि के व्याप्ति ज्ञान वाले को धूम दर्शन से अग्नि का अनुमान हो जाना २. पदार्थानुमान—जब दूसरे को निश्चय कराना हो तब मुख से वाक्य कहने पडते हैं वे ५ अवयव कहाते हैं (१) **प्रतिज्ञा**—(दावा) साध्य बोधक वाक्य. यथा–**इस पर्वत में अग्नि है १.** (२) **हेतु**—अपनी प्रतिज्ञा की सिद्धि का साधक वाक्य (याने उदाहरण के साधर्म्य वा वैधर्म्य द्वारा साध्य का प्रतिपादक वाक्य) यथा – **यहां धूम है इस वास्ते २.** (३) **उदाहरण**—साध्य की सिद्धि वास्ते मिसाल (दृष्टांत) बोधक वाक्य (याने पक्ष के साधर्म्य वा वैधर्म्य द्वारा पक्षवृत्ति धर्म के बोधक दृष्टांत वाक्य को उदाहरण वाक्य कहते हैं) यथा–**जहां जहां धूम वहां वहां अग्नि होती है जैसे कि रसोईगृह में ३.** (४) **उपनय**—उदाहरण के आधीन साध्य का उपसंहार बोधक वाक्य. यथा–**वैसा** (रसोई घर जैसा) यह (पर्वत) धूम वाला है ४. (५) **निगमन**—हेतु का कथन पाये जाने से प्रतिज्ञा का पुनः कथन. यथा–**इसलिये इसमें अग्नि है. ५.** इस वाक्य को उपसंहार भी कहते हैं. हेतु तीन प्रकार के होते हैं १. साधर्म्य हेतु को **केवलान्वयी. २.** वैधर्म्य हेतु को केवलव्यतिरेकी. ३. साधर्म्य वैधर्म्य वाले को अन्वयव्यतिरेकी कहते हैं. (वैशेषिक में विशेषरूप कहेंगे). प्रतिज्ञा वाक्य में शब्द प्रमाण है. हेतु वाक्य में अनुमान, उदाहरण में प्रत्यक्ष और उपनय में साधर्म्य वैधर्म्य द्वारा उपमान प्रमाण है.

तर्क—(युक्ति) जिसका यथार्थ ज्ञान न हो उसके यथार्थ जानने के लिये कारण (व्यापक) के आरोप द्वारा जो कार्य (व्याप्य) का आरोपन करना सो तर्क कहाता है. यथा परवत में अग्नि न होती तो धूम भी न होता. किंवा, मेरे मुख में जिह्वा नहीं इस समान यह दृश्य धूम भी नहीं है. पक्ष और व्याप्ति में ज्यादे तर्क होते हैं. तर्क ८ प्रकार के हैं. १. **आत्माश्रय**–(अपनी सिद्धि में अपनी अपेक्षा). २. **अन्योऽन्याश्रय**–(दो की सिद्धि में परस्पर की अपेक्षा). ३. **चक्रिका**–पहिले को दूसरे की दूसरे को तीसरे की और तीसरे को पहिले की अपेक्षा. ४. **अनवस्था**–प्रथम प्रथम को उत्तर उत्तर की अपेक्षा. ५. **व्याघात**–कहे हुये से विरुद्ध कथन. ६. **प्रतिबंदी**–प्रश्नोत्तर की समानता का नाम है. जहां उभय को चुप होना पडे.

फल, दुःख और अपवर्ग यह १२ प्रमेय हैं. (१।१।९) *

१. आत्मा=इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान यह ६ आत्मा के लिंग हैं. इच्छादि का जो अधिकरण सो आत्मा. इस शरीर में शरीर से भिन्न जो भोक्ता सो आत्मा. इच्छादि लक्षण हैं; नहीं के सिद्ध करने के हेतु; क्योंकि इच्छादि असाधारण धर्म हैं. धूमवत् अग्नि ज्ञान के हेतु नहीं हैं यहां सामान्यतोदृष्टानुमान है; क्योंकि आत्मा की सिद्धि अनुमान से की है. दुःख सुख के साक्षात्कार का नाम भोग है. भोक्ता आत्मा है. (वात्सायन).

२. शरीर — जो चेष्टा, इंद्रिय और अर्थ का आश्रय है सो शरीर है. (१।१।११); जिसमें हो के जिस द्वारा आत्मा भोक्ता है वोह शरीर है.

३. घ्राणादि पांच ज्ञान इंद्रिय भूतों से होती हैं (१।१।१२). जिनके संबंध से आत्मा को ज्ञान हो वा जिन द्वारा भोग होवे—श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण यह पांच ज्ञानेंद्रिय हैं. पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश यह पांच भूत हैं. (१।१।१३).

४. गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द यह पृथ्वी आदि भूतों के गुण हैं और घ्राणादि इंद्रियों के विषय हैं. इनको अर्थ कहते हैं. यह भोग्य हैं. *

५. बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान यह एक अर्थवाची हैं (१।१।१५). यह घट वगैरे व्यवहारों की हेतु बुद्धि अर्थात् ज्ञान है. परंतु विषयों का अनुभव करना (भोगना) बुद्धि है. बुद्धिवृत्ति का पदार्थाकार होना धर्म है इसी को ज्ञान कहते हैं यह बात ठीक नहीं है. (वात्सायन). अपरिणामी चेतनात्मा के संबंध से बुद्धि में आत्मा का प्रतिबिंब + पडता है इसलिये बुद्धि चेतनरूप होती है, ऐसी बुद्धि का अर्थाकार परिणाम ज्ञान कहाता है (वाचस्पति). बुद्धि के भेद (स्मृति, अनुभूति – विद्या, अविद्या—संशय, विपर्यय इत्यादि वक्ष्यमाण वैशेषिक दर्शनवत् समझ लेना चाहिये).

६. मन—विषयों के साथ इंद्रियों का संबंध होने पर भी अनेक ज्ञानों की उत्पत्ति न होना मन की सिद्धि में लिंग है. (१।१।१६). आत्मा में एक समय में एक ज्ञान होने का और सुख दुःख के साक्षात्कार होने का साधन मन है. इंद्रियों

---

* सामान्यादि, प्रमेय संख्या संयोगादि विषय अन्य भी हैं परंतु दर्शनकार को इतने ही अभिष्ट हैं, इसलिये अन्य का वर्णन न किया.

+ त. ९ अ. २।१६५।४६८ से यह बात बाधित है

का सहायक है. मन नित्य है — क्योंकि भूतों से उत्पत्ति नहीं कही है और (३।२।१२) मे अणु कहा है. (विश्वनाथ).

७. मन वाणी और शरीर से होने वाले व्यापार (कर्म) का नाम प्रवृत्ति है. वे पुण्यात्मक और पापात्मक रूपवाली है.

८. जिससे प्रवृत्ति हो उसका नाम दोष है. वे राग द्वेष और मोह है (१।१।१८). राग=अनुकूल पदार्थों में इष्ट बुद्धि. द्वेष=प्रतिकूल मे अनिष्ट बुद्धि. मोह=वस्तु का अविवेक रूप मिथ्या निश्चय.

९. प्रत्यभाव=बार बार जन्म (शरीर संबंध असंबंध) प्रत्यभाव है. (१।१।१९). जीव को उक्त कारण से अनादि से ऐसा है.

१०. प्रवृत्ति और दोष से जन्य अर्थ अर्थात् दुःख सुख फल है. (१।१।२०). दुःख सुख के ज्ञान का नाम फल है. (वात्सायन) अर्थात् सुख दुःख का अनुभव करना फल है.

११. बाधना लक्षण दुःख (पीडा होना) है (१।१।२१). विषय सुख साधन मे भी दुःख है. और विषय सुख का फल जो जन्म होना सो भी दुःख है.

१२. अपवर्ग दुःखकी अत्यंत निवृत्ति (फेर कभी न हो) का नाम मोक्ष है. प्रमेयका वर्णन हुवा आगे प्रसंग प्राप्त संशय आदिको संक्षेपमे कहते है.

संशय—समान धर्म और अनेक धर्मकी उपपत्ति, विप्रतिपत्ति और उपलब्धि तथा अनुपलब्धि की अव्यवस्था से विशेष धर्म के प्रत्यक्ष न होने पर एक वस्तु में होनेवाले विरोधी ज्ञान का नाम संशय है (१।१।२३) एक धर्मी में अनेक वा विरुद्ध धर्मोंका ज्ञान, संशय कहाता है १. सो सामान्य धर्म प्रत्यक्ष होने और विशेष धर्म प्रत्यक्ष न होनेसे होता है यथा—दूरस्थ खंभमे यह स्थाणु वा पुरुष? २. सजातीय विजातीय धर्म का नाम अनेक है. शब्द नित्य है वा अनित्य. शब्द द्रव्य है, गुण है वा कर्म है? यह संशय होता है; क्योंकि वीणा और बासकी ग्रंथी के फटने पर शब्द उत्पन्न होने से शब्द, द्रव्य और कर्म के समान जान पडता है ३ एक कहता है आत्मा है; दूसरा नहीं है, ऐसा कहता है ऐसे दो कोटी प्रतिपादक (विप्रतिपत्ति) होने से आत्मा है वा नहीं ऐसा संशय होता है ४ उपलब्धि (प्रतीति) अनुपलब्धि (अप्रतीति) भी संशय का कारण हो जाता है. यथा मृगजल वा सत्यजल, वनधूम वा धंध (धुंध), लकडी का काला सर्प देख के सर्प वा

७. लाघव कल्पना – कार्य की साधक समर्थ एक वस्तु की कल्पना. ८. गौरव कल्पना–एक से कार्य सिद्ध होने पर भी तिसके वास्ते नाना मानना गौरव कल्पना. +

निर्णय—संशय होने पर पक्ष और प्रतिपक्ष के द्वारा विचार करके पदार्थ का निश्चय होता है उसे निर्णय कहते है (१।१।४१). निर्णय के लिये संशय की अपेक्षा ही है, ऐसा नियम नहीं है. विशेषतः प्रत्यक्ष और शब्द से जो निर्णय किया जाय उसमे. परंतु अनुमान द्वारा पदार्थ निश्चय मे संशय की आवश्यकता होती है. वाद अपने अपने निश्चय मे होता है. संशय मे तो उपदेश होता है. और प्रमाण तथा तर्क से निश्चय किया जाता है. संशय निवृत्तिवाद का फल है.

वाद —(बात चीत. संभाषण) तीन प्रकार की कथा होती है उसमे से छल जाति निग्रह रहित हार जीत की अपेक्षा विना जिसमे जिज्ञासु के लिये तत्त्वो के निर्णय का अभिप्राय उस कथा को **वाद** कहते है. इस कथा मे प्रमाण और तर्क से ही काम लिया जाता है.

जल्प–प्रमाण और तर्क साधन होने पर भी छल, जाति और निग्रहस्थान से अपने पक्ष की सिद्धि और परपक्ष का खंडन किया जाय उसप्रश्नोत्तररूप वाक्य समुदाय को जल्प कहते है. (१।२।४). यह विवाद निर्णय करने के लिये नही होता किंतु हार जीत की दृष्टि से होता है

वितंडा–अपने पक्षके स्थापन के विना परपक्ष का हरेक प्रकार से खंडन करना उसको वितंडावाद कहते है प्रमाण, तर्क छल, जाति से अर्थात सब प्रकार परपक्ष का खंडन करना ऐसी कथा प्रायः ईर्षा से होती है. उसके साथ प्रवृत्त न होना चाहिये वा तो कोई युक्ति से उसका पक्ष स्थापन कर लेना चाहिये.

विवाद वाली कथा राजा और मध्यस्थो द्वारा होनी चाहिये. अधिकारियो वास्ते उसकी अपेक्षा नही होती. आस्तिको की श्रद्धा न डिगे, सत्य सिद्धांत मे संशय वा उसका उत्थान न हो, किंतु जेसे वाड से बाग, खेत की रक्षा होती है उस प्रकार उसकी रक्षा हो, इसलिये विवाद रूप कथा की अपेक्षा होती है.

हेत्वाभास–सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम, और अतीत काल यह पांच प्रकार के हेत्वाभास होते है (२।१।४). जिस लिंग द्वारा अनुमान हो

+ विनगमन विरहदोष=मत के कारण म. युक्ति का अभाव रहना प्रागलोपदोष= अमुक संख्या वाले को अंतिम कारण मान के उसके पहिले के कारणो का लोप होना, एव आत्माश्रयादि १० दोष है जो हो तो इनका प्रतिपादन तर्क रहाता है

उसे हेतु कहते है. परंतु जो हेतु न हो और हेतुवत् भासे सच्चे अनुमान होने में प्रतिबंधक हो, उसे हेत्वाभास कहते हैं. वे पांच प्रकार के हैं. उन में भी अनेकांतिक (व्यभिचारी) ३ प्रकार का और साध्यसम, भी ३ प्रकार का होता है.

(१) **अनैकांतिक** (सव्यभिचार)=जो हेतु जहां साध्य न हो वहां भी हो, सो ३ प्रकार का होता है. **साधारण**-साध्यभावाभाववर्ति=यथा-शब्द नित्य है अस्पर्श होने से. यहां अस्पर्शत्व आत्मा मे भी है २. **असाधारण**-केवल पक्षवर्ति. यथा शब्द नित्य है शब्दत्व होने से. यहां शब्दत्व का कोई सपक्ष वा विपक्ष न होने से केवल शब्द वृत्ति है. इसलिये अनुमान करने का सहकारी नही है. किंवा साध्य के साथ एक अधिकरण वर्ती न हो सो असाधारण हेतु. यथा-शब्दत्व, नित्य जो आत्मा उस मे नही होता किंवा सपक्ष अवर्ति असाधारण. यथा-शब्द अनित्य है शब्दत्व होने से. यहां शब्दत्व असाधारण नहीं है. ३. **अनुपसंहारी**- जो हेतु सब में वर्तता हो. यथा-सब नित्य हैं प्रमेय होने से. यहा प्रमेयत्व सब में है. किंवा जिस हेतु के साध्य का सर्वत्र अन्वय हो सो. यथा सब नामी हैं प्रमेय होने से. जो प्रमेय नही वोह नामी नही. किंवा जो अन्वय व्यतिरेकी दृष्टांत से रहित हो उसे अनुपसहारी कहते हैं. उदाहरण उपर समान.

(२) **विरुद्ध**=जो हेतु साध्य का विरोधी हो. यथा-शब्द नित्य है, कार्य होने से, घटवत्. यहां नित्यत्व साध्य का कार्यत्व विरोधी है. सत्प्रतिपक्ष नाम के हेत्वाभास में साध्याभाव का साधक दूसरा हेतु होता है. और विरुद्ध हेतु में वही हेतु साध्याभाव का साधक होता है (आगे कहेंगे). यह दोनों में अंतर है.

(३) **प्रकरणसम**=जिस हेतु से साध्यसिद्धि मे संदेह बना रहे. यथा-शब्द अनित्य है, नित्य धर्म की उपलब्धि न होने से घटवत्. दूसरा कहता है, शब्द नित्य है अनित्य धर्म न पाये जाने से आकाशवत्. इस प्रकार नित्य अनित्य में चिंता रहती है. नवीन इसको सत्प्रतिपक्ष भी कहते हैं. क्योंकि साध्याभाव का साधक जो अन्य हेतु उसकी प्राप्ति होती है. किंवा साध्यपक्ष में ही तदाभाववर्ती हो. वोह सत्प्रतिपक्ष. यथा-शब्द नित्य है श्रोत्र का विषय होने से. शब्दत्ववत्. शब्द अनित्य है कार्यत्व होने से. घटवत्. किंवा जिस हेतु की साध्याभाव के साथ व्याप्ति पाई जावे उस हेतु वाले पक्ष का नाम सत्प्रतिपक्ष है. यथा-तालाव अग्नि वाला है, धूम होने से. यह सत्प्रतिपक्ष है.

(४) साध्यमप=जो हेतु साध्य समान साध्य (तकरारी हो–सिद्ध न हुवा हो) हो सो. यथा—छाया द्रव्य है, गतिमान होने से. यहां छाया मे गति है वा नहीं, यह अभी साध्य है. किंवा यह असिद्ध हेतु है. जो हेतु पक्ष में न वर्ते और जिसकी साध्य के साथ अव्याप्ति हो, उसे असिद्ध हेतु कहते हैं. गतिपना यह हेतु द्रव्यत्व का साधक नहीं क्योंकि आकाश द्रव्य है और उसमे गति नही होती. घट द्रव्य है. श्रावण होने से. यहा श्रावण असिद्ध हेतु है. असिद्ध हतु= ३ प्रकार के होते हैं. १. आश्रयासिद्ध—जिसका पक्ष, पक्ष विशेषणवाला न हो. यथा—हिममय पर्वत अग्नि वाला है. धूम होने से. यहां धूम हेतु आश्रयासिद्ध है. २. स्वरूपासिद्ध—जो पक्ष में अव्याप्य हो वा हेतु अभाव वाला पक्ष हो यथा घट पृथ्वी है पटत्व होने से. यहा घट पक्ष में पटत्व धर्म का अभाव है. ३. व्याप्यत्वासिद्ध—जो व्याप्ति असिद्ध दोष वाला हो सो. वा प्रमाण का विषय न हो सो. यथा घट क्षणिक है भावरूप होने से. यहां क्षणिकत्व, भावरूपत्व का सहकारी नहीं है. धूम प्रसग मे गीली लकडी का सयोग उपाधि है. इसलिये अग्नि धूम का सबंध सोपाधि है. अर्थात् व्याप्यत्व सिद्ध है; परतु जहां अग्नि वहां धूम, यहां व्याप्यत्वासिद्ध है. इस प्रकार साध्याप्रसिद्ध और साधनाप्रसिद्ध यह दोनो हेतु आभास, व्याप्यत्वासिद्ध गिने जाते है. कचनमय पर्वत अग्नि वाला है धूम होने से. यहा कचनमय अग्नि अप्रसिद्ध है इसलिये साध्याप्रसिद्ध. पर्वत अग्निमान है, कंचनमय धूम वाला होने से. यह साधन अप्रसिद्ध हेतु है.

५. कालातीत=जो हेतु साध्यकाल मे न हो (स्थाई न हो). यथा—शब्द नित्य है; क्योकि सयोग से व्यक्त होता है. यहां कालातीत हेतु है; क्योकि जेसे प्रकाशकाल मे रूप व्यक्त और अभाव काल में अव्यक्त है (ज्ञान का विषय नहीं), वेसे शब्द नहीं. अर्थात् भेरी आदि के सयोग के अभाव काल में भी दूरस्थ को सुना जाता है इसी हेतु को बाधित भी कहते हैं. साध्याभाव दोष वाला हेतु बाधित कहाता है. यथा—अग्नि अनुष्ण है, द्रव्यत्व धर्म वाला होने से. जलवत्. यहा द्रव्यत्व हेतु साध्य अभाव वाला है. बाधित हेत्वाभास ४ प्रकार के होते हैं.

हेत्वाभास ५ ही है ऐसा नही है; किंतु जिस जिस पक्ष, साध्य और हेतु मे जितने दोष हो सकें उतने ही हेत्वाभास हो सकते हैं; इसलिये साध्यनिर्णय प्रसग में हेतु पर खूब ध्यान देना चाहिये.

छल—दूसरे अभिप्राय से कहे हुये शब्द में दूसरे अभिप्राय की कल्पना कर के दूषण देना छल कहाता है. सो ३ प्रकार का होता है. १. वाक्छल—सामान्य शब्द को वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध विशेष अर्थ में जो ले जाने वाला सो वाक्छल. यथा-नव कंबलवाला. इस वाक्य के नये कंबल वाला और नो ९ कंवल वाला यह दो अर्थ होते हैं. छलवादि दूसरा अर्थ लेके दोष देता है. परंतु अर्थ लेना चाहिये वक्ता के अभिप्राय का. यथा गो (गाय) लाना. यहां जिस गाय में वक्ता का आशय है वही गाय लाई जायगी. अन्य नही (वक्ता दूसरे को धोखा देने के लिये द्विअर्थी वाक्य कहे वोह भी छल है). २. सामान्य छल—अति सामान्य के योग से सभव अर्थ के विरुद्ध वा सभव अर्थ को छोड के अर्थ की कल्पना करना सो सामान्य छल है. यथा यह पुरुष महावीर है. दूसरा वोला कि मनुष्य मे प्राय: वीरता होती है. (छलवादि) यदि मनुष्य वीर. तो वालक शरीर और कायर शरीर भी वीर होने चाहियें. ३. उपचार छल—उपचार से कहे हुये शब्द को मुख्य अर्थ मे लेके दूषण देना, उपचार छल है. यथा—मार्ग चलता है (सडक वाले मार्ग पर पंथाई आते जाते हैं). यहां छलवादि कहे कि मार्ग में चलनरूप गति नही होती. यहां गति छल से मार्ग का अर्थ लेना चाहिये था. छल, असत्, उत्तर है, उससे छलवादि की हानि है. यहां तक कि जो प्रतिवादि छल का उत्तर न कर सके तो भी छलवादि की जय नहीं होती.

जाति—(व्याप्ति आदि नियम से रहित उत्तर) साधर्म्य और वैधर्म्य से होने वाले निषेध का नाम जाति है (१।२।१८). वा असत् उत्तर जाति है. जब कोई सचा उत्तर न फुरे तो साधर्म्य वैधर्म्य को लेकर ही समय टालना जात्युत्तर है. यथा—अग्नि वाला पर्वत यदि महानस (रसोई घर) के साधर्म्य से धूम वाला है तो तालाबवर्ती द्रव्यत्व के साधर्म्य से अग्नि अभाव वाला भी होना चाहिये. इस प्रकार व्याप्ति की अपेक्षा विना केवल साधर्म्यत्व (वा वैधर्म्यत्व) मात्र से साध्य साधक हेतु को असमर्थ बताना जाति है. पर्वत अग्निवान है, धूम होने से. (जातिवादि) तालाव निरग्नि है द्रव्यत्ववान होने से. महानसवत्. वैसे पर्वत निरग्नि है द्रव्यत्ववान होने से. जाति के साधर्म्य समादि २४ भेद और उनके दोष पांचवें अध्याय के पहिले आह्निक में लिखे हैं. (यहां उनको लिखने का अवसर न मिला).

निग्रहस्थान—विप्रीत ज्ञान को वा कथित के न समझने को निग्रहस्थान कहते हैं. मिथ्या साधन मे साधन बुद्धि, दूषणाभास में दोष बुद्धि को विप्रतिपत्ति (विप्रीत

ज्ञान) कहते हैं. साधन में दोष न बता सकने वा कहे हुये दोष का अनुद्धार वा उत्तर न देना—हारने का नाम निग्रहस्थान (पराजय की जगेह) है. यथा (वादि) शब्द अनित्य है. इंद्रिय का विषय होने से. (प्रतिवादि) सामान्य नित्य है, इंद्रियों का विषय होने से. तद्वत् शब्द भी नित्य क्यों न हो. (वादि) यदि सामान्य नित्य है तो शब्द भी भले नित्य हो. यहां वादि की प्रतिज्ञा की हानि होने से निग्रहस्थान है. इस प्रकार २२ प्रकार से हार होती है. उसका विस्तार न्याय अ. ५।२ में है. (यहां अवसर न मिलने से नहीं लिखे हैं).

ऊपर कहे अनुसार १६ पदार्थों का उद्देश और पीछे १।२।१ तक मे लक्षण कहे. उस पीछे उनकी परीक्षा कही है. उसमें से कितनीक नीचे लिखते हैं—संशय प्रसंग में उत्तर प्रत्युत्तर चाहिये; अन्यथा व्यर्थ है (१।१।७).

प्रमाण—काल यह प्रमाण का विषय है, प्रमाण निषेद प्रमाण का विषय है, प्रमाण का प्रमाण मानने से अनवस्था चलेगी, अनुमान मानो तो वोह भी प्रमाण का ज्ञेय है और प्रमाण विना का अप्रमाण होगा; इन कारणों को ले के प्रमाण का निषेध नहीं हो सकता, किंतु प्रमाण प्रकाश समान स्वतःसिद्ध है. एक ही में प्रमाण और प्रमेय का व्यवहार है यथा बुद्धि (ज्ञान, गुण) साधन होने से प्रमाण और विषय होने से प्रमेय है (२।१।१२ से १९ तक). अर्थापत्ति, संभव और अभाव अनुमानांतरगत हैं. ऐतिह्य प्रमाण शब्द के अतरगत है (२।२।२). आत्मा और ज्ञान का समवाय कारण है. सो (ज्ञान) आत्मा मन के सयोग के आधीन है. ज्ञान, आत्मा का लिंग होने से मन आत्मा के सयोग का त्याग नहीं है. एक क्षण में अनेक ज्ञान न होने से मन इंद्रिय के सयोग का त्याग नहीं है. प्रत्यक्ष में सबंध को प्रधानता है (२।१।२२ से २७ तक). बुद्धि (ज्ञान गुण) शरीर का गुण नही (३।२।५०). नित्य नहीं, विभु नहीं, विषय का गुण नहीं, मन का गुण नहीं (३।२।३,८,१९,२०). मन विभु नहीं है गति होने से (३।१।८). स्मृति आत्मा का गुण है (३।१।१४).

जल सिंचन क्रिया नष्ट हुये से भी फल होता है वेसे कर्म नष्ट हुये भी उसका फल कालांतर में होता है (४।१।४९). मनन में वृत्ति लगाने का नाम समाधि है. उससे दृढता होती है. समाधि मोक्ष के लिये योग्य है (४।२।३८।३९).

पुरुष कर्म फल मे स्वतंत्र न होने से ईश्वर जगत् का निमित्त कारण है

भाव बनता है. जो परमाणु को सावयव मानें तो अनवस्था चलेगी. परवतराई का भेद न होगा; क्योंकि उभय अनंत ठेरेंगे. इसलिये निरवयव परमाणु में आकाश अंदर और उसे बाहिर तथा निरवयव के आसपास होने से आकाश विभागवाला. ऐसे सवाल ही नहीं बनते (४।२।११ से २५ तक).‡

शोधक जिज्ञासु.

वेद, उपनिषद, वेदांतदर्शन और गीता के सिद्धांत पर वा उसके लेख पर कोई वेदानुयायी आक्षेप नहीं करता, किंतु उनके वाक्यों के जुदा जुदा अर्थ कर के उनके जुदा जुदा मंतव्य बताते हैं; इसलिये सम्प्रदाय भेद चल पडा है परंतु इन उभयदर्शन के तो सिद्धांत-मंतव्य पर भी वेदानुयायिओ का आक्षेप है. जेसा कि वेदांत के भाष्यों में भाष्यकारों ने किया है. यहां संक्षेप में जनाते हैं. † वैशेषिकदर्शन के कितनेक सूत्रो का भावार्थ —

(१) अब धर्म का व्याख्यान करते हैं; इसलिये कि मोक्ष का साधन है ।१।१।१. (२) मूलद्रव्य, कार्यद्रव्य का और मूलगुण कार्यरूप गुण का आरंभ करता है .१०. दिशा, काल (३) कारणगुण से कार्यगुण का और कार्यगुण से कारणगुण का नाश होता है (यथा प्रथम शब्द का अपने कार्य से). १३. (४) कर्म अपने कार्य (संयोग) से नाश वाला है. १४. (५) कार्यगुण कारण गुणों से पेदा होते हैं २।२।२४. (६) समानाधिकरण होने से उत्तर गुण से पूर्व के गुण का नाश होता है (यथा प्रथम के शब्द का दूसरे उत्तर के शब्द से और अंत का पहिले उपांत से). ३६. (७) हेतु, साध्य से भिन्न होता है. इसलिये तादात्म्य संबंध नहीं और न सर्वथा भिन्न होता है; क्योंकि जो भिन्न ही हो तो साध्य की सिद्धि न हो ३।१।७७८. (८) आत्मा मन के संयोग से स्वप्न ज्ञान भी पेदा होता है (प्रस्ट संस्कारजन्य स्मृति). ९. (९) जो ज्ञान आत्मा इंद्रिय के सन्निकर्ष से उत्पन्न होता

---

‡ संयोग अव्याप्यवृत्ति होता है यह न्याय का सिद्धांत है तो क ख. ग तीन परमाणु संयोग प्रसंग में ख. के दोनों तरफ संयोग मानें विना क, और ग के ख तरफ वाले भाग में संयोग न बनेगा. यही आकाश के वा परमाणु के विभाग का चिन्ह है और एक दूसरे के स्वरूप का अप्रवेश है यहां न्यायदर्शन गोता खा गया है.

† हमने जो उभयदर्शनो का मंतव्य वा अर्थ लिखा है सो चलते भाष्य वा ग्रंथो मे लिखा है, और उसी का अपवाद लिखा है. परंतु जो सूत्रकार का अन्य आशय हो तो उसका अपवाद है, ऐसा नहीं मानना चाहिये.

है वोह* भिन्न हैं (आत्मा का ज्ञान अन्य है). १२. (१०) कारण (समवाय) होने से कार्य होता है ४।१।३. (११) पदार्थ की उत्पत्ति नाश मानना भ्रम (अविद्या) है. ५. (१२) अनित्य द्रव्यों में अनित्य गुण होते हैं ७।१।२. (१३) नित्य द्रव्यों में नित्य गुण होते हैं. ३. (१४) वे नित्य-जल, तेज, वायु में ही ज्ञातव्य हैं. ४. (१५) पृथ्वी के कार्य में जो गुण पाकज होते हैं वे प्रथम मूल पृथ्वी में नवीन बनते हैं, उस पीछे कार्य में होते हैं (यथा कच्चे और पक्के घट में). ५. (१६) हेतु, लिंग, प्रमाण, कारण और अपदेश यह पांचों पर्याय शब्द हैं ९।२।४ (१७) संयोग, विभाग और वेग यह तीनों असमवायी कारण हैं १०।२।३. अदृष्ट, उत्तर जन्म मे फल के कारण होते हैं. ९. दिशा काल और आकाश निष्क्रिय हैं ५।२।२१. (अर्थात् आत्मादि ६ द्रव्य सक्रिय). § (१८) संयोग, विभाग, और शब्द यह तीन गुण अव्याप्यवृत्ति और अन्य गुण व्याप्यवृत्ति होते हैं. शब्द का कर्म के साथ सादृश्य है. कर्मवत् उत्पत्ति नाश वाला है. वत्स गाय के समान मन अपने आत्मा को पहिचान लेता है ६।२. (भाष्यकार).

अब प्रतिपक्षि का कथन लिखते है —

(१) सत्ता, सामान्य जाति, विशेष जाति, विशेष पदार्थ, समवाय और अभाव यह कोई पदार्थ नही हैं, व्यवहारार्थ बुद्धि की कल्पना है पदार्थरूप से मानने में जो दोष आते हैं वे ब्र.सू. १३५ से १३८ तकके विवेचन में हैं. (दर्शन का भी ऐसा ही भाव जान पडता है. याने स्वरूपतः पदार्थ नहीं है).

(२) अनादि अदृष्टजन्य वा प्रवाहरूप से मन आत्मा का संबंध मानो, सब प्रसंग में शरीरगत सब विभु आत्माओं के साथ मन का संबध होने से यह निश्चय नहीं बता सकते वा नही हो सकता कि अमुक आत्मा का अमुक मन है; इसलिये मन के संबंधी सब आत्माओं में दुःख, ज्ञान, रागादि होने चाहियें; एक शरीर के दुःख से सबको दुःख, एक के ज्ञान से सबको ज्ञान होना चाहिये; परंतु ऐसा नहीं होता और होता तो अनर्थ होता; इसलिये आत्मा विभु और मन के संबंध से दुःख ज्ञानादि उत्पन्न होना असिद्ध हैं. मन अपने संबंधी आत्मा को पहिचान लेता हो ऐसा मानें तो न्याय सिद्धांत (मन आत्मा के संयोग से ज्ञानजन्य) का त्याग होगा.

* ज्ञानवृत्ति से.

§ जीवात्मा विभु मंतव्य नं २ के और ७।१।२२ के विरुद्ध.

मुक्ति में मन का असंबंध मानते हैं तो मुक्तो का मन हमेशा के लिये निष्फल रहेगा, यह असंभव है. विभु मे प्रयत्न नहीं हो सकता क्योंकि वोह भी अदृष्ट सूक्ष्मगति है. आंख बंद उघाड, प्राण त्यागग्रहण और मन की गति का निमित्त होना यह सब कार्य गति के बिना नहीं होते; परन्तु विभु में गति का अभाव है, इसलिये न्यायलक्षण वाला जीवात्मा विभु नहीं (तीसरे अध्याय के सू. ७।२ से २।२ तक देखो). ऐसे ही रागादि अवस्था वा क्रिया हैं वे विभु मे नहीं हो सक्ती. जो ५।२।२१ की अर्थापत्ति से परिच्छिन्न सक्रिय मानें तो वक्ष्यमाण दोष आवेंगे.

(३) संयोग, विभाग यह गुण नहीं और कर्म कोई पदार्थ नहीं है, किन्तु परिच्छिन्न द्रव्यो की अवस्था है; अतः उनका उत्पत्ति नाश बनता है, परन्तु आकाश की अवस्था नहीं होती. इसलिये उसमें तीनो का अभाव है. इसी वास्ते उसमें कर्मवत् शब्द गुण की उत्पत्ति नाश मानना अलीक है.

(४) पूर्व पच्छम लेन पर क. ख. ग परमाणु का संयोग है. तहां क और ग का संयोग नहीं है. ख का दोनो के साथ है. संयोग अव्याप्यवृत्ति होने से ऐसे होना स्पष्ट है क ख के संयोग मे आकाश है उसका क ख दोनो के साथ संयोग है. वैसे ग ख के मध्यवर्ती आकाश वास्ते जान लीजिये, परन्तु ख का पूर्व पछम वाला प्रदेश जुदा जुदा है; क्योंकि ग और क के साथ जुदा जुदा संयोगी है और ख स्वरूपाधीकरण वाला प्रदेश जुदा है. फलितार्थ—या तो परमाणु सावयव, वा तो आकाश चालनी जैसा वा तो आकाश का संयोग नहीं. और जो परमाणु आकाश का व्याप्यव्यापक वा तादात्म्य संबंध मानें सो भी असंभव है. त. द. ३९७ से ४०९ तक देखो

(५) धर्मबोधक वेद है तदोक्त धर्म का व्याख्यान करते हो तो वेद मे पंचभूतो की और मन की उत्पत्ति कही है, उससे उलटा इनको अनादि नित्य क्यों माना है?

(६) वेद स्वयं पंचभूत-देश और मन की उत्पत्ति बताता है और न्याय नित्य मानता है यह विरोध क्यों? २।१ सू. १७ में वायुआगम (वेद) मे नित्यसिद्ध लिखा है, परन्तु ऐसी श्रुति नहीं मिलती, किंतु आत्मा से आकाश, आकाश से वायु + + इत्यादि उत्पन्न हुये. ऐसी श्रुति है.

वेद मे मन की उत्पत्ति कही है, इसलिये जैसे शरीर आत्मा का संबंधी होने से शरीर वास्ते आत्मा पद का प्रयोग होता है वैसे ७।१।२३ में मन अणु शब्द

का अर्थ जीव चेतन है वोह अणु है ऐसा अर्थ करना चाहिये (वैशेपिक आर्य भाष्य), परंतु ३।२।१,२ में आत्मा और मन इन दोनें का प्रयोग है १, जो परिमाण प्रसग में मन के न लें तो परिमाण के क्रम का भंग होता है २, और १।१।५ के क्रम के विरुद्ध होता है ३, और २।३।२,४ में मन का और जीवात्मा का नित्य द्रव्य कहा है ४, मन भी अणु और जीवात्मा भी अणु यह कल्पना व्यर्थ रहती है ५, इसलिये ७।१।२३ का उक्त अर्थ ठीक नहीं जान पडता क्योंकि वक्ता के आशय से विरुद्ध जाता है.

(७) गुण कर्म की उत्पत्ति मात्रा उक्त (नं. ११ गत) से विरुद्ध है. और यदि उत्पत्ति नाशवाले हैं तो मूलरूप में पदार्थरूप से गणना करना व्यर्थ ठेरता है.

(८) शब्द की उत्पत्ति नाश मानना उक्त नं. २,५,११,१३ के विरुद्ध है; क्योंकि आकाश में शब्द का नित्य नही माना तो उक्त नं. २ और ५ अनुसार शब्द का आरंभक मूल शब्द गुण (उपादान) नहीं बता सकते. आकाश का विभुसम अक्रिय और उसके गुण शब्द का परिच्छिन्न, स्वाश्रय की गति के विना गतिवान और अनित्य मानना यह न्याय वा अन्याय?

(९) आत्मा का ज्ञान गुण उत्पत्ति वाला है तो मुक्तिकाल मे मन का संबंध न रहने से आत्मा ज्ञान रहित रहने से जडवत् होगा. क्या इसी का नाम दुःखनिवृत्ति रूप मोक्ष?

(१०) उक्त नं. (९) का यह अर्थ करें कि आत्मा का ज्ञान गुण नित्य वा उसका स्वरूप है (वै. आर्य भाष्य. न्याय वात्सायन भाष्य), तो दुःख सुख का ज्ञान इंद्रियअजन्य होने से उसका तीसरे प्रकार का ज्ञान मानोगे वा क्या? क्योंकि सूत्र में मन पद का नहीं लिया है. इसलिये इंद्रियजन्य ज्ञान से मनसन्निकर्पजन्य ज्ञान अन्य है. यही अर्थ हो सकता है. ज्ञान आत्मा का नित्य गुण वा स्वरूप है, यह भाव नहीं ले सकते (न्याय १।१।१९. ३।१।२२).

(११) ज्ञान गुण, दुःखादि गुण की उत्पत्ति मानना उक्त न. २,५,११,१३ से विरुद्ध है; क्योंकि उनके आरंभक मूल ज्ञान दुःखादि पूर्व में नहीं है. और न उनका उपादान सिद्ध होता है, क्योंकि आत्मा और मन का निरवयव माना है. और यदि तिराहित हैं. ऐसा मानें तो स्वसिद्धांत त्याग होगा. तथा मुक्ति में भी राग दुःखादि रहेंगे.

(१२) दुःख ज्ञानादि उक्त नं. (१८) अनुसार व्याप्यवृत्ति होने से आत्मा के तमाम प्रदेश में होने चाहियें, परंतु वैसा किसी को अनुभव नहीं होता.

(१३) सब मूल द्रव्यों में नित्य गुण और एक पृथ्वी के पाकज में नवीनोत्पत्ति (१३,१४,१९ याद करो) इसमें कोई प्रमाण नहीं है; किंतु व्याघात है. पृथ्वी के पाकज गुण का कोई उपादान सिद्ध नहीं होता.

(१४) वै. और न्याय में पदार्थ सिद्धि में लिंग शब्द का प्रयोग है. यहां उक्त नं. ७,१६ याद करीये. और विचारिये. (१) जो अग्नि का (लिंग) उष्णत्व, ऐसे भाव (लक्षण) में आशय हो तो ज्ञान दुःखादि आत्मा के स्वरूप ठेरेंगे, इससे स्वसिद्धांत त्याग होगा, दृष्टविरुद्ध दोष आवेगा; क्योंकि आत्मा का दुःख सुखरूप स्वरूप नहीं जान पडता. जो मन समान प्रमाण, वा इंद्रिय समान करण, ऐसा आशय हो तो संयोग विभागवत् आत्मा के गुण न ठेरेंगे, किंतु आत्मा से भिन्न मानने पडेंगे. जो अग्नि धूम समान हेतुरूप मानें किंवा "लाल ध्वजावाली स्टीमर युद्ध की स्टीमर" ऐसे अपदेशरूप मानें तो भी वोही परिणाम आता है. नित्य तादात्म्य वा व्याप्यव्यापक भाव का स्वीकार नहीं है. समवाय उक्त सब प्रसंग में लगा सकते हैं; इसलिये न्याय मत में जो इच्छादि (इच्छा, द्वेष, ज्ञान दुःखादि) विभु आत्मा के लिंग कहे हैं वे उस आत्मा के नहीं किंतु किसी दूसरे के (मनादि के) होंगे. और वे आत्मा की सिद्धि में लिंग हैं (याने लाल ध्वजा समान तटस्थ लक्षण होंगे) ऐसा सिद्ध होगा. जो ऐसा हो तो स्वसिद्धांत त्याग होगा.

(१५) कार्य से उसके कारण का नाश उक्त नं. (३।४।६) यह कल्पना सृष्टि नियम से विरुद्ध है. मेरे मुख में जिव्हा नहीं, इस कथन समान है. यथा (१) पट कहने समय प. ट. शब्द, समकालीन समानाधिकरणवर्ती नहीं. प. की उत्पत्ति स्थिति और नाश समकालीन हों तो उसके पीछे ट उत्पन्न हुवा उसका समानाधीकरण की तो बात ही क्या करना! और यदि प. ट. समानाधिकरणवर्ती हैं तो कार्यकारण भाव न रहेगा. (२) तथाहि कर्म, अपने कार्य संयोग से नाश नहीं होता, किंतु जब गति का प्रतिबंधक दूसरा कारण होता है तब कर्म का अभाव होता है. संयोग हुये विना भी गति वाला पदार्थ अंत में ठेर जाता है यथा–गेंद किंवा गति काल में भी आकाश के साथ संयोग होता है तो भी गति होती है. (३) कार्य रूप पट का अग्नि से संयोग अपने कारण तंतु का नाशक है, यह कल्पना भी व्यर्थ

है; क्योंकि तंतु का संयोग ही पट का संयोग है. पट और तंतु संयोग यह दो संयोग असिद्ध हैं. इस प्रकार उक्त न (३,४,९) असिद्ध ठेरते हैं.

(१६) इत्यादि अन्य आक्षेप हैं.

(१७) जितने मंतव्य में न्यायदर्शन, वैशेषिक के साथ मिलता है उसमें उक्त प्रतिपक्ष लगा लेना चाहिये. यथा आत्मा उसके गुण, सामान्य जाति, अभाव, शब्द अनित्य, मन आत्मा का संयोग बंध और मोक्ष इत्यादि विषयो में समान है.

(१८) सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव पदार्थरूप नहीं, कर्म, संयोग, विभाग, यह परिच्छिन्न द्रव्यो की अवस्था है. अर्थात् पदार्थ वा गुण रूप नहीं (ब्र. सि पूर्वार्द्ध देखो). ऐसा सिद्ध हो जाने पर न्याय, शक्तिमान नहीं रहता; क्योकि साध्य पदार्थों के लक्षण ही नहीं कर सकता.

(१९) जीव की मुक्ति से अनावृत्ति मानते हैं, इसलिये जब तब सृष्टि का उच्छेद होगा जो कि असभव है (अ. ३ मुक्ति प्रसग. और वेद अक ९ देखो) तथा मन और जीवात्मा भी निष्फल पडे रहेंगे; परतु निष्फलत्व का अभाव है. अतः न्याय और वैशेषिक की युक्ति सिद्ध नहीं होती.

विभूषक मत —

गैातम और कनाद श्री का उपकार मान के उभय दर्शनो का अभ्यास कर्तव्य है, क्योकि यह बुद्धि के ग्रेमर-व्याकरण है, इनके अभ्यास से बुद्धि अतिसूक्ष्म और तीव्र हो जाती है, और पदार्थों के स्वरूप निर्णय तथा पृथक् करण करने मे केमिस्तरी (सायंस) जेसे उपयोगी है, विचारो मे पदार्थों का पृथक् करण भली भाति हो जाता है.

न्याय और वैशेषिक का मत द्वैतवाद है. जिसकी सज्ञा आवृत्ति त्रिवाद है. इसलिये अ. १ विभूषकतम मे अ ४ मे और उपर वेद-प्रसग मे सारग्राही दृष्टि मे इस मंतव्य के जो भूषण बताये गये हैं, उनको ध्यान मे लेके उपरोक्त पंचदशाग सहित यह त्रिवाद पाला जाय तो इसके निषेध की आवश्यकता नहीं है अच्छा ही है. अतः खंडन से उपेक्षा.

तथाहि उभय दर्शन में ज्ञान को आत्मा का गुण माना है परतु गुण और गुणी जुदा वस्तु नहीं होती किन्तु सो आत्मा का स्वरूप ही है. जिस ज्ञान गुण की उत्पत्ति मानी है सो वृत्तिज्ञान (मन का ज्ञेयरूप परिणाम) है, सो उत्पन्न नाश होने वाला (परिवर्तन को पाने वाला) है, नहीं कि आत्मा का ज्ञान गुण उत्पन्न नाश

होता है; इसका कारण उपर शोधक ने कहा है. इसलिये देनो दर्शन मे आत्मा को जड नहीं माना है. बात यह है कि ज्ञान स्वरूप आत्मा का विशेष उपयोग मन के (अतःकरणके) सबंध से होता है, उसके विना स्पष्टरूप मे नही होता; इसलिये मन के सयोग संबंध को लिया है; और मन का आत्म के विना विशेष उपयोग नहीं होता; इसलिये आत्म सयुक्त मन कहा है; क्योकि सबंध के विना ज्ञान नही होता. आप जब योग द्वारा चित्त का निरोध करोगे तब आप इस बात के रहस्य को जान लोगे.

उभय दर्शन आत्मा को विभु और नाना मानते हैं. आप जरा तो विचारिये कि गौतम और कणाद दोनो अपूर्व फिलोसोफर है. क्या वे ऐसी असभव बात को स्वीकारें? परतु उस देश काल मे नाना मानें विना जीव मंडल के व्यवहार (धर्म अर्थ–काम–मोक्ष) की व्यवस्था नही कर सकते, और मोटी बुद्धि में नानात्व के विना व्यवस्था मान्य नहीं हो सकती, इसलिये नाना विभु कहा है वे ऐसा समझते होने चाहियें कि जब अधिकारी अनुभव करेगा तब वहा जो बात है (आकाशवत विभु चेतन) मो आपही अनुभव करके आशय समझ लेगा. इसी वास्ते याने थीयरी निभाने वास्ते मन को अणु मानना पडा. इस विषय की व्युत्पत्ति ब्रह्म सिद्धात के उत्तरार्द्ध में लिखीहै. अर्थात इनका एक चेतन और प्रकृति (पुरुष प्रकृति) वाद ही है. प्रकृति को परमाणु रूप से विस्तार किया है. यू है, तो भी जो कोई हठीला इस गुह्य रहस्य को न समझे तो उपर जो त्रिवाद का भूषण लिखा है उसको स्वीकार के वर्ते तो कोई हानि नही, जब तब लक्ष्य को पालेगा. वेद को मानने वाला ईश्वर को न माने, यह बात नहीं बनती.

---

५. वैशेषिकदर्शन.

इस दर्शनके प्रवर्त्तक श्री कणाद मुनि है. इस दर्शन में विशेष नाम का पदार्थ नवीन माना है, इसलिये इस दर्शन का नाम वैशेषिक है. द्रव्यादि षडपदार्थ का विवेक इनका उद्देश है, जिसका फल मोक्ष है ऐसी उनकी मान्यता है. यह मुनि श्री जंगल मे रहा करते थे, कण बीन २ कर गुजर करनेसे इनको कणाद कहते हैं. त्रेतायुग के अत मे हुये है.

इस दर्शन पर गौतम मुनि कृत भाष्य है सो वर्तमान मे नही मिलता. प्रशस्त कृत सग्रह है. शकर मिश्र कृत टीका है, इत्यादि.

अस्मद् बुद्धिभ्यो लिङ्गमृषेः १०।२।९. यह सूत्र शकर मिश्र कृत सूत्रोपस्कार (१८६१० ई. कलकत्ता मे छपी) मे नही है और दूसरी प्राचीन वृत्तिओ विषे देखने मे नहीं आया वै आर्य भाष्य मे है तद्वचनाद ।।१।३ यह सूत्र कोई प्रति मे दो जघे (१०।२।१०) किसी मे एक जघे है.

इस दर्शन की १२ अध्याय है, अध्याय प्रति दो दो आह्निक है.

कणादश्रो का मंतव्य. *

१. प्रत्यक्ष प्रवृत्तत्वात सज्ञा कर्मणः ०।१।१९. सज्ञा और कर्म का प्रवर्तक ईश्वर है, क्योकि उसको सब प्रत्यक्ष है (सर्वज्ञ है).

२. जोवात्मा विभु, नाना, रागादि १४ गुण वाळा, शरीर से भिन्न है. आत्मा नित्य द्रव्य है (३।२।५. १।१।५). जो ज्ञान, आत्मा इद्रिय के सन्निकर्ष से उत्पन्न होता है, वोह अन्य है अर्थात् मन आत्मा के क्षणिक सयोग से मै दुःखी मै सुखी, जो देखता हू सो छूता हूं, ऐसा आकार वाला ज्ञान होता है वोह इद्रिय सन्निकर्षजन्य नहीं है (३।१।१९). अपने आत्मा के समान अन्य शरीर वृत्ति की सिद्धि जान लेना (३।१।२०) प्राण. अपान, चक्षु उघडना, बंद होना, जीवन, मन की गति, इद्रियान्तर विकार (पूर्व अनुभूत रसादि की स्मृति), सुख, दुःख, इच्छा, प्रयत्न (स्मृति, अनुमान, आगम), यह सब आत्मा की सिद्धि मे लिंग है (३।२।४). मैं हू, ऐसा अन्य द्रव्यो में अभाव है (३।२।९). सुख दुःख की व्यवस्था होने से जीवात्मा नाना हैं और शास्त्र भी ऐसा ही कहता है (३।२।२०,२१). विभववान् अर्थात आकाश ओर आत्मा विभु (महत परिमाण) है (७।१।२२). ज्ञान (बुद्धि) सुख, दु.ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न (यह ६) भावना, धर्म, अधर्म, (यह ३) और सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग (यह ५) ऐसे १४ गुण आत्मा के है.

३ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष ओर समवाय, यह जुदा जुदा पदार्थ है (१।१।४). पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन

* वैशेषिक शास्त्र की १० अध्याय हैं. प्रति अध्याय दो दो आह्निक हैं पहिला अंक अध्याय का, दूसरा आह्निक का तीसरा सूत्र का है, ऐसे जान लेना

यह ९ नित्य द्रव्य है (१।१।३) रूपादि २४ गुण हैं जो द्रव्यो में होते है. शक्ति गुण नहीं है; क्योकि वोह शक्तिवान से अभिन्न है, शक्तिमान मे तादात्म्य सबध से रहती है (१।१।६) इन द्रव्यादि से जगत व्यवहार चलता है. दिशा, काल और आकाश क्रियावान के साथ वैधर्म्य होने से निष्क्रिय है ५।२।२१.

४. मन के सयोग से दुःखादि गुण आत्मा में पेदा होते है. उक्त न होने पर नहीं होते (५।२।१५,१६. ५।२।७). द्रढ सस्कारो से, अद्रष्ट से और जन्म विशेष से भी रागादि होते है, इनसे धर्म अधर्म मे प्रवृत्ति होती है, धर्माधर्म से शरीर के साथ असबध और सबंध (पुनर्जन्म) होता है (६।२।१२ से १६ तक). ध्यान रहे कि विभु होने से आत्मा मे गमन नही होता, किंतु मन के गमन और सबध से पुनर्जन्म का प्रयोग है (३।२।१७) ऐसे अद्रष्ट का अनादि प्रवाह होने से जीवात्मा बध के प्रवाह में है (३।१।४. ५।२।१७).

५. द्रव्यादि षडपदार्थ के विवेक (साधर्म्य वैधर्म्य) द्वारा धर्म विशेष से अर्थात् निष्काम कर्मजन्य से होने वाला तत्त्वज्ञान उससे मुक्ति होती है (बध की निवृत्ति होती है) (१।१।४) अद्रष्ट के अभाव होने से जीवात्मा का मनादि के साथ सयोगाभाव होता है, उससे दु खाभाव होता है, इसका नाम मोक्ष है (५।२।१८).

६. मन के सयोग, सस्कार, रागादि. दुःख सुखादि और शरीर सबध— इत्यादि सब दुःख है, उनकी आत्यतिक निवृत्ति मोक्ष है अर्थात् पुनः शरीरादि का सबंध नही होता उसे मोक्ष कहते है मोक्ष मे आत्मा अपने मूल स्वरूप से रहता है.

७ वेद, बुद्धिपूर्वक सर्वज्ञ ईश्वर कृत है और वे प्रमाण हे (१।१।३. ३।१।१७,१८,१९ ६।१।१,२. १०।२।१० ब्राह्मण ग्रथ वेद नही है)

८. सृष्टि की उत्पत्ति परमाणुओ से होती है. दो अणुक, त्र्यणुक, चार अणुक बन के उनसे कार्य द्रव्य, योनिज अयोनिज शरीर, इद्रिय और विषय अर्थात् तमाम ब्रह्माड होता है पृथ्वी तत्त्वपुज मे नवान पाकभी बनता है ४।१।१. ४।२।१)

९. जीवात्मा, मन, वायु, आकाश, काल, दिशा, द्रव्य है, नित्य है, उनका प्रत्यक्ष नही होता अनुमान से उनकी सिद्धि होती है. (३।२।७,९ ७।१।२३. ८।१।२) आत्मा मे आत्मा और मन के सयोग विशेष से आत्मा का प्रत्यक्ष होता है योगे अन्य द्रव्यो का कभी किसी समाहित चित्त वाले को और पूर्ण योगी

के आत्मादि सूक्ष्म द्रव्य का प्रत्यक्ष होता है. योगी के आत्मा के गुण भी प्रत्यक्ष हो जाते हैं (९।१।१ से १९ तक).

१०. सृष्टि का कर्त्ता कौन है, और क्यों होती है, इस विषे कनाद सूत्र कुछ नही कहते; परंतु वेद का स्वीकार है, ईश्वर सर्वज्ञ है, वेद उसका वचन है, ऐसा मान लिया है. इसलिये उसके अनुयायी वृत्ति भाष्यकार याने नैयायिक विवेचन में ऐसा मानते हैं कि जीवों के कर्मानुसार ईश्वर जगत् को रचता है; उसी अनुसार स्थिति प्रलय करता है; इस प्रकार उत्पत्ति स्थिति लय का निमित्त कारण है. ईश्वर के ज्ञान इच्छा प्रयत्न नित्य गुण हैं.

११. दर्शनकर्ता योग्य प्रत्यक्ष और अनुमान (पंचावयवात्मक न्याय) तथा शब्द मे वेद, ऐसे ३ प्रमाण मानते हैं. अन्य शब्द का अनुमान में भी समावेश कर देते हैं (७।१. ३।१।१९ से १८ तक. ९।२।१,३).

१२. वेदोपनिषदों में पृथ्व्यादि चार भूत, आकाश, और मन की उत्पत्ति मानी है, और यह शास्त्र उन्हें नित्य कहता है; इससे जान पडता है कि यह दर्शन स्वतंत्र भी है.

१३. नवीन नैयायिक सातवां अभाव पदार्थ है, और वोह अन्योऽन्याभाव, प्रागभाव, अत्यंताभाव, प्रध्वंसाभाव और साम्यकाभाव ऐसे पांच प्रकार का है. ऐसा मानते हैं.

विशेष वर्णन.

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय यह ६ पदार्थ (१।१।४). पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन यह ९ द्रव्य हैं (५). रूप, रस, गंध, स्पर्श, सख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार धर्म, अधर्म, और शब्द यह २४ गुण हैं (६) कर्म (क्रिया) ५ प्रकार के होते हैं (७). सामान्य १ और विशेष अनेक हैं. समवाय, संबंध का नाम है वोह एक है.

जो क्रिया गुण वाला और कार्य का समवायी कारण हो सो द्रव्य (१५). (शं). आकाश अक्रिय अतः उसमें अव्याप्ति. (उ). द्रव्यत्व जाति विशिष्ट हो सो द्रव्य. जो द्रव्य के आश्रित हो गुण रहित हो, संयोगी विभाग का कारण न हो और कर्म से भिन्न हो सो गुण (१६). (शं). संबंध और जाति (सामान्य) भी

ऐसे हैं. (उ.) गुणत्व जाति वाला गुण. जो द्रव्य के आश्रित गुण रहित हो और संयोग विभाग का कारण हो वो कर्म. (गति-क्रिया) उपर होना, नीचे होना, सुकडना, पसरण, और गमन ऐसे पांच प्रकार की गति (कर्म) है. सामान्य और विशेष यह दोनो बुद्धि की अपेक्षा से हैं (१।२।३). (तद्वत् समवाय और अभाव भी आगे बाचोगे). §

किसी अर्थ की जो जाति (किसम) उसका नाम सामान्य है (यथा वृक्षो मे वृक्षत्व मनुष्यो में मनुष्यत्व). जो नित्य और समवाय संबंध से अनेक व्यक्तियो में हो उसका नाम जाति है (१।२।४). जो एक ही व्यक्ति हो उसमें जाति नहीं होती (यथा-आकाश, काल). जिसके अवांतर में दूसरी जातियें भी हो वोह परसामान्य. उसमें दूसरी अपर. यथा वृक्षत्व पर आम्रत्व अपर मनुष्यत्व पर, पुरुषत्व स्त्रीत्व अपर. अपर सामान्य को सामान्य विशेष कहते हैं यथा-द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व जाति हैं. जिसकी अवांतर जाति न हो वोह केवल अपर ही होती है (यथा-घटत्व, कलशत्व). और जिसकी व्यापक जाति कोई न हो वोह केवलपर (केवल सामान्य) याने केवल सत्ता है. यथा-है, है (सत-सत) यह सब द्रव्य, गुण और कर्मो में है शेष जातियें अनेको मे रहने से सामान्य, और दूसरो से अपने आश्रय को जुदा बताती है, इसलिये विशेष इन दो सज्ञा मे कही जाती है. गुणत्व जाति का इंद्रियो से प्रत्यक्ष होता है (४।१।१२). जो गुण जिससे ग्रहण होता है उससे उसकी जाति और अभाव का भी ग्रहण होता है (७।१।२).

सजातियो में भी जो विलक्षण बोधक भेदक धर्म हैं उसे विशेष कहते है. यथा नित्य दो सजातीय वा दो विजातीय परमाणु जब तब जहा तहा योगी पास आवें तब वोह 'यह वोह' 'यह वोह' ऐसा जान लेता है इस पहेचान और विलक्षण प्रतीति का जो निमित्त वह विशेष पदार्थ है.

संबंध दो का होता है. वे दोनो अलग हो जावें तो उनका संयोग संबंध या ऐसा कहा जायगा. परतु जो ऐसा हो कि वे दोनो कभी अलग न थे और न हो

§ तीनों उपपदार्थ हैं उनसे कोइ अर्थ क्रिया सिद्ध नहीं होती, किंतु शब्द व्यवहार के ही उपयोगी जान पडते हैं पदार्थो के पृथक्करण के लिये उत्तम कल्पना है पदार्थ के पृथक्करण में मनोवृत्ति को घुसा देते हैं यह चारों पदार्थ नहीं हैं, ऐसा ब्रह्मसिद्धांत के पूर्वार्द्ध में दरसाया है- स्पष्ट कियाहै

सकते हैं तो इस संबंध को समवाय कहेंगे. इसमें यह, यह बुद्धि जिस निमित्त से कारण कार्य में हो उसका नाम समवाय है. इस प्रकार अवयवों में अवयवी, क्रियावान में क्रिया, व्यक्ति में जाति, गुणी में गुण, और नित्य द्रव्यों में विशेष यह समवाय संबंध से रहते हैं. ‡

नहीं, इस प्रतीति के विषय को अभाव कहते हैं. + सो पांच प्रकार का है. १. उत्पत्ति के पहिले जो अभाव सो प्रागभाव (अनादि सांत). नाश के पीछे जो अभाव हो सो प्रध्वंसाभाव है (सादि अनंत है). जो कहीं भी और कभी भी न हो उसे अत्यंताभाव कहते हैं यथा—आकाशगत कमल का पुष्प, वंध्या के पुत्र (अनादि अनंत). वह वोह नहीं इस प्रकार के अभाव को अन्योऽन्याभाव कहते हैं (अनादि अनंत) यथा—एक स्वरूप दूसरे स्वरूप से अन्य है, इसमें उसका अभाव है. जो हो के न हो और फेर हो वोह साम्यकाभाव है (सादि सांत). यथा भूतल में घट नहीं है और पुनः घट वहां आया तो अभाव न रहा, पुनः चला गया तो अभाव हुवा. कोई इसको नहीं मान के चार प्रकार के अभाव मानता है.

पृथ्वी, जल, तेज और वायु परमाणु रूप नित्य द्रव्य हैं. जब वे अनेक तत्त्व मिश्रण पाते हैं तब कार्य (अनित्य) द्रव्य कहाते हैं. यथा—दृश्य, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु हैं. इनके मूल परमाणु अतिइंद्रिय हैं. जिससे जाना जाय उस असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं. जहां गंध वहां पृथ्वी ऐसा जानना चाहिये. यथा हीरा जलावें तो गंध होती है, माटी मे से सुगंधी पुष्प होते हैं. कार्यरूप पृथ्वी में रूप, रस, स्पर्श और गंध चारों होते हैं. शीत स्पर्श वा जलत्व विशिष्ट यह जल की पहिचान है. कार्यरूप जल में रूप, रस, स्पर्श, द्रवत्व, स्नेह यह पांचों होते हैं. उष्ण गुणवाला तेज है. उष्ण, शीत, स्पर्श के विना जो स्पर्श वोह वायु का लिंग है. घ्राण से जो ग्रहण होता है सो गंध है. चक्षु से जो विषय होता है सो रूप (रंग—आकार) है. त्वचा से जो ग्रहण होता है वोह उष्ण—शीत, अनुष्ण शीत स्पर्श है और आकार भी ग्रहण होता है. जिह्वा से जो ग्रहण होता है उसका नाम रस है. करण गोलकस्थ जो आकाश उसका नाम श्रोत्र है, उससे जो ग्रहण हो उसको शब्द कहते हैं. उक्त चारों तत्त्वों से शरीर, इंद्रिय और विषय बने हैं.

---

‡ और समूह संबंध अनित्यों में और नित्यों में नित्य संबंध ऐसा प्रयोग भी होता है.

+ नवीन नैयायिक का मत.

मुख्य तत्व.	शरीर.	इंद्रिय.	विषय.
पृथ्वी.	मनुष्य पशु पक्षी.	घ्राण.	घ्राण से इतर पृथ्वी पत्थर वगैरे.
जल.	जलीय जंतु.	रसना.	बरफ नदी वगैरे.
तेज.	तैजसीय.	चक्षु.	अग्नि बिजली जठरा वगैरे.
वायु.	वायवीय.	त्वचा.	प्राण, वृक्ष कंपक.

पार्थिव सब शरीर योनिज अयोनिज हैं. जो इंद्रिय जिसके गुण को ग्रहण करती है उसी से बनी है. विषय बहुधा मिश्रित विषय होते हैं.

निष्क्रमण और प्रवेश आकाश का लिंग है अथवा जहां शब्द वहां आकाश है; क्योंकि शब्द आकाश का गुण है. आकाश विभु और एक तथा नित्य है. पहिले पीछे यह काल की सिद्धि में लिंग हैं; काल अनादि अनंत है, एक है, विभु है; व्यवहारार्थ उसके घडी पलादि विभाग कल्प लिये जाते हैं. इधर उधर उपर नीचे यह दिशा की सिद्धि में लिंग हैं (२।१।२०. २।२।६,१०. १।२२,२४,२५).

जीवात्मा का लिंग उपर कहा है मन अणु है (७।१।२३). एक काल में एक का ज्ञान होना मन की सिद्धि में लिंग है (३।२,३). मन द्रव्य और नित्य है (३।२।१,२). आंतरीय दुःख सुखादि के ज्ञान का साधन है.

तम द्रव्य नहीं है. जो होता तो रूपस्पर्श वाला होने से त्वचा का विषय होता. प्रकाश की गति रूप उपाधि से तम चलता हुवा जान पडता है. द्रव्य गुण कर्म की उत्पत्ति से विलक्षण उत्पत्ति वाला होने से तम का भाव है. तेज का द्रव्यों द्वारा आछादन न हो जाने से तेज का अभाव ही तम है.

(२४ गुणों का वर्णन) रूप— नेत्र ग्राह्य है; पृथ्वी जल तेज में होता है; द्रव्यादि के प्रत्यक्ष में निमित्त है; नेत्र का सहकारी है; शुक्ल, श्याम, रक्त, पीत, नील, हरा ऐसे ६ प्रकार का है. **रस** रसना से ग्राह्य है; रसना का सहकारी है; मीठा, खट्टा, खारा, कडवा, तीक्ष्ण, कसेला भेद से ६ प्रकार का है. **गंध** घ्राण से ग्राह्य है; केवल पृथ्वी में रहता है, घ्राण का सहकारी है; सुगंध दुर्गंध दो प्रकार का है. **स्पर्श** त्वचा इंद्रिय से ग्राह्य है; पृथ्वी आदि चारों तत्वों में रहता है; त्वचा का सहकारी है; शीत, उष्ण, अनुष्ण शीत ऐसे ३ प्रकार का है. अपने कारण के गुण कार्य में उत्पन्न होते हैं. रूप, रस, गंध, स्पर्श, गुरुत्व, द्रवत्व और स्नेह ऐसे

ही होते हैं. परंतु पृथ्वी में रूप, रस, गंध और स्पर्श पाकज भी होते हैं. अर्थात् अग्नि आदि के संयोग से भी उत्पन्न होते हैं. जैसे पक्के हुये आम्र के रूप रस गंध और स्पर्श बदल जाते हैं; कच्चे घडे में अग्नि स्पर्श से नवीन पाक होके उत्पन्न होते हैं.

संख्या—एकत्व संख्या नित्य द्रव्यों में नित्य हैं; अनित्य में अनित्य है; एक से अधिक द्वित्वादि अनित्य हैं; क्योंकि अपेक्षा बुद्धि से उत्पन्न होती है. संख्या नित्य, अनित्य, मूर्त, अमूर्त सब द्रव्यों में होती है. कर्म, गुण में नहीं होती. और जो मालूम होती है वोह भ्रम है. ईश्वर, आकाश, काल १, इत्यादि एक संख्या नित्य है

परिमाण—अमुक इतना, इस व्यवहार का हेतु परिमाण है. सब द्रव्यों में होता है. नित्य में नित्य अनित्य में अनित्य होता है. परमाणुओं मे अणुत्व ह्रस्वत्व और आकाशादि विभु द्रव्यों में महत्व दीर्घत्व मुख्य हैं. इन दो से इतर सब अपेक्षित होते हैं.

परिमाण.	परम.	मध्यम.
१. महत.	दिशा, आकाश, आत्मा, काल.	त्र्यणुक से लेके सब में.
२. अणु.	परमाणु, मन.	द्विअणुक.
३. ह्रस्व.	परमाणु, मन.	द्विअणुक.
४. दीर्घ.	दिशा, आकाश, आत्मा, काल.	त्र्यणुक से लेके सब में.

कर्म और गुण में परिमाण नहीं होता (७।१ से १७ तक).

पृथक्त्व—यह इससे जुदा इस व्यवहार का हेतु है. नित्य द्रव्यों में नित्य अनित्यो में अनित्य होता है.

संयोग—यह मिले हुये हैं इस प्रतीति का निमित्त संयोग है. एककर्मज. यथा–बाज और पहाडका संयोग. उभयकर्मज यथा–दो मेंढों का संयोग संयोगज-संयोग. यथा–कागज और हस्त संयोग से शरीर के साथ संयोग. संयोग सब द्रव्यों में होता है और अनित्य होता है. संयोगियों के एक देश में होता है.

विभाग—संयोग का नाशक गुण विभाग कहाता है. सो भी संयोगवत् तीन प्रकार का और अनित्य होता है.

पर अपर—यह परे (दुरं) यह वरे (समीप) है, इस व्यवहार का निमित्त-देशिक गुण है. वोह पहिले यह पीछे इस व्यवहार का हेतु कालिक गुण है. यथा—यह उमर में वडा यह छोटा, यह पहिले आया यह पीछे आया. बुद्धि की अपेक्षा से उत्पन्न नाश होते हैं.

गुरुत्व— गिरने वा दूसरे को अपनी तरफ खेंचने का निमित्त गुरुत्व (वजन) है. फल टूटा कि नीचे गिरा. तराजू में भारी पदार्थ हलके को ऊचा होने में निमित्त हैं. पानी में भारी गोला पडे तो पानी की लचक सहकारी होने से हलके गोले उधर खिंचा आवेंगे. उपर की तरफ फेंका हुवा पत्थर वेग वल के अभाव होने पर नीचे गिरेगा. पार्थिव और जलीय रेणुओं के मिश्रण से वायु में गुरुत्व है. अनित्यों में नित्यों का ही गुरुत्व होता है.

द्रवत्व—वहने का नाम द्रवत्व है. प्रवाही जलादिक में स्वाभाविक और घृत, सुवरण गंधकादि पार्थिव (खंगड) द्रव्यों में नैमित्तिक है, अग्नि के सयोग से उत्पन्न होता है. अनित्यों में नित्य का ही द्रवत्व होता है. इसलिये नित्यों में नित्य अनित्यों में अनित्य होता है.

स्नेह— द्रव्य मिल के पिड बंधने में निमित्त है. कान्ति और मृदुता का हेतु है. जल का विशेष गुण है. नित्यों में नित्य और अनित्यों में अनित्य होता है.

शब्द— आकाश मात्र का गुण है. श्रोत्र से ग्रहण होता है, वायु का धक्का इसकी उत्पत्ति में निमित्त होता है. ध्वनिरूप ढोल हथेली वगेरे में होता है. और वर्णस्वरूप मनुष्यों की भाषा मे हो जाता है. द्रव्य से जन्य है इसलिये और गुण का आश्रय न होने से शब्द द्रव्य नहीं है. चक्षु का विषय न होने से कर्म नहीं है. नित्य के धर्म न पाये जाने से तथा उत्पत्तिवाला होने से शब्द नित्य नहीं है. आकाशरूप समवायी कारण से उत्पन्न होता है. नष्ट होने से उसमें कर्म समान सादृश्यत्व है एक काल में क, ख, ज्ञात न होने से जान पडता है कि उसकी अभिव्यक्ति (अदृष्ट था प्रकट हुवा) नहीं है. * (२।२।२३ से ३७ तक). शब्द का सयोग संबंध नहीं क्योंकि गुण है. (अब आगे बुद्धि आदि आत्मा के गुणो का वर्णन होगा)—

बुद्धि—(ज्ञान) अर्थात् ज्ञान यह सब व्यवहार का हेतु है और केवल आत्मा का गुण है. सो दो प्रकार का है. नवीन ज्ञान **अनुभव** और पिछले जाने

* मैमांसिक, प्रभाकर और कुमारल भट्ट शब्द को नित्य द्रव्य बताते हैं

हुये का स्मरण स्मृति. अनुभव दो प्रकार का. (१) यथार्थानुभव (प्रमा-विद्या-अबाधित-सच्चा). (२) अयथार्थानुभव (अप्रमा-अविद्या-बाधित-झूठा). इसलिये स्मृति के भी दो भेद हैं यथार्थ, अयथार्थ (७।१).

जैसी वस्तु वैसा ही ज्ञान, उसे यथार्थानुभव वा प्रमा कहते हैं. सो तीन प्रकार की होती है. प्रत्यक्ष प्रमा, अनुमिति प्रमा और शाब्दि प्रमा. इसी को प्रत्यक्ष ज्ञान (अनुभव) अनुमानिक (लैङ्गिक) ज्ञान और शाब्दज्ञान कहते हैं.

इंद्रियो (५ बाह्य और एक आंतरीय मन) द्वारा जन्य जो अनुभव उसे प्रत्यक्षानुभव कहते हैं. यथा शब्दादि पंचविषय और दुःखादि का ज्ञान प्रत्यक्ष है. मन से दुःखादि का अनुभव होता है

ज्ञान मे संबंध मुख्य है; सो संबंध के विना नही होता. ज्ञान दो प्रकार का होता है. (१) निर्विकल्प (सामान्य ज्ञान) यथा—कुछ है. 'ऐसा इदंमात्र से ज्ञान. (२) सविकल्प—(विशेष ज्ञान) विशेष और विशेष्य और उनके संबंध सहित जो ज्ञान हो. जैसे यह घट है निर्विकल्प में प्रमा, अप्रमा का भेद नहीं होता. सविकल्प चक्षु वगेरे पांच ज्ञान इंद्रियजन्य जो होता है 'वोह पांच प्रकार का बाह्य-प्रत्यक्ष है. अंदर में जो मन द्वारा होता है वोह आंतरप्रत्यक्ष है.' इन उभय प्रकार के ज्ञानों में ६ सन्निकर्ष (संबंध) हैं. (१) द्रव्यप्रत्यक्ष मे संयोग (आत्मा संयुक्त मन इंद्रिय का विषय के साथ संयोग), (२) द्रव्य में समवेत (समवाय संबंध से रही हुई) द्रव्यत्व जाति और (द्रव्य मे समवाय संबंध से रहे हुये) रूपादि गुणोंके प्रत्यक्ष में संयुक्त समवाय, (३) द्रव्य में समवेत जो रूपादि गुण उनमें समवाय संबंध से रहने वाली रूपत्वादि जाति के प्रत्यक्ष में संयुक्त समवेत समवाय, (४) शब्द के प्रत्यक्ष मे समवाय, (५) शब्दत्व के प्रत्यक्ष मे समवेत समवाय, (६) और अभाव के प्रत्यक्ष में विशेषण विशेष्य भाव संबंध है. चक्षु और त्वचा से द्रव्य प्रत्यक्ष होता है, दूसरे से नहीं. सामान्य विशेषों में सामान्य, विशेष न होने से विना किसी प्रकार के केवल स्वरूप से ज्ञान होता है.† द्रव्य का ज्ञान द्रव्यत्व प्रकारक गुण का ज्ञान गुणत्व प्रकारक होता है. द्रव्य गुण और कर्म तीनो में जो ज्ञान होता है वोह सामान्य विशेष सहित होता है. कहीं गुण और कर्म प्रकारक भी होता है; परंतु गुण कर्म में गुणकर्म न होने से गुणमें गुण प्रकारक और कर्म में कर्म प्रकारक

† यदि ऐसा होता समझ तो गुण कर्म और द्रव्य का भी सामान्य विशेष विना ज्ञान होना चाहिये.

ज्ञान नहीं होता (८।१।३ से १० तक). द्रव्य. गुण सामान्य प्रत्यक्ष हों तो समवाय और विशेष प्रत्यक्ष होते हैं.

अनुमान (परिभाषा).

लिंगदर्शन (चिन्ह-निशानदर्शन) से जो लिंगी (उस निशान वाले) का ज्ञान होता है वोह लैङ्गिक हैं. अर्थात लिंग (अनुमान करने का साधन) दर्शन से जन्य लिंग गोचर जो अनुमिति रूप अनुभूति उसे लैङ्गिक कहते हैं, इसी को अनुमान भी कहते हैं. जैसे मनुष्य के शरीर को चीर के देखते हैं तो उसके मगज, हृदय, चक्षु, गर्भादिस्थान की रचना विचित्र और बुद्धि पूर्वक हुई है, ऐसा जान पडता है इससे उस रचना के निमित्त (ईश्वर) का अनुमान होता है. लिंग में लिंगी की व्याप्ति (अविनाभाव संबंध) होती है. जिसका अनुमान करना वा होना वा हुवा है उसे साध्य-(अनुमेय-लिंगी-व्यापक) जिसके द्वारा अनुमान ज्ञान होता है उसे साधन-(लिंग, हेतु, व्याप्य, असाधारण करण) कहते हैं. यथा--परोक्ष अग्नि साध्य, धुमदर्शन साधन है. व्याप्ति के ज्ञान के विना अनुमान नहीं होता. जिसके (अग्नि के) विना जो (धूम) न हो उसका (अग्नि का) उसमें (धुम में) जो सबंध उस संबंध को अविनाभाव संबध कहते हैं, इस संबंध का नाम व्याप्ति है. यह संबंध व्यभिचार रहित सहचारी होना चाहिये. कारण कार्य, उपादान उपादेय, परिणामी परिणाम, अंगा अंगी, अवयव अवयवी, साध्य साधन, संबंध संबंधी इन प्रसगो में कारणादि की व्याप्ति होती है; और तादात्म्य वा समवाय में परस्पर का संबंध होता है; इसलिये व्याप्तिवश एक दूसरे का (कारण से कार्य का कार्य से कारण का) अनुमान हो जाता है.

जिसमें हेतु द्वारा साध्य को साधा जाय उसे पक्ष कहते हैं. जैसे कि धूम देखके यह पहाड अग्नि वाला है वा इस पहाड मे अग्नि है. यहां पहाड पक्ष है. जिसमें हेतु सिद्ध साध्य का अभाव हो उसका नाम विपक्ष है. यथा तालाब में अग्नि नहीं होती अतः तालाव विपक्ष है. पक्ष से इतर जिसमें हेतुसिद्ध साध्य का भाव हो उसे सपक्ष कहते हैं जैसे अग्नि वाले पहाड पक्ष का रसोई घर सपक्ष है. सारांश साध्य और हेतु की हाजरी और अभाव पर पक्षादि की सज्ञा है.

उक्त व्याप्ति तीन प्रकार की होती है. जिस हेतु का विपक्ष न हो वोह

केवलान्वय* जिस हेतु का सपक्ष न हो वोह केवलव्यतिरेकी + और जिसके सपक्ष विपक्ष दोनो हो वोह अन्वयव्यतिरेकी अनुमान की उत्पादक होती है तीनो प्रकार के अनुमान (वा व्याप्ति) मे से अन्वयव्यतिरेकी अनुमान उपयोगी होता है. यह पर्वत अग्नि वाला है. इस प्रकरण मे रसोई गृह सपक्ष और तालाब विपक्ष है इसलिये अन्वयव्यतिरेकी अनुमान है.

अनुमानकरण.

लिंगदर्शन से व्याप्ति का स्मरण हो के लिंगी का अनुमान होता है. अनुमान करने मे वक्ष्यमाण ८ प्रकार के लिंग होते है १. करण से कर्ता का अनुमान सयोगी लिंग (यथा—इद्रिय, ज्ञान कर्ता का साधन. किवा कुहाडे के सयोगसबंध से छेदन का उससे खाति का अनुमान). २. गुण से द्रव्य का अनुमान. वहा समवाय लिंग है (यथा—आत्मा की सिद्धि मे ज्ञान लिंग है, क्योकि आत्मा मे समवाय से रहता है). ३ कार्य से कारण का अनुमान वहा कार्य लिंग है (यथा—अग्नि के अनुमान मे धूम) ४. कारण से कार्य का अनुमान वहा कारण लिंग है (यथा—मेघ से वर्षा होने का अनुमान). ५ देशाविनाभाव मे अनुमान होना (यथा—ओ३म् शब्द सुन के होता रा वा घटी सुन के रेल्वे आने का अनुमान होता है). ६. कालाविनाभाव से अनुमान होना (यथा—चंद्र उदय होने से कुमोदनी के विकास का अनुमान). ७. एकार्थी समवाय से लिंग अनुमान (यथा—आकाश में एकत्व एक पृथकत्व और परममहत के होने का अनुमान). ८ विरोधी लिंग से अनुमान (यथा—१—वर्षा के न होने पर वायु और मेघ के प्रतिकूल सयोग का अनुमान. २—वर्षा हो जावे तो वर्षा के प्रतिबंधक विजातीय वायु और मेघ सयोग के अभाव का अनुमान हो जाता है. ३—यहा न्योला नही है क्योकि सर्प आनद में फोकार कर रहा है) सर्प प्रसग मे लिंग का ज्ञान व्याप्ति के आधीन और व्याप्ति ज्ञान के बिना लिंग, अनुमितिप्रमा का साधक नही हो सकता, ऐसा जानना चाहिये. जब दूसरे के समझाने के लिये अनुमान की सिद्धि करना हो वहा पंच अव्यवयक न्याय का उपयोग कर्तव्य होता है. प्रतिज्ञा वाक्य (यथा—यह परवत अग्नि वाला है),

---

* प्रमेय है नामी (नाम वाला) होने से. यहा नामी हेतु सब में होने से केवला वयी अनुमान है

+ प्रत्यक्षादि प्रमाण है, प्रमा का करण होने से. यहा प्रमा करणत्व हेतु केवल व्यतिरेकी है क्योकि जहां प्रमाण का अभाव वहा प्रमा कारणत्व का भी अभाव है.

(२) अपदेश अर्थात् हेतुबोधक वाक्य (क्योंकि उर्ध रेखा वाली धूम देखते हैं), (३) निदर्शन–अर्थात् व्याप्तिबोधक वाक्य (यथा–जहा जहा धूम वहा वहा अग्नि होती है. जेसे महानस में), (४) अनुसधान वाक्य (यथा–ऐसे ही यहा परवत में), (५) प्रत्याम्नाय वाक्य (यथा–इसलिये यहा अग्नि हैं). यहा अग्नि है, धूम होने मे, रसोइगृहवत् ऐसे ३ वाक्य भी बस होते हैं.

आप्त उपदेश रूप **शब्द प्रमाण** से जन्य यथार्थ अनुभूति का नाम **शाब्दी प्रमा** (शब्द द्वारा जो ज्ञान हुवा सो) है (सो वेद है) जैसे अनुमान कैसे करना वा कौनसा अनुमान मानना यह रीति उपर कही है वेसे शब्द कौनसा और कैसे मानना उसकी रीति अध्याय ९ में कही है.

उपर कहे हुये प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द यह तीन प्रमाण हैं और जितने (उपमान, अर्थापत्ति, अभाव, ऐतिह्य, सभव, मान) प्रमाण है उनका इनमे समावेश हो जाता है.

(अयथार्थानुभव)–इद्रिय दोष और सस्कार दोष से अयथार्थ ज्ञान हो जाता है (९।२।१०). वोह दो प्रकार का है (१) सशय और (२) विपर्यय.

एक धर्मी में अनेक धर्म विषय करने वाला ज्ञान (**संशय**) है. यथा खंभे वा ठूठ को देख के यह खंभ वा पुरुष? ऐसा सशय होता है. अप्रत्यक्ष मे जेसे जंगल में सिह देख के क्या यह गाय है वा गवय (रोज) है. सामान्य धर्म का ज्ञान और विशेष का न हो वहा संशय होता है. विशेष धर्म के ज्ञान होने से सशय का अभाव हो जाता है. प्रथोक्त स्वर्गादि है वा नहीं? इस सशय का भी इसी में अतरभाव है

(विपर्यय)– (मिथ्याज्ञान, उलटाज्ञान. जो हो उससे और प्रकार का ज्ञान, न उसको वोह समझना, न वेसे को वेसा समझना). तदधर्माभाव मे धर्म विशिष्ट धर्मी की बुद्धि का नाम विपर्यय है. यथा–खच्चर को घोडा वा गधा समझना विपर्यय ज्ञान है. विपर्यय भी प्रत्यक्ष और अनुमान दोनो में होता है. सीपी में रजतत्व धर्म नहीं है, परतु उसमें यह चादी है, ऐसे रजतत्व धर्मविशिष्ट के ग्रहण पूर्वक रजत (चादि) बुद्धि होती है इसको विपर्यय प्रत्यक्ष कहते हैं. तद्वत डोरी में सर्प भान होना. भाप को धूम जान के अग्नि का अनुमान यहा विपर्यय अनुमान है **प्रशस्तपाद** की रीति मे यह क्या है, ऐसा आलोचन मात्र ज्ञान भी **अनध्यवसाय** (अविद्या) है. वृक्ष देखा, परतु यह कौनसा वृक्ष है, यह सोचना अनध्यवसाय है. सिंह देख के यह कौन प्राणी

होगा, ऐसा अनध्यवसाय होता है. संशयमें तो दो कोटीग्राही ज्ञान होता है और अध्यवसाय में एक ही अदृष्ट पूर्व वस्तु के विषय में होता है. स्वप्न–सस्कार वेग, धातु दोष और अदृष्ट से होता है. अदृष्ट से हो वोह भावी शुभाशुभ का सूचक चिह्न होता है. और जो स्वप्न में ही जाने हुयेका स्वप्न में ही प्रतिसन्धान होता है कि " कभी मैने इसको देखा है " यह ज्ञान स्वप्नांतिक कहाता है. इनमें से स्वप्न ज्ञान तो पूर्वानुभव जन्य संस्कारों से होता है. और स्वप्नान्तिक तत्काल उत्पन्न ज्ञान से उत्पन्न हुये संस्कार से होता है.

(हेत्वाभास)–जिस से अनुमान हो उसे लिंग वा हेतु कहते हैं-जैसे कि अग्नि के अनुमान में धूम हेतु है. जो हेतु न हो और हेतुवत् भासे–यथार्थ अनुमिति का प्रतिबंधक हो उसे हेत्वाभास कहते हैं. ऐसे में हेतु रूप जो ज्ञान उसका विपर्यय मे अंतरभाव है. ऐसे हेत्वाभास ३ प्रकार के होते हैं (१) विरुद्ध (२) असिद्ध (पक्षासिद्ध, स्वरूपासिद्ध, अप्रसिद्ध, प्रतिज्ञाअसिद्ध, ऐसे ४ प्रकार का होता है.) (३) अनेकांत (यह साधारण–सत्प्रतिपक्ष १, असाधारण २, प्रकरणसम–अनुपसंहारी ३, ऐसे ३ प्रकार का होता है) (न्याय दर्शनमें विवेचन वांच चुके हो).

(स्मृति)–पूर्व अनुभव के संस्कार से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वोह स्मृति है. यथार्थानुभवजन्य संस्कारज यथार्थस्मृति और अयथार्थ (अनुभवजन्य संस्कारज अयथार्थ स्मृति होती है. स्मृति की स्मृति को (अंतिमस्मृति को) चर्मस्मृति कहते हैं. नवीन नैयायिक स्वप्न को भी स्मृति कहते हैं, परंतु भावना संस्कार के प्रकर्ष से स्मृति का विषय प्रत्यक्षाकारसा (जैसे का तैसा) भासता है, ऐसा मानते हैं.

सुख—इष्ट विषय की प्राप्ति से यह गुण उत्पन्न होता है. गुणे हो, इस अनुकूल ज्ञान का विषय है. अतीत विषयो में स्मृति से और अनागत में उनके संकल्प से होता है जो ज्ञानवानों का विषय, और उसकी स्मृति तथा संकल्प के विना सुख होता है, वह विद्या, शांति, संतोष और धर्म विशेष से होता है

दुःख— इष्ट के वियोग या अनिष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न होता है. गुणे न हो, इस प्रतिकूल ज्ञान का विषय है. अतीत विषयों की स्मृति और अनागत के संकल्पो से होता है.

इच्छा—अपने लिये वा दूसरों के लिये अप्राप्त वस्तु की चाहना को इच्छा कहते हैं. सो दो प्रकार की है (१) सुख प्राप्ति और दुःख निवृत्ति की इच्छा फलेच्छा है (२) और सब इच्छा, उसके साधन और उपाय के उपायरूप इच्छा है.

द्वेष—प्रज्वलन स्वरूप द्वेष है. वा अरुची होना. प्रयत्न, स्मृति, धर्म और अधर्म का हेतु है. दुष्टों से द्वेष में धर्म और श्रेष्टों से द्वेष में अधर्म होता है क्रोध, द्रोह, मन्यु, अक्षमा, अमर्ष यह द्वेष के भेद हैं.

प्रयत्न—उद्योग (संपादानार्थ चेष्टा) प्रयत्न गुण है. जीवन प्रयत्न (सोने समय भी जो प्राण अपान को चलाता है और जाग्रत में मन का इंद्रियों के साथ संयोग कराता है), + इच्छित प्रयत्न (हित के साधन ग्रहण करने में जो होता है सो), द्वेषित प्रयत्न (दुःख के साधनों के परित्याग में होता है सो).

धर्म—विहित (उत्तम) कर्मो से धर्म उत्पन्न होता है वोह पुरुष का गुण है; सो कर्ता के प्रिय हित और मोक्ष का हेतु है. प्रतिषिद्ध (निषिद्ध) कर्मो से अधर्म उत्पन्न होता है; सो अहित और दुःख का हेतु होता है. इन उभय को अदृष्ट कहते हैं. प्रसंग पर उद्भव हो के सुख दुःख भोग के हेतु होते हैं.

संस्कार—संस्कार तीन प्रकार का होता है १. वेग—द्वितीयादि पतन का असमवायी कारण. पृथ्वी, जल, तेज, वायु और मन इन पांच मूर्त्त द्रव्यों मे होता है. कर्म से कर्म (गति से गति) उत्पन्न होता है और अगले कर्म का हेतु होता है. २. भावना—स्मृति का हेतु पूर्व अनुभवजन्य संस्कार का नाम भावना है. यह आत्मा में होता है. † जिस विषय में वारवार अभ्यास उसमें निपुणता आने का कारण है. ३ स्थितिस्थापक—पूर्ववत् अवस्था में लाने वाला. जैसे टेढी हुई शाखा को छोडें तो फिर सीधी हो जाती है. यह संस्कार स्पर्श वाले घनी द्रव्यों में होता है.

गुणोपसंहार—* एक इंद्रिय से ग्रहण होने योग्य वा एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य से निखारते हों वे विशेष गुण हैं. रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्नेह, सासिद्धक, द्रवत्व, ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म भावना और शब्द यह विशेष गुण हैं. सख्या, परिणाम, पृथकत्व, सयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, नैमित्तक द्रवत्व

+ अगली, पेट, जिव्हा हलाते हैं. हमको नहीं मालूम होता कि कोनसे वायु वा इंद्रिय पकड के हलाते हैं. क्लोराफोरम सुघाने पर भी प्राण चलते है. योग्य भाषण होता है. जागने पीछे खबर भी नहीं होती. इससे जान पडता है कि इस प्रकार के व्यवहार में कुछ अन्य रीति-नीति है.

† संस्कार उत्पत्ति नाश वाले हैं तो उनका उपादान चाहिये, मन उपादान नहीं, अणु मानने से. आत्मा नहीं विभु स्वीकारने से. तो फेर अन्य कोन ? सिद्ध नहीं होता. अत में आत्मा वा मध्यम अतःकरण की सूक्ष्मावस्थाविशेष को संस्कार-भावना कहना पडता है.

* जुदा जनाते हैं.

और वेग सामान्य गुण हैं. अमूर्त १ शब्द गुण है. मूर्त १७ हैं. मूर्तामूर्त १८ हैं. गुणो में अव्याप्यवृत्ति संयोग विभाग और शब्द यह ३ गुण हैं शेष सब व्याप्यवृत्ति हैं. वायु में ९, तेज में ११, जल में १४, पृथ्वी में १४, जीव में १४ (बुद्धि वगेरे ६ संख्यादि ५ और भावना धर्माधर्म ३), दिशा में ५, काल में ५, ईश्वर में ८ और मन में ८ हैं (विशेष न्यायप्रकाश और आर्यभाष्य में देखो).

भावरूप कारण से रहित जो नित्य पदार्थ है वही मुख्य कारण है. उसकी सिद्धि में कार्य लिंग है कारण होने से कार्य होता है (४।१।१,२,३). सजातीय दो अणु=दो अणुक. तीन दो अणुक=त्र्यणुक. चार चार त्र्यणुक=चतुरणुक. इस प्रकार बन के सजातीय विजातीय का मिश्रण हो के जगत् की उत्पत्ति होती है. उस पीछे इससे उलटे क्रम से नाश होता है. कारण कार्य द्रव्य जुदा नहीं हैं (७।२।१३).

१. क्रिया गुण का व्यवहार न होने से उत्पत्ति के पूर्व कार्य असत् है (९।१।१). कारणरूप से सत् कार्यरूप से असत्. २. कारण व्यापार कार्य को सत् बना देता है. ३. नाश पीछे कार्य असत् हो जाता है. ४. असत् कभी सत् नहीं होता. कार्य परमार्थतः सत् नही, इसलिये असत्. ५. नाश पीछे यहां नहीं है ऐसे असत् का बोध होता है. कारणदर्शन से पूर्व में कार्य का अभाव भी प्रत्यक्ष होता है. ६. अश्वमें अगो, धर्म में अधर्म का प्रत्यक्ष होता है. ७. सारांश कार्य असत् नहीं है किंतु सत् का व्यापार होने से सत् है.

---

६. योगदर्शन.

इस दर्शन के प्रवर्त्तक पतंजलि मुनि हैं. उनके नाम पर इस दर्शन को पातंजल दर्शन कहते हैं. इसमें योग का वर्णन होने से इसे योग दर्शन कहते हैं. आत्मा का साक्षात् होके कैवल्य होना इसका मुख्य उद्देश्य है. परंतु वहां पहोंचने के पहिले ही अभ्यासी को अनेक शक्ति और सिद्धियें प्राप्त हो जाती हैं. यह दर्शन हिरण्यगर्भ ऋषिकृत हिरण्यगर्भ संहिता का विशेषानुवाद है. समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य ऐसे इसके ४ पाद हैं, पाद प्रति सूत्र हैं. यह दर्शन कब बना, यह कहना मुशकिल है; परंतु द्वापर में हुवा हो, ऐसा जान पडता है; क्योंकि महाभारतादि ग्रंथों में इसका (योग दर्शन ऐसे) नाम देखते हैं. यह वोह पतंजली नहीं जान पडते हैं कि जिन्होंने अष्टाध्यायी पर भाष्य किया है; क्योंकि वे बहुत पीछे

हुये है. योगदर्शन पर व्यासमुनि कृत भाष्य है, यह व्यासजी वे नही जान पडते कि जिन्होंने वेदांतदर्शन रचा है; क्योंकि क्षणिकवाद और पांच स्कंध जो बौद्धों के सिवाय अन्य की परिभाषा नही है उसका खंडन भाष्यमें किया है (४।२१ का भाष्य देखो). वहां ही सांख्ययोग का खंडन किया है. राजा भोज कृत इस पर भोजवृत्ति है, औरों ने भी इस पर टीका करके अपना विचार दरसाया है. वर्तमान में योग आर्य भाष्य हुवा है. टीकाकारों का मतभेद, साधन वा समाधि प्रसंग में नही है; यदि है तो सिद्धि प्रसंग और कैवल्यपाद में है. यह दर्शन शब्द वा विचार मात्र का विषय नहीं है किंतु प्रयोग का अभ्यास करने से इसका फल होता है ऐसा है.

प्रसिद्ध प्रतों में सूत्रों की न्यूनाधिकता भी देखने में आई है. यथा "तदासर्वा" (४।३१) इस सूत्र में अनंत पद व्यास भाष्य में नहीं. अन्य में है और "जाति" (३।५२), नतत (३।२०), कायरूप (३।२१),एतेन (३।२२), यह भोजवृत्ति में हैं. व्यास भाष्य में नहीं किंतु भाष्य वचन हैं इत्यादि भेद है.

इस दर्शन विषे परिणामी का अनादि बंध कैसे, जड प्रकृति की पुरुष के भोग मोक्षार्थ स्वयं प्रवृत्ति कैसे, प्रकृति मुक्त को न चिपटे इस में हेतु क्या, मुक्ति से अनावृत्ति तो सृष्टि का उच्छेद होगा, इत्यादि शंका हैं. परंतु दर्शन इनकी दरकार नहीं करता क्योंकि वात इतनी ही है कि यदि अधिकारी विवेक हुये पीछे अभ्यास वैराग्य द्वारा चित्त का निरोध कर लेगा तो जैसा होगा वैसा स्वयं अनुभव हो जायगा. आत्म संबंधी किसका लेख वा विवेक ठीक ठीक है, इसकी परीक्षा हो जायगी. इसलिये कोई तकरार दरमियान में नहीं ली है, ऐसा जान पडता है.

वर्तमान—नूतन काल विषे इस दर्शन के सिद्धि प्रसंग पर हंसी उडाते देखते हैं, परंतु सृष्टि नियम को जानके उसका तोल करें तो यह हंसी कहां तक ठीक है, यह स्वयं जान लेंगे. परंतु सिद्धि के लेखपर आग्रह करना भी ठीक नहीं जान पडता; कारण कि परीक्षा किये वा कराये विना लेखमात्र से नहीं माना जा सकता. किंवा महत्ता वाला कोई कार्य ऐसा देखने में नही आता कि जिससे इस लेख का अनुमान कर सकें.

पतंजलि मुनि का मंतव्य.

(१) अविद्यादि क्लेश, शुभाशुभ कर्म, उनके फल और वासना से रहित जो पुरुष विशेष है सो ईश्वर है. वोह गुरुओं का भी गुरु (शिक्षक) और नित्य है. अधिकारियों के इष्ट प्राप्ति में जो विघ्न उनके नाश मे निमित्त होता है. जीवों का

परिमित ज्ञान ही उसकी सिद्धि में प्रमाण है अर्थात् कोई पूर्ण ज्ञान वाला (सर्वज्ञ) होना चाहिये. (योग दर्शन पाद १. सूत्र २४, २५, २६. २९).

(२) पुरुष (जीवात्मा) चित्त (बुद्धि) के संबंध से द्रष्टा है (१।३. २।१७. २।२०). चेतन है, अपरिणामी है, विभु है, * चित्त जिसका ज्ञेय है, वोह चित्त का प्रकाशक है (४।१८।२२). पुरुष विषयों का प्रकाशक नहीं किंतु चित्त दृश्य का आकार धरता है सो उसमें ग्रहण होता है और जब चित्त बाह्य विषय रूप न हो तो संस्काराकार होता है वोह पुरुष में विषय होता है. (भाष्य· वृत्ति) और पुरुष नाना हैं (२।२२).

(३) सत्व, रज, तम यह ३ गुण परिणामी हैं सो ही दृश्य है. पुरुष को भोग मोक्ष देने वाले हैं (२।१८). परिणाम पाने में इनका कोई प्रयोजन नहीं है, किंतु पुरुष के भोग मोक्ष के अर्थ परिणाम को पाते हैं (२।२१. ४।२४). जितना यह सब दृश्य है वोह सब तीनों गुणों का परिणाम है (४।१३).

४. चित्त (बुद्धि) यह प्रकृति (सत्व रज तम का समूह) का सत्व प्रधान परिणाम है, सो स्वयं प्रकाश नहीं है, एक चित्त दूसरे चित्त का प्रकाशक नहीं होता (४।१९,२१). दुःख सुख, और मैं दुःखी सुखी यह चित्त के परिणाम हैं (४।२०). त्रिपुटीमात्र चित्त के परिणाम हैं (४।२३). चित्त से इतर बाह्य पदार्थ नहीं हैं, ऐसा नहीं है, किंतु चित्त में शक्ति है उनके आकार होना सो वे आकार विषय होते हैं (४।१६). विषय एक रूप है तो भी चित्त में ज्ञानवृत्ति जुदा जुदा होती हैं (४।१४,१५). चित्त में वासना अनादि है (अर्थात् चित्त और पुरुष का संबंध अनादि से है) (४।१०). किसी (चित्तादि किसी वस्तु) का भी नाश नहीं होता; किंतु अवस्थांतर होता है (यथा मृतपिंड घट, कनककुंडल, जल बर्फ, दूध दही इत्यादि) (४।४,१२). पुरुष का पुनर्जन्म होता है (चित्त का योनीआंतर गमनागमन यही पुरुष का पुनर्जन्म) (२।१२,१३. ३।१८). चित्त के पूर्व पूर्व वाले जन्य जो धर्म अधर्म सो तो आडमात्र होते हैं, उस आड के दूर होने पर चित्त (प्रकृति, भोग मोक्ष वास्ते) स्वयं नवीन परिणामी होता है (४।३).

(५) द्रष्टा (पुरुष) द्रव्य (चित्त) का संयोग दुःखों का कारण है (२।१७). स्वस्वामी भाव संबंध का नाम संयोग है (२।२३). संयोग का कारण अविद्या है (२।२४).

---

* अपरिणामी, और चित्ताकार होना, इन दो पर की अपांशत्ति मे विभु.

"इन तीनों सूत्रों के भावार्थ विषे भाष्यकार और वृत्तिकारों का मतभेद है—विवाद है. व्यासभाष्य, भोजवृत्ति, आर्यभाष्य, रावलवृत्ति देखो. दृश्य शक्तियों के स्वरूप प्राप्ति का हेतु सो संयोग है १, दृश्य (भोग्य) और द्रष्टा (मोक्ष स्वरूप) शक्ति के स्वरूप प्राप्ति का कारण संयोग २, बुद्धिरूप से परिणाम पाई हुई प्रकृति (स्वशक्ति) द्रष्टा (स्वामी शक्ति) इन दोनों शक्ति की उपलब्धि का कारण संयोग है ३, भोग मोक्षार्थ जो उभय (पु. प्र.) का परस्पर स्वस्वामीभाव वा द्रष्टा दृश्यभाव वा भोग्य भोक्ताभाव रूप जो संबंध इसका नाम संयोग है ४."

"बुद्धि में पुरुष का प्रतिबिंब (समीप—तादात्म्य संबंध) है, इसलिये बुद्धि (चित्त) चेतन ही जान पडती है; उस बुद्धि के धर्म (परिणाम—कर्ता भोक्तादि तमाम त्रिपुटी—बंधमोक्ष) पुरुष को अपने में भासते हैं वा वैसा अपने को मान बैठा है; यही बंध (दुःख) है, इस अविद्या का अभाव होना ही मोक्ष है १, विपरीत ज्ञान का नाम ही अविद्या है २, उक्त अविवेक का नाम अविद्या है ३, स्वस्वरूप का अज्ञान इसका नाम अविद्या ४."

(६) परिणाम दुःख, ताप दुःख और संस्कार दुःख से मिश्रित और परस्पर विरुद्ध तथा चलस्वभाव गुणों का परिणाम होने से सब विषय सुख, विवेकी को दुःख रूप ही हैं (२।१५). भूत भोग चुके, वर्तमान प्रारब्ध, भोगने पर स्वयं निवृत्त हो जायंगे, और भविष्यत दुःख त्याज्य हैं (२।१६). दुःखों का कारण पहिले कहा, भावि में वे न हों उनका उपाय आगे कहते हैं.

(७) उक्त अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव होता है, उसका नाम हान है, इसी को मोक्ष कहते हैं (२।२५). अर्थात् पुरुषार्थ रहित हुये गुणों का (चित्त का अपने कारण में लय हो जाना † अथवा चित्त शक्ति का (चेतनस्वरूप बुद्धि के संबंध से रहित हो के) अपने स्वरूप में स्थित होना इसका नाम कैवल्य (मोक्ष) है (४।३४).

(८) वासना सहित मिथ्याज्ञान रहित होने का नाम विवेकज्ञान है सो यह विवेकज्ञान उस हान का उपाय है (२।२६). यह योग अर्थात् चित्तवृत्ति के निरोध से होता है (२।२८). यह निरोध अभ्यास और वैराग्य से जाता है (२।१२). विवेकज्ञान (पुरुषख्याति) से सत्वादि गुणों में होने वाली जो इच्छा उसका अभाव होना परवैराग्य है.

† चित्त अहंकार में, अहंकार महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व प्रकृति में लय हो जाता है.

(९) विवेकख्याति और परवैराग्य वाले जीवनमुक्त पुरुष के सब आत्म संशय का अभाव हो जाता है (४।२९. २।२७). स्वरूपस्थिति से उत्थान काल में भी संस्कार उसे हानिकारक नहीं होते (४।२८). सब विषय उसे अल्प (तुच्छ) हो जाते हैं (४।३१).

(१०) उस मुक्त की पुनरावृत्ति (शरीर त्याग पीछे अन्य शरीर या योनी प्राप्ति) नहीं होती अर्थात् प्रकृति उसके बंध मोक्ष वास्ते परिणाम नहीं धरती (४।३०,३२,३३). दूसरे जीवों वास्ते परिणाम पाती है (२।२२).

(११) प्रत्यक्ष (इंद्रियजन्य चित्तवृत्ति), अनुमान (व्याप्तिजन्य चित्तवृत्ति) और आगम (वेद शब्दजन्य वृत्ति) यह तीन प्रमाण हैं.

(१२) ईश्वर जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का निमित्त है वा नहीं, और जगत् की उत्पत्ति लय होता है वा नहीं, इनकी चर्चा योगसूत्र में नहीं है. पुरुष के भोग मोक्ष के लिये प्रकृति की प्रवृत्ति ईश्वर निमित्त द्वारा होती है, ऐसा भी नहीं लिखा है; बल्के प्रकृति स्वतंत्र प्रवृत्ति करती हो, ऐसा (४।३ आदि सूत्रों से) भासता है. परंतु यह शास्त्र सर्वज्ञ ईश्वर और वेद को मानता है; इसलिये जड प्रकृति का प्रेरक कोई शक्तिमान चेतन याने ईश्वर होना चाहिये. नहीं तो मुक्त होने पीछे भी प्रकृति क्यों न चिपटे—स्वामी न बनावे किंवा बद्ध जीवों को क्यों न छोड दे? निदान ईश्वर को निमित्तकारण मानता हो, ऐसा आशय निकाल सकेंगे. परंतु इसका विषय केवल प्रकृति से जुदा पडके स्वस्वरूप में स्थित होने का है; इसलिये इससे इतर अन्य विषय नहीं लिये हैं, ऐसा जान पडता है.

विशेष वर्णन.

हिरण्यगर्भ संहिता योग का ग्रंथ है उसका विस्तार वाला अनुवाद पतंजलि मुनि लिखते हैं. यह योग का विषय उच्चार वा विचारमात्र का विषय नहीं है, किंतु आचार (प्रॅकटिस–अभ्यास वर्तन) का विषय है, उसमें शिक्षक की अपेक्षा है, इसलिये संक्षेप में सार लिखते हैं.

योग से पुरुष को कैवल्य (मोक्ष) स्वस्वरूप स्थिति प्राप्त होती है. चित्त की वृत्तिओं का निरोध योग कहाता है. चित्त (अंतःकरण–मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त) की वृत्तियें (परिणाम–स्फुरण–योग्यता) असंख्य हैं. उनका समावेश नीचे की पांच में हो जाता है १. प्रमाण (जिससे यथार्थ बोध हो, सो ३ प्रकार की होती है.

नं. ११ याद कीजे). २. विपर्यय (जिससे अयथार्थ बोध हो. अर्थात् मिथ्या ज्ञान, भ्रांति, अविद्या, उलटा ज्ञान). ३. कथन में ठीक परंतु अर्थशून्य हो उस वृत्ति को **विकल्प** कहते हैं यथा–हाथ पानी से जल गया. सब ऐसा कहते हैं परंतु दरअसल हाथ अग्नि से जला है. ४. **निद्रा**–जाग के कहे कि मैं बेसुध सोया. ५. इन वृत्तियों के अनुभवजन्य जो संस्कार उन संस्कारों से जो चित्तवृत्ति पुनः उत्पन्न होती है वोह **स्मृति** है. स्मृति की भी पुनः स्मृति होती है. इन सब वृत्तिओं का आत्मा अनुभव करता है अतः इस अनुभव को बोध वा दृष्टि और आत्मा को बोधा वा द्रष्टा कहते हैं.

तथा चित्त की पांच अवस्था कहाती हैं. १. क्षिप्त–जब चित्त अत्यंत स्थिर हो. २. **मूढ**–ज्ञान की तरफ झुके ही नहीं. ३. विक्षिप्त–जब थोडासा टिके परंतु जलदी घबराके विचल जाय. ४. एकाग्र–जब एक ही अर्थ में पूरा टिक जाय उसी अर्थ में ध्यान की एकतानता बंध जाती है वोह एकाग्रावस्था है. ५. निरुद्ध–सर्वथा रुक जाना. नवीन वा पुरानी, धेय ध्यानादि कोई प्रकार की भी वृत्ति न फुरे. न नींद हो न मूर्छा. इन पांचों में से पहिली व्यवहारियों की, दूसरी नीचों की, तीसरी जिज्ञासु की और चोथी पांचवीं अवस्था योगी की हैं.

चोथी का नाम **संप्रज्ञातयोग** (जहां टिके उसको यथार्थ जान लेता है). पांचवी का नाम **असंप्रज्ञातयोग** (सब वृत्तियों का अभाव हो जाता है). इसी का नाम योग है. चित्त के निरोध होने पर कोई वृत्ति दृश्य नहीं होती, तब द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित होता है (आत्मदर्शन–स्वप्रकाशस्वरूप होता है) (इसको चिद्ग्रंथी का भंग भी कहते हैं).

पूर्वोक्त वृत्तियों का **अभ्यास** (चित्त को ठेराने का वारंवार यत्न करना) और + **परवैराग्य** (लोक परलोक ‡ की सिद्धि वगेरे की कामनाओं से रहित होना) से निरोध होता है. जितना अभ्यास और वैराग्य प्रबल उतना ही जलदी योग सिद्ध होता है.

१. ओ३म् के जप और परमात्मा के स्वरूप चिंतन को **ईश्वर प्रणिधान** कहते हैं. इस भक्ति विशेष से समाधि (असंप्रज्ञात योग) का लाभ होता है अर्थात

+ परवैराग्य २ प्रकार का है. १ यही. दूसरे के लक्षण त. द. अ ४ पृ. २५६ देखो. आत्मवित को होता है.

‡ ३।३६. ४।४८ देखो. सिद्धियें विवेकख्याति में भ.द है.

चित्त स्थिर हो जाता है. और योग सिद्धिमें जो विघ्न होने वाले हों उनकी निवृत्ति हो जाती है. उन विघ्नों के नाम, व्याधि (रोग), सत्यान (अशक्ति), संशय (मैं योग कर सकूंगा वा नहीं), प्रमाद (बेदरकारी से साधन छोडना), आलस्य (शिथिलता बनी रहनी), अविरति (विषयों में प्रीति–तृष्णा बनी रहनी), भ्रांतिदर्शन (योगी गुरु के उपदेश में विपरीत ज्ञान) अलब्ध भूमिकत्व (समाधि की भूमिकायें (डिगरी–दरजे)का न पाना), अनवस्थितत्व (भूमिका को पा के भी चित्त का न ठेरना), यह ९ विघ्न हैं. और विक्षेपों के साथ साथ होने वाले ५ विघ्न हैं. प्रतिकूल वेदना (३ प्रकार की) १, क्षोभ (इच्छा पूरी न होने से जो व्याकुलता) २, कंप (आसन और मन को भंग करनेवाला शरीर का कंपन) ३, प्रश्वास (वाहिर से अंदर में प्राण का जाना) ४, श्वास (प्राण का वाहिर आना) ५, उक्त सब विघ्न एक तत्त्व के अभ्यास करने से दूर हो जाते हैं.

जब तक चित्त में ईर्षादि बने रहते हैं वहां तक चित्त नहीं टिकता इन मलों के धोने का उपाय यह है. १ सुखियों में मैत्री की भावना से २, दुःखियों में करुणा (दया) की भावना से ३, पुण्यात्माओं में मुदिता (प्रसन्नता) की भावना से ४, और पापियोंमें उपेक्षा (उदासीनता) की भावना से चित्त निर्मल हो जाता है.

२. प्राण वाहिर निकाल के रोकना पुनः धीरे धीरे लेके अंदर में रोकना ऐसा अभ्यास करने से मन स्थिर होता है. ३. विषयवती से मन स्थिर हो जाता है. यथा– नासाग्र भाग में ध्यान करने से दिव्य गंध का ज्ञान होता है उस विषय रूपवृत्ति होने से चित्त ठेरता है. (ऐसे ही अन्य इंद्रियों के विषय ज्ञातव्य हैं). ४. विशोकाज्योतिष्मति की प्रवृत्ति से मन स्थिर होता है यथा– हृदयकमल में चित्त लगाने से सूर्य के प्रकाश में बदल जाती है उससे चित्त ठेरता है. (इसी प्रकार नाभी, भ्रकुटी, ब्रह्मरंध्र के चक्रों वास्ते जान लेना). ५. वीतराग के चित्त में संयम करने से मन स्थिर होता है. ६. स्वप्नज्ञान वा निद्रा ज्ञानको अवलंबन करने वाला चित्त स्थिर हो जाता है. ७. किंवा अपनी रुचि अनुसार ध्यान करने से चित्त ठेरता है. (मन मुखीपना करे तो हानि है * इसलिये किसी अभ्यासी वा शास्त्र से संमत होके करना चाहिये).

* मन मुखी हठ निग्रह से तीन व्यक्तियों की हानि देखने में आई. वे मुश्क पीछे ठेकाने आये.

जिसका चित्त शुद्ध है उसके लिये अभ्यास और वैराग्य उपाय हैं. जिसको अभिचित्त की शुद्धि करना शेष है उसे साधनों की आवश्यकता है उनमें से सहला क्रियायोग साधन है. १. तप दुःख सुखादि जो द्वंद्व हैं उनको सहन करना अर्थात सहनशील होना. आहार विहार का संयम अर्थात हित परिमित और शुद्ध सात्वकी अन्न का आहार होना, शरीर की क्रिया नियम होना. २. स्वाध्याय— धर्म और अध्यात्म विद्या सिखाने वाले शास्त्र का अभ्यास करना. ३. ईश्वर प्रणिधान — ईश्वर चिंतन, सर्व कर्म तिसको अर्पण करना और उनके फल में त्याग वृत्ति. यह क्रिया योग समाधि की उत्पत्ति के लिये और अविद्यादि क्लेशों को सूक्ष्म-(निर्बल) करने के लिये हैं.

वे पंचक्लेश यह हैं. १. अविद्या— अनित्य, अपवित्र, दुःख और अनात्म में (उलटा ज्ञान अर्थात) नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा का ज्ञान होना वा नित्यादि को अनित्यादि समझना यह अविद्या है. २. अस्मिता— दृक् शक्ति (आत्मा) और दर्शन शक्ति (बुद्धि) इनका भेद प्रतीत न होना किंतु उभय का एक स्वरूप सा जान पडना. अर्थात् जब अविद्या से प्रथम बुद्धि को आत्मा (अपना आप) समझ लेता है तो फिर बुद्धि की तमाम अवस्था अपने मे आरोप कर लेता है. ३. राग— सुख के साथ लेटने वाला अर्थात जिस वस्तु से सुख उठाया उसमें इच्छा विशेष होना. ४. द्वेष— दुःख के साथ लेटने वाला अर्थात् दुःखानुभव के पीछे उत्पन्न हुई जो अरुचि वाली चित्तवृत्ति उसका नाम द्वेष है. ५. अभिनिवेश— विवेकी को भी मूरख समान वासना बल से होने वाला जो मरण भय सो (ऐसी चित्तवृत्ति). दृष्ट अदृष्ट जन्म में फल देनेवाले शुभाशुभ कर्मजन्य जो धर्म अधर्म उनका मूल क्लेश है इसलिये निवर्तनीय है.

योग के जो अंग उनके अनुष्ठान द्वारा अशुद्धि (धर्माधर्म पंचक्लेश) के नाश हो जाने से विवेकख्याति (आत्मा-द्रष्टा और प्रकृति-चित्त का साक्षात्) पर्यंत निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है (२।२८). यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह आठ योग के अंग हैं (२।२९).

१. यम=अहिंसा (वैर और द्रोह से रहित होना), सत्य (जैसा देखा सुना जाना माना वैसा किंवा यथार्थ भाषण), अस्तेय (चोरी न करना वा अनीति से किसी का हरण न करना), ब्रह्मचर्य (वीर्य अत्याग. वा अष्टमैथुन वर्जित होना) अपरिग्रह (दोष दृष्टि से विषयों का परित्याग वा ममता का अभाव वा जरूरत से

ज्यादे का असंग्रह). यह पांच यम (महाव्रत) कहाते हैं. सर्व देश काल स्थिति में तन मन वाणी से पालन करने योग्य होने से महाव्रत कहाते हैं.

२. **नियम**=शौच (तन और तत्संबंधी वस्त्र भोजनादि की सफाई यह बाह्य शौच. और मैत्री आदि से अंतर की सफाई आंतरशौच). **संतोष** (यथा प्राप्त में संतुष्टि) **तप** (पूर्ववत्). **स्वाध्याय** (पूर्ववत्) **ईश्वर प्रणिधान** (पूर्ववत्). यह पांच **नियम** कहाते हैं.

जो यमनियम पालन में बाधा जान पडे तो उसके प्रतिपक्ष (हानि) का विचार करके पालना चाहिये. यमनियम के १० फल होते हैं. १. अहिंसा पालन से दूसरे जीवों के विरोधभाव की निवृत्ति. २. सत्य से धर्म और सुख तथा वचन की सफलता. ३. अस्तेय से आवश्यकता पूरी हो जाना. ४. ब्रह्मचर्य से तन मन का बल ५. अपरिग्रह से पूर्व उत्तर जन्म का अनुमान. ६. शौच से शरीर में वैराग्य, संबंध से उपरामता और चित्त शुद्धि. ७. संतोष से अनुत्तम (सर्वोत्तम) सुख. ८ तप से शरीर इंद्रिय की शुद्धि और शक्ति वृद्धि. ९. स्वाध्याय से इष्ट साक्षात् की योग्यता वा साक्षात् और १०. ईश्वर प्रणिधान से समप्रज्ञात समाधि फल होता है.

३. **आसन**=बैठने की रीति विशेष का नाम आसन है. वे कई प्रकार के होते हैं; † परंतु जिससे देर तक सुख से बैठे रहें और रोग न हो ऐसा आसन उपयोगी है आसन की जय होने से भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी वगैरे द्वंद्व नहीं सताते. तन और कर्म इंद्रिय स्थिर हो जाते हैं.

४. **प्राणायाम**=प्राण (श्वास) की गति का रोकना प्राणायाम है, जो आसन किये विना नही होता. श्वास को बाहिर निकालना **रेचक.** अंदर की तरफ खेंचना **पूरक** और रोकना (बाह्य वा अंदर में रोकना) **कुंभक** कहाता है. पूरक और रेचक सहित जो कुंभक सो **सहितकुंभक** कहाता है. और जब अभ्यासवश से इतनी शक्ति बढ जाय कि रेचक पूरक विना प्राण थम जाते हैं उसे **केवलकुंभक** कहते हैं. प्राणायाम करने से मल धोये जाते हैं, ज्ञान चमकता है और मन धारणा के योग्य बन जाता है. ‡

---

† आसन, प्राणायाम के वास्ते ही होता है, सर्वदा नहीं. आसन ८४ प्रकार के हैं. उनमें से कोई रोग निवर्त्तक, कोई मुद्रा साधक हैं सिद्धासन (मुक्तासन) और पद्मासन यह प्राणायाम में उपयोगी हैं

‡ प्राणायाम की विधि अभ्यासी गुरु से सीखना चाहिये. मन मुखी करने से हानिप्रद हो जाता है. उसकी मात्रा देश काल संख्या इत्यादि यथाऽधिकार होते हैं. सारांश आसन प्राणायाम गुरु से सीखने योग्य है.

५. प्रत्याहार=प्राणायाम के अभ्यास से जब मन बाहिर की तरफ़ से हट जाता है तो उसके साथ ही इंद्रियों का बाह्य विषयों से संबंध त्याग कर चित्त के समान थम जाने का नाम प्रत्याहार है. प्रत्याहार से इंद्रिय वस में हो जाती हैं.

६. धारणा=चित्त को किसी एक स्थान पर टिकाना धारणा है. टिकाने के स्थान शरीर के अंदर नाभी, हृदय, भ्रकुटी, मूर्द्धादि चक्र हैं और बाहिर कोई भी विषय हो सकता है.

७. ध्यान=अब जब जिस प्रदेश (वस्तु) में चित्त को टिकाया है उसी में उसकी वृत्ति का एकाग्र हो जाना अर्थात् एक ही प्रकार की वृत्ति का लगातार उदय होते चला जाना और अन्य वृत्ति का उदय न होना ध्यान कहाता है.

८. समाधि=जब वोह ध्यान ऐसा जम जाता है कि उसमें केवल धेयमात्र ही भासता है, ध्यान का अपना स्वरूप भी गुम हुवा जैसा हो जाता है तब उसे समाधि कहते हैं. इस समाधि की पक्की अवस्था का नाम संप्रज्ञात समाधि है. जिसमें समाधि के अगम्य विषय भी ज्ञात हो जाते हैं. यमादि पांच योग के बहिरंग और धारणा ध्यान समाधि यह ३ अंतरंग साधन हैं.

संयम=जब धारणा, ध्यान और समाधि तीनों एक विषय में हों तो उसे संयम कहते हैं. भिन्न २ विषयों में संयम का फल भिन्न २ सिद्धियें हैं जो योग शास्त्र के विभूति पाद ३ में कही हैं * विभूति (सिद्धि) दो प्रकार की होती हैं ज्ञानात्मक (३।१६ से ३६ तक में है) और क्रियात्मक (३।३७ से ४९ तक में कही हैं).

समाधि के २ भेद हैं— सबीज १ निर्बीज २. सबीज समाधि के ४ भेद हैं. चित्त का एक में टिक के तन्मय तत्लीन हो जाना समापत्ति कहलाती है.

---

* पदार्थ के भूत भविष्य के परिणाम का. प्राणियों की भाषा का. पूर्वजन्म का, पर के चित्त का और मृत्यु का ज्ञान ऐसे होने की सिद्धि. अदृष्ट हो जाना, मैत्री आदि की सिद्धि, बलवृद्धि, दूरस्थ परोक्ष सूक्ष्म पदार्थों का, लोक (भवन) का, तारा का, तारा की गति का और शरीरगत पदार्थों का ज्ञान होना, भूख प्यास की निवृत्ति, शरीर स्थिर होना, सिद्धदर्शन, संपूर्ण ज्ञान, चित्त का ज्ञान, पुरुष का ज्ञान, मनेंद्रिय की अद्भुत् शक्ति होना. पर काया प्रवेश, ऊर्ध्वगमन, तेज प्राप्ति, सूक्ष्म शब्द श्रवण, आकाशगमन, क्लेशादि का अभाव; भूत (प्रकृति) स्वाधीन, अणिमादि अष्टसिद्धि. इंद्रिय जय और विशोकासिद्धि. इतनी सिद्धि लिखी है. यह सब (यद्यपि सृष्टि नियमानुकूल हो तो भी परीक्षा के बिना उस पर आधार नहीं रखा जा सकता).

इसके दो भेद है (१) वितर्कसमापत्ति और (२) विचारसमापत्ति. यह भी दो दो भेद वाली होती है इस प्रकार सबीज के ४ भेद है.

वितर्कसमापत्ति=जब लक्ष्य स्थूल हो तो वितर्कसमापत्ति होती है. उसके दो भेद होते है (१) समाधि मे लक्ष्य वस्तु के साथ उसका नाम और ज्ञान दोनो भासे तब तक सवितर्कासमापत्ति (२) लक्ष्य का नाम भूल जाय और ज्ञान भी अलग नही भासता है तब वोह निर्वितर्कासमापत्ति है. इस समापत्ति मे जेसा वस्तु का साक्षात होता है, ऐसा अन्य प्रकार मे नहीं होता. इसी प्रकार लक्ष्य सूक्ष्म हो वहा विचारसमापत्ति सज्ञा है. उसके दो भेद है (१) जब तक सूक्ष्म विषय अपने देश काल और निमित्त के साथ तथा अपने नाम और ज्ञान के साथ प्रतीत होता हो तब तक सविचारा समापत्ति है. फेर जब अर्थ को साक्षात् करते करते देश काल निमित्त और शब्द (नाम) सब भुला जाता है केवल अर्थ (लक्ष्य) मात्र ही प्रतीत होता है तब वोह निर्विचारा समापत्ति है. यह सूक्ष्म विषय पचतन्मात्रा से ले के प्रकृति पर्यंत है. स्थूल भूत ओर भौतिक वस्तुओं का साक्षात वितर्कसमापत्ति मे और पचतन्मात्रा से लेके प्रकृति पर्यंत का साक्षात विचारसमापत्ति से होता है. इन चारो को सबीजसमाधि वा संप्रज्ञातयोग कहते है.

निर्विचार समाधि ज्यो ज्यो बढती है त्यो त्यो प्रज्ञा निर्मल होती जाती है. पूर्ण निर्मल होने पर सब पदार्थ काच की तरह उसको एक साथ साफ देख पडते है. विशोका (शोक से परे) प्रज्ञा होती है. जेसे पर्वत पर बेठा हुवा भूमि पर स्थित लोको को देखे, ऐसे सब जान पडते है. इस अवस्था मे जो प्रज्ञा होती है उसका नाम ऋतंभरा प्रज्ञा है. क्योकि सचाई को धारण करती है. इसमें अयथार्थता (धोखा) कभी नही होता. इसी को अध्यात्म प्रसाद, स्फुट प्रज्ञालोक वा प्रज्ञा प्रसाद कहते है. अनुमान वा शास्त्र से हम प्रकृति पर्यंत को जानते हैं, परंतु समाधि में उनका साक्षात प्रत्यक्ष होता है.

पहिले के सस्कारवश समाधि में पहुचा हुवा चित्त भी बाहिर की तरफ भागता है; परतु निर्विचार समाधिजन्य प्रज्ञा बलवान है. उसके सस्कार फिर समाधि में ही लगाते है और उसमें पुनः वेसे ही सस्कारें पेदा होते है वा फिर समाधि मे लगाते है. इस प्रकार योगी सदा उसी में मग्न रहता है.

निर्विचार समाधि मे जब आत्मा और सूक्ष्म दृश्यो को देख लेता है और यह जान लेता है कि मैं यह दृश्य नही हू किन्तु इनसे परे इनका द्रष्टा हूं तब उसको

इन दृश्यो से परे पहुचने की इच्छा होती है उसकी इस प्रबल इच्छा से चित्त पर का दृश्य मिट जाता है, तब आत्मा उस दृश्य से हट कर अपने स्वरूप में आ जाता है. यही चित्त की निरुद्धावस्था है. इसीको **निर्बीज समाधि** वा **असंप्रज्ञात योग** कहते है.

अब इस समाधि होने पर योग का उद्देश पूरा हो जाता है; क्योकि आत्मा इस अवस्था में अपने स्वरूप मे अवस्थित होता है. पहिले प्रकृति (चित्त) के बंध में था अब उनसे छूट गया है यही मुक्ति है. पहिले वोह प्रकृति के साथ एक रूप हो रहा था अब उसमे अलग हो के केवल स्वरूप हुवा है इसीको कैवल्य कहते है.

शोधक.

जीव, बंध, मोक्ष और प्रकृति के संबध में वक्ष्यमाण सांख्य अनुसार योग लेना चाहिये. **विभूषक मत.** योग का उपदेश तथा साधन का मत नहीं हो सकता. उत्तम है इसके प्रकृति पुरुषवाद के भूषण वक्ष्यमाण सांख्य योगवत ज्ञातव्य है.

---

७. सांख्यदर्शन.

(१) इस दर्शन के प्रवर्त्तक कपिलमुनि हैं अत **कापिलदर्शन** और प्रकृति से लेके स्थूल पर्यंततक तमाम तत्त्वो की संख्या कहने से **सांख्य दर्शन** कहाता है. प्रकृति पुरुष की विवेचना करके उनके जुदा जुदा स्वरूप को दरसाना यह इसका उद्देश्य है; क्योकि यह अभेद बंध का हेतु है और इस भेद के जानने से पुरुष मुक्त हो जाता है. कपिलमुनि का समय कहना मुशकिल है कथाओं मे अनुमान कर सकते है कि महराज रामचंद्रजी के पूर्व काल मे हुये हो

(२) यह बात प्रसिद्ध है कि कपिलमुनी ने २२ सूत्र रचके आसुरिमुनि को उपदेश किया उसने पंचशिखा आचार्य को पंचशिखाओं ने सविस्तृत शास्त्र रचा योग दर्शन के भाष्य (व्यास भाष्य) में जो सूत्र दिये है वे पंचशिखा आचार्य के है. परंतु यह तमाम सूत्र अब नहीं मिलते मूल ग्रंथ लुप्त हो गया है (नव दर्शनसंग्रह में से)

(३) वर्तमान सांख्य दर्शन (षडाध्यायी सांख्य) कपिलमुनि कृत माना जाता है परंतु इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि प्राचीन आचार्यों (श्री शंकर इत्यादि) ने

इसका कोई भी सूत्र अपने लेख मे नहीं लिया. प्रत्युत सांख्य की कारिका के वाक्य लिये हैं और वाचस्पति मिश्र की टीका भी इस कारिका पर है. यह टीका भी वर्तमान दर्शन के विज्ञान भिक्षु भाष्य से पुरानी है (नव द. सं. से). और उत्तर सांख्य में पंचशिखा आचार्य और सनन्दाचार्य का मत लिखा है (६।६८।६९). और भी न्याय वैशेषिक के मत का नाम लेके तथा बौद्धो के मत का इसमे निषेध है (५।८५।११८५). इससे अनुमान होता है कि प्रसिद्ध सांख्यदर्शन नवीन है. * कुछ भी हो परंतु प्राचीन और नवीन के सिद्धांत में भेद नही जान पडता और दोनों का योगदर्शन से अंतर नहीं है.

(४) इस शास्त्र की संप्रदाय रूप मे प्रवृत्ति हुई हो, ऐसा नही जान पडता. सुनते हैं कि प्राचीन काल में इस मत के साधु (संन्यासी) भी होते थे; तथापि सांख्य मत प्रशंसा पात्र ठेरा है. ग्रंथो में " सांख्य समान ज्ञान नहीं " ऐसी प्रशंसा भी वांचने में आई है. गीता के अ. १३ में इसी मत का स्वीकार किया हो ऐसा जान पडता है.

(५) प्राचीन सांख्य की हिस्टरी और मंतव्य का सार " नव दर्शनसंग्रह" से हमको मिला है; इसलिये उसके कर्ता का उपकार मान के इस प्रसग में सार सार लिखा गया है. संग्रहकर्ता ने जीव के परिमाण और ईश्वर प्रसग की चर्चा नही की है, इसलिये हम भी न लिख सके.

(६) उस पीछे उत्तर सांख्य का सार दिखाया गया है. उभय के लिखने में यह प्रयोजन है कि सांख्य संबंध में जो भ्रांति पसर रही है उसके निराकरण में उपयोगी हो

पूर्व सांख्यदर्शन का सार.

(१) प्रकृति महत्तत्त्वादि २४ और पुरुष यह २५ तत्त्व हैं. प्रकृति=जिससे कुछ बने परंतु आप किसी से न बनी हो. इसलिये उसे प्रधान कहा है. इसे ही अव्यक्त और अजा कहते हैं. सत्व, रज और तम यह तीनों (द्रव्य) साम्यावस्था में हो तब तक इस समूह का नाम प्रकृति है. जब इनमें क्षोभ (हिलचाल सत्व तम रज की उथल पाथल) होता है तो उसमें से जो पहिला तत्त्व उत्पन्न होता है उसका नाम महत तत्व है. इससे अहंकार, इस (अहंकार) से पंचतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) और ११ इंद्रिय (कर्मेंद्रिय ५ ज्ञानेंद्रिय ५ और मन) इन

* इसके रचयिता का नाम ज्ञात-प्रसिद्ध नहीं है.

पंचतन्मात्राओं से पंचमहाभूत उत्पन्न होते हैं. यथा–गंधतन्मात्रा से पृथ्वी, एवं रस से जल, रूप से तेज, स्पर्श से वायु, शब्द से आकाश, इनमें से महत्त, अहंकार की तो प्रकृति है और प्रधान की विकृति है. ऐसे ही अहंकार, तन्मात्रा भी प्रकृति विकृति हैं; क्योंकि महततत्वादि दूसरे से बने हैं और उनसे दूसरे बने हैं. ग्यारा इंद्रिय और ५ महाभूत केवल विकृति हैं. प्रकृति नहीं; क्योंकि इनसे आगे कुछ नहीं बनता. गो वृक्षादि पृथ्वी से भिन्न तत्व नहीं हैं. और यहां विकृति का पारिभाषिक अर्थ है. अर्थात् अपनी प्रकृति से एक अलग ही तत्व हो जाये उसे विकृति * कहते हैं. पुरुष न प्रकृति न विकृति इस प्रकार केवल प्रकृति, महतादि ७ प्रकृति विकृति और १६ विकृति हैं पचीसवां पुरुष प्रकृति न विकृति है. (सांख्य का. ३).

(२) प्रमेय के सिद्धि प्रमाण के आधीन है. प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द यह तीन प्रमाण (ज्ञान होने के साधन) हैं.

(३) जो जगत् में है वोह हमेशे से है और जो नहीं वोह कभी भी नहीं होता—नया कार्य होना जो प्रतीत होता है वोह पहिले अव्यक्त (छिपा हुवा) था अब व्यक्त हुवा यही उत्पत्ति है. यथा पीसने से तिलों में से तेल, कूटने से धान में से चांवल और दोहने से दूध. माटी में घडा, तंतु में पट जो पहिले न थे तो कहां से आये? यह घट माटी की और वस्त्र तंतुओं की ही अवस्था विशेष है. अव्यक्त को व्यक्त करने के लिये प्रयत्न है. नहीं के नवीनोत्पन्न करना. ऐसे मंतव्य का नाम सत्कार्यवाद है. इस वाद में कार्यकारण का अभेद माना जाता है; क्योंकि कार्य कारण की अवस्था है और कार्य का नाश नहीं किंतु स्वकारण में लय होना है.

(४) परिणामवाद— जगत् में जो कुछ हो रहा है सो परिणाम का फल है अर्थात् हरेक वस्तु बदल रही है–यथा दूध दही, जल बर्फ, बीज अंकुर, अंकुर वृक्ष इत्यादि; क्योंकि गुणों का स्वभाव चल है; इसलिये परिवर्तन होता ही रहता है. जो हमको स्थिर जान पडती है वोह भी परिणित (बदल) हो रही है–यथा पत्थर (अंत में बोदा हो जाता है), दूध. इतना भेद है कि कभी सदृश परिणाम, कभी विसदृश परिणाम होता है. जब तक दूध, दुध है वहां तक सदृश परिणाम हो रहा है. जब दही बनने लगता है तब विसदृश परिणाम होने लगता है. पूर्वोक्त गुण कभी स्थिर नहीं होते; इसलिये प्रलयावस्था में भी सदृश परिणाम होता रहता है. जब सृष्टि उत्पत्ति की तरफ झुकते हैं तब विसदृश परिणाम होता है.

* यथा ओ + हाई.=जल यहां जल विकृति है, घटादि विकृति नहीं.

विसदृश परिणाम अपने कारण से विलक्षण हुवा करते हैं यहां तक कि मनुष्य को आश्चर्य हो जाय. यथा कहां मनुष्य का वीज और कहां उससे हाथ पांव वाला शरीर. तथा वीज से वृक्ष, पत्ते, फूल, फल.

(५) अंतःकरण में जब सत्वगुण का उदय (प्रधान) होता है तब उसका सुखात्मक परिणाम होता है. इसी प्रकार रज दुःखात्मक और तम मोहात्मक है. हरेक वस्तु सुख, दुःख और मोह की जनक हैं; इसलिये हरेक वस्तु त्रिगुणात्मक हैं ऐसा जान लेना चाहिये (यह **गुणों की पहिछान** है). प्रकाशक वस्तुओं में सत्त्व, चलन में रज और गेस में तम प्रधान होता है. * तथा एक ही वस्तु में भी द्रष्टा की रुचि भेद से भिन्न २ गुणों की अभिव्यक्ति होती है. यथा—एक सत्पुत्र को देख के पिता को सुख होता है; क्योंकि उसके प्रति उसके सत्व गुण की अभिव्यक्ति होती है; परंतु उसके शत्रुओं को दुःख होता है क्योंकि उनके प्रति रजो गुण की अभिव्यक्ति होती है; और अन्य जनों को मोह होता है क्योंकि उनके प्रति तमो गुण की अभिव्यक्ति होती है. इसी प्रकार तमाम भाव जान लेना. उत्पत्ति वाली तमाम वस्तुओं में गुणों का विषमभाव (कोई गुण प्रधान दूसरे दो अप्रधान) होता है. परंतु प्रलय में तीनो गुण साम्यावस्था में होते हैं इस साम्यावस्था को ही प्रकृति कहते हैं. इस अवस्था में तमाम बनावट अपने असली स्वरूप में लीन हुई होती है.

(६) सत्त्व, रज और तम यह तीनों स्वयं मूल द्रव्य हैं; न कि किसी द्रव्य के गुण. पुरुष भोक्ता है, यह उसके भोग्य हैं. भोक्ता, भोग्य की अपेक्षा प्रधान होता है और भोग्य भोक्ता के प्रति गुण (**गौण**) इस गुण प्रधान भाव को ले के इनकी गुण संज्ञा रखी गई है. किंवा गुण, रस्सी को कहते हैं. यह गुण पुरुष के लिये एक प्रकार की फांस है; इसलिये इनको गुण कहा है.

(७) सत्त्वादि परस्पर के सहचारी होते हैं, एक दूसरे के विना नहीं रहते; न इनका कोई आदि संयोग है और न कभी वियोग होगा; सर्वत्र तीनों विद्यमान हैं. हां गुण प्रधान भाव इनमें होता रहता है.

(७ अ)—पुरुष (जीवात्मा) बोध स्वरूप है अतः द्रष्टा है. गुण दृश्य, भोग्य और परस्पर संहत (मिश्रित) परिणामी हैं. पुरुष द्रष्टा, भोक्ता, अकेला (अमिश्रित—शुद्ध) एकरस, अपरिणामी है; देखते हुये भी उसमें कोई परिणाम नहीं होता; साक्षी वत् द्रष्टा है. प्रकृति और उसका सारा कार्य जड है उसमें बोध नहीं हो सकता.

* प्रकृति विवर्ण ग्रंथ में विशेष विस्तार किया गया है.

इसलिये वोधा जुदा होना चाहिये, वोह पुरुष है, तथाहि जो नाम सघात हैं वोह दूसरे वास्ते होने योग्य हैं यथा—शय्या आसनादि है. इसी प्रकार महततत्वादि सहत किसी असहत वास्ते होने योग्य हैं सो वोह पुरुष है. **पुरुष नाना हैं.** जो सन शरीर में एक ही आत्मा हो तो एक शरीर चलनेसे सब ही चल पडें. एक शरीर में नेत्र से कोई वस्तु देखें तो तमाम शरीरो मे उसका ज्ञान हो जाय एक के दुःखी होने से सब दु.खी हो जाय, परतु ऐसा नही होता; इसलिये पुरुष नाना है.

(८) **प्रकृति पुरुष का संयोग है.** विश्वमे दो वडी शक्ति का प्रकाश है, उनमे से क्रियाशक्ति प्रकृति में है और चेतन्यशक्ति पुरुष मे है. इन दोनो को एक दूसरे की अपेक्षा होने से प्रकृति पुरुषका संबध हुवा है प्रकृति अंधी है पुरुष पागला है दोनो के सयोग से सृष्टिरूप कार्य होता है. (सा. का. २१).

(९) **प्रकृति के कार्य**—प्रकृति में क्षोभ होके जो पहिला तत्व होवा है उसका नाम महत्ततत्व है. यह देह में बुद्धिरूप से स्थित है निश्चय करना इसका काम है. धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य इसके सात्विकरूप है. अधर्मादि तामस है. फेर महत मे परिणाम हो के जो नया तत्व होता है वोह **अहंकार** है. हमारे देह में उसका काम अभिमान है. अर्थात् "मैं हूं" यह "मेरा है" ऐसा भाव अहंकार का कार्य है. अहकार के परिणाम मे नये तत्व ११ इंद्रिय और ५ तन्मात्रा होती है. इद्रिय सात्विकी अहंकार से और तन्मात्रा तामस से उत्पन्न होती है. **पच-तन्मात्राओं** में परिणाम होके जो नये तत्व होते है वे ५ भूत है. पृथ्वी की उत्पत्ति मे गंधमात्रा प्रधान है परतु दूसरे तन्मात्रा भी उसके साथ मिली हुई है. इसी प्रकार अन्य महाभूतो में मिश्रण है.

(१०) इद्रिय ११ बुद्धि और अहकार यह १३ आत्मा के पास करण है. इनमें से मन, बुद्धि और अहकार यह ३ **अंतःकरण हैं,** शेष बाह्य करण है. बाह्य करण (विषय के साथ सबंध होने पर) अपने २ विषय (शब्दादि) को बाहिर से अदर पहुचाते है. और अदर स्थित बुद्धि, मन और अहकार के साथ मिलके उनका निश्चय करती है, अतः बाह्य करण द्वार और अतःकरण द्वारी है. अतःकरण में भी बुद्धि प्रधान है, क्योकि इद्रियें विषय का आलोचन करके मन को समर्पण कर देती हैं मन सकल्प करके अहकार को, अहकार अभिमत करके बुद्धि को और बुद्धि उसको पुरुष के सामने रखती है, इसलिये बुद्धि प्रधान है. और अत में बुद्धि ही प्रकृति

पुरुष का विवेक कराती है सो पुरुष के भोग और मोक्ष का साक्षात् साधन होने से बुद्धि, पुरुष का प्रधान-मंत्री है.

(११) बुद्धि, अहंकार, ११ इंद्रिय और पंचतन्मात्रा इनका समुदाय **सूक्ष्म शरीर** (लिंग शरीर) है. कर्म, ज्ञान और भोग इसी के सहारे पर (आश्रय) है. स्थूल शरीर के नाश से इसका नाश नही होता; किंतु कर्म और ज्ञान की वासनाओं से वासित हुवा निकल के उसानुसार नया जन्म का आरंभ करता है; मानो नट की तरह स्वरूप बदलता रहता है. सूक्ष्म शरीर प्रलय पर्यंत स्थाई है; प्रलयावस्था मे प्रकृति विषे लीन होता है: फिर सृष्टि उत्पत्ति काल मे नवीनोत्पन्न होता है.

(११अ) **ग्रंथि**=बुद्धि जड और पुरुष चेतन है; परंतु चेतन उससे अपने को पर नही देखता, बुद्धि को ही अपना आपरूप समझता हुवा बुद्धि के शांत होने मे आप शांत, घोर होने से घोर और मूढ होने से मूढ होता है. पंचशिखा सूत्र में लिखा है कि पुरुष शुद्ध, उदासीन और चेतनादि है; बुद्धि अशुद्ध अनुदासीन और जड है. यह भेद न देखता हुवा उसमें आत्मभाव कर लेता है. इसी का नाम चिदचिद्ग्रंथि वा जडचेतन की गाठ है: यही संसार का वा दुःख का मूल है.

(१२) यह अविवेक (बुद्धि पुरुष का अभेद) ही दुःख का हेतु है. और विवेक ही उसका पूरा इलाज है. पंचशिखाचार्य कहते है कि बुद्धि का जो संयोग है उसके छोडने से आत्यन्तिक प्रतिकार (इलाज) हो जाता है. अर्थात् जब पुरुष बुद्धि से अपने आपको जुदा देख लेता है तो बुद्धि में आत्मभावना निवृत्त हो जाने से बुद्धि गत संताप से सन्तप्त नही होता. इस प्रकार अलग हो जाना ही कैवल्य है.

(१३) इस प्रकार विवेकख्याति होने पर चैन से रहा हुवा प्रकृति के तमाशे को देखता है यही जीवनमुक्ति है, यही जिज्ञासुओं का गुरु है. इस जीवनमुक्त के लिये प्रकृति अपना काम बंद कर देती है, वोह प्रकृति से उपर हो गया है, इसलिये प्रकृति को रचना का कोई प्रयोजन नहीं, अतएव इन दोनो का संयोग होने हुये भी मुक्त के लिये सृष्टि का प्रयोजन नही रहा है. (सा. का. ६६).

(१४) तत्वज्ञान की प्राप्ति से धर्मादि अकारण बन जाते है (याने कर्म के बीज दग्ध हो जाते है) तथापि संस्कारवश से कुम्हार के चक्र समान ज्ञानी का शरीर बना रहता है (उससे क्रिया होती है) (सा. का. ६७). उस संस्कार के समाप्त होने पर शरीर गिर जाता है. तो अब प्रकृति चरितार्थ हो जाने से निवृत्त हो जाती

है (याने उसके लिये शरीर नहीं बनता), तब वोह अवश्यंभावी और अविनाशी कैवल्य का प्राप्त होता है.

प्रसिद्ध उत्तर सांख्यदर्शन का मंतव्य.

(१) आदि पुरुष (नित्यमुक्त), सिद्ध, सर्वज्ञ, कर्ता, (अकर्ता) इच्छारहित, लोहचंबुकवत् प्रकृति में गति का निमित्तकारण अर्थात् अधिष्ठाता (अध्याय १ में सूत्र ९२ मे ९८ तक, १६० से १६४ तक अ. २ में सूत्र ८, ९. अ. ३ में सूत्र ५९ से ६२ तक. अ. ५ में सूत्र २ से १२ तक देखो. ईश्वरवादि अनीश्वरवादि उभय का सार). *

(२) पुरुष (जीवात्मा) असंग है (१।१५।६।१०), अकर्ता है (१।१६,-६२), अक्रिय है, अपरिणामी है, उपाधि से क्रियावान भासता है, इसमें श्रुति प्रमाण है (अ. १।१४८।४९,५१,५२,५।७१). निर्गुण है (१।५४,१४६।६।१०।-६।६२), शरीर से भिन्न है, (१।१४४), ज्ञान उसका गुण नहीं किंतु वोह ज्ञान

---

* लोक में प्रसिद्ध तो यूं है कि सांख्यदर्शन का अनीश्वरवाद है; परंतु स्वतंत्र होके सूत्रों का विचारा जाय तो यह बात सिद्ध नहीं होती.

अध्याय १ में 'ईश्वर' सू. ९२ से 'सिद्ध' ९८ तक, 'व्या.' १६० से उप १६४ तक. अ. २ में अन्य ८,९ और अ. ३ में ५९ से 'कर्म' ६२ तक और अ. ५ में 'न ईश्वर' २ से 'श्रुति' १२ तक, इतने सूत्र ईश्वर प्रसंग में ले सकते हैं. इनका अर्थ यदि अनीश्वरवादि की दृष्टि से करें तो भी नीचे अनुसार है. पूर्व उत्तर प्रसंग के वश जब सूत्रों की तरफ के अधिष्टाता ईश्वर मानने की फर्ज पडी तब वहां अनीश्वरवादि ने जो भावार्थ निकाला है उसका सार यह है.

कोई नित्यमुक्तसिद्ध आदि पुरुष है, वोह अधिष्ठाता है: अर्थात् उसकी सनिधि मे लोहचंबुकवत् प्रकृति में गति होती है; नहीं कि उसकी इच्छा से (१।९६. २।८). और सर्ग के आरंभ में वही सर्वज्ञ सर्वकर्ता है (यही प्रेरकत्व अधिष्टातृत्व है), (३।५६). उसी पुरुष का उपदेश (वेद) है. वेद स्वतः प्रमाण है (१।९८. ५।५१). वेद में सिद्ध पुरुष की प्रशंसा उपासना है (१०९५). श्रुति मे जो ईश्वर की इच्छा मे जगत होना लिखा है वोह श्रुति गौणि है. उस आदि पुरुष की सन्निधि मे प्रकृति में गति, इसलिये प्रकृति पूर्व पूर्व के अदृष्टों अनुमार

स्वरूप है (१।१४९।६।९०), आत्मा विभु है उपाधि द्वारा भोग होता है (६।२९), पुरुष अनेक (नाना) हैं, चेतन हैं, शरीर संबंध से जन्म धारी कहे जाते हैं (१।१४९,१५०।१२१।१५७।६।३९), भोग का पर्यवसान-पुरुष मे होता है, याने पुरुष भोक्ता है. इष्टानिष्ट के अनुभव का नाम भोग है (१।१.४), पुरुष में कर्तृत्व का अभिमान होता है (१।१६४), अहंकार (प्रकृति का परिणाम) कर्ता है, पुरुष नहीं. अहंकार विशिष्ट जीव के कर्मो से भोग होता है सो अहंकारविशिष्ट चेतन को होता है (६।९९,६२). जैसे श्वेत काच लाल पुष्प के संबंध से लाल काच जान पडता वैसे प्रकृति (चित्त) के धर्म (दु:ख सुख कर्तृत्व बंध, मोक्ष) का अभिमान पुरुष मे आरोप होता है; क्योंकि उभय का अनादि से तादात्म्य संबंध है ६।२८।१।१.९.६।३।७२) पुरुष मुक्त शुद्ध है (१।१९).

उत्तर उत्तर परिणाम धारती है (३।६३). क्योंकि पुरुष प्रकृति का अनादि संबंध है (विज्ञान भिक्षुक) सूत्रो को इधर उधर कर के संगति मिला के देखें तो ईश्वर इच्छा वाला ठेरता है इतना ही दोनों के अर्थ में अंतर रहता है परंतु सू. ३।५६, ५७ में जो कर्तृत्व शब्द है वोह अनीश्वरवादि के अर्थ को नही चलने देता; क्योंकि जन्य ईश्वर (मुक्त-सिद्ध) अनेक कर्ता होंगे, यद्यपि उभय पक्ष का विवेचन विस्तार वाला है. तथापि सार इतना ही है; क्योंकि अनेक सिद्ध वा मुक्तो को अधिष्ठाता, गति के निमित्त वा सर्वकर्ता नही माना जा सकता; किंतु एक ही आदि सिद्ध (ईश्वर) मानना पडता है जो नाना सिद्धों को निमित्त मानें तो अनेक दोष आ जाते हैं. सर्ग के आरंभ काल में प्रकृति उपासक सिद्ध प्रकृति में से निकल के सर्ग का कर्ता एक ही हो, यह नियम नही हो सकता किंतु अनेक सिद्ध हो सकते हैं. परंतु ऐसा मानना व्यर्थ गौरव है और न सिद्ध हो सकता है.

जब कि चिदात्मा (जीव) चित्त के रागादि अपने में मान लेता है अर्थात् कर्ता भोक्ता नही; तो ईश्वर कर्मफलदाता की अपेक्षा न रही; क्योंकि मंतव्यमात्र (अविवेकमात्र) कर्म नहीं होता. जब यूं है तो ईश्वर को सृष्टि उत्पत्ति लय की अपेक्षा नहीं रही; किंतु प्रकृति के परिणाम पाने मात्र की अपेक्षा है सो पूर्व पूर्व आसना-अभ्यास वेग के स्वभाव से परिणाम को पाती है; अतः ईश्वर की अपेक्षा नहीं; परंतु भोग योग्य परिणाम पाने की योग्यता जड प्रकृति मे नहीं; इसलिये ईश्वर की निमित्तमात्र अपेक्षा है.

(३) प्रकृति=सत्व रज तम तीनों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है और वोह जड है. उसके विषम होने पर उससे महत्तत्व (बुद्धि), इससे अहंकार, अहंकार से पंचतन्मात्रा (शब्द—स्पर्श, रूप, रस, गंध) और ज्ञानेंद्रिय ५ कर्मेंद्रिय ५ और मन यह ११ उत्पन्न होते हैं. पंचतन्मात्रा से आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी यह पंचभूत होते हैं. इन २४ में प्रकृति किसी की विकृति नहीं और पंचभूत किसी की प्रकृति नहीं बाकी सब प्रकृति विकृतिरूप हैं. पुरुष प्रकृति विकृति रहित है (१।६१. १२६ वगैरे). प्रकृति एक देशी नहीं है (१।७६. ६।३६). पुरुष के भोग मोक्ष के लिये प्रधान (प्रकृति) की प्रवृत्ति (चेष्टा—परिणाम) होती हैं, उसमें उसका प्रयोजन नहीं है. यह चेष्टा संकल्प विना स्वभावसिद्ध है. यद्यपि प्रकृति

न कारणलयात् कृतकृत्यता. ३।५४. प्रकृति उपासक प्रकृति में लय होता है वोह कृतकृत्य (मुक्त) नहीं होता. अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्. ३।५५. जो कि प्रकृति का कोई प्रेरक नहीं है, तथापि पुरुष के विवेकज्ञान के आधीन होने से प्रकृति; अपने में लीन हुये को पीछे संसारी करती है. विवेक ज्ञानादि पुरुषार्थ, प्रकृति के उत्थान मे प्रेरक नही होते किंतु निमित्तमात्र होते हैं (प्रकाशवत्); इसलिये प्रकृति की स्वतंत्रता का बाध नहीं होता. स हि सर्ववित् सर्वकर्ता. ३।५६. पूर्व सर्ग में प्रकृति की उपासना से जो प्रकृति मे लीन हुवा है सो पुनः सर्ग के आरंभ काल में सर्वज्ञ, सर्वकर्ता आदि पुरुष होता है सो क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से रहित तथा धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्ययुक्त होता है. ईदृशेश्वर सिद्धिः सिद्धा. ३।५७ इस प्रकार के ईश्वर की सिद्धि होती है, अर्थात् कहे हुये प्रकार के जन्य ईश्वर की सिद्धि होती है. दूसरे एक ही नित्य ईश्वर को मानते हैं इतना अंतर है.

(अपवाद) पूर्व सर्ग मे एक ही प्रकृति लय सिद्ध हो, ऐसा नियम नहीं हो सकता; अतः सर्ग के आरंभ में अनेक होने से अनेक ईश्वर होंगे सो असमीचीन है. नवीनउत्पन्न सिद्ध में क्रिया न हो सकने से कर्ता नहीं हो सकता; क्योंकि आत्मा विभु है. यदि वोह सर्वज्ञ है तो उसे अविद्या अविवेक न होने से मुक्त हुवा स्वस्वरूप मे स्थित होगा: यदि अविद्या अविवेक है तो वोह जब कि अपनी चिदग्रंथी ही नहीं जानता तो दूसरे के भूत भविष्य को क्या जानेगा और जगत्कर्ता कैसे हो सकेगा. संक्षेप में या तो सूत्रों का अर्थ दूसरा है, वा तो सूत्रकार ने भूल खाई है; क्योंकि आप ही जगह जगह पुरुषों को अकर्ता कहता है.

जड है तो भी जैसे दूध में बछडे वास्ते चेष्टा होती है वैसे प्रकृति पुरुष के भोग मोक्षार्थ चेष्टा वाली होती है (२।१· ३।५८,५९,६१). परमाणु मूल वस्तु नहीं हैं (५।८७).

(४) प्रकृति और पुरुष अनादि हैं (१।७२). जगत् सत्य है अवस्तु नहीं है (६।२६).

(५) ज्ञान होने में ३ प्रमाण हैं प्रत्यक्ष (विषयाकार ज्ञान), अनुमान (व्याप्ति विशिष्ट), शब्द (आप्त उपदेशः वेद स्वतः प्रमाण) (१।८७,८८. ५।५१). अन्य उपमानादि सब प्रमाण इनके अंतरगत हैं. वेद आदि सिद्ध पुरुष का उपदेश है (१।९८. ५।५१).

(६) जीव को बंध का हेतु दवाई, वैदिक कर्म, स्वाभाविक कर्म, विशेष कर्म, देश काल, अविद्या, विषय वासना, कर्मजन्य अदृष्ट, गति विशेष, अन्य के धर्म और प्रकृति वा प्रकृति संबंध, नहीं है और न स्वाभाविक बंध है; किंतु प्रकृति के योग (पुरुष साथ जो संबंध) का अविवेक यह बंध है. अ. १।२,६,७,१२,१४,१६ १८,२०,२७,३०,४८,५२,५३ और ११।९ देखो). अविवेक से योग होता है और अविवेक अनादि है. (१।५५. ६।१०।१५).

बंध औपाधिक है अर्थात सब अविवेक-प्रयत्न-वाचय मात्र आत्मा में आरोपित हैं, दुःख सुख बंध मोक्षादि स्वाभाविक तो बुद्धि में ही हैं—बुद्धि ही के धर्म हैं. संबंध से तप्तलोहपिंडवत् आत्मा में आरोप होते हैं (१।५८,१. ५,१. ६ ३।७२).

(७) सूक्ष्म शरीर (अंतःकरण इंद्रिय प्राण) अयोनिज होता है, यथा अदृष्ट प्राप्ति होता है, उस द्वारा पुरुष को आवागमन (जन्म) होता है (३,३,८). वृक्षों में भी भोग साधन हैं अर्थात जीव हैं (५।११६,१२१).

(८) अन्य वृत्तियों समान चक्षुवृत्ति भी बाहिर नहीं जाती किंतु रूप का प्रतिबिंब आता है वोह ग्रहण होता है. (५।१. ५).

(९) दुःख का आत्यंतिक (सर्वथा) अभाव, वा बंधाभाव अर्थात् उभय के संयोग का अभाव किंवा प्रकृति और पुरुष का उदासीन होना (स्वस्व स्वरूप में स्थिति), इसका नाम मोक्ष (१।१।८६. ३।६५). समाधि और मोक्ष में जीव ब्रह्मरूप (केवल विभु) होता है (५।११६).

(१०) मोक्ष के साधन—प्रकृति का अनुमान द्वारा बोध उससे विवेकख्याति अविवेक की निवृत्ति=सारांश स्वरूपज्ञान विवेकज्ञान (१।५६,६०,७५,८६, १. ७. ३।८४,२३) विवेकज्ञान का साधन निदिध्यास (योग=धर्ममेघ समाधि)

(३।२०,६९) विवेकज्ञानी जीवनमुक्त होता है (३।७९). संस्कार लेश याने प्रारब्ध वेग तक उसका शरीर होता है (३।८).

(११) विवेकख्याति वाला पुरुष मुक्त हो जाता है, उसकी मोक्ष मे आवृत्ति नही होती अर्थात् बंध का योग नही होता (१।८२,८३. ६।१७,१९). मुक्त पुरुष के वास्ते प्रकृति प्रवृत्ति नही होती (३।६९).

(१२) प्रकृति के समविषम परिणाम होने से जगत की उत्पत्ति और प्रलय होती है (६।४२). सृष्टि का उच्छेद नही होता.

(१३) प्रकृति (के परिणाम चित्त) का (पुरुष के साथ) स्वस्वामीभाव संबंध है सो अनादि से है (६।६७). इस संयोग का निमित्त अविवेक है. किंवा (६।६८) जिस किसी कारण से संबंध हो.' उसकी निवृत्ति ही परमपुरुषार्थ है (इतना ही सार है) (६।७०).

शोधक—

प्रतिपक्षी ने सांख्य सिद्धांत पर आक्षेप किये हैं उनका सार— १. जड प्रकृति मे यथा योग्य गति और परिणाम अपने आप नहीं हो सकते. यथा—सदृश वा विसदृश परिणाम सृष्टि आरंभ मे अमुक पुरुष वास्ते अमुक प्रकार का परिणाम और अमुक प्रकार का सूक्ष्म शरीर मिले, ऐसा जड से नहीं हो सकता. जो अदृष्टवश ऐसा मानें तो उत्पत्ति, स्थिति और लय के काल का नियम प्रकृति आधीन न होने से असंभव है. २. गाय की चेतनता (इच्छा) और सबंधजन्य बिजली यह गाय के दूध उतरने मे कारण है, स्वयं नहीं उतरता. जहां चुंबक से लोह मे गति होती है वहां बिजली की गति कारण है. गति के बिना गति नहीं होती. अंधा और लंगडा दोनों मे ज्ञानशक्ति होती है; अतः एक चल सकता है दूसरा देख सकता है, और व्यवहार होता है, अन्यथा न हो: इसलिये सांख्य के तीनों दृष्टांत विषम रहने से प्रकृति परतंत्र होनी चाहिये. ३. सक्रिय वस्तु आधार बिना नहीं रह सकती, इसलिये प्रकृति को मुख्याधिष्ठा की अपेक्षा है. ४. जड होने से बुद्धि अपने कार्य परिणाम और भेद नहीं जान सकती, इसलिये बुद्धि व्यवहार मे कोई अन्य होना चाहिये. तहां चेतन आत्मा तो अक्रिय निसंग है. तो फेर यह व्यवहार कैसे हो सकता है, इसका स्पष्टीकरण करना चाहिये था. ५. असंग निष्क्रिय में पर के धर्म अपने में मान लेना वा दुःखी होना नहीं बनता. परंतु यह सब (बंध

मुक्त, अविवेक विवेक) बुद्धि के परिणाम हैं; क्योंकि पुरुष मुक्त है, ऐसा मानें तो आत्मा नाना विभु मानना ही व्यर्थ ठेरता है. ६. मुक्ति से अनावृत्ति है तो जब तब सृष्टि का उच्छेद हो जायगा और प्रकृति नाकाम होती होती अंत में निकम्मी हो जायगी; परंतु सांख्यदर्शन को यह स्वीकृत नहीं है (अ. ३ मुक्ति प्रसंग और वेद मत अ. ९ भी यहां वांचना चाहिये), अतः मोक्ष से आवृत्ति माननी पडती है. बुद्धि के या बुद्धिकृत बंध मोक्ष मान के चेतनात्मा एक और विभु मानें तो दोष नहीं आता, क्योंकि बुद्धि उत्पत्ति नाश वाली है.

सांख्य की रीति का सत्कार्यवाद भी नहीं बनता; क्योंकि यदि ऐसा मानें कि घट, दही, कुंडल वगैरे पूर्व में थे वे व्यक्त हुये हैं तो अ. ३ पृष्ट ५०० वाले दोष आवेंगे. और परिणामवाद (परिवर्तन) पक्ष (प्राचीन सांख्य नं. ४ नं. ९) सिद्ध न होगा; क्योंकि नवीनरूप होने विना परिणाम पद की अनुत्पत्ति है. महत से अहंकारादि की नवीन उत्पत्ति मानी है. ऐसा मानें विना प्रकृति, विकृति, प्रकृति विकृति, यह भेद ही नहीं बन सकते इसलिये घटादि पूर्व में अव्यक्त (तिरोहित) थे सो व्यक्त (आविर्भाव) हुये ऐसा नहीं माना जा सकता. सत्व, रज, तम यह ३ मूल द्रव्य माने हैं, उनमें अनेक विलक्षण और विरोधी (आकाश, शब्द, उष्ण, शीत, तम, प्रकाश वगेरे) पदार्थ नहीं हो सकते. उनके मिश्रण से भी नवीन पदार्थ नहीं हो सकते; क्योंकि अभाव से भावरूप नहीं होते. इसलिये प्रकृति अर्थात् नाना प्रकार के पदार्थों (अणुओं) का पुंज ही मानना पडता है. परिच्छिन्न जो सत्व रज तम वा शब्द तन्मात्रा उनसे अक्रिय आकाश की उत्पत्ति मानना कपोलकल्पना नहीं तो क्या?

आत्मा को विभु मान के उसमें बुद्धि के धर्म (कर्तृत्व, भोक्तृत्व, रागादि) आरोप करना बुद्धि का ही कार्य है, क्योंकि विभु में भोक्तृत्व अवस्था की असिद्धि है, तथा आत्मा बुद्धि के धर्म अपने आप अपने में मान लेता है यही बंध और इसका उपदेश विवेक हुवे आरोप यही मोक्ष, ऐसा मानना भी असमीचीन है; क्योंकि एक रस-सम विभु में भाव परिणाम (जन्य विना कुछ मान लेना) भी नहीं बनता, और यदि होता है तो मोक्ष सावयव होगा. अतः मानना और अविवेक भी आत्मा में नहीं बनता. (ग.) चेतन में जो बंध मोक्ष का पर्यवसान न करें तो सत्कार्य सिद्ध होगा, शास्त्र निष्फल होंगे; क्योंकि सत्कार्य (महत्-बुद्धि-चित्त) भोक्ता और बंध नहीं हो सकती और न उसको मोक्ष की चाह है. (घ.) यदि सत्कार्य के ... [illegible]

आपका असत मान लेवें तो मिथ्यावाद की आपत्ति होगी; परंतु चेतन को शुद्ध मानते हुये भी जडवाद का प्रवेश नहीं होता; क्योंकि चेतनविशिष्ट बुद्धि में ही सब कुछ बनता है, उसके विना नहीं (शांकराद्वैत प्रसग वांचो. ब्र. सि. में इसका विस्तार है).

विभूषक —

योग, और साङ्ख्य देनों न्यायवैशेषिक समान त्रिवाद हैं, क्योंकि ईश्वर, नाना जीव और प्रकृति के तत्व मानते हैं. अंतर यह है कि वे देनों विभु आत्मा में रागादि (बंध मोक्ष) मानते हैं और यह (यो. सां.) दोनो आत्मा में नहीं मानते किंतु बुद्धि में मानते हैं और आत्मा अपने में मान लेता है ऐसा बताते हैं. अब जो त्रिवाद ही भाव लेवें तो भी ठीक है पूर्वोक्त त्रिवाद वाले भूषण का ग्रहण हो सकता है (अ. १ विभूषकमत अ. ४ त्रिवाद और वेद प्रसंगगत त्रिवाद के भूषण याद में लीजिये). सारांश व्यष्टि पंचदशांग सहित उस भावना अनुसार उपयोग करे तो कोई हानि नहीं होती (न्यायवैशेपिक प्रसंग भी देखो); क्योंकि इनके उपदेशानुसार साधन करके जब विवेकख्याति को प्राप्त होगा तब जैसा है वैसा अनुभव हो जायगा, याने जीवात्मा विभु नाना वा एक चेतन, सो कर्ता भोक्ता वा अकर्ता भोक्ता, वा अकर्ता अभोक्ता वा जीवात्मा अणु वा क्या इत्यादि जानके संशय विपर्यय भावना से मुक्त हो जायगा. वहां तक त्रिवाद उत्तम शैली है. और जो उभय को त्रिवाद नहीं मान के द्विवादि अर्थात् पुरुष प्रकृतिवादि मानें तो भी व्यष्टि को स्वीकार ने मे कोई हरज नहीं जान पडता क्योंकि जब पंचदशांग सहित उसका स्वीकार है तो जिस समय विवेकख्याति होगी उस समय आप ही जो होगा सो जाना जायगा.

शोधक को विचार करना चाहिये कि भोग निरूप में प्रतिबिंब होना मानता है परंतु यह सर्वथा नहीं बनता और मानें तो अनेक दोप आते हैं. तद्वत बुद्धि मे आत्मा का प्रतिबिंब मानें तो अनेक दोप आते हैं (त. द. २।४६९ से ४६८ तक देखो). एक ही बुद्धि में नाना विभुओं का वा नाना विभुओं का एक बुद्धि में प्रतिबिंब पडे तो हरेक आत्मा मे हरेक बुद्धि के धर्म का आरोप हो पडने से एक ही आत्मा अपने को पशु, पक्षी, ऊंच, नीच, ज्ञानी, अज्ञानी मान सकेगा; परंतु ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि एक ही काल मे मैं सिंह, मैं गाय. मैं दुःखी. मैं सुखी,

में ज्ञानवान, मैं अज्ञ, ऐसा मानना असंभव है. और भी नाना विभु मानने से एक ही को व्याप्यव्यापक मानना पडता है सो असंभव और वदतो व्याघात दोष युक्त है. स्वरूपाप्रवेश दोष (२।३८२) आता है. पतंजलि जैसे योगी और कपिल जैसे मुनि ऐसे सदोष सिद्धांत को कभी भी नहीं मान सकते, परंतु नाना विभु मानने का कारण वही है कि जो न्याय, वैशेषिक प्रसंग में कहा है अर्थात् नाना जीव मानने के विना व्यवहार की व्यवस्था नहीं हो सकती. वे समझते होने चाहियें कि जब अधिकारी धर्म मेद समाधि करेगा तब जैसा है वैसा आप जान लेगा, वहां तक इसको वर्णाश्रम की मर्यादा में रहने के लिये नानात्व का आदेश होना योग्य ही है.

यदि एक विभु और सांख्य के मत में जीव नाना विभु नहीं किंतु एक विभु अधिष्ठान ऐसा मान लिया जाय तो शांकर अद्वैत जैसा मत हो जाय; कारण कि प्रकृति–माया को अधिष्ठान से विलक्षण प्रकार की माननी ही पडे, उस विना स्वरूपाप्रवेश नियम अवश्य डंक लगावेगा. और जो उस अधिष्ठान चेतन को बुद्धि–माया के धर्म की अपने में भ्रांति–अध्यास वा मान्यता–अविवेक नहीं हो सकता, क्योंकि सम है, सम में भाव परिणाम भी नहीं हो सकता, ऐसा मान लिया जाय तो सांख्य और योग यह दोनों विलक्षणवाद जैसे हो जाते हैं. इसी प्रकार न्याय और वैशेषिक मत की स्थिति है. सारांश अधिष्ठान चेतन में उससे विलक्षण जो अध्यस्त (योग और सांख्य की प्रकृति, न्याय और वैशेषिक के द्रव्य गुण) उसकी व्यवस्था करने वास्ते यथा देश काल स्थिति और अधिकार मतभेद–शैली भेद है, सिद्धांत में कोई भेद नही रहता. इसी प्रकार वेदांतदर्शन के संबंध में ज्ञातव्य है (आगे बांचोगे) इन पांचों शास्त्रों में त्रिवाद, द्विवाद और अध्यस्तवाद की शैली का ग्रहण हो सकता है; परंतु भावना यथा अधिकार होने से ही लाभकारी है अतः सर्व भावनाओं में पंचदर्शन का प्रवेश मानना उचित है– लाभकारी है.

---

८. मीमांसादर्शन.

पदार्थ विषयक विचार को मीमांसा कहते हैं. मीमांसा के दो भेद प्रचलित हैं **पूर्वमीमांसा.** इसमें वेद के कर्मकांड का विचार है, जैसे कि यह दर्शन है. और **उत्तरमीमांसा.** इसमें उपासना और ज्ञानकांड का विचार है, जिसे वेदांतदर्शन कहते हैं.

इसमें वेद के कर्मकांड का विचार होने से मीमांसादर्शन और जैमिनि इसके प्रवर्त्तक हैं इसलिये उनके नाम पर जैमिनीयदर्शन कहते हैं. यह महाराज वेदांत-दर्शन के कर्ता व्यास मुनि के समय हुये हैं, ऐसा कहा जाता है. इस पर सावर मुनि कृत भाष्य है. *

इस दर्शन का उद्देश वेद के कर्मकांड का विचार है, इसलिये ईश्वरादि के स्वरूप निर्णय को हाथ में नहीं लिया है. इस वास्ते इस विषय में उनका मंतव्य क्या है यह नहीं कहा जा सकता. तथापि नीचे लिखी हुई वातें अर्थापत्ति से मान सकते हैं.

(१) यज्ञ पुरुष (ईश्वर) ‡ (वेद का स्वीकार है इसलिये). २. जीव परिच्छिन्न चेतन और नाना हैं (क्योंकि कर्म करता है, फल भोगता है, पुनर्जन्म को पाता है, स्वर्ग को जाता है). ३. जड द्रव्य (प्रकृति परमाणु) हैं और वे सत्य हैं (क्योंकि उनके होमने से अदृष्ट फल होता है). ४. जीव सकाम और बंध है. ५. सृष्टि उत्पत्ति प्रलय किसी सूत्र की अर्थापत्ति से नहीं निकलती. ६. वेद अपौरुषेय है (किसी मनुष्य वा देव का बनाया हुआ नहीं है) पूर्व पूर्व से सुनते आते हैं स्वतः सिद्ध स्वतः प्रमाण है. ७. शब्द नित्य है. पद में अर्थ जनाने की शक्ति है. ८. जड चेतन दोनों पदार्थ नित्य हैं, जड परिणामी नित्य है, चेतन कूटस्थ नित्य है. वेदोक्त विहित तथा निषिद्ध के अनुसार वर्तन से सुख होता है. कर्म ही सर्व का नियामक (ईश्वर) है. इस मत का विस्तार प्रभाकरादिकन ने दरसाया है.

विशेष—वेद का अध्ययन कर्तव्य है, क्योंकि मनुष्य की जो धर्म जिज्ञासा है सो इससे पूरी होती है. धर्म विषे केवल वेद ही प्रमाण है. यज्ञादि कर्म और सबके साथ द्रोह रहित होना इत्यादि चरित ही धर्म हैं. चरित का अधिकार हरेक को है; परंतु वेदोक्त कर्म का अधिकार योग्यता के अनुसार होता है जैसे कि राजसुयज्ञ का अधिकारी राजा है. स्वर्ग की कामना वाला "ज्योतिष्टोम यज्ञ करे." इस विषय में प्रत्यक्ष की योग्यता नहीं; क्योंकि स्वर्ग की साधनता के रूप से वर्तमान नहीं जिस रूप से कि वोह धर्म है. इसलिये धर्म में प्रत्यक्ष की योग्यता नहीं. तो अनुमानादि की तो वात ही क्या करना. इसलिये धर्म वेद से ही जाना जाता है.

---

* संस्कृत में है. आर्य भाष्य वर्तमान में प्रसिद्ध हुआ है उसकी ६ अध्याय देखी भी है

‡ इस विषय बोधक सूत्रों के अर्थ में विवाद है

यथा चरित (कर्म) ऊंच नीच योनि को प्राप्त होता है (छा. ५।१०।७ श्रुति) यह विषय भी प्रत्यक्ष और अनुमान की पहुंच से परे केवल वेद वचन करके ही गम्य है. १.

स्मृति, सदाचार और आत्मतुष्टि (प्रियता) भी धर्म मे प्रमाण हैं; परंतु स्वतः और पूर्ण नहीं; क्योंकि उनमें अन्यथा होने की संभावना है. आत्मतुष्टि से बढ के सदाचार और इससे विशेष स्मृति और स्मृति से ज्यादा श्रुति प्रमाण है: इसलिये धर्म में वेद ही स्वतः प्रमाण है.

कर्म में मूल मंत्र प्रमाण हैं. ब्राह्मण उसकी इति कर्तव्यता और उसके फल के बोधक हैं. इसलिये इस दर्शन में उभय (संहिता और ब्राह्मण) के वाक्यों का अर्थात् वेद के कर्मकांड का विचार है. २.

कर्म मे तीन बावत होती हैं. यथा स्वर्ग की कामना वाला दर्शपूर्णमासि यज्ञ करे. यहां स्वर्ग साध्य है. यज्ञ साधन है और प्रयाजादि अंग इति कर्तव्यता है. विधि वाक्य वेद के उस वाक्य का नाम है कि जो ऐसे अर्थ का विधायक हो कि जो किसी अन्य प्रमाण से सिद्ध न हो. यथा स्वर्ग की कामना वाला अग्नि होत्र करे. ३.

वैदिक कर्म, फलकामना से किये हुये शुभ फलो के उत्पादक होते हैं और अंतःकरण की शुद्धि द्वारा ज्ञान के उत्पादक होते हैं. ४ (१ से ४ तक नवदर्शन-संग्रह से).

वेदो के वाक्य के विभाग और कर्मो के विभाग इत्यादि इस दर्शन में है जो इस ग्रंथ के विषय नहीं, इसलिये सर्वदर्शनसंग्रह में से उसके १२ अध्याय की अनुक्रमिका लिख देना बस है. अध्याय — १. विधि, अर्थवाद, मंत्र स्मृति, नाम धेयार्थक, शब्द राशि का और प्रामाण्य का वर्णन है. २. कर्मभेद, उपोद्घात, प्रमाण और प्रयोगरूप अर्थ निरूपण है. ३. श्रुति लिंग, वाक्यादि विरोध प्रतिपत्ति, कर्म अनारम्य, अधीत, बहुप्रधानोपकारक प्रयाजादि, याजमान चिंतन. ४. प्रधान प्रयोजकत्व अप्रधान प्रयोजकत्व, जुहू पर्णतादि फल, राजसुयज्ञ तमघन्याक, अक्षद्यूतादि. ५. श्रुत्यादिक्रम तद्विशेषवृद्धि, अवर्द्धन, प्राबल्य और दौर्बल्य चिंता. ६. अधिकारी, उसका धर्म, द्रव्य प्रतिनिधि अर्थ लोप का प्रायश्चित, और सत्रदेय अग्निविचार. ७. नाम लिंग, अतिदेश का विचार. ८. स्पष्ट अस्पष्ट और प्रबल लिंग अतिदेश अपवाद का विचार. ९. ऊह (तर्क) विचार का आरंभ सामोह, मंत्रोह और

तत्प्रसंगगत विचार. १०. बाध हेतु द्वार, लेप विस्तार, बाध का कारण और कार्य का एकत्व महादि सामप्रकीरण, नञर्थ विचार. ११. तंत्रोपोद्घात, तंत्रावाप, तंत्र प्रपंचन, और अवापप्रपंचन. १२. प्रसंगतंत्र का निर्णय समुच्चय और विकल्प का विचार ५.

विषय. उसमें संशय, उस पर पूर्व पक्ष उस पर सिद्धांत (उत्तर पक्ष) और संगति, यह इस दर्शन का क्रम है. ६.

मतभेद—कर्म से आराध्य देवता शबल (तत्वों से युक्त) परमात्मा, वा कोई वरुणादि देवता, वा मंत्र वा कुछ नही वा क्या? इस विषय में अर्थकारों में मतभेद है. ईश्वर संबंधी अ. ६।३।१,२३. सर्वशक्तौ, इत्यादि. और अ. ६।२।१६,१७, १८. लोके कर्मणि, इत्यादि सूत्र हैं उनके अर्थ में तकरार है. ऐसे ही दसवें अध्याय में दो सूत्र विवाद के विषय हैं. कर्मवादि कर्म प्रसंग में और ईश्वरवादि फलदाता ईश्वर प्रसंग में लेता है. उसमें से एक दो सूत्र वास्ते यूं भी कहा जाता है कि साबर भाष्य में नही हैं अर्थात् निकाल डाले हैं, प्रतिपक्षी यूं कहता है कि नवीन प्रत मे किसी ने मिला दिये हैं. यज्ञ में पशुवध (पशु यज्ञ) और शराब (मद्य) का ग्रहण है वा नहीं इस विषय में विवाद है. साबर भाष्य में ब्रह्मचर्य भंग के प्रायश्चितार्थ अवकीर्ण पशु की दृष्टि कही है. दूसरा यह अर्थ करता है कि गधे पर चढा के फेरना ६।८।२२. ऐसे ऐसे मतभेद हैं. पशुवध प्रसंग की तकरार जानने वास्ते ६।८।२३,३०,३१,३२ देखिये. वेद अपौरुषेय है तो प्रलय में अभाव क्यों, वेद की उत्पत्ति पुरुष सुक्त में है. शब्द नित्य नहीं उसमें अर्थ जनाने की शक्ति नही, इसलिये वेद पौरुषेय है. इसके उत्तर में शब्द को नित्य सिद्ध कर के समाधान करते हैं इत्यादि विवाद हैं (सर्वदर्शनसंग्रह और आर्य मीमांसा भाष्य देखिये). ७.

इस दर्शन की प्रवृत्ति बुद्धदेव के पूर्वकाल तक खूब रही. बौद्ध धर्म और जैन धर्म पीछे कम हो गई. वर्तमान में इसके अनुयायी अग्निहोत्री कहलाते हैं. इस मार्ग का नाम श्रौत (वेदोक्त) है. श्रौत मार्गी स्मृति से इतर को प्रमाण नहीं मानते हैं.

मैमांसिक.

जैसे न्याय और वैशेषिक दर्शन के अनुयायी सुप्रसिद्ध उदयनाचार्य इत्यादि हुये हैं वैसे शंकराचार्य जी के समय कुमारिलभट्ट इस के अनुयायी हुये हैं, जिन्हों ने वेश बदल करके बौद्ध और जैन सिद्धांत सीखा और उसका खंडन किया. इस

छल के प्रायश्चित में उसने अग्निदाह लिया (कैसी निष्ठा?). दूसरे मुख्य प्रभाकर मिश्र हुये हैं. इत्यादि. उनके मंतव्य ग्रथों मे मिलते हैं उसका सार यह है.

(१) जीव जगत, समान जड चेतनात्मक है, परिछिन्न है, अनादि है, कर्ता भोक्ता और नाना हैं. (२) जगत कर्ता कोई ईश्वर नहीं है, ईश्वर बोधक श्रुति अर्थवाद रूप हैं. (३) परमाणु द्रव्य हैं, नित्य हैं, देश काल भी नित्य हैं. (४) अनादि जीव पूर्व पूर्व के कर्म जन्य अद्रष्टों से बंध है, यथाकर्म पुनर्जन्म (योनि) पाता है. (५) कर्म से बंध (जन्म प्राप्ति) की निवृत्ति होती है * (६) स्वर्ग विषे स्व स्वरूप में स्थित होना मोक्ष है, याने दुःखों का आत्यंतिक अभाव (७) मोक्ष से अनावृत्ति है. (८) सृष्टि (गृहादि) स्वभावतः अनादि हैं, इस की उत्पत्ति वा नाश नहीं है. (९) विधिनिषेध बोधक वेद अनादि अपौरुषेय है स्वतः प्रमाण हैं. पूर्व पूर्व से सुनते आते हैं. (१०) प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव यह ६ प्रमाण हैं. विधिनिषेध वा अलौकिक (अपूर्व वा परोक्ष) विषय में वेद ही प्रमाण है. (११) इनके एक मत में परतः प्रामाण्य नहीं किंतु स्वतः प्रामाण्यवाद है. (१२) वर्ण और पद नित्य हैं गकारादि शब्द का नाश नहीं होता किंतु उनकी अभिव्यक्ति होती है: क्योंकि शब्द द्रव्य है नित्य है. पद में अर्थ जनाने की शक्ति है (जो ऐसा न मानें तो वेद अपौरुषेय सिद्ध न हो).

लोक (पृथ्वी आदि) अनादि नियमानुसार स्थिरचर हैं. सामान्य कार्य भी स्वाभाविक अनादि नियमो के अनुसार होते हैं. यथा कर्म जन्म होता है और भोग आयुष होती है (प्रयोजक).

अब आगे प्रभाकर और कुमारिलभट्ट का मत संक्षेप में दरसाते हैं.

---

* स्वाभाविक (श्वास बंद उघाडादि) की गणना कर्म में नहीं, लौकिक कर्म स्नान पानादि का शास्त्रीय कर्म मे प्रसंग नहीं. मुमुक्षु को चाहिये कि काम्य और निषिद्ध कर्म न करे. ज्ञात अज्ञात निषिध संचितजन्य अद्रष्ट नाश के वास्ते शास्त्रोक्त असाधारण वा साधारण प्रायश्चित कर्म करे तो वे भावी जन्म के हेतु न हो और शुभ संचित के फल की इच्छा का त्याग करे. जिन वेदोक्त कर्म के नहीं करने से भाक्ति बंध हो वैसे नित्य कर्म नित्य और नैमित्तक कर्म निमित्त होने पर करे. वर्तमान प्रारब्ध भोग से निवृत्त हो जायंगे. निष्काम कर्म बंध के हेतु नहीं. इस प्रकार भावी जन्म के हेतु न रहने से शरीर त्याग (प्रारब्ध भोग) पीछे जीव का स्वरूप रहेगा. निमित्त न होने से प्रवृत्ति रहित स्थित होगा. पुनर्जन्म न होगा. इसी का नाम मोक्ष है कर्मवाद में इस थीयरी को एकभविकवाद कहते हैं. कर्मविवेक में इसका प्रतिपादन विस्तार सहित कर दिया गया है

प्रभाकर मीमांसिक का मत.

चेतन (जीव) और अचेतन (जड द्रव्य) यह दो पदार्थ हैं. जीव शरीर प्रति भिन्न, कर्ता, भोक्ता, द्रष्टा तथा विभु † है. और ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा वगैरे जीव के गुण हैं और ज्ञान शक्तिमान भी है. जीव और देहादि अनात्मा से आत्मा का स्वरूप ज्ञान होने से दुःखाभावरूप मोक्ष होता है. अन्यथा यथा कर्म जन्म, जाति, आयु आदि का भोग होता है. मुक्त जीव स्वपर को नहीं जान सकता क्योंकि मुक्ति में ज्ञान के साधन मन इंद्रियादि नही होते. जीव से भिन्न जगत्कर्ता वा नियंता ईश्वर चेतन नहीं है.

और द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, संख्या, शक्ति, सादृश्य, भेद से अनात्म पदार्थ ८ प्रकार का है. तहां पृथ्व्यादि पंचतत्व काल, दिशा और मन यह द्रव्य हैं. शब्दादि ५ परिणाम संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, अदृष्ट. बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, यह २१ गुण हैं. चलन क्रिया का नाम कर्म है घटत्वादि का नाम सामान्य है. समवाय न्यायशास्त्रानुसार है. और सहजशक्ति, पदशक्ति और आधेयशक्ति भेद से ३ प्रकार की शक्ति है दो वस्तु में रहने वाला एक धर्म का नाम सादृश्यत्व है. संख्या अनंत है.

यह सब प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और अर्थापत्ति इन पांच प्रमाण से जाने जाते हैं. तहां प्रत्यक्ष § न्यायानुसार ६ प्रकार का है. उनमें पृथ्वी, जल और तेज त्वगिंद्रिय तथा नेत्रेंद्रिय दोनों प्रत्यक्ष करे हैं वायु का प्रत्यक्ष त्वचा से होता है. आकाश, काल और दिशा यह तीनो अनुमान प्रमाण से ज्ञेय है, सादृश्य ज्ञान के विषय में उपमान प्रमाण है. शब्द प्रमाण के लौकिक वैदिक भेद से दो विभाग हैं; तिसमें लौकिक शब्द अनुमान के अंतरभूत है. वैदिक शब्द से योगादि क्रियाजन्य अपूर्वरूप धर्म, हिंसादि कर्मजन्य अपूर्वरूप अधर्म इन दोनो का ज्ञान होता है. तहा विधि, अर्थवाद वगैरे भेद से शब्द प्रमाण के ३१ भाग हैं. और दृष्टार्थापत्ति

† श्रीमद् परमहंस परिव्राजकाचार्य (द्वारकापीठ के शंकराचार्य) श्री सत्यानंद सरस्वतीजी कृत "वैदिक सिद्धांत मंजरी" में जीव को विभु लिखा है उसमें से यह प्रभाकर श्री का मत लिखा है. अन्य जगह जीव को जगनुवत् परिच्छिन्न माना है

§ प्रत्यक्ष प्रमाण में संशय विपर्ययादि दोष हैं. अनुमान में प्रतिज्ञागत, हेतुगत उदाहरण, दृष्टांतगत अनेक दोषाभास होते हैं शब्द प्रमाणगत विप्रलिप्सादि दोष होते हैं. प्रभाकर श्री ने अपने ग्रंथ में जनाये हैं

श्रुतार्थापत्ति भेद से अर्थापत्ति दो प्रकार की है. और पुनः पूर्वोक्त शब्द ध्वन्यात्मक वर्णात्मक भेद से दो प्रकार का है. तहां पद का नाम वर्णात्मक है सो नित्य है; ध्वन्यात्मक शब्द अनित्य है सर्वप्रमाण स्वतःसिद्ध हैं. और ज्ञानमात्र सत्य है. भ्रमस्थल में प्रत्यक्षज्ञान तथा स्मृतिज्ञान का अविवेक कारण है, मिथ्याज्ञान नहीं; वास्ते सर्वज्ञान सत्य है + आत्मा तथा मन के संयोग से सुखादि प्रत्यक्ष होते हैं और आत्मा स्वयं प्रकाश है. इस वास्ते घटादि के समान इंद्रिय का विषय नहीं. इस प्रकार संक्षेप मे प्रभाकर का मत है. वैदिक सिद्धांत मंजरी के पेज २६ से ३० तक.

मेमांसिक कुमारिलभट्ट का मत.

कुमारिलभट्ट के मत में आत्मा और अनात्मा भेद से दो पदार्थ हैं. तिसमें आत्मा, प्रभाकर मतानुसार प्रति शरीर भिन्न भिन्न कर्ता भोक्तादि रूप है. कर्म का ही नाम ईश्वर है. सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान जगत् स्रष्टा कोई ईश्वर नहीं है. क्योंकि प्रपंच की उत्पत्ति वा नाश नहीं है. किंतु सदा परिणामी नित्य है.

और अनात्मा तो द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, शक्ति, और अभाव ऐसे ७ प्रकारका है. तिसमे भूमि वगेरे ५ भूत आकाश, काल, दिशा, मन, तमस् (अंधेरा), वर्णरूप, (रंग) शब्द, यह १० द्रव्य हैं. और रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, सस्कार, अद्दष्ट, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, यह २१ इकवीस गुण हैं. ※ गति का नाम कर्म है. सामान्य पर तथा अपर भेद से दो प्रकार का है (कणादमतवत्). शक्ति (प्रभाकर के मतवत्). और ध्वंसाभाव, भेदाभाव (अन्योऽन्याभाव), अत्यंताभाव, भेद से तीन प्रकार का अभाव है (प्रभाकर के मत में अधिकरण से भिन्न अभाव कोई वस्तु नहीं है).

इन सब के जानने में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, और अभाव यह ६ प्रमाण हैं. तिनमें प्रत्यक्षादि ५ प्रभाकरमतवत्, अनुपलब्धि प्रमाण गम्य अभाव है अर्थात् घटादि की अनुपलब्धि ही घटादि के अभाव ज्ञान में कारण है; नैयायिकादिकन के समान अभाव प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध नहीं हैं. और शब्द ध्वनि

+ अर्थाध्यास है. ज्ञानाध्यास नहीं.

※ तमादि ३ प्रभाकर ने द्रव्य नहीं माने हैं. कु. ने शब्द के द्रव्य माना है, संख्या के गुण माना है.

आत्मक वर्णात्मक भेद से दो प्रकार का है; तामें ध्वनिआत्मक वायु का कार्य है अर्थात् वायु ध्वनिआत्म शब्द का समवायी कारण है, और वर्णात्मक शब्द नित्य द्रव्य है सो आकाश का गुण नहीं है. पद का नाम वर्ण है, वर्ण समूह का नाम पद नहीं. और पूर्वोक्त शब्द का विभाग रूप इकतीस प्रमाण कर के जानने योग्य धर्मी-धर्म है तहां याग का नाम धर्म है हिंसादिकन का नाम अधर्म है; प्रभाकर के मत के न्याई अपूर्व का नाम धर्माधर्म नहीं है. और सब प्रमाण स्वतः प्रमाण रूप हैं

दोष सहित ज्ञान का नाम भ्रांति है. सो दोष प्रमाणगत, प्रमेयगत, प्रमातागत इन भेद से तीन प्रकार का है. तहां पित्त कमलादि प्रमाणगत दोष है, सादृश्यादि प्रमेयगत दोष है. भयलोभादि प्रमातागत दोष है. तहां प्रमाण नाम प्रत्यक्षादि का है. प्रमेय नाम, प्रमाण से जानने में आया जो पदार्थ सो (ज्ञेय) है. प्रमाता नाम प्रमा कहिये ज्ञान (बुद्धि) तिसका आश्रय (अधिकरण) जो आत्मा तिसका नाम है. और आत्मा मानस प्रत्यक्ष का विषय कहिये अहं प्रत्यय का विषय है. और शरीर के साथ आत्मा का संयोग होने से सुखादि का ज्ञान होता है और ज्ञान अनुमेय है (परतः का विषय)है. प्रभाकर के मत में ज्ञान स्वतः प्रमाण सिद्ध है. इस प्रकार संक्षेप में भट्ट का मत है.

और मुरारिमिश्र, मण्डनमिश्र, पार्थ सार्थिमिश्र, आदि अनेक मिमांसिक है तिनोंके भी मत भिन्न भिन्न है सो ग्रंथविस्तार के भय से यहां पर नहीं दरसाते हैं.

और पद पदार्थो का संबंध पदों द्वारा जाना जाता है इस वास्ते संसर्ग (अभिहितान्वय) में शब्द की शक्ति है, यह भट्टो का मत है. वशिष्ट (अन्विताभिधान) में शब्द शक्ति है, यह प्रभाकर का मत है. तहां एक पद को योग्य इतर पद के साथ विशेषणता रूप संबंध का नाम विशिष्ट है इति वैदिक सिद्धांत मंजरी के पेज ३०.३१।३२.

जगत् का कर्ता ईश्वर नहीं जगत् अनादि नित्य है, इसका प्रलय नहीं होता. स्वर्ग की प्राप्ति ही परमपुरुषार्थ है. सर्वज्ञ भी कोई नहीं है अतः वेद अपौरुषेय है इत्यादि (कुमारभट्ट कृत तंत्रवार्तिक).

एकाक्षरस्य++१००. तदेवमित्थं++जैमिन्युपज्ञे++शास्त्र निरास्यं परमेश्वरं च ९९२. कुमारिलभट्ट के वाक्य. सार– एकाक्षर सिखाने वाला भी गुरु होता है. सर्वज्ञ बुद्ध गुरु से शास्त्र पढ़ के उमका– उनके कुल का विध्वंस किया. और

जैमिनि के मत के स्वीकार करके ईश्वर का खंडन किया. इस दोनों दोषो के दूर करने वास्ते मैंने यह प्रायश्चित (देह दाह) किया है.

शोधक.

(क) मीमांसा शास्त्र का विषय केवल कर्मवाद है. वोह जीव, ईश्वर और सृष्टि के विषय मे कुछ विशेष नही कहता; इसलिये प्रतिपक्षी कुछ नही कह सकता, किंतु उसके अनुयायी मैमांसिको के मंतव्य के संबंध मे कह सकता है, इसलिये वक्ष्यमाण मैमांसिक मंतव्य के संबंध में जो प्रतिपक्षी का कथन है उसमे से जो मीमांसा प्रसंग मे यदि लग सकता हो तो लगा लेना चाहिये; नहीं तो उपेक्षा है, ऐसा जान लेना

(ख) मैमासिकों के मंतव्य का प्रतिपक्षी—मैमासिको के मंतव्य मे अपवाद है—

१. जो जीव जड चेतनात्मक है तो मध्यम होने से नाशवान ठेरेगा, मुक्तिपात्र न होगा यदि गुण दृष्टि मे उभयात्मक मानोगे तो जीव अणु हुवा परंतु अणु सिद्ध नहीं होता (त. द. अ. ३ मे वाच आये हो और वक्ष्यमाण आवृति विवाद मे वाचोगे) यदि विभु परिमाण है तो पूर्वोक्त न्यायप्रसंग वाले दोष आवेंगे.

२ यदि कोई स्वयंभू आधार अधिष्ठान (ईश्वर) नही तो परिच्छिन्न गतिमान ग्रहादि की सनियमगति न होगी (वक्ष्यमाण बौद्ध नं. २ का प्रतिपक्षी देखो) परंतु सनियम है और जीव कर्म के बदले अनिष्ट फल स्वयं नहीं चाहता; इसलिये कर्मफल के व्यवस्थापक की अपेक्षा है; क्योंकि कर्म जड है और तदजन्य अदृष्ट भी जड है उनमे फल देने की योग्यता नहीं है. इन दो हेतुओं को लेके ईश्वर की सिद्धि होती है. तथा शरीरादि की रचना देखने से भी कोई चतुर शक्ति को मानना पडता है (न्यायार्थ भाष्य मे भी ईश्वर सिद्धि का प्रसंग देखो).

३. वेद प्रतिपादित कर्मो का यदि अदृष्ट फल है, वेद से इतर उसमे कोई अन्य प्रमाण नहीं तो जो वेद पर विश्वास नहीं रखते उनके लिये वेद अनुपयोगी रहेगा. पोने दो अर्बुद मनुष्यो मे २५ किरोड ऐसे है के जो वेद को मानते है. अन्य नहीं, तो उनकी क्या गति होगी? क्या वे सब नरक गामी होंगे? किंतु जो वेद को नहीं जानते, यज्ञादि नही करते और नेक आचरण करते है वे नीच योनी को प्राप्त नही हो सकते यह स्पष्ट है तथा वेद मे ही ब्रह्म के ज्ञान से मोक्ष होना माना है (वेदाहमेत....तम्मिन्नद्रष्टे), अतः उनका मंतव्य सर्वांश मे ठीक नहीं.

४. संचित कर्मों का अभाव फल भोगने के विना नहीं हो सकता; क्योंकि कर्म का फल होना ही चाहिये यह अटल सृष्टि नियम है. इसलिये केवल प्रायश्चित से संचित का अभाव मानना अयुक्त है. तथाहि कर्म के न करने से भाव रूप फल नहीं हो सकता; क्योंकि अभाव से भाव की अनुत्पत्ति है; इसलिये नित्य नैमित्तिक कर्माभाव, भावी बंध के उत्पादक नहीं, अपितु प्रतिबंधक न होने से भावीबंध के हेतु उद्भव होने हैं, ऐसा है. इसलिये नित्य नैमित्तिक कर्म का फल अंतःकरण शुद्धि हो सकता है; नहीं कि भावीबंध का अटकाना. तथाहि एक के किये कर्म का फल दूसरे को नहीं मिल सकता, इसलिये उत्तम मध्यम संचित का फल कर्ता को ही भोगना पडेगा. निष्काम कर्म का कर्ता को फल नहीं मिलता, ऐसा भी नहीं होता, किंतु अंतःकरण की शुद्धि ही उसका फल है. यह फल परोपकारी कर्म में भी होता है.

५. मुक्ति का साधन कर्म है तो वे सादिसांत होने से उनका फल भी सादिसांत होना चाहिये. इसलिये मुक्ति भोगने के पीछे संसार में आवृत्ति होनी ही चाहिये.

६. जो मुक्ति मे अनावृत्ति मानें तो जीव नवीन उत्पन्न न होने मे जब तब सृष्टि का उच्छेद हो जायगा और जीव न रहने से वेद तथा सृष्टि निष्फल रहेंगे, स्वसिद्धांत (सृष्टि अनादि अनंत) का त्याग होगा, जो कि असंभव (त. द. अ. २ मुक्ति प्रसंग और वेद प्रसंग का न. ९ याद में लीजिये. नं १ से ६ तक का विशेष खंडन ब्रह्म सिद्धांत के सू. ९१ से ९७ तक २१२ से २१४ तक में है).

७ वेद स्वयं ही कहता है कि ऋगादि की उत्पत्ति होती है (पुरुषसूक्त) आकाशादि तत्व और शब्दादि विषय यथा पूर्व उत्पन्न होते हैं ऋ. अ. ८ अ. ७ व. १७ और तै २।१।१ इ.) इसलिये शब्द नित्य नहीं ओर शब्द में अर्थ जनाने की शक्ति नहीं, किंतु संकेतमात्र में है, इसलिये वेद अपौरुषेय नहीं किंतु कोई उसका प्रयोजक होना चाहिये

८. शब्द-पद नित्य नहीं किंतु परा शब्द नित्य माना जा सकता है. और पद मे अर्थ जनाने की शक्ति सिद्ध नहीं होती परंतु मैमांसिक शब्द -पद में अर्थ जनाने की शक्ति मानते हैं और इसी वास्ते अक्षर तथा पद को नित्य कहते हैं और इसी कारण से वेद के मंत्र-छंद वाक्य को नित्य याने अपौरुषेय मानते हैं. इस विषय में कुछ संक्षेप से लिखते हैं.

औत्पत्तिकस्तु. पूर्वमीमांसा अ. १ क. १ सू ५. अर्थ-शब्द के साथ अर्थ का संबंध उत्पत्ति वाला (सांकेतिक) है. परंतु भाष्यकार शबर श्री औत्पत्ति शब्द का लक्षणा मे नित्य अर्थ करना कल्पते हैं सो सिद्ध नही होता क्योंकि शब्द में अर्थ जनाने की शक्ति नहीं है.

शब्द दो प्रकार के (१) वर्णात्मक (२) ध्वनिआत्मक-न्याय-शब्द को क्षणिक और आकाश का गुण मानते है वैयाकरणी-पदस्फुटादिक रूप मानते है (ग. वगैरे वर्ण अभिव्यंग. गो वगैरे पदार्थ अभिव्यंजक) सांख्य सूक्ष्मावस्था को तनमात्रा कहते हैं. वेदांत-स्थूलाकाश का कारण सुक्ष्मभुत माया का कार्य वेदी-स्थिति पर्यंत नित्य. ब्रह्माधिष्ठान का विवर्त्त. सो ही विशेष गुण होके वायु वगैरे में होता है.

पद पदार्थ इन दोनों का वाचक वाच्यभाव या समार कसमार्थ भाव संबंध है इस संबंध को शब्दसंगति कहते हैं.

शब्द की शक्ति २ प्रकार की है (१) अवयव शक्ति योगा (यथापाचक). (२) रूढ-प्रकृति प्रत्यय के विना समुदाय शक्ति मात्र से स्वअर्थ को जनावे (यथा घट, घटत्व विशिष्ट घट का बोधक है).

शब्द की शक्ति अर्थात क्या? (१) वाच्यवाचक भाव का हेतु पद और अर्थ का तादात्म्य संबंध है सो संबंध शक्ति (२) पद में अर्थ जनाने की योग्यता सो शक्ति है (३) पद में अर्थ जनाने की शक्ति सो ईश्वर की शक्ति है. (इ)

कोई जाति विशिष्ट व्यक्ति में कोई जाति में कोई आकृति-जाति और व्यक्ति इन तीनों मे घट पद की शक्ति मानते हैं (इ. बुद्धि विलास है)

(शं) जबके जीव का पुनर्जन्म है तो पूर्व के अन्य संस्कारवत् पदों के संस्कार भी होने चाहियें, इसलिये अर्थ वाले (अर्थ की शक्ति वाले) पद भी नित्य हैं यह सिद्ध होता है

(उ.) बालक पानी के पीने चप चप ध्वनी होने मे पानी का नाम चपचप और दोनन को ध्वनि होने मे उस हानित का नाम भू प छो. वगैरे रख लेते है बडे होते है तब वे संस्कार नष्ट हो जाते हैं लोक प्रचलित बोलते हैं एवं किसी का पुर्नजन्म में पानी की संज्ञा वट, अग्नि की संज्ञा ही हो, इस जन्म में पानी की संज्ञा वाटर, अप, आब हो अग्नि की नेन, गरमी, हीट वगैरे हो जाती है. इस रीति मे शब्दसागर तो नित्य सिद्ध होता है परंतु उसके परिणाम-परिवर्तन अर्थात पद नित्य

सिद्ध नहीं होते. जो होता तो पूर्वजन्म के समान संस्कार होने से मनुष्यों में एक ही भाषा होती. अमुक पद मे सबको उसके अर्थ का ज्ञान होता, परंतु ऐसा नही होता और ऐसा नहीं देखते. अतः पुर्वजन्म को मानके पद नित्य ओर पद में अर्थ जनाने की शक्ति सिद्ध नहीं होती.

जो पद मे अर्थ जनानेकी शक्ति हो तो देवपद सुनके इरानी को राक्षस और आर्य प्रजा को श्रेष्ठ देवताका वोध न होना चाहिये किंतु उभयको समान बोध होना चाहिये, परंतु ऐसा नहीं होता. (शं.) जिसको जेसे अर्थ का वोध बताया जाय वेसा ज्ञान होगा. (उ.) तो शब्द में शक्ति न हुई किंतु संकेत भाव वाली वुद्धि में ठेरी. जेसे अग्नि को जो जाने वा जो न जाने उन उभय को अग्नि जलाती है, वेसे यदि पद में शक्ति होती तो सब को समान बोध होता, परंतु ऐसा नहीं होता. अतः पदमें शक्ति नहीं. (शं.) यदि औषधि वा मंत्र प्रतिबंध हो तो वा लकडीमें अग्नि रही है तोभी नहीं जलाती; एवं जिसको शब्द के अर्थ का ज्ञान न हो, ऐसा प्रतिबंध हो तो शब्द की शक्ति काम नहीं देती. जो प्रतिबंध न हो तो वहां काम करती है यथा गाली देनेसे क्रोध होता है. (उ.) शब्द सुना ओर जेसा सुना वेसा बोल देता है. अतः अर्थ न जानना प्रतिबंध न ठेरा. अर्थ का ज्ञान हो तो असर करे एसा हो तो वोह शक्ति शब्द में न ठेरी किंतु जिसको संकेत का भान है उस संकेतभान में ठेरी. शब्द (यह विजली वायु के समुद्रवत् परारूप) नित्य है १, वा अनित्य है २, अक्षर (अ–क वगेरे स्वर व्यंजन) नित्य हैं ३, वा अनित्य हैं ४, पद (ओ३म्–घटादि) नित्य हैं ५, वा अनित्य हैं ६? अर्थ जनाने की शक्ति परा में वा अक्षर में वा पद में और स्वर में है ७, वा प्रकृति मे ८, वा प्रत्यय में ९, वा उभय में १०, है? वा अन्य में ११, सो शक्ति स्वभावतः है १२, वा परदत्त है १३? यह १३ विकल्प करके क्रमशः त्रिवेक दिखाते हैं.

(१) जो शब्द नित्य तो उसमे यथा उपाधि उद्गार अनुद्गार वा वर्णरूप आकृति हो सकती हैं. यथा हथेली अथडाने, ढोल बजने, वायु चलने से जो शब्दाकृति होती है किंवा स्वस्वरूप घोष वा यथा उपाधि स्वर (खर्जादि स्वर) वा अकारादि वर्ण वा घटादि पद रूप आकृति बनती हैं.

(२) जो अनित्य हो तो व्यक्त रूप आकृति का उपादान न होने से आकृति होना असंभव हो, परंतु आकृति होती हैं, और नाश होती हैं. अतः शब्दाकृति अनित्य है और उनका मूल शब्द सागर (परा) नित्य है यह सिद्ध होता है

३. जो वर्ण नित्य हों तो वे परिच्छिन्न असंख्य हैं वा विभु असंख्य हैं वा एक ही हैं. जो अणु रूप न मानें तो वक्ता का उसका ज्ञान न होने से उसका यथायोग्य उपयोग नहीं ले सकता अर्थात् घट पटादि का उच्चारण न होगा क्योंकि शब्द को यह ज्ञान नहीं है कि वक्ता की इच्छा अनुसार में आ के जुड जाऊं. और यदि परिच्छिन्न रूप एक ही वर्ण है तो नाना व्यक्तिओं में समकाल में अनेकों का उच्चारण न हो सकेगा तथा शब्द व्यवहार ही न होगा, इसलिये एक वा असंख्य परिच्छिन्न रूप नहीं सिद्ध होता. जो अक्षर (स्वर--व्यंजन) असंख्य विभु हैं इसलिये काशी और प्राग देश विषे समकाल में व्यक्त होते हैं, ऐसा मानें तो ककरादि परस्पर मे व्याप्यव्यापक भाव वाले ठेरे परंतु यह असंभव तथा यथा उपाधि परिणामी गति वाले ठेरे परंतु विभु में परिणाम वा लचक वा क्रिया नहीं हो सकती, तथा वक्ता को अज्ञात हैं और शब्द को यह ज्ञान नहीं कि मैं वक्ता की इच्छा अनुसार जुड जाऊं, इसलिये शब्द व्यवहार न होने से असंख्य विभु भी नहीं मान सकते. जो एक क एक अ एवं विभु मानें तो भी उक्त दोष आता है इसलिये असंख्य वा एक विभु रूप भी नहीं. किंतु अनित्य है.

४. जो अक्षर नाशवान–अनित्य हैं तो नं. २ अनुसार परिणाम आता है.

५. जब कि अक्षर ही नित्य सिद्ध नहीं होते तो अक्षरजन्य पदों की तो बात ही क्या करना; क्योंकि पदों का मध्यम वा विभु परिणाम मानने में नं. ३ वाले दोष आते हैं अतः वे भी अनित्य ठेरते हैं.

६. जब कि पद अनित्य हैं तो नं. २ अनुसार परिणाम आता है.

७. उपरोक्त परा, वायु समान समूह पुंज है वा गुण * समूह है, ऐसा न. १।२।३ से जान पडता है तो उसमे अर्थ जनाने की शक्ति नहीं मान सकते, क्योंकि अक्षर, पद वा स्वर वा ध्वनि तो उसका परिणाम है. परमाणुओं में जला-नयन रूप योग्यता नहीं होती किंतु उनकी रचना से जो घट होता है, उसमे जल ला सकते हैं. एवं परा मे अर्थ की शक्ति नहीं. किंतु जेसे कपडे की लाल पीली झंडी बना के उसके संकेत कल्पते हैं वेसे उपाधि (श्वास–नली–छाती–कंठ–दंत–ओष्ट–तालु–बंसरी–-तार वगेरे) जन्य जो नाना ध्वनि उनमे संकेत की कल्पना से वर्ण (अक्षर–अकरादि–ककारादि) तदजन्य पद हैं अतः उनमें अर्थ जनाने की

---

* शब्द आकाश का गुणी वा गुण नहीं हो सकता, क्योंकि; गुणी जो आकाश उसकी गति बिना शब्द गतिमान है, गुण में गुणी बिना गति नहीं होती.

शक्ति नहीं सिद्ध होती; किंतु संकेतमात्र द्वारा अर्थ का बोध होता है, यही सिद्ध होता है.

८।९।१०. एवं प्रकृति वा प्रत्यय वा उभय में नहीं है, क्योंकि यह भी परिणाम हैं मूल तत्व नहीं हैं. अर्थात् जब परा में नहीं तो इनमें कहा से हो; किंतु उपाधिजन्य जो प्रकृति प्रत्यय वा उनके उभय मिश्रण को कल्पित संकेत बनाया है.

११. उपर के लेख से सिद्ध हो गया कि परा और तद्जन्य परिणाम (स्वर व्यंजन-पद वगेरे) में अर्थ जनाने की शक्ति नहीं है. किंतु सो संकेतमात्र की योग्यता है.

१२. शब्द में अर्थ जनाने की शक्ति ही नहीं तो स्वाभावतः कहने की तो बात ही क्या करना.

१३. शब्द में ईश्वर दत्त शक्ति यह भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि शक्ति का विनिमय नही होता. किंतु जो हो तो ऐसा मान सकते है कि ईश्वर नामा व्यक्ति ने शब्द संकेत बनाये और मनुष्य प्रति जाहिर किये, इसी का नाम व्यवहार में शब्द शक्ति है; वस्तुतः शब्द में अर्थ जनाने की शक्ति नहीं है.

(शं.) गायन के स्वरो मे पशु पक्षी और मनुष्य पर असर होता है, जो शक्ति न होती तो ऐसा न होता. (उ.) जीव वृत्ति का स्वभाव है कि विषयाकार हो; इसलिये स्वर सुनके चित्त मे फेरफार होता है, सो शब्द की शक्ति से ऐसा हुवा हो यह सिद्ध नहीं होता; कारण कि आर्यावर्त्त वाले के गायन से अरब वाले को और अरब के गायन से हिंदी को आनंद नहीं होता; यदि स्वर में शक्ति होती तो जो स्वर को नहीं समझता उसका चित्त भी प्रसन्न होता.

परंतु ऐसा नहीं होता. सार यह है कि शब्द-स्वर द्वारा चित्त की एकाग्रता—सुख होता है. सो शक्ति स्वर में नहीं है

(शं) तोप के शब्द से गर्भ वा मकान गिर जाता है, कान बहरे हो जाते है. अतः शब्द में शक्ति जान पडती है. (उ.) बारूद गोले वगेरे से हवा, शब्द, इथर वगेरे में आंदोलन होता है उस दके से गर्भ पातादि कार्य होते है शब्द मे ऐसी शक्ति है ऐसा नहीं है.

(शं.) मंत्र के प्रयोग से देवता—सूक्ष्म शरीर खिंच आते है अतः शब्द मे शक्ति है. (उ.) देवता भूत वगेरे है वा नहीं और वे मंत्रवश हुये आते है वा

नहीं, इस बात का निर्णय जुदा रख के आपके कथन अनुसार मंत्र और देवता मान भी लेवें तो जैसे किसी को नाम लेके बुलावें वा पत्र लिखें तो वोह आदमी यदि उस भाषा को समझता हो तो आता है, भाषा न जाने तो नहीं आता. इसी प्रकार (तारवत् वायु के वायब्रेशन समान) जो ईथर द्वारा मंत्र का आंदोलन (लहेर-फोटो) सूक्ष्म शरीर जानले और उस भाषा को समझता हो तो जो उसे आना हो तो आवेगा. अर्थात् जिस सामग्री, जिस रीति और जिस प्रकार से मंत्र का प्रयोग है वोह उसके अनुकूल हो-उसमें उसका कुछ संबंध वा स्वार्थ वा प्रतिज्ञा हो तो आवेगा, नहीं तो नहीं आवेगा इतने से यह सिद्ध हुवा कि मंत्र में शक्ति नहीं किंतु देवादि के संकेतमान में योग्यता है.

इस प्रकार अनेक शंका समाधान हुये यही सिद्ध होता है कि अक्षर, पद में अर्थ जनाने की शक्ति नहीं है, किंतु संकेतमान में योग्यता है. और स्वर वगैरे के संबंध से जो चित्त की अवस्था में फेरफार होता है सो चित्त के अनुकूल वा प्रतिकूल शब्द से होता है, नहीं कि स्वर वगैरे में वैसा करने की शक्ति है. त. द. अ. २।१७६ से १७९ तक भी देखो.

सार यह निकला कि शब्द-पद नित्य नहीं और पद में स्वयं अर्थ जनाने की शक्ति नहीं है इसलिये वेदादि ग्रंथ पौरुषेय हैं, अनादि अनंत स्वभावतः कोई ग्रंथ-मंत्र-वाक्य नहीं है, क्योंकि छंद-मंत्र रचना को अपौरुषेय मानना युक्ति, परीक्षा और व्याप्ति के विरुद्ध है.

१. मीमांसा शास्त्र ईश्वर को मानता है वा नहीं, २. वेद अपौरुषेय वा पौरुषेय, ३. वेद मंत्र वा ब्राह्मण भाग भी, ४. शब्द याने पद नित्य है वा अनित्य है, ५. पद में अर्थ जनाने की शक्ति है वा नहीं, ६. शब्द का अर्थ आकृति जाति वा व्यक्ति, ७. वेद स्वतः प्रमाण वा क्या, ८. यज्ञ में पशुवध-मांस का उपयोग है वा नहीं, ९. पर के कर्म का फल पर को मिलता है वा नहीं, १०. स्वर्ग क्या, यज्ञ से स्वर्ग की प्राप्ति वा नहीं, ११. स्वर्ग से आवृत्ति वा अनावृत्ति, १२. जीव नित्य, अनित्य, अणु वा मध्यम, १३ उत्तर मीमांसा अ. ३।१।४ में जैमिनि की चर्चा है वोह कौनसा जैमिनि, १४. प्रायश्चित क्या और उसमें पाप (दुःख) की निवृत्ति होती है वा नहीं, १५. वेदाधिकार जाति पर वा गुण कर्म पर, इत्यादि मीमांसा संबंधी अनेक बातो की लिखित मूल ग्रंथ में चर्चा है. यहां विस्तार भय और अनुपयोगी होने से नहीं लिखते. यदि साधन सामग्री होगी तो भविष्य में प्रसिद्ध करेंगे

प्रभाकर और भट्ट ने जो अनात्म पदार्थों के विभाग जनाये हैं तहा १. सामान्य, विशेष और अभाव पदार्थ सिद्ध नहीं होते किंतु स्वरूप, देश और अधिकरण का विलक्षणत्व है उससे उनका व्याख्यान हो जाता है अतः कल्पित है. २. संयोग, विभाग, संस्कार, अदृष्ट, बुद्धि, दु.ख, सुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न यह पदार्थों की अवस्था है, गुणरूप से विशेष पदार्थ नहीं है. ३. तद्गत जाति भी स्पर्शास्पर्शरूप अवस्था है, ४. परिणाम स्वरूप से भिन्न कोई वस्तु नहीं है. ५. ज्ञान गुण सिद्ध नहीं होता किंतु स्वरूप है. और वृत्ति ज्ञान अवस्था है ६. शक्ति और गुण विवादित विषय है (त. द. अ. ७ सू. ३८२ और अ. ४ अद्वैत प्रसंग देखो) तथापि मूल तत्वो में गुण शक्ति माननी ही पडती है. ७ मन अणुरूप नित्य सिद्ध नहीं होता क्योंकि उसका संगी आत्मा मुक्ति मे जावे तो तिस पीछे वोह निकम्मा रह जाता है. कारण कि स्व आत्मा पास अनादि से मन है. ८. आत्मा के परिमाण में जो दोष आते हैं वे त. द अ ३ पे ६४० मे कह आये हैं इस प्रकार उनकी कल्पनाओ के अंश में अपवाद है. इन अपवाद का विस्तार व. सि. मे है तथापि जीवात्मा के दु.ख निवृत्ति सुख प्राप्ति, इतने प्रसंग मे इतर अन्य अध्यारोपो का अपवाद करना विशेष उपयोगी नहीं जान पडता अतः उपेक्षा है.

विभूपक

पूर्व मीमांसा के आतरिय हृदय से जैसा कि चाहिये वैसा मैं वाकिफ नहीं हू इसलिये उसके संबध म कुछ नहीं लिख सकता मीमांसिको के मतव्य के संबध मे इतना लिख सकता हू कि उनका द्विवाद (जीव अजीववाद) है, उनके एक भविकवाद म नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित, काम्य और निषिद्ध इन पाचो प्रकार के कर्म म तरमीम होके (सर्व संग्रहवाद के अनुकूल करके) जो पंचदशाग पूर्वक उनका अनीश्वरवाद भी माना जाय तो व्यक्ति विशेष को हानिकारक नहीं है. निष्काम कर्म सहित इन पाचो कर्मो की सुधारना (तरमीम) कर्मविवेक ग्रंथ मे दरसाई है

---

५. वेदांतदर्शन.

इस दर्शन के प्रवर्त्तक श्री वेदव्यास मुनि हैं. वेद का अंतिम तात्पर्य बतलाने से इसका नाम वेदांतदर्शन कहा जाता है इसका उद्देश वेद उपनिषद के आशय

बतलाने मे है. अर्थात् वेदोपनिषद् साक्षात् वा परपरा से परमात्मा की तरफ ले जाने वाले है. वे कहीं शुद्ध स्वरूप से कहीं उपलक्षण रूप से परमात्मा का वर्णन करते है, ऐसा दरसाता है. इसके विचारक को वेद और उपनिषद् को प्रमाण मान लेना ही चाहिये; क्योकि इसके तमाम कथन मे श्रुति प्रमाण है; हरेक वाक्य-सूत्र के विषय वाक्य श्रुति है, इसके कथन मे इसके सूचित से इतर अन्य ग्रथो का प्रमाण नही लेना चाहिये. इस दर्शन के चार अध्याय और अध्याय प्रति चार चार पाद है. यहा उनके सूत्रो मे से जितना इष्ट विषय है उतना लिया गया है. और सूत्रो का भावार्थ दिया है

इस दर्शन पर व्यासजी के शिष्य की बनाई हुई बोडायन वृत्ति है (वर्तमान मे नहीं मिलती) ऐसा सुनते है, शंकराचार्य, रामानुज, विज्ञान भिक्षुक, निंबार्क, माधव और वल्लभादि के इस पर भाष्य है. वर्तमान मे वेदात आर्य भाष्य प्रसिद्ध हुवा है. इनमें सूत्रों के तोड जोड बदलने से सूत्र सख्या में अतर है इसलिये सूत्रो के विषय वाक्य भी जुदा जुदा दिये है इसलिये, अधिकरणो के नाम यथेच्छा बदले है इसलिये, सूत्र और विषय वाक्य के अर्थ द्वैत अद्वैत का दृष्टि मे किये है इसलिये, और कहीं कहीं जिसको एक ने सिद्धात सूत्र कहा उसी को दूसरे ने शंका सूत्र ठराया है इसलिये आशय मे (कर्ता का आशय क्या है उसमे) मतभेद पड गया है. जैसा कि अध्याय २ पाद १ सूत्र १२४ और ३।३।१ मे जानोगे. महाभारत के युद्ध पहिले यह दर्शन बना है; क्योकि भगवद्गीता मे इसकी साक्षी पाई जाती है जैसे वेद उपनिषद् प्रसग मे विरोधाभास और उसका निवारण कहा है वैसे ही यहा भी जान लेना चाहिये, क्योकि इसमे उनसे इतर नवीन नहीं है. ब्रह्म का शुद्ध स्वरूप=सर्वतत्त्वैर्विशुद्धम श्वे. २।१५ अर्थात् सब तत्त्वो से निखरा हुवा. बहुधा यह निषेध मुख शब्द से वर्णन होता है यथा नेतिनेति और कहीं विधि से भी. यथा मन का मन है, क्योकि स्वरूप अनुभव का ही विषय होता है १. ब्रह्म का शबलस्वरूप=जो इन तत्त्वो के साथ मिलके भासे. यथा वोह प्राण है जो तमाम भूतो मे चमक रहा है, हिरण्यमय है. छा. १।७. ब्रह्म का उपलक्षणस्वरूप=सृष्टि या पृथ्वी) मे व्यापक, उससे अलग, सृष्टि के पदार्थ उसको नहीं जानते, सृष्टि उसका शरीर है, सृष्टि मे रह के सृष्टि का नियता है, यह तेरा आत्मा अतरयामी अमृत है.

वेदातदर्शन के आरभ मे ही "अब इसलिये ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति की जिज्ञासा कर्तव्य है.' ऐसा कहा है, इससे जान पडता है कि ब्रह्म को अध्यास कहा, उससे

इतर का अध्यास मानें याने सब अध्यास तो अध्यास निवारण भी अध्यास ही ठेरेगा. और ब्रह्म से इतर किसी अनाध्यास रूप के अध्यास हैं, तो उसका निवारण ब्रह्मदर्शन मे मान सकने हैं. तथापि अंत मे मोक्ष से अनावृत्ति कही हैं, इससे भी ब्रह्म मे किसी इतर की मोक्ष माननी पडती है. क्योंकि ब्रह्म तो नित्यमुक्त है. साराश ब्रह्म जिज्ञासा मे ही द्वैत स्पष्ट हो जाता है; परंतु जब दर्शन के अंतर मे और उसके हृदय उपनिषदो में उतरनें हे तो कुछ और ही परिणाम निकलता है; शोधक स्वयं विचार कर सकता है (जैसा कि उपर जनाया गया है). अब आगे दूसरो के * भाष्यानुसार भावार्थ ले के लिखा गया है, हमारी तरफ का नहीं हैं, ऐसा जानना चाहिये. सूत्रों के अर्थ और भावार्थ मे विवाद है (शाकर भाष्य, रामानुज भाष्य, † अणु भाष्य और आर्य भाष्य देखो). अतः कहीं भूल हो ते क्षमा पूर्वक सुधार के वाचेंगे.

व्याससूत्र (वेदांतदर्शन) में से—

अध्याय १ पाद १. अथातो ब्रह्म जिज्ञासा. अब (वेदाध्ययन करने के पीछे किंवा विवेकादि चार साधन संपादन हो गये हैं उस पीछे) ब्रह्म जानने की जिज्ञासा (वा ब्रह्मप्राप्ति की जिज्ञासा)—इच्छा की जाती है (वा कर्तव्य है वा इच्छा होती है), क्योंकि अन्य (संसारी) फल तुच्छ है किंवा ब्रह्म के ज्ञान होने मे बंध अनृत-बंध-अध्यास-पुनर्जन्म प्राप्ति) की निवृत्ति और परमानंद रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है. सूत्र १. सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय जिससे (वा जिसमें) होती

---

* शाकर भाष्य, आर्य भाष्य, नवदर्शन संग्रह एक मे से ले के.

† रामानुज श्री अपने वेदांत श्रीभाष्य में भाष्य के आरंभ में ही लिखते हैं —

भगवद्बाेधायनकृतां विस्तीर्णां ब्रह्मसूत्र वृत्तिं पूर्वाचार्याः ।
संचिक्षिपुः तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणि व्याख्यास्यन्ते ॥

अर्थ—भगवान बोधायन ने ब्रह्मसूत्र उपर जो विस्तीर्ण भाष्य रचा था उसको पूर्व जो आचार्य हो गये उन्होंने संक्षेप मे समझाया है उसके आधार पर मैं सूत्रों के शब्दों का अर्थ करता हूं (यहां भी बोधायनकृति नहीं है किंतु पर द्वारा है)

रामानुज कृत भाष्य मे ५४६ मध्वाचार्य के भाष्य में ५०३ अणुभाष्य में ५५४ सूत्र हैं, इस प्रकार सूत्रों के टुकडे किये गये हैं

इस शास्त्र का आशय किसी ने विशिष्टाद्वैत, किसी ने द्वैत, किसी ने शुद्धाद्वैत, किसी ने अद्वैत, किसी ने द्वैताद्वैत और किसी ने केवलाद्वैत निकाला है, यानें विवादित हो गया है.

सुनते हैं कि रामानुज भाष्य में कितने ही सूत्र नहीं हैं, उसने निकाल डाले हैं दूसरा यह कहता है कि दूसरों ने नवीन मिला दिये हैं मूल बोधायन ग्रंथ मे नहीं है

है वोह ब्रह्म है. २. ब्रह्म में इच्छा पाये जाने से ब्रह्म जगत का कारण है, यह बात शब्द प्रमाण रहित नही है कि ब्रह्म जगत का कारण है (तदैक्षत. छा. ६।२।३). ९ ब्रह्म में लय होना सुना गया है. ९. चैतन्य में गति पाई जाती है. १०. ब्रह्म आनंदमय है ऐसा श्रुतियों में बार बार कहा है. १३. आनंद का हेतु भी (रसो वैसः++अयंलब्ध्वाऽनंदी भवति ते. २।७।१४. वेद (मंत्र) मे भी ब्रह्म को ही आनंदमय कहा है १५. असंभव होने से. ब्रह्म से इतर (जीव) आनंदमय नही है. १६. और भेद के कहे जाने से (जीव आनंदमय नही है). १७. †

सू. १६।१७ मे जीव ब्रह्म का भेद कहा है सो अद्वैतवादि और द्वैतवादि उभय को समत है. अन्याऽन्तर आत्माऽऽनंदमयः— विज्ञानमय जीव से अंदर से रहा हुवा अन्य आनंदमय आत्मा है, इत्यादि. श्री शंकराचार्य=घटाकाश मठाकाशवत् जीव ब्रह्म का भेद है, वास्तव में भेद नही है. यह भेद अविद्याकृति उपाधि से है. संसारी जीव आनंदमय नही. मिथ्या भेद का आश्रय कर के यह दोनों (१६।१७) सूत्र है. यद्यपि इस आनंदमय अधिकरण के ८ सूत्र हैं, उनमें उपाधि–माया–अविद्या का शब्द तक नही है. तथापि श्री शंकर को औपाधिक–मिथ्या भेद मानने का कारण श्रुति है अनन्विष्टो.. अलब्धो लब्धव्यो, अश्रुत श्रोतव्यो, अमंतव्यो, अविज्ञातो, ज्ञातव्यो +नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा ज्ञाता. अर्थ— देहादि से भिन्न जानना, विवेक ज्ञान से प्राप्त करना, इसलिये सुनने योग्य और विज्ञातव्य है इत्यादि भेद का व्यपदेश होने से, और ब्रह्म से इतर कोई द्रष्टा ज्ञाता नही है और सूक्ष्म स्थूल का द्रष्टा जीव चेतन है इसलिये दोनों का अभेद है और उपाधि दृष्टि से भेद है. श्रीरामानुज— मुक्त जीव भी परमेश्वर समान आनंद वाला नहीं होता.

आकाश, प्राण, अग्नि, आदित्य, वायु, चंद्रमा, आप, प्रजापति, शुक्र यह सब ब्रह्म के नाम हैं. प्राज्ञ और ज्योति ब्रह्म के नाम है. ४० तक आत्मत्वेन अर्थात् शास्त्र के ज्ञान को पा के आत्मा करके भी उपदेश किया जाता है. जैसे कि वामदेव ने मैं प्राण, मैं ब्रह्म ऐसा कहा है. ३०.

† भेदवाद–जीव ब्रह्म का भेद, ब्रह्म ईश्वर का भेद, इत्यादि प्रसंग मे अविद्या–माया–उपाधि शब्द लगा के भावार्थ ले लेना चाहिये.

+ ज्ञातव्यो और अन्य ज्ञाता द्रष्टा नही इनका विरोध है निष्क्रिय श्रुति से सू. १० का विरोध है, सो माया उपाधि शब्द–अध्यारोप करने के विना निवारण नही होता. क्योंकि श्रुति सक्रिय भी कहती है

अध्याय १ पाद २. ब्रह्म में कथन करने योग्य गुण इस (जडजगत्–जीव) में नहीं है; अतः यह जगत ब्रह्मरूप नहीं है (वा उपास्य नहीं है). २ वे गुण शरीरी (जीव) में असिद्ध होने से जीव उपास्य नहीं है. ३. और जीव कर्म कर्ता है, इस उपदेश से (जीव उपास्य नहीं, जीव ब्रह्म का भेद है). ४. शब्द विशेष होने से. अनेन जीवेनात्मना. अर्थात् इस जीवरूप आत्मा से प्रवेश कर के नाम रूप करूं. ५ गुहां प्रविष्टावात्मनानौहित दर्शनात. अतःकरण रूपी गुफा में जीव ईश्वर रूपी दो आत्मा ही देखे जाने से जीव ब्रह्म का भेद है. ऋतं पविन्तौ ++ छायातपौ ब्रह्मविदोवदन्ति. कठ. वे गुफा में सूर्य की छाया और आतप (धूप) समान है. ११. जीव ईश्वर के विशेषण भी भिन्न भिन्न है इसलिये भी दोनो का भेद है. जीव शरीरी–रथी और ब्रह्म अशरीरी. कठ. १२. परमात्मा सुख विशिष्ठ § कहा गया है (जीव वैसा नहीं). १५. सब स्थान मे न होने से और असभव होने से जीव विभु नहीं है. १७.

अध्याय १ पाद ३. सब लोक का अधिकरण आत्मा है. १. उसकी उपासना से हृदय ग्रंथी टूट जाती है (भिद्यते हृदय ग्रंथि). ३. भेद का व्यपदेश होने से ब्रह्म और प्रकृति (जीव) का भेद है. ४. दहर आकाश ब्रह्म का नाम है. १३.

आविर्भूत स्वरूप अर्थात् जिसका स्वरूप निर्मल हो गया है ऐसे जीव का नाम उत्तम पुरुष कहा है. श्री शंकर=अविद्या न जाने तक जीवपना है* जब तत्वमसि का बोध हुवा तब संसारी नहीं, कूटस्थ है. तब जीव ही ब्रह्म हो जाता है (दहर रूप है). श्री रामानुज=मुक्त जीव का ऐश्वर्य भी ईश्वर के समान नहीं होता. १८ अंगुष्टमात्र पुरुष (कठ.) यहा पर आत्मा का वाची शब्द है, केवल हृदय भाव है. नहीं कि परिच्छिन्न. २४. बादर ऐसा मानते है कि मनुष्य पदवी से उपर देवादि पदवियो में कर्म का अधिकार है. २५ कर्मो में विरोध की शंका नहीं, अनेक प्रकार की प्राप्ति देखी जाने से ब्रह्मवेत्ता के पापादि कर्म नाश हो जाते है. २६ शब्द प्रबोध की शंका ठीक नहीं, क्योंकि वेद रूप शब्द से प्रभव जो ज्ञान उसमें प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से शब्द का विरोध दूर हो जाता है (यहा तर्क–अनुमान माना). २७. और इसवास्ते वेद नित्य है (तर्क ससिद्ध होते है) २८. वेदो का समान नाम रूप होने से उनके नित्यपने मे कोई विरोध नहीं (यथा

§ प्रज्ञानमानंद ब्रह्म. सच्चिदानंदस्वरूप इन वाक्यो में भी ब्रह्म आनंदस्वरूप नहीं है. किंतु ब्रह्म आनंद गुणवाला मान तभी विशिष्ट पद आवेगा.

* ब्रह्म चेतन को या उपहित चेतन को अविद्या-अज्ञान उसमे ममार्थी हो गया!!

पूर्व रचता है ऋ.). २९. मधुविद्या में जैमिनि देवताओं को कर्मो का अभाव और बादरायणाचार्य कर्मो में अधिकार मानते हैं. ३०।३२. संस्कार परामर्शात. संस्कार होने से ‡ ब्रह्मविद्या में अधिकार होता है और न होने से निषेध होता है. ३६. (स्वभावतः जो शूद्र हो उसको श्रवण अध्ययन का निषेध है). ३६.

अध्याय १ पाद ४. + अव्यक्त पद के योग्य (सूक्ष्मभूत–प्रधान वा जीव) है (संशय का विषय हो जाता है). १. उस परमात्मा के आधीन वाला होने से सो (प्रकृति–जीव) अर्थ वाला होता है. ३. और ज्ञेयत्व कथन का अभाव होने से. ४ द्वैतवादि–जीव वा प्रकृति को ज्ञेय नहीं कहा. ब्रह्म को कहा है. वालाग्रशत ++ भागो जीव: सविज्ञेय: श्वे. ५. ८. यहां ज्ञेय कहा है. ३.

प्रतिज्ञा और दृष्टांत के रोधन होने से उसके प्रामाण्य से प्रकृति (उपादान) और कारण है (निमित्तकारण ईश्वर). २३. और सृष्टि संकल्प (ईक्षणा) के उपदेश से (ब्रह्म कारण है). २५. और साक्षात् दोनों के कथन से (ब्रह्मनिमित्त और प्रकृति उपादान). २५. आत्मकृते परिणामात. अर्थात् अपने कर्मो कर के परिणाम से (ब्रह्म कारण है). २६. और योनि अर्थात् कारण कहा है (अतः ब्रह्म कारण है. २७.

सू. २३ से २७. तक शंकरभाष्य में सू. २५. से ब्रह्म अभिन्न निमत्तो-पादान कहा है: क्योंकि उत्पत्ति और प्रलय का उसमें कथन है–सू. २६ से ब्रह्म का परिणाम होना स्पष्ट है: परंतु द्वैतवादि उसका यह अर्थ करता है कि परमात्मा के प्रयत्न से और प्रकृति के परिणाम से यह जगत होता है; अतः ब्रह्म निरवयव, अपरिणामी होने से निमित्त और प्रकृति उपादान कारण हैं. सू. २७ में निमित्तो-पादान यह दोनों अर्थ लग सकते हैं. उभय पक्षकार जो श्रुति (सूत्र के विषय वाक्य) देते हैं उनमें पंचमी विभक्ति है. यदि पंचमी का अर्थ में तो उपादान और तीसरी का अर्थ लें तो निमित्तकारण अर्थ हो जाता है. यह विवाद है. यतो वा इमानि एतस्मात. ततो विराडा जायत. इ. श्रुति हैं. २७.

---

‡ जो जनेउ लेने का ही नाम संस्कार हो तो छापकली (जुलाहे) को ज्ञान न होता (छापकली उपनिषद्)

+ इस पाद में आरम से ही द्वैतवादि अद्वैतवादि के अर्थ में तकरार है अव्यक्त का अर्थ ब्रह्म, प्रकृति, वा जीव, इस प्रसंग में सूत्र है. और निमित्त तथा उपादान भिन्न २ वा अभिन्न यह प्रसंग है.

शंकर भाष्यमें ब्रह्म को निमित्त और उपादान माना है. परंतु ब्रह्म की उपादानता विकार के अभिप्राय से नहीं है; क्योंकि ब्रह्म अखंडनिष्कल है; परंतु जैसे सर्प का उपादान डोरी है ऐसे कही है. साराश ब्रह्म विवर्त्तोपादान है (अपने स्वरूप को न छोड के अन्य रूप में भासे सो विवर्तोपादान कहाता है). एक के जानने से सब जाना जाता है इस श्रुति का आशय तबही बैठता है कि ब्रह्म को अभिन्न निमित्तोपादान माना जाय.

द्वैतवादि कहता है कि जो यथावत् प्रकाश जाना जाय तो प्रकाश्य जाना जाय; इसलिये एक के जानने से सब जाना जाता है, यह आशय है.

द्वैतवादि प्रकृति को उपादान और ब्रह्म को निमित्त कारण मान के अर्थ करता है. श्री भाष्य ब्रह्म के शरीर (अचित्त–माया–प्रकृति) को उपादान और ब्रह्म को निमित्त कहता है.

शंकर की थीयरी माया करके अन्यथा अवभास–विवर्त्त, अतः विवर्त्तोपादान मान के उभय पक्ष कायम रखती है, श्रुतियों के विरोध का निवारण करती है; अतः प्रशंसनीय है.

अध्याय २ पा. १. स्मृति का अनवकाश है, दोष प्रसग होने से. १. और इतरो की अनुपलब्धि से (वेदात मत में दोष नहीं). २. इतने से योग का कहा गया. ३. इन तीनो सूत्रों के भाव में तकरार है.

अद्वैतवादि स्मृति निमित्त को भिन्न मानती हो तो अमान्य. द्वैतवादि–स्मृति अभिन्न मानती हो तो अमान्य १. अद्वैतवादि–प्रकृति से भिन्न की अप्रसिद्धि है. द्वै. अभिन्न निमित्तोपादान में तर्क न पाये जाने से ब्रह्म निमित्तसिद्ध हुवा. २. अद्वै. इतने कथन (उपरोक्त कथन) से योग स्मृति....के मत का निषेध हो गया. द्वै.– अभिन्न निमित्तोपादान के खंडन से योगः का अर्थात् परस्पर तत्वो की मिलावट से स्वभावतः सृष्टि होती है, इस पक्ष का खंडन हो गया.

और जान भी पडता है ६. अद्वैतवादि–ब्रह्म में उपादानपना जान पडता है. (शं) जगत ब्रह्म से विलक्षण अतः ब्रह्म उपादान नहीं. (उ.) प्रसिद्ध पुरुष से अचेतन केश नखादि और गोबरादि से चेतन विच्छु वगेरे पेदा होते है, तद्वत ब्रह्म में अचेतन जगत. (शं) अचेतन शरीर से अचेतन केश नखादि होते है. (उ.) किंचित अचेतन, चेतन के आश्रय भाव को पाता है, और किंचित नही

पाता; क्योंकि ब्रह्म का सतास्वभाव आकाशादि जगत में वर्तता है. इस वास्ते उसका यत्किंचित सादृश्य होने से उसका भी कार्य कारणभाव संभवता है § (शंकर भाष्य). द्वैतवादि-वेदांत शास्त्र में देखा भी जाता है कि परमात्मा सब में अनुगत है; अतः परमात्मा निमित्त और प्रकृति उपादान है.

पूर्व में असद् ही था (छां.) यह ठीक नहीं प्रतिषेध मात्र होने से. ७: वर्त्तमानवत जगत् उत्पत्ति के पूर्व कारण रूप से सत्य था (अंतःकरण रूप ब्रह्म असत् नहीं). पूर्व में जगत कार्य रूप में नहीं था इस दृष्टि से असत कहा है. पूर्व में ब्रह्मेतर कुछ भी नहीं था (पूर्वोक्त वेद प्रसंग गतश्रुति च. १. छ. ६८ देखो) उसका खुलासा जान पडता है. ७.

(शं.) यदि ब्रह्म उपादान तो प्रलय काल में जगत ब्रह्म रूप होने से ब्रह्म विकार वाला-मलिन होगा; किंवा दूषित प्रकृति उसमें लय पाने से ब्रह्म दूषित होगा? (उत्तर में सूत्र) प्रलयकाल में ब्रह्म दूषित नहीं होता; क्योंकि दृष्टांत का अभाव है ८. कुंडल कनक को घट मृतिका को दूषित नहीं करता; तद्वत् प्रलय में जगत, ब्रह्म को दूषित नहीं करता; क्योंकि विकार कार्य में है, कारण में नहीं. आत्मैवेदंसर्वम्. इसलिये दोष नहीं आता. सारांश जगत अविद्या आरोपित होने से ब्रह्म को स्पर्श नहीं कर सकता. अतः ब्रह्म दूषित नहीं होता. (शंकर). द्वैतवादि-प्रलय में जगत अपने मूल कारण प्रकृति रूप होने से ब्रह्म को दूषित नहीं करता, क्योंकि प्रकृति में वैसे विकार (मलिनतादि) नहीं होते. × ७.

तर्क के अप्रतिष्ठान से जो और प्रकार से-प्रतिष्ठित तर्क से-अनुमान किया जाय तो भी ठीक नहीं; क्योंकि अविमोक्ष (मोक्ष का अभाव या अदोषाभाव) का प्रसग होता है ११. श्रुति अनुकूल तर्क ग्राह्य है. मनु. अ. १२।१. ५।१. ६.

---

§ विवर्त्तोपादान पक्ष में नाम रूप जड माया के अंश है, और अस्तिभाति चेतनांश है; इस रीति से अद्वैतवादि का उत्तर ठीक है. जो विवर्त्तवाद माने और ब्रह्म ही परिणाम को पाया तो केशादि का दृष्टांत ब्रह्म को जड-सावयव बना देता है.

× शुद्धाद्वैतवादि की रीति से मलादि भी ब्रह्म का रूप है तो फेर शंका और समाधान दो नहीं बनते. द्वैतवादि की रीति से वर्तमान में भी व्यापक ईश्वर का मलिन के साथ व्याप्य-व्यापकमात्र संबंध है तो फेर उसका समाधान व्यर्थ है. इस प्रकार उभय का कथन सवश्य समीचीन नहीं जान पडता है. शंकर की रीति से यदि यह सवाल पेश करें तो उत्तम समाधान हो जाता है. (मलिनतादि अविद्याकृत होने से अधिष्ठान को दूषित नहीं करती, स्वप्नदृष्टि और तद्द्रष्टा अधिष्ठान चेतनवत्).

१०. एक कहता है कि श्रुति ही मानो तर्क सर्वथा त्याज्य है; क्योंकि बलाबल होने से तर्क द्वारा निर्णय नहीं होता.

उक्त प्रकार में भोक्ता भोग्य का भेद नहीं रहे, ऐसा कहो तो ठीक नहीं; क्योंकि लोक के समान भेद है (जड प्रकृति भोग्य और चेतन भोक्ता है). अद्वैतवादि—समुद्र से जल अभिन्न है तथापि फेन तरंग बुद्बुदे समान भिन्न भी है. इस प्रकार अभिन्न जो भोक्ता उसको भोग्य भी उपाधि कर के भिन्न रूप से संभव हो सकता है. घटाकाशवत. रामानुज श्री—ब्रह्म सर्वशक्तिमान होने से दुःखी नहीं होता.. और भोक्ता चेतन तथा भोग्य जड होता है; अतः भेद ही है. दूसरा द्वैतवादि—प्रकृति (जड) और जीव (चेतन भोक्ता) का अविभाग मानना दृष्टव्याप्ति से विरुद्ध है.

शुद्धाद्वैत—के मत मे ब्रह्म ही भोक्ता भोग्य रूप होता है. शंकर मत मे ब्रह्म ही भोक्ता भोग्य है, परंतु उपाधि करके-(अर्थात् भोक्ता भोग्य भाव ब्रह्म में अविद्या कल्पित हैं). ११.

आरंभण शब्दादि से कार्य कारण का अनन्यत्व है. १४. अद्वैतवादि—डोरी के सर्प मे दंस और मृगजल मे स्नान स्वप्न में देखते हैं, उनका ज्ञान सत्य है. यहां विकृत और अविकृत इन उभय परिणामवाद का निषेध हो जाता है. वस्तुतः विक्रय होने विना भ्रांति से अन्यथा नाम रूप भासते हैं, ऐसा कहो तो उससे विवर्तवाद रूप अनन्यपने की सिद्धि होती है. द्वैतवादि—कार्य कारण का अभेद होता है, प्रकृति के जानने से उसका कार्य जान लिया जाता है. घटादि नाम रूप वाचारंभणमात्र हैं मृतिका ही सत्य है, अर्थात प्रकृति सत्य ठेरी. रामानुज श्री का आशय यह है कि प्रकृति और जीव, ब्रह्म का शरीर है; इस दृष्टि से अभेद है याने सब उसके शरीर हैं. शंकराचार्य श्री लिखते हैं. (वक्ष्यमाण शंकरमत गत केटेशन अ. २।१।१४ का बांचो). सारांश स्वप्नवत अविद्याकृत है. (श.) एकं बीज बहुधाय: करोति. श्वे. ६।१२. (उ.) अविद्या के प्रबल हो जाने से मठाकाशवत ब्रह्म की ही ईश्वर संज्ञा हो जाती है (सो कर्ता है). ऐसे ही जीव है. (शं.) ब्रह्म पर अविद्या बलवान नहीं हो सकती, जो माया ब्रह्म की शक्ति तो सत् होनी-चाहिये. (उ.) न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजतिप्रभु++गीता ५।१४ परमार्थ अवस्था में व्यवहार का अभाव कथन करती है वस्तुतः न कोई ईश्वर और न जीवादि हैं, यह सब मायामात्र है. १४.

कारण से कार्य की उपलब्धि होती है. १४. कार्य से कारण भिन्न होता है. १५. सद् न था, यह कथन अन्य धर्म कर के वाक्यशेष से जाना जाता है १६. और पटवत्. १७. पूर्व मे (यह जगत्) असत ही था. सो सद् ही था. इन दोनो वाक्यों से जाना जाता है कि उत्पत्ति के पूर्व अस्पष्ट रूप में था; क्योंकि असत् से कार्य की उत्पत्ति नही होती. लिपटे हुये पट समान कारण मे था, ऐसे कारण कार्य का अभेद है. (यहां मायावादि और द्वैतवादि दोनों के अवसर मिल जाता है). १७.

उपसंहार दर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि. २४. अद्वैतवादि— लोक मे सामग्री-संग्रहदर्शन से असहाय ब्रह्म जगत् का कारण नही हो सकता, ऐसा कहना ठीक नही है; क्योकि दूध के समान बाह्य साधन विना ब्रह्म में जगत की कारणता संभवती है. दूध अपेक्षा विना स्वयं ही दही रूप हो जाता है, एवं ब्रह्म अन्य सामग्री के विना आप ही जगदाकार परिणाम को पाता है. छाछ वगेरे परिणाम होने के उत्तेजक है, नही कि दही रूप परिणाम होने मे. जो छाछ वगेरे मे दही वगेरे करने की योग्यता होती तो आकाश, वायु को भी दही रूप परिणाम मे लाती: परंतु ऐसा नही होता; अतः दूध में दही परिणाम पाने का स्वभाव (योग्यता) है. तद्वत् सर्व शक्तिमान ब्रह्म अपनी विचित्र शक्ति के योग से दूध समान विचित्र जगतरूप परिणाम धारण करता है. एतावानस्य महिमा—पादोस्य विश्वानि. (तदात्मानं स्वयमकुरुत). यह श्रुति है जो विषय (निरवयव विभु कैसे परिणाम को पा सकता है वगेरे) भाव मे, विचार मे नही आ सकते उनमें तर्क नहीं करना चाहिये. अविद्याकृत कल्पितरूप से वोह संसाररूप बन गया. वास्तव में ब्रह्म निराकार है.

द्वैतवादि— जैसे गाय वत्स के लिये अन्यथा साधन विना दूध उतार देने में निमित्त है वैसे ब्रह्म अन्य की अपेक्षा विना जगत करने मे स्वभावतः निमित्तकारण है. यहा उपादान कारण का प्रसंग नही है. जो ऐसा होता तो पूर्व के सूत्र मे निमित्त कारणता सिद्ध न करते. न तस्य कार्यं कारणं विद्यते. श्वे. ६।८. निमित्तताही बताती है. † २४.

† इस प्रसंग मे सूत्र, अद्वैतवादि, द्वैतवादि उभय सच्चे दृष्टांत पर नहीं जान पडते. क्या सावयव दूध में जल बर्फ करने की वा बीज से वृक्ष करने की शक्ति है! जो आप ही दहीरूप होता हो तो जलादि को भी करता. परंतु दूध को अमुक सहायता (गर्मी सर्दी वगेरे निमित्त) मिले तब दही होता है. और दही मे दूधरूप नही हो सकता, इसलिये पर अपेक्षा वाला है. ब्रह्म को सर्व शक्तिमान मान के अन्यथा कर्ता विश्वास से मान लेना दूसरी बात है बात यह है कि माया कर के परिणामी भासता है. घटाकाशवत. परंतु ब्रह्म परिणाम को नहीं पाता है परंतु सर्वत्र है

देवादि अन्य साधन विना संकल्प से पदार्थ रच लेते हैं, ऐसा लोक (शास्त्र) में सुनते हैं, तद्वत् ब्रह्म बाह्य साधन विना ‡ जगत रच ले, ऐसी संभावना है. २९. यथा-मकडी, तंतु रच लेती है. बगली बिजली की गरजना से शुक्र विना गर्भ धारण करती है, तद्वत. द्वैतवादि—रेल तार वगैरे मनुष्य की विचित्र कृति हैं, इसी प्रकार निराकार ईश्वर हस्तपादादि सामग्री के विना संस्कारों का निर्माण कर देता है. २६. तमाम ब्रह्म परिणाम नहीं पाता, किंतु अमुक भाग पाता है. अतः दोष नहीं. § निर्विकारबोधक श्रुति का भी कोप नहीं और ब्रह्म के शब्द मूलपने से उन दोनों की संभावना है. सूत्र श्रुतेस्तु शब्द मूलत्वात. २७. अद्वैतवादि—सृष्टि उसके अमुक पाद में है. ब्रह्म गम्यागम्य है ऐसा श्रुति कहती हैं, अतः श्रुति में जेसा कहा वेसा मान लेना चाहिये. लौकिक मणि मंत्रादिक का प्रभाव भी तर्क से सिद्ध न होता तो अचिंत्य प्रभु के प्रभाव (आप उपादान होने का प्रकार) केसे जान सकते हैं. (शं.) परिणाम पाने से ब्रह्म सावयव मानना पडेगा. (उ.) अविद्या कल्पित भेद की प्राप्ति होने से वोह दोष नहीं आता. चक्षु दोष से दो चंद्रमा दिखने से दो चंद्र नहीं होते, इसी प्रकार अविद्या कल्पित रूपादि के भेद से ब्रह्म में सावयवता नहीं हो सकती. द्वैतवादि—ब्रह्म निराकार है, ऐसा श्रुति कहती है और ब्रह्म श्रुति से जाना जाता है, यह सूत्र का अर्थ है. २७

आत्मनि चैवं विचित्राश्चहि. २८. अद्वैतवादि—और जेसे आत्मा में विचित्र (स्वप्न सृष्टि उपजती हैं) ऐसे ही (ब्रह्म में ब्रह्म के स्वरूप नाश, विकार, परिवर्तन पाये विना) सृष्टि उपजती हैं. द्वैतवादि—ईश्वर में ऐसी विचित्र शक्ति है कि हस्तादि विना रच देता है. * परमाणुओं के संयोग से सृष्टि मानें तो परमाणु सावयव ठेरेंगे. + २८.

---

‡ इसराश्को मतानुसार अभाव से भावरूप क्यों न रचे? क्योंकि (३०) सर्व शक्तिमान है.

§ क्या अच्छी सायंस है, एक निरवयव का एक भाग जगतूरूप हो और दूसरा निरवयव-निर्विकार-विभु रहे!! अद्वैतवाद खंडन हो गया है परंतु धन्य है शंकर को कि उसकी थीयरी ही श्रुतियो के विरोध का निवारण करती है और सृष्टि नियम को भी लेती है, यथा स्वप्न और विवर्तवाद.

* अनिर्वचनीय माया का स्वीकार करना पडा

+ सक्रिय परिच्छिन्न हो गया, असीम न रहा; क्योंकि देश के विना गति नहीं होती

सर्वोपेता चतद्दर्शनात् ३० परमात्मा सर्व शक्ति (वा सर्व गुण) सपन्न है, श्रुति में दर्शन से. सर्वशक्तिमान ब्रह्म जगत् का कारण है. ३०. सृष्टि रचना म ब्रह्म का अपना कुछ प्रयोजन नहीं है ३२. लोक के समान लीलामात्र से सृष्टि रचता है ३३ विना प्रयास सहज रच लेता है. यथा राजालोक अप्रयोजन भा लीला करते है और प्राण स्वाभाविक चलते है, वैसे.

जीवो के कर्म अनुसार सृष्टि रचने से ईश्वर मे अन्याय और निर्दयता यह दोष नही आते ३४. यथा पूर्वमकल्पयत्. अर्थात् ऐसे पूर्ववत् सृष्टि करता. धरता और लयकरता आया है. रामानुज श्री–ईश्वर निरपेक्ष कर्ता नहीं, यथा कर्म कर्ता है वल्लभ श्री-ब्रह्म कर्म सापेक्ष नहीं. अपनी इच्छा से अपने आप उच्च नीच होता है और भोक्ता है; अत. अन्यायादि दोष नही ३४. न कर्मविभागादि तिचेन्नऽनादित्वात् ३५ अविभाग (एक ब्रह्म होने से) कर्म पहिले नहीं थे ऐसा नहीं कहा जाता, क्योकि कर्म अनादि है. ३५ (श) पहिले शरीर वा कर्म? (उ. सूत्र) उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ३६ कर्म ओर जीवो का अनादि होना उपपादन किया जा सकता है. अनादि न मानें तो मुक्त को पुनः ससार होगा श्रा शंकर भी जीव को अनादि मानते है जिस शरीर मे जो कर्म बना वोह कर्म उत्तर शरीर से नहीं बनता, अतः अन्योऽन्याश्रय दोष नहा. ३६ (श, अनादि माना तो ईश्वरत्व क्या? (उ सूत्र) ईश्वर म सर्व धर्म (सर्व शक्ति सर्वज्ञत्वादि गुण–धर्म) पाये जाने से (दोष नहीं आता) ३७ †

† इन तीनो सूत्रों के अर्थ में किसी पक्ष की तरफ से विवाद नहीं है इन मे ब्रह्म अभिन्ननिमित्तोपादान १ और ब्रह्म अविकृत परिणामी २ यह सिद्धात गये और ब्रह्म, जीव तथा प्रकृति अनादि अनत ठेरे. सृष्टि पूर्व ब्रह्म से इतर अन्य कुछ भी नहा था, यह बात भी उड गई. शुद्धाद्वैतवादि बचाव करता है कि ऐसा करना ब्रह्म की लीला है. परतु समाधान नही होता क्योकि वोह जीव को अणु–अनादि और सायुज्य मुक्ति में भेद ही मानता है और सायुज्य मुक्ति को नित्य कहता है. द्वैतवादि जो जीव को अनादि माने तो मुक्ति के पाछे पुनरावृत्ति की असिद्धि है; क्योकि कर्म के अभाव विना मुक्ति नहीं होती. ऐसा होना वेद प्रमाण म कहे अनुसार सृष्टि का उच्छेद हो जायगा, अतः आवृत्ति माने तो नवीन कर्म का आरभ होगा; सूत्र का विरोध होगा अतः मुक्ति म भी कर्म फल शेष-वासना

अध्याय २ पाद २. इस पाद विषे विषय का ही विवाद है.

१—शारीरिक भाष्य में सू. १ से १० तक सांख्य मत का खंडन बताया है और आर्य भाष्य में जड द्रव्य निमित्तकारण नहीं, ऐसा अर्थ किया है. और विशेषतः चार्वाक खंडन मे लगाया है.

२—शारीरिक भाष्य में सू. ११ से १७ तक में न्याय, वैशेषिक का खंडन दरसाया है और आर्य भाष्य में मायावाद का खंडन है, ऐसा विवेचन किया है. (कितना बडा अंतर है, शंकर के पूर्व में मायावाद था ही नही ता उसका खंडन सूत्रों में कहां से आगया? सारांश द्वैतवादि का पक्षपात जान पडता है)

३—सू. १८ से ३२ तक बौद्धों के ४ मतों का खंडन हरेक भाष्य में बताया है * (परंतु बुद्धदेव ते व्यास के १४०० वर्ष पीछे हुये है)

४—सू. ३३ से ३६ तक में जैन मत का खंडन हरेक भाष्य में बताया है. * (परंतु महावीर स्वामी जो जैन मत के प्रचारक है सो ते व्यास के २००० वर्ष के पीछे हुये हैं).

माननी होगी, अर्थात् मुक्ति ही नहीं. ते श्रुतियें का कोप होगा. शंकर श्री जीव के अनादि मानते है, परंतु अविद्या सांत होने से जीव सांत होता है, ऐसे स्वीकारते हैं. जो ऐसा हो ते होते २ अविद्या विशिष्ट चेतन (ब्रह्म चेतन के घटाकाशवत् अश) न रहने से उनका अंत हो के तमाम ब्रह्म शुद्ध हो जायगा, माया—अविद्या कही भी न रहेगी, ब्रह्म अनुपयोगी रहेगा, और यथा पूर्व इस श्रुति का बाध आवेगा. और उनके ही **यह अनादि अनंत नैसर्गिक अध्यास,** इस वाक्य का विरोध होगा. शंकर के शिष्य सर्वज्ञ मुनि जीव के सादि मानते हैं, उपरोक्त ज नंबर का २२ नंबर याद करो; ऐसे विरोध होगा. इन सब का समाधान माया के अनादि अनत मानने विना नहीं हो सकता. जो ऐसा मानें ते विवर्त्तवाद समाधान कर सकता है; अन्यथा नहीं होता.

* सनातनी और आर्यसमाजी यदि बौद्ध जैन के नया मत (२८०० वर्ष पहिले नहीं था) बताते है ते व्याससूत्र में उनका खंडन कहा से आ गया. क्योंकि व्यास के ४४०० वर्ष हुये हैं. यदि व्यास पूर्व यह मत थे ते पुराणे का लेख असत् होगा; क्योंकि व्यासजी भागवत् में इनका भविष्य में होना लिखते हैं या ते वेदांतदर्शन जैन-महावीर जी के पीछे होना माने. जो यह मानें ते गीताजी मे इसकी साक्षी है. सार यह है कि भाष्यकारों ने बौद्ध जैन का नाम प्रवाह में लिख डाला है इस प्रकार की भावना व्यास के समय हो ते आश्चर्य नहीं या ते सूत्रो का अन्यभाव होगा. पर अन्य मतों के खंडन में सामर्थ्य है.

५—सू ३७ से ४१ तक पाशुपत मत का खंडन शंकर भाष्य में दरसाया है आर्य भाष्य में ईश्वर साकार, इस मंतव्य के खंडन में बताया है

६—सू ४२ से ४५ तक शंकर भाष्य पंचरात्र का खंडन बताता है आर्य भाष्य उनको साकार खंडन में लगाता है· (यहां सारमात्र दरसाते हैं)

सूत्र जड (प्रकृति–प्रधान) में स्वयं प्रवृत्ति न हो सकने से वोह निमित्तकारण नहीं हो सकता २ स्तन में से दूध और पानी उतरने में भी चेतन की प्रेरणा है ३· सृष्टि उत्पत्ति में अभाव निमित्त हो तो सृष्टि का अभाव न होना चाहिये. ४. गाय में दूध यह तृण का परिणाम स्वयं नहीं होता क्योंकि सब जगह (बैलादि में) ऐसा नहीं होता ५ अंध पंगुवत् वा लोहचंबुकवत् प्रकृति का व्यवहार मानें तो भोग और मोक्ष पराधीन ठेरते हैं· ६ अंध पंगु को मार्ग बताने वाला और लोह को चंबुक की अपेक्षा ऐसे अन्य मानना पडेगा· ७· परमाणु जगत् का कारण नहीं हो सकता· १२ जो परमाणु निरूप तो रूपवान पृथ्वी उसका कार्य नही और जो रूपवान तो परमाणु संज्ञा न रही· १९ क्षणिक, उत्तरक्षणिक का कारण नहीं हो सकता (क्षणिकवाद निषेध)· कारण विना कार्य नही हो सकता (अतः क्षणिक कारण नही) २१. उसके (क्षणिक स्वभाव वाले के) नाश में हेतु नही मिलता. २२. आकाश अभाव रूप नहीं· २४. क्षणिक के अनुभव न हो सकने से क्षणिकत्व नही. २५ असत् से कार्य की अनुत्पत्ति है २६ बाह्य पदार्थ का अभाव नहीं है क्योंकि उनकी उपलब्धि होती है· (सब को एक सूर्य का दर्शन होना· दो का परस्पर मे स्पर्श होना. घट में जल का लाना)· २८· स्वप्नवत् (क्षणिक) नहीं है: क्योंकि विरुद्ध धर्म वाली है (स्वप्न में त्रिपुटी स्थाई· क्षणिक में वैसा नही). २९. शून्य रूप मानें तो उसका ज्ञाता शून्य नहीं होगा (अतः शून्यवाद नहीं है)· ३१ (अनेकांतवाद खंडन) सत् असत् (नित्यानित्य, भेदाभेद) एक में असंभव है (एक ही वस्तु सद सदरूप नहीं होती)· ३२. मध्यम (संकोच विकासवान), विकारी होता है (यथा—शरीर समान परिणामी जीव मध्यम और विकारी होगा)· ३४. (सब के साथ) संबंध की अनुपपत्ति होने से ईश्वर साकार नहीं· ३७ साकार मानें तो वोह अधिष्ठान नहीं ठेरेगा ३८ ईश्वर की उत्पत्ति असंभव है ४२.

अ. २ पाद ३. श्रुति में आकाशादि तमाम भूतों की उत्पत्ति है. * १.

* आकाश का उपादान कौन? अक्रिय विभु होना चाहिये क्योंकि आकाश ऐसा है. और ४९ में उत्पत्ति असंभव.

उत्पत्तिक्रम के उलटे क्रम मे भूतों का लय होता है. १४. आत्मा उत्पन्न नहीं होता. १७. जीव ज्ञः (ज्ञाता § वा ज्ञान स्वरूप) है १८

(जीव अणु अधिकरण)—गति अगति का आत्मा के साथ संबंध है, इसलिये आत्मा अणु है. २०. जीव अणु नहीं सुना गया, यह कहना ठीक नही है; क्योंकि श्रुति में विभु बोधक वाक्य परमात्मा विषयक हैं. २१. जीववाची शब्द से और उन्मान (बाहिर निकलने अंदर जाने) से जीव अणु है. २२. जैसे शरीर में एक जगह चंदन लगने मे तमाम शरीर में शीतलता होती है वेसे अणु जीव एक जघे होते हुये भी तमाम शरीर के दुःख सुख का अनुभव करता है. २३. हृदय देश मे जीव का स्वीकार है. २४. अथवा गुण से लोक के समान अर्थात् जेसे लोक में दीपक अल्प है तो भी उसका प्रकाश गृहव्यापी होता है ऐसे जीव का ज्ञान गुण शरीर व्यापी है. २५ जेसे गंधवान से गध का व्यतिरेक है (अर्थात् भिन्न देशवर्ती होती है) वेसे अणु जीव का ज्ञान गुण उसमे भिन्नदेश (शरीर) में वर्तता है (इसलिये तमाम शरीर में चेतनता और दुःख सुख का ज्ञान होता है) अथवा जेसे गंध गुण और उसका गुणी जुदा जुदा दो पदार्थ हैं वेसे दीपक और उसकी प्रभा दो पदार्थ है. † २६. ऐसा ही श्रुति कहती है (छ. २३।२६ श्रुति देखो). २७ जीव का गुण भिन्न कथन किया गया है प्रज्ञया शरीरं समारुह्य. श्रुति. २८. (प्रं) योयं विज्ञानमयः प्राणेषु. बृ. ४।४।२२ इस श्रुति में आत्मा को ज्ञान स्वरूप कहा है. अतः ज्ञान उसका गुण नही (उ.) तद् ‡ गुण सारत्वात तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्. सू. २९. प्राज्ञसमान उसके गुण का सारपना (मुख्यत्व) होने से उसको विज्ञानमय (ज्ञानस्वरूप) कहा है जेसे के परमात्मा को प्राज्ञ कहा है प्राज्ञ को आनंद स्वरूप कहा जाता है वेसे. आनंदो ब्रह्मेति विजानात तै. ६।१ परमात्मा का आनंद गुण है तो भी आनंदस्वरूप कहा है ऐसे ज्ञान यह आत्मा का गुण है तो भी ज्ञान स्वरूप कहा है . २९

अद्वैतवादि चदन. दीपक प्रकाश और गंध का दृष्टांत विषय है चंदन सावयव है, और प्रकाश नाशवान संकोचविकाश वाला परंतु आत्मा का ज्ञान ऐसा नही गुण गुणीको नहीं छोडता. इसलिये २० मे २८ तक अणुवादी के जो शंका समाधान रूप सूत्र हैं वे पूर्वपक्ष के हैं सू २९ में सबका उत्तर है जो जीव अणु

§ छ. ८ श्रुतिका विरोध ज्ञानस्वरूप माने तो विरोध नही.

† यह दूसरा अर्थ अप्रासंगिक है

‡ शुद्धाद्वैतवादि तद् का अर्थ ब्रह्म करता है

तो सब शरीर मे वेदना ज्ञात न हो त्वचा के संबध से मानें तो पैर मे काटा लगने से सब शरीर मे वेदना होना चाहिये, परतु ऐसा नहीं होता, अतः वादि का मंतव्य असगत है, चैतन्य यह जीव का स्वरूप है, उष्णता वा प्रकाश समान चैतन्य सर्व शरीर मे है, अतः जीव अणु नही शरीर समान परिणामी मानें तो दीपक के प्रकाश समान संकोचविकास वाला मध्यम याने नाशवान होगा परतु श्रुति मे जीव को अजअमर कहा है; इसलिये जीव विभु है, ऐसा निश्चय होता है सू है तो भी जहा जो अणु रूप मे कथन है वहा वोह कथन इच्छा द्वेषादि बुद्धि के धर्मो के अध्यास के बिना असंसारी नित्यमुक्त आत्मा को कर्तृत्वादि ससारीपना नही है, इसलिये बुद्धि के धर्म के प्रधानपने से बुद्धि के परिमाण को जीव परिमाण कथन किया है जो श्रुति अणु कहती तो वाल नख पर्यंत उसका परिमाण नहीं रहती. (वेद प्रसग गत ख ६७ देखो)

ओर प्रज्ञया श्रुति म बुद्धि का ग्रहण है, बुद्धि के जो अणुत्व (परिच्छिन्नत्व) ओर क्रिया है, सो यह बुद्धि के सार हे. बुद्धि के गुण सबध से आत्मा गुणवाला जान पडता है; इसलिये अणुत्व का कथन है. जेसे के उपाधिवश मे सगुण उपासना मे प्राज्ञ आत्मा को अणु कहा गया है (ख १३ देखो), ऐसे यहा। जीव को अणु कहा है नहीं तो अणुबोधक श्रुति (ख १६) म जीव को ज्ञेय क्यो कहा; क्योकि ज्ञेय तो ब्रह्म हे, जीव नही. श्रुति एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो मु ३। ३।९ ओर जहा वालाग्रशत इस ठ २१ श्रुति मे जीव को अणु कहा हैं उसी मे जीवात्मा का अनत होना कहा है श्वे ५।९. इसलिये २० मे २८ तक पूर्व पक्ष के सूत्र हैं. सिद्धात सूत्र नहीं. (शं.) इतनी संख्या मे शंका सूत्र नही हो सकते (उ) अ २ पा. ३ में १ मे ९ तक के शका सूत्र हैं अर्थात् कर्ता की परिपाटि ऐसी ह. २० मे २९ तक

(शं.) बुद्धि के अभाव होने पर जीवत्व का अभाव हो जायगा (उ.) यावदात्म भावित्वाच्च न दोषः तद्दर्शनात् ३० द्वैतवादि का अर्थ—विज्ञान आत्मा के साथ हमेशे गुण होने मे यह दोष नहा जो विज्ञानमय कथन करने मे जीवात्मा मे लगाया गया है—अर्थात् विज्ञानमय कथन किये जाने मे वोह ज्ञान स्वरूप है अद्वैतवादि का अर्थ—बुद्धि सयोग का यावत् आत्माभावपना अर्थात् जहा तक जीव भाव रहे वहा तक वैसा होने मे और शास्त्र म दर्शन से दोष नहीं है जहा तक आत्मा ससारी है, जब तक यथार्थ ज्ञान करके अज्ञान निवृत्त नहीं हुवा है, वहा तक

आत्मा में बुद्धि का संयोग होने से जीवपना–संसारीपना विद्यमान है. आत्मा को जीव नाम भी बुद्धि की उपाधि से कल्पा गया है. परमार्थ से नहीं; कारण कि नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा श्रोता मंता विज्ञाता. इस श्रुति में परमात्मा से भिन्न अन्य चेतन्य नही है, ऐसा कहा है. योऽयंविज्ञानमयः. ध्यायतीव लेलायतीव. (जो यह बुद्धिमय है. बुद्धि की उपाधि से यह आत्मा ध्यान करता और चलता जान पडता है). इस श्रुति में जीव को बुद्धिमय कहा है, इसलिये उक्त दोष नहीं. जीव आत्मा कर्ता है तब ही शास्त्र (विधिनिषेध बोधक शास्त्र) अर्थवाले हो सकते हैं. ३३. श्रुति में भी ऐसा ही कहा है. ३६. बुद्धि कर्ता हो तो चित्तनिरोध कौन करेगा. ३९. जैसे खाती ऐसे जीव है यानें हमेशा कर्ता नहीं (स्वाभाविक कर्ता नही). ४०. ईश्वर पूर्व कर्मानुसार प्रेरक है. ४२. (अंश अधिकरण) नाना पाये जाने से जीव, ब्रह्म के अंश है और प्रकार से भी दाशकत्वादि एक कहते है. ४३. द्वैतवादि— व्यापक-व्याप्य भाव, सेवक सेव्य भाव और निष्पाप ब्रह्म के आगे कर्तृत्वादि भाव रखने से जीव को अंश कहा है. अ. २।३।५० में जीव को ब्रह्म का आभास माना होता तो यहां अंश नही लिखता. अद्वैतवादि—ब्रह्मदासा ब्रह्मदाशा ब्रह्मेव इमेकितवा–की. श्रुति. इसलिये जीव को कल्पित अंश कहा है; क्योंकि भेदाभेद का कथन है. ब्रह्म निरवयव है. ४३. श्रुति में भी ऐसा ही है. पादोऽस्य विश्वाभूतानि. यजु. ३१।३. ४४.* प्रकाशादिकों के समान पर नहीं है. वास्तविक अंश नही है. अंश के समान अंश है बिंबप्रतिबिंबवत. ४६. विधि निषेध देह के साथ के संबंध से है, अग्नि आदि के समान. ४८. वे (जीव) विभु न होने से उनके एक दूसरे का धर्म एक दूसरे में नही लगता. ४९. आभासएवच. और आभास ही. द्वैतवादि—आभास (अनुभव) भी जीव की परिच्छिन्नता का होता है, इसलिये एक दूसरे जीव के कर्मों का फल एक दूसरे को नही होता. अद्वैतवादि— जैसे अनेक घटों के जलगत सूर्य के प्रतिबिंब है, उनमें एक कंपायमान हो तो दूसरे नही कांपते. ऐसे एक ईश्वर के अनेक अंतःकरणों में आभास है उन जीवों में एक दूसरे के धर्म अधर्म नहीं लगते. श्री रामानुज—मायावादि जो जीव को विभु कहते वा जीव को ब्रह्म बताते हैं वोह सब तर्काभास मात्र है. ५०. (जीवात्मा को) विभु मानें तो अदृष्ट (भोग) का अनियम होता है ५१. जिस आत्मा का संकल्प वा ज्ञान इच्छा वा शरीर देश उसके कर्म ऐसा मानें तो भी दोष आता है; क्योंकि विभुओं का परस्पर में और

* मनेशासेर्गाश नेोर गी १५७.

शरीर में संबंध है. ५२. अनुज्ञापरिहार सू. ४९ से द्वैत अद्वैतवादि का अंतर नहीं है. अंतर है तो इतना है कि अद्वैतवादि उपाधि वाले आत्मा को ग्रहण करके अर्थ करता है और द्वैतवादि जीव को अणु चेतन मानके अर्थ करता है. ५३.

अ. २ पा. ४. प्राण और मनादि ११ इंद्रिय उत्पन्न होते हैं. १ से ११ तक. शरीर, विकार है. २१.

अ. ३ पा. १. जीव का दूसरे शरीर और परलोक में गमन होता है. तब प्राण और इंद्रिय उसके साथ जाते हैं. १ से ४ तक. कर्म का नाश फल भोगने पर होता है. जिस मार्ग से गया उससे दूसरे मार्ग से भी पीछा आता है. ८. विद्या, देवयान मार्ग का और कर्म पितृयान मार्ग का साधन है. पापियों का तीसरा मार्ग है. १७.

अ. ३ पा. २. स्वप्न में नवीन सृष्टि बनती है. १. उसे एक ईश्वर रचित मानता है २. स्वप्न सृष्टि माया मात्र (ज्ञान मात्र) है; क्योंकि अव्यक्त स्वरूप (अस्पष्ट) है. ३. स्वप्न यह भावी शुभ अशुभ का सूचक है, ऐसा श्रुति कहती है. छां. ५।२।२८. ४. जीवों के कर्मानुसारी परमेश्वर के ज्ञान से जीव का ज्ञान तिरोहित हो जाता है इसलिये बंध मुक्ति दोनों हैं. ५. ब्रह्म चेतन असीम निराकार है. १४. ब्रह्म चेतनमात्र एक रस है. १६. ब्रह्म का बढने घटने का कथन औपचारिक है उपाधि में भी व्याप्य होने से. २०. ब्रह्म अव्यक्त है. २३. समाधि वा उपासना काल में प्रत्यक्ष वा अनुमान से उसका साक्षात होता है. २४. जीव को कर्म फल ईश्वर द्वारा मिलता है, क्योंकि कर्म जड है. ३८. धर्म ही फल देने वाला है, ऐसा जैमिनि कहता है ४०. ईश्वर ही फल का हेतु श्रुति में कहा है ऐसा बादरायण मानता है. ४१.

अ. ३ पा. ३. (ज्ञान हुये पीछे मुक्ति में) अधिकारियों की यावत् अधिकार स्थिति है. **पुनरावृत्तिवादि**—मुक्ति के नियत काल तक मुक्ति वाले रहते हैं. पीछे संसार में आते हैं (ख. ३९ देखो). **श्री शंकराचार्य**—ससार की भलाई वास्ते दक्ष, नारदादि को यथा अधिकार नियत किये जाते हैं, उनको ज्ञान से तत्काल मुक्ति नहीं होती, इसलिये यावत् अधिकारविधि है. ३२. और प्रकार (जहां ब्रह्म वहां जीव नहीं ऐसे स्वरूपाप्रवेश) से भेद की अनुत्पत्ति कहो तो ठीक नहीं. क्योंकि उपदेश में आंतर समान है. तदंतरस्य सर्वस्य. तदुसर्वस्य बाह्यतः यजु. ४०।५. ऐसे

व्यापकव्याप्य का † उपदेश है. किंवा तत्त्वमसी यह उपदेश है; अतः स्वरूप प्रवेश नहीं. ३६. सो ही में ऐसा ध्यान के वास्ते उपदेश है. ३७.

अ. ३ पा. ४. (इस वेदांत विहित आत्मज्ञान) से पुरुषार्थ–मोक्ष होता है. (द्वैतवादि का अर्थ— ज्ञान कर्म समुच्चय से मोक्ष होता है) ऐसा जैमिनि मानता है. १. ज्ञान कर्म का अंग है ज्ञान से कर्म और कर्म से मोक्ष होता है. आत्मा भी वेदांत विहित ज्ञान द्वारा कर्म में उपयोगी होता है, इसलिये आत्मज्ञान में जो फल श्रुति है वोह पुरुषार्थवाद (पुरुष की स्तुति के लिये अर्थवाद) है. १. ३ से ७ तक में ज्ञान को अंग माना है (यह पूर्व पक्ष के सूत्र हैं). ७ (उत्तर) अधिक उपदेश से बादरायण का मत ही ऐसा रहता है, उस अधिक दर्शन से. ८. ज्ञान परमात्मा के साक्षात्कार होने में साक्षात् साधन है, इसलिये ज्ञान कर्म का अंग नहीं. (त्वमेव विदित्वा न अन्यपंथा). कर्म ज्ञान का समुच्चय नहीं है. ज्ञान से मिथ्या-- भ्रांति की निवृत्ति हुवा करती है, नहीं कि सत्य की. मोक्ष का ज्ञान साधन होने से बंध को मिथ्या मानना पडता है. यह शंकर वेदांत की प्रबल दलील है. कर्म, ज्ञान की उत्पत्ति में हेतु हैं और ज्ञान, मुक्ति की उत्पत्ति में कारण है–एवं दोनों मुक्ति के कारण न होने से कर्म समुचय नहीं. ८. ज्ञान से कर्मों का मर्दन हो जाता है. १६. उर्ध्वरेता (सन्यासी) में कर्मों का (यज्ञादि का) अभाव कथन किया गया है. १७. यज्ञ, अध्ययन, दान १ तप २ ब्रह्मचर्य ३ यह ३ धर्म के स्कंध हैं, संन्यासाश्रम के नहीं, ऐसा जैमिनि मानता है. १८. अनुवाद के समानपने की श्रुति से आश्रमांतर करने योग्य हैं, ऐसा बादरायण (व्यास) मानता है. वनिभूत्वा प्रव्रजेत. ब्रह्मचर्या देव प्रव्रजेत. १९. शमदमादि ज्ञानके अंतरंग साधन हैं. २७. प्राण बाधा में ही सर्व अन्न की अनुमिति है, उसके दर्शन से. २८. आपत काल में ऊंच नीच के अन्न भक्षण में दोष नहीं, चाकायण ऋषि का उदाहरण (छां. १). २८. आश्रमों के कर्म कर्तव्य हैं, विहित और (चित्त शुद्धि और ज्ञान के) सहायक होने से. ३२. आश्रम रहित को भी ब्रह्मविद्या में अधिकार है. रेक और गार्गी ऐसे हुये हैं. ३६. पतित संन्यासी का प्राश्चित नहीं और उसकी मुक्ति नहीं होती. ४०. कोई आचार्य प्रायश्चित होना मानते हैं, मुक्ति नहीं. ४२. यज्ञ कर्म कराने वाले को भी यज्ञ का फल होता

† इससे द्वैत सिद्ध होता है, क्योंकि ब्रह्म से इतर जब अन्य कुछभी वस्तु (प्रकृति माया या अविद्या या उपाधि) मानोगे तब ही व्यापकव्याप्य भाव बनता है; अन्यथा नहीं

है. ४६. जो कोई कठिन (वडा) प्रतिबंध न हो तो वर्तमान जन्म में भी मुक्ति होती है. ५१.

अ. ४ पा. १. (उपासना वा श्रवणादि में) वारंवार आवृत्ति (अभ्यास) की अपेक्षा है, श्रुति में ऐसा कहा है. द्वैतवादि— त्वं वा अहमस्मि, ऐसे अभेदरूप उपासना का अभ्यासी, ब्रह्म सब से पहिले था वोह जानता था कि अहं ब्रह्मास्मि. वा मैं ब्रह्म में स्थित हूं (स्वामी दयानंद). अद्वैतवादि— तत्त्वमसिका ९ वार उपदेश है. ११२ प्रतीक (मूर्ति याने ब्रह्म से भिन्न वस्तु मे ब्रह्म बुद्धि करने का नाम प्रतीक है) में ब्रह्म की उपासना नहीं; क्योंकि वोह प्रतीक ब्रह्म नहीं है. ४. ब्रह्म दृष्टि उत्कृष्ट होने से वा प्रतीक में ब्रह्म दृष्टि करना ब्रह्म में प्रतीक दृष्टि नही. (परंतु यह भाव नं. ४ के विरुद्ध है). रामानुज स्वामी का अन्य आशय है. यहां शंकरभाष्य, श्रीभाष्य, आर्यभाष्य मिला के देखो; क्योंकि मन ब्रह्म, ख ब्रह्म, अहंब्रह्म इत्यादि रूप की उपासना भी तो आरोपित ही है और श्रुति ऐसी उपासना करने को कहती है. ऐसे मूर्ति में भी आरोप है. यहां विवाद है. उभय उपासना अध्यास रूप हैं. इसका निर्णय कर्तव्य होता है. ५. सूत्रकार कहता है— आदित्यादि की बुद्धियें यज्ञ के अंग ओंकार में है सो युक्ति और गौणि वृत्ति से आदित्यादियों का कथन है § ६. एकाग्र स्थान में ध्यान कर्तव्य है. ११. ज्ञानी के पूर्व संचित का नाश और उत्तर पाप संबंध का अभाव हो जाता है. १३. ऐसे ही उसके पुण्य कर्म के लिये जान लेना. १४. अनारब्ध (पुण्य) का भी असबंध होता है. १५. प्रारब्ध भोग तक मुक्ति नहीं होती. १९. ज्ञान होने पीछे के कर्मों की व्यवस्था है (सेवकों में धर्म और निंदकों में अधर्म उपजाता है). १७.

अ ४ पा. २. (उत्क्रांति) मरण कालमें इंद्रियें मन में, मन प्राण मे और प्राण आत्मा में लय होते हैं और जीव सूक्ष्म भूतों में स्थिर होता है. १ से ६ तक. विद्वान और अज्ञानी की उत्क्रांति समान है. परंतु विद्वान (ज्ञानी) अमृत को और अविद्वान शरीर को प्राप्त होता है. ७. तदापीतेः संसार व्यपदेशात् ८. द्वैतवादि— वोह अमृत जब तक ब्रह्म में लय तब तक. पीछे संसार में ऐसा कथन है. योनिमन्य. कठ. ५१७. अद्वैतवादि— द्वैतवादि का अर्थ प्रसंग विना का है. तत् (सो) सूक्ष्म शरीर मोक्ष होने तक (ज्ञान होने तक उपासक) स्थिर रहता है ऐसा उपदेश है.

---

§ इसी प्रकार प्रतीक में ब्रह्म दृष्टि क्यों न मानी जाय? श्रुति ना कहती है; इसका ही निर्णय है

अन्य जीव उत्तर अर्थात् जन्म को पाते हैं. ८. स्थूलके नाश से सूक्ष्म शरीर का नाश नहीं होता (जीव), इंद्रिय, मन, प्राण और सूक्ष्म भूत इनका नाम सूक्ष्म शरीर (तेज पद). १०. एक शाखा में ज्ञानी के प्राण का गमन नहीं होता, यह स्पष्ट है. (छ. ४ ७।४८). १३. ज्ञानी जीव की प्राणादि ११ कला ब्रह्म को पा के ब्रह्म मे ही लय हो जाती है. १६. (परा का विचार हुवा. अब अपरा का विचार *करते है—). उपासक दिवस को मरे वा रात को परतु शरीर त्याग पीछे सूर्य की* किरण द्वारा ब्रह्म लोक में जाता है. १८.

अ. ४ पा ३. (देवयान, पितृयान) सब ब्रह्म उपासक एक ही मार्ग मे गमन करते है देवयानमार्ग द्वारा ब्रह्मलोक मे जाने के पीछे ब्रह्म को प्राप्त होते हैं. इन मार्ग मे नहीं जा सकने वाले का तीसरा मार्ग है. १. अर्ची आदि (उपासक के जाने का मार्ग) का वर्णन उपनिषदो में है (बृहदारण्यक देखो). ४. अप्रतीक उपासक अर्थात् निराकार ब्रह्म के उपासक को ब्रह्म की प्राप्ति होती है. १९. इस तीसरे पाद मे जीवो के उक्त दोनो मार्ग का वर्णन है. ब्रह्म (स्वतः ही) लोक सो ब्रह्मलोक वा ब्रह्म का जो लोक (दर्शन) सो ब्रह्मलोक. किंवा लोक विशेष (ब्रह्मा का लोक) सो ब्रह्मलोक. ऐसे ऐसे अर्थ के कटाक्ष है. १९.

अ ४ पा. ४. मुक्ति अवस्था में परज्योति (ब्रह्म) को प्राप्त हो के स्वस्वरूप मे स्थित होता है. १. भेदाभाव का देखे जाने मे अभेद का कथन है. ४. अद्वैतवादि — ब्रह्म स्वरूप हो जाता है द्वैतवादि — अहंग्रह उपासना और शम विधि मे अभेद रूप दृष्टि मे कथन है, वास्तव में एकता नहीं. मै ब्रह्म हू इत्यादि रूप से उपासना अहंग्रहोपासना है सब भूतो में आत्मा व्यापक है ऐसा भाव हो जावे तब उसको कोई शोक मोह नही होता. यह एक शम विधि उपासना है. ४. +

उपन्यासादि मे ब्रह्मरूप कर के जैमिनि मानता है. ५. सत्य संकल्पादि उपन्यास, उद्देश जात धर्म विशेष के कथन मे ब्रह्म मे युक्त हो के उस रूप से स्थित होता है, यह अद्वैतवादि का आशय है. परम साम्यमुपैति, ब्रह्म धर्म के धारण करने से समता कही जाती है (ब्रह्म रूप नहा होता). साराश मुक्ति में जीव को ऐश्वर्य प्राप्त होता है, यह बात उभय पक्षकार को संमत है. ५. आत्मा चेतन रूप होने मे केवल चेतन रूप ही मुक्त स्थित होता है, ऐसा औडुलोमि मानता है ६.

+ जो गति कर के ब्रह्मलोक मे गया उस साम्य की अचर ब्रह्म के साथ एकता नहा हो सकता और अहंग्रहोपासना कल्पित भाव में भी एकता अभेद कथन ठीक नहीं है

अद्वैतवादि— आत्मा चेतन होने से चेतन रूप से ही सिद्ध होता है. सत्य संकल्पादि धर्मों का कथन उपाधि संबंध से है; क्योंकि आत्मा में क्रीडा वगेरे मुख्यतः नहीं संभवते; अतः ज्ञान स्वरूप से स्थित होता है. § ६. चेतनमात्र स्वरूप के अंगीकार में भी उपन्यास से पूर्व भाव (ब्रह्म संबंधि ऐश्वर्य रूप) से विरोध नहीं, ऐसा बादरायण मानताहै. ७. ब्रह्म भाव से वा चेतन भाव से समता इसमें कोई विरोध नहीं. अद्वैतवादि— पारमार्थिक चेतन और सर्वज्ञत्वादि भाव इन उभय रूप से दोष नहीं आता क्योंकि सर्वज्ञत्वादि औपाधिक धर्म हैं. द्वैतवादि— जीवात्मा अपहत पापमा याने शुद्ध हो जाने से चिन्मात्र स्वरूप होता है, तब ही ब्रह्म के निष्पापादि गुण धारण कर सकता है; अतः उभय में विरोध नहीं अद्वैतवादि—सूत्र १ से ७ तक ब्रह्म ज्ञानी की मुक्त अवस्था का वर्णन है इस पीछे सगुण उपासक की मुक्ति का बयान आना बताता है. द्वैतवादि—सूत्र १ से ही चलता प्रसंग है सूत्र ७ पीछे भी वही प्रसंग है, ऐसा कहता है. दूसरा द्वैतवादि— यहां मुक्त का प्रसंग है, नहीं कि ब्रह्म का. और उपासक का प्रसंग है. क्योंकि आगे ब्रह्म से भिन्न उसके वैभव का कथन है, इसलिये अद्वैतवादि का अर्थ ठीक नहीं है. ‡ ७. मुक्ति में उपासक को दूसरी सामग्री की सहायता बिना संकल्प से ही ऐश्वर्य प्राप्त होता है, इसलिये स्वतंत्र है. ९. बादरआ मुक्त के शरीर इंद्रियो का अभाव और मन का भाव मानते हैं १०. जैमिनि श्री मुक्ति मे मन, शरीर और इंद्रियो का भाव मानते है. ११.

---

§ विभु चेतन का एक भाग मुक्त (स्वस्वरूप में स्थित) अन्य भाग बंध, यह कैसे बन सकता है? मेरा इतना भाग मुक्त इतना बंध ऐसा अभिमान चेतन में वा विभु में नहीं हो सकता. क जोवन मुक्त जब विभु ब्रह्म के न भाग में न र तो न भाग मुक्त हुआ और न. वहां से जाय उसके बदले न बंध जीव न. स्थान में आवे तो न. भाग बंध हुआ इसका अर्थ क्या? कुछ नहीं विभु चेतन का आभास वा प्रतिबिंब मान के उसका बंध मोक्ष मान तो भी नहीं बनता; क्योंकि वे क्षणिक होते हैं. त द अ २।४६८ वाचो. अत जो तो जीव को अणु चेतन मानो तो अर्थ बैठेगा, वा तो बंध मोक्ष बुद्धि-माया-अविद्या की कल्पनामात्र है, ऐसा मानना होगा

‡ ब्रह्मज्ञानी (मुक्त) उपासक (निर्गुण उपासक-सगुण उपासक) यह दो प्रसंग हैं. प्रथम ऐश्वर्य-भोग का चला आ रहा है. सूत्र में व्यवहार, परमार्थ का संकेत नहीं है. इस चौथे पाद के सूत्रों में ही गड़बड़ है, कारण कि अ ४।२ सू १०।१६ में ब्रह्मज्ञानी की अनुत्क्रांति कही है, तो फेर ब्रह्मलोक में ऐश्वर्य की प्राप्ति क्यों? जो ब्रह्मलोक में गये पीछे उपासक को ऐश्वर्य प्राप्ति पीछे ज्ञान पाके ब्रह्मलोक के नाश होने पर ज्ञानी का लय होना हो तो सू १ से ७ तक और उसके पीछे के सूत्रों का विरुद्धतर बताना नहीं बनता.

(दोनें की श्रुति उक्त ख. ३०. ख. २९ देखो). बादरायण श्री (वेदांतदर्शन का कर्ता)—संकल्प से शरीर रच लेता है. × इसलिये सशरीर, और ऐसा न करे तो शरीर नहीं; ऐसा मानते हैं. १२. शरीराभाव में स्वप्न समान और शरीर भाव काल में जाग्रतवत् भोग होता है. १३।१४. (शं.) परिच्छिन्न में इतना सामर्थ कैसे? (उ.) दीपक आवेश समान संभव है. वैसे ही श्रुति कहती है. जैसे दीपक अग्नि के आवेश से विस्तृत देश को प्रकाशता है, ऐसे परमात्मा के गुण धारण होने से उक्त सामर्थ हो जाता है. किंवा संकल्प से नवीन शरीर अंतःकरण हुये उनमें उपासना के बल से उसका प्रवेश होता है, इसलिये उक्त भोग होते हैं. * मुक्त का ऐश्वर्य ईश्वर जैसा (जगदुत्पत्ति स्थिति लयादि) व्यापार वाला नहीं होता. १७.

मुक्त का ऐश्वर्य स्वतंत्र नहीं होता; क्योंकि उसके कर्तव्य में जोडने वाले—उस मंडल में रहने वाले (ईश्वर) के आधीन स्वराज्यप्राप्ति का कथन है. १८. संगति—अद्वैतवादि वक्ष्यमाण सूत्र में ब्रह्म के निर्गुणस्वरूप का कथन है; क्योंकि ब्रह्म के सगुण स्वरूपवत् निर्गुण स्वरूप भी है. द्वैतवादि कहता है कि वक्ष्यमाण सूत्र में मुक्त का ऐश्वर्य विकार वाला होता है, ऐसा कहेंगे, यह संगति है (बडी तकरार है).

विकारावर्ति॰—अद्वैतवादि विकार रहित भी परमेश्वर का स्वरूप है क्योंकि तेत॰ श्रुति दोनें रूप को कहती है. १९. जगत के अधिष्टाता का सगुण—सविकार ही स्वरूप नहीं है, किंतु नित्यमुक्त निर्विकार और निर्गुण भी है. निर्गुण उपासक ब्रह्म के निर्गुण रूप को अभेद से पाता है. सगुण उपासक सगुण रूप को पाता है, परंतु यह निरंकुश ऐश्वर्य को प्राप्त नहीं होता. १९. द्वैतवादि का अर्थ—मुक्त जीव का ऐश्वर्य विकार वाला होता है, ऐसा ही शास्त्र कहता है. १९. कर्मजन्य होने से यह ऐश्वर्य नाश वाला होता है; अद्वैतवादि का अर्थ अप्रासंगिक है. १९.

भोग के समानपने से भी सगुण उपासक का ऐश्वर्य निरंकुश नहीं. २०. अर्थात् भोगमात्र में समता होने का श्रुति में पाया जाता है; नहीं कि ईश्वर के सर्वाधार—सर्व कर्ता सर्व ज्ञातावत् समानता. इत्यादि. २१.

× (ख. ३१,३६।३७ और छां. ५८।१२।१३ देखो।)

* मन और शरीर अनुपादान नवीनोत्पन्न करना तो ईश्वर में भी अधिक टोटा जो प्रकृति में से बनाये तो प्रकृति का संबंध हुवा. संकल्प से बनाये तो आत्मा मध्यम हुवा अणु नहीं. मध्यम नाशवान होगा. तथा अनुपादान नहीं बन सकते

संगति—अद्वैतवादि की तरफ से (शंका) जो उपासक का ऐश्वर्य अस्वतंत्र तो नाशवान होने से उपासक की संसार में आवृत्ति होगी या नहीं इसके उत्तर में सू. २२ है. द्वैतवादि कहता है कि जीव ब्रह्म की भोगमात्र में भी समानता नहीं है; क्योंकि श्रुति उपासक को वारंवार ब्रह्म के ध्यान की आवृत्ति करेगा इस शंका के उत्तर में अगला (२२) सूत्र है.

अनावृत्तिः शब्दात् ? अ. ४. पा. ४. सू. २२. श्रुति में अनावृत्ति है, श्रुति से आवृत्ति नहीं है. २२. अद्वैतवादि—देवयान द्वारा जो उपासक ब्रह्मलोक में जाता है, वोह स्वर्ग प्राप्तिवाले समान पुनरावृत्ति को नहीं पाता. (ब्रह्मलोक को पाता है पुनरावृत्ति नहीं पाता. छा) ब्रह्मलोक में भोग भोग के ब्रह्म के साथ कैवल्य को पाता है. और जो कर्म विद्या वगैरे द्वारा ब्रह्मलोक में गये है वे दूसरे कल्प में पुनरावृत्ति को पाते हैं, मोक्ष नहीं पाते. परंतु सम्यकदर्शन कर के जिसका अज्ञान निवृत्त हो गया है और जो ब्रह्म रूप हुवा है उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती. एक द्वैतवादि—मुक्तावस्था मे जीव को ब्रह्मध्यान की आवृत्ति करनी नहीं पडती. अपहत पाप्मादि धर्म वाला हो जाता है. (एवंवर्तयन् यावदायुष ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते. नच-पुनरावर्तते. छा. ८।१५।१) ब्रह्म उसको प्राप्त है. जब उसके कर्मफल की समाप्ति हो जायगी तब पुनरावृत्ति (पुनः जन्म) होगी. २२.

अद्वैतवादि—जो ब्रह्म की जिज्ञासा इस सूत्र की अपेक्षा लेके ध्यान की अनावृत्ति, ऐसा अर्थ करे तो भोग भोगने पीछे वहां ही रहता है या पीछे जन्म लेता है, यह बात सूत्रकार को लिखना चाहिये था; क्योंकि उपसंहार का मुख्य विषय का त्याग नहीं हो सकता. शास्त्र अपूर्ण रहता है. तथा पूर्व में देवयान वगैरे मार्ग का बयान हो और आवृत्ति अनावृत्ति न कहें, ऐसा नहीं हो सकता, इसलिये अनावृत्ति का उक्त अर्थ हठमात्र है.

मोक्ष मे आवृत्ति मानने वाले एक द्वैतवादि से इतर तमाम द्वैतवादि इस सूत्र का एकही अर्थ करते हैं, अर्थात मुक्ति हुये पीछे पुनः जन्ममरण में (संसार मे) नहीं आता.

यहां पूर्वोक्त ग. ३४ और १९ की श्रुति देखना चाहिये.

अद्वैतवादि—१. उपासक की मुक्ति मे अनावृत्ति तो निर्गुण ब्रह्मवित् की अनावृत्ति में संदेह ही नहीं हो सकता. २. मुक्ति मे पीछा संसार (जन्म) में न

आना इसका नाम अनावृत्ति है. ३ स्वामी दयानंदजी सत्यार्थ प्रकाश पृ. २४१ में यूं लिखते हैं, + नच पुनरावर्त्तते छां. प्र. ८ खं. १५. अनावृत्ति शब्दात्. व्यास ४।४।२२ और यदगत्वा न निवर्तते. गी. यह बात (अनावृत्ति) ठीक नहीं; क्योंकि वेद में इसका निषेध है. + ४. स्वामीजी के शिष्य आर्य मुनिजी (तर्कवाद के अंत की कविता देखो) अपने आर्य भाष्य में यूं लिखते हैं कि मुक्ति अवस्था में जीव को ब्रह्मध्यान करने की आवृत्ति नहीं करनी पडती; क्योंकि शुद्ध है, ऐसा शब्द प्रमाण मे पाया जाता है. एवं वर्तयन. नच पुनरावर्तते छां. तमाम जीवन के अभ्यास मे ब्रह्म को प्राप्त हुवा है, इसलिये दर्शन श्रवण निदिध्यास की आवृत्ति नही करता. दूसरी वार का प्रयोग समाप्तिसूचक है. ५. शंकराचार्य श्री—ऐश्वर्य वाली मुक्ति से आवृत्ति. कैवल्यमुक्ति मे नहीं. २२. समाप्त. (आर्य प्रजा में इस दर्शन की विशेष प्रवृत्ति है इसलिये विस्तार).

द्वैतवादि की तरफ से--वेदांत सूत्र में आद्य मे लेके अंतपर्यंत इतनी बातें कहीं भी नहीं हैं १. अविद्या मे ब्रह्म का जीव हो जाना, २. माया उपाधि मे जगत का रचना, ३. यह सब दृश्य माया का परिणाम और चेतन का विवर्त्त है, ४. यह संसार रज्जुसर्पवत् है, अधिष्ठान (ब्रह्म) ज्ञान से इस मिथ्याभूत जगत का बाध हो जाना, ५. माया का ब्रह्म में स्वाश्रय और स्वविषय होके रहना, ६. जीव ब्रह्म के अभेद ज्ञान से मुक्त होना, ७. मुक्त अवस्था में सब ज्ञानों का अभाव होना, ८. युष्मद (तु) और अस्मद (मैं) अर्थ का इतरेतर अध्यास होना, ९. ब्रह्म मे इतर सब मिथ्या, १०. यह अनादि अनंत नैसर्गिक अध्यास है, वा माया अनादि सांत है. इसलिये *मायावाद के अर्थ मान्य नही हो सकते.*

तटस्थ की तरफ से--*मनुष्य वा हो तो देवादि के सुख-शांति के लिये* वेदांत विद्या (उपनिषद्) मे इतर अन्य विद्या जानने में नहीं आती. ज्ञान का सार यही है, यह विद्या आर्यावर्त्त देश मे इतर अन्य खंडों में यथायोग्य नहीं है, आर्य ऋषिमुनियों का भूषण है. परंतु यह सेन विद्या है, *शब्द विद्या नहीं है, शब्द में*

+ व्यासजी विद्वान, सत्यवादि, धार्मिक, योगी थे वेद शास्त्र के विरुद्ध असत्वाद लिखना व्यासजी जैसे का काम नहीं वेदज्ञाता, वेद पढाने वाले और चारों वेद के जानने वाले थे. (सत्यार्थप्रकाश ३२८ पृष्ठ) यह भी स्वामी जी का लेख है. आवृत्ति होने में हेतु नहीं मिलता, क्योंकि शुद्ध हो गया. और यदि आवृत्ति है तो बीज का नाश होना ही चाहिये यानें मुक्ति भी एक अवस्था है, नहीं कि सर्वथा मोक्ष

नहीं आती, जब तक इसका बयान-कथन श्रवण रमूज मे और अधिकार प्रति है तब तक मेन द्वारा अनुभव मे स्वत. आ सकेगी, परतु जब इसको शब्द वा वाणी वा कल्पना मे लिया वा व्यवहार मे डाला कि तुर्त इसका खडन हो जायगा, भावना म न आ सकेगी, क्योंकि यह लक्ष्यालक्ष्य सिद्धात है, बुद्धि की पर टूटे विना इस गुह्यरहस्य का उसमे प्रकाशमान नहीं होता. और इसी कारण से याने शब्द मे लाने से परखडी डाक्टर थीबो वगेरे ने और भरतखंड के द्वैतवादि तथा अद्वैतवादिओ को खडन मडन करने का अवसर मिला है-अधिकारियो को हानी प्रद हो पडे है हमारी समति मे तो यही आता है कि हर कोई थीयरी (शैली-पद्धति) द्वारा अधिकारी मुख्य रहस्य पर पहोच जाय, इतना प्रयास बस है, खडन मडन वा द्वैत अद्वैत का आग्रह करना उचित नहा है. सब मुख्य मुख्य ग्रंथकारो ने इस विषय को मेन में रखा है, क्योंकि उनको ज्ञात होना चाहिये कि जो अधिकारी होगा और विवेकख्याति (धर्ममेघ समाधि-असप्रज्ञात योग) कर लेगा, वोह जेसा है वेसा, जो सेन है वोह मेन जान लेगा

वेदातदर्शन के शंकर कृत शारीरिक भाष्य के संबध म विद्वान डाक्टर थीबो के विचार•

थीबो श्री एक योरोपीयन विद्वान हुवा है जिसने आर्यनृफिलोसोफी का अभ्यास किया था उसने शंकर भाष्य का इग्रेजी मे तरजुमा किया है, उसम वोह लिखता है—

(१) शकर भाष्य बहुत जगे व्यास सूत्र के अनुकूल नहीं है

(२) व्यास सूत्र, शंकर भाष्य के अनुकूल नहीं है

(३) वैदिक सिद्धात सबधी आवश्यक विषय उपर शकर भाष्य ब्रह्म सूत्र के अनुकूल नहीं है

(४) उपनिषद् अमुक पद्धति के अनुसार ज्ञान का उपदेश करते है, ऐसा बताने के लिये शकराचार्य का यत्न कृत्रिम है बृहदारण्यक उपनिषद् के तमाम तीसरे अध्याय उपर मे जितना चाहिये उतना प्रमाण मिल सकता है.

(५) जिन श्रुतियो मे ब्रह्म के धर्म वा गुण कहने मे आता है वे श्रुतियें ठीक कहती है, ऐसा श्री शकर नही मानते.

(६) यह जगत् मिथ्या है, वा विवर्त्त है वा माया कल्पित है, ऐसा उपनिषद् नही कहते, परतु जगत ब्रह्म का कार्य है, ऐसा कहते है.

(७) जादुगर की कल्पित रमत सत्य नहीं होती वैसे जगत भी माया कल्पित है, ऐसा बताने के लिये जादुगर के दृष्टात दिये है, परतु सूत्रो मे ऐसा दृष्टात वा उदाहरण कही नही मिलता.

(८) अ. १ पा. ४ के अंतिम भाग मे माया शब्द नही है.

(९) शकर श्री ईश्वर और ब्रह्म में जो अंतर बताते है वोह सूत्र मे नहीं है.

(१०) जगत मिथ्या है, ऐसा सूत्रो में से नही निकलता.

(११) जिन सूत्रो मे जीव का परिमाण बताया है वे सूत्र शकर भाष्य के अनुसार समझ में नहीं आते.

(१२) जिस सूत्र मे जीव को अश कहा है उस सूत्र का विनाआधार शकर श्री "अंशइव" . अर्थ करता है

(१३) जिस सूत्र में प्रतिबिंबवाद नही है, उस सूत्र मे आभास का अर्थ प्रतिबिंब करने मे आया है, ऐसा करने से अ. २ पा. ३ सू. ४३ से विरोध आता है; क्योकि उसमें जीव को साक्षात अंश ही कहा है. †

अद्वैतवादि और शंकर भाष्य.

(१) ब्रह्म को उपादान-परिणामी मानना और विरुद्धधर्माश्रय कहना आकाश का बीटा बनाना है. निरवयव एक तत्व का परिणाम नही हो सकता. निष्कल, निष्क्रिय, निरजन, निर्गुण इन श्रुतियो के भी विरुद्ध है.

† इन दोनो का उत्तर गोपनहार दे देगा. जब कि आभास और प्रतिबिंब का हो नही समझे (१३) तो फेर क्या कहे. जो निरवयव ब्रह्म का परिणाम मानने को तैयार हो उसको क्या कहा जावे. यज्ञादि कर्म हीन ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण का आभास कहा जाता है, ऐसा शुद्धाद्वैत का अर्थ लेके दोनों को कटाक्ष करते है, यह आश्चर्य है. यहा तो किरणो का जो सीधा प्रवेश सो आभास और पुस्तक से प्रवेश सो प्रतिबिंब, इतना ही अंतर है. वस्तुत समान है. इत्यादि दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि वाक्य श्री दोनो शंकराचार्य के और श्रुति के और सूत्रो के आशय नही समझे, शब्दमात्र पर गये है. यदि अर्थ पर जाते तो ऐसा न लिखते. शंकर श्री का आशय आगे जानोगे

(२) पूर्व में उस अद्वितीय (सजातीय विजातीय स्वागत भेद रहित) ब्रह्म इतर कुछ भी नहीं था (ऋ.) जिससे परे और समीप कुछ नहीं है. यह सब ब्रह्म, उससे इतर कुछ नहीं. ब्रह्म निष्फल, निष्क्रिय निरजन निर्गुण (श्वे.) ब्रह्म से इतर अन्य द्रष्टा ज्ञाता मंता नहो है (बृ.) (ब्रह्माड का द्रष्टा ज्ञाता मंता अन्य नही, ऐसा अर्थ करने वाले हठपर हैं. प्रसग के विरुद्ध अर्थ है) इन श्रुतियो के देखो. और जगत् दृश्य है उसका निषेध नही हो सकता. तो फेर आप पास कौनसा प्रकार है कि इस विरोध का निवारण हो? उभय की व्यवस्था हो? ब्रह्म का परिणाम जगत है, यह मानना भूल है, असभव है और श्रुति से विरुद्ध भी है, तो फेर यह जगत क्या? इसका उत्तर अध्यारोप किये विना नही मिलता. तथाहि एक स्वरूप में दूसरे के स्वरूप का प्रवेश नही हो सकता. जहा ब्रह्म वहा जगत-जीव नही हो सकता. और जीव जगत प्रसिद्ध है तो फेर कैसे व्यवस्था कर सकते हो याने ब्रह्म से विलक्षण-अनिर्वचनीय माया मानना ही होगा.

(३) मायी माया करके सृजता है (श्वे.) अजानेका. यथापूर्व कल्पता है. आत्मा से आकाश, आकाश से वायु. इनकी यथार्थता और न. २ की व्यवस्था माया मानें विना नही हो सक्ती.

(४) द्वासपर्णा. आत्मा ही द्रष्टव्य श्रोतव्य. मुक्त हुवा मुक्त होता है. (कठ). तत्त्वमसि एक के जाने से सब जाना जाय इन सबकी व्यवस्था मायावाद मानें विना नही हो सकती नही तो न १ और २ का विरोध होगा.

(५) ब्रह्म अभिन्ननिमित्तोपादानवादि और द्वैतवादि कितना भी बल लगावे परतु श्रुतियो का विरोध और अधिष्ठान अधिस्त की व्यवस्था तो विवर्त्तवाद के विना नही होगी.

(६) सक्षेप में शकर की फिलोसोफी का अनुभव लेलोग तो फेर कभी भी आक्षेप न करोग

(७) यह बात ठीक है कि ब्रह्मचेतन (जीवचेतन) को अज्ञान-सस्कार-भ्रम-अध्यास वा स्वरूप भूलना-यह बातें नही हो सक्ती और न ऐसा श्रुति वदती है, तथा यदि माया भावरूप कुछ है तो उसे अनादि सात नही कह सकते तथापि शंकरश्री ने जो ऐसा भाव बताया है वोह भी एक प्रकार का अध्यारोप

वा जिज्ञासु के समझाने को लिये उत्तम शैली मानना चाहिये, क्योकि वे आप ही "अयमानादिरन्तो नैसर्गिकोऽध्यास." ऐसा लिखते ह यदि अध्यास की जगह अवभास, (ब्रह्म में अवभास होना) पद लिखते तो यह एक अनोखी शैली हो जाती जैसा कि गौडपाद श्री का आशय है

यहा तक वेदात दर्शन सबध मे जो लिखा सो भाष्यकारादि की दृष्टि से लिखा गया श्रुति और सूत्रो के विषय वाक्य और उनके अर्थो में तथा सूत्र वाक्य और उनके अर्थ तथा भावार्थ में विवाद है, यह उपर के लेख से जाना होगा इस-लिये सूत्रकार–व्यास श्री का क्या भाव वा मतव्य है यह हमको बताने का अधिकार नहीं है, इसलिये उसमे उपराम होना पडता है

इतना जनाना ठीक जान पडता है कि जो विरोधाभास निवर्त्तक एकवाक्यता-दर्शक जो पच सामग्री श्रुति प्रसग में लिख आये है, उससे सूत्रो के आशय की व्यवस्था हो सकती है, ऐसा मान सकते है. क्योकि वेदातदर्शन का आधार श्रुति पर ह. श्रुतियो का विरोधाभास निवृत्त हो के एकवाक्यता हुइ तो वेदातदर्शन में विरोधाभास की निवृत्ति आप ही हो जायगी

मद्दर्शन

अब आगे व्याससूत्र सबध म हमको जो मगत द्वारा जान पडा सो हमारी तरफ से जनाते है

व्यास सूत्र (वेदात दर्शन) आर्य प्रजा में उत्तम और इसलिये मान्य माना जाता है और है भी ऐसा ही, क्योकि उसमें ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष और सृष्टि उत्पत्ति लय का श्रुति आश्रित ऐसी खूबी से सक्षेप म बयान किया है कि ऐसा दूसरे शास्त्रो में नहीं है, इसलिये सब साक्षर महात्माओं की प्रवृत्ति का विषय हुवा है, जैसा कि उपर कहा है

इस दर्शन के आदि (ब्रह्म जिज्ञासा) और अत (अनावृत्ति शब्दात्) इन दो सूत्रो के अर्थ में सब की एक समति हो जावे तो तमाम सूत्रो का समान–ठीक अर्थ हो सकता है, उसके विना नही परतु भाष्यकारो ने अपनी अपनी भावना और मतव्य के अनुसार (केवलाद्वैत–विशिष्टाद्वैत–द्वैताद्वैत–शुद्धाद्वैत मान क) उसक अर्थ किये है, इसलिये सूत्र विवादित माने गये ऐसे मतभेद होने का कारण यह जान पडता है कि सूत्रकार ने सूत्र के विषयवाक्य (श्रुति) नहीं दरसाये हैं "श्रुति मे"

इतना ही लिख के रह गया है. और विषयवाक्य भाष्य कर्ताओ की भावना अनुसार मिल जाते है. यथा—अपने आप अपने को जगत् रूप किया. आत्मा से आकाश (शुद्धाद्वैत). अजामेका जीव नही मरता दो में एक ज्ञाता. द्वासपर्णा कर्म अनादि इत्यादि (जीव, ईश्वर और प्रकृति) अनादि अनंत (द्वैतवादि). एक से इतर नहीं, उससे इतर अन्य ज्ञाता द्रष्टा नही, ब्रह्म निष्क्रिय निकल्प. इत्यादि (केवलाद्वैत). एव अन्य सबध मे वेदातदर्शन स्वीकारने वालो मे मुख्य ३ पक्ष है

(१) केवलाद्वैत (मायावाद). (२) शुद्धाद्वैत (ब्रह्मवाद). (३) त्रिवाद (द्वैतवाद). शेष (विशिष्टाद्वैत और चिदचिद्वाद इत्यादि). इनके अतरगत है

अब आगे श्रुति वा सूत्र वा उनके भाष्यकारो को खास रूप मे बीच मे न लेके शोधक अपनी कल्पना से उपरोक्त वादों को प्रदर्शन करावेगा, और श्रुति, सूत्रो के विद्वानो के किये हुये प्रचलित अर्थ लिये जावें तो भी क्या परिणाम निकल सकता है, सो जाना जा सकेगा.

विवर्त्तवाद (केवलाद्वैत).

(१) ब्रह्म, शुद्ध-कूटस्थ-निष्क्रिय-निष्कल-निर्विकार-अधिष्ठान-आधार है, ऐसा श्रुति कहती है. ब्रह्म से इतर अन्य नही, उससे इतर अन्य द्रष्टा ज्ञाता नहीं, ऐसा भी श्रुति कहती है. जगत् दृश्य है, इसका निषेध भी नही हो सकता. और द्रष्टा (ब्रह्म चेतन) और दृश्य जगत् का साधर्म्य भी नहीं है, अर्थात् ब्रह्म जगत् रूप हुवा हो ऐसा भी सिद्ध नही होता. इसलिये (श्रुति प्रसंग न ६ गत न. ३ याद करो). उभय की अर्थापत्ति से ऐसा मानना पडता है कि "यह अनादि अनत नैसर्गिक अध्यास" है. स्वरूप के अज्ञान से—माया की उपाधि में अपनी कल्पना से आप ब्रह्म ही जगत रूप भासता है याने रज्जु सर्पवत् ब्रह्म विवर्त्तोपादान है और माया (उपाधि) के नाम रूप-जगत् विवर्त्त है. जीवात्मा को स्वरूप (मै ब्रह्म स्वरूप-शुद्ध-अबद्ध) का ज्ञान होने से इस अध्यास (बध) की निवृत्ति होती है, अपने स्वरूप मे स्थिति होने का नाम मोक्ष है अर्थात् बंध की निवृत्ति और परमानद-स्वरूप की प्राप्ति मोक्ष है, और मोक्ष से अनावृत्ति है

सूत्रार्थ—अब याने विवेकादि सपन्न हुये-अधिकारी होने के पीछे ब्रह्मज्ञान की जिज्ञासा होती है वा कर्तव्य है क्योकि इस ज्ञान से अविचारकृत अध्यास-बध की निवृत्ति और परमानद-स्वरूप की प्राप्ति होती है, यही मोक्ष है और इसमे अनावृत्ति है, ऐसा श्रुति मे सुनते है

इस भावना की सहायक उपरोक्त श्रुति हैं, शेष श्रुति और सूत्रों का अर्थ उनके अनुसार कर लिये जाते हैं, वा कर लेना चाहिये.

पूर्वपक्ष —

(१) चेतन (ब्रह्म वा ईश्वर वा जीव चेतन) को अनादि से अज्ञान, भ्रम, अध्यास, संस्कार नहीं है, उसका प्रतिबिंब वा आभास रूप जीव नहीं है यह मंतव्य सदोष है. (त. द. पेज. ७६८ से ७८१ और १००५ से १००९ तक देखो). आत्मज्ञान होने पीछे भी जगत् भ्रम रूप था, संस्कारवश मुझको अनहुवा प्रतीत होता था, ऐसे रूप में बाध नहीं होता. किंतु दृश्य क्षणभंगुर परिवर्त्तमान वाला, ब्रह्म जैसा सत् रूप नहीं, स्वप्नवत् प्रतीतमात्र है ऐसे रूप में बाध होता है अतः अजात वा भ्रम रूप नहीं मान सकते. (२) चेतन (अणु वा विभु) में कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं बनता. जो माना तो चेतन विकारी मानना होगा. (३) और अन्य दृष्टा ज्ञाता बोधक न होने से उसकी निवृत्ति असंभव. यदि स्वप्न सिंह के समान निवर्त्तक मानें तो चेतन एक होने से एक को ज्ञान होने और भ्रम की निवृत्ति हो जाने से सब माया-अज्ञान-भ्रम-अध्यास-निवृत्त हो जाना चाहिये; परंतु आज तक अनेक ब्रह्मवित्-मुक्त होना श्रुति में भी सुनते हैं तथापि आज तक जीव और जगत् की निवृत्ति न हुई (अ. ३ सू. ७१ के विवेचन में विस्तार है). जो जीव का उपरोक्त लक्षण करके उपाधिवश नाना जीव मानें तो भी संसारीपना चेतन में होने से एक को ज्ञान होने से सब की निवृत्ति होनी चाहिये; क्योंकि अंतःकरण और आभास तो जड-मायीक पदार्थ है. जो ऐसा न मानें तो काशीस्थ जीव जब अजुध्या में जावे तब काशी वाला चेतन भाग मुक्त (निरुपाध) और अजुध्या वाला भाग उपाधि वाला हो जाने से बंध हो जायगा, ऐसे तमाम चेतन भाग में नित्य बंध, मुक्तपना (विशिष्ट-बंधपना-उपहितपना, अविशिष्ट-अनुपहितपना-शुद्धपना) होता ही रहेगा; इसलिये चेतन का आभास वा प्रतिबिंब को जीव मानके इस शंका की निवृत्ति करना चाहे तो आभास माया का ही कार्य है और क्षणिक है. अर्थात् काशी वाला जीव जब अजुध्या देश में गया तो आभास-प्रतिबिंब-पूर्व वाला न रहा, किंतु दूसरा आभास-प्रतिबिंब हुआ है (तत्वदर्शन नियमाध्याय २ सू. ४१८ देखो); इसलिये स्मृति वगैरे का व्यवहार न होना चाहिये, परंतु ऐसा नहीं होता तथाहि कर्तृत्व भोक्तृत्व और बंध मोक्ष, तथा ब्रह्म जिज्ञासा वगैरे-सब आभास में ही मानना होगा; ब्रह्म चेतन को उनमे कुछ संबंध नहीं, ऐसा स्वीकारना होगा— अर्थात् ब्रह्म चेतन को

अज्ञान-भ्रम नहीं ठेरा. और जो आभास-प्रतिबिंब (वा अविद्या-बुद्धि-अंतःकरण) के दोष चेतन अपने में मान लेता है, वा जानता है, वा ऐसा चेतन को भासता है, ऐसा मानें वा संस्कारवश रज्जु सर्पवत् नामरूप कल्प लेता है वा वैसा प्रकार भाव में कल्प लेता है ऐसा कहे तो चेतन संस्कारी कल्पक होगा अथवा उसका भाव परिणाम (मान लेना) होने से चेतन विकारी ठेरेगा, निर्विकल्प न रहा. जो संस्कारों को चेतना की अवस्था न मानें किंतु उससे भिन्न किसी इतर को उसका उपादान कहे वा किसी अन्य को संस्कार मानें तो चेतन को भ्रम न होगा किंतु जिसको संस्कार है उसको भ्रम होगा. तथा वोह संस्कारी वा संस्कार का उपादान भावरूप होने से द्वैतापत्ति होगी अथवा उसको अन्य प्रकार कहना पडेगा इस उपरांत पूर्वोक्त काशी तथा अजुध्यावाले तो दोष (चेतन के भाग में मानना न मानना बंध मुक्त होते रहना) होने ही रहेंगे. इसलिये चेतन का आभास वा प्रतिबिंब वा चेतन को संस्कार, भ्रांति मानना व्यर्थ ही है और असिद्ध है आत्मज्ञान होने पीछे दृश्य भ्रम था, संस्कारवश मुझको अनहुवा प्रतीत होता था, ऐसे रूप में बाध नहीं होता किंतु दृश्य क्षणभंगुर है, ब्रह्म जैसा सत् रूप नहीं, प्रतीतमात्र है, ऐसे रूप में बाध होता है, इसलिये भी भ्रमरूप अज्ञानरूप नहीं है. वा भ्रमरूप नहीं मान सके.

भ्रम—अध्यास को भ्रम-अध्यास काल में भ्रम-अध्यास है, ऐसा नहीं मान सक्ने—नहीं कहा जाता, अतः जब तक दृश्य-शरीरादि है वहां तक इनको भ्रम नहीं कह सकने, जैसे कि स्वप्न में स्वप्न को स्वप्न नहीं कहा जाता. और जब अज्ञान निवृत्त हुये पीछे भ्रम-अध्यास न रहा तो वक्ता श्रोता ही न रहा, अर्थात् जीवत्व न रहा और ब्रह्म वाणी रहित है तो अध्यास है वा था, ऐसा कौन कहेगा? कोई नहीं. इस रीति से जगत् को वर्तमान में भ्रम मिथ्या कहना नहीं बनता. यदि ऐसा मानें कि "मृगतृष्णिका का ज्ञाता दूसरे अज्ञानी को भ्रम है ऐसा कह सकता है, इसलिये भ्रम कहना बनता है," तो ब्रह्म से इतर सब मिथ्या-भ्रमरूप है; इसलिये उस ज्ञाता का कथन भी मिथ्या होने से शांतिप्रद न होगा — सिद्धांतरूप में न माना जायगा. जो यह कहो कि ज्ञान पीछे भी अविद्यालेश रहता है तो ज्ञान से निवृत्ति, ऐसा न कह सकोगे जो ऐसा मानें कि "जैसे आकाश की नीलता (वा मृगजल) जिस भाव जिस प्रकार में अज्ञानकाल में प्रतीत होती है वैसे भाव और प्रकार में ज्ञान हुये पीछे नहीं जान पडती, इसी प्रकार ब्रह्म से इतर सब दृश्य जैसे भाव जैसे प्रकार में अज्ञानकाल में जान पडता था वैसे भाव-प्रकार में ज्ञान हुये पीछे नहीं जान पडता

अर्थात् अन्यथा–याने बाधित वृत्ति का विषय और तुच्छ जान पडता है." तो अध्यास वा भ्रम रूप न ठेरा किंतु स्वाभाविक अवभास रूप ठेरेगा; क्योंकि आत्यतिक निवृत्ति नहीं होती; अतः ऐसा मानें कि प्रारब्ध भाेग पीछे आत्यंतिक निवृत्ति भी हाेगी अर्थात् विदेह मुक्ति हाेगी; ताे पुनः काशी अजुध्या के उदाहरण वाले और उपरोक्त वेदांतदर्शन अ. ४ पा. ४ सू. ६ की नोट वाले दोष आवेंगे

कर्तृत्व, भोक्तृत्व (दुःख सुख) किस मे? ब्रह्मकूठस्थ निष्क्रिय है, उसमें नही बनता, जड जो अविद्या वा अंतःकरण उसमें भी नहीं बनता; दोनें में न होने मे उभय विशिष्ट में भी नही कह सकते; इसका उत्तर नही बनता. चेतन ने अज्ञान कर के अपने में मान लिया ऐसा मानें ताे ब्रह्म विकारी हो जायगा; परंतु वोह ताे निर्विकल्प शुद्ध है; अतः मानना भी नहीं बनता. जो अविद्या–माया कर के उस विवर्त्तोपादान–ब्रह्म मे भासता है, ऐसा मानें ताे किस काे भासता है? तहां ब्रह्म काे ऐसा भासता है कि मेरे मे वा चेतन मे कर्तृत्व और भोक्तृत्व अन्यथा भासता है, ऐसा मानें ताे ब्रह्म विकारी ठेरा, निर्वाच वा निर्विकल्प न ठेरा. जो माया मे माया काे ही भासता कहें ताे ब्रह्म से इतर अन्य ज्ञाता दृष्टा नही, इस श्रुति का बाध आवेगा, और जड माया काे भासना, यह भी नही बनता. अब यदि ऐसा मान लेवें ताे ब्रह्म असंग रहा अर्थात् उसकाे अज्ञान–अविद्या–माया वा भ्रम नही है, ऐसा सिद्ध हो जायगा.

ब्रह्म से इतर अन्य नहीं है ताे ब्रह्म की जिज्ञासा कोन करेगा? जो मानें ताे अध्यास–अविद्या–माया (जीव) काे ताे जिज्ञासा बने नही, चेतन काे ही चेतन की जिज्ञासा कहोगे. जो यूं हो ताे चेतन विकारी ठेरा और ब्रह्म काे ब्रह्म की जिज्ञासा होना मानना हास्यास्पद नही ताे क्या?

ब्रह्मज्ञान से मोक्ष और मोक्ष मे अनावृत्ति किस की? ब्रह्म काे बंध नही; अतः उसका मोक्ष कहना बने नही. मैं बंध, ऐसा उसकाे अध्यास कहना भूल में आ पडता है; क्योंकि ब्रह्म के ज्ञान से मोक्ष होना मानते हैं, अतः ब्रह्म मे कोई इतर ठेरा. माया अविद्या वा अंतःकरण की मोक्ष और मोक्ष से अनावृत्ति नही मान सकते; क्योंकि वे जड तथा नाशवान और बंध रूप हैं. दोनें (उपहित–उपाधि) में नही होने मे विशिष्ट मे भी असिद्धि रही.

जो उपरोक्त काे अज्ञान मे अध्यास रूप मानो ताे अध्यास पूर्व संस्कार और सादृश्य दोष के विना नही होता, तथा जिसकाे ज्ञान उसी काे संस्कार होने हैं यह

नियम है. वस्तु का ज्ञान अन्य (ब्रह्म) को और सस्कार अन्य (बुद्धि-चित्त) को, ऐसा नही होता; ब्रह्म से इतर ज्ञाता नहीं है, इसलिये अध्यास होने मे जीव चेतन (घटाकाशवत ब्रह्म चेतन) को ही सस्कार ठेराना और रज्जु सर्पवत् यथा सस्कार कल्पना करनेवाला मानना पडेगा अर्थात् सस्कार, सस्कारी की अवस्था होने से चेतन विकारी मानना होगा, परंतु चेतन तो निर्विकारी निर्विकल्प है; इसलिये चेतन असस्कारी होने से उसको अध्यास-भ्रम कहना नही बनता. ब्रह्म जगत् का सादृश्य भाव भी नहीं है; क्योंकि जड चेतन-परिच्छिन्न विभु-सक्रिय अक्रिय-दृश्य द्रष्टा इत्यादि रूप मे उभय का वैधर्म्य है, इसलिये ब्रह्म जगत् रूप से प्रतीत हो ऐसा नही हो सकता. जो 'अस्तित्व' ऐसा सादृश्य भाव मानोगे तो ब्रह्म से इतर जो माया उसको सात नहीं कह सकोगे; क्योंकि जो अनादि से भाव रूप है उसको सात कहना कल्पनामात्र है. तथाहि जीव का मोक्ष और उससे अनावृत्ति मानें तो जीव को अनादि मानते हो—जीव की उत्पत्ति नही मानते, इसलिये जब तब उनका अत आने से ब्रह्म ही रहेगा और वोह निष्फल रहेगा, परतु निष्फलत्व का अभाव है: इसलिये भी यह थीयरी नही बनती.

अब जो यह मानें कि सस्कार और सादृश्य दोष के विना भी अध्यास बनता है, जैसे कि आकाश की नीलता है; तो वोह अध्यास (अज्ञान का कार्य वा भ्रम) रूप न हुवा किंतु स्वाभाविक अवभास हुवा—अर्थात् अद्वितीय सद्ब्रह्म में उससे विलक्षण सत्तावाले (जीव-जगत्-माया) का आकाश की नीलतावत् अनादिअनत नैसर्गिक अवभास है—(और आत्मा अनात्मा का अन्योऽन्याध्यास है) और वोह व्यक्त अव्यक्त रूप होता रहता है, ऐसा सिद्ध होगा. जो यू हो तो अविद्या विद्या, अध्यारोप अपवाद, नाम कल्पना, आरोपक आरोप्य तथा आरोप, बध मुक्त, साधक साध्य साधन, शास्त्र तथा कर्तव्य, ब्रह्मजिज्ञासा और मोक्ष से आवृत्ति वा अनावृत्ति-यह सब ब्रह्माश्रित अनिर्वचनीय माया के परिणाम है अथवा माया करके उसमे स्वभावतः अवभास होता है और यह परिणाम (नाम रूप) वा यह अवभास (नाम रूप की प्रतीति) ज्ञान प्रकाश ब्रह्म मे प्रकाशित होने से और उसके तादात्म्य होने से उनका सचेत व्यवहारमय दर्शन होता है; (ऐसा ज्ञान होने से उक्त अध्यास नहीं रहता) ऐसा मान लेना चाहिये, चेतन को अज्ञान भ्रम बंध मोक्ष मानने की अपेक्षा नहीं रहती, और न बन सकती है और ऐसा है भी नहीं. ऐसा मानने से पूर्वोक्त तमाम शंकाओं का समाधान हो सकता; अन्यथा नही. अब आप कहो.

उत्तरपक्ष.

(उ.) तुम जो कुछ अपवाद करते वा मानते हो सो भी उक्त स्वाभाविक आभास में है वा माया के कार्यरूप याने विद्या बुद्धि का परिणाम है १, यथा अधिकार शैली, इस उत्तम रहस्य को तुम नहीं जान सके २, और हम आस्तिकों को श्रुति को लेके चलना है ३, इन तीन बातों को विचार के श्रुति को बाध न आवे, श्रुतियों के विरोध का निवारण हो, ऐसा सिद्धांत मान लो और चुप रहो. सो शैली उपरोक्त "ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या, जीव ब्रह्म एक" यह है श्रुति के विरुद्ध मानना नहीं चाहिये.

प्रदर्शक.

यद्यपि वेदांतदर्शन का कोई सूत्र वा कोई श्रुति शंकर श्री की थीयरी के बोधक नहीं पाये जाते— ब्रह्म चेतन को अज्ञान-भ्रम ऐसा वा माया ऐसा शब्द सूत्रों मे कहीं भी नहीं है, तथापि श्रुतियों की अर्थापत्ति से अज्ञान-माया का अध्यारोप कर के श्रुतियों के अर्थ बिठलाये हैं, उनमें विरोध न आवे ऐसी शैली भी है; इसलिये सूत्रों का अर्थ श्रुति के अनुसार करने पडने से सूत्रों के अर्थ शंकर श्री की थीयरी के अनुकूल करने पडते हैं. ऐसा ज्ञात होता है. (यहां तक केवलाद्वैत भावना वा मायावाद पूरा हुवा). †

ब्रह्मवाद.

(२) एक अद्वितीय ब्रह्म अपनी इच्छा से लीला करने वास्ते जीव जगत रूप हुवा है, वोह अविकृत परिणामी है, क्योंकि सर्व शक्तिमान विरुद्ध धर्म वाला और अन्यथा कर्ता है. ऊंच नीच रूप आप हुवा. विधिनिषेध आप बनाये और बंध मुक्त भी आप ही होता है. उपदेष्टा और श्रोता-साधक भी आप ही है; इसलिये इस सिद्धांत में कोई दोष नहीं आता.

सूत्र का भावार्थ - अब ब्रह्म जानने-प्राप्ति की इच्छा इसलिये होती है कि संसार बंधनरूप है और ब्रह्म (पुरुषोत्तम) प्राप्ति से मोक्ष होता है और मोक्ष से अनावृत्ति है ऐसा श्रुति में सुनते है.

---

† जो ब्रह्म चेतन ने अज्ञान भ्रम बिना बाजीगर (नटवी) की लीला समान अपनी इच्छा से जीव जगत् रचे हैं तो वे रज्जु सर्पवत् भ्रमविषयक न होने से किंतु सत्य उपादेय होने से इस प्रसंग के विषय नहीं हैं इसलिये इस चर्चा में उपेक्षा की है त. द. अ. ४ गत वर्णित प्रसंग ध्यान में लीजिये.

इस भावना की सहायक श्रुति हैं. (श्रुति प्रसंग अंक ६ गत अंक २ में लिखी है) शेष श्रुति और सूत्रों का अर्थ उनके अनुसार कर लिये जाते हैं.

पूर्वपक्ष.

(शं.) एक निरवयव और एक तत्व निर्विकारी स्वरूप में विरोधि धर्म नही हो सकते, या वोह अविकृत अथवा विकृत परिणाम को नहीं पाता—नहीं हो सकता. निराकार साकार और साकार निराकार नही हो सकता. उसके अंश न होने से उनका आविर्भाव तिरोभाव नहीं हो सकता. उसको व्यर्थ इच्छा या उसकी व्यर्थ लीला नहीं हो सकती; क्योंकि पूर्ण और निरपेक्ष है. जो मोक्ष से अनावृत्ति तो जब तब सृष्टिरूप लीला का उच्छेद हो जायगा जो कि असंभव है, इसलिये यह भावना अयुक्त और व्याप्ति रहित—अलीक होने से उक्त अर्थ ठीक नहीं जान पडता. त. द. अ. २ पेज ६९४ से ६९८ और ६९८ से ६६२ तक देखो.

उत्तरपक्ष.

(ब्रह्मवादि का उत्तर)—वोह सर्वशक्तिमान है, यथेच्छा अन्यथा कर्ता है, उसकी शक्ति अचिंत्य है, और श्रुति भी ऐसा ही (साकार निराकार परिणामी वगैरे) कहती है. श्रुति के सामने तर्क करना नहीं चाहिये; इसलिये चुप रहो. ब्रह्मवाद मान लो. (इति शुद्धाद्वैत—ब्रह्मवाद).

त्रिवाद.

(३) विचित्र और नियमबद्ध यह दृश्य देखते है, जीव कर्ता भोक्ता है, ऐसा सब को अनुभव है. इन परिच्छिन्नों का अधिष्ठान आधार और व्यवस्थापक—नियामक कोई होना चाहिये; इसलिये ईश्वर जीव और उपादान—प्रकृति यह तीनों अनादि अनंत हैं. जीव अणु चेतन है, ईश्वर व्यापक चेतन है जीव को अनादि से प्रकृति का संबंध है, इसलिये अनादि से बंध है. ब्रह्मज्ञान से बंध की निवृत्ति और परमानंद स्वरूप (ब्रह्म) की प्राप्ति होती है, इसका नाम मोक्ष है. मोक्ष से आवृत्ति (पुनः जन्म मरण—संसार की प्राप्ति) नहीं होती ऐसा ही श्रुति कहती हैं.

इस त्रिवाद की सहायक श्रुति अजामेका. द्वासुपर्णा. जीव नही मरता. ईश्वर के ज्ञान शक्ति और क्रिया स्वाभाविक हैं. ज्ञाता दो हैं यथा पूर्व करता है. इत्यादि अनेक हैं. (श्रुति प्रसग अंक ६ गत नं. १ के अंक देखो). अन्य श्रुतियों का इनके अनुसार अर्थ हो जाता है. उस अनुसार ब्रह्मसूत्र का अर्थ कर्तव्य है. तथा ब्रह्म सूत्र का अधिक भाग इस त्रिवाद (द्वैतवाद) के ही अनुकूल है.

सूत्रार्थ— अब–वेदाध्ययन के पीछे अधिकार प्राप्ति के पीछे ब्रह्म जानने की जिज्ञासा होती है; क्योंकि सांसारिक सुख तुच्छ हैं. और ब्रह्मज्ञान से मोक्ष (बंध की निवृत्ति और परमानंद की प्राप्ति) होती है, मोक्ष से अनावृत्ति है, ऐसा श्रुति कहती है. इसी त्रिवाद पक्ष में एक पक्षकार यूं कहता है कि मोक्षकाल मे अभ्यास करने की आवृत्ति की अपेक्षा नहीं होती इसलिये अभ्यासरूप साधना की अनावृत्ति है. वस्तुतः अमुक काल तक मुक्ति का सुख भोग के फेर संसार में जन्म पाता है.

पूर्वपक्ष.

(शं.) ईश्वर सक्रिय हो तो देश की अपेक्षा वाला होने से पर का आधेय होगा. जीव अणु चेतन में रागादि और भोक्तृत्व अवस्था होना नहीं बनता. जो प्रकृति के धर्म अपने में मान लेता है, ऐसा मानें तो भी भाव परिणाम की व्याप्ति होती है परंतु सो तत्व–अणु वा विभु चेतन में नहीं हो सकता. (विशेष तत्व. अ. ३ में लिख आये है), मोक्ष से अनावृत्ति मानें तो जब तब जीवों का अंत आ जाने से सृष्टि का उच्छेद होगा जो कि असभव है; क्योंकि ऐसा होने से ईश्वर जीव और प्रकृति निकम्मे–अनुपयोगी हो जाते हैं; परंतु निष्फलत्व का अभाव है (त. द. अ. २ सूत्र १२७ देखो). जो आवृत्ति होना मानें तो आवृत्ति होने में हेतु नहीं मिलता. जो वासना होना मानें तो मुक्त न हुवा. जो मुक्ति नहीं है ऐसा मानें तो श्रुति का विरोध आता है. जो मुक्ति से आवृत्ति मानें तो अनेक श्रुतियों के विरुद्ध हैं. तथा वारंवार ब्रह्म की जिज्ञासा करनी पडेगी, ऐसा मानना हास्यास्पद नहीं तो क्या!

यद्यपि ब्रह्मसूत्रो मे अविकृत परिणामवाद के सहायक सूत्र बहुत कम है और विवर्त्तवाद का सहकारी तो एक भी नहीं है. प्रत्युत त्रिवाद (द्वैतवाद) के अनुकूल तमाम सूत्र हैं, तथापि सूत्रो की मूल जो अद्वैत बोधक श्रुति उनका विरोध द्वैतवाद से निवारण नहीं होता.

उत्तरपक्ष.

(उ.) जो अद्वैत मानोगे तो वेदादि और ब्रह्म की जिज्ञासा बोधक सूत्र अर्थ वाले नही ठेरेंगे; तथा व्यवहार–कर्म–उपासना–बंध–मोक्ष की अव्यवस्था रहेगी. शुद्ध मुक्त ब्रह्म का ऊंच नीच परिणाम मानना वा वेदादि को मिथ्या मानना आस्तिकों को उचित नही है. श्रुति अद्वैत पर नहीं किंतु द्वैत पर है: अतः श्रुति पर तर्क

(स्वरूपाप्रवेशादि) करना नही बनता किंतु श्रुति के अनुसार मान लो, और चुप रहो. (यहां तक द्वैत भावना वा त्रिवाद पूरा हुवा).

यहां तक जो कुछ लिखा है उसका आशय यह है कि वेदांतदर्शन के भाष्यकारों का उद्देश ज्ञात हो. वस्तुतः हमको यहां विवाद दिखाने में प्रयोजन नही हैः इसलिये जेसा जाना सुना वेसा सार सार कहा है.

अकलाद्वैत (अपलाद्वैतवाद).

महात्माओं के संग मे साधु समागम में से एक अनोखी प्रकार का अध्यारोप अपवाद ज्ञात हुवा, जिसका नाम अकलाद्वैत है. जो कि यह थीयरी सब प्रकार के द्वैतवाद और अद्वैतवाद की एकवाक्यता करती है और अंत में एक अद्वितीय ब्रह्म की बोधक है इसलिये यहां टांकते हैं.

जीव पूर्व पूर्व के प्राप्त संस्कार और उपदेश श्रवणवश ऐसा समझने लग जाता है कि सत्कर्म और उपासना (ईश्वर भक्ति) करने से यहां और परलोक मे सुख होता है, इसलिये कर्म उपासना में प्रवृत्त होके सुख भोगता है. ऐसा होते होते जब अनेक जन्मों में इसकी शुद्धि हो जाती है तब उसको विवेक वैराग्य उत्पन्न होता है, इस लोक और परलोक के सुखों को भी नाशवान और दुःखरूप तथा तुच्छ जानता है, तमाम ससार साररहित मानता है. और अनेक जन्म प्राप्त विशेष ज्ञान द्वारा किंवा श्रुति द्वारा ऐसा समझने वा मानने लग जाता है कि जीव मुख्य तत्त्व (ब्रह्म) की प्राप्ति याने ब्रह्म के ज्ञान होने से संसार के दुःख से छूट जाता है– पुनर्जन्म को नही पाता.

व्याससूत्र के उपक्रम उपसंहार का अर्थ.

अब (उक्त अधिकार प्राप्ति के पीछे) ब्रह्म जानने की जिज्ञासा कर्तव्य है; क्योंकि ससार का फल तुच्छ है. ब्रह्म के ज्ञान होने पर सांसारिक दुःखों की निवृति याने मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् पुनः जन्म मरण के चक्कर में नहीं आता. पुनरावृत्ति नही होती, ऐसा सुना है ४।४।२२.

इसका सार यह है कि जब साधन करता हुवा विवेकख्याति पर जीव पहुंच जाता है अर्थात् वृत्तिव्याप्ति (जीववृत्ति आकाशवत् ब्रह्माकार होना) हो जाती है तब मूल अधिष्ठान उसमे स्वयं प्रकाश होता है, उससे जीव को अपूर्व ब्रह्मानंद होता है ऐसा हुये चिद्ग्रंथी–(जीवग्रंथी) भंग हो जाती है, अहंत्व ममत्व का अभाव हो जाता है, कोई प्रकार की कामना वासना नहीं रहती; इसलिये उस जीव का आगे

की अर्थापत्ति से यह जान पडता है कि सर्व शक्ति (माया) वा महेश्वर तंत्री (माया शक्ति वाला) याने ब्रह्म का स्वभाव है कि पूर्व पूर्व सृष्टि के नियमित आकारों के अनुसार स्फुरण हो और उस अनुसार उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय हो, ऐसा प्रवाह है. उसकी महिमा के बोधार्थ उसके स्वाभाविक स्फुरण को उसकी इच्छा-ईक्षणा मान ली जाती है जैसे कि श्रुति से कहा है. वस्तुतः जैसे स्वप्न सृष्टि में तंत्री द्वारा मात्र रूप नाम रूप उत्पन्न स्थित और नाश होने हों वैसे होते हैं

कल्पना की, तो प्रथम तो विभु चेतन में इच्छा कल्पना होना असंभव है किंतु निर्विकल्प ही सिद्ध होगा: और जो भाव परिणाम (शब्द विना इच्छा होना वा शब्द विना कल्पना होना वा शब्द विना कुछ मान लेना) माना तो सावयव ठेरेगा, परंतु ऐसा नहीं है किंतु अपरिणामी है, इसलिये आत्मा-ब्रह्म को कल्पना नहीं मान सकते. जो हठ से मानें तो अमुक प्रकार के आकार होने की कल्पना होगी अर्थात् उसमें संस्कार सिद्ध होंगे कारण कि जब तक आकार उसके विचार में नहीं हो वहां तक आकार कैसे बना सकते हैं? नहीं ही. जो संस्कार के विना होना मान लेवें तो अभाव से भावरूप होना मान लेना पडेगा, और सादिसांत होगा. अतः यह मानें कि यथा पूर्व सृष्टि रची है (सृष्टि रूप हुवा) और रचेगा, तो पूर्व के संस्कार मानने से ब्रह्म परिणामी ठेरेगा, क्योंकि संस्कार एक प्रकार की अवस्था होती है जो संस्कारों का भेदरूप मानें तो ब्रह्म से इतर नहीं, इस भावना का उच्छेद हो जायगा. (यहां त. द. पेज १००२ से १००९ तक देखो).

(प्र. ३) ब्रह्म देव सृष्टि की उत्पत्ति अजा (अनादि) त्रिगुणात्मक प्रकृति में से अनादि जीवों के कर्मानुसार करता आया है और यथा पूर्व करेगा, ऐसे उत्पत्ति स्थिति और लय का प्रवाह है. ऐसा क्यों न माना जाय? (उ) उससे इतर जीव जगत का उसके स्वरूप में प्रवेश नहीं हो सकता (त द. २।२८२). कर्मानुसार करने से सापेक्ष और परतंत्र ठेरेगा. जो निरपेक्ष मानें तो अपनी इच्छा से अभाव में से भावरूप सृष्टि (जीव जगत) की होगी तहां क्यों की? इसके उत्तर में कुछ गर्ज वाला ठेरेगा; क्योंकि वोह निरर्थक काम नहीं करता. अतः यह आरोप ठीक नहीं जान पड़ता.

(प्र. ४) ब्रह्म चेतन को अनादि से स्वरूप का अज्ञान है (अज्ञान से आवृत्त है) उस अज्ञान शक्ति वश रज्जुसर्पवत् सृष्टि कल्पता है याने नाम रूपात्मक जगत

अब संक्षेप में उत्पत्ति कहते हैं.

(१) रागादि गुण वाले अनेक परिच्छिन्न ऐसे जीव के जो कर्ता भोक्ता होने योग्य हों ऐसे बने वे कर्म करने में स्वतंत्र फल भोगने में परतंत्र हुये. (२) तद्वत जगत के उपादान पंचतत्व याने जिसे प्रकृति (माया) कहते हैं सो बनी. इससे भोग्य शब्दादि पदार्थ अर्थात् तमाम ब्रह्मांड बन सकता है इसकी और पूर्वोक्त जीव की गति से काल का भाव पैदा हो गया. (३) तीसरा एक ईश्वर (व्यक्ति) बना जो के सृष्टि की उत्पत्यादि यथा कर्म करता रहे. यह ईश्वर जीव प्रकृति की अपेक्षा से

अर्थ शून्य (अजात) है, परंतु कल्पित नाम रूप आकार उसके स्वरूप के (रज्जुसर्पवत) विवर्त्त हैं. अतः अपने स्वरूप को ही जगत (जीव, प्रपंच) रूप में देखता है (भ्रांति है) स्वरूप के ज्ञान हुये उस अध्यास (भ्रम) की निवृत्ति होके मोक्ष को पाता है, ऐसा क्यों न माना जाय? (उ) त. द. अ. ३ पेज ७१९ से ७८१ तक वाले दोष आते हैं इसलिये यह अध्यारोप ठीक नहीं.

(प्र. ५) जैसे बाजीगर अपनी माया शक्ति से अन हुये पुरुष वगैरे कल्पते हैं, वे अन्यों को दीखते हैं ऐसे ही आत्म देव ने अपनी शक्ति के योग से यह मिथ्या (प्रतीतिमात्र) जगत रचा है और आप ही लय करता है, अतः नाम रूप जगत वस्तुतः अर्थ शून्य (अजात) है, ऐसी लीला क्यों न मान ली जाय? (उ.) बाजीगर वगैरे की जो दृश्य रमत हैं वे उपादानजन्य होती हैं क्योंकि असत से भावरूप नहीं कल्पी जा सकती (त. द. अ ४ पेज १००५ से १००९ तक देखो) और निष्प्रयोजन लीला करने का कोई हेतु नहीं निकलता अतः यह अरोप ठीक नहीं.

(प्र. ६) आत्मा और अनात्मा (माया) यह दोनों अनादि पदार्थ हैं. अनात्म सदसद से विलक्षण (मिथ्या) है और त्रिगुणात्मक है, सो आत्मा की शक्ति है. यह अनात्मा आत्मा की इच्छा से अविद्या रूप परिणाम को पाता हुवा और वही आत्मा अपनी इच्छा से अविद्या में अहंरूप से प्रवेश करता हुवा. ऐसा सो परमेश्वर आकाशादिकों को करता भया. उसमें अष्टपुरी करता हुवा, चेतन उसमें भी है. सो अष्टपुरी यथा कर्म जन्म को पाती है कर्ता भोक्ता है जब इसको (जीव को) मैं ब्रह्मस्वरूप हूं, ऐसा ज्ञान हो जावे तब मुक्त होना है पुनः जन्म को नहीं पाता. ऐसा क्यों न माना जाय? (उ) माया अविद्या कल्पित नहीं और त्रिगुणात्मक अनादि अतः अनादि अनंत

व्यापक और ब्रह्म की अपेक्षा से परिच्छिन्न--अवर है उसको तमाम जीव, प्रकृति, और उनके गुण कर्म स्वभाव का ज्ञान है, उसमें इच्छा प्रयत्न गुण है और वोह जीव प्रकृति पर यथायोग्य काबू रखसके ऐसा उत्पन्न हुवा. (७) अकल ब्रह्म इन सब मे आप बाहिर भीतर व्यापक होके रहा हुवा है, उनसे भिन्न स्वरूप है. (८) इतना होने पर आप उपराम हो जाता है. (९) जब सब जीव मोक्ष होने पर अभाव मे लय हो जायगे, तब प्रकृति नाकाम होने से माया मे लय हो जायगी और ईश्वर के इच्छा प्रयत्न तथा ज्ञान का उपयोग न होने से ईश्वर का भी लय हो जायगा. इसका नाम महाप्रलय है. अंत में आप पूर्ववत् वोह आप एकला (अद्वितीय) ही रहेगा

ठेरी. ब्रह्म ज्ञान स्वरूप में इच्छादिका होना असभव, यह उपर कहा है क्योकि निर्विकल्प है. इच्छा उत्पन्न होने में कोई प्रबल सयुक्त हेतु नही मिलता अविद्या म प्रवेश करने पीछे जो जगत् कल्पा मो यदि ज्ञानपूर्वक कल्पा तो वोह अर्धशून्य वा भ्रमरूप नही, किंतु उसका उपादान अनात्मा की उपलब्धि माननी होगी. और अष्टपुरी के आवागमन से व्यापक चेतन बधमुक्त (अहत्व अनहत्व) होता रहेगा. मोक्ष की अव्यवस्था रहेगी, कारण कि अष्टपुरी (अतःकरण) तो जड सादिसात है, उसका मोक्ष होना बने नही अतः शब्द साधन निष्फल होगे और त. द. पेज ६९४ तक वाले दोष आवेंगे; अत ऐसी लीला का आराप ठीक नही बेठता.

और जो अविद्यावश हुये (अज्ञान मायावश हुये) रज्जु सर्पवत् जगत् कल्पी तो त. द. पेज ७६९ से ७८१ तक वाले दोष आवेंगे. कुछ व्यवस्था न होगी. तथाहि ज्ञानपूर्वक वा अविद्यापूर्वक कल्पा गई तो उसका आदिकाल और अतकाल है वा नही? यथा पूर्व कल्पी वा तदन्य नवीन ही कल्पा? यदि यथापूर्व कल्पा तो उत्तर में भी कल्पता रहने से जगत् प्रवाह से अनादि अनत ठेरी अर्ध शून्य नहा. और जो यथापूर्व नही तो उसमे पूर्व निष्फलत्व की आपत्ति होती है और भी त. द. पेज ६९८ से ६९८ तक वाले और ७६९ से ७८१ तक वाले दोषो का निवारण न होगा और यदि लीला रूप मानें तो उपरोक्त लीला वाले दोष आवेंगे. और सब उसी की कल्पना-लीला होने से प्रतिपक्षियो का सिद्धात भी मान लेना होगा जो कल्पित आकाशों में गति तो देश काल वस्तु की आपत्ति हो जाने से स्वरूप अप्रवेश का नियम प्रतिबधक होगा और जो गति नहीं तो दृश्य-जगत् स्वभावतः अवभास रूप है ऐसा मानना होगा कल्पित नही; जो माया वा जगत् को ब्रह्म से विलक्षण सत्तावाली मानें तो भी गति वाला सवाल आ खडा होगा

(७) फेर पूर्ववत् नई सृष्टि-त्रिवाद रूपसृष्टि (भोक्ता भोग्य व्यवस्थापक) रची जायगी; क्योंकि ऐसे करने वा होने का उसका स्वभाव है (यहां स्वप्न सृष्टि के त्रिवाद समान समझ लीजिये). इस प्रकार उस अद्वैत तत्व का उपयोग होता है और आप वोह शुद्ध (अमल) स्वरूप रहता है.

व्यापार

इस प्रसंग में जीव के अणु, वा मध्यम कहने की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि उसकी शक्ति द्वारा परिच्छिन्न तत्व बना है. जीवों को प्रकृतिपुंज में छोड दिया

अतः जो गति नहीं तो नभकी नीलतावत् माया करके स्वाभाविक अवभास है, ऐसा सिद्ध होगा. जो यह कहोगे कि माया स्वतंत्र है तो उत्तर मिलेगा कि नहीं. चेतन की सत्ता से उसके स्वभाव-संस्कार का उपयोग होता है, स्वप्नवत्. अर्थात् माया का स्वभाव है कि यथा संस्कार नामरूपात्मक भासे और वे चेतन के विवर्त्त होगे. इसलिये ब्रह्म की कल्पित नहीं किंतु मायावी (तंत्री) के द्वारा स्वप्नवत् उत्पत्ति लय प्रतीत मात्र है, यह सिद्ध होगा.

(प्र. ७) उत्पत्ति स्थिति लय देखते हैं. सृष्टि ब्रह्म का स्वभाव है, क्योंकि उसको कोई प्रकार की इच्छा नहीं है. आत्मदेव आप में अपनी माया से आप कर के आपको आकार वाला (जगत्‌रूप) कल्पता है. और वोही इन भेदों को जानता है. उस अपनी माया से यह आत्मा आपही मोहित होता है. जैसे स्वप्न और माया देखते हैं वैसा यह जगत् है चित्त का स्फुरणमात्र वा मन की कल्पना मात्र द्वैत है स्वप्नवत्‌ा असत् पदार्थ का माया वा तत्त्व (चेतन) से जन्म नहीं होता अज सांत नहीं होता और सांत अज नहीं होता, ऐसे प्रकृति (स्वभाव) भी अन्यथा नहीं होती. उत्पत्ति लय, बंध-मोक्ष मुमुक्षु वगैरे परमार्थतः नहीं हैं, ऐसा क्यों न माना जाय?

(उ.) यह थीयरी सुयुक्त है. उसका सार यह है कि माया शक्ति वाला ईश्वर (तंत्री) अनादि अनंत है. जैसे स्वप्न में स्वप्न के तंत्री द्वारा यथा संस्कार सृष्टि कल्पाई जाती है—नामरूप दृश्य होते हैं और लय होते हैं, ऐसा प्रवाह है; वैसे ही यह मायामात्र द्वैत है और उत्पत्ति लय रूप दर्शन का प्रवाह है. परंतु माया में मोहित हुवा, उस करके कल्पता है, इतना अंश ठीक नहीं है क्योंकि जो ऐसा मानोगे तो ज्ञान स्वरूप निर्विकल्प न ठैरेगा और पूर्वोक्त (त. द. पेज ७६९ से ७८१ वाले) दोष आवेंगे. निदान यह दृश्य तंत्री (मायावी प्रभु का) दृष्टिसृष्टिवाद है, और यथा संस्कार

गया तो वे अपनी प्राप्त योग्यता अनुसार उसको भोगने लगे (परमाणु तत्वों के साथ संबंध हो के फॉर्म-ईफेक्ट्-असर इत्यादि परिणाम हुये) वहा से जीव को विकास क्रम में चलना पडा. फेर ईश्वर ने उनके विकास के कायदे के अनुसार उन जीवों के कर्म फल भोगने वास्ते तथा उनको योग्यता का उपयोग हो इसलिये सूर्यचंद्रादि मन, इंद्रिय शरीरादि और नाना प्रकार के बीज एवं तमाम सृष्टि बनाई, उसमें जीव यथा कर्म अनेक प्रकार को योनी को पावता स्वर्ग नरक को भोक्ता हुवा जन्ममरण के चक्र मे रहने लगा. जब निमित्तवश जो ग्रह जीव रहित हो गया तब उसका शनैः २ प्रलय हो के उसके मेटर का भाग विभक्त हो के दूसरे गोले बनते गये. इस प्रकार उपचयापचय का प्रवाह चलता रहता है. जब सब जीव मोक्ष हो जायंगे तब उपर कहे अनुसार महा प्रलय हो जायगी. और पूर्ववत् सृष्टि होगी. इसीमें दूसरा पक्ष यह है कि जब जीवो के कर्म भोगने वास्ते सन्मुख नही होते उस समय मे ईश्वर, कल्प प्रलय करता है, और फेर सृष्टि के आरंभ में जीवो को वेद द्वारा विशेष ज्ञान का उपदेश करता है, ऐसे कल्प का प्रवाह है; जब सब जीव मोक्ष हो जायंगे तब उपर कहे अनुसार महा प्रलय होगी. उपचापचय पक्ष मे ग्रह उपग्रह को प्रलय है

स्वभावतः पूर्व पूर्व मे होता आया है और भविष्य में होता रहेगा, ऐसो स्वाभाविक अवभास है; क्योकि तत्री का ऐसा ही स्वभाव है, तत्री के बिंदुमात्र में वा बिंदु विना बडे बडे देशकाल वस्तु वाली सृष्टि है, यही अदभुतता है. वोह द्रव्य त्रिवाद (जीव, जगत, व्यवस्थापक) रूप होता है और अव्यक्त काल मे सुपुप्तिवत तंत्री रूप हो जाता है

जो तत्व दर्शन के पेज १९८ मे १९३ तक. १९७ से १९८ तक. १०-०९ मे १००९ तक ७९५ मे ७८१ तक और ९८७ से ९९३ तक विचारोगे तथा भावनासामान्य (ईश्वरादि विषय प्रकरण) पेज ९७१ मे ९८१ तक पर ध्यान दोगे तो इतना ही सिद्ध होगा "कि शक्ति मान—मायावो महेश्वर—तंत्री (प्रभु) अद्वितीय है और उसको शक्ति-माया विचित्र अनिर्वचनीय है नाम रूप द्रव्य (त्रिवाद) उस तंत्री द्वारा कल्पे जाते हैं (जेसे स्वप्न के हैं वेसे) वोह तंत्री अद्वैत है परंतु अकलाद्वैत है

अद्वैतवाद मे अनेक थीयरी है, वे अध्यारोप अपवाद रूप हैं अर्थात निषेधनीय ही है, ऐसा नही है, उनसे उत्तम थीयरी यह अकलाद्वैत है; जिसका मुख्य मान श्री गोडपादाचार्य या श्री शंकराचार्य जी को है क्योकि इसका मूल उनकी थीयरी है.

और अत मे महा प्रलय है. दूसरे पक्ष मे महा प्रलय पूर्व तमाम ग्रह उपग्रह की कल्पप्रलय होना माना है, पीछे अत में ईश्वर सहित महाप्रलय होती है. दोनो पक्ष मे इतना अन्तर है. उभय पक्ष मे सिद्धात की हानी नहीं है.

उपरोक्त भावना (अभाव से भावरूप त्रिरूप होना) की सहायक अनेक श्रुति है उनमें से कितनी ही उपर लिखी है. शेष श्रुति और ब्रह्म सूत्रों का अर्थ उनके अनुसार कर लेना चाहिये, क्योकि हो सकता है. यथा "शरीर मरता है जीव नही मरता" यहा सृष्टि काल मे कहा है, यह भाव है. इत्यादि इत्यादि.

जेसे स्वप्न सृष्टि पूर्व उत्तर मे नही, वर्तमान में भावरूप और उपलब्ध होती है वेसे उक्त सृष्टि (त्रिवाद) पूर्वोक्त मे नही और वर्तमान में भावरूप उपलब्ध होती है. जेसे स्वप्नसृष्टि अधिष्ठान (द्रष्टा) की विवर्त्त है वेसे यह सृष्टि ब्रह्म की विवर्त्त है. जेसे रज्जु मे सर्प पूर्व उत्तर मे नही और वर्तमान में प्रतीति का विषय है, ऐसे यह त्रिवादरूप ब्रह्माड है, जेसे स्वप्नसृष्टि और रज्जु सर्प उनके अधिष्ठान के बाधक वा उसमें विकार करने वाले नहीं होते; क्योकि वे पूर्व उत्तर में नही तथा वर्तमान मे है ऐसे अधिष्ठान से विलक्षण प्रकार के है उनको पूर्व उत्तर में भावरूप और वर्तमान मे अभावरूप नही कह सकते. इसी प्रकार का यह ब्रह्माड विलक्षण है; ब्रह्म के बिंदु देश मे वा कहा है ऐसा नहीं कहा जा सकता. क्योकि देश काल उत्तर में होते है, अतः देश काल रहित देश काल वाला है जो इसको अर्थशून्य मानते है वे और जो इसे ब्रह्म जेसा वा ब्रह्म मे उसका मेल (सबंध) मानते है वे तत्त्व पर नहीं है. *

शका समाधान.

(शं.) असत् मे सतरूप, अभावरूप मे होना असभव; अतः उक्त भावना ठीक नही

* माया वा अविद्या कल्पित नामरूप और इस अभाव कल्पित में इतना अतर है कि मायावाद में चेतन अमल नहीं किंतु अविद्या वाला है अविद्या गये और स्वरूप का ज्ञान हुये अमल होता है. इस अकल्पाद्वैत मे हमेशे अमल (अविद्या रहित) रहता है मायावाद में दृश्य रज्जु सर्पवत् शब्दमात्र है याने अभाव अभावरूप है और अकल्पाद्वैत में दृश्य (जीव, ईश्वर प्रकृति) स्वप्नवत् अर्थवान है याने अभाव भावरूप है क्योकि स्वप्नवत् उपलब्धि होती है मायावाद में दृश्य कल्पित माया-अविद्या अज्ञानवत् है अकल्पाद्वैत में वैसा नही है सिद्धात में दोनों मिल जाते है क्योकि परमार्थत एक ब्रह्म ही है अर्थात पूर्व उत्तर म दृश्य न होने से केवलाद्वैतवाद मानते है तथा उभय पक्ष में ब्रह्म में शक्ति (माया) का स्वीकार होने मे शक्ति को अनादि अनत मानना पडता है

(उ.) निरवयव विभु का परिणाम होना वा गति में आना असत् है, परं पक्षकार मानते हैं १. एक का अनेक रूप होना असत् है, परंतु पक्षकार मानते हैं २. एक और विरुद्ध धर्म आश्रय यह पक्ष असमीचीन है, परंतु पक्षकार मानते हैं ३. माया और जगत सत से अन्यथा याने अर्थशून्य (असत्-अजात) मान के उसका परिणाम यह दृश्य, ऐसा मानना अयुक्त है; परंतु पक्षकार मानते हैं ४. ब्रह्म चेतन वा उपहित (अवच्छिन्न चेतन) को अज्ञान, भ्रम-अध्यास होना असंभव है, परंतु पक्षकार मानते हैं ५. विभु ब्रह्म संस्कारी वा इच्छावाला नहीं हो सकता, परंतु पक्षकार मानते हैं ६. एक ब्रह्म स्वरूप में दूसरे स्वरूप का प्रवेश नहीं हो सकता, परंतु सब द्वैतवादि ऐसा मानते हैं ७. सत् से विलक्षण भावरूप माया उसमें है, वोह यथा पूर्व कल्पता है अर्थात् संस्कारवाला है याने संस्काररूप अवस्था को पाता है वा उसमें संस्कार पाने वाला मेटर रहता है ऐसे स्वरूप प्रवेश मानते हैं ८. सत्य की उत्पत्ति व्याघात, परंतु पक्षकार मानते हैं ९. वर्तमान में दो अर्बुद के आसरे मानव मंडल हैं उनमें से ९० किरोड तो अभाव से भाव की उत्पत्ति मानते हैं. अन्यों में नाना मतभेद हैं. १०.

अब यदि सर्वज्ञ (त. द. अ. २।४१०. अ. ४ ४।१७९) शक्तिमान (त. द. ४।१८१) अन्यथा कर्ता (जीव-योगी अयोगी की दृष्टि से अन्यथा कर्ता) परमात्मा नाम रूपों को स्वप्नसृष्टिवत् भावरूप उत्पन्न करे किंवा उसकी अचिंत्य शक्ति द्वारा ऐसा होता हो तो वा भासने लगे तो उसमें क्या आश्चर्य करना. क्योंकि वोह और उसकी शक्ति अकल है वोह शक्तिमान अद्वितीय है; तो भी द्वैत रूप भासता है, उसका अद्वैतपना कल में नहीं आता. इसलिये वोह अकलाद्वैत है और वोह आप अमल है, तथा उसकी ज्ञान शक्ति के भाव में पूर्व पूर्व से जैसा था उसके अनुसार यह नक्शा (त्रिवाद) बना है. स्वप्नसृष्टि में वैसा कौनसा मेटर है कि जिसमें से तम प्रकाश शीतोष्णादि विरुद्ध पदार्थ बन के उपलब्ध होते हैं? किंतु यथा संस्कार (तुम्हारी शून्य अविद्याकल्पित वा शून्य माया में से) बन जाते हैं अर्थात जब स्वप्न वाले जीव में ऐसी सामर्थ्य है तो फेर अकल अद्वैत परमात्मा की शक्ति द्वारा प्रस्तुत त्रिवाद बने इसमें क्या आश्चर्य करना. सारांश शक्तिमान तंत्री द्वारा उपर कहे अनुसार यह दृश्य बना है.

जैसे अन्य पक्षकार व्याप्ति रहित भावना से कुछ मान लेते हैं वैसे उनसे अच्छा याने (वर्णाश्रम के व्यवहार का और नीति मर्यादा का व्यवस्थापक) यह

अकलाद्वैत मान लो, और चुप रहो. नहीं तो ईश्वरीय ग्रंथ की यथावत् व्यवस्था नहीं होगी तथा अन्य अनेक अव्यवस्था होगी. (त. द. अ. ७ गत त्रिवाद देखो).

जितने प्रकार के अद्वैतवाद (क्षणिकाद्वैत, शुद्धाद्वैत, विवर्त्ताद्वैत – मायावाद विलक्षणाद्वैत, अवभासाद्वैत, बाधवाद) हैं उन सब में जितने दोष आते हैं उनसे न्यून दोष वाला यह अकलाद्वैत है, उनमें जितनी क्लिष्ट कल्पना करनी पडती हैं वेसी इसमें नहीं हैं, पूर्व उत्तर विना का संकल्पमात्र (वाचारंभनमात्र) हो ऐसी भावना हुये भी उत्तम व्यवस्थापक वाद है.

(शं.) अभाव से भावरूप होना बुद्धि नहो कबूल करती (उ.) जरा तटस्थ हो के विचारो; जितने अद्वैतवाद हैं, उनमें कौनसा निर्दोष है? कोई नहीं. सब भावनात्मक ही हैं. तो फिर द्वैत के तमाम व्यवहार नीति का निर्वाहक और पूर्वोत्तर केवलाद्वैत – ऐसा यह उत्तम सिद्धांत क्यों न मान लिया जाय. स्वप्नसृष्टि अभाव से नहीं होती ऐसे ही यहां है.

(शं.) यह सिद्धांत वेदांत नहीं, क्योंकि वोह वेदांत में अभाव से भाव होना नहीं मानता है, (उ.) यह सिद्धांत ज्ञान का सार होने से वेदांत है. वेद में कहे हुये कर्म उपासनादि की व्यवस्था सूचक है, वेदानुकूल है क्योंकि सृष्टिकाल संबंधी नीति–धर्म बोधक और सिद्धांत बोधक श्रुतियों का विवेक करें तो वेद से विरुद्ध नहीं होगा. हां, संप्रदायी वेदांत नहीं है

(शं.) इस भावना में जीव परतंत्र रहता है, बंधमोक्ष नहीं बनता; और दे हों तो भय हो, ऐसा भाव रहता है (उ.) त्रिवाद से इतर कोई पक्ष में भी जीव स्वतन्त्र नहीं है. ब्रह्मवाद, मायावाद, क्षणिकवाद में भी बंध मोक्ष की व्यवस्था नहीं होती (आगे वांचोगे), मन माने तरंग उठाने से शांति नहीं होती. जहां तक मन है वहां तक द्वैत नहीं जा सकता; इसलिये यह अकलाद्वैत ही औरों से ठीक है. व्यवहार में द्वैत है, पूर्वोत्तर में केवलाद्वैत है.

यह अकलाद्वैत पुराण जेसा नहीं है, क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उत्पत्ति तथा जीव की उत्पत्ति में वे अभिन्न निमित्तोपादान मानते हैं; ब्रह्म चेतन के कर्ता भोक्ता मानते हैं अकलाद्वैत में ऐसा नहीं माना है. यह अकलाद्वैत, जरतोश्त के अवस्ता, मूसा के तोरेत, इसु की इंजील, नबीमुहम्मद की कुरान जेसा नहीं है; क्योंकि उनमें पुनर्जन्म नहीं है और बंध मोक्ष को ईश्वर की इच्छा के आधीन माना है, नित्य स्वर्ग वा नित्य नरक का विधान है; परंतु अकलाद्वैत में ऐसा नहीं मान

सकते. व्यवहार में (सृष्टिकाल में) तो उपनिपदो के अनुकूल ही हैं; परंतु जो उक्त श्रुतियो के विरुद्ध उपनिपद की श्रुतियों का अर्थ करें तो मुख्य सिद्धांत (केवलाद्वैत) में कहीं कहीं विरोधाभास जान पडेगा; सो निवारणीय है. उपनिपद जैसे ग्रंथ और उपनिपद् पूर्वोक्त ईश्वर भक्तों द्वारा यथा देश काल होते रहते हैं.

इस अकलाद्वैत मे ईश्वर के लोक (वैकुंठ स्वर्गादि) की प्राप्ति, उसका सामीप्य और सायुज्य यह ३ मुक्ति सादिसात मानी गई है, उनसे आवृत्ति होती है. सारुप्य (ईश्वर जेसा व्यवस्थापक) मुक्ति का अस्वीकार है.

(शं.) इस भावना में जीव, प्रकृति तथा जीव को ब्रह्मवत् सत् मानें वा असत् मानें वा इनसे विलक्षण मानें? (उ.) इसीका नाम अकलाद्वैत है; तीनो समसत्तावाले और ब्रह्म से विलक्षण सत्ता वाले अन्यथा रूप हैं; वंध्या पुत्रवत् असत् और ब्रह्मवत् सत् रूप नहीं किंतु तम वा नीलतावत् बाधरूप है (बाध के लक्षण उपर कई जगे लिखे हैं), और हम उस अकल को नहीं पहुंच सकते; इसलिये दूसरे अन्य भावना से उत्तम भावना अर्थात् उस अकल शक्तिमान द्वारा रचाया हुवा त्रिवाद हम मानते हैं जेसा कि उपर अ. ४ में कहा है.

(शं.) जो अकल ब्रह्म में इच्छा, संस्कार हो तो विकारी ठेरेगा. और यथा पूर्वमकल्पयत हो तो इच्छा संस्कार वाला ठेरा. अर्थात् ब्रह्म विकारी होने से यह भावना त्याज्य है. (उ.) जेसे स्वप्नसृष्टि मे चेतन, निरीह और असंस्कारी है; परंतु तद्विशिष्ट जो अंतःकरण (अविद्या-माया शक्ति) सो इच्छा प्रयत्न संस्कार वाला है. इसी प्रकार यहां ब्रह्म चेतन अमल है, शक्ति में इच्छादि हैं वा इच्छादि शक्ति हैं; अतः अमलाद्वैत का बाध नहीं होता और वोह तथा उसकी शक्ति अकल है; इसलिये अकलाद्वैत सिद्ध रहता है.

(शं.) उस द्वारा अभावन त्रिवाद ही क्यो? ईसराइल्ली मत जेसा जगत् ही अभावजा क्यो न हो?इ. (उ.) अन्य पक्षो मे पुनर्जन्मादि की व्यवस्था और सृष्टि के व्यवस्थापक का निर्दोप व्यवहार सिद्ध नहीं होता तथा जीव का मोक्ष वा पुरुपार्थ परतंत्र रहता है, (जेसा कि उपर कहा है), इसलिये त्रिवाध की भावना ग्राह्य होती है. तथाहि व्याप्ति में भी तीनो का भान और पुनर्जन्म सिद्ध होता है, इसलिये त्रिवाद मानना पडता है.

(शं.) इस अकलाद्वैत में जीव का अभाव होना मोक्ष माना है, परंतु अपना अभाव कोई नहीं चाहता; इसलिये कर्म उपासना में अथवा मोक्ष के साधन विवेकादि

तथा स्वरूप ज्ञान में प्रवृत्ति नहीं हो सकती. (उ.) अज्ञान से वा भ्रम से वा अन्यथा मानो परंतु शारीरिक वा मानसिक दुःख तो सब को होता है. जीव को भावना में कैसा भी (अणु चेतन विभु चेतन वा मध्यम जन्य, अजन्यादि) मानो, परंतु शरीर (स्थूल सूक्ष्म शरीर वा मन) होने तक उसको दुःख (सुख का परिवर्तन और दुःख का आगमन) अवश्य होता है. जिसको दुःख सुख है और जो उसकी निवृत्ति चाहता है, उसको उपदेश है वोह क्या? सो परीक्षा से ज्ञात हो सकता है. अतः दुःख निवृत्ति के साधन कर्मादि में प्रवृत्ति अवश्य होनी चाहिये. यदि रागादि वाले का अभाव होना ही है तो अनिवार्य है और जो वोह अविनाशी है तो ज्ञान होने से विशेष लाभ होगा. इसलिये भाव अभाव की कल्पना करना साधक को अनावश्यक है. विवेकख्याति करके देख ले, जैसा होगा वैसा जान पडेगा. फेर उसमे आगे विशेष मिले तो उसको संपादन करे. जो सतकर्मादि में प्रवृत्ति न करेगा तो अवश्य दुःखी रहेगा. रहा ज्ञानमार्ग उसके संबंध में यह है कि जिसको सत्य की जिज्ञासा न हो वोह कर्म उपासना करता रहे, उससे यहां प्रेयस् और वहां सालोक्य, सामीप्य और सायुज्य मुक्ति का सुख बहुत काल तक भोगेगा; पुनः संसार में आवृत्ति होगी, ऐसे प्रवाह रहेगा. अंत में जब तब विवेकादि उत्पन्न हो के उक्त परिणाम निकलेगा. अतः ज्ञान मार्ग वास्ते आग्रह नहीं है. जिसको ब्रह्मानंद लेना हो वोह करे, अन्य को उसकी अपेक्षा नहीं है.

अब मोक्ष संबंधी विचार करें. (१) जो मोक्ष से आवृत्ति मानते हैं उस समान इस पक्ष में सालोक्यादि हैं. अतः कर्म उपासना में प्रवृत्ति होनी चाहिये तथा उनकी मोक्ष एक प्रकार की अवस्था है, उसका अंत हो के पुनः संसार याने दुःख के चक्कर में आना पडेगा; अतः वोह मुक्ति मुक्ति नहीं. (२) जो परिच्छिन्न वा विभु जीव को मुक्ति से पीछा नहीं आना मानते हैं सो असंभव है (अ. ३ मुक्ति प्रसंग पेज ६६१ देखो), अतः उनका भी आवृत्ति पक्ष है और उक्त परिणाम (दुःख के सागर में आना) जानना चाहिये. (३) जिस पक्ष में जीव की उत्पत्ति मानी है वोह पक्ष मुक्ति वास्ते कुछ भी माने, अंत में उसको "जीव का अभाव यही दुःख से छूटना" मानना पडेगा. (४) जडवादि समान जीव का मरण यही मुक्ति ऐसा मानें सो इस अकलाद्वैत पक्ष में नहीं बनता, क्योंकि जहां तक अपना और अपने अधिष्ठान स्वरूप की विवेकख्याति न हो वहां तक जीव की कामना वासना नही जाती; अतः शरीर त्यागने पीछे भी जन्म में आना पडता है, ऐसा अकलाद्वैत का सिद्धांत है.

अतः शरीर त्याग का नाम मुक्ति नहीं. (९) समचेतन को बंध मुक्त नहीं किंतु वोह शुद्ध है. माया वा अज्ञान से उसमें बंध मोक्ष होना भासे, यह भी माया–अविद्या की कल्पना है, इस पक्ष में बंध मोक्ष कल्पना मात्र है, परमार्थतः बंध वा मोक्ष नहीं है; परंतु अकलाद्वैत में तो बंध और उससे छूटना यह दोनों वातें हैं, इसलिये बंध निवृत्ति कर्तव्य होता है. इस पक्ष मे भ्रमवाद जेसा अकर्तव्य नही है. (६) उपाधि वा प्रकृति के संबंध होने से चेतन अपने में बंध मान लेता है, इस अविवेकरूप मंतव्य का अभाव मुक्ति ऐसा इस पक्ष में नहीं है किंतु न. ९ अनुसार है. मान लेने से बंध और जन्म मरण स्वर्ग नरकादि का पात्र नही हो सकता. (७) इस अमलाद्वैत मे सब प्रकार की व्यवस्था है. जो कोई अहंत्व ममत्व के अभाव होने में भय खाता हो तो कर्म उपासना करे और निष्काम हुवा योग्य परोपकार करे. बस.

(शं.) उक्त जीव और ईश्वर जड या चेतन? जो मानोगे उसी में दोष आवेगा; क्योंकि अनुपादान हुये हैं. (उ.) परमात्मा देव सर्व शक्तिमान और अकल है. उससे वेसी योग्यता वाले हुये हैं जेसे कि देख रहे हो, और मानते हो. अर्थात् जीव ईश्वर उपर उत्पत्ति प्रसग में कहे जेसे हुये हैं. और जड चेतन यह अपेक्षित शब्द हैं. इसलिये जीव ईश्वर अजड हैं और प्रकृति अचिद् है, ऐसा कहा जाता है, वस्तुतः कोई खास सज्ञा नही कही जा सकती.

(श.) उक्त ईश्वर को ब्रह्मज्ञान हुये विना मुक्ति नहीं होगी याने कामना वासना नष्ट न होने से आगे चलेगा. (उ.) उसको वृत्ति व्याप्ति है, प्रथम ही कामना वासना रहित निष्काम वर्तनेवाला उत्पन्न हुवा है; अतः शंका व्यर्थ है.

(शं.) अभावजन्य जीव, ब्रह्म का ज्ञान केसे कर सकता है? याने नहीं कर सकता, अतः कामना वासना का अभाव होने से बंध ही रहेगा. (उ.) ब्रह्म अज्ञेय है, वृत्ति व्याप्ति हुये उस जीव वृत्ति में स्वयं प्रकाश होता है, और जीव आनंद मग्न हुवा अपने को कृतकृत्य मान लेता है, ऐसा हुये ग्रंथि (चिद् ग्रंथि) का भंग हुवा ऐसा बुद्धि मे भान हो जाता है. ग्रंथि भंग हुये अहंत्व, ममत्व का अभाव, उससे कामना वासना के मूल का उच्छेद हो जाता है; और जीवन पर्यंत प्रारब्ध को भोक्ता हुवा योग्य निष्काम परोपकार में वर्तता है, क्योंकि अब वोह अपना जीवन परार्थ है, ऐसा समझ लेता है.

(शं.) जो वेदादि कोई [illegible] ईश्वरीय पुस्तक न मानें तो अकलाद्वैत टिक सकता है? (उ.) हा, श्रुति [illegible] [illegible] सम्यज्ञान से मोक्ष और अनावृत्ति

इत्यादि सुनने आये हैं और युक्ति सिद्ध है तथा सबको सुखकारी है; अतः मान्य है ऐसी भावना हो सकती है. मायावाद–अजातवाद–इसराईली पक्ष से भी मिल जाता है.

शुद्धाद्वैत–केवलाद्वैत–विलक्षणाद्वैत–अकलाद्वैत–द्वैताद्वैत की समानता.

उक्त अकलाद्वैत अनेक थीयरियों में मिल सकता है (क्योंकि ब्रह्म से इतर सब कल्पित मान लेते हैं), सो सक्षेप में जनाते हैं.

(१) जैसे कनक का कुंडल रूप में आविर्भाव हुवा तहां कनक पूर्ववत् शुद्ध है अर्थात् कुंडलाकार माया शक्ति से भासता है– कनक का विवर्त्तोपादान दरसा रहा है. जैसे रज्जु सर्प प्रसग में रज्जु ही है, और माया शक्ति ही अविद्या रूप हुई है, इसलिये सर्प ऐसा आकार और नाम आकार अविद्या कल्पित हैं याने उनका उपादान माया–अविद्या शक्ति है और इच्छा-संस्कार निमित्तकारण है. इसी प्रकार निरवयव-अपरिणामी शुद्धसम जो ब्रह्म उस ब्रह्म से इतर सब (उपरोक्त त्रिवाद) कल्पित (माया–अविद्या से कल्पित आकार) हैं, वे कल्पित ब्रह्म से विवर्त्त हैं और ब्रह्म विवर्त्तोपादान है– तद्‌रूप ही भासता है: इसलिये शक्तिमान ईश्वर प्रभु (चेतन विशिष्ट माया वा माया विशिष्ट चेतन) ही अभिन्ननिमित्तोपादान ठेरता है. क्योंकि उपलब्धि में आकार का उपादान माया और विवर्त्त उपादान ब्रह्म है इस मायावी ईश्वर की इच्छा निमित्त है. इस रीति से शक्तिमान एक ईश्वर ही है और वोह शुद्धाद्वैत रूप है. उसका स्वरूप, उसकी महिमा, उसकी शक्ति अकल होने से वोह शुद्ध अकलाद्वैत कहा जाता है.

(२) जैसे कनक और रज्जु केवल हैं, कुंडलाकार और सर्पाकार तथा कुंडल और सर्प यह नाम अविद्या (माया) शक्ति करके कल्पनामात्र हैं. इसी प्रकार निरवयव अपरिणामी शुद्धसम ब्रह्म केवलाद्वैत है और उक्त त्रिवाद (नामरूप) यह मायामात्र (कल्पित) हैं, नं. १ वत् माया (उपादान) के आकार विवर्त्त और ब्रह्म विवर्त्त उपादान है. इस प्रकार शक्तिमान एक ईश्वर ही है और वोह केवलाद्वैत रूप है; उसका स्वरूप उसकी महिमा उसकी शक्ति अकल होने से वोह केवलाकलाद्वैत है.

उक्त दोनों थीयरी का आशय तो समान है परंतु कथन में अंतर है. नं. १ में मायावी ईश्वर उपादान और शक्ति निमित्त है और नं. २ में शक्ति उपादान और मायावी ईश्वर निमित्त है.

(३) जेसे कनक और रज्जु अपने स्वरूप में पूर्ववत् हैं, संस्कारी चित्त (अविद्यावृत्ति) कर के कुंडल और सर्प ऐसे विलक्षण रूप भासता है; वेसे ही ब्रह्म अपरिणामी निरवयव शुद्ध अपने स्वरूप में पूर्ववत् सम है, उससे विलक्षण अस्तित्व प्रकार वाली विलक्षण अनिर्वचनीय माया शक्ति पूर्व पूर्व के संस्कार वाली है उन पूर्व पूर्व के संस्कारानुसार त्रिवाद–ऐसे नाम रूपाकार स्फुरते और ब्रह्म के विवर्त्त हुये (आकाश की नीलता वा तमवत्) भासते हैं. यह ही विलक्षण अद्वैत में विलक्षणाद्वैत भासना है (मायामात्र है). तहां नाम रूप (स्वप्नवत्) बाधरूप होने से केवलाद्वैत वा शुद्धाद्वैत है और उपलब्धि भावनावश प्रतीत काल में स्वप्नसृष्टिवत् विलक्षण द्वैत (त्रिवाद) है, इसी का नाम माया मात्र द्वैत है; क्योंकि माया उपादान और मायावी–ईश्वर अन्यथा निमित्त है. इस रीति से अनिर्वचनीय विलक्षण शक्ति वाला एक ईश्वर ही है और वोह केवल शुद्ध है; उस शक्तिमान मायावी परमेश्वर का स्वरूप, उसकी महिमा, उसकी शक्ति अकल होने से वोह विलक्षण (अद्‌भुत) अकलाद्वैत कहा जाता है.

केवलाद्वैत मायामात्र द्वैत कह के भावरूप अनिर्वचनीय माया को अनादि सांत कहता है. विलक्षणाद्वैत भाव रूप अनिर्वचनीय माया को व्यक्त अव्यक्त रूप एवं प्रवाह से अनादि अनंत मानता है इतना अंतर है. माया का उभय पक्ष मे स्वीकार है.

(४) जेसे कनक में कुंडल और रज्जु में सर्प (और तम) स्वाभावाधिकरण में अध्यस्त रूप से अवभास को पाते हैं याने अभावज अभावरूप हैं, वस्तुतः कनक और रज्जु (और प्रकाश) ही है, तो भी तमवत् आवरक और भावरूप जान पडते हैं; इसी प्रकार ब्रह्म की इच्छा से माया शक्ति करके उपरोक्त त्रिवाद अभाव में से भावरूप (स्वप्न सृष्टिवत्) होता है, और वोह स्वाभाव अधिकरण में कल्पित है, इसलिये स्वप्नवत् उपलब्धि द्रष्टि से उक्त त्रिवाद रूप द्वैत है. और स्वाभावाधिकरण में अवभास होने से अथवा पूर्व उत्तर में अभावरूप होने से अद्वैत है, इस प्रकार द्वैताद्वैत है और ब्रह्म माया शक्ति विशिष्ट होने से विशिष्टाद्वैत है. इस रीति से शक्तिमान एक ईश्वर ही है और वोह अकलाद्वैत है क्योंकि उसका स्वरूप, उसकी महिमा, उसकी शक्ति अकल है. रज्जु सर्प को स्पर्श करें तो रज्जु स्पर्श होती है, सर्प नहीं क्योंकि सर्प नहीं है. परंतु स्वप्न सृष्टि के आकारों में उपलब्धि होती है अर्थात् स्वाभाव अधिकरण में भी उपलब्धि होती है, ऐसे प्रकार के हैं. यही माया शक्ति की विचित्रता है. स्वप्न में ज्ञाता द्रष्टा तो चेतन ही है, परंतु नाम रूप उस चेतन के

विवर्त हैं, इसलिये उपलब्धि होती है. इसी उपलब्धि के संस्कार मात्र कहो, अभ्यास कहो वा कुछ भी कहो, परंतु शरीर इंद्रियों के विना भी भावरूप में विलक्षण (सदसद से विलक्षण) विषय होते हैं इसी प्रकार तम, नभ की नीलता और आलात के चक्र की व्यवस्था है. सार यह आया कि तंत्री पुरुष की अद्भुत अनिर्वचनीय शक्ति करके स्वप्न जेसा त्रिवाद स्वाभावाधिकरण में प्रतीत होता है, वा कल्पा जाता है. इसलिये भाव अभाव से विलक्षणावभास किंवा स्वाभावाधिकरण में विलक्षणावभास होता है ऐसा अकल प्रकार है, तंत्री में इच्छादि होने से उभय का अनुपयोग भी नहीं है. त. द. अ. ४ स्वप्न तंत्री का प्रसंग और अ. ३ गत पेज ८३९ पुरुष विशेष प्रसंग वांचो.

उपरोक्त सब पक्ष में–सब भावनाओं में शक्तिमान ईश्वर (ब्रह्म माया), उस मायावी की इच्छा, उसकी शक्ति उसकी रचना वगेरे अकल हैं अद्वैत हुये द्वैत रूप भासता है, उससे इतर अन्य न होते हुये अभावज द्वैत भासता है इसलिये वोह अकलाद्वैत रूप है, यह सार निकला.

प्रस्तुत अकलाद्वैतवाद की थीयरी में त्रिवाद की भावना बंध जाने से पूर्वोक्त हेतु संपादन हो जाता है और यह थीयरी दूसरी शैलियों से अल्प दोषवाली है. अकलाद्वैत में जो इच्छित कल्पित त्रिवाद माना है उसमें वे कल्पित नाम रूप अधिष्ठान के विवर्त्त हैं अर्थात् उनमें चमत्कार तो व्यापक अधिष्ठान–परमात्मा देव का ही है (स्वप्न सृष्टि की व्याप्ति मिला वो) और वोह आत्मा के अनुभव हुये स्वयं प्रकाश होता है, तब उससे इतर स्वाभाविकावभास नहीं किंतु बाध रूप है, और स्वाभाविक है ऐसा ध्यान में आ जाता है. परंतु विशेषता यह है कि वर्णआश्रम के व्यवहार निवाहने, कर्म करने और भक्ति–उपासना होने में यह उत्तम शैली है, जीव को प्रेयस प्राप्ति में उत्तम साधन है और उससे अंतः करण शुद्ध हुये ज्ञान–श्रेयस् प्राप्ति का अंतरंग साधन है; इसलिये सर्वोत्तम शैली है ऐसा मैं मानता हूं.

(सारग्राही दृष्टि)—इस दर्शनसंग्रह सहित तत्त्वदर्शन ग्रंथ के विचारने से यह ज्ञात हो जाता है कि ईश्वरादि ८ विषय में जितनी २ कल्पना वा भावना हैं वे निर्दोष नहीं हैं, इसलिये उनमें मतभेद होता है. जो सार निकलता है वोह इतना ही है कि १. प्रकाश प्रकाश्य से इतर अन्य सब मंतव्यों में दोष आता है, २. जीव आत्मा का स्वरूप, उसका बंध और मोक्ष यह शब्द विवाद को छोड के हर कोई थीयरी (उपनिषद, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, विवर्तवाद वेदांत, सूफी वगेरे)

द्वारा जीवादि का अनुभव हो जाने से इतना (जीवादि) विषय विवाद रहित हो जाता है ३. शेष सब विषय लक्ष्यालक्ष्य और अनिर्वचनीय रहते हैं ४. जनमंडल को जिससे प्रेयस् और श्रेयस् की प्राप्ति होती हो वही शैली-थीयरी-अध्यारोप-कल्पना वा भावना स्वीकार लेने योग्य है, उनमें भी जो थोडे दोष वाली हो और थोडे में हो उसका प्रचार होना चाहिये, खंडन मंडन की दृष्टि को छोड देना चाहिये और वोह बहुमत संमत हो तो उत्तम है. धन्य है आर्य सनातन धर्म को कि जो असल तत्त्व को समझके उसकी प्राप्ति कर लेने से सब धर्म-मत-पंथों को मान देता हुवा भी सत्य पर ले आता है, और उसके पास यह साधन अद्वैत भावना वा केवलाद्वैतवाद है.

इस प्रसंग में अनेक शंका समाधान हैं परंतु त. द. अ. ४ में कहे अनुसार जहां तक विवेकख्याति न हो वहां तक इनका निवेडा नहीं होता, इसलिये उनसे उपेक्षा की है.

इस भावना का अपवाद हो सकता है, तथा अभाव से भाव रूप की उत्पत्ति मानने में आप अपनी कमजोरी दिखाता है. यदि भावना विश्वास से स्वीकार लेवें तो प्रस्तुत चारों (मायावाद, ब्रह्मवाद, त्रिवाद, अकलाद्वैत) भावना में से हरकोई भावना स्वीकार सकते हैं; तथापि अद्वैत और द्वैत इन दोनों के जो शौकीन हैं और वर्णाश्रम के व्यवहार याने धर्म नीति को जो पसंद करनेवाले हैं उनको अकलाद्वैत शांतिकारक हो सकता है; क्योंकि जगत् को भ्रम रूप नहीं बताता. समचेतन को भ्रांत, परिणामी-विकारी नहीं मानता किंतु अमल मानता है, तथा त्रिवाद को स्वकल्पित नहीं कहता, किंतु है ऐसा बताता है और फेर परमार्थत: केवलाद्वैत को ही मानता है. तथा युक्तिवाद में अन्य पक्षों से अल्पदोषवाला है.

(वेदांतपक्ष) शोधक.

(१) सृष्टि के पूर्व ब्रह्म से इतर कुछ भी नहीं था किंवा ब्रह्म ने अपनी इच्छा से उपादान बिना अभाव में से जगत् वा जीव बनाये, ऐसा भाव वा मंतव्य श्रुति का किंवा वेदांतदर्शन का बिल्कुल नहीं है; किंतु वे. २।२।२. ३।१।३०,३१. ३।३।४ में इसका निषेध है. अत: यह भाव प्रसंग (प्रतिपक्षी) का विषय नहीं.

(२) अपनी इच्छा से ब्रह्म ने क्षीरवत् (वे. २।१।२४) वा जलतरंगवत् परिणाम धारण किया याने जगत् वा जीव रूप हो गया अर्थात् ब्रह्म ही सृष्टि का

अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है ऐसा भावार्थ लेवें तो उक्त नं. १ वाले सूत्र और २।३।१७ (जीव अनादि है) यह सूत्र बाधक होते हैं. अर्थात् वेदांतदर्शन ऐसा नहीं मानता तो भी जो अणुभाष्य ऐसा मनाने का आग्रह करे तो (यथापूर्वमकल्पयत) श्रुति बाधक होती है और वक्ष्यमाण शुद्धाद्वैत (वल्लभ मत) वाला प्रतिपक्षी उसको दूषित करता है.

(३) इसलिये द्वैत (जीव, ईश्वर, प्रकृति स्वरूप से जुदा जुदा अनादि अनंत, जीव अणु चेतन कर्ता भोक्ता. प्रकृति उपादान और ईश्वर यथा कर्म निमित्तकारण याने सापेक्ष निमित्त) में भावार्थ लें तो ईश्वर और जीव अणु इन दो विषयों के संबंध में वक्ष्यमाण त्रिवाद आवृत्ति वाला प्रतिपक्षी अटकाता है. मुक्ति में जो अणु जीव की विभूति श्रुति वा सूत्र में लिखी है वोह अणु में असंभव है. विभु आकाश का उपादान, परिच्छिन्न प्रकृति नहीं मानी जा सकती. और मुक्ति से अनावृत्ति मानी है तो जब तब सृष्टि का उच्छेद हो जाना चाहिये (वेद अ. ९ याद करो) जो कि असंभव है. इत्यादि दोष आते हैं.

(४) इसलिये वेदांतदर्शन का शंकराचार्यजी के अनुसार भावार्थ लेवें, क्योंकि ब्रह्म (विभु) में इतर वस्तु (जीव–प्रकृति) का अप्रवेश है अर्थात् व्यापकव्याप्य भावरूप संबंध का अनवसर होने से इतर का अभाव है; परंतु इस भावना में ब्रह्म की जिज्ञासा ही नहीं बनती, दूसरा हो (द्वैतवाद हो) तो जिज्ञासा हो, सो तो है नहीं अतः अध्यास–मायावाद मानें तो पूर्वोक्त भ्रमवादि निषेधक और वक्ष्यमाण शंकराचार्य मत का जो प्रतिपक्षी है वोह आड में आ जाता है– प्रतिबंधक हो पडता है.

(५) जो केवल श्रुति से फेसला करना चाहें तो उपनिषद् श्रुतिओं का जो विरोधाभास लिखा है वोह प्रतिपक्षी बन जाता है. जो विरोध निवारणार्थ शंकराचार्य का मत लें तो नं. ४ अनुसार परिणाम आता है और अनेकार्थ हो जाने से द्वैत अद्वैत का झगडा चल पडता है. निवेडा नहीं होने पाता.

तकरार, विकार, परीक्षासार.

शोधक–परीक्षक वा जिज्ञासु को चाहिये कि सर्वाधार–अधिष्ठान ब्रह्म चेतन (वा जीवात्मा) का जिस तिस प्रकार से अनुभव करें, विवाद को छोड दें, उस पीछे (१) यदि दृश्य अध्यस्त रज्जु सर्पवत् भ्रम रूप होगा तो उसकी निवृत्ति हो जायगी, कहने सुनने वाले का ही अभाव होगा. तकरार वा शंका मिटी. (२) यदि दृश्याध्यास

रूप होगा तो जेसे भाव प्रकारवाला अज्ञानकाल मे जान पडता था वेसे भाव और प्रकार वाला अधिष्ठान के ज्ञान हुये पीछे न जान पडेगा; किंतु बाध रूप प्रतीत होगा. स्वार्थ में विवाद वा शंका न रहेगी. परार्थ मे भी विवाद को छोडके विवेकख्याति करने का उपदेश कर्तव्य होगा. नहीं कि द्वैत अद्वैत की तकरार वा खंडन मंडन. (३) यदि दृश्य ब्रह्मरूप है तो ब्रह्मज्ञान हुये पीछे सर्वज्ञ हो जायगा किंतु अपना रूप होने से यह, तू, मैं, वोह, ऐसे भेद न भासेगा. इस प्रकार होने से विवाद और शका का अभाव हो जायगा. श्रोता, वक्ता, वादि प्रतिवादि ही नही रहेगा. (४) यदि दृश्य सत्य है तो ब्रह्म ज्ञान होने पीछे उपासक उपास्य का भेद और दृश्य पूर्ववत् सत्य भासेगा. इस प्रकार स्वार्थ में विवाद और शका का अभाव हो जायगा. परार्थ मे विवेकख्याति करने का उपदेश होगा, नही कि द्वैत अद्वैत तकारार वा खंडन मडन यदि ईश्वर, जीव, प्रकृति याने त्रिवाद ब्रह्म के सकल्प द्वारा अभावज होगे तो ब्रह्मज्ञान होने के पीछे उसमे इनका अभाव ज्ञात हो जायगा. अथवा ब्रह्म का ज्ञान ही न होगा; क्योकि जीवादि अभावज है यह अधिष्ठान वा सकल्प कर्ता को विषय नहीं कर सकते.

(५) यदि उक्त चारो मे अन्य प्रकार होगा तो विवेकख्याति हुये वेसा जान पडेगा.

सार यह आया कि उक्त तमाम वाद विवाद, मंतव्य अमंतव्य अर्थवाद (वाचारंभण) मात्र है; जो विवेकख्याति मे तुले सो यथार्थवाद है अतः तकरार मे उपेक्षा.

विभूषक मत.

१. उपर जो परीक्षा सार लिखा है सो बहुत ठीक जान पडता है; इसलिये वेदांतदर्शन के सूत्रो पर विवाद करना व्यर्थ मालूम होता है.

२. परीक्षा न हो सके वहा तक हरकोई भावना अनुसार अर्थ करके अर्थात विवर्त्तवाद, ब्रह्मवाद, त्रिवाद और अकलाद्वैतवाद इनमें से हर कोई एक भावना अमुक व्यक्ति (व्यष्टि) माने तो भलेही माने, परतु जेसे वेद उपनिषद् प्रसग में इन भावना के भूषण कहे है (यहा अ १ गत विभूषक मत के अक ७।८।९।११।११२।४२ बाचना भी ठीक होगा) वेसी दृष्टि हो और व्यष्टि भावना वाले पंचदयाग पाले तो इनमें से हर कोई भावना हानिकारक नहीं जान पडती.

१०. भगवद्गीता का मंतव्य.

श्रीमद्भगवद्गीता उपनिषदों का व्याख्यान वा सार है ऐसा माना जाता है. वर्णन की शैली में अंतर है; क्योंकि उपनिषद् केवल ब्रह्म पर हैं और इसमें विविध विषय लिये हैं. इसके १८ अध्याय हैं. पहिले में अधिकार है, दूसरे में अधिकार और गीता का तमाम सार याने तत्त्व फिलोसोफी है. ६ छटे तक कर्म योग. ७ से १२ तक उपासना (भक्ति) योग और १३ से ज्ञान योग है. १६ में दैवी आसुरी सपत्ति का और १७ में श्रद्धा विभाग का और १८ में संन्यास योग का विविध विषयों को लेके बयान है.

महाभारत की लडाई के आरंभ के प्रथम पहेर में इसकी उत्पत्ति मानी जाती है. मनुष्य अपने कर्तव्य को संभाल के अभ्यास करके मनुष्य बने, अर्थात् धर्म, नीति, आचार, व्यवहार, कर्म, उपासना (भक्ति) यह इसके उद्देश हैं. निष्काम कर्म (कर्म योग) और मुक्तिप्रद आत्म ज्ञान यह उसका मुख्य उद्देश है.

उपदेष्टा श्रीकृष्ण महाराज ने अनेक जगह मैं शब्द का उच्चारण किया है, उसके अर्थों में कटाक्ष है. उसके जाने विना गीता का रहस्य समझ में नहीं आता. उसके अभ्यासी को किसी शिक्षक द्वारा जानना चाहिये *

गीता के जिन वाक्यों से नीचे का सिद्धांत लिखा है उन श्लोकों का पद, अध्याय और अंक ब्रह्म सिद्धांत के अंत विषे घ. प्र. में लिखा है. वहां मिला लेना चाहिये.

(१) ब्रह्म (अनादि, पुरुषोत्तम, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, क्षेत्री अ. १३।१४), अचल, अक्रिय, व्यापक, अक्षर, मनादि विना वैसे जगत् करने वाला (अ. १३।१३ से १७तक) अधिकारी, निर्गुण, गुण का भोक्ता, सदसद् कहने के योग्य नहीं, जीवों के कर्मानुसार जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय का निमित्त.

---

* मैं कर्म न करूं तो घाती हूं (शरीर विशिष्ट चेतन), मेरा जन्म होता है, मैं जन्म लेता हूं, मैं जानता हूं (विशिष्ट जीव चेतन), मुझे कर्तव्य नहीं (प्रत्यगात्मा-कूटस्थ), मेरी भक्ति कर, मेरी शरण हो, मेरे अर्पण कर, मैं महत् योनि में गर्भ देता हूं, मेरी अमुक विभूति है, मैं सबकी उत्पत्ति, रक्षा और संहार करता हूं, मैं मोक्ष दूंगा इत्यादि (माया विशिष्ट चेतन ईश्वर) जैसे राजा की सत्ता मिलने से प्रधानादि अपनी संज्ञा कर के कहते हैं कि मैं यूं करूंगा इत्यादि ऐसे तदन्तर्गत प्रकार में भी उपदेश है. वेदान्तदर्शन योगी कृष्ण महाराज. और मैं (विभु) व्यापी परमानंद स्वरूप हूं, मुझको नहीं जानते, मेरे में सब है (शुद्ध ब्रह्म). इसी प्रकार श्रीभागवतादि के शब्दों में रहस्य जान पडता है

(२) माया (प्रकृति, त्रिगुणात्मक, अनादि, क्षर (कार्य परिणाम) क्षेत्र, निर्विकारी देही (आत्मा) को तीन गुण से बांधनेवाली, और अहंकार, बुद्धि, मन, चित्त, इच्छा, द्वेष, सूक्ष्म स्थूल संघात, सुख दुःख, यह सब जिसके (प्रकृति के) विकार हैं.) §

(३) देही (पुरुष—क्षेत्रज्ञ, अविकारी, अक्षर, ईश्वरांश, सर्वव्यापी, स्थिर, अक्रिय, अनादि, अचिंत्य, भोक्ता, देह त्याग पीछे मन इंद्रिय को साथ ले जानेवाला (१५।८), उत्तम अधम योनी को प्राप्त होने वाला, उपद्रष्टा अनुमंता महेश्वर, परमात्मा, परमपुरुष.)

(४) प्रकृति कर्तृत्व का हेतु और पुरुष भोक्तृत्व का हेतु है. १३।२०. निर्विकार देही को प्रकृति के गुण बांधते हैं. १४।५ मूढ जीव, 'मैं कर्ता हूं' ऐसा अहंकार से मान लेता है.

(५) असंगकर्म, उपासना (भक्ति—ध्यान) या ज्ञान (सांख्य) हरेक मोक्षप्राप्ति के साधन हैं. परंतु आत्म ज्ञान के विना शांति नहीं होती (२।६६).

(६) निष्काम कर्म करने से लिपायमान नही होता. निष्काम कर्म कर्तव्य हैं. (२।४९,४७,५१. ३।९. १२।११. १८।६.११), कर्म विना कोई रह नहीं सकता. (३।४). असंग कर्मकर. ईश्वर किसी को प्रवर्ते नही करता, प्राणीवर्ग स्वभाव कर्तृत्व रूप से प्रवृत्त होता है (५।१४).

(७) मुक्त ब्रह्म मे लय को प्राप्त होता है. ५।२४. ब्रह्म लोक प्राप्ति से भी आवृत्ति है. ब्रह्म प्राप्ति से अनावृत्ति है अर्थात् फेर संसार में जन्म नही होता.

(८) संक्षेप में मंतव्य कहा † चूंकि इस ग्रंथ के भाष्यकार टीकाकारों के किये हुये अर्थों में और भावार्थ में विवाद है, कोई द्वैत कोई शुद्धाद्वैत और कोई केवलाद्वैत में लगाता है, इसलिये निश्चित अमुक मत है, ऐसा नहीं लिख सकते.

---

§ रामानुजश्री अपने भाष्य में लिखते है कि जेसे अग्नि संबंध से पानी गरम हो जाता है वेसे प्रकृति के संबंध से अणु जीवात्मा में उसके जेसे इच्छा, द्वेष, अहंकारादि गुण हो जाते हैं इसलिये जीव बंध को पाता है.

† अ. १५।१६।१७।१८ मे क्षर, अक्षर और इनसे इतर उत्तम यह ३ माने हैं कहीं जीव को ब्रह्म का अंश माना है, कहीं प्रकृति पुरुष यह दो ही मुख्य तत्त्व माने है, कहीं जीव को गति वाला कर्ता और कहीं अक्रिय अचल कहा है, इत्यादि विरोधाभास हैं. (ब्र. सि. के अंत मे विस्तार है).

संशय.

(१) युद्ध के मेदान में ही तुरंत कृष्णमहाराज ने अर्जुन के गीता का उपदेश किया है वोह दूरस्थ संजय ने सुना और उससे वेदव्यास जी ने सुन के वोह उपदेश १८ अध्याय याने ७०० श्लोक में व्यास जी ने लिखा है, ऐसा महाभारत के लेख से जान पडता है. उपदेश का इतना समय नही था, इसलिये यदि हो तो कृष्ण-महाराज का उपदेश सक्षेप में होगा, तथा व्यासजी तीसरे नंबर पर है इसलिये सभव है के मूल से अंतर भी हो.

(२) महाभारत के आरंभ अ. १ में उसके श्लोकों की सख्या २४ हजार, उसका संक्षेप १५० में बादरायण कृत है ऐसा लिखा है. राजा भोज कहता है कि मेरे पिता के समय में २०, मेरे समय में ३० हजार महाभारत है. (संजीवनी नाम ग्रंथ की साक्षी से सत्यार्थप्रकाश में लिखा है) सत्यार्थप्रकाश, व्यासजी कृत ४ और उनके शिष्यकृत १० हजार बताती है. वर्तमान में १। लाख कहाता है; इसलिये उसमें गीता का खास रूप कितना होगा, यह बताना मुशकिल है.

नोट:—

१. जीवात्मा व्यापक अचल अ. २।१७।२४।३०।३४. जीवात्मा सक्रिय परिच्छिन्न अ. १५।८,१०,११,१७. जीव ईश्वरांश अ. १५।७. जीव परा प्रकृति अ. ७।५. जीव ईश्वर जुदा १५।१८।७।५. जीव अनादि अनंत २।१२.

२. मोक्ष मे अनावृत्ति २।१०.

३. प्रकृति अनादि अनंत १५।१,३. दृश्य अध्यस्त १५।३. ९।२.

४. ईश्वर सृष्टि का कर्ता ७।५. ईश्वर कर्म का फलदाता १०।४,५,२९. १५।१५. १८।६१. कर्म फल ईश्वर की तरफ से नही ५।१४,१५. जीवों में उत्तम मध्यम भाव ईश्वर की तरफ से होते हैं १०।४,५. दुःखादि ईश्वर की तरफ से यह अ. १३।१ के विरुद्ध. ईश्वर सक्रिय ९।९. अवतार मंडन ४।६. अवतार खंडन ७।२४.

† जीव प्रसंग में बहुधा सांख्यदर्शन से मिलना पाया जाता है तथापि फाड तोड वाला लेख नही मिलता. कहीं भोक्ता, कहीं कर्ता हो ऐसा पाया जाता है. जो जीव अक्रिय अर्थात् कर्ता नहीं परंतु भोक्ता है और अहंकार से कर्तृत्व (मैं कर्ता) ऐसा मानता है, इस प्रकार माने तो फेर असग कर्म कर, निष्काम कर्म कर, यह उपदेश व्यर्थ हो जाता है और योनियो में आवागमन नहीं बनता. और यदि जीवात्मा परिच्छिन्न है तो अक्रिय, सर्वव्यापि परमात्मा अचल यह लेख व्यर्थ होगा।

५. मेरी शरण हो. मैं ईश्वर ९।३४. १८।६५,६६. ईश्वर तीसरा पुरुष (अन्य) ८।९,१०. १८।६१, ६२.

६. कर्म निंदा ज्ञान महिमा २।४९,५०. ४।३३,३८. ५।६. ६।३ कर्म महिमा १२।१२. ज्ञान और कर्मयोगी से उत्तम ध्यान योगी ६।४६.

७. जीव ब्रह्म की एकता (अहंब्रह्म) १८।५३. ब्रह्म को प्राप्त हुये पीछे मेरी भक्ति पाता है १४।२७.

८. ब्रह्म सदसत् नहीं ९।१९. १३।१२.

९. दुःख सुख इच्छा द्वेषादि प्रकृति के विकार १३।८. कर्तृत्व का हेतु प्रकृति, भोक्तृत्व का हेतु पुरुष.

१०. इत्यादि अनेक विरोधाभास वा विरोध हैं. उपरोक्त विरोधों का निवारण शंकरश्री की थीयरी (मायावाद) से हो सकता है. ऐसा मैं मानता हूं. अथवा कोई आत्मानुभवी विद्वान कर सकेगा. मैं कुछ नहीं कह सकता.

(३) १३ वें अध्याय का पहिला श्लोक शंकर भाष्य वा प्राचीन गीता में नहीं है किंतु संगति न मिलने के कारण जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह के समय पंडितो द्वारा ज्यादा कराया गया है ऐसा टीकाकारों ने लिखा है.

(४) वैराट स्वरूप बताना योगियों को कठिन नहीं है; क्योंकि अनुवृत्ति है. (जैसा के वर्त्तमान में तैजस (मेस्मेरेझम) विद्या वाले थोडी बहुत कर देखाते हैं); परंतु अ. ११।४९ में अर्जुन ने पूर्व वाले चतुर्भुज स्वरूप में आने की इच्छा बताई है. और महाभारत में कहीं भी प्रसिद्धि में कृष्णमहाराज का चतुर्भुज स्वरूप नहीं लिखा है; इसलिये मूल में ऐसे वर्णन वाला श्लोक है वा नहीं यह संशय हो जाता है.

(५) अ. ११।४७ में कहा है कि यह वैराट स्वरूप आज तक किसी ने नहीं देखा परंतु माता कौशल्या, माता देवकी और यशोदाजी तथा दुर्योधन को बताना ग्रंथों में लिखा है. हां उनके उद्देश मे अंतर है जैसे के अर्जुन को कालरूप बताया है. और अन्यत्र अन्य भाव वाला दिखाया है.

(६) गीता के लेख में कितनी जगह विरोधाभास है, जैसे कि जीव के स्वरूप प्रसंग में बताया है और ब्र. सि. गत् प. नं. १२ में है. क्या दूसरे की स्मृति मिल गई है वा उसमें कुछ गुह्य रहस्य है? क्योंकि अश्वमेधपर्वगत अणु गीता अ. ४९ में भगवद्गीता अध्याय १३ वाले मंतव्य (प्रकृतिपुरुषवाद) का स्वीकार है.

(७) अस्तु. कुछ भी हो. परंतु यह ग्रंथ सब वेदानुयायी आर्य प्रजा में मान्य है, इतना ही नहीं किंतु परखंड निवासी साक्षर वर्ग में भी प्रशंसा पात्र हुवा है; क्योंकि आर्य प्रजा के धर्म, नीति ज्ञान और स्वतंत्रता का यह ग्रंथ नमूना है. इसलिये जहां विरोधाभास जान पडे वहां अधिकार भेद से निवारणीय है और श्रुति प्रसंग में विरोधनिवारक जो पंचसामग्री लिखी है, उससे विरोधाभास निवारण हो सक्ता है, ऐसा मैं मानता हूं.

शोधक.

(१) जो उपर विरोधाभास और संशय जनाया है वही एक प्रकार का प्रतिपक्षी है अर्थात् मंतव्य स्वीकारने की ना करता है.

(२) उपरोक्त वेदांतदर्शन वाला (नं. २,३,४,९) और सांख्यदर्शन का (नं. ४,५,६,) प्रतिपक्षी आ खडा होता है. और वक्ष्यमाण ईश्वर अवतार निषेधक प्रतिपक्ष तथा अ. १ अवतारादि प्रकरण रूप प्रतिपक्ष सामने आ जाता है.

(३) इस रीति से गीता के त्रिवाद, या ब्रह्ममायावाद वा प्रकृति पुरुषवाद और अवतारवाद में प्रतिपक्षी आडे हो जाते हैं. अधिकारी परीक्षक शोधक को उनका सार यहां लगा लेना चाहिये.

विभूपक मत.

(१) यदि गीता के कहे अनुसार वर्तन हो तो अभ्यासी योग्य मनुष्य बन जाता है.

(२) इसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति यह दोनों वाद हैं, और वे भी स्वतंत्र भाव वाले हैं.

(३) वर्तमान में प्रवृत्तिवाद का दौरा है, इसलिये इस ग्रंथ का कर्म योग ही ग्राह्य है; जैसा कि मि. बालगंगाधर तिलक महाराज ने कहा है. वही वर्तमान में लाभकारी है; तथापि उन्होंने अन्य विषयों का जो खंडन किया है और विकल्परूप बताया है, ऐसा मान लेना ठीक नहीं है, किंतु देशकाल स्थिति पर नजर डालें तो वर्तमान में कर्मयोग ही लाभकारी है, ऐसा जानना चाहिये.

(४) गीता के वचनों में अजातवाद नहीं निकलता. किंतु विवर्तवाद, अद्वैतवाद, द्विवाद (शेष शेषजवाद) और त्रिवाद निकल सक्ता है. शंकर, रामानुज और वल्लभश्री के अर्थ देखो.

गीता की चारों भावना में से कोई प्रकार की भावना के अनुकूल अर्थ लें, परंतु जो उपर कहे हुये (वेद उपनिषद प्रसग, न्याय प्रसंग, सांख्य और योग प्रसग, वेदांतदर्शन प्रसंग त. द. अ. ४ विवाद विभूपक मत त. द. अ. १) अनुसार उन उनके भूपण पर दृष्टि हो और उक्त पंचदशांग के साथ उस अनुसार वर्तन हो तो कोई हानि नहीं जान पडती, क्योंकि विवेकख्याति करने पर जैसा होगा वैसा आप ही जान लेगा. और वर्तन में पंचदशांग तथा गीता का उपदेश उत्तम हो हे जो त. द. अ. ४ मे सर्वसंग्रह प्रसग विषे कहा हे.

वेदांत प्रस्थान प्रमाण और मतभेद.

वेद अनुयायी आर्य प्रजा वेद, उपनिषद, गीता और वेदांतदर्शन को प्रमाण मानती हैं, वेदमूल और यह सब वेदांत कहाता है. इन पर कोई वेदानुयायी आक्षेप नही करता. तो भी वेद अनुयायी प्रजा में अर्थों का विवाद होने से मतभेद (भिन्न २ संप्रदाय) जान पडता है, इसका कारण यह है कि वेदानुयायी मंडल उनके वाक्यों का जुदा जुदा अर्थ करते हैं; इसलिये विरोध है. कितनाक विरोधाभास उपर दिखाया हे.

जो वेद अनुयायी नहीं हैं, उन्होंने भी उन चारों पर आक्षेप किया है, उसकी चर्चा का यहां प्रसंग नहो है.

वेद, उपनिषद, वेदांतदर्शन और गीता इन चारों के संबंध में विभूपक, अपना मंतव्य उपर कह आया है.

---

११. पाणिनिदर्शन.

इस दर्शन के प्रवर्त्तक पाणिनि मुनि हैं. शब्द (संस्कृत व्याकरण) का इसमें वर्णन है, इसलिये इसको दर्शनसंज्ञा दे देते हैं. शब्द मोक्ष का द्वार है, इसके विना वेद शास्त्रों के आशय नहीं जान सकने, लोकव्यवहार इससे उत्तम होता है और सब के मूल वैदिक मार्ग में विशेष लाभकारी है, वाणी के मल को साफ करने वाला है, सब विद्या में पवित्र विद्या है, इसके विना किसी विद्या की प्रवृत्ति नहीं हो सकती; इसलिये यही मुक्त विद्या है, उसको जनाना, इस दर्शन का मुख्य उद्देश है. यद्यपि इसके पूर्व पहिले भी व्याकरण थे, यह इसी दर्शन (अष्टाध्यायी व्याकरण) में जनाया

है, तथापि वे पूर्ण न थे. इसमें पाणिनि श्री ने शब्द समुद्र को लोटे में भरके मर्यादा में बाध दिया है, मानव मंडल की सर्व भाषाओ में इसका प्रवेश हो सकता है, ऐसे उणादि प्रत्यय रखे है.

पतजलि मुनी ने इस पर महाभाष्य किया है वोही लोक में मान्य गिना जाता है.

व्याकरण का मूल प्रकृति प्रत्यय है. सो शब्द नित्य है और साक्षात ब्रह्म है, क्योकि ब्रह्म के साथ इसकी समता की जा सकती है. वाच्य वाचक का अभेद है इसलिये भी ब्रह्म के साथ समता हे शब्द में सत्ता (महासामान्य) होती है जिसे जाति कह देने है.

पाणिनि मुनि का समय राजा चंद्रगुप्त (२१०० वर्ष वाला नहीं है. चद्रगुप्त सभम् पद को लेके चंद्रगुप्त का समय बताने है; परतु असल मे ऐसा नहीं है वहा सभा के प्रत्यय का प्रसग है इन सभम् ईश्वरसभम् ऐसा हो सकता है, राजसभम् नहीं होता. इत्यादि प्रसग है. मि. केलहारन साहेब प्रिन्सपाल ओरियन्टल कॉलेज दखन ने तहकीकात करके पुष्पमित्र सभापद छपाया है. (कुलियात आर्य मुसाफिर पृष्ट ११ में सविस्तृत वर्णन है).

ऋष्यन्धक वृष्णिकु इभ्यश्च. अ ४।१।११४. स्त्रियाम अवंति कुन्ति कुरुभ्यश्च. अ. ४।१।१७९. वासुदेवार्जुनाभ्याकन. अ. ४।३।९८. कलापि वैशंपायनाने वासिभ्यश्च. अ. ४।३।१०४.

इन सूत्रों से जान पडता है कि पाणिनि श्री महाभारत पीछे हुये हो; क्योकि वेदव्यास जी के ४ शिष्य थे. पैल को ऋग, वैशंपायन को यजु, जैमिनि को साम और सुमन्तु को अगरस नाम की अथर्व संहिता सिखाई थी, उनका और कुंति-वासुदेवादि का ख्यान है. जो यू हो तो इसका भाष्यकार पतंजली योग कर्ता नहीं किंतु अन्य होगा.

कितनेक यू कहते है कि पाणिनि कृष्ण से पूर्व हजारो वर्ष पहिले हुये है (इसके अपवाद की अपेक्षा नहीं है. चारवाक करेगा).

विभूषक.

मानवमंडल विषे जितनी भाषा है उन सबमें से उत्तम संस्कृत है इसलिये जिसको आर्य साहित्य का और वेदोक्त धर्म का ज्ञान करना मजूर हो उसको संस्कृत अवश्य पढना चाहिये.

१२. * चार्वाकदर्शन (लोकायतदर्शन).

अचिद्वाद (प्रकृतिवाद).

१. आर्यावर्त में इस दर्शन का प्रवर्तक बृहस्पति महाशय हुये हैं. यह महाभारत
से पहिले हुये हैं ऐसा जान पडता है. इनका विश्वास था कि मरने के पीछे परलोक
(स्वर्ग, नरक, ईश्वर, पुनर्जन्म) नहीं है और न शरीर उत्पत्ति पूर्व जीव कोई वस्तु
शरीर से भिन्न थी. जो कुछ है यही लोक है, इसी के सुख की चिंता करना चाहिये
परलोक के लिये द्रव्य काल गुमाना और श्रम करना व्यर्थ है. अर्थ और काम (भोग)
मुख्य हैं यही पुरुषार्थ जान के धर्म और मोक्ष का खंडन किया है.

२. प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है: क्योंकि यथार्थ ज्ञान के साधन केवल इंद्रिय
(ज्ञानेंद्रिय ५ और मन) हैं बाहिर की श्रोत्रादि इंद्रियों से शब्दादि विषय का और
मन से सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न का अनुभव होता है. जिस ज्ञान में दोनों
इंद्रियों में से किसी का संबंध नहीं हो वोह प्रमाण नहीं हो सकता; क्योंकि सीधा
संबंध न होने के कारण वोह एक संभावना मात्र है.

३. अनुमान प्रमाण खंडन— जिन दो पदार्थों को एक साथ देखते रहते
हैं उनमें से एक को देख के दूसरे का उसके साथ होना निश्चय कर लेते हैं; यथा
धूम देख के परोक्ष अग्नि का निश्चय कर लेते हैं; परंतु जिन पदार्थों के मेल से धूम
बना है वे यदि अग्नि के विना किसी संयोग से मिल जावें या मिला दिये जावें तो
अग्नि के विना भी धूम पैदा हो जायगा. अथवा अग्निजन्य धूम ही दूसरी जगह
विना अग्नि के होता है. यथा वर्षा या शरद ऋतु में ग्राम समीप जो घनवृक्ष उनमें
धूम रहता है, इस धूम को देख के यथार्थ अग्नि होना मान लेता है; परंतु जहां लेने
आया तो अग्नि नहीं मिलती. ऐसे ही एक मशक में धूम भर के उसकी नली पानी
के उपर रहे ऐसी प्रकार तालाव में रख के नली का मुख खोलें तो धूम निकलेगी.
अनुमान करने वाला वहां जाय तो दुःख से इतर लाभ न पावेगा. इन दोनो
उदाहरण में जो अंश प्रत्यक्ष का है (याने धूम) वोह यथार्थ है और जो अनुमान का
है वोह अयथार्थ है. यही दशा तमाम अनुमानों की है. इसलिये जिसे व्याप्ति मानते
हो उसके अभाव के अभाव का तमाम सृष्टिभर में निश्चय न हो वहां तक व्याप्ति गृह

---

* चारवाक की बृहस्पति का अवतारी शिष्य और चारक वर्ग के संपन्न पर १६दा ... ई.स. ७०७ में बना
...विष्णु सं. ६६१ (वि पूर्व १७११)

आधार के योग्य न होने से प्रमाण नहीं. और भी युक्ति है अर्थात् अनुमान मन से होता है, नहीं कि बाह्येंद्रिय से. मन बाह्यज्ञान में बाह्यइंद्रिय के आधीन है. यदि नेत्र अग्नि को न दिखाता तो मन न जान सकता. अब जब कि नेत्र अग्नि को नहीं दिखलाता है, फेर भी धूम देखके अग्नि मानता है; ऐसे अग्नि को जानना चालाक मन की चालाकी मात्र है, जो कभी कभी पकडने में भी आ जाती है. परंतु यह चालाकी चालाकी ही है प्रमाण नहीं. इसलिये अनुमान कोई प्रमाण नहीं तथाहि धूम अग्नि का संगी हमारे जन्म से पूर्व में था उत्तर में रहेगा, इस प्रकार त्रिकाल व्यापिनी व्याप्ति का ज्ञान वर्तमान के प्रत्यक्ष से नहीं होता. (शं.) मानस प्रत्यक्ष से होता है. (उ.) मन बाह्य इंद्रिय के आधार से ज्ञान करता है. (शं.) अनुमान से व्याप्ति ज्ञान का लाभ. (उ) अनवस्था दोष आवेगा. (शं.) शब्द द्वारा व्याप्ति ज्ञान मानेंगे. (उ) कणाद मत के अनुसार शब्द प्रमाण का समावेश अनुमान के अंतरगत है. इसलिये अनुमानकारक व्याप्ति ज्ञान प्रत्यक्ष का विषय होने से स्वयं प्रमाणरूप नहीं.

४. शब्द प्रमाण खंडन—शब्द प्रमाण दूसरे के यथार्थ प्रत्यक्ष ज्ञान और यथार्थ कथन पर आधार रखता है. परंतु उसने यथार्थ ही जाना है और यथार्थ ही कहा है इसमें क्या प्रमाण है? संभव है कि उसने ठीक न जाना हो * वा जान के भी अयथार्थ कहा हो. मानो कि उसने पूर्व में अयथार्थ न कहा हो तो भी यह निश्चय नहीं हो सकता कि अब भी यथार्थ ही कह रहा हो. (व्यवहार में जो शब्द से व्यवहार चलता है वहां प्रत्यक्ष से इतर जितना है वोह विश्वास से चलता है. यथा चिट्ठी, हुंडी, वगेरे से होता है, नहीं कि प्रमाण रूप से). इसलिये शब्द भी प्रमाण रूप से प्रमाण रूप नहीं.

५. उपमानादि का खंडन—उपमान, अर्थापत्ति और अभावादि जितने प्रमाण पक्षकार मानते हैं उनका उक्त तीनों में अंतरभाव है. भिन्न मानें तो भी उनका आधार वे तीनों ही हैं इसलिये वे प्रमाण नहीं. सारांश प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है.

६. प्रमेय निर्णय—पृथ्वी, जल, तेज और वायु यह चार सगुण तत्त्व हैं इन्हीं के मेल से तत्त्वादि लोक और तदंतरगत वनस्पति और प्राणि देह स्वभावतः उत्पन्न

---

* चेतनवादियों के मान्य ग्रंथो के कथन में मतभेद है. समीप जो जीव उसके स्वरूप में भी मतभेद. ईश्वर मोक्षादि विषयों में भी. यही साबित कर देता है कि शब्द प्रमाण प्रमाणरूप मे नहीं माना जा सकता

होते हैं. इनसे इतर अन्य तत्त्व नहीं है और न कोई चेतन ईश्वर इनका संयोजक विभाजक है.

७. **देह ही आत्मा**— जैसे परिमाण और परिणाम विशेष से जो बंबूल गुड आदि से मदशक्ति पैदा हो जाती है, इसी प्रकार देह के आकार में परिणाम पाये हुये जो तत्त्व इन तत्त्वों में चेतनता उत्पन्न हो जाती है. और उनके नाश होने पर नाश हो जाती है. उस चैतन्य वाली देह ही आत्मा है. तथाहि मैं मोटा, मैं पतला, इत्यादि जो प्रतीति होती हैं, यह देह के धर्म हैं, इसलिये देह ही आत्मा है. उससे इतर कोई आत्मा है, इसमें कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही. अनुमानादि की गणना प्रमाण में नहो. जिसे मन और इंद्रिय कहते हैं वे भी शरीर के अवयव ही हैं, शरीर से भिन्न वस्तु नहीं. मेरी नाक, मेरा शरीर इस प्रकार की प्रतीति व्यवहाराभ्यासमात्र है; क्योंकि मेरी नाक, मैं नकटा, मेरी आंख, मै अंधा, मेरा शरीर, मैं मोटा इत्यादि विरोधी व्यवहार हैं इनमें शरीर संबंध में मैं ही व्यवहार प्रत्यक्ष है. मेरा यह व्यवहार संस्कार और अभ्यासवश होता है. शरीर से भिन्न पदार्थों में मेरा, उसका, इत्यादि व्यवहार जो होता है सो शरीर इतर होने से ठीक ही है.

८. **परलोक निषेध**— जब कि देह ही आत्मा है तो वोह मर कर न कहीं जाता है न आता है यहां ही नष्ट हो जाता है; तो फिर परलोक (पूर्व उत्तर जन्म, स्वर्ग नरक प्राप्ति, मुक्ति) क्या? इसी प्रकार (दूसरे लोक ग्रह उपग्रहों में) शरीर उत्पन्न वा नाश होते होंगे वा अन्य कुछ होता होगा, सो हम नहीं जान सकते परंतु यह निश्चित है कि इस शरीर से भिन्न आत्मा–जीव कोई वस्तु नहीं है.

९. **ईश्वर निषेध**— कर्मों का साक्षी और फलदाता कोई ईश्वर नहीं है. *यदि कोई दंडदाता है तो वोह राजा ही है; इसलिये उसे ईश्वर कहते हो तो ठीक है;* परंतु उसके सिवाय कोई परोक्ष ईश्वर मानते हो तो उसमें कोई प्रमाण नहीं हो सकता; क्योंकि ईश्वरवादियों का ईश्वर आज तक किसी ने दंड देता हुवा नहीं देखा है; प्रत्युत उसके लक्षणों में उनका मतभेद है, इसी से जान पडता है कि ईश्वर कोई वस्तु नहीं; कल्पनामात्र है. दो आदमी लडते हों तो विद्यमान राजपुरुष (राजा वगैरे) उनको रोक देगा. परंतु ईश्वर विभु मानते हो और उसे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान कहते हो सो ईश्वर अपनी प्रजा को दुःखप्रद अनिष्ट मार्ग से नहीं रोकता क्यों?

ईश्वर हो तो रोके. (ईश्वरवादि की) (शं.) ईश्वर किसी के बीच मे नहीं आता किंतु यथाकर्म व्यवस्था करता है. (उ) उसे वेद का उपदेशक क्यो कहते हो अर्थात् मार्ग दरसाने वास्ते क्यो बीच मे पडा. जो दया मानो तो अनिष्ट से रोकना भी मानना होगा. परंतु ऐसा नहीं होता. इसलिये ईश्वर की असिद्धि है और वेदादि किसी ईश्वर रचित है, यह भी बनावटी बात है. (सृष्टि अनादि से है किंवा स्वभावतः बनती बिगडती रहती है).

१०. परलोक से उपेक्षा. "न स्वर्गो," इत्यादि वाक्यो से बृहस्पति कहता है कि न स्वर्ग, न मोक्ष, न परलोक गमन और न वर्णाश्रमो के कर्मफल देनेवाले है. अग्निहोत्र, वेद, यज्ञोपवित और भस्मलेपन यह ब्रह्मा (नाम की व्यक्ति) ने बुद्धि और पुरुषार्थहीनो वास्ते जीविका बनाई है. ज्योतिष्टोम यज्ञ में मारा हुवा पशु यदि स्वर्ग को जाता हो तो यजमान अपने संबधी (पितादि) को क्यो नही मारता. मरे हुये के नाम पर श्राद्ध यदि मृत को तृप्तिकारक हो तो प्रदेश जाने वाले के लिये खाने का साथ देना व्यर्थ है. स्वर्ग वाले पितृ यदि यहा के दान से तृप्त हो जाते हो तो यहा उपर महेल मे बेठे हुयो को क्यो नही तृप्त करते. यदि जीव देह से बाहिर जाता हो तो फेर बंधुओ के स्नेहवश घबराके पीछा क्यो नहीं आ जाता. इसलिये मरे हुये के लिये प्रेत कर्म (श्राद्ध तर्पणादि) करना ब्राह्मणो ने अपने जीवन का उपाय बनाया है; इसके सिवाय कुछ नही है. इसलिये "यावत् जीवे सुखी जीवे, ऋण लेके भी घी पीवे" ‡ क्योकि मरण पीछे न आना है, न जाना है

११. अदृष्ट निषेध—कोई राजा कोई रंक, कोई रोगी कोई निरोगी, कोई दुर्बल कोई निर्बल, कोई अबुद्ध कोई सबुद्ध और कोई पशु कोई मनुष्य है इत्यादि विचित्रता है, इसमे प्राणियो के अदृष्ट (पूर्व जन्म के कर्म) कारण नहीं है किंतु तमाम विचित्रता स्वभाव से ही है. अग्नि गरम जल ठंडा है इत्यादि विचित्रता किसने की है? किसी ने नही. बीज से वृक्ष और नाना प्रकार के विचित्र फल फूल पुनः उनसे बीज बन जाता है यह विचित्रता किसने की है? किसी ने नहीं की, किंतु स्वभाव से (यथा संयोग अमुक अमुक के मिलने से अमुक प्रकार का हो ऐसे स्वभावतः) इनकी यह व्यवस्था है

१२. लौकिक सुख ही पुरुषार्थ— जब कि देह ही आत्मा है और उसके लिये यही लोक है तो यहा का सुख ही हमारा उद्देश होना चाहिये, इसलिये उसी

‡ कर्ज लेके न देना ऐसा नहीं है. देखा अ १३

की वृद्धि और प्राप्ति वास्ते यत्न करना चाहिये. सुख दुःख मिश्रित हैं, इसलिये त्याज्य ऐसा नहीं समझना चाहिये; किंतु दुःखका निवारण करते हुये सुखका ग्रहण करते जाना चाहिये. क्या हिरणों के भय से धान न बोना चाहिये? भिखारियों के भयसे क्या भोजन न बनावें? और अंतमें मर जाना है इसलिये क्या न खावें? इसी प्रकार दुःख के भय से सुख का परिहार नहीं कर देना चाहिये. तुषों से ढके हुये चांवल को मूरख से इतर कोई नहीं छोडता; किंतु बुद्धिमान तुष को अलग कर के चांवल खाते हैं, इसी प्रकार दुःख को हटाते जा के यथासंभव सुख का उपभोग कर के जीना चाहिये.

१३. **सार**— यहां ही स्वर्ग (ऐश्वर्य प्राप्ति) है. यहां ही नरक (कांटे से वा सृष्टि-नियम प्रकृति के नियम विरुद्ध चलने से जो दुःख उत्पन्न होने वाला) है. यहां ही मोक्ष (देह का नाश हो जाना) है. न कोई परलोक गमन है, न उसके वास्ते धर्म है. जिसको धर्म धर्म कहते हैं उस धर्म की बातें लोगों ने अपनी जीविका के वास्ते बना ली हैं. इस मिथ्या अध्यास को छोडो और लोकसुख से वंचित मत रहो. अर्थशास्त्र के अनुसार कमाओ, कामशास्त्र के अनुसार भोगो, और नीति (लोकनीति, राज्यनीति, प्रकृतिनीति) के अनुसार वर्तन करो. इसी में तुम्हारा कल्याण है यही परमपुरुषार्थ है. और सच तो यह है कि कहने में चाहे कुछ भी कहो और मन में कुछ भी मानो (आत्मवित् है पुनर्जन्म है, ईश्वर है, मुक्ति है, इत्यादि है) परंतु करने में (वर्तन में) तो हमारा ही मत फैला हुवा है. विचारो. (१) लोक डरते हैं किस से? राजा वा सोसाइटी से किंवा ईश्वर से? (२) लोक किस की चिंता करते हैं? लोक की वा परलोक की? (३) अपना आप किस को समझते हैं? शरीर को वा इससे जुदा आत्मा को? (४) लोक चाहते हैं किस को? प्रत्यक्ष सिद्ध सुख को वा कल्पित परोक्ष सुख को? सारांश आत्मा, परलोक, ईश्वर और मुक्ति की पुकार भले ही करो परंतु करने में तो तुम हमारे साथ ही मिल जाते हो; इसलिये हमारा मत सर्वमान्य लोकायत है. आभाणक जडवादी प्रसिद्ध है.

जो ईश्वरादि अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति, बंध, पुनर्जन्म, मोक्ष के साधन, सृष्टि उत्पत्तिलय इन आठ बातों को बीच में न लें-इनकी भावना से उपेक्षा हो जाय; तथा ईश्वर अवतारादि अर्थात् ईश्वर अवतार, ईश्वरांश, ईशपुत्र, ईशदूत, सर्वज्ञ, तिर्थंकर, देवयोगी, आचार्य, ईश्वरीयग्रंथ, सर्वज्ञकृतग्रंथ इन ११ भावना से किनारा कर लिया जाय याने इनको बीच में न लिया जाय और पूर्वोक्त पंचदशांग अनुसार

वर्तन हो तो ३ वर्ष के अंदर ही जनमंडल की काया पलट जाय--सुन्दर--सुखकारक नवीन आकृति बन जाय.

जडवाद.

नोट: — सर्व दर्शनसंग्रह मे बृहस्पति के मूल वाक्य हैं. चेतनवादि, जडवादियों की निंदा करते है, नास्तिकादिपद लगाके हो हो करते हैं; परंतु जो सच्चे और पक्के प्रकृतिवादि हैं वे नीति मे पक्के होते हैं, बहुधा चेतनवादियों मे उत्तम देखने में आये. वे परकी उन्नति में अपनी उन्नति मानते हैं क्योंकि अपने को समष्टि शरीरका अंग समझते है. हां, जो अपूर्ण जडवादि हैं वे अतोततो भ्रष्ट होते हैं, उनका सग त्याज्य होता है.

आजतक जडवाद (अचिदवाद) की कोई सप्रदाय नहीं चली, किंतु जब तब कोई छूटी छूटी व्यक्ति होती हैं. उनमे भी पूरा अचिदवादि तो विरल होता है, इसलिये इस दर्शन का विशेष प्रचार नहीं हुवा और न है. (शं.) शूरवीरसिंह तो विरले ही होते हैं, गाय बकरी के बाडे होते हैं. (उ.) उपयोग नाशक सिंह की अपेक्षा नही है. वोह उजड वनमें अकेला ही रहो. उपयोग में आने वाली और जीवन की हेतु जो गायादि उनकी ही अपेक्षा है. सारांश चिदवाद विशेषोपयोगी है.

सत्यामृत प्रवाह एक प्रसिद्ध ग्रंथ है जो पंडित श्रद्धाराम फल्लोरी का बनाया हुवा है. उसमें जडवाद चेतनवाद का वर्णन शंका समाधान पूर्वक करके प्रकृतिवाद-स्थापन किया है और व्यवहार तथा जीवनोपयोगी नीति तथा गुणों का भली प्रकार विस्तार किया है. ग्रंथ वांचने जेसा है. यूरोप खंड के एपिकुरस, बेकन, बेन्थाम, कोम्टे मिल वगेरे इस जडवादी टोले के मुख्य पात्र हैं.

जडवाद नवीन कल्पना नहीं है किंतु प्राचीन है. उपनिषदो मे भी इसका चिन्ह पाया जाता है इसलिये चिदचिदवाद उभय चले आ रहे हैं. अचिदवाद पर जो आक्षेप हैं वे इसी ग्रंथ मे जगह जगह है.

शोधक.

जीव शरीर इंद्रियादि का परिणाम नहीं किंतु शरीरादि से भिन्न है, उसका पुनर्जन्म है, आवागमन है, इस सृष्टि का कोई अधिष्ठानाधार नियामक (ईश्वर) है. सृष्टिस्वभावतः अनादि नही है. अनुमान प्रमाण है और जडवादि भी मानते हैं इत्यादि बातें उपर अचिदवाद मे सिद्ध की हैं, सो स्मरीये; इसलिये विशेष अपवाद

नहीं लिखा. शरीर से भिन्न जीवात्मा सिद्ध हुवा और कोई व्यापक आधार (ईश्वर) सिद्ध हुवा कि चारवाक मत स्वयं उड जाता है.

विभूपकमत.

यह बात ठीक है कि जडवाद की प्रवृत्ति कभी भी नहुई और लोगें का विशेप वर्तन—जीवन व्यवहार प्रकृतिवाद पर है. तथापि जो कोई व्यक्ति को जडवाद भावना से शांति होती हो तो उपरोक्त सप्तक को विचार के पंचदशांग पूर्वक वर्ते तो उसको हानी नहीं है अ. १ विभूपकमत न. १९ विचारो. अन्यथा ठीक नही.'

यदि धर्ममतपंथों का अनुचित अंश छुट जाय और उपयोगी—योग्य अंश का प्रचार हो, ऐसी इच्छा हो तो ईशादि और ईश्वरावतारादि ११ बातों को दरमियान में नलें और न उनका खंडन मंडन हो, तथा उनको तिरस्कार द्रष्टि से न देखा जाय तो लोकमंडल की काया पलट जाय, सबमें धार्मिकसप का साम्यराज्य हो जाय; परंतु जो ऐसा हो तो जेसे उपस्थिति में जडवाद का रहना असंभव है, वेसे ही ईश्वरादि और ईश्वरावतारादि १९ बातों को बीचमे नलें, यह बात भी असभव है—मनकी कल्पना मात्र है.

---

१३. नकुलीश पाशुपत का मंतव्य.

वैष्णवमंडल मे * हमेशे विष्णु का दासत्व रहने से वोह दुःख ही है, सो इष्ट नहीं और जो हमारे जेसे परमैश्वर्य रहित परतंत्र है वे कभी मुक्त नही हो सकेंगे. पक्षान्तर में मुक्तात्मा, परमेश्वर के गुणसंबंधवश पुरुपत्वलाभ और समस्त दुःख का बीज नाश करके साक्षात परमेश्वरवत् हो जाते हैं. इस प्रकार अनुमान सिद्ध कोई महेश्वर उपासक परमैश्वर्य की कामना से परमपुरुपार्थ प्राप्ति का उपायस्वरूप पंचार्थ, *प्रवचनपर पाशुपतशास्त्र का आश्रय करते हैं.*

(१) इस शास्त्र का पहिला सूत्र. "अथातः पशुपतेः पाशुपत योगविधि व्याख्यासामः (शिप्य की जिज्ञासा होने पर गुरु पशुपतयोगविधि का व्याख्या करते है) नवगण को जानने वाला और सस्कार कराने में जो समर्थ सो गुरु.

(२) पंचक. लाभ ५, मल ५, उपाय ५, देश ५, अवस्था ५, विशुद्ध ५, दिक्षाकारिक ५, और बल ५, यह ८ और तीन वृत्ति (भिक्षावृत्ति) यह पंचक कहाने

* महाभारत वा गीता के अनुयायी वा भागवत के अनुयायी.

हैं. १. विधि वाले उपाय फलका नाम लाभ है, सो पांच प्रकार का है. ज्ञान, तपस्या, नित्यत्व. स्थिति और शुद्धि. २. आत्माश्रित दुष्टभाव का नाम मल है; मिथ्याज्ञान, अधर्म–शक्ति, हेतु, च्युति, पशुत्व मल. यह पांचों त्याज्य हैं. ३. साधक की शुद्धि का हेतु सो उपाय भी पांच प्रकार का है, वासचर्या, जप, ध्यान, रुद्रस्मरण, प्रतिपत्ति, यह लाभ के उपाय है. ४. जिस द्वारा ज्ञान और तपस्या की वृद्धि हो उसे देश कहते हैं. यथा गुरु जन, गुफा, श्मशान, रुद्र. ५. लाभ प्राप्ति तक इन सब में जो अवस्थान है उसका नाम अवस्था. यथा व्यक्त, अव्यक्त, जप, आदान और निष्ठा. ६. मिथ्याज्ञानादि का सर्वथा नाश हो जाना विशुद्धि है. अज्ञानहानी, असंगता, संगनाश, पशुत्वस्खलन, करच्युति. ७. द्रव्य, काल, क्रिया, मूर्ति और गुरु यह पांच दिक्षाकारक पंचक है. ८. गुरुभक्ति, मनकी प्रसन्नता, दुःखसुखादि, द्वंद्वजन्य धर्म और अप्रमाद इन (का सहन) पांचों का नाम बलपंचक है. ९. मलपंचक के निर्बल और लघु करने वास्ते मान, अमान, विरोधी अन्नार्जन का नाम वृत्ति है, सो भैक्ष्य, उत्कृष्ट और यथा लब्ध नाम से व्याख्यात है. सारांश भिक्षा से अन्नसंपादन करना अन्य प्रकार आयास वा यत्न नही करना.

(३) दुःख का आत्यंतिक अभाव होना उद्देश है. सर्वथा दुःख न होना यह अनात्मक पर्यवसान है. द्रव्य शक्ति क्रिया का एकत्व और ऐश्वर्य यह सात्मक पर्यवसान है (ईश्वरवत् स्वतंत्र होना). सो पांच प्रकार का है–दर्शन, श्रवण, मनन, विज्ञान और सर्वज्ञत्व. यह सब धी शक्ति है (मुक्त को होती है यही स्वतंत्रता ईश्वर समान होना है). क्रियाशक्ति के तीन भेद हैं.

(४) जितने अस्वतंत्र कार्य हैं वे ३ प्रकार के हैं. विद्या, कला, पशु. पशुगतविद्या २ प्रकार की बोधस्वभावा और अबोधस्वभावा. विवेकप्रवृत्ति और अविवेकप्रवृत्ति यह दे बोधस्वभाव है उनमें विवेकप्रवृत्ति को चित्त कहते हैं. कला दे प्रकार की १. कार्याख्या (पंचभूत और पंचगुण), कारणाख्या (ज्ञानेंद्रिय ५ कर्मेंद्रिय ५ बुद्धि, अहंकार और मन याने अतःकरण). पशु तत्त्व संबंधी २ भाग सांजन (शरीर इंद्रिय संबंध विशिष्ट). निरंजन (उनसे रहित).

(५) संपूर्ण सृष्टि का संहारकर्ता पती रुद्र (महेश्वर) कारण है. गुणकर्म भेद से अनेक प्रकार का कहा जाता है यथा पति (निरतिशयदृक क्रियाशक्ति विशिष्ट) साध (वर्तमान अचिन्त्य ऐश्वर्यवान).

(६) चित्त द्वारा आत्मा और ईश्वर के योग का नाम **योग** है. सो दो प्रकार का है. जप और ध्यानादि क्रियालक्षण वाला १ और संविद गति प्रभृति का नाम क्रियोपरम (अक्रिय) लक्षण है २.

(७) धर्मार्थ साधक व्यापार का नाम **विधि** है. सो प्रधान और अप्रधान भेद से दो प्रकार की है. साक्षात् धर्म हेतुचर्या का नाम प्रधानभूत है. वोह दो प्रकार का है. १. व्रत २. समस्तद्वार इनमें भस्मस्नान, भस्मशयन, उपहार, जप, और प्रदाक्षिणा इन का नाम व्रत है. इनमें **उपहार** (नियम) के ६ अंग हैं इन अगों की सहायता से उपासना करनी चाहिये. छ अंग १. हसित (अहहअट्टहास करना). २. गीत (गंधर्व शास्त्र के अनुसार महेश्वर के गुण और धर्म आदि के निमित्त सब चिंता करनी). ३. नृत्य (नाट्यशास्त्र के अनुसार भावाभाव समेत नाचना). ४. **डुडुक्कार** जिह्वा और तालु इन उभय के संयोग में वृषनाद के तुल्यशब्द करना). जनसमुदाय में चारों गोपनीय भाव से करना ५. जप (महेश्वर के मंत्र नाम का जप) और परिक्रमा स्पष्ट हैं यहां तक व्रत कहा द्वार के ५ भेद हैं. १. असुप्त का सुप्त (...) के समान दर्शन को **क्राथन** कहते हैं. २. वायुवत् शरीर के सब अवयव के स्पन्दन का नाम **स्पंदन**. ३. विकल के समान गमन का नाम **मन्दन**. ४. रुपवंती कामिनी को देखने पर कामी पुरुष की तरह लोकनिंदित कर्म करने का नाम **अवतित्करण** है. ५. अर्थहीन और व्याहत शब्दों का उच्चारण **अवितद्भाषण** कहाता हैं. गुणभूत चर्याशब्द से अनुग्राहक, अनुस्नान, भैषज्य, और उच्छिष्टादि का समह है. (विशेष देखना हो तो पंचविधानराशीकर भाष्य में देखो. सप्रमाण लिखा है). ऐसे योगविधि से दुःख रहित स्वतंत्रता ईश्वरवत् ऐश्वर्य प्राप्त होता है.

(८) इस शास्त्र की विशेषता कहते हैं. अन्यमत ग्रंथों में दुःख निवृत्ति सो भी भावी में. इसमे नित्यपक्षादि निर्दिष्ट है अन्यो में अपेक्षा को कारण कहा है. इसमे निरपेक्ष महेश्वर भगवान ने ही इस प्रकार निर्देश किया है. अन्य में योग को कैवल्यादि फल का हेतु कहा है. इसमें योग का फल दुःखरहित पारमेश्वर्य कहा है. अन्य में स्वर्गादि से पुनरावृत्ति कही है. इसमें **अपुनरावृत्ति** और सामीप्यादि फल बताया है.

(९) **(शं.)** यदि परमेश्वर निरपेक्ष कारण तो कर्मनिष्फल, तथा सब कार्य एक समय हों. (उ.) परमेश्वर निरपेक्ष कारण हो तो क्या कर्म विफल होंगे? सार

यह है के कर्ममात्र ईश्वरेच्छा अनुगृहित हैः अतः सफल है. ईश्वरेच्छा के आधीन कहने से पशु (जीव) गण की प्रवृत्ति संचारित होती है. ईश्वर सर्वथा आप्तकाम है. अचिंत्य शक्तिसंपन्न परमेश्वर की इच्छा अनुसार क्रिया शक्ति द्वारा कार्य कारित्व होता है जो कि वह कर्मादि निरपेक्ष और स्वेछाचारी है, इस कारण उसको सर्वकारण का कारण कहते हैं.

(१०) ईश्वर के ज्ञान से ही मोक्ष लाभ होता है, ऐसा नहीं है; क्योंकि शास्त्र विफल हो. मल वाले को साक्षात्कार नहीं होता, और तत्त्वज्ञान, पशुपत पंचार्थ शास्त्र के विना नहीं हो सकता. इसलिये मुमुक्षो को चाहिये कि पंचार्थ के प्रतिपादन पीछे पाशुपत शास्त्र का आश्रय करे (सर्व. स में से).

(नोट) नकुलीश किस समय हुवा है, यह ज्ञात न हुवा ऐसे ऐसे मत तंत्र भावना पीछे हुये हों ऐसा जान पडता है आर्य प्रजा की उन्नति (!!) का समय और उसके साधन का ज्ञान हो इसलिये व्रत और द्वार का वर्णन लिखना पडा है. सुनते हैं, कि इस मत की सम्प्रदाय नेपाल में है वहां पशुपत तंत्र और उसके मत का विशेष प्रचार है. यह शिवमत के पीछे वा शिवमत इसके पीछे चला इसमें तकरार है. यह दोनों शिवअवलंबी हैं. शंकराचार्य जी के समय यह दोनों मत थे, ऐसा शंकर दिगविजय से मान सकते हैं.

शोधक.

प्रतिपक्ष उसमे अपवाद निकालता है. पाशुपत मत मे जीव ईश्वरकृत वा अनादि है, ऐसा नहीं कहा है, परंतु नित्य ऐश्वर्य माना है, इससे जीव को अनादि अनंत मानना स्पष्ट है. जब यूं है तो मुक्ति से आवृत्ति होनी चाहिये-ऐश्वर्य का नाश होके जन्म लेना चाहिये, नहीं तो सृष्टि का उच्छेद हो जायगा. और जो ईश्वर निरपेक्ष है, उसने जीव नवीन किये हैं, ऐसा मानें तो बंध मोक्ष परतंत्र रहा, जीव जवाबदार नहीं, साधन की अपेक्षा नहीं अर्थात् शास्त्र निष्फल ठेरा; क्योंकि जैसा बनाया जैसी योग्यता दी वैसे जीव करता है अतः उत्तरदाता नहीं.

ईश्वर कर्म अपेक्षा विना स्वतंत्र इच्छा से जगत् (जीव, भूत) बनाता हो तो निर्दयता और विषमता दोष आवेगा; क्योंकि किसी को दुःखी, किसी को सुखी, किसी को अंगहीन, किसी को मूढ, किसी को बुद्धिमान, किसी को नर, किसी को मादा, किसी को पशु, किसी को पक्षी, किसी को राजा, किसी को रंक, क्यों बनाया इसका उत्तर नहीं मिलता. तथा अ. १ पेज १९४ से १९६ तक वाले दोष आवेंगे.

जो जीव अणु है तो मुक्ति में जितना ऐश्वर्य (सर्वज्ञतादि) माना है वोह अणु में नहीं हो सकता. जो जीव मध्यम हो तो यद्यपि कुछ ऐश्वर्य हो सकता है परंतु मध्यम लचकवाला होने से नाशवान ठेरता है, इसलिये तंत्र साधन व्यर्थ ठेरेंगे. और जो जीव विभु है तो क्रिया के अभाव से तन्त्रोक्त व्रत वगेरे न कर सकेगा. इसलिये ऐश्वर्य (मोक्ष) न मिल सकेगा. जो परिच्छिन्न चित्तद्वारा साधन होना मानें तो भोक्ता भी चित्त द्वारा होगा; परंतु चित्त मध्यम नाशवान होने से भोक्तृत्व का अभाव रहेगा. और जो नवीन नवीन चित्त की प्राप्ति मानें तो किस द्वारा हो यह सिद्ध न होगा; क्योंकि स्वयं निष्क्रिय स्वतंत्र है. चित्त जड होने से स्वयं नहीं आ सकता. ईश्वर की अपेक्षा हो तो मुक्त परतंत्र हो जायगा.

पशु अनेक परंतु उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता पशुपति एक है, ऐसा माना है. तो तंत्र की प्रतिज्ञा अनुसार मुक्त को सर्वथा स्वतंत्रता न रही परतंत्रता आ ही जाती है; क्योंकि उसके इच्छित भोग की सामग्री परतंत्र हो गई.

ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानो तो भी अपरिच्छिन्न परिच्छिन्न और न इससे विपरीत हो सकता है; इसलिये ईश्वर का अवतार वा शरीररूप होना नहीं बनता. जिस ईश्वर को त्रिशूलादि शस्त्रधारण करना पडे वोह निर्भय सर्वशक्तिमान नहीं माना जा सकता. ईश्वर अपनी शक्ति द्वारा जीव को दिव्य बना के अपने निराकार व्यापक स्वरूप का दर्शन (ज्ञान) कराने को समर्थ है जेसा कि मुक्तो को होता है; अतः भक्तो के अर्थ अवतार लेना बताना यह उसकी शक्ति की न्यूनता दरसाना है. (अवतारादि प्रसग सूत्र. त. द. अ. १ सू. ८१ याद करिये).

विभूषक मत.

हमको इस विषय से उपेक्षा है, क्योंकि हम इसके आशय को नहीं जान सके वा तो भारत प्रजा का नमूना जान के उपेक्षणीय है.

१४. शैव मत.

(१) ईश्वर जीवो के कर्म अनुसार, सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति और संहार का निमित्तकारण है. निरपेक्षकारण हो तो उसमें वैषम्य और नैर्घृण्य दोष आता है.

(२) पति (चेतन महेश्वर, स्वतंत्र), पशु (चेतन जीव अस्वतंत्र) और **पाश** (अचेतन प्रकृति और उसके कार्य). ऐसे तीन प्रकार के पदार्थ हैं. इनका और विद्या, क्रिया, योग और चर्या (विहित) का वर्णन है वोह **चतुश्चरण महातंत्र** है.

(३) पश्वादि का ज्ञान दिक्षा लिये (गुरु किये) विना नहीं हो सकता.

(४) **पति**=शिव, सर्वोपरी है, सर्वज्ञ, सर्वात्मक, सर्वव्यापी, स्वतंत्र, चेतन, सर्व का नियंता, सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति, संहार तिरोभाव और अनुग्रहकरण यह उसके कृत्य है. मुक्त विद्येश्वर उसके आधीन रहते हैं. आज्ञाकरण की संभावना नहीं वोह अशरीर है. परंतु निराकार का ध्यान पूजा असंभव होने से भक्तो के उपर अनुग्रह कर के वेसा वेसा (यथा अनुकूल आकार धर लेता है. शरीर धारण में अन्यो समान क्लेशादि दोष नहीं होते; क्योंकि वोह षड्गुण (ऐश्वर्य, स्वतंत्र, सर्व शक्तिमान, उत्पत्ति स्थिति लय कर्ता) संपन्न है, उसका शरीर प्राकृत नहीं किंतु शक्त (शक्ति) रूप है सो अपनी इच्छा से होता है उस शरीर का नाम शाक्त है. ईशानादि उसके मन्त्रादि है

(५) **पशु**=इस मत मे जीव अणु नहीं, क्षेत्रज्ञादि विशेषणवाला और शरीर से इतर है, इसलिये जीव चारवाक जैसा नही नैयायिको समान प्रकाश भी नहीं, क्योंकि उसमे अनवस्था प्रसंग आता है. यदि वोह मेय तो उससे पर उसका माता होना चाहिये. जैनियो के समान अव्यापक भी नहीं और बौद्धो समान क्षणिक भी नही है, क्योंकि देश काल अवच्छेद रहित है. अर्थात विभु है नित्य है अद्वैतवादियो समान एक भी नहीं, क्योंकि भोग जुदा जुदा देखते है. साख्यो समान अकर्ता भी नहीं क्योंकि एक क्रिया रूप चेतनमय शिव स्वरूप होने से पाशजाल का निराकरण करता है. *

(६) पशु के पाश का नाश होने पर वोह शिवस्वरूप हो जाता है यह मुक्ति शिव के प्रसाद से होती है. महेश्वर आचार्य की मूर्ति मे स्थित हो के दिक्षा-कारण द्वारा मोक्ष प्रदान करते हैं अर्थात् अधिकारी मुमुक्षु (जिसके कलुष परिपक्क हो गये है उस) के पाशजाल को काट डालते है.

---

* नं ५ का नतीजा=शिव मत बुद्ध जैन के पीछे चला, क्योंकि तंत्र म उसका निषेध है बृहस्पति, मृगेंद्र, पौष्कर, भोजराज, अघोर, रामकंठ, नारायणकंठ यह इस संप्रदाय म आचार्य या प्रसिद्ध हुये हैं

(७) पशु तीन प्रकार के होते हैं. (१) विज्ञानाकल (केवलमात्र मुक्त) इनमे जो समाप्त कलुष (पाप रहित शुद्ध) होते हैं उनको महेश्वर विद्येश्वरादि ऐश्वर्य प्रदान करते हैं और ७ कोटी मंत्र देते हैं. असमाप्त कलुष को यह पदवी नहीं मिलती. (२) प्रलयाकल (मल कर्म युक्त) इनमें से जो पक्कपाश हैं उनकी ६ में कहे अनुसार (दिक्षा द्वारा) मुक्ति हो जाती है. और जो उससे विलक्षण हैं वे पुर्यष्टक (बुद्धि, कर्म, अंतःकरण, इंद्रिय ५) देह युक्त होके यथाकर्म जन्म लेते हैं. (३) सकल (मलमाया कर्म युक्त=पामर).

(८) पाश=मायाकारी पाशजाल वा धर्म का नाम पाश है. सो ४ प्रकार का है. (१) मल पशु की योग्यता का आच्छादनकर्ता=आवृत्ति. (२) कर्म (फलार्थी धर्म अधर्म). (३) माया (प्रलयकाल में जिस विषे सर्व को लय होना पडता है). (४) बल (रोध शक्ति), बंध का हेतु होने से पाश नाम है.

(९) इस प्रकार पति, विद्या, अविद्या, पशु, पाश और कारण ६ विषयक हैं. (विशेष वास्ते ज्ञानरत्नावली देखो) (सर्व सं. में से).

शोधक.

(१) ईश्वर सापेक्षकारण है तो वक्ष्यमाण, इसराईल मत का. जो आक्षेप हो वोह होगा, तथा वक्ष्यमाण त्रिवाद आवृत्ति वाले दोष आवेंगे.

(२) महेश्वर के अवतार मानने में पूर्व (अ. १ गत) अवतारादि प्रसंग सू. ८२ में जो दोष कहे हैं वे आवेंगे. अपरिच्छिन्न परिच्छिन्न नहीं हो सकता, असंभव है. शस्त्रधारण यह परिच्छिन्नता और भय का चिह्न है; ईश्वर ऐसा नहीं हो सकता.

(३) जीव जब कि व्यापक नाना हैं तो कर्ता भोक्ता नहीं हो सकता; क्योंकि विभु अक्रिय और सम होता है

(४) जब सब जीव मोक्ष हो जायंगे तो सृष्टि का उच्छेद होगा जो कि असंभव है तथा महेश्वर और मुक्त जीव निष्फल रहेंगे. (त. द. अ. ३ मुक्ति प्रसंग तथा वेद उपनिषद् प्रसंग याद करिये) परंतु निष्फलत्व का अभाव है; अतः यह पक्ष समीचीन नहीं जान पडता.

(५) मुक्ति में वैभव ऐश्वर्य हो तो भी वहां से संसार में आवृत्ति होगी. नहीं तो प्रकृति माया निकम्मी रहेगी. परंतु यह असंभव है. इत्यादि.

विभूषक मत.

शैव मत अवतारी त्रिवाद जैसा त्रिवाद है, जिस किसी अमुक एक व्यक्ति की भावना में यह तुलता हो तो उपरोक्त पंचदशांग पूर्वक यह त्रिवाद पाले तो उसकी हानि विशेष नहीं जान पडती, अन्यथा नहीं.

---

१५ रसेश्वरदर्शन.

कोई कोई महेश्वर संप्रदाय वाले परमेश्वर को तादात्म्य मानके भी शरीर को अमर रखा जाय तो जीवन मुक्ति का सुख हो, ऐसा मान के रस (पार्द) को उसका उपाय मानते हैं. सब दर्शनों में देहपात पीछे मुक्ति मिलना कहते हैं, उस पर विश्वास नहीं आ सकता. धन, शरीर और भोग सब को नित्य जान के मुक्ति का उपाय करना चाहिये. मुक्ति ब्रह्म के ज्ञान से, ज्ञान अभ्यास से; और अभ्यास का संग्रह देह की नित्य स्थिरता से हो सकता है. सर्व संसार अनित्य तो शरीर कैसे नित्य रह सकता है, ऐसी शंका व्यर्थ है. "हर गौरी" के प्रयोग से नित्य रह सकता है. हर से पार्द और गौरी से अभरक हुवा है. १८ संस्कार वाले पार्द की महिमा. गुण और फल जानके रस सिद्ध करके महेशादि देव, कंसादि दैत्य, बालखिल्यादि ऋषि, सोमेश्वरादि राजा. कपिल, कापालि इत्यादि अमर शरीर कर के विचरते हैं, ऐसा ग्रंथों में प्रसिद्ध है. ज्ञेय में मिल जाना अर्थात् जीवन छोडना क्या इसी का नाम मुक्ति? यह किसी को इष्ट नहीं. इसलिये दिव्य देह कर के फेर योग द्वारा भृकुटी में जगत् के दर्शन करे उसको चिन्मय ज्योति के दर्शन होते हैं. इस ज्योति में रसरूप से ब्रह्म विराजमान होते हैं वोह विकल्पशून्य, शांतस्वरूप होते हैं. ऐसे ब्रह्म को पाके नित्य जीवन मुक्त होता है. (सर्व. सं. से).

(नोट) आर्य प्रजा के साक्षरों की खूबी का यह नमूना है. जो जिस विषय को लेता है वोह उसको किसी अनोखे रूप में ला के छोडता है. रस ग्रंथों में इस मत का विस्तार है.

शोधक.

(जब कि शरीर, पार्द और अभरक स्वयं उत्पत्ति वाले हैं तो शरीर अमर नहीं हो सकता. और पारदादि स्वयं नाशवान होने से शरीर को अमर नहीं कर सकने यह स्पष्ट है. देवादि का नित्य शरीर मानना भ्रममूलक है). किसी को भी हर गौरी द्वारा अमर शरीर नहीं हुवा है.

विभूषक.

विदूषक को पर के दोष का देखना और खंडन मंडन करना, यह दो बेमारी होती हैं, जेसे जिसको पर निंदा करने का स्वभाव होने से पर के भूषण का ग्रहण नहीं होता, इसलिये वोह आपही खामीवाला रह जाता है, ऐसे ही यहां है उत्पत्ति नाश तो सब जानते हैं जो इसे विदूषक दरसावे तो क्या महत्ता हुई. वात यह है कि जो पार्द अष्टादश संस्कार वाला और अभरक सस्कारी तैयार हो जावे तो हजारों लाखों जीवों को रोग पीडा से बचा सकें, ऐसी यह दोनों वस्तु हैं तथाहि उनका शोधक यद्यपि जब तब किसी न किसी बहाने से शरीर को छोडेगा तथापि सर्व साधारणों से निरोगी बहुत आयुष्य को प्राप्त होगा और यदि ज्ञानवान होगा तो विशेष काल जीवन मुक्ति का सुख भोग सकेगा और परोपकार कर सकेगा. इतना ही आशय है. अमेरीकन ने लाखों रुपये खर्च कर के बडी मेहनत उठा के अत्युपयोगी प्रकाशमान रेडीयम तत्त्व बनाया; परंतु आर्यवर्त में ऐसा कोई वैद्य और राजा नहीं निकला कि जो प्राचीन महर्षिओं के शोधे हुये संस्कारों के अनुसार पार्द तैयार करे और करावे. यह आर्य प्रजा के दुर्भाग्य नहीं तो क्या! दर्शनकार ने इस विषय को रोचक वचन में लिखा है, इसलिये शंका करने का अवसर नहीं है.

---

१६. बुद्धदेव–बौद्धदर्शन.

राजकुमार शाक्य मुनि गौतम (सिद्धार्थ–बुद्ध) विक्रम पू. ४८६, ईसा पूर्व ५४३ मे जन्मे वि. पू ४५१ में बुधत्व प्राप्त हुवा और वि. पू. ४०६ मे मोक्ष हुये. उन्होंने अपना कोई धर्म विशेष याने नवीन धर्म नहो चलाया, किंतु नीति, संयम, सचाई समानता और उपयोग पर उनकी द्रष्टि रही तथा बुराई से जुदा रहना ऐसा उनके उपदेश से जान पडता है. वे अर्हत्व के कट्टे विरोधी थे.

उनका विश्वास था के बाहिर का आडंबर सब मिथ्या है. धर्म आत्मा की वस्तु है और वह सब के लिये समान हैं. उसमें. जातपात का कोई भेद नहीं. सब मनुष्य समान हैं. जो जेसा करता है वोह वेसा बनता है. शिवसंकल्प होना चाहिये. इस जगत में सब कुछ अस्थायी है. तृष्णा दुःख का मूल है. उसके काटने से निर्वाण मिलता है (नव. द. सं. में से).

बुद्धदेव का उपदेश है कि, "तुम जो सुनो उसको, चलती आईदंत कथा को, फेलाई हुई अफवाह को, जिस विषय में बहुत बोलते हैं उसको, प्राचीन मुनि की

पुस्तक मे लिखा है इसलिये उस लेख को, अटकलो को, आदत पडजाने से जो बात तुम को परिचित हो गई हो सतरूप मे उसको, और तुम्हारे गुरु वा बडो के कथनमात्र को मान बेठना नही, किंतु अवलोकन और पृथक् करण (परीक्षा-संशोधन) किये पीछे जब तुम्हारी बुद्धि उस विषय मे हा करे और उसमें मे एक वा अनेको का श्रेय और हित बढे तब उस विषय को ग्रहण करो" (भट्ट मोक्षमूलर के वेदांत व्याख्यान के तरजुमे में से)

यज्ञ में अग्निहोत्र और छंद मे सावित्री उत्तम है. (आग्गिहुत मुखायज्ञा सावति छंद सो मुखम. त्रिपटक सेलसुत २।४५६) जो त्रिविधि यज्ञ को करता है वोह ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है (यायजेत निविधि ++ ब्रह्म लोकन्तिब्रुमि. माघसुत) वेदाभ्यासि वेदोक्त कर्म करके जो समदर्शी होता है वही वेद ज्ञाता है (वेदानि विचेय्य केवलानि + + सव्वेद मतिच्चवेद गूसो. सुहियसुत) 'एसो अध्म्मो दंडानं ओक्कन्तो पुराणो अभ अनुधर्म'. (ब्राह्मणधम्मसुत) इस प्रकार अक्षवाकु के समय से पुराण नाम का धर्म चल पडा जिसके अनुसार निर्दोष जीवो का यज्ञ मे वध करते है इस प्रकार इस अनुधर्म को पौराणिक वा ब्राह्मधर्म जानो ३ (पुराण बुद्ध से पहिले ऐसा स्पष्ट होता है) इत्यादि बौद्ध धर्म के ग्रंथो म से प्रधानग्रंथ त्रिपटक है उसमे सूतपटक प्रधान अंश है. उसमे बुद्धदेव के वाक्य का संग्रह है और पाली भाषा मे है. उसमे से उपर के वाक्य है 'सतधर्म प्रचारक हिंदी' मार्च और मई स १९११ ई. में छपे है वहा ही यह लिखा है कि त्रिपटक वाक्य देखोगे तो १. बुद्ध ने वेद और यज्ञ की निंदा नही की २ वेदो मे हिंसा प्रतिपादक वाक्य क्षेपक मानते थे ३. वोह आत्मा को अनिर्वचनीय मानते थे ४ वोह वर्णाश्रम कर्म पर मानते थे. इन सब विषय के वाक्य दिये है विस्तारभय से नहीं लिखे.

बौद्धधर्म मे ३ ग्रंथ धर्मशास्त्र कहाते है सूत्र (निंदावर्जित) विनय (आचार विचार शिक्षाशील), अभिधर्म (तत्त्वविचार) इन तीनो के समूह का नाम त्रिपटक है. पालीभाषा मे है उन त्रिपटक में से श्लोक चुन चुन कर के महा संगति सभा (बौद्धो की सभा) ने धम्मग्रंथ बनाया जिसके २६ वर्ग और ४२३ श्लोक है. इंग्रेजी फ्रेंच मे इसका भाषांतर है. यह हिंदी तरजुमेका भी छप गया है. स. १९०९ इ प्राग इंडियनप्रेस मे छपा है उसके देखने मे जान सकोगे कि बुद्धदेव स्वर्ग, नरक, परलोक, पुनर्जन्म, देवता, इंद्र, बुद्ध, धर्म, अधर्म, संयम, यम और योग इन सब को मानते थे, हिंसा के विरोधी थे यज्ञ के पशुवध को तिरस्कारते

थे. ब्राह्मणादि जाति गुणकर्म पर मानते थे, वीर्य पर नहीं· जिसका पुनर्जन्म न हो, वीतराग हो, समदर्शी हो इत्यादि संन्यासियों के जेसे ब्राह्मणों के लक्षण लिखें हैं. इस ग्रंथ में खंडन मंडन नहीं है नीति वगेरे का वर्णन है.

बुद्धदेव जेसा समझते और मानते थे वेसा ही उनका वर्तन था. इन्होंने बहुत बडी तपश्चर्या की थी और ज्ञान होने के अनंतर बुद्ध की पदवी को प्राप्त हुये. इनकी कीर्ति जगप्रसिद्ध है. यह महाराज आर्य प्रजा (भारत प्रजा) के एक भूषित रत्न हुये हैं, जिनको अवतारी (बुद्धावतार–ईश्वर का अवतार) माना गया है; परंतु उनके स्वतंत्र उपदेश को स्वार्थी पक्ष सहन न कर सके अथवा उनके मरने पीछे बौद्धों ने कोई अनोखी हिलचाल की हो, इसलिये उनको नास्तिकादि पद से याद करते हैं. कुछ भी होगा.

उक्त धम्मग्रंथ के आरंभ में जनाया है कि बुद्ध के मरने पीछे बौद्धों ने बडी बडी तीन सभा की थीं. (१) वि. पूर्व ४०६ में बुद्ध के मरने के २ महीने पीछे की जिसमें त्रिपटक शास्त्र की आवृत्ति हुई. (२) वि. पूर्व ३०६ में विशाली में सभा होके त्रिपट की आवृत्ति हुई. (३) वि. पूर्व १७८ में राजा अशोक ‡ की सहायता से विहार में सभा हुई. लंका वगेरे और परखंडों में उपदेशक भेजे गये. (४) वि पूर्व १९६ विषे लंका में सभा हुई थी. इस लिखने का मतलब यह है कि बुद्धदेव के पीछे बौद्ध धर्म नाम पडा है और उनकी शिक्षा पर दार्शनिक विचार उठे हैं, तब बौद्धों के मुख्य चार भेद पड गये (आगे वांचोगे). और ३९० वर्ष तक भारत में इस धर्म का विशेष प्रचार रहा. वर्तमान विषे तिब्बत, लंका, जापान, चीन, कोरया, देश में विशेष है; परंतु रूपांतर पाया हुवा सुना जाता है. बुद्धदेव का मुख्य शिष्य महाकश्यप था. और सौत्रांत्रिकादिक पीछे.

मोक्षमूलर भट्ट अपने षड्दर्शन समुच्चय में लिखते हैं कि "ब्रह्मजाल सूत्र" + कहा जाता है कि बुद्ध ने रचा है. उसमें बुद्ध के समय ६२ मत थे § ऐसा लिखा है उनमें से कितनोंक के मंतव्य भी जनाये हैं. †

---

‡ शंकराचार्य अशोक के पीछे वा पूर्व यह शंका पेदा हो जाती है. जैनी लोक अशोक को जैन मत का मानते हैं.

+ बौद्धों ने बनाया हो ऐसा जान पडता है

§ इनमें जैन मत का नाम नहीं है.

† इस पहिले अध्याय के अध्यागिप से ने बाहिर नहीं है

इसी तफसील से जान पडता है कि बौद्धों में स्याद्वाद (सप्तभंगी) का स्वीकार है (जैन मत में भी है). उन १२ मतों में कितनेक बौद्ध बताये हैं, इससे जान पडता है कि बुद्धदेव के पीछे किसी ने बनाया होगा.

बुद्धदेव का सिद्धांत.

कल्याण धर्म (बौद्ध धर्मकी प्राचीन पुस्तक). अंग्रेजी नाम गास्पल ऑफ बुद्ध.

उसके अनुसार अमेरीकन डाक्टर कारवस साहेब ने इंग्रेजी में (गास्पल ऑफ-बुद्ध) तैयार किया और उसका तरजुमा उरदु में डाक्टर शिववृतलाल वर्मन एम. ए., एल. एल. डी. ने किया सो आर्यगजट मिशन प्रेस लाहोर में छपा.

बुद्धधर्म की विशेष प्रवृत्ति क्यों हुई, उसपर जो आरोप लगे वे ठीक हैं वा नहीं, इसकी शोध मे था. बुद्ध के वाक्य की तलाश थी. जो मिले सो उपर लिखे हैं. ग्रंथ छप रहा है अकस्मात कल्याणधर्म पुस्तक हाथ लग गया. इच्छा पूरी हुई, इसलिये उक्त दोनों डाक्टरान साहेबान का उपकार मानता हूं. (प्रयोजक).

इस किताब में से जो सर्वमान्य सर्वउपयोगी बोधवाक्य हैं सो तो तत्त्वदर्शन अ. ४ गत संग्रहवाद में लिखे हैं ओर जिनका संबंध सिद्धांत के साथ है वे वाक्य यहां लिखता हूं. यद्यपि पूर्व सग्रहित वक्ष्यमाण बौद्धधर्म लिखने से इसका लिखना गौरव है तथापि लाभकारी है, मतकी ऐक्यता ज्ञात होती है, इसलिये गौरव स्वीकार के पाठक वृंद से क्षमा मांगता हूं.

यद्यपि बुद्ध श्री ब्रह्म प्रसंग में स्वयं कहता है (आगे वांचोगे) कि मैं अपना तमाम ज्ञान जाहिर नहीं करता किंतु जरूरत और अधिकार के अनुसार बोध देता हूं, तथापि उसके जुदा जुदा प्रकार (शैली) वाले उपदेश पर बौद्धों ने जो वक्ष्यमाण पक्ष बनाये हैं उनका हेतु ज्ञात हो सकता है और बुद्ध ब्रह्मवित् + ब्रह्म निष्ठ था यह भी जान लिया जाता है, इसलिये बुद्ध के वाक्यों का सार लिखते हैं. पृष्ठांक क. ग्रंथ के हैं.

अब यदि क. ग्रंथ का लेख सत्य हो तो वक्ष्यमाण वाक्य बुद्धदेव के हैं, ऐसा मानना ही पडेगा. परंतु इस ग्रंथ में बुद्ध के जन्म से लेके मरण तक उसका संक्षेप में जीवन चरित्र और उपदेश लिखा है और बुद्धोक्त बुद्ध के पीछे ५०० वर्ष तक की पेशीनगोई (भविष्य) भी लिखा है, इसलिये बुद्ध के ५०० वर्ष पीछे बनाया गया हो,

---

+ बुद्ध प्रच्छन्न ब्रह्मविद.

ऐसा अनुमान कर सकते हैं. अर्थात् बुद्ध के ९०० वर्ष पीछे तक तो बुद्ध का मंतव्य प्रसिद्ध था, ऐसा मान सकते हैं. परंतु इस ग्रंथ में बुद्ध तथा ब्रह्मा वगैरे देवताओं का संवाद भी लिखा है तथा कितनी ही बातें सृष्टि नियम के विरुद्ध-चमत्कारी लिखी हैं और उपर जो बौद्ध ग्रंथ में से बुद्ध के वाक्य लिखे हैं उनसे विरोधाभास वाला भी लेख है, इसलिये यदि इस ग्रंथ में अमुक लेख बनावटी हो तो अमुक वाक्य बुद्ध के हैं वा क्या, ऐसा संशय हो सकेगा. तथापि संमत आशय वाले वाक्य तो उसी के होने चाहियें, ऐसा मानना पडेगा.

बुद्धदेव की दृष्टि पापाभाव, पवित्र व्यवहार, पवित्र जीवन पर रही है; इसलिये यथा देशकाल स्थिति और यथा अधिकार उपदेश है. पार्मार्थिक सिद्धांत को अध्याहार भी रखा है. एक निश्चितरूप में नही भी कहता. आगे बांचोगे. (प्रयोजक).

(मूलग्रंथ में से) क. (वैराग्य).

(१) एक प्रकार से-पीडाते रोगी को देख के रथवान द्वारा सिद्धार्थ (बुद्ध) को यह भान हो गया कि चार (पृ. ज. ते वा.) तत्वों का योग्य संयोग बिगडने से ऐसा हो रहा है. सब इस बला के शिकार हैं (पेज ३२).

(२) और भी एक मुर्दे की लाश देख के रथवान द्वारा यह बोध हो गया था कि जो जन्मा सो मरेगा. मौत से कोई नहीं बच सकता (पेज ३६). इत्यादि प्रकार के अनेक उदाहरण देखने से चित्त में विवेक वैराग्य हो गया. सब को परिवर्तन में पाया. मन के ठेरने से शांति मालूम होती थी. ३९.

ख. (जीव, बंध, पुनर्जन्म, मुक्ति, निर्वाण).

(१) आराव और उसके दो पंडितों ने आत्मा को तन मन से भिन्न बताया. बुद्ध ने कहा कि अहंत्व न जाने से बंधन है. गुण गुणी दो वस्तु नहीं है-गरमी और आग दो वस्तु नहीं हैं (पेज ४६).

(२) मनुष्य अमुक अवयवों का समूह है, उसमें (स्कंध) भाग हैं. आदमी में इंद्रिय, मन, (खयाल) चित्त और बुद्धि शामिल हैं, जिसे मैं कह के आत्मा समझते हैं वोह स्कंधों से इतर अन्य तत्त्व वस्तु नहीं है. मन है, इंद्रिय है, खयाल है और सचाई है. चित्त खयाल से पीछे वा उसमे बाहिर आत्मा कुछ नहीं है. आत्मा को जो तत्त्व मानता है वोह भूल पर है. आत्मा की तलाश [illegible] भूल है. 'मैं हूं' 'मैं हूंगा' 'मै नहीं हूंगा' ऐसे खयाल बुद्धिवान के नहीं

होते. यदि अहत्व शेष रहता है तो तीनो लोक में-कहीं भी जाओ दु.ख भोगना पडेगा (पेज ४७).

(३) उराक से तथागत (बुद्ध) ने कहा कि कर्मवाद से कोई इन्कार नहीं कर सकता, क्योकि कारण के विना कार्य नही होता. आदमी जो बोता है सो काटेगा. जो हम काट रहे है (भोगते है) सो पहिले जन्मो में हमने बोया होगा. § जीव का आवागमन कर्म के तावे है, परतु आदमियो का प्रारब्ध उनके कर्म से बना है. परतु इस 'मै' का आवागमन नही होता. (पेज ४८)

(४) विद्यमान जात (व्यक्ति) मैटर (चार तत्त्व) और विचार का समूह है. वोह ऐसे गुणो से बनी है जो शनैः शनैः वृद्धि को पा के व्यक्त हुये है पचज्ञान इंद्रिय के बीज इस शरीर मे उन पूर्वजो से आये हैं कि जिन्होने वे काम किये थे. विचार (जिनको मै सोचता हू सो) कुछ तो उन दूसरो से मुझे मिले है कि जिन्होने उनको सोचा था. और कुछ मेरे मन मे उन्ही विचारो के समूह से उत्पन्न हुये हैं कि जिन्होने मेरी जात (व्यक्ति) बनने से पहिले इन्ही ज्ञानेंद्रियो से काम लिया और इन्ही खयालात (विचार) को सोचा, वे मेरे गत (पूर्व) जन्म हैं. वे मेरे इस प्रकार के पूर्वज (मौरस) है कि जिस प्रकार कलवाला 'मैं' आज क 'मैं' का बाप हू. और मेरे गतकर्म मेरी विद्यमान जिंदगी (जीवन) की स्थिति के कारण है. (पे. ४८).

(५) यदि यह मान लिया जाय कि आत्मा एक है तो चक्षु वगेरे इंद्रियो के विना भी दर्शनादि कर सके (परतु ऐसा नहीं है). †

(६) आत्मा की स्थिति और उसका परिवर्तन पाना मै जानता हू. कर्म का फल होना मैं मानता हू परतु आत्मा कोई वस्तु नही देखता, जिसको तुम कर्ता भोक्ता वतलाते हो. पुनर्जन्म होता है, परतु आत्मा का आवागमन नहीं होता, क्योकि यह आत्मा-मैंपना-अहत्व (मैं कहता - मैं चाहता) केवल भ्राति है जो आत्मा तत्त्व वस्तु होती, तो उसकी आत्म (अह) भाव से मुक्ति न होती. अज्ञान और पाप उसकी जाति गुण मानने पडेंगे, अतः मुक्ति न होगी. (पेज ४९).

---

§ बीज समूह पूर्ववत् वृक्ष बीज रूप होता है परतु मैंपना तो पुज की अवस्था-परिणाम है, तत्त्व वस्तु नहीं है वद्वत् रागादि और चित्तादि हैं ब्र सि देखो

† परतु देवता वगेरे को स्थूल विना मानते हैं. विधायक का विशेष चक्षादि विना कुछ जान सकता है. अथा लिटाः के यत्र से देखता है अत यह दलील ठीक नहीं है.

(७) मनुष्य के सुख की इच्छा से दुःख के कारण होते हैं. मरने समय वर्तमान व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है, उनके जीते रहने की इच्छा (सस्कार) रहती है और उनका वोह अहंत्व नये जन्म में जाहिर (व्यक्त) होता है. एवं वे चक्कर में रहते हैं. दुनिया पाप और दुःख से भरी हुई है. (९९.)

धर्म सचाई (सत्य) है. वही हमको पाप और दुःख से छुडा सकता है (९६). गौतम को ध्यान में लगने पीछे ज्ञान होने पर जो भान हुवा सो आगे संक्षेप में —

(८) बुद्ध ने जान लिया कि बुराई का मूल अज्ञान है. आरंभ में हस्ती (अस्तित्व) होती है अंधो और ज्ञान विना को. उस अज्ञान के समुद्र मे वासनायें हैं जिनमें बनाने और रचना करने का गुण (स्वभाव) है. इन वासनाओं मे चेतनता वा इंद्रिय शक्ति उत्पन्न होती हैं. इन शक्तिओं से इंद्रियों की रचना (इंद्रियकारी) उत्पन्न होती हैं, जो व्यक्ति रूपत्व से जीती हैं. इन इंद्रियकारी से ६ शक्ति-५ ज्ञानेंद्रिय और चित्त-बनती हैं. इन ६ का वस्तु से स्पर्श होता है. स्पर्श से तमीज (बुद्धि-ज्ञान) पेदा होती है. तमीज, जुदा रहने की इच्छा पेदा करती है, इस इच्छा (कामना-तृष्णा) से पदार्थों के साथ बंधन, ऐसा प्रसिद्ध (व्यक्त) होता है. इस संबंध-बंधन मे अहं.का दिखाव और अहं अहं की धारा का आरंभ होता है और यह अहं नये नये जन्म में जाहिर होता चला जाता है. अहं का वारवार जन्म में आना दुःख, जरा, वेमारी और रोग का कारण है. इनमे दुःख चिंता और निराशा उत्पन्न होती है.

(९) सब दुःख का मूल आरंभ में ही होता है वोह उस अज्ञान मे अव्यक्त रूप में रहता है कि जिससे हस्ति का प्रवाह चलता है. अज्ञान को दूर करे तो उक्त झूठी वासनायें नष्ट हो जायँगी; क्योंकि वे अज्ञान मे पेदा होती हैं. जो इन वासनाओं को छोड दो तो इनसे जो झूठी चेतनता वा हिस्स (इंद्रिय शक्ति) बनते हैं वे मिट जायंगे. झूठे हिस्स को मिटा दो व्यक्तित्व के भ्रम की समाप्ति हो जायगी. इस भ्रम को मिटा दो तो उक्त ६ शक्तियों का भ्रम नष्ट हो जायगा. ६ शक्तियों के भ्रम को मिटा दो तो चीजों के स्पर्श (संबंध, से जो गलत तमीज (ज्ञान-बुद्धि) पेदा होती है उसका पेदा होना बंद हो जायगा. गलत तमीज को बंद करदो तो तुम तृष्णाओ से छूट जाओगे, तृष्णा को मिटा दो तो तुम झूठे बंधन से मुक्त हो जाओगे. झूठे बंधन को दूर करदो तो तुम अहंत्व (स्वत्व-स्वार्थत्व) को लुटा दोगे (अहंत्व नष्ट हो जायगा). जो अहं का स्वार्थत्व जाता रहा तो तुम जन्म, जरा

और मरण से उपर हो जाओगे (याने जन्म मरण न होगा) और सब दुःख से छूट जाओगे. (१६–१७).*

(१०) चार सचाई (सत्य ज्ञान)–दुःख है, जन्म, स्थिति, रोग और मौत दुःख है, प्रतिकूल की प्राप्ति, और प्राप्त इष्ट का वियोग दुःख है और अशक्य प्राप्त की तृष्णा दुःख है. १. दुःख परिणाम है, दुःख का कारण तृष्णा है, जो संसर्ग से उत्पन्न होती है, उससे आशा उससे आत्मा का भ्रम होता है. विषय बंधन रूप में ज्ञात होता है विषयाशक्ति का परिणाम दुःख है. २. दुःख का अंत होता है, जो आत्मा को जीत लेता है वोह तृष्णा कामना से छूट जाता है उससे वासना नहीं होती, इसलिये वोह बुझ जाता है. + ३. चोथी सचाई **अष्टांग मार्ग** है. १. सत्य समझना २. सत्येच्छा. ३. सत्य भाषण ४. सदाचरण ५. सच्ची आजीवका ६. सत्य कोशिश ७. सद्विचार ८. शांत चित्त की सच्ची स्थिति. ‡ यह अष्टांग, दुःख नाश का साधन है. जो योग्य कर्तव्य करता है और अहंत्व (आत्मा) वस्तु नहीं है, ऐसा जानता है, उसको मोक्ष (निर्वाण का आनंद) मिलता है. १८.

जहां आत्मा (जीवत्वभाव) वहां सचाई (सत्यज्ञान) जहां सचाई वहां आत्मा नहीं है. आत्मापना मानना भ्रम है. आत्मा और उसको सुख की इच्छा–आशा या विकल्पमात्र हैं. सचाई † (सत्) नित्य तत्त्व है सद्वर्तन का आनंद है. संसार में बुराई आत्मभाव से होती है. आत्मभाव वहेम है, जब ऐसा ज्ञान हो जाय और

---

* बुद्धदेव की प्रवृत्ति वा उद्देश केवल जीव, उसके बंध मोक्ष और जनमंडल की बहतरी पर है. नहीं कि तमाम ब्रह्मांड के निर्णय पर. सो जीव और उसके बंध मोक्ष संबंधी सिद्धांत उपर के कथन से स्पष्ट हो जाता है. स्कंध के अज्ञानजन्य सब हैं उसके अभाव हुये बंध नहीं रहता.

+ ब्रह्म सिद्धांत में विस्तार है

‡ (१) कर्म का फल होता है (२) पर को भलाई का भाव अहिंसा (३) निंदा, व्यर्थ बकवाद, झूठ, कठोर वचन का त्याग (४) योग्य काम करना, विषयासक्ति न होना, जानवर न मारना (५) विधि धंधे से जीवन, बुरे धंधो से किनारा. (६) मन वचन कर्म से पाप न करना—बुराई न करना, उससे बचे रहना. (७) सच्चे अच्छे विचार करना, नाम रूप इंद्रिय और मन के संकल्पों की नापायदारी (परिवर्तन पाने वाले, नाश होने वाले) का विचार करते रहना. (८) मन को शांत करना

† यह अष्टांग मार्ग है यदि सच्चाई संस्कार तो नाशवान यदि उसका भाव सामान्य प्रत्यय (प्राकृति) वा परमाणु वा ब्रह्म तो वोह है ही.

अहंत्व भाव नष्ट हो जाय तब सचाई और शांति प्राप्त होती है. जो धर्मज्ञ है, जो पर की हानी नहीं करता, जो पाप नहीं करता और जो राग द्वेष कामना से रहित है उसे धन्य है. स्वार्थ और अभिमान को जिसने जीत लिया है वोही बुद्ध है, सिद्ध है और पवित्र है. पेज ६९.

(११) संसारासक्त इस विषय को नहीं समझ सकता; क्योंकि वोह आत्मा में ही सुख मानता है++ ६२. जो जन्मा वोह नाश भी होगा. जिसका आरंभ उसका अंत भी है. आत्मा मानना भ्रम है. ६७.

(१२) जो अहंत्व की हकीक़त और इंद्रियों के कामों को जानता है, उसमें अहंत्व नहीं रहता और नित्य शांति को पावेगा. ८१. कितने कहते हैं कि यह 'मैं' मौत के पीछे रहेगा, कितनेक कहते हैं कि नाश हो जावेगा, यह दोनों भूल पर हैं. जो नाशवान तो सब साधन निष्फल और पाप कर्म और अपस्वार्थ न करने का कोई फल नहीं. और यदि यह अमर तत्त्व है तो वोह पूर्ण है, अबदल है, कर्म की मदद से पूर्ण नहीं किया जा सकता. नीति सभ्यता; शुद्धि और मुक्ति की अपेक्षा न होगी; परंतु वोह सुख दुःख पाता है ऐसा देखते हैं. जो यह मैं नही है, जो हमारे कर्मों का कर्ता है तो कर्म से जुदा काम करने वाला, जानने से जुदा जानने वाला, और जिंदगी से जुदा कोई स्वामी नही है. ८२. *

(१३) इंद्रियों का चीजों के संबंध से स्पर्श होता है. उसमे हिस्स (इम्प्रेशन-भान) पेदा होती है. उससे स्मृतिशक्ति होती है. जेसे सूर्य की गर्मी से सूर्यकांतमणि में आग प्रकट होती है, उसी तरह चीज और इंद्रिय के पेदा हुये ज्ञान से उस स्वामी का जहूर व्यक्त होता है कि जिसे अहं कहते हो. बीज से कूला फूटता है, बीज, कूला (अंकुर) नहीं है, दोनों एक और एक जेसे नहीं हैं, तथापि विरुद्ध (जुदा प्रकार के) भी नहीं हैं, इस प्रकार से प्राणियों की उत्पत्ति होती है. ८२. जागो—विवेक करो—तुमको शांति होगी + जिसको यह ज्ञान हो गया कि मैं कोई नहीं, वोह तमाम आशा तृष्णा और मैंपना दुर कर देगा. † पदार्थों के साथ संबंध, लोभ और स्वत्व जो पिछले जन्मों से वारसे में मिले हैं यही दुनिया में दुःख और

* ११।१२ का बयान ब्र. सि में है.

+ किस को शांति? यदि मैं को तो व्याघात. यदि स्कंध-कलेवर को तो व्यर्थ.

† वोह कौन?

कल्पित सुख के हेतु हैं. जिसने सचाई जानी वोह सब-प्राणिओं के लाभार्थ अभ्यास करे. § ८४. मन की इस स्थिति में मजबूत रहे. मन की यह स्थिति संसार मे सर्वोत्तम है, यही निर्वाण है. पाप त्याग, पवित्र जीवन करना यही सब बुद्धों का धर्म है. ८४.

(१४) संसार वेचैन, चचल (परिवर्तन पाने वाला-नाशवान-अस्थिर) और दुःख का निमित्त है. मन की एकाग्रता करो तो अमर शांति मिलती है. अहं विजातीय गुणों का समूह है. उसकी दुनिया (जीवन सृष्टि) बुदबुदे समान खाली है. ८९.

(१५) यशोधरा! तुमने गतजन्म में वडे पुण्य किये हैं. मेरे पूर्व जन्म में तुम मेरी बहुत मदद करती रही हो. १००.

(१६) मेरे पुत्र (राहुल) को नाशवान दौलत न दूंगा, परंतु पवित्र जीवन का वारिसा दूंगा, जो अनादि अविनाशी है. १०२.

(१७) धर्म का फल नित्य अविनाशी है. १०४.

(१८) जीव, पत्थर, वनस्पति और हरेक प्रकार के प्राणी शरीर, अनेक प्रकार के मनुष्य शरीरों में आता जाता रहता है, जब तक कि बुद्धि में तमाम पूर्ण ज्ञान सपादन न करे १३४.

उपरोक्त ४ सचाई मिली कि यही मुक्ति और स्वर्ग है. अविनाशी जीवन का आनंद है. १३९.

(१९) यह सृष्टि और मनुष्य स्वप्न जैसे सवशी, स्वर्ग की आशा मृगजल जैसी है. १४०. (शिष्य कवि द्वारा).

(२०) हमारी सब हस्ति हमारे विचारों का परिणाम है. उसके विना (छल) हमारे ख्याल पर है. १५२.

(२१) तप, हठ और विशेष क्रिया से मुक्ति नहीं होती. जब तक कामना जड़मूल से न जावे वहां तक मुक्ति न होगी; यह सर्वोपरी धर्म है. धर्म का दान सब दानों से उत्तम है. १५८.

(२२) (सिंह सरदार) क्या आपके कर्मफल से इनकार है. (बुद्ध) असत्य, बद, यह मन वचन और काया से त्याज्य और सत्य, नेकी कर्तव्य हैं, यह मेरा

§ म. नि. में बयान है.

शिक्षण है. सिंह! अपराधी के सजा देनी चाहिये. निरपराधी के हानी नहीं पहुंचनी चाहिये. १७०. चाहे आदमी हो वा देवता और कुदरती तत्त्व (पृथ्व्यादि के परमाणु) क्यों न हों उनमें खेंचातानी जरूर होगी. परंतु वोह असत्य और अभिमान वाली न होनी चाहिये.

(२३) आत्मा छोटा और नाजुक वर्तन है. सचाई (सत्य तत्त्व) बडी है. १७०.

(२४) जो ऐसा कहता है कि रूह (जीवात्मा) है और कर्म का कर्ता है. और हमारे विचार का सोचनेवाला है, वोह भूल पर है. तथागत (में-बुद्ध) कहता है कि मन वस्तु है इसको जो रूह (आत्मा) कहता है सो सत्य पर है. (सिंह सरदार) गोचर (विषय) और बुद्धि यह दो वस्तु हैं? (बुद्ध) जो मन सो ही बुद्धि है और जो इंद्रियों द्वारा ग्रहण होते हैं याने विषय सो भी बुद्धि ही हैं. (क्षणिक हैं) संसार के अंदर वा बाहिर कोई ऐसी चीज नहीं है कि जो मन नही है वा मन नहीं हो सकती. तमाम हस्ती में जीवत्व (चेतनत्व) है. मिट्टी मन रूप में बदल जाती है. १७४.

(२५) (कदावंत) गुरु. तेरा विश्वास है कि रुह (आत्मा-जीव) का आवागमन है, यथा कर्मफल होता है; परंतु साथ साथ तूं आत्मा का न होना भी कहता है. पुनः तेरे शिष्य निर्वाण की बडाइ गाते हैं. कहो! जो मैं संस्कारों का समूह हूं तो मरने पर मेरे अस्तित्व की समाप्ति हो जायगी. जो मैं विषय विचार और कामना का समूह हूं तो शरीर छूटने पर मैं कहां जाउंगा. नित्यानंद (निर्वाण-मुक्ति) कहां रहा! तुम्हारे सिद्धांतों से तो नेस्ति (अभाव) निकलती है. (बुद्ध) ब्राह्मण! तेरा मनआत्मा के मानके स्वर्ग की तलाश में है. इसलिये तूं सत्य के आनद और उसकी नित्यता को नहीं जान सकता. शरीर तत्वों में मिल जायगा. मनका जीवन ढूढ! मन को सचाई में ठेरा! सत्य में तूं हमेशे जीता रहेगा. आत्मा मौत है सत्य जीवन है. सत्य में रहना निर्वाण को पाना है. यही अमर जीवन है. १७६. जेसे हवा और अकल-ज्ञान की कोई जघे नहीं है. हवा सब जघे पसरती है; इसी प्रकार निर्वाण है. तथागत अपने मीठे शांत नरम का दम सब के मन में फूंकता है. (कदावंत) जब आत्मा नहीं तो अमरत्व क्या? जब हम सोच चुके तो मनका संकल्प समाप्त हो गया. (बुद्ध) सोचना समाप्त हो गया परंतु खयाल शेष रहते हैं.§ विचार बद हो गया परंतु

§ जेसे कि बुद्ध के खयाल और उसका ज्ञान बाकी है सो देख रहे हैं यही पुनर्जन्म और यही नित्यता (निर्वाण) है.

उसका ज्ञान बाकी रहता है. विचार और ज्ञान मे अतर है. दीपक के प्रकाश में ख़त लिखा. दीपक बुझ गया परंतु लेख शेष रहता है. एव विचार समाप्त हुये ज्ञान * शेष रहता है. इसी प्रकार मगज के अंदोलन पीछे परीक्षा, बुद्धि और कर्मो के फल शेष रहते है. (न्दावत) संस्कार गये आत्मा का अस्तित्व कहा रहा? रह बदल पाने से तो पूर्व के खयाल मेरे खयाल, मेरे न रहे और मेरी रह अपनी रह न रही. अब कहो मेरा अस्तित्व कहा रहा. (बुद्ध) रातभर दीपक चलता हो तो दूसरे पहेर मे जो लो है वोह पहेली नहीं है और पूर्व जेसी सामग्री से उसी प्रकार की रोशन है और वैसा ही काम देती है इस रीति से पूर्व वाली है. एव जो बीच में गुल करके तीसरे पहेर मे बालें तो भी पूर्व जेसी स्थिति है. यहा समय का कोई संबध नहीं है. वर्षो पीछे करोगे तो भी पूर्ववत् (अतर और समानता) स्थिति होगी. अनेक दीपक एक कमरे में करे तो भी सबकी उक्त स्थिति है. अब समझो. एक आदमी क तुम्हारे जेसा है (समझता है, विचार करता है और काम करता है), वोह तुम न हो परतु तुम जेसा है. एक विद्यार्थी ने विद्या पढली तो मदरसे में जाने वाला और शिक्षित यह दो नही है–एकही है. गुन्हगार के हाथ काट डाले तब फर्क जान पडता है, परतु वे एक है. व्यक्तित्व और व्यवहार की वजह से समानता है. यथा एक प्रकार की २ लो एकही है. एवं अनेक मनुष्य भी एक और वही हो सकते है. उसी कर्मजन्य उसी चालचलन का दूसरा आदमी भी तुम्हारी तरह एक और वही हो सकता है. इसी प्रकार तू आज वही व्यक्ति है जो कल था. तेरी वर्तमान जात मे वोह मेटर शामिल नहीं है कि जिसमे तेरा शरीर बना है, किंतु तेरी जात, तेरे शरीर की आरतिय विषय और विचारो का समूह है तेरी रुह (आत्मा) संस्कारो का समूह है जहा कहीं वे है वहा ही तू है जहा कहीं वे जाते है वहा तेरी रह जाती है इस रीति से एक प्रकार तू अपनी जात की तमीज–भान कर सकेगा और दूसरे अर्थ में नहीं जान सकेगा परतु जिसको जात (व्यक्तित्व) की समझन नहीं है वोह व्यक्तित्व से इनकार करके यह कहेगा कि प्रश्नकर्ता वोह नहीं रहा जिसको उतरक्षण में जवाब दिया जायगा. अब अपने व्यक्तित्व का विचार, जो तेरे कर्म मे सुरक्षित है क्या तू उसको नाशवान कहेगा वा अविनाशी जीवन (कदावत) मेरे जीवन का प्रवाह नित्य है. परतु जिसे मनुष्य कहते है वोह आत्मा नित्य न ठेरा. दूसरा मेरी जात जेसा हो वा अन्य प्रकार का हो. (बुद्ध) इसी आशा का नाम आत्मा का बंधन है और सो तेरा

* इस स्वनामह का खंडन बुद्ध नहीं करता है

भ्रम है. आत्मा का स्वभाव ही क्षण क्षण में उत्पत्तिनाश. क्षणिकपरिणामी. तू बालक, लडका और जवान हुवा. बालक और वडा आदमी एक प्रकार से समान हैं. दूसरे पहेर में दीपक बुझ जाय तो भी पहिले पहेर जेसा था. अब तू कौन से आत्मा को रखना चाहता है? गइ कल की आत्मा को वा कल की आत्मा को?

(२६) विकास की रीति से शनैः शनैः संस्कार उत्पन्न होते हैं, कोई भी संस्कार ऐसा नहीं होता कि जो धीरे धीरे उन्नति पाये विना और व्यक्ति के विना व्यक्त ‡ हुवा हो तेरे संस्कार तेरे पहिले जन्मके कर्म मे उत्पन्न हुये हैं. तेरे संस्कारों का समूह तेरी रुह है. जहां कहीं संस्कारों का नकृश वा असर पडता है वहां ही तेरा गमन होता है. अपने संस्कारों में तो तू बराबर जीता रहेगा. और उत्तर जन्मों में पूर्व के जीवन के परिणामों का बदला वा शिक्षा भोगता रहेगा.

(२७) (कदावंत) मेरे कर्मों का फल मेरे पीछे वाले भोगें, यह अन्याय है. (बुद्ध) क्या तमाम वाक्य (अक्षरक्रम) व्यर्थ है. वोह दूसरा तू ही है; तेंने बोया तू ही काटेगा; दूसरा नहीं. क बालपन में आलसी था. युवा अवस्था में आजीवका पेदा करने वास्ते कुछ नहीं सीखा, अब गरीब दुःखी है. यह दुःख उसके कर्मो का फल है, क्योंकि यह जवान अब वोह व्यक्ति नहीं है जो बच्चा था.

(२८) विद्या अच्छी चीज है, परंतु उतने मात्र से लाभ नहीं. सत्यज्ञान तो प्रेक्टिस–अभ्यास से होता है. सचाई पर चल. अपने भाई को अपने समान समझ. तो तू जान लेगा कि आत्मा में मोत है और सचाई में अविनाशित्व † पृ. १७१ से १८४ तक.

(२९) बुद्ध बोला. राहुल! § तुम आवागमन के भंवरों में चक्कर खा रहे हो. १८९.

(३०) भिक्षको! जो संसारी श्रेयस् को पा के नित्यानंद का तर्क करते हैं वे सिद्धि में फंसते हैं. १९८.

---

‡ संस्कार तो किसी सरकारी (स्वाधिष्ठान) की अपेक्षा होती है. अर्थात् वोह भिन्न वस्तु नहीं किंतु किसी की अवस्था-परिणाम होता है

† यदि सच्चाई, आत्माभ्रम १ परिवर्तन है २ इत्यादि निश्चय-ज्ञान का नाम है तो संस्कार ठेरी-क्षणिक है. यदि वोह ज्ञाति (अस्तित्व-सामान्य प्रत्यय) रूप तो ब्रह्म का नाम है तो ब्रह्मज्ञान से शांति मानना होगा

§ गोतम सिद्धार्थ–बुद्ध का पुत्र.

(३१) बुद्ध ने कहा–आनद! काम, लोभ, और जीवन की इच्छा इन तीन जंजीरों से जो छूट गये वे मरने पीछे बुरी जघे पेदा न होंगे. उनका मन पाप न करेगा; किंतु उनको मुक्ति होने का निश्चय हो जाना चाहिये. जब वोह मर जायंगे तब उनके उत्तम विचार, सद्कर्म सचाइ का आनन्द, इन सिवाय कुछ न रहेगा. ++ अंत में वे सत्यसमुद्र और निर्वाण के नित्यधाम की प्राप्ति वास्ते कोशिश करेंगे. २५३.

ग. (ईश्वर).

(१) जीवन बनाने वाला कोई ईश्वर नहीं है. जो हो तो कुम्हार और वर्तनों के समान सब उसके तावे. जब यूं हो तो भलाई करना स्वाधीन नहीं. यदि सृष्टि ईश्वरकृत होती तो दुःख पाप जरा भी न होना चाहिये था क्योंकि शुद्ध अशुद्ध उसकी जात से होने चाहिये थे. जो ईश्वर ने नही बनाई तो उससे इतर कोई अन्य कारण होगा और वोह स्वयंभू नित्यव्यक्ति नहीं हो सकती केवल ईश्वर बनाने का उपादान नही हो सकता. जैसे वृक्षबीज से होता है वेसे सब द्रव्य उपादेय हैं केवल ईश्वर सबका उपादान कैसे हो सकता है और यदि वोह असीम सबमें व्यापक है तो निश्चित वोह उनका बनाने वाला भी नहीं हो सकता ‡ ९०. अहं ने जो पेदा की हो तो सुखद क्यों न बनाई, दुःखद क्यों की?

(२) सृष्टि का कोई कर्ता नहीं है, हम सब स्वाभाविक वा तकदीर से बनगये हैं, ऐसा जो कोई मानें तो जीवनार्थ घडत करने और अंत सुधरने के वास्ते शुभकर्म करने की अपेक्षा नहीं है ९०.

(३) तमाम द्रव्य कारण के विना नहीं बना है और वोह हमारे बुरे भले कर्म–कारण हैं. ९०.

(४) अतः ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना व्यर्थ है–त्याज्य है. अहंकार छोड के नेक काम करें तो हमारे उत्तम कर्म का फल उत्तम हो ९१.

घ. (ब्रह्म).

(१) मनुष्य की बुद्धि और सभ्यता नीति ज्ञान की चिंगारी है, जो एक वार संपादन होने से नित्य रहती है. परंतु जीवन की चोटी पर पहोंचने के लिये जिसमें

‡ विभु अक्रिय, व्यापकव्याप्य भिन्न, उपादान उपादेय अभिन्न, और निमित्तोपादान भिन्न होते हैं (त. ८ अ १).

(९) गौतमसिद्धार्थ मर गया-बुद्ध हो गया. आत्मा (मैं पना) जाता रहा, उसके बदले सत्य ने जगे ली है. मेरा यह शरीर गौतम का शरीर है, वोह अपने समय आने पर लय हो जायगा. फेर गौतमसिद्धार्थ ईश्वर को और न आदमी को जान पडेगा. परंतु बुद्ध नहीं मरेगा; क्योंकि धर्म के पवित्र शरीर में रहेगा. १८९.

(१०) बुद्ध (मैं) अंतसमय ऐसे मार्ग से जाउंगा कि जहां दूसरा जीवन बन सके. इशारे से भी कोई न बना सकेगा वा कोई न कह सकेगा कि बुद्ध यहां वा वहां है, किंतु वोह ऐसी लो (चिंगारी) होगा, जो जलती बडी आग में हो. हां धर्म के शरीर में बुद्ध है, इतना कहा जा सकेगा. १८९. *

ङ (प्रचूर्ण).

(१) यज्ञ में पशुवध करने से सचाई का सत्कार करना हजार दरजे उत्तम है. जीव हिंसा से कर्म का बदला नहीं होता, किंतु पाप है, नीति के भी विरुद्ध है. मन को शुद्ध करो. कर्म कांड से लाभ नहीं है. ईश्वर वा देवता की प्रार्थना करना (दोहराना) व्यर्थ है. मंत्र में बचाने की शक्ति नहीं है. तृष्णा का त्याग करो इ. पे. ९०।१७९.

(२) बोधि सत्व (बुद्ध) ने एक दाना खाके रहना, इतना तप किया; अत्यंत अशक्त हो गया; परंतु शांति न हुई. तो फेर खाने लगा मन साफ करने की शक्ति आगई. ९३.

(३) (बु). जिसने आत्मा और रागादि को तथा मन को जय कर लिया और पाप नहीं करता सो जन है. ओ पाक मैं जन हूं. ९३.

(४) मैंने विचला मार्ग जाना है. नंगा रहना, बाल मुंडाना, जटा बढाना, मोटे कपडे पहनना, विभूति लगाना, हवन करना, मांसमछली खाने से परहेज करना यह भ्रमित को शुद्ध न कर सकेंगे. वेदों का पढना, पुजारियों को भेट देना, देवताओं को बलिदान-भेट करना, गरमी सरदी से शरीर को दुःख देना, और भी इस प्रकार

* बुद्ध ब्रह्म को मानता है. उसके शिक्षण में हजारों जगह ब्रह्म के स्वीकारने का पता लगता है., प्रतिपक्षी कुछ भी ब्रह्म के अर्थ करले, परंतु ब्रह्म के संबंध में बुद्ध और शंकराचार्य का विचार मिलता है. इतने अंश में वेदांती और बौद्धों का इत्तफाक (एकसंमत) है क पेज ११ (प्रयोजक की तरफ से) सचमुच वेद स्वतः और पशु यज्ञ न मानने से बुद्ध पर नास्तिकता का मिथ्या आरोप किया गया हो ऐसा जान पडता है. बुद्ध प्रच्छन्न ब्रह्मनिष्ट था शंकर और बुद्ध की शैली जुदा जुदा है. लक्ष्य सिद्धांत एक जान पडता है.

के तप जो मुक्ति के वास्ते किये जाते हैं वे यह सब उस मनुष्य को शुद्ध नहीं कर सकेंगे कि जो भ्रम से मुक्त नहीं है. क्रोध, शराब, हठ, ईर्ष्या, फरेब, वैर, आत्मश्लाघा, दूसरों को तुच्छ समझना, अभिमान और बदनीति में अशुद्धि है. दरअसल मांस खाने में नहीं है. ६१ जब तक अहंत्व और स्वर्गादि तक की कामना नष्ट न हो वहां तक तमाम तप व्यर्थ है. अहंत्व नष्ट होने पर स्वर्गादि (मोक्षादि) तक की कामना नहीं रहती. कुदरती जरूरतों को दूर करने से वोह अशुद्ध नहीं होता. ६१.

(५) धन में आसक्ति त्याज्य है न कि धन. क्योंकि पर को लाभकारी है. ९२.

(६) बुद्ध शारीरिक रोग में बेमार पड गया. ज्यूक वैद्य ने इलाज किया. १०९. (बुद्ध) साधु को चाहिये करामात न दिखावे. निरपराधी की—यहां तक के कीडे मकोडे तक की हिंसा न करे. १२७.

(७) धर्मपद—संप्रदायी रीत–मार्ग १९०.

(८) गौतमसिद्धार्थ (मैं) मर जायगा, परंतु बुद्ध जीता रहेगा; क्योंकि बुद्ध सचाई है. सचाई नहीं मर सकती. सचाई की बादशाही अब से ५०० वर्ष तक चलेगी. पीछे थोडी मुद्दत भ्रम के बदले सत्य की रोशनी को झांकी कर देंगे. फेर योग्य समय पर दूसरा बुद्ध पैदा होगा और वोह सचाई जाहिर करेगा. उसका नाम मैत्रेय (कृपालु) होगा. २७४.

(९) (बुद्ध की वाक्य) में पहिला नहीं हूं, मुझसे पहिले २२ * बुद्ध हो चुके हैं. मैं उनके उपदेश को रंगत देने आया हूं जो सचाई के प्रकाश में चलेगा वोह स्वयं इरादे करने पर बुद्ध के दरजे को पालेगा. (पेज ७).

च. कवित्व. †

(१) बुद्ध का जब जन्म हुवा तब अंधों की आंखें खुल गई. गूंगे बहरे परस्पर बातें करने लग गये. कुबडे सीधे चलने लग गये, लंगडे चलने लग गये. कैदियों की जंजीरें टूट गई थी (क. पेज २६).

---

* इतिहासों में इस बात का पुरावा नहीं मिलता. और यदि यह बात सत्य हो तो आज तक २४ वा सात ही क्यों? अर्थात् सृष्टि का प्रलय और आरंभ मानना होगा. जब सृष्टि की उत्पत्ति लय का, बयान लेंगे तो अधिष्ठान ब्रह्म चेतन के माने बिना छुटका न होगा, परंतु बौद्धों को वोह कांय लगता है.

† इस प्रकार की मोहक बातें तमाम संप्रदायों में हैं. वाह!

(२) आकाशी दूत आया और कहा कि तुम बुद्ध होगे इ. इतना कहके वोह मूर्त अदृष्ट हो गई (पे. ३८).

(३) ब्रह्मा ने वैकुंठ से आके बुद्ध भगवान की पूजा करके कहा कि तुम दया करके उपदेश करो. इ. पे. ६१.

(४) इन्द्रदेवता, जवान ब्रेह्मन का रूप रखके बुद्ध के आगे गीत गाता हुवा जाता था. पे. ८९.

(५) अपनी माता माया देवी को उपदेश देने वास्ते बुद्ध स्वर्ग में गया देवताओं के साथ ठेरा. और फेर जमीन पर आया. पे १११.

छ. अभिप्राय.

१. बुद्ध धर्म के मानसिक और नीति के सिद्धात सीधेसादे, पवित्र जीवन, मानवी स्वातंत्र्य मन को लुभाने वाला, आरभ के जिज्ञासु को विवाद रहित–ऐसी सस्था, शब्द के विना सीधा मार्ग, सच्चाई, नेकी, साम्यभाव, प्रेमभाव, तिरस्कार, सच्ची अच्छी कैरक्टर (उत्तम आचार विचार उच्चार), एक दूसरे की रक्षा, यथा अधिकार बोध, सयम, इतनी बातें बुद्ध धर्म मे आकर्षक है. वर्तमान के शोधक भी इसे पसद करते हैं. अब रहा जीवादि प्रसग का सिद्धात उस पर ध्यान देने की अपेक्षा नहीं है.

२. बुद्ध जडवादि इसलिये नही है कि पुनर्जन्म, ब्रह्म और मुक्ति मानता हैं. स्थूल शरीर से भिन्न शरीर (देवता वगेरे) को स्वीकारता है. और इसी वास्ते विकासवाद में नहीं मिलता. इसके सिवाय विकासवाद उसमें मिल जाता है. जैन धर्म से इसका यह अतर है कि जैन आत्मा को चेतन परिणामी अनादि अनंत मानता है, क्षणिक नहीं मानता. और पर्याय (रागादि) को क्षणिक मानता है बुद्ध धर्म आत्मा को भी दीपक की लो के समान क्षणिक (सादिसात) मानता है शकर मत से भी अतर है क्योंकि शकर मत में अधिष्ठान ब्रह्म चेतन है और माया के परिणाम–त्रिपुटी व्यवहार क्षणिक नही किंतु स्थायी भी है. तथा चेतन को बाच में लेता है. बुद्ध मत मे त्रिपुटी व्यवहार समकालीन नहीं किंतु क्रमशः क्षणिक है चेतन को बीच में नहीं लेता और ईश्वर का अस्वीकार है. साख्य और योग से भी नहीं मिलता, क्योंकि वे जीव नाना विभु मानते हैं बुद्ध ऐसा नहीं मानता. तद्वत् न्याय वैशेषिक मे नहीं मिलता. द्वैतवादि जीव को अणु चेतन अनादि अनत मानते हैं,

बुद्ध ऐसा नही मानता; अतः उनसे भी नहीं मिलता. किंतु पूर्व संस्कार द्वारा स्वतंत्र कल्पना है. तथापि उपनिषद् के ब्रह्मभाव से मिलता है, जैसा कि ब्रह्मभाव में दरसाया है. जो जीव को अणु, विभु, अनादि अनंत और चेतन मानते हैं वा ईश्वर को जगत् कर्ता मानते हैं उनके साथ बुद्ध का सिद्धांत नहीं मिलता.

३. **निर्वाण**—बुद्ध मत में निर्वाण मन की उस स्थिति का नाम है जिसमें व्यक्तित्व का अभाव हो जाता है और सचाई का नित्य ध्यान रहता है. वोह अन्य व्यक्ति की तरह अपने व्यक्तित्व को भी दाब लेता है. संक्षेप में आत्मपने (मैंपने) का सचाई से दब जाने (न होने–न रहने) का नाम निर्वाण है सो बदी से मुक्त होना और महान शांति मिलना है. निर्वाण से अपना अभाव हो जाना, यह मतलब नहीं है किंतु पापों की समाप्ति हो जाती है. मैंपने का अभाव हो जाता है उससे नेस्ति में आशय नहीं है किंतु सचाई मिलने से वोह स्थिति संतोष की नहीं किंतु शांति और आनंद है. (सपादक 'अमेरीकन' २९२ से २९४ तक).

इस प्रकार की मुक्ति (स्वत्वाभाव और अमरत्व) किसी पक्ष में नहीं जान पडती. इस मुक्ति-निर्वाण का वर्णन ब्रह्मसिद्धांत में है वेदांत गत अवच्छेदवाद पक्ष में है.

प्रकृतिवादि यद्यपि अहंत्व (जीव) का नाश मानता है, तथापि जीवन पर्यंत अपने स्वार्थ को मुख्य रखता है. ईश्वरवादि को परतंत्रता से छुट्टी नहीं होती इसलिये विकास में नही आता. जीव तत्त्ववादि वा मोक्षवादि को वा स्वार्थवादि को अपना स्वार्थ संभालना पडता है मिथ्यावादि को निराशा में पडने से स्व पर के उत्तम उपयोग में दृष्टि नही होती. विषयासक्त, भोग, रोग और बदी मे फुरसत नहीं पाते.

बुद्धदेव का सिद्धांत स्वत्व (अहंत्व) का नाश करके (चिद्ग्रंथी का भंग हुये) भी सचाई की रीति से परोपकार में लगे रहना बताता है. यद्यपि शरीर के विना कुछ भी न हो सकने से शरीर रक्षा तो वोह भी मानता है, परंतु मुख्यता में जन-मंडल की भलाई करना, यह उद्देश बताता है; यही इसमें महत्ता है. बुद्धदेव ने गीता के बोध में से निष्काम स्वतंत्रता का अंश लेके उसको नवीन रंगत (थीयरी) में रंग दिया है, ऐसा जान पडता है.

बुद्ध धर्म दुःख का मार्ग नहीं है, किंतु बचने वास्ते बुराइयों को दरसाता है. बुद्ध नास्ति नहीं कहता किंतु पापों से मुक्त होना कहता है. वोह मौत की नहीं

किंतु जीवन की शिक्षा करता है. अहंत्व की जड उखाडता है, प्यार की नहीं. त्याग और कष्ट देना नहीं बताता, किंतु जीवन करने के सीधे अच्छे मार्ग सुझाता है. उसका मुख्य प्रयोजन निर्वाण याने आत्मापने (अहंत्व) का त्याग और सचाई से जीवन करना है, जो हम वर्तमान जीवन में संपादन कर सकते हैं (क. संपादक).

बुद्ध के सिद्धांत और सायंस में विरोध-मतभेद नही है, वर्तमान के पच्छम के फिलोसोफरों की शोध, बुद्ध के अनुसार जीव (रूह) को मानती हैं. पेज २९३ (क. सपादक).

आत्मा जीव का पुनर्जन्म.

अहं को जगह जगह भ्रम कहा है, परंतु वोह भ्रम किसको? भ्रम को (अहं को) तो भ्रम होवे नही, उससे इतर को भ्रम कहना वने नही, भ्रम (अहं भ्रम) इसका साक्षी कोन? साक्षी मिले विना भ्रम मानना असिद्ध है. निवृत्ति विना भ्रम, भ्रमरूप से ग्रहण नहीं होता यह नियम है. अहं की निवृत्ति हुये अहं भ्रम था, यह कोन मानेगा? यह किस (साक्षी) में ग्रहण होगा? इत्यादि शंकाओं का 'समाधान बुद्ध वा बौद्ध मत से नहीं हो सकता; क्योंकि सब शून्य मानें तो भी उसका किसी ज्ञान स्वरूप (साक्षी) मे ग्रहण होना चाहिये, (उस विना सिद्धि ही न होगी) सो ही आत्मा है. मैं, यह आत्मा नहीं, अहंत्व जिसमें स्वतोग्रह हो सो आत्मा है. इसलिये बौद्धों के मत में खामी है, ऐसा स्पष्ट होता है; क्योकि बुद्धदेव इस भेद को नहीं खोलता है.

ज. जीव-पुनर्जन्म.

बुद्धदेव का आशय वांच चुके हो कि संयोग निमित्तों से शरीर, इंद्रिय, शक्ति वगेरे बने और उनकी अमुक अवस्था (सस्कार-अभ्यास का समूह) अहंत्व-(आत्मा-जीव) हुवा. यह सब अवस्था और दीपक की लो समान क्षणिक परिणामी हैं. यह संस्कार दूसरों को मिलते हैं. शरीर के अंदर ज्ञ. (वक्ष्यमाण प्रवृत्ति विज्ञान-आशय विज्ञान किंवा विज्ञानस्कंध, संस्कारस्कंध' वस्तु है वोह दीपक की लो समान क्षणिक है. संस्कार, मैं-रागादि यह वस्तु नहीं हैं किंतु ज्ञ. की क्षणिक परिणाम-अवस्था हैं.

अब एक १९ वर्ष का सुपात्र (क) विद्यार्थी पढता था वोह मर गया. किंवा एक (ग) नाम के पुरुष ने मन में ठीक कोई कला की रचना की और एकांत में

परीक्षा की, परंतु किसी को नहीं बताई. किंवा एक गूंगा बहरा गंवार (च) पुरुष है. किंवा (छ) नाम का १ वर्ष का बालक है. यह चारों मर गये. शरीर तो बाल दिया गया. अब सवाल यह होता है कि (१) शरीर के साथ ही उक्त ज्ञ दीपक-अवस्था बुझ गया-छिन्नभिन्न हो गया अथवा (२) शरीर से भिन्न क्षणिक रूप मे जलता हुवा कहीं चला गया (पुनर्जन्म में आया).

पहिले पक्ष मे जो दूसरों के पुस्तक द्वारा वा रूबरू में सस्कार मिले उनका पुनर्जन्म जगह जगह हुवा है, परंतु वोह ज्ञ मेटर न रहा और न मैं सस्कार विशिष्ट व्यक्ति रही है. जब यूं है तो सूक्ष्म शरीर (देव पितृभूतादि) स्थूल शरीर विना के होते हैं वे स्थूल शरीर धर लेते हे, यह बौद्धों का मानना गलत ठेरता है. ज्ञ के संस्कारों का अनेकों में जन्म है परंतु क. ग. के गुप्त संस्कारों का जन्म न हुवा. च. का कुछ जन्म ही नहीं और छ. तो गुप्त अज्ञान संस्कार मरा है, इसका भी पुनर्जन्म नही हुवा; किंतु यह दोनो के ज्ञ में किसी एक वा अनेकों का पुनर्जन्म हुवा था सो उन विशिष्ट नष्ट हो गया. सार यह आया कि यह मान्यता अव्याप्ति दोष से ग्रसत है १, या तो मरना यही दुःख से छूटना है और अभाव (दीपक का बुझना) यही निर्वाण है २, वा तो अन्यों को जो संस्कार मिले हैं उस अनुसार परिणाम-उपयोग होने वाला है सो ही वोह (उस जैसा दीपक) है. ख, घ को संस्कार मिले हैं तो क+ख और क+घ और ग+ख और छ+घ एवं सस्कार का समूह व्यक्तियें होंगी. ३. पहिला विकल्प (सूक्ष्म शरीर और उसकी परीक्षा) और तीसरा (संस्कारों का अनेकों में जन्म) सिद्ध है. इसलिये दूसरा असिद्ध है. पहिला मानें तो तीसरा भी कायम रह सकता है और फकत तीसरा ही मानें और दूसरा न मानें तो अव्याप्ति दोष आ जाता है; क्योंकि क. ग. के संस्कार (कर्मजन्य अवस्था) फल दिये विना नष्ट हो गई; परंतु कर्म का फल होना (जेसा बोया वेसा काटोगे) यह तो सर्वसंमत है. इसलिये ज्ञ शरीर से भिन्न मेटर की अवस्था होती है, उसको ही पुनः शरीर मिलता है. अब वोह क्षणिक है वा मध्यमजन्य तो है परंतु क्षणिक नही है, कम ज्यादा तो है परंतु दीपक की लो समान क्षणिक नहीं है, इसका विचार करना रहेगा सो आगे कहेंगे.

इसलिये दूसरा पक्ष मानें अर्थात् शरीर के मरने पीछे संस्कारी ज्ञ मेटर (वासना वाला मन-चित्त-अंतःकरण) दूसरे शरीर में जाता है वही सूक्ष्म शरीर है

ऐसा स्वीकारें, तो बुद्ध पक्ष में यह सवाल होता है कि वोह दूसरे शरीर में किसी शक्ति के वश आवेगा वा वासना संस्कार बल से अन्य शरीर में खिंचा जायगा. पहिला पक्ष बुद्ध को स्वीकृत नहीं हो सकता; क्योंकि व्यवस्थापक ईश्वर का अस्वीकार है. दूसरा पक्ष मानें तो ज्ञ अनिष्ट में न जायगा तो कर्म थीयरी का भंग हो जायगा. इन दोनें का शांतिकारक उत्तर बुद्ध पक्ष नहीं दे सकता. अब इस तकरार को छोड के *किसी नियम अनुसार जन्मा-उत्तर जन्म में आया. तो जिस दिन बुद्ध के कहे* अनुसार अहंत्व का त्याग हुये कामना का अभाव हो जायगा उस दिन वोह जीवन मुक्त-बुद्ध हो जायगा. उसका शरीर नाश होने पीछे वोह ग्रंथी तो रहेगी नहीं, क्योंकि अहंत्व भाव और वासना तो है ही नहीं तथा मध्यम होने से भंग हो गई तो फेर मोक्ष किसकी? किसीकी नहीं. और जो वोह ज्ञ रहा तो वैसे ही असंख्य आने जाने और स्थित (निर्वाण) रहने सें जब तब सृष्टि का उच्छेद हो जायगा, जो कि असंभव है; इसलिये ज्ञ वाला मोटर दूसरे उपयोग में आवेगा. और उसके संस्कार (सचाई वगैरे) अन्य व्यक्ति (अनेक ज्ञ) में पसरे और हमेशे रहे. यही निर्वाण; ऐसा मानें तो इसका अर्थ क्या? इसलिये यह मानना होगा कि आत्मा और उसका मोक्ष वगैरे कुछ भी नहीं है. केवल लोक में सुखकारी, नीति, सचाई (सच्चे अच्छे विचार आचार उच्चार) की प्रवृत्ति और पाप निवृत्ति के लिये यह रोचक थीयरी बनाइ गई है. यथा एक तालाब (बुद्ध का ब्रह्म) है उसमें अमुकनिमित्तों से (छोटी, मोटी, काली, भूरी, कांटा वाली, विना कांटा वाली) अनेक मछली (कुटुंब के जन-सोसाइटी के मिंबर-जनमंडल की एक एक व्यक्ति) बनती-नाचती-कूदती हैं और उसी तालाब में समा जाती हैं. अब जो उनमें उत्तम संस्कार (नीति-सचाई परस्पर की रक्षा-दुःखद पाप कर्म का त्याग इ.) हों और उत्तम सस्कारों की संतान चले तो वे सुख से पवित्र जीवन करें; नहीं तो दुःखी जीवन होगा इतना ही इस थीयरी का प्रयोजन है और वोह अच्छा ही है. *उन मछलियों में (मनुष्यों में) जो ज्ञानवान, सच्चाई का रूप,* नेक, कामनारहित, अहंत्वरहित, परोपकारी, मानसिक शक्ति वाला हो वही बुद्ध है. बस.

बुद्ध का सिद्धांत उपर जैसा ही है. एक तत्त्व है, अमुक संयोगों को लेके उससे यह द्रव्य बना है (घ. ४. ख ८।९ याद करो) सो परिवर्तन पाता रहता है (क्षणिक है (ख. २४) और अंतविषे उसी में लय हो जाने वाला है (घ. १०). दरमियान में जो अहंत्व तथा कामना वाला है वोह रूपांतर को धारता है-पुनर्जन्म को

पाता है. जो इन रहित होके सच्चाई में आ गया उसका फोर्म नहीं बनता. इस प्रकार फॉर्म बनते, बदलते, बिगडते और पाप रहित हुये मुक्त होते रहते हैं, ऐसा अनादि अनंत प्रवाह है.

नोट:— सार.

एक क. सब प्रकार की विद्या हुन्नर मे कुशल है. अत: लोक उसको कुशल कुशल कहते थे. १० अनाथ बालक हैं यदि उनको कुछ शिक्षण न मिले तो पशु समान गूंगे रहेंगे, पराधीन दुःखी होंगे और जो शिक्षण (संस्कार) मिले तो अपना और पर की भलाई याने उपकार कर सकेंगे. इस दृष्टि से वे १० बच्चे क. की रक्षा में रहे उसने उनको पाला, उनमें से ज को हुन्नर, झ को राज्यविद्या, ट को व्यापार, ठ को कर्म, त को परमार्थ, ग को खेती, एवं सबको कुछ न कुछ सिखा दिया अब क. का शरीर और मैं (क्षणिक विज्ञान) तो मर गया; उसका कहीं भी पता नही मिलता. परंतु कुशल जीता है. वोह उन १० ही बालकों में है, पूर्वजन्म के कर्मानुसार काम कर के फल पा रहा है. वे १० क. जेसे हैं. कुशल जीता जागता है. उसका बोध याने संकेतभान उस जेसा बनता चलेगा—संसार में रहेगा, अतः वोह कुशल नित्य है यही निर्वाण.

उन १० में से उनके संस्कार आगे चलेंगे यही उनका पुनर्जन्म है. उनके ज्ञ (शरीर और क्षणिक विज्ञान) का जन्म नहीं है—क्योंकि भिन्न भिन्न होगा. उन १० में से १ बालक २ वर्ष का ही मर गया था. उसका उत्तर जन्म न होगा; क्योंकि संस्कार शून्य मरा है. अब जो यूं ही हो तो एक अन्धा, एक गरीब के घर, एक श्रीमंत के घर जन्मा है उनमें बाप ही का पुनर्जन्म है उससे भिन्न अन्य का नहीं, ऐसा मानना पडेगा. और जो बालक मर गया तो पूर्व के कर्मफल भोगने विना नाश हो गया अर्थात् फल दिये विना भी कर्म नाश हो जाते हैं—कर्म का फल नहीं भी मिलता, बोये अनुसार नहीं भी काटा जाता. ऐसा उस बालक और उसके बाप के संबंध में मान के जीव मेटर के पुनर्जन्म का निषेध हो जायगा. सुधरा हुवा अचिद्वाद (जडवाद–प्रकृतिवाद) ऐसा ही मानता है.

अब जो ऐसा मानें कि जेसे बीज से (दूसरा मेटर मिलके) वृक्ष और वृक्ष से पुनः अनेक बीज उनसे पुनः अनेक वृक्ष उनसे अनेक बीज बनते हैं, इस प्रकार झ विज्ञान के पुनर्जन्म का प्रवाह है. जिसका अहंत्व तथा कामना नाश हो गई उसका जन्म नहीं होता (उससे बीज वा वृक्ष नहीं होता) वोह बुझ

गया, यही निर्वाण है. इस पक्ष में इतनी खामी है कि दरमियान में एक बीज नाश हो गया (जैसे उक्त बालक मर गया) तो वोह कर्मफल भोगे बिना नाश हुवा है—बुझ गया है. यह कर्म थीयरी के विरुद्ध है तथा उस निर्वाण में और इसमें कोई भेद न रहा. इसलिये यह मानें कि उस बीज का भी जन्म होगा अर्थात् लोकदृष्टि में बालक मरा है, वस्तुतः उसका क्षणिक विज्ञान (पूर्वोक्त ज्ञ) किसी वृक्ष (शरीर में मिलके कर्मफल भोगने वास्ते जन्म लेगा और उक्त सच्चाई (अहंत्वाभाव वासना नाश) प्राप्त हुये ही निर्वाण होगा तथा उसकी सच्चाई के संस्कार अन्यों में रहेंगे यही उसकी नित्यता है. इस पक्ष में पुनर्जन्म प्राप्ति में उपर कहे हुये दोष (तकरार) अनुसार व्यवस्था नहीं होती. मुक्ति सिद्धांत नहीं होता.

अब इन झगडों को छोडके विचारें तो सार इतना ही है कि मध्यम मेटर में सस्कार अभ्यास होने की योग्यता है, इसलिये परस्पर के संबंध से उत्तर उत्तर उस अनुसार फॉर्म बनते हैं और इन फॉर्मो में पुराने तथा संबंधजन्य नवीन संस्काराभ्यास होते रहते हैं. उनमें कम ज्यादा भी होते हैं वे संस्कार अभ्यास परस्पर के संबंधी मेटर को मिलते हैं उनसे तमाम जीव सृष्टि का जीवन व्यवहार (अच्छा बुरा व्यापार) चलता है; इसलिये कंपॉड रूप मेटर क्षणिक है वा स्थायी है वा पुनर्जन्म पाता है वा नहीं इस विवाद से किनारा करके सचाई में आना चाहिये अर्थात् अहंत्व, और स्वार्थी वासना को छोडके सच अच्छे आचार, विचार और उच्चार का अभ्यास और संस्कार होने चाहियें, और उसी अनुसार दूसरों को और भविष्य में होने वालों को हों ऐसी कोशिश तन, मन, वाणी तथा ग्रंथ द्वारा होनी चाहिये. ताकि हम और दूसरे साम्यभाव में रह के सुख से जीवन करें. इस प्रकार की सचाई का पसरना यही हमारा निर्वाण है; क्योंकि सचाई का नाश नहीं होता. देख रहे हो—समझते हो कि महान अनुभाव रीफारमर कहां हैं? उनका अभ्यास संस्कार वाला पिंड (ज्ञ. और शरीर) छिन्नभिन्न हो गया—उपादान में मिल गया, उनका पता ही नहीं है; परंतु उनके संस्कार लेख द्वारा वा व्यक्ति की परंपरा द्वारा उत्तर उत्तर में विद्यमान पाते हैं, वे जनमंडल में काम कर रहे हैं. मानो यह वही हैं जो कि शरीर द्वारा पूर्व में जान पडते थे. ये सचाई वाले संस्कार-अभ्यास नित्य रहेंगे, इसलिये वे नित्य जीते हैं, यही उनका अमर निर्वाण है. ऐसी समझ और इस अनुसार वर्तन उत्तम ही है, यह स्पष्ट है.

(शं.) जब कि सचाई वगेरे रूप जो संस्कार उनका आधार जो विज्ञान (ज्ञ) सो वा तमाम नामरूप परिवर्तन में है — दीपक की लो समान क्षणिक ही है, तो सचाई वगेरे भी क्षणिक ही ठेरेंगे तो फेर इनके वास्ते प्रयास करना व्यर्थ ही होगा. वा प्रवाहमात्र वा नाममात्र है. (उ.) मरना है—नाश होना है तो फेर खानपानादि की कडाकूट में क्यो परतंत्र होना—दुखी होना? परंतु जीवनार्थ जीवन कलह मे उतरना ही पडता है तो फेर लोक के सुख पाने वास्ते उत्तमाचार विचार उचार करना और उनको प्रचार मे लाना, इसके वास्ते क्यो संकुचित वृत्ति करते हो? सब व्यक्ति तुम्हारे समान दुःख विना सुख चाहती है, इसलिये इस बात को जानने वाले ज्ञानी—बुद्ध पुरुष पर उनका आदरना स्वाभाविक फर्ज पड जाता है, इसलिये तुम्हारी शंका, शंका नहीं किंतु कुतर्क है.

उक्त सिद्धांत में विचार—यदि मूल एक तत्त्वस्वरूप तो उसके नाना तथा विरोधी रूप (फॉर्म) नहीं हो सकने—जो वोह तत्त्व ब्रह्म हो तो ब्रह्म रागादि वाला न होने से उसके रागादि वा रागादिवाला (अह) और जडरूप नहीं हो सकते, इसलिये (नामरूप) का उपादान मानें तो नाना होगा वा तो कोई अनिर्वचनीय माया वगेरे विलक्षण पदार्थ मानके बुद्ध की कही हुई हस्ति (जीवन) का आरंभ वा तो प्रवाह से अनादि अनंत मानना होगा.

भेद और समानता.

बुद्ध के प्रकार—पद्धति. बुद्ध के उपरोक्त उपदेश से इतनी पद्धति निकल आती है

१—शरीर से बाह्य भी पदार्थ हैं, फेर वे प्रत्यक्ष हो वा अनुमान के विषय हो.

२—सब स्वप्नवत् क्षणिक विज्ञान (बुद्धि) से भिन्न इतर कोई वस्तु नहीं. इसी का परिणाम शून्यवाद आता है, क्योंकि दीपक की लो समान क्षणिक माना है. मेटर का आदि अंत नहीं स्वीकारने से शून्य में से वासना अनुसार फुरना और शून्यरूप होते जाना यह भाव आता है. *

३—एक ब्रह्म है. और उसमें सब परिवर्तन पाने वाले फोर्म बनते बिगडते हैं. ऐसा अनादि अनंत प्रवाह है. दीपक, दीपक से दीपक, नाना दीपक, बुझ के

* जो कनक कुंडल बीटी समान पर्याय (परिणाम-अवस्था) बदलना मानते तो शून्यवाद न होता किंतु जैन मत हो जाता और पुनर्जन्म सिद्ध हो जाता

दीपक, आगे पीछे दीपक, और अंत में बुझ जाना और सामग्री हुये फेर होना. एवं प्रवाह.

नं. १, २, का विशेष स्वरूप आगे बौद्धपक्ष में वांचोगे.

हमारे विचार अनुसार संग्रहवाद (अ. ४) में गीता का और बुद्ध का जो उपदेश लिखा है वोह बहुत उपयोगी जान पडता है. बाकी बुद्ध के प्रसिद्ध सिद्धांत की परीक्षा और उसके गुह्य फल बताना ठीक नहीं है; क्योंकि अधिकारी विशेष के सिवाय सर्व साधारण मंडल में उसका योग्य उपयोग नहीं हो सकता याने अनिष्ट परिणाम आने की संभावना है. क्षणिक विज्ञान—याने बुद्धि में प्रकाशभाव नहीं लिया है, परंतु उसके शिष्य क्षणिक विज्ञान वादि ने विज्ञान को प्रकाश स्वरूप माना है. उसका भाव यह है कि ज्ञानप्रकाश विशिष्ट बुद्धि (ब्रह्म चेतन विशिष्ट बुद्ध). परंतु विशिष्ट—विज्ञान को क्षणिक परिणामी कहता है, इसलिये यह भावार्थ नहीं लिया जा सकता. तथापि जब ब्रह्मवित् ब्रह्मनिष्ठ बुद्धदेव का आतरीय गुह्य आशय लिया जाय तो शंकर वेदांत का अंतःकरण उपहित चेतन वा चेतन विशिष्ट अंतःकरण, यह आशय निकल आयेगा. फेर इतना अतर होगा कि शंकर श्री द्रश्य को मिथ्या (भ्रम) कहता है. बुद्ध मिथ्या नहीं किंतु स्वप्नवत् तुच्छ और क्षणिक कहता है. इस प्रकार समानता और भेद है। शोधक.

बौद्धदर्शन.

बौद्धमत का सार चार रूप में है.

(क) वैभाषिक और सौतांत्रिक—१. जगत का कर्ता वा कर्म का फलदाता कोई ईश्वर चेतन नहीं है. २. पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणु और आकाश अनादि हैं. ३. जीव क्षणिक विज्ञान परिणामी स्वयंप्रकाश प्रवाह से अनादि है. ४. पूर्व पूर्व की वासना से उत्तर उत्तर में बंध होता है और यथा वासना, वासना के बल से जन्मानुजन्म (पुनर्जन्म) को प्राप्त होता है. ५. चित्त से चित्त की वासना का निरोध करना यह मोक्ष का साधन है. ६. विज्ञान का निरोध होके विज्ञान का स्थिर हो जाना मोक्ष है ७. पृथ्वी आदि ४ सगुण धातुओं के संबंध होने पर आपो आप सृष्टि की उत्पत्ति है और वोह क्षणिक प्रवाह रूप है. बीज वृक्षवत्. ८. वै. बाह्य-पदार्थ इंद्रियों के विषय (अपरोक्ष) मानता है. और सौ. परोक्ष (अनुमान के विषय) मानता है. इतना दोनों में मतभेद है.

(ख) योगाचार — १. क्षणिक विज्ञान परिणामी. स्वयंप्रकाश से इतर अन्य कोई भी (पृथ्वी आदि तत्त्व परमाणु भी) पदार्थ नही है. २. वह पूर्व पूर्व की वासना से उत्तर उत्तर परिणाम के पाता है. जेसे स्वप्न में ज्ञेय और ज्ञान की साथ साथ उपलब्धि होती है वेसे ही यहां साथ साथ होते हैं. ३. सृष्टि–विषय, स्वप्नवत् जान लेना चाहिये. ४. ईश्वर, मोक्ष के साधन और मोक्ष प्रसंग में (क) समान जान लेना.

(ग) माध्यमिक —हर कोई पदार्थ सत्, असत्, सदासत् वा नसत् नअसत् सिद्ध नहीं होता और पूर्व उत्तर में उसकी सिद्धि नही होती. इसलिये सर्व शून्य. शून्य से इतर कुछ नही.

(घ) अंतिम —सब पदार्थ अनिर्वचनीय हैं. और ज्ञान का वासनाओं से शून्य हो जाना निर्वाण है.

विशेष वर्णन.

(१) बौद्धों के ४ भेद —बुद्धदेव के मरने पीछे उनकी शिक्षा पर जब दार्शनिक विचार उठे तब बौद्धों के यह ४ भेद हुये. १. सौत्रान्तिक. २. वैभाषिक ३. योगाचार. ४. माध्यमक *चारों के मत मे विज्ञान ही आत्मा है. नं. १,२. शरीर से बाह्य वस्तु भी मानता है. नं. ३ नहीं मानता. नं. ४ सब कुछ शून्य ही मानता है. बुद्धदेव ने अपने उपदेशों में जगत के क्षणिक परिणामी और मिथ्या कहा है. विज्ञान की धारा के चित्त का अभिज्वलन (जलना, चमकना) मानके मोक्ष के उसका निर्वाण (बुझना) माना है, इसके तात्पर्य समझने मे और व्यवस्था करने मे चारों का भेद हुवा है. पहिले २ (सौ. वै) यह कहते हैं कि बाह्य पदार्थ होने के विना ज्ञान नही हो सकता, अतः बाह्य अर्थ है और क्षणभंगुर होने से स्वप्नवत् मिथ्या हैं. नं. ३ (यो.) मानता है के वस्तुतः स्वप्नवत मिथ्या ही हैं; परंतु वस्तुतः यह विज्ञान के ही आकार हैं. अब मुक्ति में तीनों का यह मत है कि रागद्वेषादि वासनायें हैं, इन से चित्त का अभिज्वलन होता है इन वासनाओं का उच्छेद ही निर्वाण (बुझना) है. न कि विज्ञान की धारा का बुझना. परंतु माध्यमिक (नं. ४) यूं मानता है कि विज्ञान की धारा भी बुझ जाती है. इस भेद होने की बौद्ध लोक व्यवस्था यूं करते हैं–कनिष्ट मध्यम और उत्तम ऐसे तीन प्रकार के शिष्य (अधिकारी) होते हैं. जो हीन मत वाले थे उनको बुद्धदेव ने उनकी वासना के अनुसार सर्व अस्तित्ववाद के द्वारा

* सिद्धांत चंद्रोदय ग्रंथ में बौद्धों के प्रसिद्ध भेद १८ अठारह और उपभेद बहुत से कहे हैं परन्तु दार्शनिक विचार में उपर्युक्त चार ही भेद बन सकते हैं

शून्यता में उतारा है. परतु जो मध्यम बुद्धि वाले थे उनको ज्ञानमात्र के अस्तित्व (क्षणिक विज्ञान) से शून्यता में उतारा है. और जो उत्कृष्ट बुद्धि वाले थे उनको साक्षात ही शून्यतत्त्व का प्रतिपादन किया है. जैसा के (बौद्धो के ग्रथ बोधिचित्त विवरण में कहा है (देशना लोकनाथाना इत्यादि).

(२) **बौद्धो के २ प्रमाण**—यथार्थ ज्ञान के जनक होने से प्रत्यक्ष और अनुमान ऐसे दो प्रमाण हैं. १. इन्द्रियजन्यज्ञान प्रत्यक्ष है. जिसने दृश्यमान वस्तु अभी किसी सबध वाली प्रतीत नहीं हुई वोह निर्विकल्प (कल्पना अपोढ) अर्थात सामान्यज्ञान प्रत्यक्ष है. यथा 'यह वृक्ष' यह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं. यहा प्रत्यक्ष उतना ही है कि जिसमे वृक्ष की कल्पना नहीं अर्थात आलोचनमात्र प्रत्यक्ष ज्ञान है. 'यह वृक्ष है' ऐसा ज्ञान जब होता है कि उसमे जाति (वृक्षत्व) आकृति (विस्तार) की कल्पना कर ली जावे इस कल्पना (सबध) से पहिले जो ज्ञान हुवा सो प्रत्यक्ष इससे पीछे जो वृक्ष की कल्पना वाला ज्ञान होता है सो अनुमान है २. जहा अविनाभाव सबध (उसके विना न हो. ऐसा सबध) का नियम पाया जाय वहा अनुमान होता है उससे (कारण से) उत्पन्न होना. और उसका स्वरूप (तादात्म्य) होना इन दो हेतुओ से अविनाभाव जाना जाता है. यथा-धूम अग्नि मे ही उत्पन्न होता है अन्यथा नहीं अतः धूम से अग्नि का अनुमान होता ह. तादात्म्य मे जैसे गोत्व यह पशुत्व के विना नहीं होता इसलिये गोत्व से पशुत्व का अनुमान होता है. जो अनुमान प्रमाण नहीं मानते उनसे प्रश्न है कि तुम्हारी प्रतिज्ञा (दावा) का साधन काई साधन (हेतु) है वा नही? यदि नहीं तो प्रतिज्ञा असिद्ध हुई और यदि है तो यही अनुमान बन गया. फिर इससे अनुमान का खडन कैसे हो सकता है (बौद्ध लोग बुद्धदेव के वाक्य को प्रमाण मानते है इसलिये शब्द प्रमाण का भी स्वीकार है).

(३) **सर्व अस्तित्ववादी (१) वैभाषिक और (२) सौत्रातिक.** इन दोनो मे इतना मतभेद है कि न १ (वै.) इन्द्रियो के द्वारा प्रत्यक्षज्ञान होने से बाह्य अर्थ प्रत्यक्ष है नं २ (सौ) प्रत्यक्ष तो प्रतीत याने अदर के अनुभव का होता है बाहिर के अर्थ का नहा (नवीन सायसवत इम्प्रेशन) किंतु उस प्रतीति की विचित्रता मे अर्थ का अनुमान होता है. यथा, घट पट रूपविचित्रता का हेतु बाह्यार्थ है. इतना दोनो मे मत भेद है. बाकी सारे अश मे एकता है. सो आगे जनाते हैं.

(क) बाह्य जगत भूत और भौतिकरूप है. पृथ्वी, जल, तेज, वायु यह ४ धातु भूत है रूपादि विषय और नेत्रादि इद्रिय भौतिक (भूतो के कार्य) है

आवरणाभाव मात्र अर्थात् रोक का न होना मात्र आकाश है.

पृथ्वी के परमाणु कठिन, जल के स्निग्ध, तेज के उष्ण और वायु के चलन स्वभाव वाले हैं. बाह्य जगत इनका संघात मात्र (पुंज) है. पृथ्वी वृक्षादि एक संस्थान (रचना) विशेष मे परमाणुओ का ढेर है. जैसे मनुष्य समुदाय मे सेना और वृक्षसमुदाय में वन एकत्व बुद्धि होती है वैसे वृक्षादि में जानो. एक वाल प्रत्यक्ष नही होता परंतु उनका समुदाय प्रत्यक्ष होता है. इस प्रकार वृक्षादि का एक परमाणु प्रत्यक्ष न होने पर भी समुदाय प्रत्यक्ष होता है.

(ख) आभ्यंतर जगत्—अंदर स्थित जो विज्ञान है वह चित्त है; वही आत्मा है, यही पांच स्कंधों में से विज्ञान स्कंध है. और शेष चार स्कंध चैतरूप वा चैत्तिक हैं. विषय और इंद्रिय रूप स्कंध हैं. यद्यपि पृथ्वी आदि विषय बाह्य हैं तथापि इंद्रिय के संबंध से आभ्यंतर चित्त से निरूपण किये जाते हैं. इसलिये अंदर में गणना है. † मै, मै, इस प्रकार जो आलय विज्ञान और इंद्रिय जन्य जो रूपादि विषयक प्रवृत्ति विज्ञान है, इस विज्ञान का प्रवाह विज्ञान स्कंध है. सुखादि का अनुभव वेदना स्कंध है. § यह गौ है, यह गोरा है, वोह जा रहा है इत्यादि प्रतीति (कि जिसमें प्रतीति का नाम रखा जाता है और जिसको सविकल्पप्रत्यय बोलते हैं,) यह संज्ञा स्कंध है. (निर्विकल्प प्रत्यय विज्ञान स्कंध है). रागादिक्लेश, मदमानादि तथा धर्म अधर्म उपक्लेश दोनों मिलकर संस्कार स्कंध है, क्योंकि यह विज्ञान मे सस्कार के तौर पर है इन पांचों का संघात आध्यात्मिक संघात है. लोक के तमाम व्यवहार इस संघात के आश्रय हैं.

(ग) बाहिर और अंदर जो कार्य हो रहे हैं उनका कोई कर्ता जुदा चेतन (ईश्वर) नहीं है किंतु तमाम कारण मिल जाने पर कार्य अपने आप हो जाता है. जो कारण न मिले तो न हो. इसको प्रतीत्य (प्राप्त होके) समुत्पाद (आप ही ठीक उत्पन्न होता) कहते हैं सो दो कारणों से होता है १. हेतूपनिबंध अर्थात् एक कारण के संबंध से. यथा अंकुर की उत्पत्ति में बीज हेतूपनिबंध है. २ प्रत्ययोपनिबंध याने कारण समुदाय का संबंध यथा उक्त उत्पत्ति मिट्टी, पानी आदि कई वस्तुओ के मेल से होती है.

† ग्रहण वा (इम्प्रेशन) अंदर मे होता है इस वास्ते.

§ इष्ट से सुख अनिष्ट मे दुःखावस्था और उभय से रहित चित्त की अवस्था वेदना स्कंध.

बाह्य कार्य के उदाहरण—बीज से अंकुर, इससे पत्र एव काण्ड, नाली, गर्भ शुक्र (सिट्टा) फूल और फूल से फल उत्पन्न होता है. पूर्व पूर्व उत्तर के हेतूपनिबंध रूप कारण हैं; क्योंकि उनके विना नहीं होता. और बीजादि ऐसा नहीं जानते के हम उत्पन्न कर रहे हैं. और अंकुरादि को यह ज्ञान नहीं कि हम कार्य हैं, अमुक से उत्पन्न हो रहे हैं. निदान बीजादि में चेतनता न होते हुये और चेतनाधिष्ठातान होने हुये भी कार्य कारण का भाव नियम दीखता है.

प्रत्ययोपनिबंध का उदाहरण—छः धातुओं के मेल से बीज, अंकुर का हेतु होता है. उनमें से पृथ्वी का कार्य अवयवों का समह करना जिससे अंकुर कठिन होता है. जल बीज को सस्निग्ध करता है. तेज पकाता है. वायु फुलाता है जिस करके अंकुर बीज से निकलता है. आकाश, बीज के अनावरण (न रोकने) का काम करता है. ऋतु भी बीज का परिणाम करता है. इस प्रकार सर्वधातु के सबंध से बीज के उगते हुये अकुर उत्पन्न होता है, अन्यथा नहीं. इस प्रसग में भी उपर अनुसार पृथ्वी आदि में ज्ञान का अभाव जानना.

आध्यात्मिक (अतर) कार्य (प्रतीत्यसमुत्पाद)—वक्ष्यमाण अविद्यादि १७ प्रकार का है. १. अविद्या–क्षणिक कार्य और दुःख स्वभाव पदार्थों में स्थायी और सुख बुद्धि. २. उससे रागद्वेष और मोह यह संस्कार होते हैं. ३ सस्कारो से गर्भस्थ को पहिला **विज्ञान** उत्पन्न होता है. ४. उस विज्ञान से गर्भीभूत (गर्भ बने हुये) शरीर की कलल, बुदबुदादि अवस्था **नामरूप** है ५. नाम रूप से मिले हुये इंद्रिय **षडायतन.** ६. नामरूप और इंद्रियो का आपस में सनिपात (सयोग) **स्पर्श.** ७. उससे सुखादि *वेदना.* ८. *उससे मुझे सुखसपादन करना चाहिये यह निश्चय* **तृष्णा.** ९. उससे वाणी शरीर की प्रवृत्ति **उपादान** १०. प्रवृत्ति से धर्म अधर्म सो **भव.** ११. उससे देह का जन्म सो **जाति.** १२ उत्पन्न हुये देह का पकना **जरा.** १३ देह का नाश **मरण.** १४. मरते हुये वा संबंधिओं के विषय में जो अतरदाह **शोक.** १५. उससे हापुत्रादि विलाप **परिदेवना.** १६. अनिष्ट का अनुभव **दुःख.** १७. और मानसिक व्यथा **दौर्मनस्य.** एवं मदमानादि आध्यात्मिक कार्य होते हैं. इस प्रसग मे भी यदि अविद्या न होती तो सस्कार उत्पन्न न होते, एव जाति तक जान लो और जाति न होती तो जरा मरणादि न होते. यहा पूर्व कहे समान अविद्यादि में मैं **कारण** और सस्कारादि में मैं **कार्य** ऐसा ज्ञान नही होता, ऐसा जान लेना. यह अध्यात्मिक हेतूपनिबंध का उदाहरण हुवा.

अब अध्यात्मिक (आंतर) कार्य मे प्रत्यायोपनिबंध कहते हैं—पृथ्वी आदि पांच और विज्ञान धातुओं के मेल से शरीर बनता है. उनमे से पृथ्वी काय के कठीन, जल स्निग्ध, तेज खानपान के पाचन, वायु श्वासादि का प्रचलन करता है और आकाश छिद्रवाला बनाता है. और जो नामरूप के और मनोरूप विज्ञान के बनाता है वोह विज्ञान धातु है. इन सबके संबंध से काय की उत्पत्ति होती है. यहां भी पृथ्वी आदि और काय के उपर कहे समान ज्ञान शून्य जान लेना. किंतु चेतन अधिष्ठाता के विना अंकुर के समान पृथ्वी आदि अचेतन धातुओ से काय बनती है.

(घ) (शं.) मूल कारणो के एकत्र करने वाला हो तब कारण समुदाय से कार्य हो. यथा शरीर और विज्ञान स्कंध के एकत्र होने मे किसी चेतन की अपेक्षा है. अन्यथा मनुष्य चेतन न हो; क्योंकि सब हेतु जड होने मे अपने आप इस प्रकार इकठे नही हो सकते. (उ.) निकट लाने वाले कारण को उपसर्पण प्रत्यय कहते हैं. जैसे कारण को पा के कार्य आप हो जाता है वैसे उन कारणों का इकठा होना भी इकठा करनेवाले कारणों से अपने आप होता है. चेतन की अपेक्षा नहीं.

विषयादि ४ कारण से चित्त (रूपादि ज्ञान) और चैत (सुखादि) उत्पन्न होते हैं यथा, नीलज्ञान होने मे नीली वस्तु विषय कारण नेत्र करण (साधन) कारण है. प्रकाश सहकारी कारण है और समान्तर (पहिली) प्रतीति संस्कार कारण है. सारांश यह है कि जिन कारणों के विना कार्य न होवे, वे कारण जब मिलते हैं तो कार्य अपने आप हो जाता है.

(उ) विद्युत के समान सब भाव क्षणिक हैं, एक क्षण मे उत्पन्न होते है दूसरी क्षण में नष्ट होते हैं. एक अवस्था में एक पल भी नहीं ठेरते. यथा, पत्थर क्षण क्षण मे बदलता- अंत में बोदा हो जाता है; इसलिये पहिली क्षण में जो भाव होता है वोह दूसरी क्षण में नही होता; परंतु यह वही है, ऐसी प्रतीति सदृश होने मे होती है. यथा दीपक की लो क्षण क्षण में बदलती है और वही रूप में प्रतीत होती है. तद्वत् नख और केश— वस्तुतः नदी के प्रवाह समान अंदर में विज्ञान की धारा बह रही है और बाहिर इन भावों का प्रवाह बह रहा है.

(च.) सारे भाव अर्थ क्रियाकारी हैं अर्थ क्रियाकारी होना (किसी कार्य को उत्पन्न करना) ही भाव वा सत्व का लक्षण है सो अर्थ क्रियाकारी होना अक्षणिक में नहीं घटता. क्यों? वर्तमान अर्थ क्रियाकारी होने समय यदि आगामी अर्थ क्रियों का सामर्थ्य उसमें हो तो उसकी उत्पत्ति भी उसी (वर्तमान) क्षण में

होनी चाहिये, क्योंकि सामग्री है. और यदि करने का सामर्थ्य नहीं है तो कभी भी उत्पन्न न करे. यथा पत्थर का टुकडा अंकुर को पैदा नहीं करता. (शं.) समर्थ को भी सहकारी की अपेक्षा है. यथा बीज को अंकुर करने में पृथ्वी आदि की अपेक्षा है. (उ.) सहकारी, बीज में कोई अतिशय (विशेषता) डालते हैं या नही? जो नहीं डालते तो प्रथम समान रहने से अंकुर न होगा. और यदि डालते हे तो अतिशय विनाका पहिला बीज निवृत्त हो गया. और अब यह अतिशय वाला नया बीज उत्पन्न हो गया है, तो उसका क्षणिक होना सिद्ध हो गया. इसी अतिशय वाले बीज को कुर्वद्रूप कहते हैं.

(छ.) विज्ञान क्षण क्षण में अपना आकार बदलता है, इस क्षण में नील का विज्ञान तो दूसरे में पीत का तो तीसरे में और ही विज्ञान है. परंतु धारा अविच्छिन्न (अटूट) है. जब चित्त बाहिर के रूपों को जानता है तो बाहिर के रूपों को जानता हुवा स्वयं तदाकार (नील पीतादि आकार) हो जाता है, इसी विज्ञान को प्रवृत्ति विज्ञान कहते हैं. प्रवृत्ति रहित अवस्था में विज्ञान को अपने स्वरूपमात्र का ज्ञान (मैं, मै केवल यह ज्ञान) होता है. इसी को आलय विज्ञान कहते हैं. आलय विज्ञान की धारा सुषुप्ति में भी बनी रहती है और परलोक में भी जाती है.

(ज.) (शं.) जो विज्ञान क्षणिक तो कर्मफल का और स्मृति का नियम कैसे होगा; क्योकि एकके कर्म दूसरे को फल, एक को अनुभव और दूसरे को स्मृति, इसमें व्यवस्था नहीं होती. (उ.) पूर्व पूर्व विज्ञान उत्तरोत्तर विज्ञान में अपनी अपनी वासनायें देता चला जाता है और हरेक विज्ञान अपनी ही सतान में (सिलसिले में) वासना देता है, अन्य में नहीं. इसलिये जिसमे कर्मवासना पडी वहां ही उसका फल उत्पन्न होता है. जैसे कपास में लाली देने से (कपास के बीज लाख द्वारा लाल रंग देने मे) कपास लाल होती है वैसे.

(झ.) इन वासनाओं के अनुसार जन्म पुनः जन्म होता रहता है. इन वासनाओं का उच्छेद होने पर विमल विज्ञान की धारा बहना मोक्ष है.

(ञ.) बुद्धि से जानने योग्य (वक्ष्यमाण) तीन से भिन्न जो उत्पाद्य हैं वे सब क्षणिक हैं (बुद्ध सूत्र).

(१) बुद्धि पूर्वक भावों का निरोध (अर्थात इस भाव को मैं असत् करता हूं इस प्रकार बुद्धि पूर्वक निरोध) प्रतिसंख्या निरोध है यह निरोध उक्त अविद्यादि

चैतिक भावो का होता है. इस प्रकार चित्त के बल से ही चित्त की वासनाओ का निरोध करके मुक्ति लाभ की जाती है. (२) इसके सिवाय बाहिर के पदार्थो का जो निरोध होता है वह **अप्रतिसंख्या निरोध** है यह दोनो निरोध अभावरूप है. (३) आकाश भी आवरणाभाव रूप है. यह तीनो तुच्छ रूप हैं. इनमे भिन्न सब कुछ क्षणिक है

(ट) चार आर्य सत्य है (१) दुःख=पूर्वोक्त पाच स्कंध (२) **समुदय**= राग द्वेष उत्पादक भाव अहत्व ममत्व परत्व (३) **मार्ग**=यह सारे भाव क्षणिक है ऐसी वासना. (४) **निरोध**=मोक्ष का नाम है वै और सौ. की शैली समाप्त हुई

(४) **विज्ञानमात्र अस्तित्वादि योगाचार** कितने के शिष्यो का बाह्यार्थ मे अभिनिवेश देखके उनके अनुरोध से उपरोक्त बाह्य पदार्थवाद की (उक्त) प्रक्रिया रची हैं परंतु बुद्ध भगवान् का उसमे तात्पर्य नही हैं. उनको तो एक **विज्ञान स्कंध** ही अभिप्रेत है. बस, विज्ञान ही एक वस्तु है और कुछ नहीं.

(क) क्षणिक मे प्रमेय (ज्ञान का विषय, यथा नील), प्रमाण (साधन) प्रमाता (ज्ञाता), प्रमा (ज्ञान याने प्रमा रूप फल) का व्यवहार इस प्रकार से घटता है— **ज्ञान क्षणिक साकार** है अर्थात् नील पीतादि आकारो वाला है और यह आकार उसके असत्य हैं सो विज्ञान का स्वरूप जो असत्य आकारो से युक्त है वह **प्रमेय** है प्रमेय का प्रकाशना प्रमाण का फल (प्रमा) है प्रकाशने की शक्ति **प्रमाण** है शक्ति का आश्रय प्रमाता है. इस प्रकार यह चारो धर्म उस विज्ञान में ही है.

(ख.) प्रमाण का काम तो बाहिर के विषयो में हो और फल (प्रमा) अंदर मे विज्ञान के आश्रय उत्पन्न हो जाय, ऐसा नही हो सकता, इसलिये प्रमाण और फल (प्रमा)का समानाधिकरण होना चाहिये. यह दोनो (प्रमाण प्रमा) अंदर ज्ञानस्थ ही होने चाहियें सौतान्त्रिक के कथन से भी ऐसा है कि ज्ञान सत्ता समान है परंतु उस सत्ता को विषय अपने रूप से रूपवाला बनाता है अर्थात् ज्ञान अंदर मे तदाकार होता है

(ग) बाहिर के स्तंभादि जो प्रतीत होते हैं वे यदि परमाणु है तो यह एक स्तंभ. ऐसा ज्ञान न होना चाहिये, क्योकि परमाणु अनेक और परम सूक्ष्म है. और यदि परमाणु पुंज है तो परमाणुओ से भिन्न वस्तु न हुई. इसी प्रकार जाति (स्तंभत्व), रूपादि (पीतादि और आकार), गुण और क्रिया (गति होना), धर्म यदि धर्मी से भिन्न स्वरूप है तो दो धर्मियो समान उनका धर्म धर्मीभाव न होगा. यदि

धर्मी से अत्यंत अभिन्न हों तो भी धर्म धर्मीभाव न होगा. इस प्रकार विचार करके देखो तो वाह्यार्थ की असिद्धि है.

(घ.) **सहोपलंभ नियम**—अर्थात् दोनें का नियम से एक साथ उपलब्ध होना. जैसे दूसरा चंद्र (नेत्र मसलने वा फाडने से देख पडता है) नियम से एक चंद के साथ ही जान पडता है, वोह दूसरा उससे भिन्न नहीं होता. भेद भ्रांति से है. * ऐसे ही वाह्य विषय (नीलादि) नियम से विज्ञान के साथ ही उपलब्ध होता है. इसलिये विज्ञान से भिन्न नहीं. भेद भ्रांति से दीख सकता है.

(ङ) जैसे स्वप्न में वाह्य अर्थ के विना ही अर्थ भी प्रतीत होते हैं और उनका ज्ञान भी होता है, इसी प्रकार जाग्रत में भी वाह्य अर्थ की प्रतीति हो सकती है. जैसे स्वप्न में वासना की विचित्रता से स्वप्न विचित्र रूपवाला भासता है उसमें वाह्य विषय हेतु नहीं होता किंतु ज्ञानगत विचित्र वासनायें ही हेतु हैं, ऐसे अर्थात् दूसरी जगह (जाग्रत) मानने में कोई बाध नहीं आता किंतु लाघव है. सारांश बाहिर प्रतीति होने वाले विषय वस्तुतः अंदर हैं, ज्ञान के आकार हैं बाहिर उनकी प्रतीति वासना से होती है. (शं.) जाग्रत में बाह्यदर्शन से वासना हो के स्वप्न के अर्थ की हेतु होती है. इस प्रकार जाग्रत की प्रतीति में कहां से वासना आई—किससे उत्पन्न हुई. (उ.) अनादि संतान के अंदर पूर्व जो नील ज्ञान है, वही **वासना है.** उसके वश से अनेक क्षणें का व्यवधान होने पर भी फेर नीलाकार प्रतीति होती है जैसे कि बीज की वासना मे कपास में रक्तता आती है.

(च.) दीपक के समान विज्ञान किसी दूसरे प्रकाश करनेवाले की अपेक्षा न करके अपने आप प्रकाशित होता है (स्वयं प्रकाश है).

(९) **सर्वशून्यवादि-माध्यमिक** — वाह्यार्थाभाव वाली पूर्वोक्त युक्ति ही अर्थ और विज्ञान भाव में भी है. जैसे कि क्या अर्थ और विज्ञान सत् है वा असत्? यदि सत् तो सुषुप्ति में उनका अभाव क्यों हो जाता है; क्योंकि वाह्य अर्थो के होने में प्रमाण ज्ञान नही है. और स्वयं प्रकाश होनेसे अपने अस्तित्व में भी वही प्रमाण है. और सुषुप्ति में ज्ञान का सर्वथा अभाव हो जाता है. अब हम पूछते हैं कि

* दोनो आंखो में दो प्रतिबिंब बनते हैं. पीछे मगज में जाके एक होते हैं. दिमाग मे न जायें वहा तक दोनो सत्य है भ्रमरूप नहीं दोनो एक है वा आकाश में दो है ऐसा मानना भ्रम होता है

वोह किस का ज्ञान होता है; क्योंकि ज्ञान अकेला नहीं होता. किसी विषय का होता है. इसका उत्तर तुम कुछ नहीं दे सकते. वहां ज्ञान के होने में कोई प्रमाण नहीं है. निदान सुषुप्ति में न अर्थ है न ज्ञान है. जो वे सत् होते तो उनका अभाव न होता. इसलिये सत् नहीं असत् भी नहीं ठेरा सकते; क्योंकि असत् का भासना ही नहीं हो सकता उभय (सदसद्) रूप भी नहीं हो सकते; क्योंकि दोनों का विरोध होने से इनकी एकता नही बनती. अनुभय (न सत् न असत्) रूप भी नहीं हो सकते; क्योंकि एक का निषेध उससे भिन्न की विधि अवश्य करता है. ‡ इसलिये विचार के आगे न ठेर सकने से शून्य ही तत्त्व है.

प्रमाता, प्रमेय, प्रमाण और **प्रमिति** (प्रमा) यह चार तत्त्व माने हैं सो भी अवस्तु ही है; क्योंकि घोडे के सींग समान विचार में नही टेरते. किसी प्रमाण का प्रमेय न होने से प्रमाता का अभाव है. इंद्रियातीत होने से प्रत्यक्ष नहीं. मैं (अहं) यह मानस प्रत्यक्ष भी व्यभिचारी है; क्योंकि मैं काला, मैं गोरा, मैं मोटा, मै दुबला इत्यादि में **मैं** की प्रतीति का आश्रय (विषय) शरीर ठेरता है. यदि अहं की प्रतीति आत्मा को विषय करती हो तो यह प्रतीति कभी कभी होनेवाली न होनी चाहिये; क्योंकि आत्मा सदा निकट है. और जो प्रतीति कभी हो वोह कभी वाले (कादाचित्क) कारण से होती है. यथा बिजली का ज्ञान. और **प्रमाता को अनुमान से** भी सिद्धि नहीं होती; क्योंकि अव्यभिचारी लिंग नहीं मिलता और **आगम** (शब्द प्रमाण) भी इसमें प्रमाण नहीं माना जा सकता; क्योंकि एक दूसरे का लेख नहीं मिलता तथा एक दूसरे के सिद्धांत का खंडन करते हैं अर्थात् मतभेद है. सारांश जिनकी अपनी ही प्रमाणता स्थित नही हुई वे दूसरे का स्थापन केसे कर सकेंगे. इस प्रकार प्रमाण रहित होने से प्रमाता कोई नहीं है. और न **प्रमेय** (बाह्यार्थ) है जेसा कि विज्ञानवाद में खंडन हो चुका है. अब रहा **प्रमाण,** जो अपने आपका और विषय का प्रकाशक ज्ञान है, वोह जब प्रमेय ही कोई नही तो विषय शून्य होने से किसका ग्राहक होगा; इसलिये विचार के आगे न टेरने से सर्वशून्य ही है § इसलिये

‡ बौद्ध भी सप्तभंगी (जैनदर्शन में बाचोगे) मानते है (सत्यार्थप्रकाश बौद्ध प्रसंग).

§ यहां अनिर्वचनीय (विचार युक्ति मे असह्य) शब्द कहना चाहिये था. अथवा जेसा मानते हो वेसा नही है. याने मंतव्य रहित भाव होने से शून्य है. ऐसे भाव मे शून्य कहा हो.

(इद वस्तु वलायात—++यथा यथा विचार+++इत्यादि वाक्य) यह वस्तु वल से आई है (अर्थात् अगन्या इसको मानना पडता है), ऐसा जो विद्वान कहते हैं, सो वैसे ही नहीं है; किंतु जैसे जैसे इन अर्थों मे विचार किया जाता है वैसे वैसे वे गिरते जाते हैं. अब यह गिरना अर्थों को स्वय पसद हो तो हम उसमे कोन हैं.

जब जन शून्य ही तत्त्व है तो सब कुछ शून्य है. इसी का ध्यान करना चाहिये, इससे अत में विज्ञान का दीपक भी बुझ जाता है यही निर्वाण है.

(६) शून्यवाद पर वहुत कुछ अनिवार्य आक्षेप होने पर जो इसका दूसरा परिष्कार हुवा वह यह है कि यह पदार्थ पूर्वोक्त प्रकार से विचार को नही सहार सकता, इसलिये विचारासहत्व (विचार को न सहारना याने अनिर्वचनीयता) ही वस्तुओं का तत्त्व है और निर्वाण—ज्ञान का वासनाओ से शून्य होना है. (नवदर्शनसग्रह मे से).

(७) बौद्धों का विश्वास है कि ६ बुद्ध पहिले हो चुके है, शाक्य मुनि गौतम सातवा बुद्ध है. (कल्याणमार्ग में बुद्ध ने अपने को २४ वा बुद्ध बताया है).

बौद्ध लोक बुद्ध की मूर्ति बना के मदिरो मे रखते है यादगारी अर्थ दर्शनमात्र करते है. सफाई धूप से इतर पूजा नही करते. इनके देवल परखडो मे भी मशहूर है. साधु मडलो की बडी बडी गुफायें वर्तमान मे मशहूर है. लका में कितने बौद्ध रामादि की मूर्ति भी पूजने लगे है. अर्थात् मत का प्रतिक्रमण हुवा है.

(८) ऐसा कहने में आता है कि आर्यावर्त म मूर्ति पूजा पहिले नहीं थी, बौद्ध मत पीछे चली है; परतु (१) चिकित्स. मनु अ. ३ श्लो. १२८ में देवलक (आजीवकार्थ मूर्ति पूजक) को हव्यकव्य में वर्जा है (२) जीवकर्थे. अष्टाध्यायी के भाष्य में पतंजलि मुनि ने आजीवकार्थ मूर्ति घडनेवाले दरसाये है (३) अथयदा. देवेत प्रतिमा हसति. सामब्रह्मण ताडय ब्राह्मण के अत में मूर्ति का बयान है. इससे पाया जाता है कि आर्यावर्त मे मूर्ति प्रचार प्राचीनकाल से है. (शं.) उक्त वाक्य क्षेपक (उ.) आपका विकल्प ऐसा क्यो न हो?

"ईश्वर धर्म अने स्वर्ग." इस ग्रथ मे लिखा है कि कालातर में इस धर्म (बौद्ध धर्म) विषे "प्रकृति अनादि तत्त्व है, उसमें जगत उत्पन्न करने की शक्ति है. इसके हरेक अणु मे ज्ञान, इच्छा, अहकार यह तीन है, इनके मिश्रण मे जो स्वरूप भूत पहिला बुद्ध उत्पन्न होता है वोह शरीर मन विना का है", ऐसा मनाया दूसरा

मत यह निकला कि चैतन्य स्वरूप प्रकृति से अतीत स्वतंत्र विचारक्षम जो मूल तत्त्व वोह केवल चेष्टा रहित है सो ही परमेश्वर है. कोई पक्ष ऐसा मानने लगा कि वोह स्वयंभू है; प्रकृति से अतीत है. कोई पक्ष ऐसा मानने लगा कि वोह स्वयंभू प्रकृति से सबध द्वारा एक पुरुष उत्पन्न करता है और वोह जगत पेदा करता है. उसने अपने तत्त्वों से पाच (कोई कहता कि) सात बुद्ध पेदा किये. उनसे ५ वा ७ बोधिसत्व पेदा हुए, वे नवरवार एक एक जगत पेदा करते हैं. वे ऐसे कायदे से बनाते है कि उनसे आप ही आप सृष्टि चले. कोई कहता है कि बुद्धि सत्वो अपनी तरफ का काम चलाने वास्ते दूसरे भूत (देव) पेदा करते हैं, उनसे जगत का काम चलता है. कितनेक ऐसा मानते है कि बुद्धि सत्वो ने सत्व, रज और तम यह तीन देवी पेदा की, यह तीनो जगत् उत्पत्ति, स्थिति लय का काम करती है. मनुष्य सृष्टि मे प्रकृति से उत्पन्न हुये तत्त्व (भूत) अनेक जन्म भोग के कर्म तप के बल से चेष्टा रहित निर्गुण होते हैं, इस स्थिति वाले का नाम बुद्धस्वरूप है. और यह आदि बुद्ध–ईश्वर के तेज से है वा अन्य बुद्धों का अश है, अंत मे वोह ईश्वरी तेज में मिल जाता है अंतिम सातवा गौतमबुद्ध है जो हाल में उपदेष्टा हुये. इत्यादि बौद्ध मत में फाटे है. इस पक्ष के बोद्ध चीन और नेपाल मे है. लंका में ईश्वरवादि और मूर्ति पूजक भी बौद्ध हैं. सन् १८९१ के वसती पत्रक * से ज्ञात हुवा कि पजाब मे बौद्धो के ५ पंथ है–दुकपा, गेलुकपा, लोधकपा, नगमा और शक्या यह उन पाचो के नाम हैं.

शोधक.

बौद्धमत पर आक्षेप बहोत हैं; यहा सक्षेप में —

(१) उनके परस्पर में एक दूसरे का निषेध है यह बडा दोष है.

(२) तमाम बौद्धो पर जो अनिवार्य आक्षेप है वोह यह है कि जेसे आकाश को आवरणाभाव माना है तब गति परिणाम होते हैं. वेसे माने हुये परमाणुओ का अधिष्ठान–आधार मानना चाहिये था; क्योकि जो कोई स्वयंभू द्वारा परमाणुपुंज देशमर्यादा में न रहता हो तो रोक न रहने से ब्रह्माड (गतिमान ग्रह वा परमाणुपुञ्ज) एक तरफ चला जावे उसमे बौद्धमत की थीयरी अनुसार जगत ही न बने वा तित्तर वित्तर हो जाय; क्योकि अन्योऽन्याश्रय और एक तरफ गमनासिद्ध हैं. (अ. २

* इसके उपरात बौद्ध धर्म की अन्य कितनीक शाखा और मतभेद हैं. विस्तार भय से और व्यर्थ ज्ञान के यश नहीं लिखे हैं बाहरे जीव सृष्टि का प्रासंगिक परिवर्तन !!

आधाराधिकरण देखो). इसी प्रकार क्षणिक विज्ञानवादि योगाचार वास्ते ज्ञातव्य है; क्योंकि परिच्छिन्न गतिमान के आकाश और अधिष्ठान की अपेक्षा और अपेक्षा ही.

(३) क पुरुष ने मकान और तलाव बनाया है. ख और ग तालाव में से पानी भर के घट के दोनों पकड के उस मकान पर चढके जा रहे हैं. पीछे क के हाथ से अग्नि पड कर ग का हाथ जल जाता है. इन सब में कौनसा अनुमान का विषय है, सब प्रत्यक्ष हैं. इसलिये बाह्य पदार्थ प्रत्यक्ष है; क्योंकि कारीगर उनसे यथेच्छा मकानादि कर लेता है. प्रतिबिंब से परोक्ष मुख के दोष मान लिये जाते हैं. अलबत्ते बाह्य पदार्थों के मूल स्वरूप (परमाणु) कैसे हैं वे बुद्धि इंद्रिय नहीं जान सकतीं. (विशेष द्व. सि. इमप्रेशन निषेध प्रसंग और त. द. अ. २ सू. ५२९ देखो).

(४) माध्यमिक से इतर सब मोक्ष में विज्ञान की स्थिरता (अस्तित्व) मानते हैं, इससे दो परिणाम निकल आते हैं १. यातो विज्ञान परिच्छिन्न तत्त्व (अणुरूप) है क्योंकि नित्य ऐसे रहने वाला है. जो अनंत होता है उसका आरंभ नहीं; और अनादिअनंत, अणु वा विभु से इतर नहीं हो सक्ते. इसलिये विज्ञानविभु वा अणु होना चाहिये. परिणामी वा गतिमान होनेसे विभु नहीं कह सकने, इसलिये अणु है, अपरिणामी है, परंतु चित्तादि की उपाधि बल से परिणामी जान पडता था. और यदि विभु हो तो उसमें गति और पुनर्जन्म संग संबंध से (औपाधिक) जान पडता था. २. जो यह नतीजा न मानें और विषयाकार होना क्षणिक परिणामी मानें तो वोह मध्यम (सावयव-स्थिति स्थापक, अपने में सयोगी) होने से नाशवान ठेरता है अर्थात् मोक्ष-उसकी स्थिति ही नहीं हो सकती अब उक्त उभय में से क्या मान लेना यह शोधक समझ ले. फेर मुक्ति से अनावृत्ति तो जगत् का उच्छेद, यह सवाल खडा हो जायगा.

(५) योगाचार की रीति से पदार्थ बाह्य नहीं उसका निषेध अ. २।४३ अ. ३।१२६ में आ जाता है. यथा हाथ का जलना बाह्य नहीं अंदर है, ऐसा कौन मान सकता है. सर्व तंत्र अनुभव विरुद्ध मात्रा हठमात्र है. और जो स्वप्नवत् सृष्टि मानें तो स्वप्न में जगत का उपादान शेषा (मायांश) पदार्थ और निमित्तकारण जाग्रत वाला संस्कारी मन और अधिष्ठान चेतन हैं. तीनों समकालीन है और जुदा जुदा स्थित होते हैं (तत्त्व. अ. ३ सू. १९४ से २०४ तक देखो) अतः स्वप्न की रीति मे भी त्रिपुटी का स्थायी व्यवहार और वहां की सृष्टि में बाह्य पदार्थ सिद्ध होते हैं.

(६) क्षणिक विज्ञान अर्थात् क्या? गुण, कर्म, अवस्था, शक्ति, द्रव्यजन्य-द्रव्य वा मूलद्रव्य (धातु) जो पहिले पांच मानें तो उनका गुणी आदि स्थायी द्रव्य (परमाणु) होगा; इसलिये उसे मूलद्रव्य मानना पडा तो परिणामी और क्षणिक न होगा; क्योंकि मूलतत्त्व निरवयव अपरिणामी होता है. परिणाम, पुंज (समूह-मध्यम) का ही होता है; इसलिये क्षणिक विज्ञान उत्पत्ति नाशवाला ठेरने से मोक्ष सिद्धांत न रहेगा.

(७) वासना से विचित्रता और बाह्य प्रतीति तथा परिणाम पाना मानें तो वासना अर्थात् क्या? विज्ञान का स्वभाव. वा अभ्यास वा उससे इतर कपास की लाली समान कुछ. जो स्वभाव और अभ्यास तो पूर्व विज्ञान की संतान उत्तर विज्ञान मे नहीं आ सकती किंतु उत्तर विज्ञान की उत्पत्ति पूर्व पूर्व वाले विज्ञान के साथ नष्ट हो गई; इसलिये प्रवाह न चला. और जो बीज मे लाख का रंग मिलाने से कपास लाल होती है ऐसे वासना को कुछ वस्तु मानें तो द्वैतापत्ति हुई. १० वर्ष पूर्व वाले विज्ञान की १० वर्ष पीछेवाले मे आवेगी; क्योंकि नवीनोत्पत्ति मे. हेतु नही और जो विज्ञान समान वोह भी नवीन मानो तो विज्ञान और वासना (अदृष्ट) यह दो क्षणिक परिणामी ठेरेंगे. ऐसे असंख्य वासना होने से असंख्य वस्तु मिश्रित विज्ञान होगा. इससे स्वसिद्धांत त्याग होगा.

(८) वर्तमान दीपक की लो से उत्तर की लो का उपादान भिन्न है. पूर्व की लो का तो उसके साथ चला गया. बीज अकुर की उत्पत्ति में पूर्व (बीज) और वर्तमान (पृथ्वी आदि) दोनों हैं. जल बरफ वा कनक कुडल कडूले मे पूर्व वाला ही उपादान है. नख और केस मे दीपक शिखा समान है, तद्वत् प्रतिबिंब मे. इस प्रकार कारण कार्यभाव सनियम है. क्षणिक विज्ञान का बदलना जो जल बर्फ, कनक कुंडल जैसा हो तो क्षणिक न ठेरा, मूल उपादान स्थायी होगा. और जो दीपक समान नवीन हो तो उपादान सिद्ध नही होता. और जो बीज वृक्ष समान हो तो भी अन्य उपादान (कारण) सिद्ध नही होता; क्योकि कुछ स्थायी हो तो कारण कार्यभाव हो; इसलिये क्षणिकवाद सिद्ध नहीं होता.

यह बात ठीक है कि क्रिया विना (अक्षणिकत्व)-सहकारी विना कार्य नही होता. और संसार के वैराग वास्ते वा वासना त्यागके वास्ते संसार शरीरादि को अस्थायी क्षणिक क्षणभंगुर कहना यह दूसरी बात है.

(९) हेतु के विना फल नहीं होता. क्षणिकवाद में हेतु (बीज–विज्ञान) फल (वृक्ष–वासना) का क्रम नहीं, अतः व्यवस्था नहीं होती.

(१०) क्षणिकत्व का वा शून्यत्व का ज्ञान किसको यह क्षणिकवाद नहीं बता सकता; इसलिये अमुक भाव असत् करता हूं इस भाव की अनुत्पत्ति रहने से मोक्ष न होगी.

(११) जो क्षणिक विज्ञान से इतर अन्य नहीं तो क्षणिक विज्ञान एक ठेरा. नं. ३ में तालाव, मकान, घट, उभय का स्पर्श और क. ख. ग. किसके परिणाम कहोगे? जो कहोगे उसी में दोष आवेगा. एक के निर्वाण से सबका निर्वाण होना चाहिये. एक सूर्य एक आकाश किसका परिणाम कहोगे? इन अनिवार्य सवालों का उत्तर नहीं हो सकता. जो स्वप्न समान मानोगे तो पूर्व कहे अनुसार एक क्षणिकवाद का त्याग होगा. अब जो क्षणिक विज्ञान नाना हैं ऐसा मानें तो भी उक्त दोष आवेंगे याने बाह्य सूर्यादि (सूर्य चंद्र आकाश एक हैं) और मकान तथा परस्पर भाषण स्पर्शन करनेवाले क. ख. ग. किसके परिणाम कहोगे, निदान उत्तर नहीं मिलता.

(१२) ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान समकाल देखने हैं, सब को अनुभवगम्य हैं. अतः क्षणिकत्व असिद्ध है.

(१३) पूर्वोत्तर विज्ञान यदि अत्यंत भिन्न तो उपादान न मिलने से उत्तर की अनुत्पत्ति और यदि अभिन्न तो स्वरूपतः क्षणिक न ठेरा किंतु मूल का नवपर्याय कनककुंडलवत् बदलना है.

(१४) एक ही विज्ञान शीत, उष्ण, तम, प्रकाशादि विरोधी रूप धारण करे यह असंभव. इसलिये यदि परिणामी है तो विजातीय पुंजों का समूह उत्पत्ति नाश वाला मानना पड़ेगा.

(१५) चक्षु में चंद्र के प्रतिबिंब जुदा जुदा पड़ने से वे दो होते हैं. वे मगज में जाके एक होते हैं, मगज (मन) में न जावें वहां तक दोनों असत्य नहीं, भ्रमरूप नहीं हैं. हां, आकाश में दो मानना भ्रम है; इसी प्रकार ज्ञेय ज्ञान का अभेद मानना भ्रम है, वस्तुतः वे जुदा जुदा हैं.

(१६) सुषुप्ति में ज्ञानाभाव न हो तो मैं आराम से सोया, मुझे कुछ खबर न रही, ऐसी स्मृति अनुभव बिना कैसे हो सकता है.

(१७) प्रमाणाभाव के प्रमेय का अभाव मानना भूल है. जैसे अंध हो तो क्या रूप नहीं? अभाव से भाव मानना भूल है. यथा वर्तमान द्रष्ट के मूल को पूर्व उत्तर में न मानना. † यदि पूर्वोत्तर न होने से सर्व शून्य तो वर्तमान में कहां से आया? स्वप्नसृष्टि पूर्वोत्तर मत हो परंतु उसका बीज तो होना ही चाहिये. जिसे सद, असत या सदसत हम नहीं कह सकते तो उसे हम नहीं जान सकते हैं वा अनिर्वचनीय है, ऐसा कह सकते हैं, नहीं कि शून्य; क्योंकि अंत में शून्य का साक्षी उससे भिन्न मानना पडेगा. अन्यथा शून्य की सिद्धि न होगी.

(१८) स्फटिक और दूध एक क्षण नही किंतु परिणाम बोधक गुणों का आविर्भाव होता है.

(१९) सुषुप्ति भी अवस्था है, इसलिये विज्ञान क्षणिक नहीं. सब विषय का एक को ज्ञान नही होता, और भेदज्ञान, वर्गीकरण, निश्चय, विवेचन, स्मर्ण, विषय प्रतिक्रमण, देखे से अन्यथा कथन, शंका समाधान इत्यादि कार्य होते हैं, अतः इनका कर्ता क्षणिक नही.

(२०) अनुभव क्षणिक होने से वासना के अधिष्ठान की सिद्धि नहीं होगी. कर्ता भोक्ता समकाल माना तो अदृष्ट, बंध के हेतु न होंगे. संस्कार हुये विना आकार धारण नही कर सकता; इसलिये क्षणिक विज्ञान से भिन्न अन्य की अपेक्षा. इस व्याप्ति से वासना जनक अन्य होने योग्य है.

(२१) कारण के विना कार्य नहीं होता. इसमें कम से कम २ क्षण तक स्थिरता की अपेक्षा. जो उभय क्षणिक तो कार्य होने में अव्यवस्था. क्षणिकवाद में स्थिरता को भ्रांति–अविद्या माना है. अब जो उसका नाश ज्ञान से मानो तो विना हेतु के (समकाल वाले हेतु के विना) असंगत और जो स्वतः नाश मानो तो उपदेश तथा सब क्षणिक वैसे भाव की अपेक्षा न रहेगी. कारण सत्य तो कार्य सत्य, कारण तुच्छ तो कार्य तुच्छ, क्योंकि उपादानवत् कार्य होने का नियम है. अब यदि विज्ञान के परिणाम असत् तुच्छ मानोगे तो विज्ञान भी वैसा ही ठैरेगा, मोक्ष सिद्धांत न रहेगा. और यदि सत्य मानोगे तो क्षणिक न मान सकोगे. पूर्व विज्ञान उत्तर में यदि स्मृति

† बुद्ध से ले के शंकराचार्य के उत्तर तक का काल उससे पीछे के (विक्रम के पीछे) काल से उत्तम और तार्किक भी होना चाहिये, परंतु बौद्धों की थीयरी और भ्रंत्रप्रचार मनाया इससे उनकी भावना आश्चर्य की विषय रहती हो अस्तु

भाव (संतान) छोड जाता है तो वैसी स्मृति होनी चाहिये. मैंने पूर्व मे देखा ऐसा न होना चाहिये; क्योंकि जिसने अनुभव किया उसी को स्मृति होती है. बाहिर मे पदार्थ न हो तो ज्ञान किसका! स्वप्न में विषय न हो तो ज्ञान किसका! और स्मृति किसकी? बौद्धों की रीति से उत्तर नहीं हो सकता मैं वा मेरा सिद्धांत पूर्व क्षणिक की संतान, ऐसा अनुभव होने का मूल ही नही मिलता. परतः (अनुमान) मानें तो उसका ग्रहण किसी में ग्रहण होने से वोह संतान से भिन्न ठेरता है.

(२२) जो क्षणिक विज्ञान तत्त्व तो मोक्ष से अनावृत्ति होने पर जगत का उच्छेद होगा परंतु आज तक हुवा नहीं और यदि अतत्त्व तो उसकी मोक्ष नहीं; क्योंकि नाशवान ठेरा. अतः साधन व्यर्थ होगे तो भी जो आग्रह हो तो उसकी अनावृत्ति से क्षणिक विज्ञान के उपादान (मेटर) का जब तक अन्त होने से सृष्टि ही न होगी. परन्तु यह बात असंभव है. (वेद न. ९ और अ. ३ सू. २१० तथा युक्ति प्रसंग ध्यान में लीजे).

(२३) इत्यादि नीति से बौद्धों का मंतव्य अलीक ठेरता है.

विभूषक.

पूर्वोक्त ईश्वरादि और इन अवतारादि को एक तरफ रख के बुद्धदेव का जो उपदेश (अ. ४ में लिखा है) सो पंचदशाग पूर्वक मानके पाला जाय तो उत्तम ही है बुद्ध प्रसंग में ऊपर कह आये हैं क्योंकि बुद्ध के उपदेश ने स्वार्थ में बांधने वाली निष्ठामनता से दूर रखने वाला जो अर्हत्व उसका निर्देश है हां, यह बात ठीक है कि अहंता ममता विना का साम्यभाव रखने वाला परोपकारी भलाई का नमूना सिद्ध होना है. समदायी सभा (मतपंथ) अर्हत्व के विना नहीं चलती, इसलिये बुद्ध के उपदेश का वही ग्राहक हो सकता है कि जिसकी दृष्टि में तमाम मनुष्य (हरेक धर्म मतपंथ वाला) मेरे अंग हैं मैं उनका अंग हूं, ऐसा भाव हो. यहां बौद्धों के पक्ष पर दृष्टि न डालें किंतु प्रमाणित बुद्धदेव के महत्त्व को आगे रखके विचार करें

---

१७. जैनदर्शन (अर्हतदर्शन).

(१) इस दर्शन के प्रवर्तक श्री महावीर स्वामी हुवे हैं, जिनके सिद्धांत के मूल प्रवर्तक अर्हत मुनि अर्थात् श्री ऋषभदेवजी (तीसरे आरे में) सिद्ध पुरुष माने

अरेरे के आरंभ से पूर्व तक २४ तिर्थंकर हुये हैं उनमें से अंत के महावीर स्वामी हैं. अब आगे छटे अरेरे की समाप्ति तक कोई तिर्थंकर न होगा. *

अब स्यादवाद मंजरी, पंचास्तिकाय, अज्ञान तिमिर भास्कर, जैनतत्वादर्श, समय प्राभृत स्याद्वाद भाषा, षड्दर्शन, समुच्चय, सर्वदर्शनसंग्रह, नवदर्शनसंग्रह और सत्यार्थप्रकाश की सहायता से जैनदर्शन-मंतव्य का सार और विशेष वर्णन जनाते हैं-

जैन वेद मानते थे.

ऋषभदेव के पुत्र भृत ने आदेश्वर ऋषभदेव की स्थिति रूप गृहस्थ धर्म सूचक ४ वेद बना के गृहस्थों को सिखाये. वे उपदेशक श्रावक ब्राह्मण कहलाये. परंतु नोवें ९ सुविधिनाथ पुष्पदंत अरिहंत के पीछे वेदों में नवीन हिंसक श्रुति मिलाई गई. स्वार्थ वास्ते ब्राह्मणो ने अपनी वडाई गाई. तब से जैन धर्म ने वेद से किनारा किया. ‡ अज्ञान तिमिर भास्कर पं. साधु आत्माराम मुनि कृत. उनके जैन तत्वादर्श ग्रंथ में भी ऐसा भाव है.

ढूंढ मत से पूर्व के डिगंबरी जैन जनेऊ लेते और रखते हैं, इससे पाया जाता है कि प्राचीनकाल में वेद के अनुयायी होंगे. या तो वेद के ईश्वरादि विषय को छोड के उसका जनेऊ संकेत नहीं छोडा होगा-कायम रखा.

वेद में हिंसा—यज्ञ में पशु वध.

नवा उपतन्म्रियमे. यजु. अ. २३ मं. १६ भावार्थ—हे अश्व हम तेरे को मारते हैं सो तू मरेगा नहीं किंतु देवयान मार्ग से तू देवलोक को प्राप्त होगा. इ. +

अशुद्धमिति चेन्न शब्दात. शारीरिक अ. ३ सू. २५. शंकर भाष्य. हिंसानुग्रहात्म. इत्यादि—हिंसा से अभिष्टफल को देने वाला जो ज्योतिष्टोम यज्ञ है

* पुराण (सनातनी) कुरान, बायबल मानने वाले तथा बौद्ध और जैन इन ने अमुक से पीछे अन्य न होगा, ऐसी हद बांधी है, यह कैसी थीयरी-भविष्य यथा १० अवतार, मुहमद भी अंतिम नबी इसु भी अंतिम नबी, मूसा भी अंतिम नबी, ७ बुद्ध, महावीर भी अंतिम तिर्थंकर इत्यादि

‡ ऐसे लेखों का किसी इतिहास में पता नहीं मिलता, क्योंकि वेद में जगत्कर्ता ईश्वर माना है उसमें तो हिंसा नहीं है, तो फेर जैनमंडल ईश्वर को जगतकर्ता क्यों नहीं मानता. इससे जान पडता है कि यह लेख बुनियाद नहीं रखता.

+ यहां अर्थ की तकरार है. स्वामी दयानंदजी अपने वेदभाष्य में जनाते हैं कि वेद में पशु वध सर्वथा नहीं है वेद भाष्य भूमिका.

उसको धर्म रूप होने से वैदिक कर्म अशुद्ध नहीं. श्री रामानुजजी भी अपने इसी सूत्र पर अपने श्रीभाष्य में इसी भाव वाला आशय लिखते हैं. अग्नीषोमीयादेः इत्यादि. जैनास्तिकत्व मीमांसा ग्रंथ पं. हंसराज शर्मा कृत. सं. १९६९ बडोदे विद्याविलास प्रेस.

स्वामी दयानंद कृत यजुर्वेद भाष्य यजु. अ. ६ मं. २२. हे परमेश्वर आपकी कृपा से जल और ओषधि हमारे लिये सुखकारक हों! और जो हम लोगों से द्वेष (दुश्मनी) करता है और जिससे हम लोग द्वेष करते हैं उसके लिये यह (ओषधि और जलादि वस्तु) दुःख देने वाले हों. मध्यस्थ ग्रंथमाला पेज ८४.

जैन धर्म ऐसा मानता है कि जब दूसरा तीर्थंकर होता है तब उसके पूर्व के तीर्थंकर के ग्रंथ लुप्त हो जाते हैं (देवता लुप्त कर देते हैं), इसलिये महावीर स्वामी के पूर्व के जैन धर्म के ग्रंथों का अभाव है—नहीं मिलते. यूं है तो भी उत्तर तीर्थंकर सर्वज्ञ होने से वही उपदेश करता है कि जो जिनेंद्र आदिनाथ ऋषभदेव ने कहा था. आत्माराम कृत अज्ञान तिमिर भास्कर की प्रस्तावना पेज १२ में वे स्वयं ऐसा लिखते हैं.

जिन मंतव्य का सार.

(१) जीव और अजीव (पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल अर्थात पृथ्वी आदि चार प्रकार के प्रमाणु, तथा धर्म, अधर्म, देश और काल यह पांच) द्रव्य हैं.

(२) जीव, चेतन ज्ञान लक्षण परिणामी कर्ता भोक्ता और नित्य है.

(३) कर्म वासना के (द्रव्य कर्म के) अनादि प्रवाह से जीव को बंध है अर्थात् कर्म वासना के अनुसार धर्म अधर्म द्वारा उत्तम मध्यम कनिष्ट योनियों में आ के दुःख सुख भोगता है. नरकादि गति को प्राप्त होता है.

(४) पृथ्वी, जल, तेज और वायु जो कि नित्य हैं इन परमाणु और जीव के संबंध से यह सब स्थावर जंगम बनता है.

(५) दर्शन, ज्ञान और चारित्र अर्थात् निषिद्ध वर्जित उत्तम कर्म और जिन शास्त्र बोधित तत्त्वज्ञान से तथा तदनुसार आत्मरत वर्तन से जीव मोक्ष को पाता है. फिर जन्म मरण के चक्र में नहीं आता.

(६) कर्म वासना रूप बंध के अभाव हो जाने पर जहां लोक नहीं ऐसे स्थान में केवल अपने शुद्धस्वरूप से स्थित होने का नाम मोक्ष है. वहां से आवृत्ति नहीं होती.

(७) जगत्कर्ता-धर्ता-भर्ता-हर्ता कोई ईश्वर चेतन नही है. किंतु सृष्टि (पृथ्वी चंद्रादि) प्रवाह से अनादि अनंत है अर्थात् असंख्य जीवों द्वारा पृथ्वी चंद्रादिकाय बनती है और यथा अदृष्ट (जीव कर्म वासना) उसी पुंज मे उपचय अपचय होता रहता है; इसी का नाम उत्पत्ति स्थिति और लय है; ऐसे प्रवाह है और वोह प्रवाह अनादि अनंत है. सारांश मुक्त सर्वज्ञ सिद्ध तीर्थंकरों मे इतर अन्य कोई ईश्वर नहीं है.

(८) वे मुक्त तीर्थंकर मोक्ष सिला पर स्थित होते है. उनका ज्ञान सब लोकालोक में व्यापक होता है अतः सर्वज्ञ होते है.

विशेष वर्णन.

(१) जीव और अजीव दो प्रकार के पदार्थ है उनमें से जीव भोक्ता द्रव्य है और पुद्गल, (परमाणु पुंज) धर्म, अधर्म, आकाश और काल यह ५ जड द्रव्य है. एवं मुख्य ६ द्रव्य है.

(२) उन ६ में से जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय यह पंचास्तिकाय नाम से कहे जाते है और काल को आस्तिकाय नहीं है क्योंकि काल उपचार से द्रव्य है. वस्तुतः नहीं. †

(३) जीवास्तिकाय— चेतनः (ज्ञान दर्शन) लक्षण, ज्ञानादि धर्मवान, विभाव परिणामी (यथा जल पात्रानुसार परिणाम पाता है, आकार वाला होता है ऐसे अनंत पर्याय परिणामी-जैसी देह वैसा परिणाम होने वाला) पुद्गल अदृष्ट वाला, अनादि (अनुत्पन्न) अनंत (अविनाशी) है. वे सख्या से अनंत है. अलघु अगुरु है. जीवो के मुख्य ३ भेद है. बद्ध, मुक्त और सिद्ध (तीर्थंकर) आर्हत सिद्ध है. § दूसरे कितनेक साधनो द्वारा मुक्त हो चुके और शेष बद्ध है. बद्ध जीवो को ससारी

† जीवादि पांच तत्त्व तीन कालमे संबंध रखते हैं, इसलिये इनमें अस्ति (है है है) शब्द कहा है और अनेक प्रदेश वाला होने से शरीर के समान काय शब्द कहा है; परंतु अब व्यवहार में सांकेतिक पदार्थवाची है. यथा अस्तीति कायते इत्यादि.

§ अर्हत-पूज्य साधारण भाषा में अर्हन्त मुनि लिखते है. प्राकृत में अरिहन्त (कामादि शत्रुओ को मारने वाला) चलता है कहीं कहीं अरुहन्त (फिर न उगना=जन्म न लेना) पाठ है. सब जीव पुरुषार्थ कर के ही मुक्त वा सर्वज्ञ तिर्थंकर (१८ योग्यता वाले) पदवी को प्राप्त होते है. नित्य अनादि सिद्ध कोई नहीं है. परंतु व्यवहार में आर्हत मुनि को नित्य सिद्ध कहते है.

कहते हैं, वे दो प्रकार के हैं * समनस्क (मन वाले यथा जंगम जीव) और अमनस्क (मन रहित यथा वृक्षादि के स्थावर जीव).

(४) **पुदगलास्तिकाय**— जो कारण रूप, सूक्ष्म, नित्य, एक-रस, वर्ण (रंग) गध और स्पर्श कार्य का लिंग, पूरने और गलने का स्वभाव वाला होता है सो. ¶ ६ प्रकार का. पृथ्वी, जल, तेज, वायु यह चारों भुत और स्थावर तथा जंगम याने परमाणुओं का संघात चारों भूत और स्थावर जंगम शरीर यह पुदगल है. मृदु, कठन, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष यह स्पर्श के भेद है. त्यक्त, कट, करवाय, अमल, मधुर, क्षार यह रस के भेद हैं. सुगंध दुर्गंध यह गंध के भेद हैं. लाल, पीला, श्वेत, काला, नीला, हरा यह रंग (वर्ण) के भेद हैं. शब्द पुदगल है. तम-छाया भी पुदगल है (सतकर्म पुदगल पुण्य रूप और असत कर्म पुदगल पाप रूप है) मन स्पर्श वाला है.

(५) **धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय**— जो गति परिणामीपन से परिणाम को प्राप्त हुवा जीव और पुदगल, इसकी गति के समीप से चलन करने का हेतुमात्र है वोह धर्मास्तिकाय. वोह असख्य प्रदेश परिमाण और लोक में व्यापक है (अलोक मे नहीं है). जो स्थिरता से परिणामी हुये जीव तथा पुदगल की स्थिति के आश्रय का हेतुमात्र है सो अधर्मास्तिकाय है. यह भी धर्मास्तिकाय समान लोक में व्यापक है. यह दोनों जीव को धर्माधर्मानुसार कर्म फल मिलने में सहकारी है. मनुष्य जो शुभ कर्म करता है उनका अंदर में जो संस्कार है वह धर्म है. मनुष्य की बाह्य प्रवृत्ति शास्त्र के अनुसार होने से धर्मास्तिकाय का अनुमान होता है. जीव उपर जाने के स्वभाव वाला है उसकी शरीर मे स्थिति से अधर्मास्तिकाय का अनुमान होता है.

---

* भव्य-मोक्ष पाने योग्य अभव्य-मोक्ष पाने न योग्य. ऐसे २ भेद भी मानते हैं.

तीर्थंकर=जिस कर के ससार समुद्र से तिरा जावे तिसका करने वाला

तीर्थंकर=भवसागर मे तिराने वाला जो ग्रथ उसका जो प्रेरक (अज्ञान तिमिर भास्कर पेज १३२).

जैन धर्म के ग्रथ ६ भाषा मे हैं संस्कृत, प्राकृत. (३ प्रकार की) सूरसेनी, मागधि, पैशाची, अपभ्रश अ. ति भा. प्रस्तावना पेज १३

¶ सब मिश्रण अनेकात होने से जुदा परमाणु का प्रयोग नहीं करते किंतु पुदगल कहते हैं

(६) **आकाशास्तिकाय**—जो सब द्रव्यों का आधार है जो अवगाहन प्रवेश निर्गमनादि क्रिया करने वाले जीव तथा पुदगलों के अवगाहन का हेतु है सो आकाश सर्वव्यापी है. उसके दो भेद हैं. उपर उपर स्थित लोकों के अंतरवर्ती जो आकाश है वोह **लोकाकाश** है और उनके उपर जो मोक्ष का स्थान है वोह **अलोकाकाश** है क्योंकि वहां लोक नहीं. मुक्तों से इतर वहां अन्य नहीं. + लोकाकाश में जीव पुदगलादि हैं. अलोकाश में काल इतर अन्य नहीं है.

(७) **काल**— जो पूर्वोक्त पंचास्ति कायों का परत्व, अपरत्व, नवीन, प्राचीनता का चिह्न रूप प्रसिद्ध वर्तमान रूप पर्यायों से युक्त है वह काल कहाता है. पुदगलों की गति से काल के § पर्यायों का बोध होता है.

(८) यह संसार अनादि से है और अनंत है. इसकी न कभी उत्पत्ति हुई और न नाश होगा. किसी ईश्वर चेतन का बनाया हुवा नहीं है. (मामिअणाई. प्रकरण रत्नाकर भाग ३ शतक १० सूत्र ३).

(९) तीन प्रकार के प्रमाण (ज्ञान के साधन) हैं. स्वतः और परतः ऐसे दो भेद वाला है. तथाहि प्रमाण प्रत्यक्ष, परोक्ष ऐसे दो भेद वाला है. स्पष्ट को प्रत्यक्ष कहते हैं. प्रत्यक्ष भी बाह्य (इंद्रियजन्य) आंतर (दुःखादि आंतर प्रत्यक्ष) दो भेद वाला है. यह व्यवहारिक भेद कहा. दूसरा पारमार्थिक प्रत्यक्ष है. (अहमादि प्रत्यक्ष) इसमें जो असंपूर्ण हैं उसे विकल (अवधि ज्ञान. मन पर्याय ज्ञान) कहते हैं. पूर्ण (सब आवर्णक्षय सब द्रव्य पर्याय साक्षात) अर्थात सर्वज्ञ का ज्ञान है उसे सकल कहते हैं. **अस्पष्ट** को परोक्ष (अनुमान) कहते हैं. उसके स्मृत्यादि ५ भेद हैं (न्यायांतर गत है) आप्त वचन से जन्य जो ज्ञान वोह आगम याने उसमें वोह शब्द प्रमाण है. उसके दो भेद हैं. लौकिक और सर्वज्ञ तीर्थंकरों के वाक्य.

(१०) प्रमाण से भिन्न **अप्रमा** (भ्रम—आभास, हेत्वाभास, संशय, विपर्य ज्ञान) है (न्यायवत् भेद हैं).

व्यवहार दृष्टि से कथन **व्यवहारनय**, वस्तुतः—वास्तविक दृष्टि से कथन मंतव्य, **निश्चयनय**, स्वरूप दृष्टि से कथन **द्रव्यार्थिकनय**, और पर्याय (भाव, अवस्था, परिणामादि) से कथन **पर्यायार्थिकनय** (इत्यादि नय) कहाता है.

+ इसमें मुक्तों के स्थान को सिद्ध शिला कहते हैं २२ लाख जोजन उसका परिमाण कल्पते हैं.

§ इसका वर्णन आगे बांचोगे

(११) अब इससे आगे अन्य प्रकार से कहते हैं. जीव, अजीव, धर्म (पुण्य) अधर्म (पाप) आस्रव, संवर, बंध, निर्जरा और मोक्ष यह ९. तत्त्व हैं. चार का बयान उपर हुवा. आस्रवादि का नीचे कहते हैं.

जैन मत में कर्म को द्रव्य माना है अर्थात् एक प्रकार के जड परमाणुओं में ही कर्म व्यवहार किया जाता है. शुभ अशुभ अध्यवसाय से जीव के साथ कर्म परमाणु संबंधि होके + उसकेज्ञान दर्शनादि अनंत शक्तियोंको तिरोहित कर देते हैं. मध्यस्थ ग्रंथमाला पेज ६८.

(क) आस्रव-संवर, निर्जर— यह तीनों प्रवृत्ति स्वरूप हैं. इसमें मिथ्या प्रवृत्ति **आस्रव** और सम्यक प्रवृत्ति **संवर** और **निर्जर** है. विषयों की तरफ झुकाने वाली जो इंद्रियों की प्रवृत्ति वह आस्रव है. शम दमादि रूप प्रवृत्ति संवर है; क्योंकि उक्त झुकाव को रोकती है. शम (मन का शांत रहना), दम (इंद्रियों का रोकना), गुप्ति (कायावाचा मन का निग्रह), समिति (प्रकाश में देख देख के चलना ताकि जीव हिंसा न हो और नियत आहार का सेवन). तप्तशिला पर चढना, बाल लोचन करना इत्यादि जो तप हैं उन्हें **निर्जर** कहते हैं; क्योंकि वोह चिरकाल से प्रवृत्त हुये पुण्य पाप के मल को देह के साथ जीर्ण कर देता है. संवर, निर्जर ऐसे होने चाहियें कि जिससे नवीन कर्म का बंध न हो.

(ख) बंध— जीव को अष्ट प्रकार के कर्म बंध होते है. (१) **ज्ञानावरणीय कर्म**— सम्यक ज्ञान मोक्ष का साधन नहीं है क्योंकि ज्ञान से वस्तु की सिद्धि नहीं होती ऐसा मिथ्या ज्ञान. (२) **दर्शनावरणीय कर्म**— अर्हत के दर्शन के अभ्यास से मुक्ति नहीं होती ऐसी भावना होना. (३) **मोहनीय कर्म**— तीर्थंकर प्रदर्शित मोक्ष मार्ग में से विशेष का अग्रहण (निश्चय न होना). (४) **अंतराय कर्म**—मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त हुए को विघ्नकारक ज्ञान (खयाल). यह चारों कर्म श्रेय (मोक्ष—कल्याण) के नाशक—प्रतिबंधक होने से घाति कर्म कहाते हैं. (५) **वेदनीय**— मेरे लिये ज्ञातव्य तत्त्व है यह अभिमान होना. (६) **नामिक**— मैं अमुक नाम वाला हूं ऐसा अभिमान. (७) **गोत्रिक**— मैं भगवान अर्हत के शिष्य वंश में प्रविष्ट हुवा हूं ऐसा अभिमान. (८) **आयुष्क**— शरीर यात्रा के निमित्त जो कर्म हैं सो. वेदनीयादि ४ बंधरूप है तथापि मुक्ति के विरोधी नहीं; क्योंकि तत्त्व ज्ञान के विघातक नहीं,

+ वेदांत में इसको प्रकृतिजन्य कोष—२८ कहते हैं. थी. सो. भी ऐसा ही मानती है.

इसलिये अघातिक कर्म हैं. किंवा—पूर्व पुण्यों से शुक्र पुदगल की प्राप्ति अर्थ रजी वीर्य का मिश्रण आयुष्क है, उसकी तत्त्व ज्ञान के अनुकूल देह के परिणाम की शक्ति **गोत्रिक है.** शक्त हुये उसकी द्रवरूपा जो कलला अवस्था है उससे आगे बुदबुदावस्था की आरंभ क्रिया विशेष नामिक है. अब सक्रिय बीज का जो घनीभाव है वह **वेदनीय है;** क्योंकि वोह तत्त्व वेदन (तत्त्व ज्ञान) के अनुकूल है. यह सब तत्त्व ज्ञान के निमित्त जो शुक्र पुदगल हैं उनके लिये हैं; इसलिये अघातिक कहाते हैं. सो उक्त आठों कर्म जन्म के हेतु हैं; इसलिये बंध के हेतु हैं.

(ग) **मोक्ष**—जिस आत्मा के सारे क्लेश और उनकी वासनायें दूर होकर ज्ञान का आवरण उठ गया है उस आत्मा की मर कर (शरीर त्याग पीछे) केवल सुख को अनुभव करते हुये जो उपरिदेश (उक्त अलोकाकाश) में स्थिति होती है वह मोक्ष है. वहां उसको अर्हत मुनि की प्राप्ति होती है. ‡

(१२) सप्तभंगी स्याद्वाद की भूमिका—

जैन धर्म का यथार्थ नाम अनेकांतवाद वा स्याद्वाद है. इसे मध्यस्थवाद कहें तो भी उचित होगा. जैन धर्म में वस्तु मात्र की व्यवस्था एक दूसरे की अपेक्षा से की गई है; अतः इसका दूसरा नाम अपेक्षावाद है. पदार्थ में स्थिरांश **द्रव्य,** और अस्थिरांश **पर्याय** कहाता है. द्रव्य रूप से जीवादि नित्य और पर्याय रूप से अनित्य; इसलिये नित्यानित्य रूप हैं. द्रव्य और पर्याय परस्पर में भिन्न नहीं हैं. दोनों परस्पर की अपेक्षा से कहे जाते हैं. यथा स्त्री पुरुष, दिन रात, पंडित मूर्ख, घट अघट, सत्य असत्य, तम प्रकाश, बंध मोक्ष—यह सब व्यवहार परस्पर की अपेक्षा से ही किया जाता है. इस अपेक्षावाद का ही नाम नयवाद है. यथा पुत्र की अपेक्षा से पिता कहना. मुख्य दो नय हैं. **द्रव्य** याने मूल वस्तु. **पर्याय** याने उसकी विकृति—फेरफार. जैसे सुवर्ण द्रव्य और कुंडल बोटी वगेरे पर्याय. (परिणाम—अवस्था). गुण का नाम पर्याय नहीं है द्रव्यार्थिक नय के ३ और पर्यायार्थिक नय के ४ वर्ग हैं. इन ७ से जो व्यवस्था हो उसको सम्यक्त्व और एक से ही हो तो मिथ्यात्व कहा जाता है.

---

‡ एक संप्रदाय का यह मंतव्य है कि धर्माधर्मास्ति काय से बंधा हुआ जीव जब छूट जाता है तब अपने उपर उपर जाना ऐसे स्वभाववश लगातार उपर ही उपर जाना यह मोक्ष है.

स्यात् अनेकांत का द्योतक अव्यय है. इसका अर्थ यथा कथंचित (जिस किसी प्रकार से) अथवा अपेक्षा से. (प्र.) क. पदार्थ सत् है. (उ.) स्यात्—किसी अपेक्षा से. वस्तु सत् वा असत् ही है इसका नाम एकांत है किसी अपेक्षा से सत् और किसी अपेक्षा से असत् भी है, इसका नाम अनेकांतवाद है. बताने वाले प्रकार को भंग कहते हैं. वे सात हैं. हंस रचित मध्यस्थवाद—ग्रंथमाला पृष्ट २२.

जैनों का कथन है कि, पर्याय की अपेक्षा से वस्तु प्रतिक्षण परिवर्तनशील है. सब वस्तु के पर्याय अनित्य क्षणिक हैं. ६०.

जो जल तरंगवत् उत्पत्ति नाश को प्राप्त हो सो पर्याय. सो दो प्रकार के हैं. (१) क्रम=सुख, दुःख, अनेकत्व, पृथक्त्व वगैरे. (२) सहभावी. जैसे आत्मा का ज्ञान. पं. आत्माराम कृत तत्त्व निर्णायक प्रसाद.

सप्तभंगी—जैन मत में मुख्य नय दो प्रकार के हैं व्यवहारनय और निश्चय (वास्तविक) नय. व्यवहार नय अनेक प्रकार के हैं. उनमें से एक सप्तभंगी नय है. अस्तित्वादि सप्त कोटी में एक वस्तु विषे जो विरोध का भंग उसे सप्तभंग कहते हैं. वहां जो नय (युक्ति) सो सप्तभंग नय कहाता है. * जैसे घट का एक स्वरूप घट का अस्तित्व (है पना) है, दूसरा प्राप्यत्व (पाने योग्य) है. अब यदि जैसे घट स्वरूप से विद्यमान है, इसी प्रकार यदि प्राप्यत्वरूप से भी विद्यमान हो तो उसकी प्राप्ति के लिये यत्न न हो. इसलिये घटत्वादिरूप से कथंचित (किसी प्रकार) है, परंतु प्राप्यत्वादिरूप से—कथंचित नहीं है. अथवा घट स्वद्रव्य क्षेत्र कालभाव और रूप से (अपने स्वरूप से) है. पर (पटादि) द्रव्य क्षेत्र कालभाव और रूप (पर स्वरूप) से नहीं है. (वा आप सा है पर जैसा नहीं है) इस प्रकार हरेक भाव में अनेक रूपता है (अनेकांत है).

सप्तभंगी.

नीचे के प्रयोग में स्याद्=कथंचित (कोई प्रकार) अस्ति=है. ऐसा अर्थ है.

(१) स्यादस्ति. (२) स्यान्नास्ति. (३) स्यादस्तिचनास्तिच. (४) स्याद्-वक्तव्य (५) स्यादस्तिचा वक्तव्यश्च. (६) स्यान्नास्तिचा वक्तव्यश्च. (७) स्यादस्तिचा नास्तिचा वक्तव्यश्च. इनका भाषा में अर्थ यह है १. कोई प्रकार से है. याने कोई

* कोई [illegible] यह [illegible] नहीं मानते किंतु व्यवहार नय में लेते हैं क्योंकि [illegible] अनेकांत [illegible] है [illegible] में [illegible] हो आ जाता है.

अपेक्षा से है. २. कोई अपेक्षा याने कोई प्रकार से नहो है. ३. कोई प्रकार से है और कोई प्रकार से नहीं. ४. किसी प्रकार कहा न जाय. ५. किसी प्रकार से है परंतु कह नहीं सकते. ६. किसी प्रकार नहीं है और कहा भी न जाय. ७. किसी प्रकार है भी नहीं भी और कहा भी न जाय.

जब वस्तु की विधि कहनी हो यथा घटत्वादि रूप से अस्तित्व कहना हो तो स्यादस्ति (कथंचित है) यह पहिला भंग प्रवृत्त होता है. प्राप्यत्वादि रूप से निषेध कहना हो तो स्यान्नास्ति (कथंचित नहीं) यह दूसरा प्रयोग प्रवृत्त होता है. जब क्रम से दोनो-(स्यादस्तिनास्ति) कहना हो तब तीसरा भंग प्रवृत्त होता है. एक साथ उनके विधि निषेध कहने की इच्छा हो तो (एक साथ अस्ति नास्ति कहना) अशक्य होने से स्याद वक्तव्य (कथिचित अवचनीय है) यह चोथा भग प्रवृत्त होता है. पहिला और चोथा एक साथ कहना हो तो कथिंचित है और अवचनीय है यह पाचवां भंग प्रवृत्त होता है. दूसरे और चोथे को एक साथ कहना हो तो कथिंचित नही है और अवक्तव्य है यह छटा भंग प्रवृत्त होता है. तीसरे और चोथे को एक साथ कहना हो तो कथिंचित है और कथिंचित नहीं है और अवक्तव्य है यह सातवा भंग प्रवृत्त होता है (उपयोग में लेते है).

उदाहरण. १. अपने भाव में घट है वास्ते सत है. २. पर भाव से घट नहीं (घट, पटरूप से सत नहीं) वास्ते असत है. ३. घट, गुण से सत है और पर्याय से सत नहीं किंवा पूर्व कालवाला नही है वर्तमान रूपवाला है, किंवा स्वस्वरूप से सत पर भाव मे सद नहीं (असत है) इस वास्ते सदसद रूप है अतः अनेकांतिक है. ४. घटादि वस्तु सदरूप भी है असदरूप भी है इस वास्ते एकांत रूप से अवक्तव्य है (कुछ कहा नहीं जाता). ५ वस्तु का अस्तित्व अनिर्वाच्य है (यथा क्षणिक पर्याय होने से § कुछ कह नहीं सकते). ६. असद में भी अस्तित्व है परतु क्षणिक है इसलिये कह नहीं सकते ७. एक काल में अस्ति भी है नास्ति भी है (स्वरूप से अस्ति पररूप से नास्ति) इसलिये कुछ कहा नही जा सकता. इस रीति से वस्तुमात्र वास्ते अनेकांतवाद सिद्ध है अनेकांत=एक ही वस्तु सद, असद, सदसद, भेद, अभेद. भेदाभेद, नित्य, अनित्य, नित्यानित्य, एक, अनेक, एकानेक

§ पूर्व क्षण विशिष्ट नहीं वर्तमान विशिष्ट है ऐसे देश बदलने और पर्याय बदलने से क्षणिक है

इत्यादि प्रकार की है तथाहि वक्तव्य, अवक्तव्य और वक्तव्यावक्तव्य हैं. ऐसे सिद्धांत का अनेकांतवाद (पक्ष) कहते हैं. जैन मत का अनेकांत पक्ष है. इसी के रूप का स्याद्वाद कहते हैं.

इस प्रकार वस्तु का अनेक रूप होने से प्राप्ति त्यागादि व्यवहार बन सकता है. यदि एक रूप ही हो तो हरेक वस्तु सर्वत्र सर्वदा है ही, तो प्राप्ति त्यागादि व्यवहार का लोप हो; इसलिये सब कुछ अनेकांत है.

(१३) **षडकाय**—जीव सहित ६ वस्तुयें हैं. पृथ्वी असख्यात जीवों के शरीरों का पिंड है. जब अनेक जीव मरते हैं तो धूल आदि अचेतन पृथ्वी रह जाती है. इसी प्रकार चंद्र तारे आदि हैं. जितना पानी है वह भी असंख्यात जीवों के शरीरों का पिंड है. जो जो जीव मरता (अन्य तरफ गमन) है उसका जलकाय अचेतन रहता है, अन्यथा सारा जल सजीव है. अग्नि भी असंख्य जीवों के शरीरों का पिंड है, जब अग्नि के जीव मरते हैं तो कोयले भस्मादि जीवों के शरीरों का पिंड रह जाता है. ऐसे ही वायु के संबंध में जान लेना चाहिये. कंद, मूल, तृण, औषधि, गुल्म, वृक्ष, वनस्पतिमात्र यह सब जीवों के शरीर हैं. जब वे सूख जाते हैं तब वे शरीर जीव रहित होते हैं. उक्त **पांचों** के जीव मर कर दूसरे शरीर में उत्पन्न होते हैं. इन पांचों में केवल एक ही स्पर्शेंद्रिय होती है. (एकेंद्रिय हैं) जंगम सब **त्रसकाय** है उनमें २, ३, ४ और कोई पांच इंद्रिय वाले भी होते हैं.

(१४) **जगत्कर्ता कोई ईश्वर नहीं**—जीवों ने शरीरत्वेन असंख्येय परमाणुओं का ग्रहण करके कर्मों के निमित्त से असंख्य शरीरों का जो पिंड रचा है वही पृथ्वी आदि पुंज है. यह पांचों **प्रवाह से** अनादि हैं. इनमें पहिले पहिले जीव मृत्यु होते जाते हैं और उन्ही वा अन्य शरीरों में नये जीव इन्हीं पांचों में से पर्याय बदल के (मर के) उत्पन्न होते हैं. इन जीवों के विचित्र कर्मो के उदय से विचित्र रंग रूप हैं, और इनके शरीरों में परमाणुओं के जो समूह हैं उनमें अनंत प्रकार की शक्तियें हैं उन्हीं के परस्पर के मेल से अनंत प्रकार के कार्य जगत् में उत्पन्न होते हैं. और इनके परस्पर मिलने में **काल, स्वभाव, नियति** (अदृष्ट) **कर्म** और **प्रेरणा** यह पांच शक्ति प्रकट होती हैं. इन्हीं शक्तियों के द्वारा पदार्थों के मिलने से विचित्र प्रकार की रचना अनादि प्रवाह से हुई है, हो रही है; और होवेगी. यह पांचों शक्ति जड, जीव पदार्थों के अंतरभूत ही हैं, पृथक् नहीं. इसलिये इस

जगत् के नियमो का नियता और कर्ता कोइ अलग ईश्वर नही है * किंतु जड पदार्थो की शक्तियें ही नियत्री और कर्त्री है.

(१५) जीवों की ४ गति (स्थिति) (१) नरक गति—जहा नाना प्रकार के दु ख ही दुःख हो सुख जरा भी न हो. अधोलोक में रत्नप्रभादि ७ पृथ्वियें नरक की स्थान है (२) तिर्यंच गति—न १३ वाले जीवो की तिर्यंच गति है इसमे भूत वनस्पति पशु पक्षी तिर्यक सब की गणना है (३) मनुष्य गति—सब मनुष्यो की. (४) देव गति—देव जाति मे चार प्रकार के देवता गिने जाते है भुवनपति १, व्यन्तर २, ज्योतिषी ३ ओर वैमानिक. ४

(१६) जीव विवृत्तिमान याने परिणामी है; इसलिये चारो गति और एकेंद्रिय मे पाचेंद्रिय तक याने इन जातियो मे अनेक प्रकार की उत्पत्ति रूप परिणामो को अनुभव करता है, उसका यथा शरीर परिणाम हो जाता है, इसलिये तमाम शरीर में चेतनता उपलब्ध होती है परतु मुक्त अवस्था मे उसका एक ही स्थिर परिणाम होता है, क्योंकि उस पीछे उसका जन्म (शरीर सबध) नही होता.

(१७) बंध और बंध के हेतु—कषायत्व (काम क्रोधादि) मलो वाला होने से जीव का कर्म भाव के योग्य, पुदगलो का ग्रहण करना बंध है. चार बध के हेतु है १ मिथ्यादर्शन—मिथ्या कर्मो के उदय मे दूसरे क उपदेश विना भी तत्त्व मे श्रद्धा न होना यह नैसर्गिक मिथ्यादर्शन है दूसरे परोपदेश मे तत्त्व मे श्रद्धा न होना उपदेशजमिथ्यादर्शन है २. अविरति–षडेंद्रियों का असयम. ३ प्रमाद—पूर्वोक्त समिति गुप्ति में अनुत्साह ४. कषायत्व—क्रोधादि

(१८) मोक्ष मार्ग (तीन रत्न) याने मुक्ति होने के साधन तीनो है. १ सम्यगदर्शन—जिनोक्त तत्त्वो में रुचि होना इसे सम्यक् श्रद्धा कहते है यह स्वभावत. वा गुरु द्वारा होती है २ सम्यक ज्ञान—तत्त्वो का सक्षेप म और विस्तार के साथ जो ठीक ठीक ज्ञान है सो ३ चारित्र—निंदित कर्मो का सर्वथा परित्याग अर्थात पाच यम १ अहिसा—(प्रमादवश भी किसी स्थावर जगम

* जस शरीरो म कृमि ज मन मरते है लोही म स न ग क शरीर करत और जीत है तथाहि गूमडा वगर पुज का सग्रह करत और उसम डाल है पुन असुक निमित्तो स नाश होता है इसी प्रकार इस समष्टि समूह म असख्य जीव यथा कमवासना पृथ्वी आदि समूहरूप शरीर रचत है और निमित्त म बिगडत है उत्पत्त्यापत्त्य का प्रवाह चलता है. इस प्रकार उत्पन्न नष्ट होन रहन का अनादि से प्रवाह है इसका कर्ता धर्ता हर्ता कोइ एक ईश्वर चेतन नही है

की हिंसा न करना). २. सूनृत— प्रिय, सत्य और हित बोलना., प्रमादवश भी असत्य, अप्रिय और अहित न बोलना. ३. अस्तेय— किसी का हक न लेना (अचोरी). ४. ब्रह्मचर्य— मन, वाणी और शरीर से ब्रह्मचर्य का पूरा पालन (वीर्य अत्याग). ५. अपरिग्रह— सब वस्तुओं मे मोह का परित्याग. दर्शनादि तीनों मिले हुये मोक्ष के कारण होते हैं जुदा जुदा नहीं. (स्वस्वरूप में रत रहने को भी चारित्र माना है). †

(१९) ईश्वर पद— अर्हन्त और सिद्ध यह दो पद ईश्वर पद हैं इनके सिवाय अन्य ईश्वर नहीं. ईश्वर व्यापक नही होता किंतु सर्वज्ञ होता है (उसका ज्ञान व्यापक होता है).

(२०) पंच परमेष्ठि— अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाच पदों को पंचपरमेष्टि कहते हैं. उनको नमस्कार बोधक "नमो अरिहंताण" इत्यादि नमस्कार मंत्र है.

(२१) गृहस्थ त्यागी (नर हो वा नारी हो) उभय का धर्म में अधिकार है. गृहस्थ नर को श्रावक (सराउगी) नारि को श्राविका, त्यागी नर को साधु, नारी को साधवी कहते है. इन चारो को चतुर्विध संघ कहते हे. इति—

जैन धर्मी जगत्कर्ता ईश्वर का निषेध करते हैं.

यथा— परमाणुओं को स्थूलरूप में लाना याने संयोग वियोग करके ईश्वर सृष्टि क्यों करता है? (उ.) स्वभाव. (शं.) प्रमाण? इसका-उत्तर नहीं मिलता; क्योंकि वोह तो प्रपंच के बखेडे से मुक्त स्वभाव होना चाहिये. ईश्वर जड परमाणुओं को चेतन क्यों नही बना देता. ऋग्वेद के मंत्र में लिखा है कि पूर्व मे आकाश और प्रकृति परमाणु भी नहीं थे, तो ईश्वर सिवाय कोनसी सामग्री थी जिसमें से जगत् बनाया? जवाब नही मिलता. सृष्टि के आरंभ में माता पिता के संबंध विना जवान पुरुष स्त्री पैदा किये, अब क्यों नही ऐसे पैदा होते? (मध्यस्थ ग्रंथमाला).

भूमि परिमाण.

सृष्टि की परिमाण की सीमा मनुष्य नही जान सकता. वर्तमान सायंस का कथन निश्चित नही क्योंकि उसके सिद्धांत बदलते रहते हैं. पूर्व मे कहते थे कि

† दर्शन ज्ञान चरित्र के और प्रकार के भी लक्षण पढे हैं, परन्तु इनसे अविरुद्ध और मिलते हुये हैं

पृथ्वी का ध्रुव प्रदेश ऊजड था; परंतु अब कहते हैं कि किसी समय वहां वस्ती थी. अब जो कहते हैं कि पृथ्वी इतनी ही है, निसंदेह वे भ्रम में हैं. मध्यस्थ ग्रंथमाला पेज ४८.

मक्खी मच्छर का शरीर अधिक से अधिक एक जोजन (४ कोष) तक का हो सकता है. पेज ४२.

जैन धर्म की शाखा.

महावीर स्वामी के निर्वाण हुये पीछे जैन धर्म में अनेक मत हो गये. यथा—जमाली (१४ वर्ष पीछे), तिष्य १६ वर्ष पीछे, दूसरे २१४ वर्ष पीछे रोह गुप्त (५४४ वर्ष पीछे), गोष्टमाहि (५८५ पीछे), शिवभूति ६२९ पीछे. इत्यादि अनेक भेद लिखे हैं. अज्ञान तिमिर भास्कर पेज ३७।४२.

सेनाचार्य लिखता है कि डिगंबर मत महावीर के १३६ वर्ष पीछे नई शाखा निकली. जिवभद्रगणि को ४०० वर्ष हुये. वोह लिखता है कि डिगंबर मत महावीर के ६०९ वर्ष पीछे निकला. अ. ति. भा. की प्रस्तावना पेज ९.

वर्तमान में मुख्य तीन भेद देखते हैं. १. डिगंबर—नग्न मूर्ति रखना, स्त्री को मोक्ष न होना मानना इत्यादि. २. श्वेतांबर—श्रृंगार वाली मूर्ति पूजा. + स्त्रियों को भी मोक्ष होना मानते हैं. ३. ढूंढ—मूर्ति पूजा का निषेध (२०० वर्ष से चला है) § इन तीनों में कोई अमुक सूत्र प्रमाण अमुक प्रमाण नहीं, ऐसा भी भेद है. इसके सिवाय इनमें भी अवांतर भेद बहुत हैं. परंतु सिद्धांत में सब एक हैं जैसा कि सार में दिखाया है. और दसा, वीसा, तेरांपंथी, बाइसा, साधमार्गी और पारसनाथी इत्यादि उनकी उपशाखा हैं (वस्तीपत्रक स. १८९१ पंजाब)..

जैन धर्म का आस्तिकत्व.

आस्तिक अर्थात क्या? तहां परलोक अर्थात् स्वर्ग नरक, धर्माधर्म पुनर्जन्म है, ऐसी जिसकी बुद्धि है अर्थात जो परलोक को मानता है उसे आस्तिक कहते हैं. परलोक को जो नहीं मानता वोह नास्तिक कहाता है शा व्या. अ. ३ पा. २ पाणिनि व्या. अ. ४ पा. ४ सूत्र ६०. पतंजलि. कैयट. हेम व्या. अ. ६ पा. ४ सू. ६६. शब्दोस्तोम महानिधिश पृष्ट १८९.

+ डिगंबर वा श्वेतांबर मूर्ति को चेतन शक्तिवान नहीं मानते. किंतु यादगारी के रूप में रखते हैं. तथापि पजूषणादि प्रसंग में बडी भारी विधि से पूजा कर के रथ यात्रा निकालते हैं.

§ जैन की ढुंढ सम्प्रदाय में सिर के बाल लुंचन कराते हैं. उससे पूर्व की संप्रदायों में यह रिवाज नहीं था.

जैमिनि ऋषि ईश्वर को जगतकर्ता नहीं मानता. ईश्वरासिद्धेः सां. अ. १ सू. ९३ प्रमाणाभावान्नतत्सिद्धिः सां. ५।१०. एवं सांख्य ईश्वर को नहीं मानता. न पौरुषेयत्वं. अ. ५ सू. ४६. वेद किसी पुरुष विशेष के बनाये हुये नहीं अपौरुषेय हैं.

नास्तिको वेदनिंदकः मनु अ. २।११. वेद की निंदा करने वाला नास्तिक है.

उपर के लेख से जान पडता है कि जैमिनि श्री और सांख्यकर्ता नास्तिक थे. परंतु वेद मंडल उनको नास्तिक नहीं कहता; इसलिये अनीश्वरवादि या वेद न मानने वाला नास्तिक नही किंतु उपरोक्त परलोक को न मानने वाला नास्तिक है. सारांश जैन धर्म नास्तिक नहीं; क्योंकि परलोकवादि है. जैनास्तिकत्व मीमांसा..‡

जैन मत प्राचीन या नवीन. *

जैन मत प्राचीन है वा महावीरस्वामी के समय से चला है, इस तकरार का निवेडा करने को अवसर मिल सकता है परंतु यह बौद्ध मत की शाखा है–उसमें से निकला है वा उससे जुदा अनोखा मत है इस विषय में बहोत विवाद है और शोधकों के पास दलीलें मौजूद हैं. इंग्रेजी और हिंदी ग्रंथों में विषय चर्चित है.

जैन मत बुद्ध से पूर्व महाभारत के पूर्व व्यास के समय था, क्योंकि व्यास सूत्र "नैकस्मिन्न संभवात्" इस सूत्र के भाष्य में शंकराचार्य ने जैन मत का खंडन बताया है. अज्ञान ति. भा. पे. १७.†

महाभारतगत अनुगीता के प्रसंग में अरहंत, क्षणिकवाद का वर्णन है. § वेदों

‡ याहूदी, ख्रिस्ति और मुहमदन सवार, जो एक ईश्वर से अन्य दूसरी वस्तु (सिर्फ) मानता है उसे काफिर (नास्तिक से अधिक) पदवी देते हैं. इस प्रकार नास्तिक के अर्थ अपने अपने विश्वास अनुसार करते हैं. वस्तुतः है को जो नहीं और नहीं को जो है माने या कहे सो नास्तिक ऐसा भाव ठीक है अर्थात् कादी-इभी को नास्तिक कहना चाहिये; कारण कि अपने शुद्धभाव में जो मानता है उसे असत्यवादि नहीं कह सकते.

* जैनधर्म के २८०० वर्ष के भी ग्रंथ नहीं मिलते. परंतु बौद्धों के और वैदिकों के तथा मिसर प्रांत के तो मिलते हैं; इसी से स्पष्ट हो जाता है कि जैन धर्म महावीर स्वामी के पूर्व में नहीं होगा.

† न्याय के वात्स्यायन भाष्य में बौद्ध मत का खंडन सूत्रों के भाष्य में दिखाया है तो क्या गौतम ऋषि बौद्धों के पीछे मान लिया जाय! नहीं. ऐसा यह लेख है.

§ अनुगीता में अनेक मतों की कल्पना प्रसिद्ध की है. जैन–अरिहंत पद नहीं है. महाभारत के थोडे श्लोक ही (७००० से कम) प्रामाणिक हैं, ऐसा उसकी भूमिका से ज्ञात होता है

में नीमनाथ वगेरे का बयान है. ऐसा कितनेक कहते हैं. ‡

बौद्ध धर्म और जैन मत का अंतर-भेद.

बौद्ध में से जैन धर्म निकला यह बात सही नहीं जान पडती, क्योंकि बौद्ध धर्म सप्तभंगी (स्याद्वाद) नहीं मानता. सप्तभंगीनय का मानने वाला केवल जैन धर्म ही है. बौद्धों का सिद्धांत क्षणिकवाद है, स्याद्वाद नहीं. जैनों का सिद्धांत स्याद्वाद है, क्षणिकवाद नहीं. बौद्ध जीव वगेरे को क्षणिक (दीपक की लो समान) मानते हैं. जैन जीवआत्मा को अनादि अनंत विभाव परिणामी (देह अनुसार संकोचविकास पाने वाला) मानता है अर्थात् द्रव्यरूप से नित्य है और पर्याय रूप से क्षणिक है याने उसके रागादि परिणाम (कनक कुंडल वींटीवत) बदलते रहते हैं ऐसा मानता है.

शंकराचार्य ने जब जैन मत का खंडन किया तब यह पुंज करनाटक की तरफ चला गया था फेर सं. वि. ११६ में मारवाड की तरफ ओसवाल वगेरे नगरों में साधु आकर उपस्थित हुये, ऐसा कहा जाता है.

शोधक (संक्षेप में).

(१) स्वयंभू अधिष्ठानाधार के विना मर्यादा में रहके गति नहीं हो सकती. ग्रहादि सनियम गति में हैं (बौद्ध प्रतिपक्ष नं. २ देखो) इसलिये जैन मत को अधिष्ठान मानने की अपेक्षा है. यह अनिवार्य आक्षेप है. आकाश में आधार और रोक का अभाव है.

(२) जीव जब के संकोच विकास वाला परिणामी है तो प्रकाश समान सावयव होने से नाशवान ठेरता है; क्योंकि शरीर के अंगों में है. अंगो के संयोग होने पर (सर्प का मुख और पूंछ, दो अंगुली वा दो हाथ) जीव के किनारों का संयोग होता है. तत्त्व का अपने आप में संयोग नहीं होता और संयोग दो का ही होता है इसलिये जीव सावयव है. तथा हाथी वाला कीडी के, कीडी वाला हाथी के शरीराकार जब ही हो सकता है कि प्रकाशवत् वोह सावयव हो. क्योंकि परिणामी का क्षेत्र पूर्ववत् होता है यह नियम है. और जो प्रकृति के सब रज तम समान मिश्रित ही रहने वाला मानें तो जड होगा. परिवर्तन पाने वाला होने से नाशवान ठेरेगा.

‡ वेदों में नेमि वगेरे शब्द दूसरे अर्थ में है, उसका अन्य अर्थ करके नेमिनाथ वगेरे अर्थ मैंने एक ग्रंथ में बांचे थे जो कि इस ५० साल के अंदर किसी ने रचा है.

(३) मुक्ति मे जीव का कौनसा परिमाण, यह निश्चय नही होता, विभु नहीं मानते क्योकि अलोकवर्ती है. और अणु परिमाण भी नहीं मानते क्योकि परिणामी था. अणु का परिणाम नही होता. परिशेप मे मध्यम मानना पडेगा जो कि नाशवान होता है (अ. २ मे परिमाण प्रसग देखो) जो मर्यादा न हो तो विभु परिणाम भी हो जाय परतु ऐसा नही होता, अतः सावयव ही मानना पडता है.

(४) गुण गुणी को छोड के बाहिर नही जाता अत ज्ञान व्यापक न होने से सर्वज्ञत्व का अभाव रहता है.

(५) धर्मास्ति अधर्मास्ति काय, व्यापक न होने और जड होने से उनके अधिष्ठान की अपेक्षा है.

(६) सप्त भंग की रीति से क मुक्त की द्रष्टि से ख मुक्त, मुक्त नही ख की द्रष्टि से क मुक्त नहीं. तद्वत बंध और मुक्तो की द्रष्टि से अनर्थ कल्पा जाता है. अणु ह्रस्व किसी की द्रष्टि से भी अन्यथा नहो हो सकता. सत् सो असत् और असत सो सत धर्म वाला नही हो सकता. सप्त भंगी का विशेष भाग (२ भग) अन्योऽन्या भाव में आ जाता है. ऋ की अपेक्षा से वा ऋ. की द्रष्टि से म. मुक्त (सर्वज्ञ-तिर्थंकर) और दूसरे जीव नहीं, तथा म. की अपेक्षा से वा म. की द्रष्टि मे ऋ. मुक्त वा पूर्व के अन्य जीव नहीं (अर्थात् ऋ म. वगेरे का और म. ऋ. वगेरे का नाम भी नहीं ले सकता, परतु ऋ. का नाम लेते है !!), अनेकात की अपेक्षा से एकात सत् नही और एकात की अपेक्षा से अनेकात सत् नहीं (अर्थात उभय अमान्य वा अनिश्चित), इस प्रकार से ऋषभदेवादि का और उनके सर्वज्ञत्व का अभाव ओर अनेकातवाद असिद्ध ठेरता है. मैं हू इसमें अनेकातत्व नहीं लग सकता. अन्य का अन्य मे अभाव होने से एक दूसरे की अपेक्षा से असत नहीं कह सकते. ओर जो कहे तो वोह कथन मतव्य झूठ है. ऐसा है तो भी कौन जाने जैनपक्ष स्याद्वाद—को क्यो स्वीकारता है.

हमारी द्रष्टि से यदि हम वा अन्य परको असत् मानें तो वोह असत् न हुवा. ओर अजीव पदार्थों मे द्रष्टि वा अपेक्षा का भान नही होता, इसलिये जो कुछ एकात वा अनेकात का मतव्य है सो सब जीव की तरफ से है. इसलिये यदि जीव (हम तुम) पर की द्रष्टि वा अपेक्षा से असत्य हो तो उसका कथन—मंतव्य असत ही ठेरेगा. वीर्यवान की द्रष्टि से अन्य वीर्यवान नहीं याने निपुंसक है ऐसा, किंवा एक हाथ वा एक चक्षु की द्रष्टि से दूसरा हाथ वा दूसरी चक्षु असत (वा सदसद्) है

ऐसा नहीं हो सकता—नहो कह सकने—नही मान सकते. ज्ञातमित्र के ज्ञात हस्ताक्षर का आया हुवा पत्र है. क्या उसको कथंचित आना न आना, और मित्र का लिखित अलिखित मान सकते हैं? कभी नहीं. जो मानें तो उसका व्यवहार न होना चाहिये. परंतु होता तो है. क. ख दो मित्र एक वस्तु को पकडे हुये ले जा रहे हैं उनको कथिंचित होना कथिंचित न होना, कथिंचित वस्तु ले जाना कथिंचित न ले जाना, ऐसा भंग नहीं लगा सकते. मृगतृष्णिका यदि सत् हो तो प्यास जाना चाहिये यदि असत् हो तो ज्ञात न होना चाहिये अतः सदसद् रूप हो तो उभय दोष आने चाहिये, इत्यादि उदाहरणों में (निश्चय और व्यवहार नय मे) पहिले और दूसरे भंग की असिद्धि हो जाती है, उससे तीसरे भंग की अनुत्पत्ति रहती है, ऐसा हुये शेष वक्तव्य भंग रहता है अन्य भंग नही रहते.

इत्यादि रीति से अनेकांत (अनिश्चित–वा विरोधी धर्म विशिष्ट) पक्ष नहीं बनता. अतः अनिर्वचनीय मानोगे तो स्वपक्ष त्याग होगा. यहां निर्णय पक्ष है अतः व्यवहार नय की अपेक्षा नहो हो सकती. (विशेष भु. में है). *

(७) जीव वा हर कोई प्रकार का परमाणु वगैरे मूल तत्त्व संख्या से अनंत नहीं हो सकते किंतु जितने हैं उतने ही हैं तथा मर्यादित लोकाकाश मे होने से जीव वा पुद्गल संख्या में अनंत नही मान सकते. इसलिये यदि मुक्ति से अनावृत्ति हो तो सब सब संसार का उच्छेद हो जायगा. और मुक्त जीवो के परिमाण मे उतनी सामग्री खाली रहने से अंत में परमाणु निष्फल रहेंगे परंतु निष्फलत्व का अभाव है (अ. २।१२७ ओर अ. ३।२४० का विवेचन याद में लीजे). इसलिये मोक्ष से अनावृत्ति यह सिद्धांत अलीक है.

(८) चेतन तत्त्व वस्तु, राग–द्वेष–इच्छा–सुख–दुःख–संस्कार या भावरूप परिणाम को नहो पा सकती है; क्योंकि निरवयव तत्त्व में जरा भी अन्यथा नहीं हो

* क और ख. सामने बैठे हैं वहां १ क. अपने भाव में सत् २ ख भाव मे असत् ३. अतः क. सदसद् रूप है. अतः अनेकांत है ४ उभयथा होने से तथ्य में अवक्तव्य है इस के वास्ते कुछ कहा नहीं जाता. ५. क. वस्तु का अस्तित्व अनिर्वाच्य है अतः कुछ नहीं कह सकते ६. क. किसी प्रकार नहीं है और कहा भी न जाय ७ क किसी प्रकार है भी, नहीं भो और कहा भी न जाय. क्या यह सप्तभंगी न्याय (स्याद्वाद) हास्यास्पद नहीं? करतार्न सर्वज्ञो को यथार्थ ज्ञान न हो तब ही उनकी दृष्टि में अनेकांतवाद समाया हो, यह स्वाभाविक बात है.

सकता (अ. २ सू. १३९ से १४६ तक और सू. १७४ से १८३ तक याद करो) तथाहि रागादि अवस्था का द्रष्टा–साक्षी उनसे भिन्न होना चाहिये; क्योंकि वे विषय होते हैं. अब जो यूं न हो तो एक वस्तु के समकाल में अनेक परिणाम न हो सकने से रागादि दृश्यकाल में द्रष्टारूप परिणाम (वा भाव) न होने से रागादि की सिद्धि न होगी और द्रष्टारूप परिणाम काल में दृश्य रागादि न होने से उनका ज्ञान न होना चाहिये. अर्थात मै दुःखी, मैं सुखी, इत्यादि प्रकार का व्यवहार न होना चाहिये, परंतु होता तो है. सारांश रागादि दृश्य और उनका ज्ञान (द्रष्टा–साक्षी) समकाल होना अनुभव सिद्ध है. इस रीति से जैन पक्ष का जीव या तो वेदांतियों के अंतःकरण जैसा मध्यम परिणामी मानना पडता है जिसके रागादि परिणाम चेतन साक्षी के दृश्य–साक्ष्य होते हैं. या तो बौद्धों जैसा क्षणिक परिणामी मानना होगा जो कि जैन के मंतव्य–लेख से विरुद्ध है. ऐसा मानें कि रागादि जीव चेतन के परिणाम नही है किंतु यह तो द्रव्य कर्म–द्रव्य परिणाम हैं और जीव का तो उन अनुसार भाव परिणाम (रागादि को अज्ञान से अपने में भावना से मान लेना या भाव में हो जाना) होता है, सो पक्ष भी नहीं बनता; क्योंकि तत्त्व मे संकल्प वा भावना रूप परिवर्तन याने अवस्था नहीं हो सकती, और यदि है तो वोह सावयव–समूहात्मक–मध्यम होगा.

जैन दिगंबर मत.

उपर जो मत लिखा है वही दिगंबर जैनों का है; परंतु उनके प्राचीन आचार्यो के ग्रंथों मे वेदांत का ही स्वरूप है ऐसा जान पटता है.

कुंदकुदाचार्य कृत "समय प्राभृत" जिसकी आत्मख्याति टीका है यह टीका सहित स. १९०८ में छपके प्रसिद्ध हुवा है, उसमे से कितनेक वाक्य लिखते है.

समय प्राभृत.

जीव द्रव्य कर्मादि से रहित शुद्धात्मा है. अपने अनुभव क्रिया से प्रकाशक ज्ञायक है अर्थात् ज्ञान स्वरूप, ज्ञानमय, ज्ञानमात्र, रागादि पुदगल द्रव्य के भाव हैं जीव के नही (पृ. ८३). मिथ्या द्रष्टि, सम्यक् मिथ्या द्रष्टि–अविरत, अपूर्वकरण, क्षीण मोह, सयोग केवली, अयोग केवली इत्यादि गुणस्थान यह सब जीवात्मा के नहीं हैं, किंतु पुदगल द्रव्य के परिणाम हैं (पृ. ८४।९१). जीव चेतन शुद्ध स्वरूप है, अज्ञान मे उपाधि से परिणाम का कर्ता भासता है, भ्रांति मे मैं धर्म द्रव्य मैं

अधर्म द्रव्य हूं ऐसा मान लेता है. वस्तुतः जीव चेतन शुद्ध स्वरूप है; असग है. (पृ. १२१।१२२). कर्म पुद्गल है जीव तो उसका ज्ञाता है (पृ १९१). ज्ञान स्वरूप में रागादि, कामना, संकल्प विकल्प भासना यह सब पुद्गल के विकार हैं (पृ. १९३). ज्ञानी के भोग उपभोग यह निर्जरा ही हैं क्योंकि उसमें रागद्वेष नही है. वीतराग हुवा भोगता है (२०१). धर्म, इच्छादि परिग्रह, भोक्ता भोग का ज्ञान स्वरूप ज्ञानी ज्ञाता है (२१९.२२१।२२४). ज्ञानी कर्म से लिपायमान नहीं होता यदि कर्म में लदा हुवा भी हो. कुंदन कीचडवत् (२२६). ज्ञान हमेशे ज्ञानस्वरूप रहता है, अज्ञान रूप नहीं होता, यह निश्चय नय है; इसलिये ज्ञानवान को अपने और पर के कर्म भोग से बंध नहीं होता (२२७). यह बात स्ववेद्य है-इस बात को ज्ञानी ही जानता है (२३१). बंध का ज्ञान मात्र होना, बंध और आत्मा का स्वभाव जानना तथा कर्म बंधन को तोडना यह मोक्ष के साधन हैं (२८०). बंध और चिद ग्रंथी (जीव की गांठ, जीवाजीव की-चिदचिद का मिश्रणभाव) बुद्धि से काटना चाहिये (२८१). सुख दुःखादि पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं वही पुण्य पापादि कर्म के फल का भोक्ता है. जीवात्मा में यह व्यवहार भावमात्र है (३२६). पुद्गल के निमित्त से अपने स्वभाव का परिणाम करना अर्थात् उसका जानना यह ज्ञान व्यवहार, उसको देखना यह दर्शन व्यवहार और परद्रव्य का त्याग यह चारित्र व्यवहार है (३३३). ज्ञानी ऐसा जानता और मानता है कि में कर्म फल का दृष्टा ज्ञाता हूं, भोक्ता नहीं हूं (३३१). आत्मा का उपयोग लक्षण है उसमें ज्ञान प्रधान है (३७१). इ. †

सम्यक् ज्ञान दीपिका.

नग्न डिगंबर क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदासकृत + "सम्यक् ज्ञानदीपि का" जो सं. १९४८ में ज्ञानसागर प्रेस मे छपी और जैन ज्ञानवर्धक पुस्तकालय मोरबी (काठियाड) में से लेके नोट उतारी. इस ग्रंथ में जैन रीति से जो प्रतिपादन किया है सो वेदांत मत है उसमें से कितनीक नोट लिखते हैं—

हम, तुम, यह वोह इसके प्रथम जो कोई हैसो मूल, अखंडित, अविनाशी, क्रिया रहित, स्वस्वरूप, स्वअनुभवगम्य, सम्यक् ज्ञान स्वरूप सो ही भूमिका (अधिष्ठान)

---

† ईश्वर प्रसंग का छोड के सांख्य और योग मत से मिल जाता है.

+ नग्न डिगंबर सिद्धक्षेत्र मुनि इसके दिक्षित गुरु और वराड देशवाले पट्टाधीश श्री देवेंद्रकीर्तिजी भट्टारक इसके विद्या गुरु है. खानदेश और झालरा पाटण में इसके हजारो अनुयायी हुये हैं. ऐसा इस ग्रंथ के आरंभ में लिखा है.

है (पृष्ट ४). सो शुभाशुभ क्रियासे भिन्न तनमन और उनके शुभाशुभ कर्म तथा तिसके फलका ज्ञाता है. सो ज्ञान स्वरूप हैं. मदिर प्रतिमादि अज्ञान है.(पृ. १०) निश्चय नयमें शुभाशुभ कर्म जिसका जो ही कर्ता है. व्यवहार नयात जो ज्ञान है सो कर्ता है. जिनेंद्र ज्ञान स्वरूप ही है (१०). कर्म भ्रम यह पुद्गल के विकार हैं ज्ञान स्वरूप वेसे का वेसा शुद्ध रहता है. श्रीमत् कुंदकुंदाचार्य भी स्वकृत "आत्म क्षाति" ग्रथ में ऐसा ही लिखते हैं (१९). जितने वाद याने न्याय, एकांत, अनेकांत, निश्चय, व्यवहार, स्याद्वाद प्रमाण यह सब नय, वाद विवाद हैं. जो वाद सो मिथ्यात्व हैं. जो मिथ्यात्व सो सब ससार है निश्चय व्यवहार नय में जगत भ्रमाया है. सम्यक् ज्ञान वस्तु तो जेसी की तेसी जहां की तहां है, चलाचल से रहित है (२०). सम्यक् ज्ञानमयी के आडे कर्म आ जावें तो भी वोह वेसा-का वेसा है; क्योंकि कर्म अज्ञान जड है, ज्ञानमय उसका ज्ञाता है (२१). साता असाता वेदनीय'कर्म'ज्ञान स्वरूप दर्पण मे प्रति बिंबवत् भासते हैं तो भी केवल ज्ञानमयी उनमें तन्मयी न हुवा न होवेगा (३०।४९). जेसे महाकाश घटाकाश से अलग नहीं, वेसे घटरूपी देह अवच्छिन्न ज्ञान स्वरूप सो केवल ज्ञान स्वरूप से भिन्न नही है; क्योंकि केवल ज्ञान से जो भिन्न सो सब अज्ञान है (३४). जीव निश्चय मे बंध अबंध से रहित है, बंध अबंध का ज्ञाता है. व्यवहार निय से बंध कहा जाता है, सो व्यवहार सडक चलती है, मार्ग लुटता है, ऐसा (याने भ्रम—अध्यास रूप) है. बंध अबंध से रहित परमात्मा सिद्ध परमेष्टि ज्ञान घन हैं (३९). सो ज्ञानमय, द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नव कर्म का ज्ञाता है उनका कर्ता नही है. अष्टकर्म का कर्ता नहीं है किंतु उनका ज्ञाता है (४१). तन मन वचन धन के जितने शुभाशुभ व्यवहार और कर्म होते हैं उन सब से सम्यक् ज्ञानमयी परम ब्रह्म परमात्मा सर्व प्रकार से भिन्न है. जहां निषेध है तहां भी सो है (४३). निगोद मे लेके मोक्ष पर्यंत जितने जीव हैं सो सम्यक् ज्ञान परमात्मा (ब्रह्म) से भिन्न नहीं हैं. जो जीव उससे अपने को भिन्न वा अभिन्न समझता है सो जीव मिथ्या दृष्टि है (४४). सम्यक् ज्ञानमयो परमात्मा अचल है (४९). पाप पुण्य जन्म मरणादि स्वप्न का खेल है, सम्यक् ज्ञानमयी उसका द्रष्टा है (९२). ज्ञानवान कर्म करते और विषय भोगते हुये भी बंध को नहीं प्राप्त होता (९४). जिसमें यह ससार जन्म मरण बंध मोक्षादिक रहे हुये हैं सो सम्यक ज्ञान स्वरूप मै ही हूं (९९). जेसे शुक्ति मे रजत, और मृगतृष्णिका का जल भासता है तेसे स्वसम्यक् ज्ञान में तन्मयि हुवा यह संसार भासता है. जेसे आकाश को धूली मेघ

नहीं लगते (उनसे आकाश लिपायमान नहीं होता), वेसे स्वसम्यक् ज्ञान को पाप पुण्य और उसके फल स्पर्श नहीं करते. लोकालोक जगत् के अदर वाहिर और मध्य में स्वसम्यक् ज्ञान स्वरूप व्यापक है; अतः वोह किसका त्याग ग्रहण करे. जेसे समुद्र मे तरंग उपजते है, नाश होते है, वेसे स्वसम्यक् ज्ञान स्वरूप समुद्र में स्वप्न जेसा जगत उपजता है विनसता है, पुनः जाग्रत का जगत् होता है, नाश होता है और स्वप्नरूपी जगत उत्पन्न होता है, ऐसे जगत् का प्रवाह है (६७). स्वसम्यक् ज्ञान स्वरूप परमब्रह्म परमात्मा पुराण पुरुषोतम पुरुष है, सो तमाम ससार भ्रमजाल मायारूपी स्त्री को भोगता है परंतु जेसे अधकार से सूर्य भिन्न है वेसे ससार भ्रमजाल माया मे भिन्न हो के * भोक्ता है (६९). इस भ्रमजाल ससार–शुभाशुभ व्यवहार और उसके फल में सम्यक् ज्ञानमयी परम ब्रह्म परमात्मा सिद्ध परमेष्टि नहीं डूबता (६२). वेद अर्थात् केवली की दिव्यध्वनि, शास्त्र अर्थात् महामुनी का वचन, इनका और मनेंद्रिय का वोह सम्यक् ज्ञान स्वरूप ब्रह्म विषय नहीं है (६३). तू जीव निर्मल, निर्दोष, निराभास, शुद्ध ज्ञान स्वरूप है, सो ज्ञान प्रकाश लोकालोक में समान व्यापक है (६४). लोकालोक ससार मृगजल के समान है. ज्ञान स्वरूप मे मृगजलवत भासती है (६५) जेसे कुंडलादि, सुवर्ण से तन्मयीवत् है (तद्रूप है), वेसे सम्यक् से ज्ञानमयी वस्तु में यह जिनेंद्र, शिव, शकर, ब्रह्मा, विष्णु, नारायण, हरीहर, महेश्वर, ईश्वर, परमेश्वर, आदि अनंत नाम तन्मयीवत् है (६६). तेसे ही तन्मयी जीव चेतनादि पर्याय है सो उपजते और नाश होते हैं सो भी कथंचित प्रकार से. (७०) स्वसम्यक् ज्ञान स्वरूप त्रिलोकी का स्वामी परमात्मा है, उससे उपर न कोई हुवा है और न होगा (७१). जिस प्रकाश मे सूर्यादि प्रकाश और अधिकारादि दिखते है सो सम्यक् ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्मा सिद्ध परमेष्टि है. जाग्रत वाला ससार ही रूपातर को पाके स्वप्नरूप दीखता है. पुनः स्वप्न वाला ससार ही रूपातर को पाके जाग्रतरूप दीखता है, इस प्रकार ससार का चक्र (प्रवाह) है. उसका ज्ञाता वोह ज्ञान स्वरूप है. वोह अवाच्य (निर्विकल्प) है; क्योंकि कहना, बोलना, कल्पना यह पुदगल है (७२). जो स्वसम्यक् ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्मा है सो मैं (सोहं) हू (७९). आत्मज्ञानी को जगत् ससार मृगजलवत भ्रमरूप जान पडता है. भ्रम गये जगत कहा है. सम्यक् ज्ञान स्वरूप सर्वदेश, सर्वकाल और सर्ववस्तु में है अर्थात् व्यापक अनादि अनंत है. (८०) आत्मा रागादि परिणाम का कर्ता नहीं है किंतु उनका साक्षीभूत है (८८).

* यह बात आत्मवित् के सिवाय अन्य नहीं जान सकता

नोट:—

कुंदकुदनाचार्य और उसके किये हुये ग्रंथ सब प्रकार के जैन सादर (प्रमाण) मानते हैं, और सम्यक् ज्ञान दीपिका के संबंध में जो लीमडी संघाडे के एक प्रतिष्ठित उपदेशक ढूंढ संप्रदाय के साधु से पुछाया गया तो ता. १६।८।१९०९ ई. के कार्ड में ऐसे लिखाते हैं कि इस ग्रंथ को तटस्थ लोकमान की लागणी से डिगंबर मत वाले विशेष श्रद्धा से और श्वेतांबर जैन ओछी श्रद्धा से देखते हैं. परंतु परिणाम मे ग्रंथ उमदा है.

जैन संप्रदाय में परमानंद पचीसी को मान्य दृष्टि से देखते हैं उसमें से क्रोटेशन. लोकमात्र परिमाणेहि निश्चय निहि सशय, व्यवहारे देहमात्रेहि कथयंति मुनीश्वरः अनंतो ब्रह्मणोरूपं निज देहे व्यवस्थितम्, ज्ञानहीना न पश्यंति ++ स एव ज्ञान रूपोहि स एव शुद्ध चिद्रूपम्.

भावार्थ—जीव का लोक–आकाश; जितना परिमाण (व्यापक–विभु) हैं, यह निश्चय नय है. व्यवहार में उसका परिमाण यथा देह है, ऐसा मुनीश्वर कहते हैं. वोह अनंत (असीम) ब्रह्मरूप है. निज देह में स्थित है. जिनको ज्ञान नहीं वे उसको विभु रूप नही देखते. वोह ज्ञान स्वरूप शुद्ध चेतन रूप है.

इससे शंकर के वेदांत अनुसार जो ब्रह्म चेतन सो ही उपहित चेतन है. द्रव्य कर्म (अंतःकरण) की उपाधि से देह परिमाण–परिच्छिन्न जान पडता है. ऐसा आशय निकल आता है. सम्यक् ज्ञानदीपिका के अनुसार है.

एगं जाणई से सव्वं जाणई. यह जैन धर्म का प्रसिद्ध वाक्य है. (वेदांत में भी ऐसा ही कहा है). अर्थ–जो एक (आत्मा) को जानता है वोह सब जानता है. यह बात जब ही हो सकती है कि सम्यक्ज्ञानदीपका अनुसार सिद्धांत हो!! भाव आवश्यक में पेज १३ "अप्पा सो परमप्पा" आत्मा यही परमात्मा है. "नाणे पुण नीयमा आया" ज्ञान है सो नियम से आत्मा है. "नोपुणरागमोभवनि" मोक्ष से आवृत्ति नहीं होती. "थक्का जत्थण विज्जति मतिवत्थण गाहिता" तर्क आत्मा के स्वरूप को नहीं पहुंचती और मति ग्रहण नहीं कर सकती. "मिति सव्व भुएसु" प्राणीमात्र के साथ साम्यभाव रखना. "परिणामे बंधो परिणामे मोक्खो" मन के परिणाम से बंध और मोक्ष है. भावावश्यक में से. प्रकाशक मोहनलाल राजकोट. सं. १९७१ वीरात २४४१.

शोधक.

उपरोक्त जैन द्वैतवाद गत जो भाग असमीचीन जाना गया उसका अपवाद उपर—अध्यारोपावाद विषे आ चुका है और आगे अ. ३ में वांचोगे; अतः यहां नही लिखा.

विभूषक मत.

मेरा खयाल है कि जिसमें प्रवृत्ति मार्ग पालने की शक्ति न हो, विषयासक्ति में अंध हो, क्रूरता की मूर्ति हो, यदि वोह इस दोष से निवृत्त होना चाहे तो जैन धर्म के मुख्य सिद्धांत और मुख्य ग्रंथों से टोलरेशन रखता हुवा जैन धर्म की बाह्य क्रिया का (सवर निर्जरा का) उपरोक्त पंचदशांग पूर्वक तन मन से अनुकरण करे तो उक्त दोषों से वोह मुक्त हो सकेगा; क्योंकि इस धर्म में तन मन वाणिके संयम प्रकार ऐसों के वास्ते ठीक जान पडते हैं. जब इन दोषों से मुक्त हो जाय तो फेर विवेकादि साधन के प्राप्त करने योग्य हो सकेगा. उसमे उसे परमार्थ तत्त्व हाथ लग सकेगा. जैन धर्म में प्रवृत्ति मार्ग की योजना और तुलना उसके ९ तत्वों मे नही जान पडती. इस मत की सर्वमान्य उपयोगी बातें अ. ४ सग्रहवाद मे लिखी है.

वर्त्तमान मे मूलग्रंथों (सूत्रों) का आशय याने मूल बोधक का आशय उन उन धर्म के अनुयायी ही नहीं जानते, और जो जानना कहते हैं उनके मत और अर्थो में मतभेद है, यह बात जगत प्रसिद्ध है. मेरा खयाल है कि जो तटस्थ विद्वान आप्त मंडल सबके मूल ग्रथो का सत्यार्थ प्रकाश करे तो मुख्य मुख्य उपयोगी विषयो में मतभेद न रहे, सब एक लक्ष्य पर हैं, ऐसा जान पडे. और जिन उपसिद्धातो ने धर्म द्वेष प्रसार कर रखा है वे काफ़ूर हो जायँ.

---

१८. भागवत मत

वेदात दर्शन के अ. २ पा. २ सूत्र ४३ (उत्पत्ति असभवात) के भाष्य मे भागवतमत का निषेध है. भागवतमत यह है.

वासुदेव भगवान जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है वासुदेव से संकर्षण (जीव) पेदा होता है उससे प्रद्युमन (मन) उत्पन्न होता है, उसमे अनिरुद्ध (अहंकार पेदा होता है. और जीव के भोग वास्ते भोग्य (तत्त्व भूत और उसमे विषय) होते हैं.

श्रीमद्भागवत स्कध १२ अ. ११ श. २१ मे वासदेवादि चार व्यूह जनाये है. यदि यह ४ विभूति ही उक्त वासदेवादि हो तो शकराचार्य के पहिले भागवत पुराण था ऐसा मान लेना होगा. परतु शकराचार्य के अन्य लेखो मे पुराण की साक्षी नही मिल्ती, इसलिये सशय रहता है. (अपवाद और भूषण रामानुज मत में है).

१९. पंचरात्र मत.

भगवान वासुदेव निरजन ज्ञान स्वरूप परमार्थ तत्त्व है, सो वासुदेव व्यूह, सकर्षण व्यूह, प्रद्युम्न व्यूह और अनिरुद्ध व्यूह इन चार व्यूह रूप से स्थित है. वासुदेव परमात्मा है, सकर्षण जीव है. प्रद्युम्न मन है और अनिरुद्ध अहंकार है. उसमे वासुदेव परा प्रकृति है और सकर्षणादि कार्य है. वासुदेव से सकर्षण, इससे प्रद्युम्न और इससे अनिरुद्ध पेदा होता है. इन चार व्यूहरूप परमेश्वर की वक्ष्यमाणवत् * उपासना कर के पुरुष छिन्नक्लेश हो के भगवत कृपा से भगवत को पाता है.

पचरात्र शास्त्र मे आत्मा ही गुण और गुणी है. प्रद्युम्न और अनिरुद्ध आत्मा मे भिन्न है. ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज यह गुण है. वासुदेवादि चारो आत्मा है और वे ज्ञानादि रूप है. शाडिल्य ऋषि चारो वेदो में कल्याण नहीं जान के इस पचरात्र शास्त्र को पढने लगे. (अपवाद और भूषण रामानुज मत में वाचोगे)

२०. केवलाद्वैत मत.

(क) श्री गोडपादाचार्य कृत कारिका में से अवतरण

प्रभर. श्लोक १२. अर्थ— विद्यमान तमाम पदार्थों की उत्पत्ति होती है, यह निश्चय है. प्राण पुरुष सब जड जगत् को और चेतन के अंशो को उपजाता है. १२. (शकर भाष्य—भेद वाले सब पदार्थ अविद्या रचित नाम रूपमय मिथ्या स्वरूप मे उत्पत्ति रूप ससार होती है). "पूर्व मे यह आत्मा ही होता भया" "ऐसे प्राण बीज रूप की योग्यता से सब जड जगत् को उत्पन्न करता हुवा" विषय भाव मे विलक्षण सूर्य की किरण समान सूर्य के प्रतिबिम्बवत् जीव बीज रूप उपजाता है. "उर्णनाभि" "विस्फुलिंग" श्रुति.§

---

* रामानुज मत देखा.

§ (शकर भाष्य) यह (परमात्मा) म या कर के बहुरूप प्रतीत होता है (इत्यादि) श्रुति है जैसे मकडी इच्छा से सूत्र का तार आकाश मे फैलाता है फिर आगुप सहित गुद ह [illegible]

स्वप्न माया स्वरूपेति. १३. कोई वादि ईश्वर की ऐश्वर्यमय विस्तार रूप विभूति की उत्पत्ति को 'सृष्टि है' ऐसा मानता है कोई स्वप्न और माया रूप सृष्टि है ऐसी कल्पना करते हैं १३. कोई ईश्वरवादि प्रभु की इच्छा मात्र ही सृष्टि है ऐसा निश्चय करता है. कोई काल से भूतों की उत्पत्ति मानता है. कोई वादि भोग वास्ते सृष्टि है ऐसा और कोई क्रीडा के लिये सृष्टि है ऐसा मानता है. १४।१६. अब श्लोक के उत्तरार्द्ध में सिद्धांत कहते हैं—

देवस्यैष स्वभावो. १९. यह सृष्टि देव (ब्रह्म) का स्वभाव है; क्योंकि तिस पूर्णकाम—देव को कोन इच्छा है. १९. भाष्य—जेसे रज्जु आदि को अविद्या रूप स्वभाव के विना सर्पादि रूप भासने में अन्य कारण बताने में अशक्य हैं, तेसे ही परमात्मा को माया रूप स्वभाव के विना आकाशादिक आकार से भासन में कारणपना **कहने को शक्य नहीं हैं.** परमात्मा की अपनी माया शक्ति के वश से आकाशादि का भासपना है. १९.

निवृत्तेः प्रभु++ १७. जीवों के सब दुखों की निवृत्ति का प्रभु (ईशान) † है और अव्यय है ++ १७.

नात्मानं. १९. प्राज्ञ (सुषुप्ति वाला जीव) कुछ भी—आपको, अन्य को, असत्य को और अनृत (अविद्या) को नही जानता है, अतः अज्ञान से बद्ध है. तुरय सर्वदा सर्व का दृष्टा है, इसलिये उसमें अग्रहण का बीज नहीं है. १९. तुरीया में स्वप्न और निद्रा नही देखते. २१.

अनादि मायया. २३. यह संसारी जीव है सो अनादि माया से सोया है, जब प्रबोध को प्राप्त होता है तब अजन्मा, अनिद्र, अस्वप्न और अद्वैत है, ऐसा जान लेता है. २३.

तार द्वारा आकाश की तरफ चढता है फेर अदृश्य होके युद्ध से खंड खंड होके जमीन पर गिरता है फेर उठता है, तो तमाशा देखने वाले उसकी रची माया और माया के कार्य को चित्त में आदर नहीं देते हैं इसी प्रकार मायावी—आत्मा के सूत्र के प्रसारण समान सुषुप्ति और स्वप्नादिक विस्तार्ह है और तिनमें स्थित प्राज्ञ और तैजस आदिक जीव हैं. जेसे उक्त सूत्र और उस पर आरूढ जो मायाजन्य पुरुष उससे अन्य परमार्थ रूप माया वाला पुरुष है सो पृथ्वी में खडा हुवा अदृश्य है, तेसे तुरीय नामक परमार्थ तत्त्व है इसलिये मुमुक्षु (तमाशगीर) की उस परमार्थ रूप तत्त्व में प्रवृत्ति होती है. निष्प्रयोजन सृष्टि में आदर नहीं है.

† कपाल चिन्ह में दाकर भाष्य के पद हैं ऐसा जानना चाहिये.

२३—भाष्य—जीव तत्त्व के अबोधमय बीज रूप और अन्यथा ग्रहण रूप अनादि काल से प्रवर्त्त भये दोनों प्रकार के माया रूप स्वप्न से मेरा यह पिता वगेर, मैं सुखी वगेर, इस

प्रपंचो ++ मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः· २४: प्रपंच जब विद्यमान होवे, तब निवृत्त होता है, इसमें संशय नहीं है· द्वैत माया मात्र है, परमार्थ से अद्वैत मात्र है. २४.

युञ्जीत. ३७. ओंकार निर्भय ब्रह्म है तिसमें चित्त को जोडना. तिसमें युक्त को भय नहीं होता. ३७. अब आगे वैतथ्याख्या प्रकरण दूसरा —

अभावश्च. ४४. स्वप्न में रथादिकों का अभाव श्रुति में युक्ति पूर्वक सुनते हैं अतः तिस स्वप्न में प्राप्त को ही मिथ्यापना प्रकाश किया है–ब्रह्मवेत्ता कहते हैं. ४४.

अनास्थानस्तु. ४६. जैसे स्वप्न में वैसे जागृत में है, क्योंकि जागृत में ऐसे जाना है. (जाग्रत के पदार्थ से) भेद को प्राप्त हुये को शरीर के मध्यरूप स्थान वाले होते हैं और सकोच को प्राप्त होने से स्वप्न मे भेद को पाते हैं. ४६.

आद्यवन्ते. ४७. जो (मृगतृष्णावत) आदि में, अंत में नहीं है सो वर्तमान में भी नहीं है. तैसे (यह भेद को प्राप्त भये जागृत के दृश्य) पदार्थ मिथ्या से तुल्य हुवे मिथ्या ही हैं तथापि मूढों की दृष्टि मे सत्य जान पडते हैं. ४७.

अपूर्व. ४९. जेसे स्वर्ग निवासी इंद्रादिकों का (१०० नेत्रादि) धर्म हैं ऐसे यह अपूर्व स्थानी (स्वप्न के द्रष्टा स्थान वाले) का धर्म है. जेसे यहां लोक में सम्यक् सीखा हुवा (लोक मार्ग जानने वाला) आ के पदार्थ देखता है, वेसे तिन इस प्रकार के अपने चित्त के विकल्प रूप अपूर्व (स्वप्न के) पदार्थ को यह द्रष्टा जा के देखता है. (इसलिये पदार्थ असत हैं द्रष्टा असत नहीं है). F ४९.

स्वप्नवृत्ता. ५०. जाग्रद्वृत्तावपि. ५१. जेसे स्वप्न में चित्त के अंदर के मनोरथ की हुई वस्तु असत् है और बाहिर की चक्षु आदि द्वारा ग्रहण की हुई सत है परंतु वस्तुतः दोनों असत् है. ५०. तद्वत जाग्रत की वृत्ति में देखते हैं, इन सत् और असत् का मिथ्यापना युक्त है. ५१.

(शं.) इन भेदों का और तिनका निश्चय कर के कोन विकल्प होगा. (उ.) कल्पयत्मात्मनात्मानमात्मदेहः स्वमायया + ५३. जो आत्मा रूप देव है सो आप

प्रकार को उभय (जाग्रत स्वप्न) स्थान में देखता हुवा–सोया हुवा है. जब गुरु द्वारा "तू इस पुत्रादि का हेतु फल नहीं है, किंतु सो तू (ब्रह्म) है ऐसा बोध होवे तब तुर्य रूप आत्मा को जानता है

२४—प्रपंच रज्जु सर्पवत् कल्पित होने से विद्यमान नहीं है अतः अद्वैत है. यथा मायावी पुरुष की दिखाई हुई माया आंख बंद किये नहीं होती- निवृत्त होती है, तैसे यह प्रपंच माया मात्र द्वैत है. इसलिये कोई भी प्रवृत्त वा निवृत्त हुवा प्रपंच नहीं है.

में अपनी माया से आप कर के आपको (रज्जु सर्पवत्) आकारवाला कल्पता है और सोई तिन भेदों को जानता है, ऐसा वेदांत का निश्चय है (इसलिये अनुभव, ज्ञान और स्मृति ज्ञान का आश्रय अन्य नहीं है). १३. (शं.) कोन सकल्प करता हुवा किस प्रकार से कल्पता है (उ.) विकरोति. १४. प्रभु (ईश्वर–ब्रह्म) है सो (बाहिर चित्तवाला हुवा बाह्य लोक प्रसिद्ध) शब्दादि रूप पदार्थों को (और अन्य शास्त्र प्रसिद्ध वासना रूप से माया रूप) चित्त के अंदर स्थित (अस्पष्ट पृथ्वी आदिक) नियमित (और विजली आदिक) अनियमित एवं नाना पदार्थ को करता है (तेसे अंतर चित्तवाला हुवा मनोरथादि रूप आप मे स्थित पदार्थों को व्यवहार के योग्य कल्पना करके फेर व्यवहार की योग्यता अर्थ) ऐसे कल्पता है. १४.

अव्यक्ता. १६. जो (मन के) भीतर अस्पष्ट (भावना रूप पदार्थ) ही है और जो (मन से) बाहिर स्पष्ट हैं ये सव कल्पित ही है. और बाहिर भीतर का भेद इंद्रियों की अपेक्षा से है. (ऐसा ही स्वप्न में देखने हैं. इसलिये जाग्रत के पदार्थ भी स्वप्नवत् कल्पित है). १६.

जीव कल्पयते. १७. (आत्मा अपनी माया के वश मे आरंभ में 'मैं कर्ता' 'मुझे दुःख सुख' ऐसे लक्षणवाले) जीवो को (रज्जु सर्प के जेसे) (श्रुति में कहे लक्षण वाले विशिष्टरूप से) पूर्व कल्पता है. तिससे (तिसके अर्थ क्रियाकारक और फल भेद से प्राणादिक) नाना प्रकार के बाहिर के और भीतर के पदार्थ कल्पता है. "भा. (शं.) कल्पना में हेतु क्या है. (उ.) जो यह आप कल्पित भया जीव सर्व कल्पना में अधिकारी है" सो जेसी विद्या (ज्ञान) वाला है तेसी स्मृतिवाला होता है. "(भा. इसलिये हेतु की कल्पना के ज्ञान से फल का ज्ञान उमसे हेतु के फल की स्मृति, उससे उसका ज्ञान और तिसके अर्थ क्रियाकारक का तथा तिसके फल का ज्ञान होता है, उनसे उनकी स्मृति, उससे उनका ज्ञान, इन ज्ञान से तिनकी स्मृति. इत्यादि इत्यादि ‡ इस प्रकार बाह्यांतर के पदार्थों का परस्पर निमित्त और नैमित्तिक भाव से अनेक प्रकार का कल्पा है)" १७.

---

‡ अन्नादि से तृप्ति, अतः अन्नादिक हेतु, ऐसे कल्पना का विज्ञान उपजा. तृप्तिफल ऐसे कल्पना का विज्ञान होता है. अन्य दिवस में इन उभय का स्मृति, उससे विजातीय साधन के कर्तव्यता का ज्ञान, उससे इष्टफल की प्रयोजनता में पाकादिक क्रिया और उसके कारक तंडुलादिक और तिनके विशेष फल का विज्ञान होता है, उससे हेतु आदि की स्मृति होवे है, तिससे तिस साधन का अनुष्ठान होता है, उससे फल होता है. इस क्रम से परस्पर हेतु हेतुमद्भाव से कल्पना होती है

अनिश्चिता. ९८. जेसे अनिश्चित रज्जु विषे मंद अंधकार मे सर्पधारादिक भाव से विकल्प के प्राप्त होता है वेसे हेतु फलादि से (अपनी शुद्ध ज्ञान मात्र सत्ता अद्वैत है इसका अनिश्चित होने से जीव और प्राणादि अनंत भावों के भेदों से) आत्मा विकल्प के प्राप्त हुवा है. § ९८.

निश्चिता ९९ जेसे रज्जु ही है ऐसा निश्चय हुये सर्प भाव की निवृत्ति होती है (रज्जु ही शेष रहे हैं) वेसे जब आत्मा में (श्रुति अनुसार) † निश्चय (स्वरूपभान) होता है तब (आत्मा की अविद्या से कल्पित उपरोक्त जीव विकल्पादि की निवृत्ति से) अद्वैत ही * परिशेष रहता है. ९९.

(शं.) जब कि आत्मा एक ही है तब इन संसार रूप प्राणादि अनंत भावों से केसे विकल्प के पाया है. **(उ.) यह तिस देव की माया है** (यथा मायावी की माया आकाश के बागीचे युक्त करती है वेसी यह देव की माया है). **उस अपनी माया से यह आत्मा आप भी मोहित** होता है (जेसे इंद्रजाली की माया से लोक मोहित हो के परवश होते हैं वेसे). इसलिये मोह रूप कार्य द्वारा आत्मा में ही माया का ज्ञान होता है. मायैषा ++ ६०.

स्वप्नमाये. ७२. जेसे स्वप्न और माया देखते हैं, जेसे गंधर्वनगर देखते हैं, तेसे यह विश्व देखा है. कहां? श्रुति में "इंद्र (परमात्मा) माया कर के बहुरूप के पाता है" "यह पूर्व आत्मा ही होता भया" "द्वितीय नही है" विचक्षण पुरुषों ने देखा है. ७२.

न निरोधो. ७२. (जब कि एक अद्वैत सत्य और द्वैत-मिथ्या है सर्व लोकिक वैदिक व्यवहार अविद्या का ही विषय है तब) निरोध (प्रलय) उत्पत्ति, बद्ध (जीव) साधक (अधिकारी) मुमुक्षु (मोक्ष की इच्छा करने वाला) और मुक्त भी नहीं है, यह परमार्थता है. ७२. निरुद्ध मन–तुरीया वा सुषुप्ति में द्वैत नहीं है, इसलिये मन की कल्पना मात्र द्वैत है, यह सिद्ध होता है). रज्जु सर्पवत् अधिष्ठान के विना कल्पना नही हो सकती, इसलिये इस पक्ष में शून्यवाद नहीं आता है. (नेति नेति बताने से शास्त्र भी निष्फल नहीं होते). ७२.

---

§ परमात्मा के अपने स्वरूप का अज्ञान है इसलिये कल्पना हुई है !! ब्रह्म चेतन अज्ञानी, ऐसा चारो वेदो में कहीं भी व्यपदेश नहीं जान पडता.

† अज्ञानी (९८) और मोहित (६०) कृत श्रुति कोन प्रमाण कर सकता है. कोई नहीं

* यह अज्ञानी ने केसे जाना.

भावैरसद्. ७४. प्राणादि असत् भाव और भाव यह अद्वैत तत्त्व करके कल्पित हैं; अतः अद्वैतता शिव रूप है. ७४.

नात्मभावेन. ७५. यह जगत् आत्मभाव से नाना नहीं होता और अपने स्वरूप से भी कदाचित विद्यमान नहीं होता. कुछ भी भिन्न नहीं है, ऐसे तत्त्ववित् जानते हैं. ७५

वीतराग. ७६. राग, भय और क्रोध से रहित, वेद पारांगत जो मुनि उन करके सर्व विकल्प रहित–निर्विकल्प अद्वैत रूप यह आत्मा देखा है. ७६.

तस्माद्. जडवत्. ७७. उपर समान जान के जडवत् विचरे. * ७७. अब अद्वैताख्य तीसरा प्रकरण.

यथैक. ८४. जैसे रज, धूम आदिक से युक्त एक घटाकाश के हुये सब घटाकाशादिक तिन रज और धूमादि से संयोग को नहीं पाते, तैसे जीवों के सुखादि परस्पर में संबंध को नहीं पाते. (आत्मा को अविद्या से आरोपित बुद्धि आदिक के किये दुःख सुखादिक दोष अंगीकार करने से व्यावहारिक बंध मोक्ष विरोध को नहीं पाते). ८४.

सङ्घाता. ८५. सब (देहादि) संघात स्वप्न दृश्य के समान आत्मा की माया (अविद्या रूप माया) कर के रचित हैं. अधिकता (देवाधि पूज्य +) या सब की समता इस दृश्य के सद्भाव का प्रतिपादक नहीं है. ८५.

जीवात्मनोः ९३. पूर्व में (कर्म उपासना कांड विषे) सम्यक् ज्ञान रूप जो जीव उसका और परमात्मा का भिन्नपना कहा है, सो भविष्य प्रवृत्ति (तंदुल में भोजनपना है, इस समान) गौण है. मुख्यपने से नहीं घटता. ९३.

मृल्लोह. ९४. मृतिका, सुवर्ण और विस्फुलिंग आदिकवत् और अन्य प्रकार से जो सृष्टि कही है सो (एकता वाली बुद्धि की) उत्पत्ति के उपाय हैं. भेद किसी प्रकार से भी नहीं है. † ९४.

---

* यह प्राचीन खयाल है. क्योंकि उसको सिखाने वाला जडवत् विचरता तो सिखाता कोन.

† प्रथम भेद भ्रम करना, फेर एकता और अभेद बताने के लिये उत्पत्यादि प्रकार करना. वाह रे लीला वाह रे ब्रह्म और उसकी श्रीवरी ऐसा दोष ईश्वर कृत वेदों में नहीं आ सकता.

मायया. ९८. आत्मा माया से भेद को पाता है (रज्जु सर्पवत् दो चंद्रवत्) वोह अज है इसलिये अन्यथा (नाना रूप भेद वाला) नहीं होता; क्योंकि जो तत्त्ववतः भेद को प्राप्त हो तो अमृत, मरने के योग्य होगा. ९८.

नेहनानेति. १०३. "इसमें नाना कुछ नहीं है," "इंद्र (परमात्मा) माया कर के नाना रूप (मिथ्या रूप) करता है" "अजन्मा बहुत प्रकार से जन्मता है सो माया से ही जन्मता है" यह श्रुतियों का निश्चय है.

असतो. ९९. असत् पदार्थ का माया से वा तत्त्व से जन्म नहीं होता वंध्या पुत्रवत्. ९९. (शं) तो जगत् असत् नहीं. (उ.) यथा स्वप्ने. १०८. जैसे मन स्वप्न से (रज्जु सर्पवत्) माया से (ग्राह्य और ग्राहक रूप से) द्वैताभास रूप हुवा माया से स्फुरता है, तैसे ही जाग्रत विषे मन माया से (ग्राह्य ग्राहक रूप से) द्वैताभास रूप हुवा स्फुरता है. १०८.

अद्वय. १०९. मनो. ११०.. दोनों का अर्थ— स्वप्न में अद्वैत हुवा मन द्वैताभास होके स्फुरता है तद्वत् जाग्रत् में भी मन अद्वैत रूप हुवा और द्वैताभास रूप होके स्फुरता है, इसमें संशय नहीं है. १०९. यह दृश्य जो कुछ चराचर द्वैत है सो मन ही है; क्योंकि मन के अमनी (निरोध) भाव हुए नहीं देखते हैं. ११०.

आत्मा सत्. १११. आत्मा के अनुबोध हुये से जब मन सकल्प नही करता तब ग्राह्य के अभाव हुये ग्रहण की कल्पना का अभाव होने से सो मन अमन भाव को पाता है. (दृश्य की अप्रतीति होती है). १११.

अकल्प. ११२. इस वास्ते ब्रह्मवेता जो हैं वे निर्विकल्प, अज (चेतनमात्र) को ज्ञेय से अभिन्न कहते हैं. ११२.

लीयते. ११४. क्योंकि सुषुप्ति में मन लीन होता है (अविद्या रूप बीज वाला है) विशेष ज्ञान पूर्वक निरोध को पाया हुवा मन लीन नही होता (बीज भाव को नहीं पाता) यह सुषुप्ति और समाधि का भेद है. (समाधि में अविद्या कृत ग्राह्य ग्राहक भाव रहित होता है- परब्रह्म को ही प्राप्त होता है अतः) सोई निर्भय ब्रह्म है. सोई ब्रह्मज्ञान प्रकाश है. सो चारों तरफ से है

११५।११६. सो आत्मा-ब्रह्म अज, अनिद्र, अस्वप्न, अनाम, अरूप, प्रकाशरूप, सर्वज्ञ ऐसे कोई प्रकार से भी उस ब्रह्म मे उपचार (कथन) नहीं होता. ११५. चिंता रहित, अंतःकरण रहित, अलुप्त, शांत-प्रकाशरूप, अचल, सम (समाधिरूप) अभय है. ११६. तिसमें त्याग वा ग्रहण नहीं है, तिसमे चिंता नहीं

है— अमनीय भाव (निर्विकल्पा) है. जब आत्मा का अनुबोध हो तब आत्मा में ही स्थिति हुवा जन्म से रहित परम समता को प्राप्त भया ज्ञान होता है. ११६.

११९ से १२५ तक साधन (मनोनिग्रह) कहा है. १२६ में उसका फल कहा है.

न कश्चिन. १२७. कोई भी (कर्ता भोक्ता) जीव किसी प्रकार से भी उत्पन्न नहीं होता क्योंकि स्वभाव से अजन्मारूप आत्मा का कारण नहीं है तिन (व्यावहारिक सत्यरूप साधनों) के मध्य यह उत्तम सत्य है. जिस (ब्रह्म) मे कुछ भी नही उत्पन्न होता. १२७. आगे अलात शांत्याख्य **चौथा प्रकरण—**

कुछ भी विद्यमान सत उत्पन्न नही होता और असत की भी अनुत्पत्ति है और सत् असत् से अन्य कोई वस्तु नहीं है. अतः अनुत्पत्ति है. १३३।१३४।१३५.

अज (ब्रह्म) सांत (नाश) नही होता, सांत (कार्य) अज (ब्रह्म)को नहीं पाता, इसलिये प्रकृति (स्वभाव) का भी अन्यथा भाव किसी प्रकार से नही होता. १३६.

जरामरण. १३७. प्रकृति अर्थात् स्वाभाव की (स्वभाव सिद्ध है) सहजा (आत्मा के साथ ही होने वाली) अकृत (अरचित) और जो स्वभाव को न त्यागे सो प्रकृति है, ऐसा जानना चाहिये. ‡ १३७.

हेतोरादि. १४१. हेतु धर्मादि हेतु का फल देहादि और देहादि फल का हेतु धर्मादि माना जाय तो उभय में से एक भी अनादि न हुवा (पुत्र पितावत्). § १४१.

पूर्वा पर. १४८. (अनुत्पत्ति के अंगीकार का कारण कहते हैं) कार्य कारण का जो अज्ञान है सो यह अनुत्पत्ति का प्रकाशक है. जब उत्पन्न धर्म (कार्य) का स्वीकार है तब उस धर्म (कार्य) से पूर्व (कारण) का कैसे ग्रहण न हो. (जन्यजनक अभिन्न होते हैं). १४८.

स्वतो. १४९. आप से वा पर से वा उभय से कुछ भी नही जन्मता. सत असत वा सदसत्—दोनो रूप से कुछ भी नहीं जन्मता. १४९. सत की उत्पत्ति

‡ सांख्य की प्रकृति महततत्त्व रूप से जन्म पाती है.

§ बीज और अकुर, पिता सतान का कार्य कारण भाव नहीं बनता. धारा प्राप्ति से. कार्य कारण भाव की कहीं भी प्रतीति नही होती विकासवाद-अविद्यावाद की रीति से हेतु फल की शैली बनती है क्योंकि उपचयापचय भाव है.

व्याघात पूर्व होने से. असत् वस्तु नही, अतः अनुत्पत्ति. अतः उभय से अनुत्पत्ति. सपादक

चित्त. १९३ जेसे चित्त (चैतन्य) बाहिर के आश्रय और विषय का स्पर्श नही करता तेसे ही अर्थ के आभास (मनोराज्यादि) का स्पर्श नहा करता जो कि अर्थ स्वप्नवत् मिथ्या हे, अतः उनका आभास भी चेतन से भिन्न नही है, किंतु चित्त (चेतन्य) ही घटादि रूप अर्थ जेसा भासता है. यथा स्वप्न मे १९३.

तस्मात् १९९. इसलिये चित्त और चित्त का दृश्य पेदा नही होता++ १९९.

अजात १९६. ब्रह्म अजात, जन्मता है (माया से जन्मता है) इसलिये तिसकी अनुत्पत्ति प्रकृति (स्वभाव) है, इसलिये अनुत्पन्न रूप प्रकृति का अन्यथा भाव (जन्म) किसी प्रकार से भी नही होगा. १९६

(श) सादि मोक्ष अनत न होगी. (उ) आदावन्तो १९८ जो (मृगजलवत्) आदि और अत मे नही हे सो मध्य में भी नही होती ऐसे मोक्षादि मिथ्या वस्तु जेसी है तो भी मूढ उसे सत्य ही जानते हे १९८. मोक्षादि स्वप्नवत् ह.

सर्वे धर्मा १६० जब कि स्वप्न मे सब धर्म मिथ्या ह, शरीर अतर्गत देखने से, तब वेराट के शरीरगत जो जगत् हे सो भी मिथ्या हे किवा जब कि योग्य देश के अभाव होने से स्वप्नसृष्टि का मिथ्या दृष्ट है, तब प्रत्यगात्मा से अभिन्न एकरस (सम) अवकाश रहित इस ब्रह्मदेश (स्वरूप) मे प्रसिद्ध विद्यमान वस्तु का दर्शन कहा मे होगा? (परतु दर्शन होता हे इसलिये स्वप्नवत् जाग्रत भी मिथ्या है) १६०

उपलभात् १६९ अद्वैतवादि (व्यासादि पडितो) ने जो ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति (जन्मादि उससे होते हे इत्यादि) कही हे सो तो उपालभ (द्वैत प्रतीति) से और वर्णाश्रम आदि धर्म के सम्यक् आचरण से (इन दोनो कारण से) द्वैत का वस्तु भाव हे ऐसे रहने के स्वभाव वाले और सृष्टि की अनुत्पत्ति से भय को पाने वाले कर्म के श्रद्धावान मद विवेकिओ के अर्थ उपदेश की है (परतु परमार्थ बुद्धि से नहीं कही है) १६९

उपलभात् समाचारात १७१ जेसे माया का हस्ति प्रतीति और आचार से हस्ति कहा जाता ह, तेसे ही प्रतीति और आचार से भेद रूप द्वैत वस्तु हे ऐसे कहा जाता है १७१.

ऋजुवक्रादि. १७४. जेसे सरल और वक्रादि प्रकार वाला आभास (प्रकाश) जो है अलात सो (अर्धदग्ध काष्ट उल्का) का चलना है तेसे ग्रहण और ग्राहक का जो आभास (भासना) सो विज्ञान का (अविद्या) से चलना है (क्योंकि विज्ञान तो अज अचल है). (*विज्ञान का जो स्फुरण (जगत् आकार से भासना) है सो विवर्त्त है*). १७४.

एवं न चित्तजा. १८१. उक्त प्रकार से बाह्य धर्म (घटादि) चित्त से और चित्त बाह्य धर्मसे जन्य नहीं है (*और जीव रूप धर्म का परमात्मा रूप चित्त से जन्म* नही है; क्योकि सब धर्म को विज्ञान स्वरूप के आभास-प्रतिबिंब मात्र है). इस प्रकार पंडितजन हेतु फल की अनुत्पत्ति का निश्चय करते है. १८१.

धर्मा. १८९. जो धर्म जन्मते है, ऐसी कल्पना करते है वे धर्म परदे (गुप्तपने) से जन्मते है, तत्त्व से नहीं जन्मते. तिन धर्मो का जन्म माया की उपमा वाला (जेसे माया का जन्म होता है वेसा) होने योग्य है. तब माया नाम की कोई वस्तु होगी? सो माया विद्यमान नही है. आशय यह है कि अविद्यमान वस्तु का नाम माया है (जो नहीं सो माया). १८९.

यथा माया. १८६. जेसे मायामय * बीज से मायामय अंकुर होते है सो नित्य वा विनाशी नहीं होते, तेसे धर्म (पदार्थ-दृश्य) का उत्पत्ति नाश नहीं होता.

नाजेपु. १८७. आत्मसत्ता रूप अज सब धर्मो मे नित्य वा अनित्य ऐसा नहीं कहा जाता, क्योकि उसमें वाणी (वर्ण) का प्रवेश नहीं है. १८७.

यथा स्वप्ने. १८८. जेसे स्वप्न मे द्वैताभास रूप चित्त *(मन) माया मे चलता* है तेसे ही जाग्रत मे द्वैताभास रूप चित्त माया से चलता है. १८८.

अद्वयंच. १८९. स्वप्न मे अद्वैत रूप चित्त (मन) द्वैताभास रूप होता है वेसे ही जाग्रत में है. (जो फेर परमार्थ से अद्वैत रूप विज्ञान मात्र वस्तु को वाणी का विषयपना है सो मन का स्फुरण मात्र है, परमार्थ से नहीं है). १८९.

स्वप्नदृक. १९१. जेसे स्वप्न दृष्टा का चित्त *(मन)* के जो दृश्य (जीवादि) है वे उस चित्त से भिन्न नहीं है (अर्थात् चित्त ही जीवादिक भेद के (दृष्टा और चित्त

---

* बाजीगर हस्त चालाकी से वा तंत्र वा औषधियो से सस्कार पाई गुठली से आम का वृक्ष तुरत कर दिखाता है उसको प्राचीन खयाल वाले नहीं जान के अन इस मायावी वृक्ष कहते है !!

प्रकृत्या. २१८. सब धर्म आकाशवत् स्वभाव से अनादि (नित्य,) हैं ऐसा जानना चाहिये, तिनका नाना भाव कहीं भी कुछ भी विद्यमान नहीं है. २१८. ब्रह्म के सूक्ष्मत्व, अंतरगतपना, निरंजनपना यह धर्म अनादि से है. §

अजेष्वजं. २२३. अजन्मो अजन्मा ज्ञान स्वरूप अन्यों में नहीं जाता इसलिये वोह असंग कहा जाता है. २२३.

माडूक्य उपनिषद् पर श्रीमत् गोडपादाचार्य की कारिका २१७ श्लोक वाली प्रसिद्ध है, उसमें से यथोचित लिखा गया है.

शोधक.

श्री गोडपादाचार्य की अद्वैत प्रतिपादक शैली प्रशंसनीय है, * क्योंकि वे अद्वैतवाद को केवल श्रुति से ही नहीं, किंतु स्वप्न सृष्टि की प्रसिद्ध व्याप्ति से घटाते हैं और प्रपंच से वैराग्य तथा अनासक्ति होने के लिये तथा पुरुषार्थी बनने के वास्ते अच्छा हथियार हो सकती है, परंतु वर्तमानविषे उनकी थीयरी (श्लो. ९३। ९७) में दोष की आपत्ति करते हैं सो प्रथम संक्षेप में जनाते हैं.

पूर्वपक्ष.

(१) सृष्टि प्रभु-आत्मा (ब्रह्म चेतन) का स्वभाव, माया, मन, और *अविद्या इन चार शब्दों से उन्होंने लिया है, इनके विचारने से आचार्य श्री की* रचना (आत्मा) ने अपनी माया से अपने स्वरूप में करी (९३।९७) का भान हो जाता है. इसी में मन और अविद्या का तथा स्वभाव का समावेश हो जाता है.

(२) जब के ४।७२ अनुसार सब (ब्रह्म से इतर अन्य सब) अजात हैं तो यह सवाल पैदा हो जाता है कि "द्रव्य अभाव से पैदा नहीं हो सकता (वंध्या पुत्रवत्), सत् वा असत् की अनुत्पत्ति है, और अहेतु की प्रतीति नहीं होती, और कल्पना की कल्पना से इतर अन्य उपलब्धि नहीं होती तो फेर यह उपलब्ध रूप द्रव्य क्या?' तहां जो पूर्व पूर्व के संस्कारानुसार (स्वप्न सृष्टिवत्) दर्शन मानें तो संस्कार (हेतु फलादि) का उनकी थीयरी में स्वीकार नहीं, किंतु आरंभ में ही कल्पना मानते हैं (५३।६७।६८ देखो). और रज्जु सर्प का सादृश्य है तो रज्जु में सर्प रूप की कल्पना होती है अन्यथा नहीं होती है, परन्तु यहां वैसा नहीं है,

§ श्लो० ४।५७।८१।९६।१८४ ना स्वभाव से अनादि हैं तो [illegible] से सब कथन की [illegible]

* [illegible]

क्योकि आत्मा (व्यापक, चेतन, और कल्पित अनात्मा (जगत् परिछिन्न-जड) का वधर्म्य है, इसलिये सादृश्य के अभाव से ब्रह्म को ही (अपने आपको ही) नामरूपात्मक (रज्जु सर्पवत्) भासना नहीं मान सकते और भी निर्विकल्प निरीह आत्मा मे आत्मा मे भिन्न अनात्मा (नामरूप) की कल्पना ही कैसे हुई, इसका कारण नही जान पडता. जो सर्व शक्ति मान के ऐसी कल्पना होना मानें तो माया शक्ति के जैसे (यथा कल्पना) आकार हो गये, यही मानना पडेगा अर्थात् माया-अज्ञानवश ऐसा हुवा हो, ऐसा नहीं मान सकेंगे, क्योकि वोह सब शक्तिमान, सर्वज्ञ निर्भ्रांत है परतु ब्रह्म में इच्छा के अभाव का स्वीकार है इन सब की अर्थापत्ति से ऐसा कहना होगा कि भावरूप अनादि माया करके द्रश्य का स्वाभाविक अवभास होता है अर्थात् चेतन विशिष्ट माया का (वा यू कहो मायावी कर्त्ता का) स्वभाव है कि पूर्व पूर्व सस्कारानुसार नामरूप (ग्राह्य और ग्रहण का साधन) परिणाम को पाते हुये ब्रह्म की स्वाभाविक विवर्त्त रहे अर्थात् नामरूप का अनिर्वचनीय तादात्म्य सबध होने से ब्रह्म तद्वत् भासे (जैसे कि चेतन विशिष्ट सस्कारी मन द्वारा स्वप्न म अनिच्छित सृष्टि होती है और वोह चेतन की विवर्त्त होती है वैसे) ऐसा मान सकते है साराश अथ शून्य की प्रतीति असभव १ कल्पना की भी प्रतीति होने योग्य है २ एक ही वस्तु कल्पना रूप (भाव परिणामी) हो और उसकी उसी काल मे साक्षी न हो तो कल्पना की सिद्धि नहीं होती. इसलिये दोनो का हयाती समकाल होनी चाहिये ३ अब जब यूं हो तो एक के दो भाग मानने होंगे १ अशब्द वा सशब्द कल्पनात्मक भाग २ उसकी साक्षी वाला भाग जब यू हो तो आत्मा सावयव ठेरता है, इसलिये द्रश्य (नामरूप कल्पनात्मक-माया परिणाम) उसका द्रश्य ही मानना होगा क्योकि एक काल में एक के दो परिणाम का अनुत्पत्ति है स्वप्न म बडबडा ने वाला स्थूल शरीर से बोलता है, उसकेअनुसार अर्थ की उपलब्धि नहीं होती, ऐसा कल्पना ब्रह्म चेतन को नहीं हो सकती; इसलिये ब्रह्म से विलक्षण जो माया उसके नामरूप परिणाम नभ का नीलता समान मानने ही पडेंगे. और ऐसा स्वाभाविक अवभास कहना पडेगा, कारण कि ब्रह्म इच्छा रहित है १९ सृष्टिरूप जान पडना उसका स्वभाव है २६ ऐसा अनादि मे है २२ माया से भेद वाला जान पडता है ९, ऐसा कहा है ब्रह्म आप कल्पता है यह नहा बनता, क्योकि वाह निर्विकल्प (कल्पना वाला नहीं) है (२६।११।३।१६). सम म कल्पना रूप परिणाम बने नहीं. जो ब्रह्म में कल्पना करना मानें तो उपर कहे अनुसार सावयव-परिणामी

सिद्ध होगा. तथा कल्पना इच्छा के विना नहीं हो सकती; परंतु इच्छा का उसने अभाव माना है ९०. तथाहि जो सब ज्ञान पूर्वक इच्छा से कल्पता है तो उसका विषय व्यर्थ न होगा याने कल्पना सफल होनी चाहिये और यदि अज्ञान मायावश (रज्जु सर्पवत् वा बालकों के समान) कल्पता है तो त. द. अ. ३ सू. ४०१ के विवेचन में जो दोष लिखें है वे सब दोष आयेंगे. और त. द पेज १००५ से १००९ तक कल्पित के भेद भी देखो

साराश १. जो उसमें सृष्टि रचना की इच्छा मानें तो सक्रिय, सस्कारी होने से सविकारी ठरे और क्योंकि, इसका संतोष कारक उत्तर नहीं मिलता. २. इच्छा हुये अभाव में से बनाई तो असभव दोष. ३. अपने अंग में से बनाइ तो सावयव ठरे, विरुद्ध धर्माश्रय दोष. ४. जो मन मे आकारो की कल्पना—नकशा बनाने ऐसे आकार मात्र कल्पे तो द्रष्ट विरुद्ध दोष याने आकारो मे उपलब्धि नहीं होती और द्रव्य की स्वप्न जेसी ही सही परंतु उपलब्धी होती है. ५. जो बालको को 'हाउ', 'यह सर्प' की नाम पूर्वक शब्द मात्र कहते हैं, ऐसे कल्पे तो भी नं. ४ वत् दोष आता है ६. जो माया—अज्ञानवश रज्जु सर्पवत् विवश वा इच्छा पूर्वक कल्पे तो त. द. अ. ३ पेज ७६९ से ७८१ तक वाले दोष आते है. निदान सम चेतन मे उक्त विकल्प नहीं बनते. इसलिये परिणाम यह आता है कि यह द्रव्य जगत् **दृश्य दर्शन** (अ. ३ पे. ७७३) अनुसार सस्कारी माया करके तत्री द्वारा स्वाभाविक है. इसलिये माया मात्र द्वैत है. यह मानना ही होगा.

(३) देव अपनी माया से मोहित देव (ब्रह्म चेतन) अपनी माया से मोहित (६०) और माया अर्थात् कुछ नहीं (१८९) यह विरोधी बात असिद्ध है, यह विरोधी कल्पना है, क्योकि माया अनादि (२३), माया स्वभाव (१९।१२६), माया भावरूप (९७।९३।८९।९९) और माया कुछ नहीं (१८९) यह विरुद्ध बात है, इसलिये माया (स्वभाव वा और कुछ) के परिणाम अर्थशून्य—असत् नहीं कह सकने; किंतु माया सत असत् से विलक्षण (ब्रह्म से विलक्षण) कुछ अनिर्वचनीय वस्तु होनी चाहिये और स्वप्न सृष्टि के नाम रूप जेसे उसके परिणाम होने चाहिये.

(४) जब के चेतन मोहित (९९।६०) तो अज्ञानी ठेरा और माया अनादि अतः ब्रह्म अनादि से अज्ञानी अर्थात् अनादि अज्ञान से उसको द्वैत भासता है वा रज्जु सर्पवत् कल्पता है? जो भासना मानें तो नं. २ के अनुसार परिणाम आवेगा; क्योंकि स्वप्न सृष्टिवत् वा नीलता वत् वोह कल्पना नहीं, किंतु अनादि माया का

स्वभाव है कि अधिष्ठान की सत्ता विशिष्ट हुई नाम रूपात्मक परिणाम पा के चेतन की विवर्त्त हो और इसलिये उस स्व स्वरूप के अज्ञानी को द्वैत भासे अर्थात् चेतन को अपना स्वरूप आकाश की नीलता और रज्जु के सर्प समान अन्यथा भासे—आत्मा अनात्मा का अन्योऽन्याध्यास हो जाय, ऐसे स्वाभाविक अनादि अनंत अवभास ठेरा. और जो द्रश्य (नामरूप) अज्ञानी ब्रह्म की (रज्जु सर्पवत्) कल्पना मानें तो जैसे रज्जु सर्प के भासने वा कल्पना होने में अज्ञानादि ६ सामग्री (त. द. अ. ३ सूत्र ४. १) होती है वे (वस्तु के संस्कार, साद्रश्य दोष वगैरे) होनी चाहिये, परतु उनका अस्वीकार है (नं. १४।।१४९।।८।।१८२।।८६ देखो). इसलिये रज्जु सर्पवत् ब्रह्म की कल्पना वा चेतन को भ्रम वा अध्याससिद्ध नही होता (त. द. अ. ३ सू. ४. १ पृष्ट ७६। से ७८१ तक मे इसका विस्तार है). अत मे चेतन (ब्रह्म वा प्रत्यगात्मा) और माया तथा उसके नामरूप के संबंध से अज्ञानी जीव को अन्यथा अध्यास (ससर्गाध्यास—आत्मा अनात्मा का अन्योऽन्याध्यास) हुवा है, इतना मानना ही बन सकता है, परतु उक्त, सू. (४•१) के विवेचन विचार ने से स्पष्ट हो जाता है कि समष्टि (एक ब्रह्म चेतन) को वा व्यष्टि (उपहित चेतन—प्रत्यगात्मा) को अज्ञान, भ्रम वा अध्यास होना असभव है तथा उनके आभास—प्रतिबिंब नहीं होते. अब यदि वैसे (अज्ञानादि, आभास) मानें तो वहोत दोष आते हैं; इसलिये ब्रह्म चेतन की इच्छित कल्पना मे रज्जु के सर्प समान यह द्रश्य कल्पित हुवा हो किवा चेतन को अज्ञान वश भासता हो, ऐसा सिद्ध नही होता. ‡

---

‡ भाष्यकार "द्रश्य अर्थ शून्य" इस विषय की सिद्धि मे "इन्द्र माया कर के वहु रूप होता है" "आत्मा इच्छा करता हुवा" "यहा नाना कुछ नहीं" इत्यादि श्रुति देता है सो तो ठीक है.

भानमति बाजीगर के तमाशे और बाजीगर कृत अर्थ शून्य आम्र दर्शन का द्रष्टात अर्थात् माया करके अनहुये (अर्थशून्य) पदार्थ ज्ञात हो जाया करते हैं. ऐसा नहीं बनता.

क्योंकि अर्थशून्य—अनहुये कि प्रतीति अभाव मे भाव रूप की उत्पत्ति ने ही मान सकते हैं कि जिन को योग विद्या, तंत्र विद्या (मेस्मेरिजम), इद्रजाल (तत्र) और चाल विद्या मे, नाराकफी हो; शंकराचार्य जैसे महा पुरुष नहीं मान सकते. अर्थात् यह द्रष्टात आशय समझने के लिये अर्थवाद रूप होना चाहिये.

(९) जो सृष्टि को नं. १९ वत् आत्मा (ब्रह्म) का स्वभाव मानें तो (नभ नीलतावत्) उसकी निवृत्ति असभव (श्लो. १३३।१३७ देखो). किंतु वोह प्रवाह मे (व्यक्त अव्यक्त रूप प्रवाह से) रहेहीगी; अथवा ब्रह्म का स्वभाव होने से सृष्टि करता आया है और तद्वत् करेगा. अतः वोह अध्यासरूप न होने मे उसकी निवृत्ति नहीं होगी; इसलिये माया अनादि अनत ठेरी. हा, माया के नाम रूपात्मक परिणाम का याने इम अनात्मा और आत्मा का अन्योऽन्याध्यास हो सकता है और विद्या से उसकी निवृत्ति भी हो सक्ती है, परंतु यहा मूल का प्रसग है, कार्य का प्रसग नहीं है: अतः उसकी चर्चा नही करते.

(१) जब कि माया कुछ वस्तु नही (१८९) तो उसको अग्रहण हेतु क्यो दिया; अतः वोह कुछ है. (शं.) मूल सूत्र मे यह हेतु नही है भाष्य मे है. (उ.) १०।२७।७२ का कथन भाष्यकार के अनुकूल है; अतः माया अनिर्वचनीय रूप कुछ वस्तु ठेरेगी.

भानमति के तमाशो मे जहा डोरी द्वारा आकाश पर चढना, शरीर के कटे हुये अग नीचे आना, आम्र वा अनार के वृक्ष लगे हुये देखना होता है, वहां कई प्रकार होते है १. कहीं तो अनुवृत्ति से याने सकल्प द्वारा अनुवृत्ति हो के हिरण्यगर्भ मे वेसी आकृति हो के नजर आना (कृष्ण के विश्वरूप दर्शनवत्) अर्थात् वहा द्रव्य का उपादान होता है २. कही तो तंत्र द्वारा ऐसा होता है, यथा सं. १९३३ के केसरी दरबार में दिल्ली मे एक तंत्री ने आकाश मे एक हवाई चलाई उसके नाश हुये (फूट जाने) पीछे अंतरिक्ष मे महाराणी मलिका विक्टोरिया की हुबहू छबी जान पडी. यह देख के वैसराय, गवरनर और तमाम मंडल ने उसको सलाम किया यहा छबी का उपादान गेस था. मसालेदार बत्ती का दीपक जलाया जाता है, उसमें से गेस निकल के सर्पाकार हुवा ज्ञात होता है, इसलिये उस मकान में सर्प जान पडते है. अग्निकुंड मे से निकलती हुई अग्नि मे अष्टभुजा देवी वगेरे के दर्शन होते है, वहा पहिले रखे हुये पूतले और उस पर आमोलादि का तेल है, उसकी उस अनुसार आकृति बन के कुछ क्षण दीख पडती है वहा मिश्रित तेल धूप उपादान है. ३. धूल के चावल, ककरी का रुपैया कर के बताना चालाकी (हस्त फेर) है. जहा आम की गुठली मे आधी कलाक में वृक्ष फल हो जाता है वहा बहुत करके बाजीगर फल लगी हुई डाली तर रखते है उसको चालाकी मे जोड कर के बताते है और कही आम की गुठली आक वगेरे के दूध मे सम्स्कृत होती है, इसलिये प्रयोग समय उसमें से जलदी मे

(७) जब के आत्मा हेतु वा फल रूप नही (२३।१८१), तो फेर आत्मा जीव अजीव और अमुक प्रकार के जीव पेदा करता है (१८ का भाष्य और मूल १२।१३।१४।१७।१८।६०।१४१) क्यो कहते हो. और आत्मा इच्छा करता हुवा ऐसे श्रुति क्यो कहती है विरोध होने से उनमे से कोई एक कल्पना मान्य नही हो सकती अर्थात् जो उत्पत्ति इच्छा से की तो सृष्टि अर्थशून्य न ठेरी, क्योकि नाम कथनवत् कल्पिताकार भी विषय होने योग्य हैं. जेसे कि इच्छापूर्वक अदर म एक नकशा बनावें तो वे आकृति सूक्ष्मा में यथा सस्कार यथा स्फुरण बनती, द्रश्य होती और बिगडती है, यहा कल्पना करने वाला निमित (हेतु) और सूक्ष्मा हेतु तथा फल हैं तद्वत् वहा आत्मा निमित्त ओर माया हेतु तथा परिणाम फल हैं जो कल्पना वा कल्पित विषय-ग्रहण न हुये तो उनकी सिद्धि (खंडन मडन) ही न होगी, अत वे द्रष्टा के द्रश्य कुछ हैं, ऐसा सिद्ध होता है

अब जो आत्मा अधिष्ठान रूप तो हो, परतु हेतु फल रूप नहीं, तो द्रश्य स्वाभाविक भवभास रूप ठेरा याने वन्ध्यापुत्रवत् अर्थशून्य न हुवा, क्योकि अभाव से भावरूप की उत्पत्ति ओर कुछ भी अन हुये की प्रतीति नहीं हो सकती

जो उत्पत्त्यादि तो अज्ञानियो के बोध ओर आग्रहियो वास्ते कल्पी है-अध्यारोप है (१७।१२००) वस्तुत: ७२।२४ अनुसार है-अर्थात ब्रह्म से अन्य नहीं,

---

छोटी छोटी डाली उद्भव हो जाती हैं. जेसे कि मेथी वा राई के सस्कृत बीजो से मेथी वगेरे तुर्त पेदा हो जाती हैं. मुरगी के अडो को उठा के समय पहिले यंत्रद्वारा जो गरमी पहोचाते हैं तो वे तुरत फूट के उनमे से बच्चे चलने लग जाते हैं सबको दोनो आखो म चद्र के दो फोटो होते हैं, अंदर में जाके दोनो एक हो जाते हैं अब जो आखो को फाडे तो वा अन्य कारण से दोनो न मिल सकें तो दो चद्र जान पडेंगे, तहा दोनो का उपादान किरणे हैं (अन हुये नहीं हैं) और आकाश मे दो मान लेना कल्पना है-अध्यास-भ्रम है (त. द पेज १००९ से १००८ म कल्पित प्रकार देखो) उपर के उदाहरणो से जाना होगा कि अनुपादान-अर्थशून्य प्रतीति नहीं हो सकती, इसलिये यह द्रश्य सशब्द वा अशब्द-कल्पनामात्र नहीं है, किंतु स्वप्न सृष्टि जेसा कोई प्रकार (अनिवचनीय) है. आश्चर्य है, अर्थात् उपदेष्टा शास्त्र, बध, मोक्ष के साधन की उपलब्धि मान के उनको सर्वथा अर्थ शून्य कहना, इसका अर्थ क्या? शैली मात्र के सिवाय क्या कहा जाय

तो उत्पत्ति इत्यादि किसने कल्पे? वोह कौन? इसका उत्तर नही दे सकते, क्योंकि तुम्हारे मत में तो श्रुति वगैरे भी माया मात्र है, उनको कल्पना करने का और आपको द्वैत वा अद्वैत प्रतिपादन का हक ही नही है-इनमें योग्यता ही नहीं है; इसलिये द्रश्य स्वाभाविक अवभास ठेरा.

(८) जो न. २४ अनुसार द्वैत मायामात्र हो, अद्वैत ब्रह्म जैसा अन्य न हो वा जगत् ब्रह्म जैसी सत न हो, ऐसा मानो तो भले ही मानो, परतु इसको अर्थ शून्य-विकल्पमात्र नहीं कह सकते, और यदि चेतन को कल्पित मानोगे तो पूर्वोक्त दोष आवेंगे.

(९) जो आत्मा ने नामरूप की कल्पना की तो वोह कल्पित चेतन (ब्रह्म वा प्रत्यगात्मा) के ब्रह्मनामा अधिकरण के तमाम देश मे १. वा उसके एक देश मे २ वा देश विना शून्यमात्र में ३ पहिले और दूसरे पक्ष मे कल्पित अर्थशून्य न ठेरा, क्योंकि ब्रह्म का और नामरूप का (रज्जु सर्पवत) सादृश्यभाव नहीं है. तीसरे पक्ष में प्रतीति का विषय न होना चाहिये, परतु प्रतीत होती है.

(१०) जब के (३७।१९।१९ अनुसार) साधन और शास्त्र को मायावी मानें तो उसके अनुसार कर्ता भी (जीव भी) मायावी ठेरा (१९९). और खंडन मंडन भी. जो यू हो तो न. १४-१९ में खंडन मंडन क्यो हुवा; क्योंकि वे भी माया करके वा मायावी है, (जैसे कि बायबल, जैनसूत्र और बौद्ध के उपदेश वगैरे माया करके वा मायावी है और आपका कथन मंतव्य भी मायावी ठेरता है), इसलिये या तो वे भी ग्राह्य, नही तो आपका मंतव्य भी अग्राह्य होगा. जब के हम, तुम, यह, वोह, मायिक तो उनका मतव्य खंडन मडन और सिद्धात भी वैसा ही मानना होगा तथा तहा उसका ज्ञाता-मता कौन है? हम, तुम, यह, वोह, तो मायिक (१०९।१९९) होने से ज्ञाता नही हो सकते; क्योंकि ज्ञाता-द्रष्टा-मता ब्रह्म ही है, उससे इतर अन्य नही है और वोह एक ही है. इस रीति से अस्मदादि का कथन मतव्य स्वप्न के जीवो वत होगा अर्थात् सब का मंतव्य वा सर्व का मिथ्या वा बाधित होगा; परतु सो आपको स्वीकृत नही है-याने अन्य का निषेध करते हो.

(११) जाग्रत सृष्टि स्वप्न सृष्टिवत् है. (४९). इतना कहना तो सयुक्त भी ठेरता है, परतु ४७ अनुसार नो असत है याने आदि अंत मे न होने से मध्य मे भी उसका अभाव माना है. तहा अभाव मे भाव रूप होना और उस अन हुये की प्रतीति होना असभव है; क्योंकि ऐसी व्याप्ति भी नहीं मिलती तो फेर मध्य में जो

दृश्य उसका उपादान बताना पडेगा रज्जु सर्प मे सर्प आदि अत म नही है, वहा कल्पना से भी सर्प नही हुवा है किंतु रज्जु के अज्ञान, सर्प के सस्कार और सादृश्य दोषवश अनिच्छित सर्प का नामरूल्पन हुआ है, सर्प मानता है, परतु उसकी उपलब्धि नही है और रज्जु भी सर्परूप नही हुई है, परतु ऐसा स्वप्नसृष्टि मे नही होता, क्योकि वहा चेतन (निराकार रूपरहित है शब्दादि रूप नही, ऐसे) से विलक्षण-धर्मवाले की उपलब्धि होती है और बाध हुये पीछे रज्जु सर्पवत् बाध नही होता, (त. द पेज ७१२ से ७२१ तक देखो). तथा वहा चेतन स्वप्न सृष्टि रूप परिणाम को नही पाया है, किंतु सृष्टि का द्रष्टामात्र होता है और द्रष्टा दृश्य मे भिन्न होता है (आगे कहेंगे, और त. द अ २।३७१ देखो) यहा स्वप्नसृष्टि के निर्णय प्रसग को (अ ३ सू. ३५४ से ३६४ तक और ४२३ से ५३४ तक को) याद मे लिजिये अतः दृश्य सर्वथा अजात ऐसा रहना मानना नही बनता और वदतोव्याघात है.

(१६) माया यदि भावरूप अनादि (न ५२।१७।१५।२३।८९) तो अनत ही (१३७) होनी चाहिये, क्योकि अनादिसात नही होता (अ. ५।१९० देखो) जो सुषुप्ति वा तुरीया म प्रपच के अदर्शन से उसे सात मानें तो ऐसा मानना असमीचीन है, क्योकि (१) यद्यपि वहा प्रत्यगात्मा प्रपच उपशम, न बाहिर, न अदर, शात, अमनि इत्यादि प्रकारवाला है तथापि चित्त-माया के उदय हुये तहा और बाहिर मे पूर्ववत् प्रपच प्रतीत होता है अर्थात् उसका मूल (मन-चित्त) चेतन मे अव्यक्तरूप हुवा था, नही कि उसका अत्यताभाव हुवा था जो अत्यताभाव हो जाता तो पुनः प्रपच भी ज्ञेय न होता, परतु ऐसा नही है (२) भावरूप अनादि के सात होने की व्याप्ति नही मिलती, किंतु सादिसात की ही व्याप्ति मिलती है. (३) मूल सहित दृश्य का सर्वथा अभाव हो जाय अथवा वस्तुतः अजात है तो ब्रह्म निष्फल ठेरेगा सो असभव है (२।१४७ याद करो). (४) जो तुरीया में सृष्टि अदर्शन से तमाम प्रपच का अभाव होना मान लेवें तो वामदेवादि को ज्ञान हुये और मुक्त हुये पीछे वा एक के मरने पीछे सब सृष्टि का अभाव-अदर्शन हो जाता, परतु ऐसा नही हुवा और न होता है, अतः तुरीया, ज्ञानवान और मुक्त के दृष्टात मे अनादि का सात नही रह सकने (५) ब्रह्म सृष्टि का आरभ करता है (१४।०७।२०।८१), ऐसा मानें तो (क) "यथापूर्व करता है" इस श्रुति के अनुसार करता आया और करेगा, यह सिद्ध हुवा अतः उसकी शक्ति वा प्रकृति जो माया-याने जगत् का उपादान अनादि

तो उत्पत्ति द्रश्यादि किसने कल्पे? वोह कोन? इसका उत्तर नहीं दे सकते, क्योंकि तुम्हारे मत में तो श्रुति वगेरे भी माया मात्र है, उनको कल्पना करने का और आपको द्वैत वा अद्वैत प्रतिपादन का हक ही नहीं है-उनमें योग्यता ही नहीं है, इसलिये द्रश्य स्वाभाविक अवभास ठेरा

(८) जो न २४ अनुसार द्वैत मायामात्र हो, अद्वैत ब्रह्म जेसा अन्य न हो वा जगत् ब्रह्म जेसी सत न हो, ऐसा मानो तो भले ही मानो, परतु इसको अर्थ शून्य-विकल्पमात्र नहीं कह सकते, और यदि चेतन को कल्पित मानोगे तो पूर्वोक्त दोष आवेंगे

(९) जो आत्मा ने नामरूप की कल्पना की तो वोह कल्पित चेतन (ब्रह्म वा प्रत्यगात्मा) के ब्रह्मनामा अधिकरण के तमाम देश मे १ वा उसके एक देश मे २ वा देश विना शून्यमात्र में ३ पहिले और दूसरे पक्ष मे कल्पित अर्थशून्य न ठेरा, क्योंकि ब्रह्म का और नामरूप का (रज्जु सर्पवत) सादृश्यभाव नहीं है तीसरे पक्ष मे प्रतीति का विषय न होना चाहिये, परतु प्रतीत होती है

(१०) जब के (३७।११९।११९ अनुसार) साधन और शास्त्र को मायावी मानें तो उसके अनुसार कर्ता भी (जीव भी) मायावी ठेरा (१०९) और खंडन मडन भी जो यू हो तो न १४-१९ में खडन मडन क्यो हुवा, क्योंकि वे भी माया कर के वा मायावी है, (जेसे कि बायबल, जैनसूत्र और बोद्ध के उपदेश वगेरे माया कर के वा मायावी है और आपका कथन मतव्य भी मायावी ठेरता है), इसलिये या तो वे भी ग्राह्य, नही तो आपका मतव्य भी अग्राह्य होगा जब के हम, तुम, यह, वोह, मायिक तो उनका मतव्य खडन मडन और सिद्धात भी वेसा ही मानना होगा तथा तहा उसका ज्ञाता-मता कौन है? हम, तुम, यह, वोह, तो मायिक (१०९।१९९) होने से ज्ञाता नही हो सकते; क्योंकि ज्ञाता-द्रष्टा-मता ब्रह्म ही है, उससे इतर अन्य नही है और वोह एक ही है. इस रीति से अस्मदादि का कथन मतव्य स्वप्न के जीवो वत होगा अर्थात् सब का मतव्य वा सर्व का मिथ्या वा बाधित होगा, परतु सो आपको स्वीकृत नही है-याने अन्य का निषेध करते हो

(११) जाग्रत सृष्टि स्वप्न सृष्टिवत् है, (४९) इतना कहना तो सयुक्त भी ठेरता है, परतु ४७ अनुसार सो अजात है याने आदि अत में न होने से मध्य में भी उसका अभाव माना है तहा अभाव से भाव रूप होना और उस अन हुये की प्रतीति होना असभव है क्योंकि ऐसी व्याप्ति भी नहीं मिलती तो फेर मध्य में जो

अनंत सिद्ध हुवा. (ख) जो पूर्व में नहीं किंतु यह सृष्टि पहिली पहेल है, ऐसा मानें तो मुक्ति निर्णयवाले दोष आवेंगे, (पेज १९९ पेज १९८मे ११२ तक देखो) बंध मोक्ष की व्यवस्था न होगी. (ग) अनामेका श्रुति अजा को सांत नहीं कहती; किंतु नाश रहित बताती है, इसलिये भी भाव रूप माया जो अनादि उसको सांत नहीं कह सकते. जो श्रुति के विभाग कर के इस श्रुति को कर्म कांड की वा गौणी या अध्यारोप रूप मानें तो अन्यों ने भी यह व्याप्ति हो जायगी.

(१३) जो ब्रह्म को स्वरूप का निश्चय हो तो अद्वैत ही परिशेष रहता है (६९). ऐसा मानें तो जेसे आज तक माया और उसके कार्य का अभाव न हुवा वेसे ही उत्तर में अत्यंताभाव न होगा; क्योंकि पूर्व मे वामदेवादि मैं ब्रह्म ऐसे स्वरूप निश्चय वाले होना तो आप मानते हो; अतः स्वरूप निश्चय से माया का अत्यंताभाव नहीं होता. जो ऐसा मानें कि उपहित (प्रत्यगात्मा) याने विश्व–तैजस–प्राज्ञ को स्वरूप के ज्ञान हुये सकार्य माया का अत्यंताभाव हो जाता है; क्योंकि प्रपंच अविद्या कल्पित है, सो भी सिद्ध नहीं होता; क्योंकि वामदेवादि को अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्म ऐसे ज्ञानी होना मानते हो, तो भी इस प्रपंच का अत्यंता भाव न हुवा. एक प्रत्यगात्मा को स्वस्वरूप का जो ज्ञान सो ही ब्रह्म को अपना ज्ञान, ऐसा मानना होगा, कारण कि प्रत्यगात्मा और ब्रह्म यह दो चेतन नहीं है. एक स्वरूप है, उपाधि से जुदा जुदा जान पडते है. जो ऐसा मानें कि जिसकी उपाधि (अज्ञान–अविद्या) नाश हुई उस मुक्त स्वरूप की दृष्टि में प्रपंच नहीं रहा—वोह शुद्ध–अद्वैत रूप है; सो भी सिद्ध नहीं होता; क्योंकि विभु चेतन ब्रह्म के उसी देश मे दूसरी उपाधि (माया–अविद्या–अंतःकरण) फिरती फिरती आवेगी तो वोह मुक्त भाग पुनः पूर्ववत्–अशुद्ध–बद्ध हो जायगा; क्योंकि उपहित हो गया. इस प्रकार चेतन का स्वरूप देश हमेशे बद्ध मुक्त होता रहेगा अर्थात् बंध मुक्त कथनमात्र ठेरा. और जो ऐसा मानें कि माया, अज्ञान, माया कृत परिणाम, अविद्या, अविद्या कल्पित नाम रूप, उत्पत्ति लय, देश काल, अर्थ और माया अविद्या अन्तःकरणादि की गति, बंध, साधन, मोक्ष इत्यादि न हुये, न है और न होंगे (७२). अर्थात् रज्जु सर्पवत् परमार्थ से नहीं है तो फेर ऐसा जाननेवाला खंडन मंडन और उपदेश के लिये क्यों प्रवर्त्त होता है अर्थात् शास्त्र भी व्यर्थ है, जो व्यवहार मे स्वप्नवत् व्यवहार मानो तो आपके हृदय में कुछ उपलब्धि का भाव होना चाहिये, इसलिये वेद बाह्य जो अन्य है उनके स्वप्न अनुसार भी अभाव मे भाव रूप सृष्टि, अपुनर्जन्म तथा अनीश्वरवाद भी मान लेंगे,

उनके निषेध में क्यों आग्रह होता है, और दृष्टा–दृश्याभिन्न, जीव ब्रह्म एक, जगत मिथ्या–इत्यादि का आग्रह क्यों होता है? इससे जान पड़ता है कि ब्रह्म चेतन वा प्रत्यगात्मा को अज्ञान–भ्रम नहीं है, उस ज्ञान स्वरूप को अपना अज्ञान वा ज्ञान कहना मानना ही नहीं बनता अर्थात् स्वस्वरूप के ज्ञान हुये माया और उसके प्रवाह रूप कर्म की अत्यंत निवृति मानना कल्पना मात्र है, अथवा यथार्थ जानने के लिये शैली मात्र है; क्योंकि ज्ञान स्वरूप आत्मा–ब्रह्म नित्य शुद्ध स्वरूप है, सब का अधिष्ठान है. उपाधि के तादात्म्य संबंध से उसका उपयोग उपाधि में होता है, (घटाकाशवत); इसलिये उसको अज्ञानी, माया से मोहित, बद्ध और मुक्त कह टालते हैं, वस्तुतः वोह ऐसा (अज्ञानी–भ्रांत बद्ध) सिद्ध नहीं होता. त. द. अ. ४ में देखो.

(१४) मुनियों ने उसे सम निर्विकल्प देखा है–जाना है (७६।११२।१६). जो यह बात ठीक हो तो (१) उसका ज्ञाता दूसरा ठेरता है याने द्वैत होगा. जो इस ज्ञेयत्व को उपचार मात्र मानें तो न. १८९ अनुसार व्यर्थ ठेरता है और जो श्रुति सिद्ध ठीक है तो यह दृश्य आत्मा (ब्रह्म–प्रत्यगात्मा) की कल्पित न होगी; क्योंकि वोह निर्विकल्प है; इसलिये इच्छा पूर्वक घट कुम्हारवत १, वा बालक के लिये डोरी सर्पवत् २, वा अज्ञानवश रज्जु सर्पवत ३, वा लीला रूप बाजीगरवत् ४, यह दृश्य, उसका कल्पित नही मान सकते. और जो यथा पूर्वमकल्पयत, यह श्रुति ठीक हो तो उसका कल्पित असत्य तद्वत् कल्पित का उपादान असत न होना चाहिये; परंतु ब्रह्मदेश में उसकी प्राप्ति होना असंभव (१९०); इसलिये मिथ्या यह एक परिभाषा हुई. अर्थात माया अनिर्वचनीय (सद्ब्रह्म से विलक्षण) अनादि अनंत है और उसके सादि सांत परिणाम (नाम रूप) प्रवाह से अनादि अनंत है और वोह पूर्व पूर्व के संस्कार वाली है, चेतन की सत्ता से यथा संस्कार, परिणाम को पाती है, जैसे कि तत्री (चित्त विशिष्ट संस्कारी मन–माया वा संस्कारी मन–माया विशिष्ट चेतन) द्वारा स्वप्न सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है तद्वत, ऐसा सिद्ध होता है; इतना माने विना निर्विकल्प, निर्गुण, निष्क्रिय, निरंजन, सम इन श्रुतियों की तथा 'यथा पूर्वमकल्पयत्' 'एकोहं भवस्याम,' 'कस्यनूनं पितृंचमातृंच' इस पुनर्जन्म बोधक श्रुति की तथा ब्रह्मदेश मे अन्य की अप्राप्ति, 'आत्मेव इदं सर्वं नेहनानास्ति किंचन' इस श्रुति की व्यवस्था नही हो सकती. अब रही शैली सो यथा अधिकार कल्प के येनकेन प्रकार से अधिकारी को मुख्य लक्ष्य पर पहुंचाना है, अतः उसके खंडन मंडन मे प्रवृत्ति व्यर्थ है.

उनके निषेध में क्यों आग्रह होता है, और दृष्टा-दृश्याभिन्न, जीव ब्रह्म एक, जगत् मिथ्या-इत्यादि का आग्रह क्यों होता है? इससे जान पडता है कि ब्रह्म चेतन वा प्रत्यगात्मा को अज्ञान-भ्रम नहीं है, उस ज्ञान स्वरूप को अपना अज्ञान वा ज्ञान कहना मानना ही नहीं बनता अर्थात् स्वस्वरूप के ज्ञान हुये माया और उसके प्रवाह रूप कर्म की अत्यंत निवृत्ति मानना कल्पना मात्र है, अथवा यथार्थ जानने के लिये शैली मात्र है; क्योंकि ज्ञान स्वरूप आत्मा-ब्रह्म नित्य शुद्ध स्वरूप है, सब का अधिष्ठान है. उपाधि के तादात्म्य संबंध से उसका उपयोग उपाधि में होता है, (घटाकाशवत्); इसलिये उसको अज्ञानी, माया से मोहित, बद्ध और मुक्त कह डालते हैं, वस्तुतः वोह ऐसा (अज्ञानी-भ्रांत बद्ध) सिद्ध नहीं होता. त. द. अ. ४ में देखो.

(१४) मुनियों ने उसे सम निर्विकल्प देखा है-जाना है (७१।११२।१६). जो यह बात ठीक हो तो (१) उसका ज्ञाता दूसरा ठेरता है याने द्वैत होगा. जो इस ज्ञेयत्व को उपचार मात्र मानें तो नं. १८९ अनुसार व्यर्थ ठेरता है और जो श्रुति सिद्ध ठीक है तो यह दृश्य आत्मा (ब्रह्म-प्रत्यगात्मा) की कल्पित न होगी; क्योंकि वोह निर्विकल्प है; इसलिये इच्छा पूर्वक घटकुम्हारवत् १, वा बालक के लिये डोरी सर्पवत् २, वा अज्ञानवश रज्जु सर्पवत् ३, वा लीला रूप बाजीगरवत् ४, यह दृश्य, उसका कल्पित नहीं मान सकते. और जो यथा पूर्वमकल्पयत, यह श्रुति ठीक हो तो उसका कल्पित असत्य तद्वत् कल्पित का उपादान असत् न होना चाहिये; परंतु ब्रह्मदेश में उसकी प्राप्ति होना असंभव (१९०); इसलिये मिथ्या यह एक परिभाषा हुई. अर्थात् माया अनिर्वचनीय (सद्ब्रह्म से विलक्षण) अनादि अनंत है और उसके सादि सांत परिणाम (नाम रूप) प्रवाह से अनादि अनंत है और वोह पूर्व पूर्व के संस्कार वाली है, चेतन की सत्ता से यथा संस्कार, परिणाम को पाती है, जैसे कि तंत्री (चित्त विशिष्ट संस्कारी मन-माया वा संस्कारी मन-माया विशिष्ट चेतन) द्वारा स्वप्न सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है तद्वत्, ऐसा सिद्ध होता है; इतना माने बिना निर्विकल्प, निर्गुण, निष्क्रिय, निरंजन, सम इन श्रुतियो की तथा 'यथा पूर्वमकल्पयत्' 'एकोऽहं बहुस्याम,' 'कस्यनूनं पितृंचमातृंच' इस पुनर्जन्म बोधक श्रुति की तथा ब्रह्मदेश में अन्य की अप्राप्ति, 'आत्मैव इदं सर्वं नेहनानास्ति किंचन' इस श्रुति की व्यवस्था नही हो सकती. अब रही शैली सो यथा अधिकार कल्प के येनकेन प्रकार से अधिकारी को मुख्य लक्ष्य पर पहुंचाना है, अतः उसके खंडन मंडन में प्रवृत्ति व्यर्थ है.

(१९) वस्तुतः अद्वैत है [और द्वैत कल्पना न २४।।१९।।७। के अनुसार है (आग्रही वास्ते वा शैली मात्र है), तो ऐसा क्यो न माना जाय कि "दृश्य क्षण-भगुर, परिवर्त्तन के पाने वाली और स्वप्न जैसी मिथ्या है" ऐसा उपदेश, मोहित दुःखी जीवो की आसक्ति छुडाने, इस (सूक्ष्म स्थूल प्रपच) से वैराग्य कराने और इस दृश्य मे जो अन्यथा अवभास * अर्थात् अध्यास हो रहा है उसकी निवृत्ति के लिये और निष्काम हुये सुख पावें इस वास्ते है नही कि यहअर्थशून्य हो,'मस्त दशा मे अलकार में अनात कहना यह दूसरी बात है

सृष्टि की उत्पत्ति की कल्पना, एकत्व सिद्धि, द्वैत प्रतीति और वर्णाश्रम के व्यवहार की दृष्टि से है (९४।।१९।।७।), वस्तुत ७२।।८६ अनुसार है, ऐसा मानें तो न. ५३।५७।५८।९५ से विरोध आता है और भी जो यह ब्रह्म की कल्पना तो उपर कहे अनुसार दोष आवेगा और जो द्वैत (उत्पत्त्यादि) व्यासादि जीवो की कल्पना, तो जीवत्व (रज्जु सर्पवत् वा स्वप्न के जीववत्) कल्पित है (न १८।५७।८५।१२।१९५), अर्थात् ऐसे जीवो की कल्पना नही हो सकती, क्योकि स्थाणु का पुरुष नहीं चलता, रज्जु का सर्प नोलिये को देखके नहीं भागता, स्वप्न के आभास रूप जीव जाग्रत म आने को शक्य नहीं और न उनकी कल्पना हो सकती है, तद्वत् यहा है, इसलिये इस हेतु से दृश्य द्वैत का निषेध नही हो सकता, किंतु माया कर के द्वैत है, उसके अतर्गत व्यवस्था है, ऐसा तो कहना ही पडेगा, इसलिये अविद्या, विद्या, प्रमात्व, अप्रमात्व, द्वैत, अद्वैत यह सब स्वप्न सृष्टिवत् साधिष्ठान माया के ही परिणाम मानने पड़ेंगे

(१६) उपरोक्त न ९९।।२७।१३२।१४९।।८६ मे अनुत्पत्ति और न १४१ से हेतु फल का अभाव और न १४८ मे कारण कार्य का अभाव मानें तो श्रुति (आत्मा ने इच्छा की, आत्मा से आकाशादि हुये. अजामेकाम्, उणनाभि, इन श्रुति) से विरोध आता है; क्योकि इनमे तो निमित्त उपादान माना है तथा मन क स्फुरण से सृष्टि (१८८।१९९) और न स्फुरे तो सृष्टि नहीं, तथा मन के सृष्टि का आरभ है (१३।६०।।८५।।१०), तो फेर कारण कार्य भाव तथा हेतु फल न मानना कथन मात्र है, क्योकि मन वा माया के परिणाम का आरभ अत है जो ऐसा नही तो सृष्टि का दर्शन नैसर्गिक स्वभावतः है, याने नभकी नीलतावत् अनादि नैसर्गिक अवभास है, यह तुम्हारे पक्ष का निष्कष निकलता है

* चेतनात्मा म अविद्यारूप वृत्ति द्वारा अ यथा ग्रहण

(१७) जो मन का उक्त स्फुरण–परिणाम अर्थशून्य है, तो मन–चित्त भी अर्थ-शून्य ठेरा. जेसे कि बरफ शून्य तो जल भी शून्य, कुंडल शून्य तो कनक भी शून्य रहना होगा शून्य का परिणाम ही क्या? जब यू है तो मन का चलन (१८८) क्या? व्यवहार के योग्य (९४ में) क्यो माना? इसलिये स्वप्न सृष्टि और वैराट सृष्टि (१९०) को अर्थशून्य नहीं माना जा सकता, क्योकि यदि मन कुछ है तो उसका स्फुरण–परिणाम भी मन जैसा कुछ मानना ही पडेगा

(१८) "जीव, ज्ञान स्मृति वाला (श्रुति मे कहा ऐसा) ‡ कल्पता है" तो यह बात ठीक है तो ज्ञान और स्मृति की सिद्धि ज्ञेय के विना नही हो सकती, इसलिये जीव और आकाशादि ज्ञेय अर्थशून्य (असत्) नही ठेरे कुछ किसी प्रकार के है

(१९) द्रष्टा दृश्य अभिन्न होते है (१११।१०२) ऐसा मानना ही उनकी भिन्नता सिद्ध करता है, क्योकि यह कल्पना भी किसी की विषय होने योग्य है जो बौद्धमत के अनुसार "कल्पना काल मे कल्पना विषय नहा होती, क्योकि उस समय उसका ग्राहक नहा है, किंतु ग्राहक परिणाम उत्तर क्षण मे होता है," ऐसा मानें तो स्वपक्ष त्याग होगा और कल्पना की सिद्धि ही न होगी तथा उसकी स्मृति भी न होगी और स्वस्वरूप का अज्ञान है. यह भी सिद्ध न होगा, क्योकि अज्ञान तो ज्ञेय वोह ज्ञाता का स्वरूप होने से ज्ञाता ही अज्ञान स्वरूप ठेरेगा स्वप्न मे जो दृश्य है वे मन के परिणाम–स्फुरण मानना हो तो भले मानो, परतु द्रष्टा के विषय होने से वे उससे भिन्न ही मानने होगे; क्योकि द्रष्टा सम है और वे नाना परिवर्तन पाने वाले है, जो वे भिन्न न होते तो स्वप्न मेरा परिणाम था–मैंने परिणाम रखा था, वा मैंने कल्पा था, ऐसा अनुभव होता और जागने पाछे ऐसी ही स्मृति होती, परतु ऐसा नहीं होता; अतः स्वप्न का दृश्य चेतन से भिन्न है ऐसा सिद्ध होता है जो ऐसा मानें कि स्वप्न दृश्य चेतन आत्मा का अनिच्छित परिणाम वा कल्पना है और वे अज्ञान–माया की उपाधि मे होते है, अतः चेतन से अभिन्न है, यह भी असमीचीन है, क्योकि जो उसका परिणाम मानें तो वोह सावयव नहीं है, अत उसका परिणाम नहीं, जो उसके अनिच्छित (रज्जु सर्पवत्) कल्पित और स्वस्वरूप के विवर्त मान के रज्जु सर्पवत् अभिन्न मानें तो निवृत्ति काल मे ऐसा ही बाध होना

‡ यदि श्रुति कल्पना का वाद है? श्रुति पहिले कल्पा तो उसमें वर्तमान ज्ञान में ग्रह्य भी नहीं साहित न रहा अर्थात् जीव पदार्थ कल्पना ता पहिले नाम रूप ना भाष्य ठीक न रहा

चाहिये, जाग्रत की शय्या मलिन न होनी चाहिये. परंतु ऐसा नहीं होता; किंतु मुझ को ऐसा ऐसा भासा था, इस रूप मे बाध होता है; अतः अनिच्छित मानें तो भी द्रष्टा का कल्पित और द्रष्टा का रूप सिद्ध नही होता (अ. ३ सू. ३२४ से ३६० मे इसका विस्तार है). और जो भ्रांत आत्मा का कल्पित मानें तो अ. ३ सू. ४०१ में जो दोष लिखे हैं वे दोष आयेंगे; अतः उनसे द्रष्टा भिन्न और द्रश्यो को माया का परिणाम कहना होगा. जाग्रत मे भी जब चित्त का निरोध वा गति आत्मक परिणाम विषय होता है वहां भी साक्षी उसमे भिन्न अनुभव का विषय होता है, इसलिये उभय भिन्न हैं. यदि अद्वैत के मोहवश अभिन्न मानोगे तो चेतनात्मा को सावयव कहना पडेगा अथवा द्रश्यों को माया का परिणाम मानना होगा. और जो कल्पना मात्र-शब्द मात्र कहोगे तो भी इन दोनों मे से एक बात माननी होगी; क्योकि ब्रह्म सम और निर्विकल्प है. द्रश्य में (मन-माया वगेरे मे) गति और द्रष्टा चेतन अक्रिय सम, ऐसा मानें तो द्रष्टा द्रश्य भिन्न हैं यह स्पष्ट हुवा. और यदि गति-स्फुरण नही है तो तद्वान (गति-परिणाम वाला) भी नहो हैं, अतः भेदाभेद वा द्रष्टाद्रश्य का अभेद वा भेद भी नही कह सकोगे अर्थात् द्रष्टाद्रश्य अभिन्न यह कहना निरर्थक ठेरा. द्रष्टा यह द्रष्टा अभिन्न रूप द्रश्य का द्रष्टा (ज्ञाता) है १. वा द्रष्टा रहित द्रश्य का २. तद्वत द्रश्याभिन्न द्रष्टा यह द्रश्य है ३. किंवा द्रश्य मे रहित द्रष्टा द्रश्य है? ४. प्रथम पक्ष में द्रष्टा का लोप होगा अथवा अन्योऽन्याश्रय, चक्रिका अनवस्था और आत्माश्रय दोष आवेगा. उत्तर पक्ष में स्वपक्ष त्याग होगा. द्रष्टा द्रश्य भिन्न सिद्ध होगा. इसी प्रकार नं. ३ के वास्ते नं. १ समान और नं. ४ पक्ष के संबंध में नं. २ के समान योज लेना चाहिये. फलितार्थ-जो हो तो द्रष्टा मे द्रश्य और द्रश्य से द्रष्टा भिन्न (विलक्षण) ही होता है. अद्वैत के मोहवश दो नहीं मानते.

तथाहि स्वप्न सृष्टि और जाग्रत सृष्टि मे चित्त के अंदर की कल्पना और बाह्य पदार्थ का भेद विषय होता है, जो अभिन्न होते तो ऐसे विषय न होता. जो बाह्यांतर के स्पष्ट भेद को कल्पित (मन का स्फुरण) मानें तो मन और भेद रूप उसका स्फुरण (परिणाम) साक्षी मे ग्रहण होने से द्रष्टा द्रश्य भिन्न ठेरे. स्वप्न सृष्टि को जो मन का परिणाम (स्फुरण) मानो तो (जल बरफ, कनक कुंडल वत्) उभय को अभिन्न स्वरूप कह सकते हो, परंतु मन (चित्त-माया) को भी कल्पित और चेतन से अभिन्न स्वरूप कहोगे तो चेतन भी मनवत् परिणामी, स्फुरण वाला, और सक्रिय मानना होगा, उसमे इच्छा, प्रयत्न भी मानने पडेंगे क्योकि इच्छा के और प्रयत्न के

विना स्फुरणा वा कल्पना नहीं हो सकती, तथा सस्कारों की भी अपेक्षा होगी; परंतु उसको तो अक्रिय, निरवयव, अपरिणामी कूटस्था, इच्छा रहित और सम मानते हो, अतः विधर्मी मन से वोह भिन्न है यह सिद्ध हुवा. (शं.) जो सम ब्रह्म में इच्छा प्रयत्नादि गुण नहीं मानोगे तो उसका उपयोग ही नहीं होगा, अर्थात् जैसे घटादि बनने में गधा वगेरे अन्यथा सिद्ध है वेसा होगा, अतः उसमे इच्छादि गुण मानने मे कोई हानी नहीं जान पडती. (उ.) कुम्हार का शरीर भी तो गधे के समान अन्यथा सिद्ध है; क्योकि यथार्थ निमित्त-कर्ता तो कुम्हार का जीव है, उस जीव मे जो इच्छादि न हो तो घटादि बने नही और अज्ञानादि भी न हो तथा रज्जु मे सर्प की कल्पना भी न हो; परंतु तहां स्वप्न का जेसा तंत्री है अर्थात् चेतन विशिष्ट सस्कारी अतःकरण किंवा अतःकरण विशिष्ट चेतन याने जीव वृत्ति है, इनमें इच्छादि धर्म, जीव वृत्ति के है और अधिष्ठानपना, सत्ता, प्रकाश, विषय उजाले में आ जाना (वा होना), साक्षी होना, स्वतोग्रह होना, यह सम चेतन के धर्म है इस रीति से उभय का उपयोग और व्यवहार होता है. अब जो सम चेतन मे ही भाव परिणाम याने इच्छा, प्रयत्न, स्फुरण, कल्पना, सस्कार, क्रिया मान लेवें तो सम, सम न रहेगा किंतु परिच्छिन्न होने से परका आधेय, और इच्छादि होने से परिणामी-सावयव अर्थात मध्यम नाशवान स्वीकारना होगा, परतु वोह ऐसा नहीं है, किंतु सम है; इसलिये इच्छादि गुण वा धर्म वा परिणाम वा अवस्था वाला जो मन (वा माया) सो ब्रह्म का स्वरूप नही है अर्थात् द्रष्टा दृश्य अभिन्न नहीं है, यह सिद्ध होता है.

द्रष्टा दृश्य भिन्न और अभिन्न इस विवाद मे माया जेसा गुह्य रहस्य है. जब विषय (घटादि, शब्दादि, दु.ख सुखावस्था, वृत्ति, अतःकरण) और विषयी (जीव वृत्ति) का अनिर्वचनीय तादात्म्य (अभेद) सबंध होता है, तब (उस क्षण में) अपरोक्षत्व (त. द. पेज ९७४।९८२ तक देखो) यह स्थिति होती है. इस समय मे, त, यह, वोह, विषय विषयी का सबंध, भेद वा अभेद इत्यादि कोई प्रकार का भी भाव नहीं होता, किंतु मानो विषय विषयी के भाव वा दोनो एक ही रूप हो वा नही, ऐसा अनिर्वचनीय भाव होता है. उसके पीछे ऐसे सस्कार वाली उक्त वृत्ति स्फुरती है और दोनो का भेद उसमे प्रयोज्य होता है और इसी प्रकार अहंत्वादि तथा इदंत्वादि का अपरोक्षत्व हुये भेद प्रयोज्य होता है, ऐसा अकथ्य प्रकार है-अनुभवगम्य है-स्वतोग्रह है-मन वाणी का विषय नहीं है; परतु द्वैतवादि तो द्वैत पक्ष के आधीन हुये उनके अभेद का खंडन करते है और अद्वैतवादि अद्वैत के मोहवश

उनके भेद का खंडन करके अभेद का मडन करने लग जाते हैं. हमारी समझ अनुसार दोनो का वृत्ति व्यवहार ठीक नहीं मान पडता; क्योंकि माया यह ब्रह्म जैसी सत नहीं मानते किंतु उससे विलक्षण मानके उसे विषय-ज्ञेय कहा जाता है तो फेर इस विधर्मी करके न तो अद्वैत का निषेध होता है और न तो उभय अभिन्न मान सकते हैं अतः विवाद व्यर्थ है.

जिस प्रकार दृष्टा दृश्य की चर्चा रही इसी प्रकार बाह्य और अंतर का प्रकार है. जैसे कि स्वप्नसृष्टिवाले शरीर की दृष्टि में वहां बाह्यांतर का स्पष्ट भेद है और जाग्रत दृष्टि में न अभेद है न भेद है. एवं यहां मान सकते हैं. वस्तुतः कल्पित कहो-अकल्पित कहो-कल्पितवत् कहो वा अकल्पितवत् कहो-कुछ भी कहो, परंतु जब कल्पना कल्पना मानी वा माया मानी के तुर्त बाह्यांतर का भेद और ज्ञाता ज्ञेय-दृष्टा दृश्य का भेद सिद्ध हो जायगा-मानना पडेगा. परंतु सो अनिर्वचनीय विलक्षण; क्योंकि माया उपाधि विलक्षण है. अ. ३ अवाच्य प्रसग में इसकी चर्चा कर आये हैं

(२०) ब्रह्मदेश (ब्रह्म का स्वरूपाधिकरण) में अन्य का अभाव है और दृश्य भाव दीख पडता है; अतः सो मिथ्या (१६०) है यह ठीक ही जान पडता है; परंतु मिथ्या पद के अर्थ में भेद होना चाहिये याने अधिष्ठान सद्ब्रह्म से विलक्षण सत्तावाला अन्यथा सदसद् से विलक्षण अनिर्वचनीय स्वरूप, सो परिभाषा में मिथ्या कहा जाता है; नभ नीलता वा स्वप्न सृष्टिवत्. (नहीं कि बन्ध्या पुत्रवत् असत्)

(२१) ब्रह्म माया से मोहित होता है, ऐसा श्रुति नहीं कहती, यदि कहीं स्मृति पुराणादिको में कहा हो तो वे श्रुति के सामने प्रमाण नहीं माने जाते. इसलिये वोह मोहित हुवा, यह कैसे जाना, इसका सबूत नहीं मिलता अर्थात् ब्रह्म चेतन को मोहित, अज्ञानी वा भ्रांत मानना न सिद्ध होता है और उचित भी नहीं है. ऐसी थीयरी मानने में बहुत अनिवार्य दोष आते हैं (*अ. ३।४०१ सूत्र की* टीका देखो).

श्रुति (चार वेद) जो रज्जु सर्पवत् याने अज्ञानवश-मायावश कल्पी गई हो तो भ्रम के विषय होने से *प्रमाण न मानी जायगी; तत्त्वमस्यादि का त्याग होगा.* जो सब त्रिपुटी स्वप्नवत् है वैसा ही वेद है, ऐसा मानें तो स्वप्न अनिच्छित माया वा मन का परिणाम है वैसा ही वेद स्वीकारना होगा, सर्वज्ञ कृत न होने से मान्य न रहा; किंतु जैसे स्वप्न में अन्य मंतव्य-बोध भी जान पडते हैं वैसा मान लेना होगा, सो आपको इष्ट नहीं है

जो श्रुति इच्छा पूर्वक किसी सर्वज्ञ की कल्पित है, ऐसा मानें तो वोह भ्रांत नहीं होगी, उसका लेख उस लेखके विषय (जीव जगत, बंध मोक्ष, मोक्ष के साधन, ईश्वर, सृष्टि उत्पत्ति लय वगैरे) सत्य ठेरेंगे. अब जो यूं हो तो "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" ऐसा सिद्धांत न बनेगा, क्योंकि श्रुति इस वाक्य को सहारती हो, ऐसा नहीं जान पडता. अर्थात् वोह भूत उपादान को और जीव को मिथ्या नहीं कहती. इसी वास्ते ऋगादि चारों वेदों को स्वतः प्रमाण मानने वाले इस सिद्धांत को नहीं मानते. जो कहो कि श्रुति (यहां अन्य कुछ भी नहीं इत्यादि श्रुति) की अर्थापत्ति से ब्रह्म से इतर को मिथ्या कहते हैं, तो वक्ता श्रुति या तो स्वप्नवत् मिथ्या ठेरेगी; क्योंकि ब्रह्म से इतर द्रष्टा, ज्ञाता, मंता अन्य नहीं है, और जो अन्य श्रोता मानो तो द्वैतापत्ति होगी, या तो अर्थापत्ति व्यर्थ रहेगी. इस प्रकार वेद को रज्जु सर्पवत् कल्पित या सर्वज्ञ द्वारा सेच्छा कल्पित मानते हुये भी आपके सिद्धांत को नहीं टिका सकते. *

(७२) (क) अथवा तो अकस्माद्वैत (उपर कह आये हैं) मानने से श्रुति की और आपके सिद्धांत की व्यवस्था मान लेना होगा.

(ख) अथवा तो उक्त अनिर्वचनीय सत्कार्य माया यथा संस्कार सृष्टि रूप परिणाम को (स्वप्नवत्) धारती है; पुनः अव्यक्त (सुषुप्तिवत्) होती है, पुनः व्यक्त होती है. एवं अधिष्ठान की आधेय हुई उसकी सत्ता पाती हुई सृष्टि (जीव, ईश्वर, विश्व-त्रिपुटी मात्र) की उत्पत्ति, स्थिति, लय रूप होने का स्वभावतः अनादि अनंत प्रवाह है (स्वप्न जाग्रत सुषुप्तिवत्). तहां अधिष्ठान चेतन अचल, अक्रिय, अपरिणामी, निर्विकल्प, कूटस्थ, निर्विकारी और सम है. उसकी सत्ता और ज्ञान प्रकाश का उपयोग उस सृष्टि में होता है जैसे कि स्वप्न में होता है वैसे; इतना मान लेना बस है. इससे भी सब व्यवस्था हो जाती है; परंतु द्वैत, अद्वैत का मोह, वादविवाद में रागके कांटे वास्ते से अन्य तरफ ले जाता है!

(ग) अथवा तो जैसे तैसे प्रकार (विधि-भावना) से जिस का विस्तृत परिणाम होके ज्ञान अनुभव हो जाना उद्देश है. वहां जैसा होगा सो आप ही जान लेना

* [illegible]

(अ. ४ गत स्वतंत्र शोधक प्रकरण देखो), ऐसा मानना ठीक है. इस प्रसग में गोडपाद श्री का लिखा हुवा (११५।११९) साधन अत्युत्तम है.

उत्तर पक्ष.

गोडपादाचार्य श्री का कथन वा थीयरी मांडुक्य की श्रुति अनुकूल आत्म अनुभव और शांति होने वास्ते है, नही कि दर्शन रूप. इसलिये सारग्राही भाव तथा सिद्धांत पर दृष्टि डाले तो उपरोक्त अपवाद (पूर्व पक्ष) निकम्मा जेसा है; बकवाद मात्र जान पडेगा. अद्वैत ब्रह्म सत्य और दृश्य जगत स्वप्न सृष्टिवत् कल्पितवत माया मात्र है. तदंतर्गत अनेक अध्यारोप अपवाद हैं (जेसा कि उन्होंने कहा है) सारांश माया-मात्र द्वैत है, परमार्थतः अद्वैत है, इतना ही सिद्ध होगा.

पूर्व पक्षी तू जाग जाग— उठ उठ!

अब जागा तो जेसे वोह (स्वप्न सृष्टि और तदगत उक्त अध्यारोप) अपवाद (पूर्व पक्ष उत्तर पक्ष) नही है. ऐसे यह भी नहीं है, और जेसे वोह नहीं वेसे यह भी नही थी और न होगी वर्तमान में इतना कहना सुनना होता है कि तू ज्ञान रूपी जाग्रत मे आ. अपने स्वरूप में स्थित हो. तो तू गोडपाद श्री के शब्दार्थ का लक्ष्यार्थ—भावार्थ—सार—समझ जायगा न शंका रहेगी न समाधान रहेगा. शांत हो जायगा. साक्ष्य साक्षी दृष्टा दृश्य भाव भी न रहेगा.

विभूषक.

शोधक ने उपर जितनी उहापोह की है वोह गोडपाद श्री के सिद्धात के लक्ष्य के निषेध में नहीं है, किंतु उस समय के सस्कार वा तद् योग्य जो व्यावहारिक थीयरी (पद्धति) है उसके संबंध में वर्तमान व्यवहार वा तद् योग्य वश की है, ऐसा जानना चाहिये; क्योकि ब्रह्मदेश मे अन्य (इच्छादि का भी) वे अप्रवेश मानते हैं, जो के सबको अनुभव में आने योग्य है. ब्रह्म के किसी देश में भी सृष्टि सिद्ध नही होती. जीव स्वप्न सृष्टि वत् मायामात्र है जब यूं है तो थीयरी मात्र की ही धमा धमी रही, सिद्धांत मे बाध न आया. इसी वास्ते नं. २२ क. ख. ग. को जनाया है.

माया अनादि है तो अनंत ही कहना चाहिये, सांत कहना थीयरी मात्र है. याने अद्वैत की महिमा और जिज्ञासु की प्रवृत्ति कराने की दृष्टि से है.

गोडपाद आचार्यश्री ब्रह्म चेतन को इच्छा रहित (१६) और निर्विकल्प (७३।।१२।।१६ देखो) मानते हैं, सृष्टि को ब्रह्मदेव का स्वभाव बताते हैं (१६),

अनिर्वचनीय मायाशक्ति को अनादि अनदल (२३।१ १६।१ ३७) मानते हैं, मन की स्फुरण को ही जगत बताते हैं (१८८।८५।११०।१६९). जगत को स्वप्न सृष्टि समान कल्पित सूचते हैं तथा पुनः ब्रह्म से इतर–अन्य को परमार्थतः अजात कहते हैं इतने कथन से मेरी समझ मे उनका जो सिद्धात जाना गया उसका सार यह है. "ब्रह्म सत्य जग विलक्षण (सत् असत् से विलक्षण) चेतन एक न दूसरा", अर्थात् दृश्य जगत का ब्रह्म मे माया कर के बाधरूप अवभास है, याने माया मात्र द्वैत है कारण कि अप्रवेश, कल्पना–स्फुरण और अनादि अबदल तथा (व्यवहार में नही किंतु) परमार्थतः अजात, इन भावना वा अस्तित्व का निर्वाह तब ही हो सकता है कि "ब्रह्म चेतन मे माया कर के नैसर्गिक अनादि अनत बाधरूप अवभास है" ऐसा माने *.

हमारी समझ मे तो ऐसा आता है कि यदि विवेक वैराग्यादि साधन सपन्न अधिकारी, शैली के खंडन मडन को एक तरफ कर के गोडपाद श्री के उपदेश अनुसार साधन कर के उनके विवेक की ख्याति करे तो शैली और उसका विवाद छूट के इष्ट लक्ष्य का सपादन कर लेगा. और उस लक्ष्य सिद्धात से साधक को ससार मे अनासक्ति और पर वैराग्य (त द प ४।२९६) होके पूर्ण निरंकुश शाति हो जायगी इसलिये इनका लेख अमुक व्यक्ति (निवृत्ति मार्ग वाला, प्रवृत्ति के योग्य नही याने आरण्यक) के लिये उपयोगी है. और प्रशसनीय है; कारण कि उनके लेख का सूक्ष्म भावार्थ और उसका फल यदि ध्यान मे लें तो अधिकारी को आत्मबोध हो जाय और फेर वोह निर्भ्रांत जीवनमुक्त, निष्काम हुवा लोकसेवा में प्रवृत्त हो जाता है; ऐसा परिणाम आता है. सो उत्तम ही है. पूर्व पक्षी ने जो उपर अपनी बुद्धि का विलास दिखाया है सो यद्यपि निर्णय प्रसग मे उपयोगी है, तथापि जहा लक्ष्य लेने वास्ते–लक्ष्य पर पहोचने वास्ते जो अध्यारोप कर के अपवाद किया जाता है, वहा उसका उपयोग नही होता; अर्थात् जिस तिस शैली–पायरी से इष्ट लक्ष्य पर पहोचने का उद्देश है, अतः वोह अपवाद उपेक्षणीय है.

---

* कोई प्रतिपक्षी कहते हैं कि शकराचार्य ने मायावाद बौद्धों से सीखा इसलिये शकर प्रच्छन्न बौद्ध है. परंतु यह बात गलत है शकर ने अद्वैतवाद अपने गुरु श्री से और उन गुरु श्री ने अपने गुरु गौडपादाचार्य से लिया है, यह बात गौडपादकृत कारिका से स्पष्ट हो जाती है हां इनकी शैली मे शकराचार्य श्री ने सुधारना की हो, ऐसा मान सकते (आगे बांचोगे).

(ख) श्री शंकराचार्य.

* कोचीन–शोरानपुर रेल्वे में अलनोई नाम का एक स्टेशन है, इससे ६ माइल दूर कलादि नाम का छोटासा गाम है इस गाम में शंकर स्वामी का जन्म हुवा था. केरल ब्राह्मण विद्याधिराज का पुत्र शिवगुरु अग्निहोत्री था उसकी पत्नि को पुत्र जन्मा उसका नामकरण संस्कार हुवा तो उसका नाम शंकर रखा, यह बात विक्रमसंवत के २२३ वर्ष पूर्व की है. ‡ पांचमें जनेऊ लेके गुरुकुल में गये. § ७ वर्षकी उम्र में सब शास्त्र सब विद्या सीख ली. पंडित बन गये † पीछे १६ वर्ष की उम्र तक माता की सेवा की. दूसरे कहते हैं कि युवा अवस्था आने तक विद्या अभ्यास किया था. १६ वर्ष की उम्र मे उसकी विद्या की बुद्धि की ख्याति पसरी. शंकर को सम्स्कृत, प्राकृत और मागधी भाषा का अच्छा ज्ञान था. संसार से वैराग्य था. माता तेरा दाहकर्म में करूंगा ऐसी प्रतिज्ञा कर जैसे तैसे माता की रजा लेके गुरु की शोध की. नर्मदा किनारे शार्दा पीठ का अधिष्ठाता गोविंदनाथ साधु था यह सुप्रसिद्ध गोडपादाचार्य का शिष्य था उसके चेले हुये– विधिपूर्वक सन्यास लिया. उनसे अद्वैत सिद्धांत सीखा ब्रह्मविद्या मे पारागत हुये. गोविंदनाथजी ने वेदांत प्रचार और पाखंड मत खंडन वास्ते काशी जाने को कहा. व्यास सूत्र पर भाष्य रचने की सूचना की. शंकरश्री ने वेसा ही किया. पद्मपाद और दूसरे चेले किये.

शंकर चेलो के साथ स्नान को जाते थे, सामने से ४ कुत्तो सहित एक चांडाल आ रहा था शंकर ने कहा हठ जा. उसको अद्वैतवादि–(मायावादि जगत् मिथ्यावादि) शंकर पर आश्चर्य आया. ब्रह्मवाद (आत्मविद्या) बोला. शंकर ने कहा कि तेरे आत्म ज्ञान के उपदेश से 'यह चांडाल है' ऐसी भेद बुद्धि को मैं छोडता हूं, जिसको जगत् आत्मारूप भासता है वोह ब्राह्मण हो वा चांडाल हो परंतु वोह

* शंकर श्री का कुछ चरित्र में लिखने में उद्देश है आगे जानोगे.

‡ पहिला मुख्य शंकराचार्य वि पू २२३ में दूसरा प्रसिद्ध शंकराचार्य वि स २२ में (इनके लेख में भोज की चर्चा नहीं इनके समय बौद्ध जैन मत का बल नहीं था। तीसरा शंकराचार्य वि ४२७ (राजा भोज वि. ४५१ में), चौथा श वि २०२, पांचवा वि ६४७ और छट्टा वि. ८४२ में हुवा है. पहिले शंकर के समय बौद्ध, जैनमत का बल या विछेद में नहीं पहिला शंकर सुधन्वा राजा के समय हुवा है जो विक्रम के पहिले हुवा है और उपदेश शिक्षार्थ शृंगेरी वगेरे ४ मठ शंकर के शिष्यो ने बनाये हैं कु आ मु. में से).

§ शंकरदिग्विजय में भारत के संतपुरुष इस चोपडी में ६ वर्ष लिखे हैं.

† विद्वान मंडल ७ वर्ष में ऐसा होना नहीं मानते. परंतु ऐसा होने की संभावना है

नमस्कार करने योग्य है. जो सत्ता विष्णु वगेरे मे लेके पतंग तक में स्फुरती है सो चेतन सत्ता मैं हूं, दृश्य है ही नहीं, ऐसी बुद्धि वाला भले चांडाल होय वोह मेरा गुरु है. विषय ज्ञान है सो सर्वमिथ्या भूत सर्व उपाधियों का बाध करके जो शेष रहा हुवा ज्ञान सो 'ज्ञानमात्र मैं हूं' मेरे से जुदा कुछ नहीं है, ऐसी जिसकी बुद्धि हो वोह कोई भी हो तथापि वोह मेरा गुरु है. इस पर से मैंने 'तू हट' ऐसा तेरी देह को नहीं कहा, तथा आत्मा को नहीं कहा, परंतु शरीर और आत्मा इन दोनों के अध्यास दूर करने को कहा है. यह अध्यास जो तेरे मे न हो तो तू मेरा गुरु है (भारतना सत पुरुषो. पेज ६७ श. दि. मे भी है) १. *

शंकराचार्य करणाटक देश मे गये. वहां उस समय कापालिकों का बल था. कापालिकों का गुरु क्रकच नाम का एक जोगटो था. शंकर के साथ बकवाद करने लगा. सुधन्वा राजा ने उसको निकलवा दिया. पीछे वोह अपने चेलों को शंकर को मार डालने वास्ते ले आया. सुधन्वा राजा ने सिपाहियों को उसको मारने की रजा दी. शस्त्र की झपाझपी चली. राजा तो क्रकच के मनुष्यो के साथ लडाई में रुका गया. क्रकच ने स्वयं शंकर पर हमला किया. इस समय शंकराचार्य ने द्रोणाचार्य का जैसा उग्रस्वरूप धारण करके लगभग आये हुये तमाम कापालिकों को घायल किया और क्रकच मारा गया. उस पीछे भैरवमत के विरुद्ध शिष्य उपदेश करने लगे. (भा. सं. पु. पेज ७६ में से) २. *

मंडनमिश्र की स्त्री के साथ शास्त्रार्थ करने पहिले कामशास्त्र के अनुभवार्थ अपना शरीर छोडके राजाके मृत शरीर में प्रवेश करके राणी द्वारा कामशास्त्र का अनुभव किया ३. *

वेदांत सूत्र का भाष्य बदरकाश्रम में बनाया—पीछे भगवतगीता और उपनिषदों का भाष्य किया. सनत्सुजात भाष्य, उपदेश सहस्त्री, हरिमीडे वगेरे पुस्तक रचे. यह सब वैराग्य और ब्रह्मविद्या से भरपूर हैं. विवेक-चूडामणि भी इन्होंने बनाया है.

---

* इन तीनों बातों से शंकर के सिद्धांत का रहस्य ज्ञात हो जाता है पाठक शोधक? विचारो! शंकर जो ब्राह्मण, बालब्रति, विद्वान, आचार्य, संन्यासी, उपदेशक, ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या और अद्वैत इदं सर्व माननेवाला था तो फेर वैसे तीनों कृत उससे कैसे बन सकते हैं यानें चांडाल भाव क्यों आया? कपाली पर दुष्ट भाव क्यों हुवा? कपालियों को शस्त्र चला के क्यों घायल किया क्यों मारा! कामशास्त्र सीखने अर्थ संन्यास विरुद्ध क्यों किया? सब जगत् रज्जु सर्पवत् कल्पना मात्र-अर्थात् तो फेर उपदेशक कौन? उपदेश किसको? बध कौन? मुक्त कौन?

पीछे पर मतवालों से शास्त्रार्थ कर के जय पाने लगे. जैसे कि पाशुपत, बौद्ध, जैन, वाम, शाक्त, भैरव, शैव, माहेश्वर, वैष्णव.

वेद भक्त, वेद प्रचारक कुमारिल भट्ट से मिलने वास्ते दक्षिण में गये, वोह उस समय अपने के चित्ता में जला रहा था. उसने अपने शिष्य मंडनमिश्र के मिला के वेद धर्म प्रचारार्थ सूचना की. शंकर वहां से चला और माहिष्मति नगरी में गये (यह नगरी नर्मदा के किनारे है) वहां मंडनमिश्र (कर्मवादि) के शास्त्रार्थ से जय किया. फेर मंडन की स्त्री के साथ शास्त्रार्थ हुवा वोह हारी. मंडनमिश्र शंकर का शिष्य हुवा जिसका नाम सुरेश्वराचार्य हुवा. पीछे हस्तामलक शिष्य हुवा. पीछे तोटकाचार्य शिष्य हुये. सुरेश्वराचार्य कृत नैष्कर्म्य सिद्धि है, उसमें आत्मा के निष्कर्म सिद्ध किया है शंकराचार्य उसके वांच के बहुत खुश हुये.

माता के बीमार होने के समाचार मिलने पर शंकर श्री माता पास आये अपने हाथ से दाह दिया जातिवाले दाहकर्म में शामिल न हुये. शंकर ने लोकविरुद्ध नाकरणीयं नाचरणीयम् की परवाह नहीं की थी.

वहां से चल के अपने रिसाले के साथ ले के स्वमत प्रचारार्थ घूमने लगे. करणाटक देश में आये तो उपर कहे अनुसार कापालियों के साथ युद्ध कर के उनके घायल किया, मारा.

शंकर श्री दुःख सुख उठाते आर्यावर्त्त के तमाम प्रदेशों मे (कामच्छा, बंगाल. नैपाल, बद्री–हिमालय, दक्षिण, काठियावाड, राजपूताना वगेरे) फिरे. वेद विरोधी पाखंड मतों के शास्त्रार्थ कर के पराजय किया. बंगाल में भगंदर रोग हो के बीमार रहने लगा. काश्मीर में शारदा निवास का निवास था वहां गये. बौद्ध, जन संबंधी सवालों का उत्तर दिया, उससे यह अद्भूत स्थान शंकर श्री के मिल गया वहां एक मठ स्थापन किया. शिष्यों के उपदेशार्थ छोड के आप बद्रिकाश्रम की तरफ

इन बातों का उत्तर ही नहीं बनता. या तो शंकर का मतव्य कथन मात्र था तो उसका रहस्य कुछ और होगा, जैसा वर्तमान में समझते मानते वा कहते है वैसा नहीं है. उसके शंकर भाष्य की भूमिका में खुलासा है. "अयमानादिरनंतोनैसर्गिकोऽध्यासः" माया उपाधि कर के अविद्या कृत अध्यास है. मन के रहने तक यह स्वप्न जैसी सृष्टि है तो भी इसका बाध नहीं होता. इस सिद्धांत के अंतर शंकर के कृत्य हैं, यही जवाब बनता है, सो अध्यास प्रावाहिक अनादि अनंत है इस रीति से बंध, मोक्ष, विधि निषेध वगेरे व्यवहार बन जाता है त. द. अ. ३ सु. ४०१ का विवेचन बांचो और त द पेज ११६३ से १०६ तक में शंकराचार्य का आशय पढो. शंकर जैसे पुरुषार्थी बनो.

चले गये. वहां से केदारनाथ गये. बत्तीस वर्ष की उम्र में (वि. पू. २९० में) देह को छोड दिया. थोडी उम्र में बहुत और भारी काम किये.

शंकराचार्य श्री तमाम आर्यावर्त्त में विजयी कहलाये. अभी (वि. १९७० तक) उनके नामके विशेष अनुयायी हैं साक्षर मंडल में उनको ही मान मिलता है. संत मत में उनके "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" इस मंतव्य की छाया है.

इनका कोई दर्शन रूप ग्रंथ नहीं है, किंतु उपरोक्त भाष्यादि मे उनका मंतव्य स्पष्ट हो जाता है. आप श्रुति के सामने प्रत्यक्षादि प्रमाण को गौण मानते हैं. जो श्रुति को बीच में न लें तो उनके मंतव्य की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती. * यह उपनिषदों को भी वेद याने ईश्वर कृत मानते हैं. लोक में इनको महादेव का अवतार मानते हैं.

इनकी प्रसिद्ध नामांकित योग्यता, विद्या, बुद्धि, फिलोसोफी, कीर्ति और वेद भक्ति की प्रशंसा करना सूर्य को दीपक से बताने समान है. §

श्री शंकराचार्य का मंतव्य-थीयरी.

(श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामीजी श्री शान्त्यानन्द सरस्वती † (शंकराचार्य शारदा पीठ द्वारका) कृत वैदिक सिद्धांत मंजरी (स. १९१७) में से.

आर्यावर्त्त मे ऋगादि चार वेद सब विद्या का भंडार है, सो अनादि हैं. मंत्र और ब्राह्मण उसके भाग हैं, शिक्षादि उसके ६ अंग हैं, आयुर्वेदादि चार उपवेद हैं. श्रौत सूत्र और गृह्य सूत्र वेदों में से हैं. न्यायादि ६ दर्शन वेदों के उपांग हैं जिनके भाष्यकार जुदा जुदा हुये हैं (वै. सि. मं. ३२ तक का सार).

वेदांतदर्शन के चार प्रकार के अर्थ माने जाते हैं (जिनमें अद्वैत द्वैत का समावेश हो जाता है) अर्थात् केवलाद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैताद्वैत ऐसे अद्वैत चार प्रकार का है. तहां शंकराचार्य श्री ने केवलाद्वैत पर उत्तर मीमांसा (ब्रह्म सूत्र) का व्याख्यान किया है. ३२.

---

* महासिद्धांत गत उत्तर फिलोसोफी में श्रुति को बीच में न लेके इनके मत की उत्पत्ति बताई है

§ रामानुज जी की संप्रदाय चलने पीछे और वल्लभ जी की संप्रदाय के उदय होने पीछे शंकर मत का पूर्व जैसा प्रवाह नहीं चला तथापि इन दोनों संप्रदाय में उनके मत का विशेष प्रचार है.

† सुप्रसिद्ध विद्वान विद्यमान हैं.

तिसमें आत्मा और अनात्मा इन दो पदार्थों का निर्णय किया है तहां— आत्मा (ब्रह्म) सच्चिदानंद नित्यमुक्त निर्विकार, निर्गुण, निरंजन स्वरूप है. अनात्मा मिथ्या (अनिर्वचनीय) कहिये. सत (सदा रहने वाला) तथा असत् (सदा नहीं रहने वाला) इन दोनों के लक्षण (स्वरूप) से भिन्न हैं, तिसका परिणाम (कार्य) यह प्रपंच है१. अर्थात् सत्व, रज, तम नामा ३ गुण हैं तिनका समुदाय रूप अनात्मा, आत्मा (चेतन) की शक्ति२. का नाम है.

सो अनात्मा आत्मा की३. इच्छा से अविद्या परिणाम को पाता हुवा और

१. वेसा ही अर्थात् सदसद विलक्षण अस्तित्व वाला यह उसका दृश्य है, और उभय के अनादि अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध से दृश्य—विलक्षण व्यवहार है (स्वप्नवत्).

२. नित्य की शक्ति को सदसद से विलक्षण कहना और शक्ति का परिणाम मानना आश्चर्य है. परंतु ऐसी थीयरी रखने में रहस्य है. ऐसा माने विना विभु के स्वरूप में रहना वा होना नहीं बनता. और आगे वेदांतगत जो पक्ष लिखेंगे उसमे इसका कारण बांचोगे.

३. सृष्टि कल्पन की इच्छा, अज्ञान वा मायावश १, सो भी स्वप्नवत् विवश वा इच्छापूर्वक (मत मतांतरवत्) २, किंवा ज्ञानपूर्वक ३, सो भी जीवों के पूर्व के कर्मवश वा अन्यथा अर्थात् स्वभाववश ४. निर्विकल्प तत्त्व में इच्छा होना असंभव. इच्छा होने का कोई कारण नहीं मिलता. अब जो मानें तो भी पहिले २ पक्ष में त. द. अ. ३ सू. ४•१ में जो दोष बताये हैं और वेदांतदर्शन की समालोचना में जो दोष दिखाये हैं सो दोष आवेंगे. अर्थात् ब्रह्म भ्रांत नहीं और जो भ्रांत तो समष्टि भ्रांत वा व्यष्टि (जीव) भ्रांत, इनका निरीक्षण करने से सर्व प्रकार की अव्यवस्था रहती है और पक्ष सिद्ध नहीं होता. जो तीसरा पक्ष मानें तो जगत् को मिथ्या नहीं कह सकते; क्योंकि उसके कार्य प्रयोजन विना के अर्थशून्य निष्फल नहीं हो सकते और जीव की उत्पत्ति तो उत्तर क्षण में मानते है (प्रवेश करता भया). वर्तमान सृष्टि से पूर्व में सृष्टि की कल्पना जो नहीं की, ऐसा मानें तो "यथापूर्वम कल्पयत" इस श्रुति का विरोध आवेगा; इसलिये जो श्रुति मान्य तो इसके पूर्व भी की और भविष्य में भी करेगा, यह सिद्ध होगा. इसका परिणाम यह आया कि जगत का उपादान माया (शक्ति) अनादि अनंत है. जीव सादिसांत हैं (त. द.

पुनः सो आत्मा स्वेच्छा से अविद्या ४ मे अहं रूपसे प्रवेश करता भया९. तिसके पीछे आकाशादि पंच सूक्ष्मभूत (अपंचीकृत पंचभूत) को प्रकट करता भया. तिनसे ज्ञानेंद्रिय ५, कर्मेंद्रिय ५ और तिनके विषय विषयों को प्रकट करता भया. जैसे:—

पेज ६९४ से ६९६ तक और ७७३ बांचो). जो सृष्टि जीवों के कर्माधीन नहीं की तो जीवों को आद्यजन्म विना कृत के भोगना अन्याय होगा, वेद शास्त्र व्यर्थ ठेरे. जो ऐसा मानें कि वक्ष्यमाण अष्टपुरी में घटाकाशवत आप ही प्रवेश करता भया, तो उसका कोई कारण नहीं जान पडता. व्यर्थ तमाशे करना उस सर्वज्ञ का काम नहीं है. और ऐसा मानें तो मोक्ष भी उसकी इच्छा के आधीन ठेरा याने वेद शास्त्र तथा तदोक्त साधन व्यर्थ रहेंगे. जो ऐसा मानें कि उसकी ऐसी ही इच्छा और इसी प्रकार की (शास्त्रोक्त) रचना है तो दूसरे मतपक्ष (गौरक्षक गौभक्षकादि) को भी स्वीकार लेना चाहिये; क्योंकि यह भी उसी प्रविष्ट की इच्छा और उपदेश है; परंतु ऐसा मानने से अव्यवस्था रहती है. जो चोथा विकल्प मानें तो गोडपादश्रीके कहे अनुसार उसकी निवृत्ति नहीं हो सकती, इसलिये यह मानना पडेगा कि अव्यक्त माया व्यक्त होती है तद्व तंत्री द्वारा सृष्टि का स्वाभाविक अवभास होता है. शुद्ध, निरीह, निर्विकल्प ब्रह्म में इच्छा कल्पना—प्रयत्न मानना सिद्ध नहीं होता और उसके स्वरूप में अन्य का प्रवेश नहीं होता; अतः उक्त (इच्छा की, कल्पना की, ऐसे ऐसे करता भया इत्यादि) एक प्रकार का अध्यारोप (शैली) हो, ऐसा जान पडता है, उसके खंडन मंडन में आग्रह की अपेक्षा नहीं रहती. जो कहो कि ऐसा नहीं किंतु यह थीयरी और तुम्हारा प्रतिपक्ष यह सब स्वप्नसृष्टिवत् है तो गोडपाद श्री के मतप्रसंग की न्याई दोष आवेंगे. यहां त-द अ. ३१४ • १ भी देखो. अंत में यह ही मानना पडेगा कि सृष्टि भ्रांत ब्रह्म चेतन की कल्पित नहीं किंतु चेतन विशिष्ट संस्कारी माया (अज्ञान—अविद्या) में पूर्व पूर्व के संस्कार हैं तदनुसार चेतन की सत्ता पाके याने तंत्री द्वारा रचाई जाती है और चेतन के संबंध और उसकी सत्ता से सजीव चमत्कारी भासती है. एवं उत्पत्ति, स्थिति, लय का प्रवाह है स्वप्नवत्. और माया अनिर्वचनीय भावरूप पदार्थ है. इसी सिद्धांत को अनेक दृष्टिओं को लेके अनेक रूप में वर्णन करते हैं, जैसा कि शंकर श्री की प्रस्तुत थीयरी है; सुरेश्वराचार्य ने इसका विस्तार किया है; फेर इसका लय चिंतन बताके अधिष्ठान समचेतन अर्थात् ब्रह्म तक पहुंचा के ब्रह्म का अनुभव होना दरसाया है; इसलिये शंकर श्री की थीयरी वाम्ने अपवाद की अपेक्षा नहीं रहती. क्योंकि सबका परिअवमान अद्वैत में है.

तत्त्व के.	सत्वगुण से.	रजोगुण से.	तमोगुण भाग से.
	ज्ञानेंद्रिय.	कर्मेंद्रिय.	विषय.
आकाश	श्रोत्र	वाक्	शब्द
वायु	त्वचा	हस्त	स्पर्श
तेज	चक्षु	पाद	रूप
जल	रसना	उपस्थ	रस
पृथ्वी	घ्राण	गुद	गंध

पैदा करता भया. * यहां शब्द स्पर्शादि को पंचतन्मात्रा कहते हैं. शब्दादि तन्मात्रा ज्ञानेंद्रिय के विषय हैं. कर्मेंद्रियों में वाणी शब्द का उच्चारण करती है. हस्त लेन देन रूप कर्म करता है. पादगमना गमनादि क्रिया करता है. उपस्थ मैथुन क्रिया करता है. गुद मल त्याग करता है. इस वास्ते वागादिकन की क्रिया तिनों का विषय है. और यह सब इंद्रिय अध्यात्मादि रूप त्रिपुटी द्वारा अपने अपने व्यापार में समर्थ होती हैं. तहां देह में रहने वाले (जीव) का नाम अध्यात्म है, प्रकृत में अध्यात्म इंद्रियें हैं, और इंद्रियों के विषय का नाम अधिभूत है; और इंद्रियों के स्वस्वविषय ग्रहण करने में अनुग्रह करने वाले देवों का नाम अधिदैव है. तहां—

४. माया का अविद्या रूप होना अर्थात् आवरण (स्वस्वरूप—चेतन नहीं, और नहीं भासता जेसे स्वप्न विये होता है), विक्षेप (दृश्य प्रपंच है और भासता है) रूप को प्राप्त हुई इस रूप से साक्षी चेतन की विषय हुई.

५. जेसे अंधेरी कोठडी में वा अमावस्या की रात को प्राणी चुप हो, दीपक आने वा सूर्य उदय होने पर सब अपने अपने काम में लग जाते हैं ऐसे अष्टपुरी मे चेतन के संबंध हुये वे अपना अपना काम करते हैं (व्र. सि. में विस्तार है); किंवा जेसे मच्छली जल से जुदा हो जाय तो मृत और फेर उसे जल में डालें तो दर्शन श्रवण, गमन खानपानादि व्यवहार करती है, ऐसे यहां प्रवेश का आशय है; क्योंकि अक्रिय विभु में प्रवेश अप्रवेश नहीं हो सकता.

* कितनेक आचार्यों के मत में शब्दादि पच यह पंचीकृत पंच महाभूतो (स्थूल तत्वों) के कार्य है और गुण हैं, और कितने एक आचार्य शब्दादि को दंडादि की न्याई अपचीकृत महाभूतो का कार्य मानते हैं. और जेसे सत्व गुण का कार्य शर्करा द्रव्य है तेसे तमो गुण का कार्य शब्दादि भी द्रव्य है, ऐसा मानते हैं. दोनों मत प्रदान होने में अविरोध होने से ग्राह्य है. वे सि. मं.

अध्यात्म.	अधिदेव.		अधिभूत.
श्रोत्र का	दिशा का अभिमानी चेतन		शब्द
त्वचा का	वायु का ,, ,,	...	स्पर्श
चक्षु का	सूर्य का ,, ,,	....	रूप
रसना का	जल का ,, ,,	(वरुण)	रस
घ्राण का	भूमि का ,, ,,	(अश्विनिकुमार)	गंध
वाक् का	अग्नि का ,, ,,	...	शब्द
हस्त का	मेघ का ,, ,,	(इंद्र)	लेनेदेन
पाद का	पृथ्वी का ,, ,,	(विष्णु)	चलन
गुदा का	काल का ,, ,,	(मृत्यु)	विसर्ग
उपस्थ का	सृष्टि का ,, ,,	(प्रजापति)	मैथुन
मन का	स्वर्ग का ,, ,,	(चंद्र)	विचार
बुद्धि का	वेद का ,, ,,	(बृहस्पति)	निश्चय
चित्त का	संघात का ,, ,,	(जीव)	संशय स्मरण
अहंकार का	प्राण का ,, ,,	(रुद्र)	अभिमान

मनादि चारों रूपों में विभाग का जो प्राप्त सो अंतःकरण है (तीनों गुणों के सत्व भाग से बना है).

और उक्त पंच भूतन को पुनः आत्मा ने स्वेच्छा से एक एक भूत के दो दो विभाग कर के तिन में से एक (क) विभाग के चार चार विभाग किये इनमें (क. के भाग में) से एक एक भाग को ले के अपने अपने विभाग से भिन्न जो अर्ध अर्ध भाग था उस विभाग में मिलाता भया. * इस प्रकार के मिश्रण (स्थूलभूत) पंचीकृत पंच महाभूतन को प्रकट कर के उनमें अन्न रूप शरीर को पैदा करता हुवा. सो शरीर अंडजादि भेद से ४ प्रकार का होता है. यह शरीरमात्र एक दूसरे के अन्न रूप है यथा मृगादि सिंह का अन्न हैं, ग्रीं आदि नरादि का अन्न है. यह अन्न रूप शरीर पूर्वोक्त अपंचीकृत पंच महाभूतों के कार्य का अधिकरण या आधार है. और

* जैसे पृथ्वी का तत्व आठ आना उसका अर्ध, चार आना एक तरफ रखा और चार आने में से एक आना जल के अर्ध भाग वाले चार आने में मिलाया तो चार आने [illegible] और १६ आना पृथ्वी पर [illegible] आना [illegible]. इस प्रकार अन्य में जानो.

उक्त अन्न से अन्न रसादि धातु द्वारा शुक्र रूप सप्तम धातु उपजती है, तिसमे पुनः स्थूल देह उपजता है. तहा स्थूल देह से सूक्ष्म देह का जो वियोग होना यही स्थूल देह का मरण है. अर्थात् अविद्या, काम, कर्म पचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेंद्रिय, चार अतःकरण, पंचप्राण, पंचसूक्ष्म भूत, इनका नाम अष्टपुरी है. सो पुरी उत्कट कर्म के वश से अपने आधार रूप स्थूल देह को त्याग करती है तब मरण होता है. पुनः कर्मानुसार उक्त पुरियें अपने आधार रूप अन्य स्थूल देह को धारण करे है उसका नाम जन्म है तहा धर्म (यागादि) के आचरण और अधर्म (हिंसादि) के त्याग करने से दक्षिण मार्ग द्वारा स्वर्ग में जाके पुण्य का भोग कर के पुनः मनुष्यादि देह को धारण करता है. और उपासना (भक्ति) करने से क्रम मुक्त्यादि फल को प्राप्त होता है. और चेतन आत्मा सबमे एक ही है, तिस की कल्पना मात्र ‡ यह सर्व (ब्रह्मेतर सब) है सो "चेतन (ब्रह्म) मैं ही हू" इस प्रकार विवेकादि साधन द्वारा गुरमुख से वेदात को श्रवण कर के आत्मैकत्व के निश्चय से जन्म मरणादिकन से निवृत्ति रूप मोक्ष होती है. § यह शकर श्री का मत है.

तहा (इस मत में) भी कितने एक—वाचस्पति आदि ने जीवनिष्ट अविद्या मानी है, और जीव अनेक है, एक एक जीव के प्रति एक एक ईश्वर होने से अनंत ईश्वर है—इत्यादि कहते है और कितने एक आचार्य एकजीववादि तथा एकेश्वरवादि है (आगे वाचोगे). सबका सिद्धात अद्वैत मे अविरोधी है. इस वास्ते शकर मतानुसार श्रुति और अनुभव रूप प्रमाण द्वारा अद्वैतात्मवाद ही सिद्ध है. श्रुति मे धर्म तथा ब्रह्म इन दो वस्तुओ का प्रतिपादन किया है तिसमे धर्म पूर्व मीमासा अनुसार सिद्ध है, और ब्रह्म की सिद्धि ब्रह्म मीमासा अनुसार है. इस शाकराद्वैत सिद्धात मे अजातवाद, अनिर्वचनीयवाद (विलक्षणवाद), आभासवाद, बिंबप्रतिबिंबवाद,

‡ रज्जु सर्पवत्—स्वप्न घाष्टवत् कल्पित है

+ मोक्ष किसकी? वासना अहत्व ममत्व रहित होने से अष्टपुरी का अभाव कारण कि ब्रह्म चेतन शुद्ध अचल व्यापक है जो चेतन की मोक्ष मानें तो अन्य शक्तिमान अष्टपुरी का सबध होने से पुन बध होगा तद्वत् चेतन की कल्पना से चेतन की मोक्ष मानें ता एक की मोक्ष से पुन बध न होना चाहिये बात यह है कि उत्पत्ति, बध, मोक्ष यह स्वप्नवत् माया के परिणाम प्रतीत मात्र है, अर्थात् परमार्थत नहीं है उपरोक्त सृष्टि क्रम भी शैली मात्र है यह उत्तर कहा है जो ऐसा नहीं माने तो त. द अ. १ गत मुक्ति के प्रसग में जो दोष कहे है सो आवेंगे तथापि जब तक चेतन को कल्पना मे अष्टपुरी का अभाव न हो वहां तक उसको चक्र मे ही रहना पडेगा, शास्त्र व्यर्थ ठेरेंगे इसलिये उसको प्रवाह से अनादि मान के स्वतन्त्र मानना ही पुनर्जन्म, मोक्ष और शास्त्र की सफलता की व्यवस्था करता है (अ ४ याद म लीजे)

छायावाद, (तथा अवच्छेदवाद, एकजीववाद) इत्यादि अनेक वाद हैं तिन को भी आचार्यों के उपदेश द्वारा ज्ञेयता है (सबका सिद्धांत–लक्ष्य एक है).

नोट—

विद्यमान शंकराचार्य स्वामी श्री शांत्यानंद महाराज का प्रशंसा पात्र औदार्य.

श्रौतादि कर्मन का विधिपूर्वक (नियमानुसार) जिन ग्रंथों में वर्णन किया है उनका नाम स्मृति है, वे अनेक ऋपियों की (यथा देशकाल स्थिति) बनाई हुई हैं, इसलिये तदोक्त धर्म को यथा अधिकार अनुष्ठान करना वैदिक मार्ग अनुयायियों को कर्तव्य है.

ब्रह्मपुराणादि १८ पुराण और सनत्कुमारादि १८ उप पुराण हैं इनमें दृष्टांत पूर्वक हरेक स्मृत्युक्त कर्मों का स्पष्टिकरण है. इसी प्रकार जरतोश्त धर्म (पारसी धर्म), याहूदि, क्रिश्चियन धर्म, मुसलमानी (यवन) धर्म के बोधक, वंदीदाद, बाइबल, कुरान आदि अनेक ग्रंथ भी प्रचलित हैं. उनके मत का कितनाक अंश वेद के अनुसार है और कितनाक वेद बाह्य है, तथापि परम पुरुषार्थ की प्राप्ति कौन साधन से होगी, यह बात सब मत में विचार करके स्वस्व बुद्धि के अनुसार वर्णन की है, तहां सब का मत भी अधिकार परत्वे होने से यथा अधिकार ग्राह्य है. इसलिये किसी धर्म की निंदा स्तुति किये विना सर्व मत तथा सर्व धर्म को जान के योग्य वा श्रेष्ट धर्म का स्वीकारना बुद्धिमान का कर्तव्य है. और मतमतांतर वा धर्मधर्मांतर का विरोध जना के स्वमत की उत्कृष्टता कहना स्व स्वमत वा धर्म की स्थिति वास्ते है. जैसे भिन्न भिन्न रोग की निवृत्ति वास्ते भिन्न भिन्न दवा हैं और सब रोग में सर्व औषध काम में नहीं आती किंतु अपनी अपनी शक्ति के अनुसार सर्व औषध रोग निवृत्ति में समर्थ है, तैसे भिन्न भिन्न मत को मानने वाले ऋपि, मुनि, सज्जन, महात्मा जो जो धर्म वा मत कह गये हैं सो अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार कहे हैं, तिन में सब धर्म वा मत भी (यथा अधिकार) सफल है अर्थात् सर्व धर्म स्वमयन् कल्पित होने से उन उन की कल्पना (भावना) के अनुसार सत्य हैं. परमार्थतः मिथ्या हैं. इसलिये धर्म वा मतमतांतर के प्राधान्यता में राग द्वेष करना बुद्धिमानों का कर्तव्य नहीं है. यह ही शंकर का मुख्य सिद्धांत है. यह स्थिति अद्वैतवाद को जो स्वीकारते हैं उनको सुगम रीति से सिद्ध होगी. और नित्य मुक्त जो स्वस्वरूप (ब्रह्म चेतन–प्रत्यगात्मा) प्राप्ति सो भी अद्वितीय आत्मज्ञान से होवे है. इति वे. सि. पं. पृष्ट ४९. †

† सर्व संमद वा पंचदशांग इसके साथ पञ्च्य हों तो जिसको जिस धर्म जिस भावना रूप औषधि से अपना मानसिक रोग जाता ठीक समझता हो सो ही उसके जानकारी हो, ऐसा

अब आगे शंकर श्री के वाक्यों का अवतरण, उस पीछे शंकर के मत का मूल, उस पीछे शंकर श्री के मत का सार, पीछे मत की समन्नुति प्रयोजक की तरफ से (मेरी समझ अनुसार) फेर शोधक का और फेर विभूषक का मत लिखा जायगा. उस पीछे केवलाद्वैतवाद के अंतर्गत कितनेक मत जनावेंगे.

अवतरण.

श्री शंकर के सिद्धांत जानने वास्ते व्यास सूत्र पर रचित उनके शारीरिक भाष्य में से कितनेक क्वोटेशन (संस्कृत का हिंदी तरजुमा).

वे. अ. १ पा. १ सू. १. (एवं अयं) ऐसे यह जो अनादि अनंत नैसर्गिक अध्यास–मिथ्या ज्ञानरूप है उस अनर्थ के हेतु के नाशार्थ ब्रह्मविद्याबोधक इस शास्त्र का आरंभ है.

अ. २।१।१. (प्रथमे) पहिली अध्याय में सर्वज्ञ, सर्वेश्वर जगत उत्पत्ति कारण–मृतिकाघट, कनक कुंडलवत्. जगत का नियंता. स्थिति का कारण. मायावी वा माया कर के है ऐसा कहा.

अ. २।१।१३. ब्रह्म ही भोक्ता और भोग्य है. यहां गंभीर आशय है. जो आत्मवित् हैं वे ही इस रहस्य को जानते हैं. अन्य तो कटाक्ष करेंगे).

अ. २।१।१४. (शं.) (कथन्वानृतेन) अनृत मोक्ष शास्त्र से प्रतिपादित जो जीव ब्रह्म की एकता वोह कैसे सत्य हो सकती है. (उ.) सब व्यवहार ब्रह्म ज्ञान से पहिले सत्य समझे जाते हैं और वस्तुतः स्वप्न पदार्थ के समान सत्य नहीं हैं. (शं.) (नहि रज्जु सर्पेण) डोरी के साप का डसा हुवा कोई नही मरता, और न मृग तृष्णिका से स्नानपान प्रयोजन सिद्ध होता है, फेर तुम्हारे मिथ्या शास्त्र से सत्य मोक्ष रूपी प्रयोजन कैसे सिद्ध हो सकेगा. (उ.) जैसे विष भक्षण के संदेह होने से मनुष्य मर जाता है और जैसे झूठे स्वप्न से उसका ज्ञान जागृत में सच्चा देखा जाता है और जैसे स्वप्न के झूठे सिंह से डर कर सच्ची जागृति हो जाती है, ऐसे हमारे मिथ्या ‡ मोक्ष शास्त्र से सच्ची मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है.

मान सकते हैं वे भावना सत्य था रज्जु सर्प वत् मिथ्या है इस विवेचन की अपेक्षा नहीं जान पडती

‡ सद्ब्रह्म से विलक्षण. लोक में जैसा अर्थ मिथ्या शब्द का माना जाता है वैसा नहीं किंतु सद्ब्रह्म से विलक्षण. ऐसी माया और उसके कार्य हैं.

अ. २।१।२९. (तस्मादेकस्यापि) इसलिये एकही ब्रह्म का विचित्र (माया) शक्ति के योग से दूध से दही के समान यह जगत रूप विचित्र परिणाम हो जाता है. ‡

अ. २।१।२७. निराकार साकार प्रसंग (शं.) निराकार ब्रह्म वा एक वस्तु तो परिणामी कैसे (उ.) (अचिन्त्याः) जो भाव में, विचार में नहीं आसकते उनमें तर्क नहीं करना चाहिये. जो प्रकृति से परे है वोह अचिन्त्य है, इस प्रकार ब्रह्म अचिंत्य है; इसलिये उक्त तर्क नही करना चाहिये. † (सारांश) अविद्याकृत कल्पित रूप से वोह ससार रूप भासता है. वस्तुतः ब्रह्म निराकार है. ‡

अ. २।३।३२. ज्ञान यह आत्मा का गुण नहीं. आत्मा ज्ञान स्वरूप है. उपाधि मे परिच्छिन्न है. वस्तुतः विभु है. अणु कथन वाले व्यास के सूत्र पूर्व पक्षी के हैं.

अ. २।३।४४. जीव, ब्रह्म का अंश के समान अंश है, वास्तव में अंश नही; क्योंकि निरवयव का अंश नहीं होता ‡

अ २।३।५०. जैसे घटों में जल हो तहां उनमे एक सूर्य के जुदा जुदा प्रतिबिंब है. तिनमें एक आभास कंपायमान होवे तो दूसरे आभास कंपायमान नही होते. ऐसे एक ईश्वर का जीव आभास है. अनेक अतःकरण मे जुदा जुदा हैं, इसलिये एक जीव के धर्म अधर्म का दूसरे जीव के साथ संबंध नही होता. + जीव नाना विभु हैं, ऐसे पक्ष में दोष आता है.

अ. ४।१।३ वेदा अवेदा. वृ. ६।३।२२ (इति वचनाद) वेद अवेद इस कथन से ज्ञानकाल विषे हमारे मत में श्रुति का भी अभाव है; इस प्रकार ज्ञानकाल में वेद अवेद है.

अ ४।१।९. एक प्रकार के ज्ञान के प्रवाह का नाम उपासना है.

अ. ४।४।२. जिसमें सस्कार, विकार, उत्पत्ति, प्राप्ति वा नाश हो ऐसे प्रकार की मुक्ति, मुक्ति नही. वोह क्रम मुक्ति है, वहां से आवृत्ति होती है.

---

‡ शक्ति का अर्थ माया करें तो भी ब्रह्म परिणामी तो सावयव सावयव तो जीव को वास्तविक अंश क्यों न माना जाय? वस्तुत. निराकार. इसमें विरोधभाव है

† यहां अन्नवाद उपस्थित होता है जो कि सदोष है.

+ यहां जीव को आभास (प्रतिबिंब) कहा है.

४।४।१६. संपत्ति यह ऐश्वर्य, कैवल्य मुक्ति में नहीं है; किंतु ऐश्वर्य वाली मुक्ति स्वर्गादिवत् अवस्थांतर है.

४।४।२२. कैवल्य मुक्ति वाले की अनावृत्ति है. ऐश्वर्य वाली मुक्ति से आवृत्ति होती है.

शंकर दिग्विजय में से—ब्रह्मैकं परमार्थं सच्चिदमलं विश्व प्रपंचात्मना शुक्ति रूप्य परात्मनैव बहलाज्ञानावृतं भासते. तज्ज्ञानान्निखिल प्रपंच विलया स्वात्म व्यवस्थापरं—निर्वाणं जनि मुक्तमभ्युपगतंमानं श्रुतमस्तकम्

अर्थ—वास्तव में सचित निर्मल एक ब्रह्म है अनादि सिद्ध अज्ञान से आवृत्त हुये को ही शुक्ति रजत वत् सब प्रपंच प्रतीत होता है. इस ब्रह्म को जानने से जिसमें सब प्रपंच कारण सहित भूत अज्ञान का लय होता है जो स्वरूप स्थिति होती है उसको जन्ममरण रहित मुक्त मानते हैं इसमे वेद का मस्तक रूप उपनिषद प्रमाण है.

जब मंडनमिश्र के साथ शास्त्रार्थ होने लगा तब शंकराचार्य श्री ने अपना यह मंतव्य—पक्ष दरसाया था. ऐसा शंकर दिग्विजय में लिखा है. वहां ही मंडन मिश्र का पक्ष लिखा है (उसमें कर्म से मुक्ति मानी है).

शंकर श्री के मंतव्य का मूल—(१) पूर्व में एक से इतर कुछ भी नहीं था श्रुति (उपरोक्त च. ९. ज. ८ देखो) (२) यह सब पुरुष ही. च. १४. (३) ब्रह्म से इतर द्रष्टा—ज्ञाता—श्रोता—मता अन्य कोई भी नहीं है छ ९।६. (४) अयमात्मा ब्रह्म छ. ८. (५) उससे इतर नहीं है जिसे देखें, सुनें, स्पर्शे इ. ज. ७. (६) ब्रह्म ही यह विश्व है. ज. १०. (७) आत्मा ही यह सर्व है उससे इतर कुछ भी नहीं है. ज. १५. (८) मुक्त हुवा ही मुक्त होता है. छ ९२।९३. (९) जिससे भूत मात्र उत्पन्न होते हैं, जिससे जीते हैं और जिसमे लय होते हैं ज. १७. तत्त्वमसि. ज. १८. (१०) ब्रह्म निष्क्रिय, निर्गुण और निष्कल है. इत्यादि श्रुति.

इनमें से कितनीक श्रुति ऐसी है कि द्वैतवादि द्वैत मे नहीं लगा सकता और न व्यवस्था कर सकता है. यथा २।३।४।५।६।७।८।१०. कितनी ऐसी हैं कि द्रव्य को बताती है और ब्रह्म को सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित (निरवयव—अपरिणामी) बताती हैं.

उसमे अन्य नहीं ऐसा मानें तो १. द्रश्य है तो सही तो फेर श्रुति के कथन (अद्वितीय और उत्पत्ति स्थिति लय) की व्यवस्था केसे हो २. में सबको स्पष्ट. उसमे तूं पना कहा से? अध्यास (अन्यथा अवभास). ऐसे ही यह द्रश्य (अध्यास रूप) क्यो न हो? ३. तम, प्रकाश, मन, भेद, अभेद, अभाव, और त्रिपुटि मात्र तथा शून्य और सशय भी किसी स्वप्रकाश के विषय होते हे.

उक्त अध्यास की निवृत्ति हुये विना बंध की निवृत्ति और परमानद की प्राप्ति नही होती. सो स्वरूप ज्ञान से होती है. तदर्थ शास्त्रो की प्रवृत्ति है.

शंकर रहस्य.

जेसे गोडपादाचार्य की कारिका पर पूर्वपक्ष हुवा वेसा ही किंतु उससे ज्यादे पूर्व पक्ष हो सकता है (जितनाक उपर दरसाया भी है) और उसका उत्तर पक्ष भी कारिका के उत्तर पक्ष समान हो सक्ता है–हो जाता है. इसलिये विशेष लिखने की अपेक्षा नहीं है. उपरात जब शकर श्री का आशय विचारोगे तो कुछ और ही रहस्य निकलेगा अर्थात् जेसा शंकर पर प्रतिपक्षियो ने कटाक्ष किया और कर रहे हे वोह सब व्यर्थ जान लोगे और इष्ट विषय को सपादन कर सकोगे.

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव ना परः

यह शकर श्री का सिद्धात है. किंवा कल्पित नाम रूप का भाग त्याग कर के आत्मैव इदं सर्वं नेहनानास्ति किंचनः यह उनका श्रुति अनुसार मतव्य है. किंवा माया मात्र द्वेत है, परमार्थतः ब्रह्म केवलाद्वेत है

आत्म ज्ञान (ब्रह्म ज्ञान) होने के उत्तर क्षण मे यह सिद्धात अनुभवगम्य होता है कारण कि आत्म स्वरूप मे स्थित हुये पीछे द्वैत (भेद) अद्वैत की या कोई प्रकार का भावना का अवसर नहीं होता.

अब जो ज्ञान के उत्तर क्षण वाला जिज्ञासु को लाभकारी और उपयोगी है तो उसको दरसाना चाहिये, अर्थात् ज्ञान के पूर्व क्षण तक उक्त सिद्धात सत्य है तो उसके सबधी कथन, श्रवण, श्रोता, वक्ता, तिसके साधक शरीरादि और आद्योपदेष्टा वेद भी सत्य होना चाहिये, तदगत वर्णाश्रम के व्यवहार, कर्म काड, उपासना काड, ज्ञान काड है वोह भी सत्य मानना चाहिये, और व्यवहार में जो असत सिद्ध होता है, उसकी सिद्धि भी सत्य होनी चाहिये, ऐसे न मानें तो वादि प्रतिवादि और निश्चय तथा निर्णय की भी अनुत्पत्ति होगी.

इस प्रकार ज्ञान के पूर्वकाल तक में जो सत् है, उसके अनुसार चलना चाहिये, जैसा कि शंकर श्री का इतिहास उपर बांच चुके हो. जैसे स्वप्नकाल में स्वप्नसृष्टि और तद्गत व्यवहार सब सत्यरूप में जाना जाता है, और ऐसा होना ही होता है वैसे ही वर्तमान में भी सब सत्य ही है ऐसा जान पडता है. और जैसे जागृत होने पीछे स्वप्नसृष्टि और तद्गत व्यवहार अर्थशून्य अजात जान पडता है वैसे ही स्वप्नसृष्टि में गये पीछे यह है. वर्तमान में ज्ञान (स्वरूप स्थिति) हुये पीछे यह सृष्टि और उपरोक्त अध्यारोप अपवाद वगैरे तमाम व्यवहार अर्थशून्य अजात हैं. सार यह आया कि वर्तमान में यह दृश्य सत्य है, और अध्यारोप अपवाद भी सत्य हैं. और परमार्थ मे न यह, न वोह, न उनगत व्यवहार (उत्पत्ति, लय, बंध, मोक्ष, वर्णाश्रम, ज्ञान, अज्ञान और न पूर्वोक्त सिद्धांतादि), है.

अब आप समझ सकते हो कि शंकरश्री ज्ञान की पूर्व क्षण तक जगत् को सत्यरूप मान के व्यवहार करते थे. वा मिथ्यावाद थे. जहां तक प्रतिपक्षी उसका खंडन और अनुयायी उसका मंडन करते हैं वहा तक उसकी दृष्टि में उनकी दृष्टि सत्य ही माननी पडेगी, मिथ्या नहीं, यह सिद्ध हुवा. और प्रपंच उपशमकाल में याने स्वरूप स्थिति हुये न द्वैत, न अद्वैत, न सत्य, न असत्, न मायावाद, न शुद्धाद्वैतवाद, न त्रिवाद, न जडवाद, न चेतनवाद. कारण कि स्वरूप में अन्य (इच्छादि) का प्रवेश नहीं हो सकता. और श्रुति भी यही कहती है (आत्मा के स्वरूप में अन्य कुछ भी नहीं है); इसलिये शोधक जिज्ञासु को चाहिये कि इष्ट निशान पर पहुंचने तक श्री शंकर और गौडपादाचार्य श्री की थीयरी पर ख्याल करने मे विराम करे, क्योंकि खंडन मंडन का अंत नहीं आता. मनुष्य का बुद्धि विलास निर्दोष नहीं हो सकता. अतः द्वैतभाव को सत् मान के वेदोक्त कर्म करो, ईश्वर की उपासना करो, वेदानुसार वर्णाश्रम को पालो. और कर्मसिद्धि, उपासनासिद्धि हुये पीछे विवेकादि चतुष्टय साधन संपन्न हो के श्रवण, मनन, निदिध्यास करो. उस समय याने ज्ञान काल में (आत्मानुभव होने पर) जैसा है वैसा जो है सो आप जान लोगे (याने उपरोक्त को समझ लोगे).

शुद्धाद्वैतादि अद्वैतवाद, अद्वैत की पूर्वी नहीं लिना सकता. वर्तमान का एक शक्तिवाद अभी उस डिग्री तक नहीं आया है.

प्रतिपक्षियो ने गोतम जैसे फिलोसोफर को अक्षपाद (अंधा) और कणाद जैसे रिफोर्मर को उलूक पदवी दी है. वेदों को धूर्त निशाचर का बनाया हुआ कहा है.

इसी प्रकार शकराचार्य को द्वैतवादि वा प्रतिपक्षी प्रच्छन्न बौद्ध, मिथ्यावादि, नास्तिक, मायावादि इत्यादि पदवी देते है, यह उन ही की शोभा जान पडती है; क्योकि जो श्रुति के अनुयायी है वे उनके श्रुति विरोध निवारक रहस्य का निषेध नहीं कर सकते और जो वेदानुयायी नहीं है वा वेदसार नही (वेदात) नही जानते उन्होने शकर सिद्धात पर आक्षेप किया है (आगे वाचोगे). बौद्ध किसी को भी स्थिर निष्कप नहीं मानते, शकराचार्य ब्रह्म चेतन को स्थिर विभु निष्कप अपरिणामी मानते है बौद्ध त्रिपुटी को समकालीन नही मानते, शकराचार्य समकालीन मानते है, तथा बौद्ध मत का उन्होने निषेध किया है, अतः शकर गुप्त बौद्ध था ऐसा कहना सत्य नहीं है. किंतु बुद्धदेव गुप्त (प्रच्छन्न) ब्रह्मवित्–ब्रह्मनिष्ठ था, यह उपर वाच चुके हो ऐसा है.

त्रिभूपक.

शकरश्री और गोडपादाचार्य की थीयरी के सबध में म तो ऐसा मानता हू कि दृश्य की व्यवस्था, वर्णाश्रम की मर्यादा की व्यवस्था तथा उसके पालने और जिज्ञासु के समझाने के लिये अनेक प्रकार के अध्यारोप अपवाद किये गये है वेसे ही, ब्रह्म ने इच्छा की, मायावश हुवा. जीव चेतन (अविद्या–अतःकरण–अष्टपुरी विशिष्ट चेतन) को अज्ञान–माया–भ्रम–अविद्या–अध्यास–बंध–मुक्त–जीव ब्रह्म की एकता–मुक्त हुवा मुक्त होना–आभास–प्रतिबिंब इत्यादि इत्यादि को भी जिज्ञासु के बोधार्थ योजना की है, और उसका अपवाद किया है, ताकि जैसे तैसे अधिकारी इष्ट स्थान में पहुच जाय (अन्यथा अन्यथा है) हमारी इस मान्यता का सबूत यह है कि गोडपाद श्री ब्रह्म को निरीह, निर्विकल्प, समचेतन उसमे पर अप्रवेश और शकरश्री ब्रह्म चेतन को सर्वथा निर्विकार–निरवयव–कूटस्थ–शुद्ध–निष्क्रिय–निर्गुण–निर्विकल्प मानते है, *अतः यहा विशेष लिखने वा खडन मडन करने का अवसर नहीं है किंतु* उनका सार–लक्ष्य ही ग्राह्य है इसलिये उपर शोधक ने जो शकरश्री वा गोडपाद श्री की थीयरी का अपवाद दिखाया हे वोह बुद्धि का विलासमात्र है, आचार्यो का उसके विधान में आग्रह नही है. जो थीयरी विधिनिषेध, बध मुक्त, को उडा के वेद को भी अवेद कहे, उसका खडन करना बडी बात नहीं है परतु उसका रहस्य समझना दुर्लभ है. यह बात ठीक है कि आत्म अनुभव–चिदग्रथी भग होने तक गोडपादाचार्य तथा शकराचार्य श्री का कथन वा थीयरी अर्थवाद रूप (शब्दमात्र) जान पडे वा वेसा मान ले, इसमे आश्चर्य करने जैसा नहीं है, परतु जब येनकेन प्रकारेण (दोनो

की थीयरी वा अन्य योगादि की थीयरी से) * इष्ट स्थान पर पहुंच जाय तब इन दोनो थीयरियों को हम हंस के मानने लग जायगा और यथा अधिकार बोध करेगा.

शंकरश्री का सिद्धांत और उनका विवर्तवाद इस शैली के भूषण वेद, उपनिषद और वेदांत दर्शन प्रसंग में लिख आये है, उस अनुसार यहां जान लेना चाहिये.

जिनको थीयरी का (मिथ्या) अभिमान हो जाता है वे दूसरे की थीयरी के खंडन में आग्राही हो जाते है, यह उनकी भूल है. परंतु जब अधिष्ठान और स्वरूपाप्रवेश को समझेंगे तब यह दृश्य (नाम रूप) प्रतीत मात्र है, स्वप्नवत् है, तमवत् है, नीलमावत् है, रज्जु सर्प वत् है, ऐसा जान लेंगे. और द्वैत अद्वैत के झगडे से उपराम होके उपनिषद, और दोनो आचार्यों का उपकार मानने लग जायेंगे, ऐसा मैं मानता हूं.

केवलाद्वैत-वेदांत पक्ष में आचार्यों ने कितने प्रकार की प्रक्रिया बांधी है उनमें से ब्रह्माश्रित जो अज्ञान (माया) उसके ९ भेद माने है

अज्ञान = मैं नहीं जानता, इस प्रतीति का जो विषय भावरूप सो त्रिगुण वाला है, जड है, अस्वतंत्र है, अनिर्वचनीय है, ज्ञान से निवृत्त हो जाता है इसके ९ भेद.

१ — शुद्ध सत्व गुण प्रधान माया एक ईश्वर. मलिन प्रधान अविद्या जीव. अन्य त्रिगुणात्मक.

२ — अज्ञान शक्ति के २ प्रकार. ज्ञान शक्ति, क्रिया शक्ति. शुद्ध सत्व माया में प्रतिबिंब ईश्वर. रज (विक्षेप) तम (आवरण) रूप अविद्या में प्रतिबिंब जीव.

३ — एक अज्ञान की दो शक्ति. विक्षेप (माया) आवरण (अविद्या) विक्षेप क्रिया प्रधान माया विद्याजन्य अज्ञान उपहित बिंब चेतन ईश्वर. आवरण प्रधान अविद्याजन्य अज्ञान उपहित बिंब चेतन जीव.

(४) वनवत् अज्ञानों का समुदाय ईश्वर. (मायावादातिमत). सर्व अज्ञान व्यक्तियों में अज्ञान जीव. (वृक्षवत्) व्यष्टि समष्टि उपहित चेतन ईश्वर. वृक्ष समान एकत्व व्यक्ति प्रति जीव

* [illegible]
[illegible]

(५) कारणरूप अज्ञान ईश्वर की उपाधि जिसमें उपहित चेतन ईश्वर. अज्ञान जन्य कार्यरूप अंतःकरण तिसमें उपहित चेतन जीव.

उपरोक्त पांचों में अनेक दूषण भूषण हैं.

(६) ब्रह्म की परा पारमार्थिक और तिससे इतर (माया उसके परिणाम) को अपरा प्राप्त उपाधि अर्थात् अनिर्वचनीय माया, ब्रह्माश्रित सद् ब्रह्म से विलक्षण भावरूप अनादि. वो पूर्व पूर्व की संस्कारी. उस अनुसार स्वप्न सृष्टिवत् त्रिपुटी होती रहने का प्रवाह है. उपहित चेतन नित्य शुद्ध है. बंध मोक्षादि सर्व माया के परिणामों में है. स्वप्नवत्. इसी माया को अज्ञान भी कहते हैं. अविद्या भी उसी का भाग है.

अद्वैत गत मत,

मायावाद वा विवर्त्तवाद मे जितने पक्षकार हैं उन सबका "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" यह सिद्धांत है—

जो जीव को मानते हैं उन सबका "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" यह सिद्धांत है—

आशय दोनों का एक ही है अर्थात् ब्रह्म सत्यं जग विलक्षण चेतन एक न दूसरा.

चेतन ब्रह्म एक ही है अन्य चेतन नहीं है और जगत् असत् वा सत् रूप नहीं है किंतु सत से विलक्षण (मिथ्या) है. यह सबका सार है. कोई तत्त्वमसी के बोध द्वारा अर्थात् भाग त्याग कर के चेतन एक बताता है, इस शैली में त्वं पद कर के अपरोक्ष कराता है, कोई अन्य प्रकार से बोधता है परंतु सबका रहस्य-लक्ष्य एक ही है.

अब यहां कितनेक पक्ष-थीयरी संक्षेप में कहते हैं—

(ग) केवल अद्वैतवाद में जीवेश्वर के स्वरूप में अन्य मत-थीयरी.

(प्रकटार्थोद्धारका) अनादि अनिर्वचनीय माया में जो चेतन का प्रतिबिंब (आभास) सो ईश्वर और तिस माया का आवरण विक्षेप वाला जो अविद्या नाम वाला भाग है उस अविद्या के जो अंतःकरण रूपी अनेक प्रदेश हैं उनमें जो चेतन का प्रतिबिंब सो जीव है.

"नेहनानास्तिकिंचन" इस श्रुति से माया के भिन्न नहीं कह सकते. और अभेद भी नहीं; क्योंकि जड चेतन का अभेद नहीं हो सकता. अतः उभय रूप भी नहीं. जो माया सत् मानें तो अद्वैत श्रुति का विरोध, जो असत् मानें तो उसमें जगत की कारणता नहीं बनती; क्योंकि असत्–अभाव से भावरूप की अनुत्पत्ति है. अतः सदसद्–उभय रूप भी नहीं; क्योंकि विरोधी धर्म हैं. जो माया सावयव मानें तो उसका अन्य कारण मानना पडेगा–अनवस्था चलेगी. जो निरवयव मानें तो उससे सावयव जगत की उत्पत्ति न होगी. जो अणुरूप मानें तो उससे आकाश की उत्पत्ति और विभु परिमाण मानें तो उससे परिच्छिन्न की उत्पत्ति न होगी. जो मध्यम मानें तो सावयव वाले दोष आयेंगे; अतः माया का स्वरूप अनिर्वचनीय (जिसका कुछ भी निर्वचन न हो सके) है. माया के कार्य स्वप्नसृष्टि बीजवृक्ष शब्दादि (त. द. अ. ३ सू. ९९३) का ही निर्वचन नहीं हो सकता तो उनके मूल की तो बात ही क्या करना.

(तत्त्व विवेककार) मूल प्रकृति (त्रिगुणात्मक) आप ही माया और अविद्या रूप वाली हो जाती है और एक ही चेतन को जीव ईश्वर रूप कर देती है. उसके शुद्ध सत्व गुण प्रधान (माया) में जो प्रतिबिंब सो ईश्वर और उसके मलिन तत्त्व प्रधान (अविद्या) में चेतन का जो प्रतिबिंब सो जीव है इसमें श्रुति है. "जीवेशो आभासे न करोति" "माया च अविद्या च स्वयमे भवति."

(अपरमत) एक ही प्रकृति विक्षेप की प्रधानता से माया और आवरण शक्ति की प्रधानता से अविद्या कहाती है. माया ईश्वर की और अविद्या जीव की उपाधि है. तथापि मैं अज्ञ हूं, ऐसा जीव को अनुभव होता है. ईश्वर को नहीं.

(शारीरिककार) कार्य उपाधि वाला जीव कारण उपाधि वाला ईश्वर है इस श्रुति अनुसार अविद्या में प्रतिबिंब सो ईश्वर. अविद्या के कार्य अंतःकरण में जो प्रतिबिंब उसका नाम जीव है. इस उपाधि से जीव ईश्वर का भेद है. अविद्या एक है; अतः ईश्वर एक है; अंतःकरण अनंत होने से जीव अनंत है.

इस लोक का अंतःकरण अवच्छिन्न जो चेतन सो कर्ता भोक्ता और परलोक (देवता) वाला भोक्ता ठेरा. याने अन्य के कर्म भोगेगा. अथवा क. नगरस्थ जो अंतःकरण तदवच्छिन्न जो चेतन कर्ता भोक्ता स्मृति करता है सो जब अंतःकरण ट. नगर में जायगा तहां तदवच्छिन्न पूर्व प्रदेश वाला चेतन नहीं किंतु उसका अन्य

प्रदेश है वोह कर्ता भोक्ता होगा पूर्व की स्मृति न होगी. परंतु ऐसा नहीं हो सक्ता. यह अवच्छेदवाद मे दोष है. अतः प्रतिबिंब जीव है, सो कर्ता भोक्ता मानने से दोष नहीं आता.

परंतु प्रतिबिंब (आभास) भी क्षणिक है और अंतःकरण का गमन हो तब भी पूर्व वाला नहीं रहता (त. द अ २ सू ४१८ देखो) अतः कर्म, भोग, स्मृति की व्यवस्था नहीं होती तथा आभास जड माया का कार्य होने से भी कर्तृत्व भोक्तृत्वादि की व्यवस्था नहीं होती. और जैसे जल से अन्यत्र सूर्य का प्रतिबिंब जल में पडता है, जलस्थ जो आकाश वा पुरुष उसका प्रतिबिंब नहीं होता, तद्वत अंतःकरणादि के देश से इतर का प्रतिबिंब होने से उक्त दोष आ जायगा अंत.करण को छोड के अविद्या मे प्रतिबिंब मानोगे तो अविद्या में गमन नहीं है. अतः परलोक में और यहा गमन नहीं होगा अर्थात पूर्वोक्त अंतःकरण और प्रतिबिंब वाले दोष न आवेंगे और चेतन का भेद न होगा. अतः अंतःकरण अविद्या अनवच्छिन्न ईश्वर और अवच्छिन्न चेतन का नाम जीव है

(अन्य मत). अंत.करण अनवच्छिन्न चेतन-ईश्वर अवच्छिन्न (जीव) में न होने से प्रेरणा का अभाव होगा अंतर्यामी न होगा यह दोष उक्त प्रतिबिंबवाद मे भी आता है तथा प्रकृतार्थ मे भी आता है. क्योंकि एक ही आकाश के दो प्रतिबिंब जल मे नहीं होते एवं उपरोक्त अन्य मत मे दोष आता है.

(एक जीववाद) ब्रह्म नामा जीव अनिर्वचनीय-करण को अनादि अविद्या के संबंध से अपने मे जीवत्व (मैं दासी पुत्र) का भ्रम है, उसी ने सर्व प्रपंच की कल्पना की है. तद्वत सर्व इत्यादि वाले ईश्वर की और कर्म, उपासना, तत्फल और बोधक शास्त्र की भी कल्पना उस जीव ने की है सब चेतन से कल्पित है.

(शं.) हिताहित प्रवृत्ति जुदा जुदा देखते है, अतः जीव नाना है एक नहीं. (उ.) स्वप्न मे एक जीव सजीव अन्य निर्जीव है. परंतु चेष्टा वाले जाने जाते है तद्वत यहां है. जैसे निद्रा तक स्वप्न व्यवहार होता है जागने पीछे नहीं, तद्वत आत्मज्ञान तक अज्ञान नाश नहीं होता. जैसे जागा हुवा स्वप्न भ्रांति सिद्ध अपर पुरुष की मुक्ति को दूसरे मे कहता है तैसे जीव को भ्रांति सिद्ध शुकादिकों की मुक्ति को तिसके प्रति शास्त्र बोधन करता है. तद्वत साधन और फल है.

(हिरण्यगर्भवादि) भिन्न भिन्न शरीरों मे समान सजीवता देखते है और एक जीववाद श्रुति के विरुद्ध है, अतः ब्रह्म का प्रतिबिंब रूप हिरण्यगर्भ ही मुख्य एक

जीव है और बिंबरूप ब्रह्म ही ईश्वर है. मुख्य जीव भौतिकप्रपंच का कर्ता है. उसी को कारणोपाधि कहा है. अपर जीव उसके प्रतिबिंब हैं. जैसे पट के चित्रों पर पटाभास दिया जाता है वैसे सब जीव और प्रपंच हैं. इसलिये सब जीव सजीव हैं.

(समीक्षक) प्रतिबिंब का प्रतिबिंब नहीं होता. एक जीववाद में शरीरों के भेदों से सब के दुःख सुखों का भेद है.

(अनेक जीववादि) देवताओं में से जिसने ब्रह्म को जाना सो ब्रह्मरूप हो गया (श्रुति). इससे भेद याने बद्ध, मुक्त की व्यवस्था की है. अतः जीव नाना हैं. अंतःकरण अनेक हैं. अतः उस उपाधि वाले जीव भी अनेक हैं. इसका उपादान अज्ञान एक है, वोह शुद्ध ब्रह्म के आश्रित है तिसी को विषय करता है, तिस की निवृत्ति मोक्ष है. वोह अज्ञान अंश वाला है सो अनिर्वचनीय होने से उसके अंश भी अनिर्वचनीय हैं. जिस अंतःकरण रूपी अज्ञान के अंश में ज्ञान उत्पन्न हुवा उसी अंश की निवृत्ति होती है, इतर की नहीं होती.

(समीक्षा) अज्ञान के अंश मानना असंभव. उपर जो अंतःकरण के गमनागमन में चेतन की दुर्दशा कही वे सब दोष आवेंगे. अंशों का जब तब अंत (नाश) आने से ब्रह्म अनुपयोगी रहेगा.

(अन्य मत) चेतन का अज्ञान मे संबंध, सो संबंध बंध है, उस संबंध का नाश मुक्ति है, अज्ञान की निवृत्ति का नाम मुक्ति नहीं है. जो ऐसा न माने तो ज्ञान के उदय हुये समस्त अज्ञान भस्म हो जाने से बंधमोक्ष की व्यवस्था न होगी; अतः जीव एक नहीं है.

(अन्य मत) "अहमज्ञः ब्रह्मनजानामि," इस अनुभव से अज्ञान का आश्रय जीव है और शुद्ध ब्रह्म अज्ञान का विषय है. अज्ञानांश अंतःकरण अनंत हैं, इसलिये तिनमें प्रतिबिंबरूप जीव भी अनेक हैं. जिसमें ज्ञानोदय उसी अंतःकरण की निवृत्ति होने पर प्रतिबिंब का अभाव अर्थात् अपने बिंब में लय हो जाता है. इसके समकाल में ही अज्ञान भी तिस उपाधि को त्याग देता है, इसी का नाम मोक्ष है. इस पक्ष में अज्ञान का संबंध ही बंध और तत् निवृत्ति मोक्ष है. (उपर कहे अनुसार प्रतिबिंबवादवत् यह दूषित मत है).

(अन्य मत) अविद्या अनेक हैं, अतः तदुपहित-जीव भी अनेक हैं जिस जीव की अविद्या आत्म विद्या से निवृत्त हो जाती है सो ही मोक्ष है, अन्य को बंध

बना रहता है. अविद्या के नाश होने पर तिसके नाश के सस्कार बने रहते है, इसलिये जीवन मुक्ति भी बन जाती है विदेह मुक्ति मे वे सस्कार भी नाश हो जाते है. इस पक्ष मे अज्ञान की निवृत्ति का नाम ही मोक्ष है, अज्ञान के असबध का नाम मोक्ष नही है और अज्ञान अनेक है. इसमे प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, क्योकि प्रत्येक जीव को 'मे अज्ञ' ऐसा होता है और सब में अज्ञान के अनेक अंश है, एक नही (पूर्वोक्त गति वाले अतःकरण मे जो दोष आते है वे ही यहा आ जाते है).

(प्रश्न) नाना जीववाद मे यह सवाल होता है कि एक जीव की अविद्या से यह प्रपच रचा गया है वा तमाम जीवो की अविद्या से?

(उ.) सब जीवो की अविद्या का परिणाम प्रपच है (ततु पुंजपटवत्) सो ब्रह्म का विवर्त्त है एक के मुक्त होने से सब प्रपच नष्ट नही होता १ किंवा सपूर्ण अविद्याओ का कार्य जो प्रपच है सो अविद्या के भेद से जीव प्रतिप्रपच भिन्न २ है. जहा अनेको को शुक्ति मे रजत प्रतीत हो वहा अज्ञान भेद से रजत भी जुदा जुदा है और एक को शुक्ति का ज्ञान हुये दूसरो का रजत बना हुवा है. एव जीव जीव का प्रपंच भी जुदा जुदा है एक से दूसरा कहता है कि शुक्ति रजत में जो रजत तुमने देखा था वही रजत हमने देखा है, यह प्रतीति भ्रममात्र है ऐसे ही जो घट तुमने देखा सो ही हमने देखा, यह प्रतीति भी भ्रममात्र है. एवं तमाम अविद्याओ का कार्य प्रपच मान के भी जीव प्रति भिन्न २ प्रपच है. ३. गगनादि प्रपच जीव की अविद्या का परिणाम नही किंतु जीवो के आश्रित जो अविद्या उन समूह से भिन्न जो माया सो माया सब जीवो के साधारण प्रपन्च का उपादान है सो माया ईश्वर के आश्रित है.

जीवन मुक्तों के विचार — १. अविद्या मे आवरण ‡ विक्षेप * दो शक्ति है. ब्रह्म ज्ञान से आवरण शक्ति का नाश होता है, विक्षेप शक्ति वाले मूल अज्ञान का नाश नही होता प्रारब्ध नाश हुये निरावरण चेतन से विक्षेप शक्तिवान अविद्या (लेश) का नाश होता है २. जेसे लशुन के वासन धोने पर भी वास रह जाती है,

‡ आवरण शक्ति के २ भेद असत्वापादक (ब्रह्म नही है एसा भाव), अभानापादक (ब्रह्म नहीं जान पडता, ऐसा भाव)

* विक्षेप शक्ति के २ भेद सत्वापादक (प्रपन्च है एसा भाव) भानापादक (जगत प्रतीत होता है)

एव अंतःकरण का उपादान जो अविद्या तिसकी निवृत्ति होने पर भी अविद्याजन्य देह आदिको की स्थिति का कारण कोई वासना (अविद्या लेश) रह जाती है उससे जीवनमुक्त को देहादिक की प्रतीति बनी रहती है ३. जैसे दग्ध रज्जु प्रतीत होती है परन्तु कार्य करने मे असमर्थ है. ऐसे आत्मज्ञान कर के बाधित हुई कार्य करने में असमर्थ जो मूल अविद्या सोई लेश अविद्या कहाती है. प्रारब्ध भोग पीछे नही रहती ४. आत्मज्ञान हुये अविद्या लेश भी नहीं रहती किंतु कार्य सहित वासना सहित अविद्या की निवृत्ति हो जाती है शास्त्र विषे साधन रूप से प्रवृत्ति नहीं होती. बाधित वृत्ति से होती है.

आत्मज्ञान हुये पीछे उपाधि के लयकाल मे जीवत्वाभाव से रहित जो आत्मा है तिसका ईश्वर से अभेद वा शुद्ध ब्रह्म से अभेद? १ एक जीववादि कहता है कि अज्ञान एक है जीव भी एक है तिस जीव को ज्ञान हुवा कि शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति (ब्रह्म में अभेद) होती है. २. प्रतिबिंबवादि जिस उपाधि का नाश होता है उसके प्रतिबिंब की अपने बिंब मे स्थिति होती है याने मुक्त का शुद्ध ब्रह्म मे अभेद होता है. ३. जीव प्रतिबिंब और ईश्वर बिंबवाद की रीति से एक उपाधि मे आत्म ज्ञान के उदय हुये तिस उपाधि का बाध हुये सर्वज्ञ ईश्वर (बिंब) में उसका अभेद होता है (यह हास्यजनक कल्पना है).

उपरोक्त मतो के सिवाय वेदांतपक्ष मे अन्य भी मत है. सबका सिद्धांत चेतन एक है. सबका तात्पर्य अद्वैत आत्मके बोध में है आत्मा परमात्मा रूप याने ब्रह्मरूप है, इतना रहस्य है कोई भी मत मान लो सब अद्वैतवाद पर है, भेदवाद पर नही है.

अविद्या — अनात्मा मे जीवो की आत्मबुद्धि, इसका नाम अविद्या—अविद्या कृत बंध है. तिसके नाश का नाम मुक्ति है (अविद्या स्वरूपतः वस्तु नहीं है) मुक्त पुरुष का पुनरागमन नहीं होता. (शं.) प्रकाश रूप (ज्ञान स्वरूप) चेतन मे अज्ञान नहीं रह सकता? (उ.) जेसे प्रकाश में, जेसे तिरोहिततम चेतन मे, जेसे सांख्य की नट प्रकृति, विभुशुद्ध ईश्वर मे इच्छादि गुण, चेतन मे अधकार रात्री, जीवो में अनेक पदार्थो का अज्ञान रहता है वेसे ब्रह्म चेतन में अज्ञान रहता है सो बाहिर के तम जेसा नहीं किंतु उससे विलक्षण प्रकार का है. शुद्ध चेतन होने से वोह अज्ञान संबंध से मलीन नही होता निरवयव आत्मा के साथ अज्ञान के साथ (शरीरात्मावत) कल्पित संबंध है. आत्मा अपने को अशुद्ध मानता है, इसी भ्रांति का नाम

अज्ञान है. भ्रांति अनादि तद्वत अनिर्वचनीय अज्ञान अनादि है. अज्ञान ब्रह्म से विषय सत्ता वाला है, इसलिये दोनों का विरोध नहीं है. यथा शुक्ति में प्रातिभासिक रजत. एवं ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है, अज्ञान की प्रातिभासक सत्ता है; अतः परस्पर के बाधक नहो. अग्नि काष्टगतवत्–वृत्ति प्रतिबिंबित 'विशेष चेतन अज्ञान का नाशक होता है. (यहां वृत्ति ही विरोधी है) अज्ञान भी कल्पित ही है; केवल चेतन ही नित्य है.

उपर के मंतव्यो में अनेक दोष हैं. प्रकाश रूप ब्रह्म से विलक्षण अस्तित्व याने विषम सत्ता वाला प्रकाश्य जो कि अनिर्वचनीय है, यह दोनों और इनका अनिर्वचनीय संबंध और भेद इतना व्यवहार में कहना–मानना ही पडता है. वस्तुतः, चेतन अधिष्ठान में द्रश्य स्वप्नवत् है.

अन्य शैली.

अद्वैत थीयरी में यथा अधिकार उपदेश, डिग्री और पद्धति है. ब्रह्म कैवल्याद्वैत से इतर कुछ भी नहीं है (पारमार्थिक सत्ता) स्वरूपाप्रवेश की दृष्टि ले के देखो. जगत् रज्जु सर्पवत् (अर्थशून्य) दर्शन मात्र–नाम रूप ब्रह्म के विवर्त्त और अस्ति भाति रूप जो ब्रह्म सो उसका विवर्त्तोपादान. अधिष्ठान से विषम सत्ता वाला अन्यथा रूप सो विवर्त्त (सर्प) और स्वस्वरूप का न छोड के अन्यथा प्रतीत हो सो विवर्त्तोपादान (रज्जु), और विवर्त्तवाद है. (यहां जगत की प्रातिभासिक सत्ता है).

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या. याने ब्रह्म सत् (अबाध्य) है और माया का कार्य जगत् सत् से विलक्षण अनिर्वचनीय है. सत् असत् से विलक्षण को परिभाषा में मिथ्या कहते हैं. असत् कोइ वस्तु नहीं होती अतः सत् से विलक्षण कहा है. (शं.) तो फेर जीव चेतन क्या? (उ) जिसे जीव चेतन कहते हो सो ब्रह्म चेतन से अन्य वस्तु नहीं है क्योंकि चेतन एक ही है नाना वा परिच्छिन्न नहीं हैं. अतः **जीवो ब्रह्मैव नापरः** (यहां चेतन की परमार्थ सत्ता और जगत् की व्यावहारिक प्रातिभासिक सत्ता है).

(१) शास्त्रोक्त वर्णाश्रम की मर्यादा, कर्म उपासना, बहिरंग साधन और विवेकादि अंतरंग साधन की दृष्टि से विचार. इसी में वेद शास्त्र की मर्यादा है. तहां माया विशिष्ट चेतन ईश्वर (जैसा उपर कहा), अविद्या–अंतःकरण–वा अष्टपुरी विशिष्ट चेतन जीव अथवा साधिष्ठान साभास अंतःकरण विशिष्ट चेतन जीव अथवा चिदाभास

जीव, और माया (प्रकृति अविद्या) उपादान एवं त्रिवाद (जैसा उपर कहा है). जैसे स्वप्न सृष्टि में सब व्यवहार होता है. और स्वप्न का सिंह (शास्त्र-ज्ञान) आने पर सो स्वप्नसृष्टि और वोह सिंह निवृत्त होके जाग के स्वस्थिति में आ जाता है ऐसे ही वर्तमानाध्यास की वैसे शास्त्र द्वारा निवृत्ति हो जाती है. इस अविकार में उपादान (माया) से समसत्ता वाला अन्यथा रूप परिणाम कहाता है. ऐसे परिणामवाद है (यहां व्यावहारिक सत्ता है) क्योंकि अज्ञान निवृत्ति और स्वरूपानुभव होने के पूर्व क्षण तक सब त्रिपुटी व्यवहार सत् माना गया है. अन्यथा त्याग, ग्रहण, कथन, श्रवण ही नहीं बनता. इस प्रकार से शैली है.

जैसे रामलीला में रावण और कुंभकरण के कागज कृत पूतले बनाते हैं, आतिशबाज बारूद युक्त कागज का हाथी बनाता है, वहां उनकी बांक टेढ वगैरे के खंडन मंडन में प्रयोजन नहीं होता किंतु राम रावण के इतिहास बोध मे और फुलजडी मे आशय होता है, अंत में उनको आग लगा के उडा देते हैं. इसी प्रकार दृश्य अध्यास की निवृत्ति के लिये जिज्ञासु को समझाने वास्ते नाना प्रकार के अध्यारोप किये जाते हैं ताकि येनकेन प्रकारेण जिज्ञासु लक्ष्य पर पहुंच जाय; उनके निषेध से अधिष्ठान शेष स्वरूप का भान हो जाय. नहीं कि उन थीयरियों के मंडन वा खंडन में प्रयोजन है; क्योंकि वहा ही उन थीयरियो का अपवाद भी किया जाता है. उससे अधिष्ठान शेष का बोध हो जाता है. इसलिये थीयरियो मे जो गटबड है उसके खंडन में और जो व्यावहारिक भाग (त्रिवादादि) उसके मंडन में दुराग्रह करना व्यर्थ है. यूं है. परंतु वर्तमान मे प्रत्येक पद्धति वा थीयरी को इत्थमभाव से मान के विवाद हो पडा है. * और अद्वैतवादि तथा द्वैतवादि उक्त सत्ताओं का मिश्रण कर डालते हैं, इसलिये पद्धति के प्रकार और अपवाद जनाते हे—

* जैसे क. आदमी बालकों को गुडडे गुड्डी रमा रहा हो तब उसके ज्ञान वा शक्ति का उपयोग उसमें हो रहा है नहीं कि उसको अज्ञान वा भ्रम है वा अध्यास है, परंतु अधूरे पुरुष उस क में अज्ञान, भ्रम अध्यास का आरोप करते हैं. आसमानी काच के संबंध से सूर्य का प्रकाश आसमानी जान पडता है, उसके साथ उपयोग होता है नहीं कि प्रकाश आसमानी हुवा है. इसी प्रकार सब चेतन ज्ञान प्रकाश का उपयोग-माया-अविद्या-उसके परिणाम अंत:-करण उसके परिणाम-अष्टपुरी-उसके गमनागमन मे घटाकाश मठाकाशवत् हो रहा है, नहीं कि उसको अज्ञान-भ्रम-अध्यास है, और तादात्म्य संबंध होने से विशेषण तथा उपाधि जैसा जान पडता है

विशेष शैली.

एक अध्यारोप उपर कहा है– उसी को लेके ज्ञान भाग कहते हैं.

जो इस संसार के बंधन (संसारी दुःख आगमापायी संसारी सुख) से छूटना चाहता है, जिसको दुःख सुख होते हैं किंवा जो दुःखी सुखी है, किंवा जो दुःख सुख मानता है, जो पुनर्जन्म में नहीं आना चाहता, जो नित्य सुख (मोक्ष) की इच्छा रखता है, जो तत्त्व निर्णय वा तत्त्वप्राप्ति की इच्छावाला हो, ऐसे कर्म सिद्धि, उपासना सिद्धि, विवेक वैराग्य शमादि षड् और मुमुक्षुता इन चार साधन संपन्न (अ. ४ गत संग्रहवाद मे लक्षण कहे हैं) हो उसके उपाय (प्रयत्न) पूछने पर उसको उपदेश किया जाता है. वह कोन? जिसे दुखः सुख है, जिसको पंचक्लेश वा तीन ताप होते हैं, जिसे लोक में जीव कहते हैं. अथवा जो सवाल कर रहा है, सो–जीव है. इसका अनुभव निदिध्यास–योगजा विवेकख्याति मे हो जाता है.

हे जिज्ञासु– यह दृश्य (ब्रह्मात्मा से इतर सब अनात्मा) रज्जु सर्पवत् भ्रांतिरूप है, मृग तृष्णिकावत् देखने मात्र हैं, स्वप्नवत् मिथ्या है, आकाश की नीलतावत् स्वाभाविक अवभास मात्र है. तुझको अनात्मा में आत्मा के धर्मो का और आत्मा में अनात्मा के धर्मो का अध्यास हो रहा है, क्योंकि अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध होने से अनात्मा (माया–अविद्या–अंतःकरण–अष्टपुरी) यह आत्मा का विशेषण भी है और उपाधि भी है, ऐसा भाव जान पडता है. तेरे ज्ञान स्वरूप का उनमे उपयोग (तदाकार) हो रहा है, इसलिये तू अपने स्वरूप को उनमें उपयोग न कर. चित्त का निरोध (निदिध्यासन) करके अपने (तुरीया) स्वरूप मे स्थित हो तो तू अहं (वा तू) पदका लक्ष्य है याने तेरा आत्म स्वरूप ब्रह्मस्वरूप बंध मोक्ष से रहित नित्य शुद्ध समचेतन है. (ब्रह्म स्वरूप है). यहां अहं वा त्वं यह दोनों बुद्धि वृत्ति के परिणाम (भाग) हैं चेतन विशिष्ट अंतःकरण + वा अंतःकरण विशिष्ट चेतन उन अहं, त्वं का वाच्यार्थ है और कूटस्थात्मा–प्रत्यगात्मा (उपहित–अवच्छिन्न चेतन–समब्रह्म चेतन) लक्ष्य हैं.

परंतु चेतन को बीच में लिये बिना जिज्ञासु को व्यवस्था (कर्तृत्व भोक्तृत्व, बंध मोक्ष) समझ मे न आवे इसलिये चेतन को अनादि से अज्ञान–भ्रम–अध्यास का आरोप कर के उसकी निवृत्ति करते हैं वस्तुत व्यष्टि समष्टि ब्रह्म निर्विकार निरवयव सम चेतन है तद्वत् उसने इच्छा की कि सरज् बहुरूप हो जाऊ, इत्यादि अध्यारोप है फेर उसका अपवाद है परंतु वर्तमान में पाठक वृंद आरोप को आरोप नहीं मान के इदंसत्य जान के विवाद करते हैं.

+ पूर्वोक्त अष्टपुरी अविद्या का उपलक्ष्य

(शं.) अनात्मा क्या? अनात्मा आत्मा का व्यवहार क्यों और कैसे? दुःख सुख क्या? इस और ऐसे अध्यास की निवृत्ति का प्रकार क्या?

(उ.) अस्ति (सत–है), भाति (प्रतीति, प्रतीति रूपता), प्रिय; इस प्रकार सत चित्त आनंद की उपलब्धि होती है. और आकार (नाम रूप) बदलते देखते हैं, वे तीनों पूर्ववत रहते हैं. इससे जान पडता है कि आकारमात्र (घटादि से लेके परमाणु और उससे आगे सत, रज, तम पर्यंत) यह सब किसी अनिर्वचनीय शक्ति के परिणाम हैं. उसको नही जान सकते, और उसके कार्य से उसकी सिद्धि होती है, और वोह सद्ब्रह्म से विलक्षण है, इसलिये उसको **अनिर्वचनीय** § संज्ञा देते हैं. वोह अनाधार नहीं जान पडती और ज्ञेय (प्रकाश्य) होती है; अतः उसके अधिष्ठान प्रकाशक की **ब्रह्मचेतन** संज्ञा है. और उसकी माया–शक्ति–मूल संज्ञा है.

चिदाकाश ब्रह्माधिष्ठान में अनिर्वचनीय माया के अनिर्वचनीय आकार (परिणाम) होते हैं वा भासते हैं. वे चेतन के विवर्त्त हैं चेतन उनका विवर्त्तोपादान है. जैसे डोरी का सर्प, आकाश की नीलता और द्दष्टा में स्वप्न सृष्टि माया के अविद्या, बुद्धि वा अंतःकरण रूप परिणाम अवच्छिन्न (वा विशिष्ट) चेतन, जीव भाव से जान पडता है. वे अनेक होने से जीव भी नाना जान पडते हैं. यह अवच्छिन्न ब्रह्म का अंश (घटाकाशवत् अंश) आत्मा प्रत्यगात्मा कूटस्थ है. उभय मिल के जीव संज्ञा है. माया के शुद्ध महत परिणाम अवच्छिन्न (वा विशिष्ट) चेतन, ईश्वर भाव से मानना पडता है. वोह एक है इसलिये ईश्वर एक है, कार्य (जगत रचना) से उसका अनुमान होता है.

जैसे महाकाश घटोपाधि से साकार और सक्रिय जान पडता है; ऐसे अंतःकरण अवच्छिन्न चेतन कर्ता भोक्ता मालूम होता है अर्थात् उसके धर्म क्रिया दुःखादि प्रत्यगात्मा में जान पडते हैं. *जैसे बादलावच्छिन्न महाकाश अन्यथा जान पडता है* वा जैसे मठाकाश और प्रकार का मालूम होता है, वैसे मायावच्छिन्न ब्रह्मचेतन में माया के धर्म (आकार, क्रिया, इच्छा, शक्तिमता इत्यादि) भासते हैं. और इससे उल्टा भी अर्थात् चेतनत्व ज्ञातृत्व जो चेतन के धर्म है सो अंतःकरण में और सर्व साक्षीत्वादि जो महत् चेतन के धर्म हैं वे माया में जान पडते हैं. इस प्रकार अन्योन्याऽध्यास होने से अन्यथा अवभास होता है ऐसे यह अनादि अनत नैसर्गिक अध्यास है.

§ हेगलादि फिलोसोफर और शक्तिवादि अधिष्ठान बिना की एक शक्ति की अनेक गतिरूप वा परिणाम रूप त्रिपुटी संसार मानता है.

अध्यास का तद्भाव तदप्रकारक ज्ञान न होने तक याने अज्ञान काल मे जीव, ईश्वर, प्रकृति तिनका संबंध और तिनका भेद, तथा बंध पुनर्जन्म, स्वर्ग नरक, विधि निषेध, कर्म उपासना, उनके प्रतिपादक शास्त्र, सालोक्यादि मोक्ष और वहां से पुनरावृत्ति इत्यादि असफल नही किंतु उनके सफलत्व के भान का प्रवाह है. अर्थात सत रूप से व्यवहारे जाते हैं.

इसी प्रवाह में विवेकादि चतुष्टय साधनसंपन्न जिज्ञासु के उपदेश होता है. प्रथम जीव ब्रह्म की एकता (कूटस्थ प्रत्यगात्मा ब्रह्म स्वरूप ही है वे जुदा जुदा दो वस्तु नहीं हैं किंतु वाहिर भीतर सर्व में एक विभु चेतन है) लक्षण द्वारा अर्थात माया भाग (परिच्छिन्न, अंतःकरण, कर्तृत्वादि) जुदा कर के उपदेश किया जाता है; इसमे उसका साक्षात बोध हो जाने से भेद अज्ञान और उक्त अध्यास की निवृत्ति हो जाती है. इसलिये अज्ञान को अनादिसांत कहते हैं जिनको ऐसा साक्षात है वे श्रुति रहस्य ज्ञाता ही शिक्षक होने योग्य होते हैं. जिस जीवाभिमानी का अध्यास निवृत्त हो जाता है उसको वह ब्रह्म रूप जान पडता है. उसको नानात्वरूप जो जीव भाव सो और उसके बंध मोक्षादि नहीं भासते; क्योंकि माया के परिणाम किवा माया से जो अवभास होता है सो उसकी दृष्टि में बाध रूप जान पडता है, इसी का नाम माया अनादिसांत है; क्योंकि तुरीया में उसका अभाव हो जाता है. इस प्रकार स्वरूप का साक्षात और अध्यास की निवृत्ति यह दोनों बातें हो जाती हैं. उससे सूक्ष्म बंध (सूक्ष्म शरीर) का मूल जो वासना उसका मूल उखड जाता है सच्चिदानंद ब्रह्म शुद्ध अवद्धरूप से अनुभवाता है यही उसको परमानंद की प्राप्ति और अनर्थ की निवृत्ति है, किवा यही उसकी मुक्ति और मुक्ति से अनावृत्ति है. इसी का नाम मुक्त हुवा (याने कूटस्थात्मा मुक्त ही था—अध्यास से बंध जान पडता था सो निवृत्ति होने से) मुक्त होता है. (मुक्त कहाता है). यद्यपि ऐसा ज्ञानी पुरुष जीवनमुक्त है, तथापि शास्त्रीय व्यवहार में यू कहा जाता है कि प्रारब्ध भोग (पूर्वाभ्यास बल–अविद्या लेश) तक वोह बंध है. उसके मुक्त होने में प्रारब्धका भोग हो, इतनी बार है. प्रारब्ध भोग पीछे याने शरीर के नाश काल मे उसके प्राण (मन, प्राण, इंद्रिय याने सूक्ष्म शरीर किवा वासनामय सूक्ष्म शरीर) की अनुत्क्रांति है. अर्थात वोह उसके मूलकारण में लय हो जाता है. इसलिये पुनर्जन्म नही होता. बस.

(शं.) अध्यास, अज्ञानादि सामग्री के विना नहीं होता तो ब्रह्म और अध्यास से इतर सामग्री वताना चाहिये. (उ.) पूर्व पूर्व सस्कारो का उत्तरोत्तर अनादि प्रवाह

है. (शं.) किस को अध्यास? अर्थात् अध्यास को अध्यास नहीं. ब्रह्म को नहीं तो उससे इतर कोई बताना चाहिये. (उ.) मैं, का जो लक्ष्य कूठस्थात्मा उसके साक्षात होने पीछे आपही उत्तर हो जायगा. स्वप्न काल में स्वप्न को स्वप्न कहना अनुपयोगी है. किंवा जो शंका करता है उस ही को अध्यास है; यह वादिमति उत्तर है. (शं.) साक्षात् किसका और किसको, जीव ब्रह्म की एकता का ज्ञान किसको? (स.) स्वप्न से उठो अर्थात् मैं का लक्ष्य का अनुभव होने पर आप ही उत्तर हो जायगा.

माया के स्वरूप प्रसंग में अनिर्वचनीय शक्ति, स्वप्नवत् बाध रूप इत्यादि के सिवाय अन्य कुछ नही कह सकते. ब्रह्म से इतर जितने अनादि पद से आरोप किये जाते हैं उनको अध्यास के अंतर्गत समझ लेना चाहिये. "अध्यारोप अपवाद" इस शास्त्रीय पद्धति से सब प्रकार का भेदभाव और सब प्रकार की शैली तथा मंतव्य यहां तक कि ब्रह्मबोध स्वरूप स्वप्रकाश संज्ञा कहने के योग्य हो उसकी पूर्व क्षण तक सब कुछ मान सकते हैं; क्योंकि अध्यास की विचित्रता है, (सस्कारी) माया अनेक परिणामी है. तथापि सर्व का अपवाद हुये अत मे केवळ अद्वैत ब्रह्म शेष रहता है. (शं.) यह ज्ञान किसको (उ.) पूर्ववत्. याने आत्मानुभव उत्तर दे देगा ‡ (शं.) आत्मा ने इच्छा की, एक से अनेक होऊं, यथा पूर्वम् अकल्पयत, इन श्रुतियों की क्या दशा? (उ.) व्यावहारिक सत्ता मे अध्यारोप है पारमार्थिक में उसका अपवाद है.

श्री शंकर के मुख्य शिष्य सर्वज्ञ मुनि ने सक्षेप शारीरिक ग्रंथ में लिखा है (पूर्व सिद्ध ट. १ देखो)—ईश्वर, जीव और उनका भेद अज्ञान (माया) के उत्तरभावी (परिणाम होने से अनादि नहीं. इस स्पष्टिकरण से सिद्ध हो जाता है कि माया के अंतःकरणादि परिणाम होते रहने है और जीवो को स्वरूप का बोध होता रहता है; इसलिये ऐसा यह अनादि अनंत नैसर्गिक प्रवाह है. या यू कहो कि बंध मोक्ष होते हुये भी सृष्टि के प्रवाह का अनुच्छेद है. (शं.) जो यूं हो तो ब्रह्म हमेशे बद्ध और मुक्त होता रहेगा. (उ.) उपर कहे समान अध्यास उत्तर है. ब्रह्म तो नित्य शुद्ध, अबद्ध, अविकारी और निर्लेप है. (स्व मत).

---

‡ शंकर श्री के वाक्यो में कहीं कहीं विरोधाभास ज्ञात पड़ता है, उसका कारण ऐसा मालूम होता है कि दर्शन पद्धति से ग्रंथ नहीं लिखा है. तथापि सिद्धांत के अंतिम स्वरूप मे कहीं विरोध नहीं है

जीव, ईश्वर, बंध और मोक्ष का स्पष्टीकरण जेसा श्री शंकर ने किया है वेसे पहिलों ने नहीं किया. अर्थात् श्रुति से अविरुद्ध, श्रुति विरोधाभास की निवारक, वर्णाश्रम व्यवहार निर्वाहक और अंत मे रहस्य पर पहुंचाने वाली इन्हीं महात्मा की नवीन थीयरी (फिलोसोफी) है. आत्मानुभव की परीक्षा कर के इनकी शैली से श्रुति (वेदोपनिषद) वेदांतदर्शन और गीता को मिलाइये, सबका खुलासा हो जायगा और वे तीनो एक लक्ष्य पर हैं ऐसा स्पष्ट हो जायगा. शैली का पृथकृत्व * लक्ष्य विरोधी नहीं होता।

* जीव सादि, अनादि, सांत, अनंत, अणु, विभु, मध्यम, सावयव, निरवयव, जड चेतन. तद्वत् ईश्वर अक्रिय, सक्रिय, मूर्त अमूर्त, विभु, परिच्छिन्न, परिणामी, अपरिणामी, कर्ता अकर्ता इत्यादि बताना. परंतु जब विचारें तब इन विरोधी विशेषणो मे 'सृष्टि नियम विरुद्ध' ऐसा न कह सकें, विरुद्ध धर्माश्रयत्व का अवसर न हो, और परीक्षा करें तो ठीक जान पड़ें तथा व्यवस्था वाले हो, ऐसी शैली का पृथकृत्व हो। तब वर्णाश्रम विधिनिषेधादि सिद्ध बताके मुकरना, यह ऐसा भेद है जैसा कि हाथ मे जो पुस्तक वोह नहीं देखते, माथा काटने से धन मिले, वा यह मुकरनी पहेली. सारांश शंकर श्री का कथन उपर से और प्रकार का जान पडता है और पीछे अन्यथा सिद्ध होता है. इसलिये शंकर श्री के कथन पर जो प्रतिपक्षी आरोप वा आक्षेप करते हैं यह उनकी भूल जान पडती है. जिसने वक्ष्यमाण सत मत के अनुसार सुप्तता और हिरण्यगर्भ की सेर–अनुभव किया है वोह विवर्त्तवाद को और माया के स्वरूप को स्वीकार कर सकता है.

माया कर के यह दृश्य अनादि अनंत अवभास रूप है (याने माया के परिणामो का स्वप्नवत् प्रवाह है), चेतन (आत्मा) के साथ अनिर्वचनीय तादात्म्य संबंध होने से आत्मा अनात्मा का अन्योन्याध्यास (संसर्गाध्यास) है, इसलिये जीव दुःखी सुखी होता है. जेसे कि कुत्ता काच वा पानी में अपना प्रतिबिंब देख के उसे सत् मान के भुसता है, सिंह अपना प्रतिबिंब कूप के जल में देख के कूप में पडता है, चिडिया अपना प्रतिबिंब देख के उसके साथ लडती है और चकचक करती है, बालक अपना प्रतिबिंब देख के उसके साथ खेलता है और वोह न हो तो रोता है. मृगजल देख के पानी लेने जाते है क्यों? प्रतिबिंबो का और मृगजल का यथावत् स्वरूप नहीं जानते. इसी (प्रतिबिंब मृगजल) जैसा इस दृश्य का स्वरूप है (मानो प्रतिबिंब बिना का प्रतिबिंब जैसा आकार मात्र होवे नहीं), परंतु जीव उसको वेसा नहीं जानते किन्तु

शोधक (संक्षेप में).

(क) उपरोक्त कितनीक थीयरियों का अपवाद जहां का तहां लिखा गया है.

(ख) उससे उत्तर के विकल्पों का अपवाद भी दूसरे प्रसंगों में आ चुका है अर्थात् ब्रह्म चेतन वा उपहित चेतन (जीव चेतन) को अज्ञान, भ्रम, अध्यास वा इच्छा होना सिद्ध नहीं होता और मानें तो अव्यवस्था होती है. तद्वत् ब्रह्म का आभास वा प्रतिबिंब वा ब्रह्म में आभास वा प्रतिबिंब सिद्ध नही होता और जो वेसा मानें तो अभास-प्रतिबिंबरूप जीव वा ईश्वर क्षणिक होने से दोषों की आपत्ति होगी (त. द. अ. ३ पृष्ट ७६९ से ७८१ तथा उ. द. अ. २ पेज ४३२ से ४३३ तक और दर्शनसंग्रह में जो वेदांतदर्शन गत विवर्त्तवाद का अपवाद लिखा है सो देखो). तथा पूर्व में कुछ नही था और ब्रह्म ने अपनी इच्छा से (माया में से वा अभाव से वा अविद्यावश वा अपने में से) सृष्टि कल्पी-रची ऐसा मानें तो उसमें भी दोष आते हैं. (अ. ३ पेज ६९४ से ६९८ तक, पेज ६९८ से ६६६ तक. दर्शन-संग्रह गत वेदांत प्रसंग, गोडपादाचार्य श्री की थीयरी देखो).

सत रूपवत समझते हैं; इसलिये उसके तादात्म्य संबंध होने से दुःखी सुखी हो रहे हैं, अथवा अपने को दुःखी सुखी मानते हैं अर्थात् माया और उसके नाम रूप आत्मक जो जगत् है उसका यथावत् स्वरूप नही जानने से क्लेशित हैं. तीन ताप पंचक्लेश का जो मूल यह अन्यथा अवभास वा अध्यास उसकी निवृत्ति के अभिप्राय से शंकर श्री का उपदेश है. इस संसर्गाध्यास की निवृत्ति और माया का जो स्वरूप और प्रकार का (सत्य रूप) भासता है इस अज्ञान की निवृत्ति अध्यात्म विद्या से हो जाती है (यही आशय है). परंतु बाधित रूप में तो शरीर पर्यंत सो रहता ही है जिसे अविद्या लेश कहते हैं.

सार यह निकला कि दृश्य का मिथ्यात्व, ज्ञान विचार में है, उसके अनुसार जीवन पर्यंत उपयोग नहीं हो सकता. द्वैतरूप अध्यास नहीं जा सकता. ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या, यह भी तो एक प्रकार का भावना रूप अध्यास है; इसलिये अध्यास का मूल काटने और वासना आसक्ति का अभाव हो जाने वास्ते शंकर श्री की थीयरी बस है, जो कि उनके समय में तो उपयोगी ही हुई थी, और वर्तमान में वेसे कर्म उपासना सिद्ध विवेकी विरागी-मुमुक्षु याने अधिकारी विरले होने से यथावत् उपयोग की कमी हो, यह स्पष्ट है.

इसके सिवाय पुनः इसी प्रसग सबधी कुछ विचार लिखते हैं—

(१) जो ब्रह्म दूधवत् परिणामी तो मावयव ठेरेगा. पुनः विकृत परिणामी तो दूषित रहेगा और यदि अविकृत (जल तरग कनक कुंडलवत्) परिणामी तो जीव का आद्यजन्म मानना होगा और कर्म अनुसार जन्म न मान सकने से बध मोक्ष और उसके साधन ज्ञानादि की व्यवस्था न होगी. तथा विवर्त्तवाद न रहा (अ. २ पेज १९१ मे १९८ तक तथा शुद्धाद्वैत का अपवाद देखो). परतु शकर श्री ब्रह्म चेतन को सर्वथा निरवयव, शुद्ध, निर्विकल्प और एकरस मानते है, इसलिये यह आरोप उपचार मात्र है. यू मान लें.

(२) परतु माया अविद्या नामा उपाधि से जगत् भासता है, ऐसा मानें तो बध मोक्ष साधन फलादि तद्वत् होने से अव्यवस्था. माया (अविद्या और उसके कार्य) यदि मिथ्या-असत् तो यह मतव्य कथन भी मिथ्या, और यदि सत्य तो स्वपक्ष न रहेगा.

(३) यह अनादि अध्यासरूप है किंवा पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तराध्यास का प्रवाह है ऐसा मानें तो १. स्वप्न रज्जु सर्पादि साध्यसम (अध्यास के अतर्गत) होने

जगत् स्वप्नवत् है, नहीं कि किसी का स्वप्न है और तमाम विधिनिषेध (धर्म-अर्थ-काम-मोक्षादि) भी वैसा ही है, परतु जैसे बिल्ली छीके पर रखे हुये दूध को जब नहीं पहुच सकती तो छाकती है अर्थात् दूध को 'थूकड्वा' मान के वहा से निवृत्त हो के माटी खाने को चल निकलती है, इसी प्रकार जो इंद्रिय और विषयो के दास है, विद्या फिलोसोफी के समझने मे अशक्त हैं, ससार में जिनको आसक्ति है, पुरुष प्रयत्न करने मे प्रमादि है, देश, काल, स्थिति और परिस्थिति को नहीं जानते, विवेक वैराग्य का जिनको स्पर्श नहीं है, और विवेकख्याति प्रापक योग साधने में भी असमर्थ है-वे शकर के सिद्धात को दूषित वता के विषयो में जा रमते हैं. वा तो जगत को अजात (शून्य) कह के कर्तव्य अकर्तव्य का उल्घन कर के आप आलसी दुःखित हो जाते है और दूसरो को भी वैसा बनने के लिये आदर्श बनते है मेरी मान्यता अनुसार तो यह है कि अधिकारी यदि शकर सिद्धात यथावत् समझ जाय तो समझने वाला जीवनमुक्त हुवा निर्भ्रात निष्फल पुरुषार्थी बन के राम, कृष्ण, वशिष्ट, जनक और शंकराचार्य श्री के मुताबिक अज्ञानी, दुःखी और जिज्ञासुमनो की सेवा करने लग जाय, कारण कि ऋण मुक्त हुवा ऋणी है. यहा अर्जुन प्रति जो श्रीकृष्ण का उत्तम उपदेश (कर्म योग-निष्काम कर्म) है सो ध्यान में लेना चाहिये.

सेअध्यास सिद्धि मे दृष्टांत–उदहारण नहीं मिलता. २. अध्यास होने की सामग्री (सामान्य ज्ञानादि) सिद्ध नहीं होती (त द ७६९ मे ७८१) ३ अध्यासी कोन और यह अध्यास है ऐसा सिद्ध ज्ञान किसको हुवा? ज्ञान स्वरूप ब्रह्म को अध्यास है, ऐसा कहना बने नहीं. माया का परिणाम अविद्या, अतःकरण, उत्तर परिणामी है याने अध्यास के कार्य है तेसे ही आभास भी इसलिये अत.करण विशिष्ट चेतन वा साभास अतःकरण चेतन जीव को अध्यास है, ऐसा कहना भी बने नहीं और अध्यास (माया आभास वा अन्य) को अध्यास बने नही. तथाहि अध्यास काल मे अध्यास, अध्यासरूप से विषय होने नही, इसलिये अध्यास की असिद्धि है.

यह अध्यास है, ऐसा तो विषय होने नहा, अध्यासरूप था ऐसा निषय हुवा करता है, तहा ऐसा ज्ञान किसको? ब्रह्म निर्विकल्प है उसमे यह भाव बने नहीं और अविद्या, अतःकरण तथा आभास को और तद्विशिष्ट चेतन याने जीव को होना बने नहीं, क्योकि अविद्यादि अध्यास के कार्य है बाध काल मे वे होवे नही. इसलिये विशिष्ट में भी होवे नही; इस रीति मे अध्यास का प्रयोग ही नही बनता

(४) इसी प्रकार जीव ब्रह्म का भेद है वा एकता है, ऐसे ज्ञान होने के सबध में कल्प लेना चाहिये याने ब्रह्म को, अविद्या को, अत.करण को, आभास को किवा अष्टपुरी को अथवा (जीव तद्विशिष्ट चेतन) को उक्त भेद वा अभेद का ज्ञान नहीं हो सकता–इसलिये एकता का प्रयोग भी नही बनता. ऐसे ही बध मोक्ष इन तीनो में से किसकी? इस विषय में कल्पना कर लेना चाहिये (किसी की भी सिद्ध न होगी)

जीव ब्रह्म की एकता का उपयोग वा फल भी देखने मे नहीं आता अर्थात् न तो एक के ज्ञान से सबको ज्ञान होता है न अज्ञान–माया नष्ट होती है और न वैसे ज्ञानी ब्रह्मवित् अक्रिय होते है और न एक की मुक्ति से सबकी मुक्ति होती है किंतु पूर्व पूर्व मे उपदेश और बध निवृत्ति तथा मोक्ष प्राप्ति के साधन का प्रवाह चल रहा है अब जो उपाधी भेद से ऐसा होना मानें तो यह ज्ञान भी और साधन भी वैसे ही उपाधि वश वाले मानने होगे. याने उपाधि रूप ही है अतः व्यर्थ है

जो ब्रह्म में ही जीवत्व की भ्राति मानें तो ज्ञान स्वरूप होने से असभव और अनुपपत्ति है जो अनादि से ऐसा होना मानें तो निवृत्ति का हेतु नहीं मिलता, क्योकि भ्राति मे भ्राति की निवृत्ति और विद्या (सच्चे ज्ञान) की उत्पत्ति नहीं हो सकती और इन दोनो से इतर साधन का अभाव है. अतः प्रपच सत् ठरता है.

जो ब्रह्म से इतर के ब्रह्म जीव है, मै (ब्रह्म) जीव हू, ऐसी भ्राति हो तो उसकी और ब्रह्म की एकता का कथन ही नहीं बनता. और न उपयोग.

अविद्या, अतःकरण वा अष्टपुरी उत्तर क्षण में होने से जीव सादि और कर्ता भोक्ता है, उसका सर्वथा अकर्ता, अभोक्ता एकरस अनत ब्रह्म के साथ असभव, यह स्पष्ट है, इसलिये लक्षणावृत्ति द्वारा एकता मानें तो भी दोष आता है (१) चेतन ब्रह्म एक है, नित्य शुद्ध, अबद्ध और कूटस्थ है, यह परिणाम आता है, नहीं कि जीव ब्रह्म की एकता (२) जिसको उक्त ज्ञान हुवा सो जीव ब्रह्म रूप हो जाने से उसकी जगत् में अनावृत्ति इसलिये जब तक सृष्टि का उच्छेद होगा और अकेला ब्रह्म अनुपयोगी रह जायगा, यह दोनो बातें असभव है (३) जो आवृत्ति मानें तो अनुत्क्राति और अनावृत्ति पद के विरुद्ध है तथा शुद्ध प्रदेश ब्रह्म पुनः जीव (भेद वाला वा अन्यथा) हो जायगा. (शब्द प्रमाण याने श्रुति वाक्य का यहा प्रसंग लेना ठीक नहीं समझा गया)

(९) बध मोक्ष, कर्म, उपासना, ज्ञान और विधिनिषेधादि सर्व दृश्य रज्जु सर्पवत् वा स्वप्नवत् मान लें तो अज्ञान और ज्ञान भी वेसा ही मानना पडेगा. परिणाम यह आवेगा कि यह सब—कुछ नही, किवा ऐसा होते रहने वा प्रतीत होने का प्रवाह है, तो फेर भेद अभेद, द्वैत अद्वैत वा एकतादि का पक्ष विपक्ष क्यो ?

(१) अब यह बात रही कि अनुभव करने से सब शका का उत्तर—समाधान हो जायगा. तहा सब पक्षकार अपने मतव्य वास्ते प्रायशः ऐसा ही कहते है और जो अनुभव करने की रीति (अधिकार प्राप्ति) बताते है (भक्ति, उपासना, योग वा यज्ञादि) उसमे तन, मन, धन और काल का व्यय करना पडता है अर्थात् इसलिये प्रवृत्ति नही होती कि कोन जाने किसका मतव्य कथन सत्य होता है, क्योकि सत् तो एक ही होगा, इसलिये निश्चय निर्णय विना तनादि का व्यर्थ उपयोग क्यो करें. और यदि विश्वास को साधन न मानें तो उस विषे भी अनेकातत्व है. कोई किसी का तो कोई दूसरे का विश्वासी होता है, इतना ही नही किंतु एक दूसरे के विरोधी सिद्धात में भी वा विरोधी पक्षकारो में भी विश्वास होना देखते है (पुनर्जन्म, अपुनर्जन्म, अभावना, भावजागत्) *

---

* जो जिस जिस प्रकार से आत्मानुभव करलें और सृष्टि नियमों का साथ न ले लें, तो अद्वितीय ब्रह्म चेतन (प्रकाश-आत्मा पुरुष और अनिर्वचनीय माया (प्रकाश्य-अनात्मा-रचित) वाद और श्री शकर की चौपरी का रहस्य जान सकते है अन्यथा तो अन्यथा याने अर्थवाद मात्र

(७) ओर जो ऐसा मानें कि ' नभ की नीलता ज्ञानी अनानी उभय को जनाती है. और आकाश तवु आकार देख पडता है तहा आकाश का अज्ञान ओर नीलता के सस्कार, ओर आकाश तथा नीलता का सादृश्य नहा होने से अज्ञानादि तीनो अध्यास के हेतु नहीं है अर्थात् तीनो दोप विना नीलता का अध्यास हे इसा प्रकार तीनो दोप रहित ब्रह्म चेतन वा उपहित चेतन (जीव) को अध्यास हे, अत. उक्त आक्षेप ठीक नहीं हो सकता अर्थात् दृश्य अध्यासरूप हे. ' इस मतव्य का यह परिणाम आता हे कि यह अनादि अनत नैसर्गिक अवभास है, नही कि अर्थ-शून्य असत् (मिथ्या), कारण कि अत्यत निवृत्ति के विना अध्यास पद का आरोप नही हो सकता ओर बालक को सस्कार के विना भी आकाश नीला जान पडता है और ज्ञानवान योगी को आकाश का ज्ञान हुये भी नीलता तथा तबु आकारता भासती है अर्थात् नीलता के भासने मे आकाश का अज्ञान ओर नालता के पूर्व सस्कार और सादृश्य दोप यह हेतु नहीं है ओर उसकी आत्यतिक निवृत्ति भी नहा होती, इस लिये अध्यास रूप नहीं अतर इतना ही ह कि आकाश के ज्ञान होने पाछे 'आकाश नीला' ऐसा अन्यथा ज्ञान नहीं होता. नीलता का स्वाभाविक प्रवाहिक अवभास होता है, ऐसा निश्चय होता है. इसी प्रकार ब्रह्म चेतन में दृश्य का नीलता वा स्वप्न समान स्वाभाविक अवभास ह (अध्यासरूप नहीं) ओर उसका चेतन म चेतन का उसमें तादात्म्य होने से ससर्गाध्यास–अन्योऽन्याध्यास ह ऐसा मानना पडेगा सा भी वृत्ति की दृष्टि से, नहीं कि चेतन का हे, क्योकि प्रमात्व अप्रमात्व यह दोनो विद्या अविद्यारूप वृत्ति के परिणाम ह ओर चेतन प्रकाश में स्वतोग्रह्य होते हैं (विस्तार व्र सि में है)

क बध अंतकरण ओर ख मुक्त अत करण काशी स मथुरा जाते हैं क देवयान पितृयान में जाते हैं उन अवच्छिन्न काशा वाला चेतन भाग मुक्त–निरावरण हो गया. परतु मथुरा वाला एक भाग बध (अत करण बद्ध) हो गया काशीवाले चेतन भाग में दूसरे अतःकरण आये तो वे उभय मुक्त भाग बध हो गये एव जो अविद्या वा अंत.करण वा अष्टपुरी विशिष्ट चेतन को जीव मान के नाना जीव मानोग तो बडा भारी दोप आवेगा इसलिये रागादि बध, जन्म मरण, मोक्षादि सब अविद्या–अत करण के धर्म मानने चाहिये जीव ब्रह्म की एकता का आग्रह व्यर्थ है (ग) देश में आना जाना, चेतन म सबध असबध सक्षेप में देशकाल ओर वस्तु स्वप्नवत् है अतः उक्त भाव बने नहीं (ङ) तो अनादि नाना जीव, उनका बध मोक्ष, जीव

ब्रह्म की एकता वा भेद भी स्वप्नवत् कहना चाहिये; इसलिये आग्रह का निषेध है हां जल मछली समान चैतन्य, व्यवहार का निर्वाहक तथा प्रकाशक है, इसलिये उसको बीच में लेके वर्णाश्रम वा जगत् के व्यवहार की व्यवस्था करना यह दूसरी बात है और है भी ऐसा ही. (व सि गत अपरोक्षत्व और स्वतोग्रहवाद देखिये).

जब ब्रह्मज्ञान-आत्मज्ञान हो जाता है उस पीछे भी रज्जु सर्पवत् सर्प नहीं, ऐसे रूप में बाध नहीं होता अर्थात् दृश्य संस्कारवश मुझे भासा था-भ्रम हुवा था, अब नहीं है, ऐसे रूप में बाध नहीं होता किंतु दृश्य तुच्छ है, क्षणभंगुर है, स्वप्नवत् प्रतीत मात्र है ब्रह्म जैसा सत् रूप नहीं है, किंतु अन्यथा है, ऐसे रूप में बाध होता है; इसलिये दृश्य को अज्ञानजन्य भ्रम—असत रूप मे नहीं मान सकते. यद्यपि तुरीया काल में इसकी प्रतीति नहीं होती, तथापि वहा से इतर देश में इसका अभाव है, ऐसा भी नहीं मान सकते यथा सुषुप्ति में नहीं भासता परंतु जागते हैं तो भासता है इसलिये तुर्या, सुषुप्ति वा मूर्छा काल में इसका अभाव नहीं मान सक्ते. जो अभाव हो जाता तो वहा से उठे पीछे भी नहीं भासता, जो कुछ था तो ही भासा है, क्योंकि अन हुये की प्रतीति नहीं होती तथा भ्रमज्ञान के विषय की उपलब्धि नहीं होती, परंतु तुर्यादि से उठने पीछे तो दृश्य की प्रतीति और उपलब्धि होती है इसलिये असत्-शून्य रूप नहीं मान सक्ते.

माया को यदि चेतन (ब्रह्म चेतन-जीव चेतन) का स्फुरण, कल्पना, लहेर, संस्कार, संकल्प, भाव परिणाम वा अज्ञान रूप मानें तो यह सर्व अवस्था-परिणाम होने से चेतन विकारी ठेरेगा और माया तथा उसके नाम रूपात्मक परिणाम सत्य होने से द्वैतापत्ति होगी तथा माया यह द्रव्य गुण वा शक्ति वा क्या? चेतन को गुण वा शक्ति मानें तो सत्य ठेरी तथा गुण और शक्ति का परिणाम नहीं होने से दृश्य (नाम रूप) की अव्यवस्था रहेगी इसलिये उसे द्रव्य मानें तो सत्य होने से द्वैतापत्ति होगी. स्वरूपाप्रवेश नियम बाधक होगा. इसलिये कल्पना मात्र मानें तो ब्रह्म चेतन निर्विकल्प है, उससे इतर कल्पना करनेवाले का अभाव है, अतः कल्पित भी नहीं इसलिये माया को भावरूप अनिर्वचनीय (सदसद से विलक्षण) कहे तो असत कोई वस्तु नहीं होती अतः ब्रह्म से विलक्षण प्रकार की भावरूप माननी होगी. यही विलक्षणाद्वैत है वा नैसर्गिक अवभास है अध्यास रूप नहीं सारांश माया मात्र द्वैत मानना ही होगा

अभाव के अभाव रूप मानने से अद्वैत सिद्ध होता है यथा ब्रह्मेतर अज्ञान-माया-अविद्या-अध्यास-कल्पना वगैरे कुछ भी नहीं है तदेतर का अत्यताभाव है. परन्तु इतना मानने में भी अभाव के प्रतियोगी अनुयोगी की अपेक्षा-कल्पना होती है, इसलिये मौन ही बनना है; अभाव शब्द भी नहीं आ सकता. और जिस पक्ष में अभाव (माया वगैरे) को भाव रूप मानें तो उसके प्रतियोगी अनुयोगी, उसके परिमाण (अणु विभु वगैरे) वगैरे मानना पडता है. और स्वरुप सभावना मे तोलने से अभाव की सिद्धि ही नही होती, तो फेर उसको भाव रूप मानना ही नही बनता. इसी प्रकार ब्रह्म मे तदेतर का अभाव मान के मायादि को भाव रूप (अभाव का भाव) मानना समीचीन नही है. किंतु दरअसल अभाव को भाव रूप मानना यह बाध (नभ नीलता-स्वप्न सृष्टिवत्) का लक्षण है. अज्ञात वा शून्य का लक्षण नही है. अविद्या वा अतःकरण में चेतन का आभास होना मानना और फेर अविद्या-अंतःकरण को शून्य रूप कहना नहीं बनता एव भाव को अभाव रूप और अभाव को भाव रूप कहना नहीं बनता.

असीम-विभु-कूटस्थ-अचल निर्विकल्प मे याने ब्रह्म चेतन मे भ्रम-अध्यास का हेतु जो सस्कार वा सकल्प होना तो क्या किंतु भाव परिणाम (अशब्द कुछ मान लेना) भी नही बनता तो उसको अनादि से भाव रूप अज्ञान और उससे उसको अध्यास-भ्रम हो जाने की तो बात ही क्या करना.

इसलिये जेसे राग-द्वेष-इच्छा-प्रयत्न-धर्म-अधर्म-दुःख-सुख-सस्कार और बुद्धि यह सब माया के अन्य दृश्य नाम रूप परिणाम के समान चेतन विशिष्ट जो अविद्या-अतःकरण-उसके परिणाम माने जाते हैं वेसे ही अज्ञान, भ्रम-अध्यास-प्रमात्व-अप्रमात्वरूप वृत्ति भी उसी का परिणाम वा उस कर के भासना ऐसा मानना चाहिये और है भी ऐसा ही (प्र. सि. में सिद्ध किया है) इस सिद्धात मे ब्रह्म चेतन पूर्ववत् शुद्ध-प्रकाशक और साक्षी मात्र रहता है इस रीति से मायावाद की थीयरी में पूर्वोक्त दोष नहीं आवेंगे. (शं.) जेसे प्रकृतिवादि मगज (ग्रेमेटर) और तदगत् स्मृति वगैरे के सेंटरो मे रागादि होना मानते हैं, ऐसा कहना पडेगा-याने जडवाद की आपत्ति होगी (उ.) नहीं. क्योकि चेतन की सनिधि, प्रकाश सत्ता तथा साक्षी हुये विना किंचित भी व्यवहार नहीं होता तथा यथाकर्म पुनर्जन्म की सिद्धि होती है, इसलिये जडवाद न रहा. किन्तु अतःकरण (वा अविद्या) विशिष्ट चेतन-जीव

याने चेतन के अज्ञान-सस्कारी-वा उसके भ्रम-अध्यास होना ऐसा मानने से उपरोक्त भारी दोष आते हैं, और वेसे है भी नहीं

(शं.) बधमोक्ष किसको? (उ.) चेतनविशिष्ट अतःकरण जो कि सस्कारी हैं-कामना वासना वाला है उसको (शं.) यही जडवाद, क्योकि वोह तो मध्यम-जड है. जड का बधमोक्ष क्या (उ) मायावाद के सिद्धात मे तो बध मोक्ष मिथ्या तथा भ्राति रूप ह, तो फेर ऐसा मानने से क्यो डरते हो, निश्चय वा व्यवहार नय से कोई दोष नही आता. और यदि चेतन भाग को अज्ञान उससे उसको भ्रम-अध्यास और बध है तथा उसका ज्ञान से मोक्ष होना मानो तो उपर कहे अनुसार चेतन विकारी-सावयव-परिणामी ठेरेगा ऐसे की बंधमोक्ष ही क्या. तथा माया-अविद्या का सबध न हो, ऐसा भी सिद्ध न होगा, क्योकि वोह तो विभु है. (शं.) अविद्या-अतःकरण सादि सात होने से जीवत्व, साधन, और शास्त्रो की अव्यवस्था होगी (उ) नहीं, क्योकि जीव प्रवाह से अनादि अनत ठेरता है, इसका विस्तार ब्र.सि. में है. और जिसको दुःख सुख होता है तथा जिसको सुख की इच्छा है उस के लिये साधन और शास्त्र है. अत. सब व्यवस्था हो जाती है. जडवादि को साधन शास्त्र की अपेक्षा है तो उक्त मुमुक्षु को हो इसमे क्या कहना है. वोह मुमुक्षु-जीव कोन? योग द्वारा विवेकख्याति कर के अनुभवो, मन वाणी का यह विषय नहीं है (श) कोन अनुभवे (उ) स्वतोग्रह होगा विवेकख्याति हुये ही इसका समाधान हो जायगा मिथ्या मिथ्या कथन मात्र से सतोष वा समाधान नही हो सकता. उपरोक्त अपवाद का कितनाक भाग वेदातदर्शन की समालोचना मे आया है, तथापि पाठक को सुगमता रहे इसलिये पुनरुक्ति की है.

जब कि जगत को कल्पित मानें तो निरीक्षण की अपेक्षा होती है अर्थात कल्पित नाम (जो सुना-स+अ+प) कल्पित रूप (जो भासा ख्वा श्यामाकार सर्प) यह दोनो अभावरूप है वा भावरूप है? जो अभाव रूप तो सुनने वा देखने मे न आने चाहियें, परतु नाम सुना और आकार देखा जाता है, अतः भावरूप मानें तो इनका उपादान कोई भावरूप होना चाहिये उसके विना उपलब्धि नही हो सकती, अतः कुछ है, यह सिद्ध हुवा. इसी प्रकार ब्रह्म में जगत् है.

पुनः जेसे बालकको कहें "हाउ है" "यह सर्प है" "नहीं जाना" इस प्रकार इच्छित कल्पित हुये अर्थशून्य-असत है वा प्रतिबिंब समान दृश्य है. जो असत

तो दृष्टि विरुद्ध दोप याने वालक की वृत्ति के विषय समान अदृश्य नही किंतु दृश्य हैं. जो दृश्य हैं तो अन हुये की प्रतीति न होने मे दृश्य होने मे उसका साक्षी द्रष्टा उसमे भिन्न ठेरा. इसी प्रकार ब्रह्म में जगत् है.

(शं.) हाउ, शब्द सुनने से बालक भय खा जाता है, हालाकि वहां 'हाउ', पद का विषय कोई आकार नही है, केवल शब्द है; एवं यह जगत् है. शब्दमात्र है, उससे जीव चेतन डरता है-बंध है. (उ.) वहां हाउ दृश्य नही यहां जगत् आकार रूप से दृश्य है, अतः विषम दृष्टांत है. वहां 'हाउ' शब्द और उसके वाच्य के संस्कार की उपलब्धि हैं यहां ब्रह्मेतर शब्द वा संस्कार के। नहीं मानते हैं, अतः विषम दृष्टांत हैं.

(शं.) रज्जु मे सर्प भासना तहा सर्प यह नाम है और दृश्याकार तो रज्जु है. सर्पभावदर्शन तो सादृश्य दोप से नाम मात्र है तद्वत् यह दृश्य तो ब्रह्म है, आकारों के नाम शब्दमात्र है. (उ.) ब्रह्म और जगत् का (रज्जु सर्पवत्) सादृश्य भाव नही है अतः दृष्टांत विषम है. सर्प ऐसे नाम-शब्द की उपलब्धि हैं, दृष्टांत में ऐसा नहीं मानते हो क्योंकि ब्रह्म निर्विकल्प है तो वाचारंभण कोन करे. और वाचारंभण है तो सही, अतः वोह ब्रह्म से इतर ब्रह्म करके कल्पित नहीं, ऐसा भाव रूप होना चाहिये और उसका वाच्य (आकार) भी होना चाहिये.

(शं.) नाम और रूप दोनों संस्कार और सादृश्य विना भास सकते हैं, यथा नभ की नीलता और स्वप्न सृष्टि. (उ.) स्वप्न संस्कारजन्य है, यह स्पष्ट है और ब्रह्म समचेतन होने से संस्कारी नही अतः स्वप्न में संस्कारी मन (माया का अंश) है. इसलिये संस्कार मत आकार भासते हैं. अब सादृश्य दोप विना उन आकार रूप ही ब्रह्म भासता है, (जेसे कि आकाश नील रूप भासता है वेसे) तो यह परिणाम निकलता है कि या तो ब्रह्म का ऐसा स्वभाव ही है कि यथा संस्कार (माया अविद्या के संस्कारवत्) नाम रूप वाला भासे, वा तो माया का स्वभाव है कि वोह यथा संस्कार सक्रिय नाम रूप वाली भासे. अर्थात् ब्रह्म में नाम रूपात्मक जगत् का (नभ-नीलतावत्) स्वाभाविक अवभास है, अर्थशून्य वा अवभास रूप नहीं.

(शं.) स्वाभाविक नहीं किंतु चेतन (ब्रह्म वा जीव चेतन) द्वारा अविद्या से कल्पित है. (उ.) चेतन निर्विकल्प सम है, निरीह है. तद्वत् उपहित-अवच्छिन्न चेतन (याने जीव चेतन) तो फेर इच्छित, अनिच्छित वा स्वाभाविक कल्पना करने

वाला वा जिसमें कल्पना हो जाती हो सो उससे अन्य ठेरा याने माया. जैसे कि स्वप्न सृष्टि अनिच्छित कल्पित होती है, द्रष्टा चेतन की कल्पना से नही हुई है.

साराश यह दृश्य (नाम रूप) चेतन ने इच्छा पूर्वक,कल्पी हो, ऐसा सिद्ध नहीं होता. जैसे बालक को हाउ वा यह सर्प कहें १, किवा जैसे अंदर मे कोई मकान का नक़शा बनावे और उसे देखें, यह इच्छित कल्पित है २, किवा माटी मे से घट बनाव यह भी इच्छित कल्पित है ३. ब्रह्म निर्विकल्प निरीह और सम होने से उसमे ऐसा क्रिया वा व्यवहार नहीं बनता. जैसे रज्जु में सर्प अज्ञानादिवश से कल्पा जाता है यह अनिच्छित कल्पित है, सो भी बने नहीं क्योकि वोह निरीह है, निर्विकल्प है, ज्ञान स्वरूप है उसको अज्ञान, भ्रम, अध्यास वा इच्छा होना घटे नहीं (त. द. अ. ३।४०१ की टीका देखो) तद्वत् चेतन के प्रतिबिंब वा आभास द्वारा ऐसी कल्पित सृष्टि नही हो सकती, (त द. अ ३।४०१ की टीका देखो) क्योकि क्षणिक और जड है अंत में नभ की नीलतावत आलात के चक्रवत्–स्वप्नवत् अनिच्छित और माया करके दृश्य अनादि से स्वाभाविक अवभास रूप है, ऐसे अवभास होने का प्रवाह है, ऐसा सिद्ध होता है.

विभूपक.

उपर जितना कुछ थीयरी वाले ने खंडन मडन किया है अथवा शोधक ने लिखा है वोह जिज्ञासुओं को सशय विपरीत भावना न हो सके अर्थात् प्रथम ही शका समाधान करले इस दृष्टि से कहा है सबका समाधान गोडपादाचार्य और शकर थीयरी प्रसग मे जो लिखा है उससे हो जाता है. विशेषतः दृष्टि सृष्टिवाद मे होता है. अर्थात ब्रह्म नाम का कोई अज्ञानी भ्रात जीव नहीं किंतु चेतन एक है, तद्विशिष्ट सस्कारी माया करके यह दृष्टि मात्र ही सृष्टि है याने जैसे स्वप्न मे तनी को दृष्टि मात्र ही सृष्टि है, ऐसे यहा है अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति और लय का अनादि अनत प्रवाह है–मायामात्र द्वैत है, परमार्थतः अद्वैत है वस्तुतः न द्वैत न अद्वैत है वोह तनी कोन! जिसके सामने स्वप्न सृष्टि हुई (विशेष अ. ४ देखो).

साराश अद्वैतवाद की थीयरी (अध्यारोप अपवाद) मे खंडन मडन करना व्यर्थ है. साधन सपन्न हो के आत्मानुभव करलो, सब शका का समाधान हो जायगा. जीवते ही मुक्त हुवा निरंकुश निवृत्ति को पाता है, जीवनमुक्त हुवा निष्काम परोपकार करता है कारण कि उसको कोई प्रकार की कामना वासना नहीं होती.

---

२१. योग वाशिष्ठ.

योग वाशिष्ठ. इस ग्रंथ में रामचंद्रजी को वशिष्ठजी ने जो उपदेश किया है, सो उपदेश लिखा है. रामचंद्रजी को वैराग्य हुवा और अलग जा बैठे, तब वशिष्ठजी ने उनको आत्मज्ञान दिया और पुरुषार्थ को मुख्य बता के प्रवृत्ति मार्ग में लगाया.

ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या, यह उसका मुख्य मंतव्य है. कहीं जल तरंगवत् जीव जगत को ब्रह्म का स्फुरण कहा है. (अभिन्ननिमित्तोपादान) और कहीं स्वप्नवत् स्फुरण मात्र बताया है. ब्रह्मा, विष्णु, शिव भी जीव हुये हैं, प्रयत्न से उत्तम पदवी को प्राप्त हुये हैं. जगत क्षणभंगुर नाशवान मिथ्या है, उसमें आसक्ति नहीं करना चाहिये, यह उसका मंतव्य है. अणु अणु में सृष्टि कह के दृष्टि सृष्टिवाद कहा है. मन फुरा तो जगत है और नहीं फुरा तो कुछ भी नहीं है. जगत है ही नहीं, यह उसका सिद्धांत है.

योग वाशिष्ठ पूर्व रामायण कहाती है. संस्कृत में ९० पत्रे में है, और भाषा में भागवत से अधिक है. मुसल्मान फेजी ने उसका फारसी में तरजुमा किया है वोह भी ९० पत्र में है. भाषा जो बना है वोह पटियाले के राजा साहेबसिंह * की महाराणी की इच्छा से किसी ने बनाया है, ऐसा सुनते हैं. उसमे भविष्य प्रत्य से भगवद् गीता (श्रीकृष्ण अर्जुन का संवाद) भी लिख दिया है. योगवाशिष्ठ पुनरुक्ति का भंडार है, कल्पनाओ का खजाना है. नहीं मालूम पडता कि संस्कृत में किसने और कब बनाया. (वैश्वरो का अद्वैतवाद है).

शोधक.

इसका अपवाद, अध्यासवाद-भ्रमवाद और अभिन्ननिमित्त उपादानवाद के अपवाद अनुसार जान लेना.

विभूपक मत.

योग वाशिष्ठ में जो विद्या लिखी है वोह असल आरण्यक विद्या है, जिसे एक जीववाद वा दृष्टि सृष्टिवाद कह सकते है. परंतु कोई पद्धति वा शैली वा अधिकार के विना उसका बोध नहीं हो सकता. इसलिये प्रथम विवेक और वैराग्य बताया है, उसकी प्राप्ति पीछे अनेक शैली कह के अंत में दृष्टि सृष्टिवाद-एक जीव-

* वा महाराजा आलासिंहजी

वाद-स्फुरणमात्र कह के पुरुषार्थ का भी उपदेश किया है. और पूर्व कहे अनुसार "अत्रवत् तत्र तत्रवत् अत्र" तथा वर्तमाने वर्तमानवत् कहा है. इस ग्रंथ का आशय-अनुभव रहस्य जिसने समझा है वोह निष्काम-निरंकुश-स्वतंत्र तथा पुरुषार्थी-परोपकारी हो जाता है. साम्यभाव के प्राप्त होता है आत्मवत् सर्वभूतेषु. ऐसी उसकी दृष्टि हो जाती है. किंवा निवृत्तिपरायण हुवा निर्जनस्थान में उपराम रहता है इसलिये अमुक व्यक्ति के लिये यह ठीक ही है; क्योंकि ऐसी व्यक्ति करोडों में से कोई एक निकलती है; परंतु जिन्होंने उसके शब्द ही घोखें हैं, जिनकी वेसी पवित्र, और अनुभववाली वृत्ति नहीं है, उनके लिये यह ग्रंथ विष जेसा है-ठीक नहीं निवडता. सार यह है कि महान् विवेकी और वैराग्यवान के योग्य ग्रंथ है, सर्व साधारण के लिये नहीं है, किंतु विधिनिषेध से विमुख हो के यथेष्टाचारी होने का हथियार हो जाता है.

---

२२. गोरख पंथ.

(विक्रम के समय) गोरखनाथजी हठयोगी सिद्ध कहाते हैं. गोपीचंद का गुरु जालंधर योगी, जालंधर का मछंद्रनाथ गुरु और मछंद्रनाथ का गोरख चेला है. ऐसा कहा माना जाता है. इसने योग में गोरख संहिता बनाई (या बनवाई), योग सिद्धि इसका मत है. अन्य विवेचन वा फिलोसोफी नहीं है.

इस पंथ के अनुयायी नाथ साधु कहाते हैं. बोहर जिले रोहतक की समत दिल्ली में इनका मुख्य स्थान है इनमें विद्या का प्रचार नहीं. इस पंथ के १२ भेद जिसमें से कनफटे भी हैं. शिव मत इनकी सप्रदाय है. शक्ति के भी पूजते हैं. कोई कोई शाक्त भी होते हैं. कोई कोई संत मत को भी मानते हैं. (अपवाद योग, शैव और शाक्त मतवत्).

विभूषक मत.

इसमें से क्रिया योग प्राप्य है, परंतु वर्तमान में वेसे अभ्यासी नहीं जान पडते. इस पंथ की तमाम हकीकत जानने में न आने से ज्यादा नहीं कह सकते. इसके अनुयायी जो हठयोग की क्रिया करते हैं उससे सर्व साधारण को बचना चाहिये. यदि इस मत वाले पंचदशांग को पालने लग जावें तो इनमें सुधारा हो सकता है.

---

२३. प्रत्यभिज्ञा दर्शन का मंतव्य.

(१) महेश्वर (शिव) सम्प्रदाय वालों में से कोई कोई महेश्वर को सापेक्षकारण मानते है. महेश्वर जो सापेक्ष (कर्म, उपादानादि की अपेक्षा से) कारण हो तो स्वतः सिद्ध कार्य नहीं कर सकता, इतनी असमर्थता माननी पडेगी; परंतु ऐसा नहीं है किंतु परमेश्वर की इच्छामात्र से जगत का निर्माण और व्यापार है. उसकी इच्छा के क्रम से जगत अवभासित करता है. जेसे योगी उपादान विना (माटी बीज के विना) अपनी इच्छा से घट और फल बना के विहार करता है ऐसे ही ईश्वर उपादान के विना इच्छामात्र से जगत अंकित करके (रचके) विहार करते है. जड पदार्थ ऐसी उत्पत्ति नही कर सकता इसलिये वोह चेतन है.

(२) **महेश्वर**=देश, काल, अवस्था और वस्तु से अपरिच्छेद, सर्व व्यापक, विश्व का ज्ञाता, कर्ता, अनादि, सर्व का आत्मा, एक चिदानंद स्वरूप, शुद्ध, निर्मल, जिसके सब प्रकाश्य, भेदादि भी जिसके ज्ञेय, देश काल वस्तु आकार (भेद) से उसमें भेद (द्वैत) भाव नहीं होता; साक्षात् चेतन, साक्षात् प्रकाश, साक्षात् प्रमाता, विमर्श-स्वरूप, वही एक प्रमाता, वही एक द्रष्टा, आनंदघन, इसी को आत्मा कहते है, (शिव सूत्र), माया पार माया के अधिष्ठत जो विष्णु ब्रह्मा सो जिसके कारण मात्र ऐश्वर्य पानेसे ईश्वर हो जाते हैं. सो महेश्वर, मान (प्रमाण) मेय (प्रमेय) भेदाभेद वाला शक्तिस्वरूप, तथा ज्ञान (प्रकाश) स्वरूप और क्रिया स्वरूप (अपेक्षा विना जगत् कर्ता निर्माता), भूरीभग महादेव है.

(३) **प्रत्यगात्मा**=* प्रमाता, माया वश से मोह अवच्छिन्न हुवा कर्म बंध पाके संसारी होता है. वोह अपने निज स्वरूप को नहीं जान के जीवभाव में रहता है, इसलिये क्लेशादि (जन्म वगेरे) लाभ होते है.

(४) उसको प्रत्यभिज्ञा (में वही ईश्वर स्वरूप हूं) कराना वा महेश्वर स्वरूप की प्राप्ति होना इस दर्शन का उद्देश है.

स्वार्थवश होना देवशाप है, ऐसा जानना चाहिये. जेसे मेरा उपकार हुवा अर्थात् परमेश्वर की समीपता हुई वेसे दूसरे का उपकार हो वा करना, ऐसी वासना से पूर्णकाम हुवा हू इसलिये प्रत्यभिज्ञा शास्त्र है, किंवा अभक्त को आशा वासना होने से जन्ममरण में रहना पडता है और दास को परमेश्वर मिलने (स्वरूप प्राप्ति होने पर) सर्व संपति मिल जाती है कोई कामना नहीं रहती, इसलिये जिस प्रकार दासत्व पाना और लोकोपकार होना, इस द्रष्टि से प्रत्यभिज्ञा शास्त्र की रचना है.

* अंतःकरण, माया वा शरीर अवच्छिन्न महेश्वर (घटाकाशवत्) प्रत्यगात्मा

(५) अधिकारी--जो इस को सुन समझ सकता है, अभ्यास कर सकता है, और करे, वही इसका अधिकारी है; नहीं कि इस अधिकार में व्यक्ति भेद है. हां, मैं महेश्वर के दासत्व का अधिकारी हुवा इसलिये सब जानने योग्य हूं ऐसे दासत्व भावना होनी चाहिये. दासत्व अर्थात् मैं परमेश्वर का स्वरूप और स्वतंत्रता का पात्र हूं ऐसा भाव.

(६) गुरु द्वारा परमेश्वर का प्रसाद मिल सकता है. जैसे कनक दर्शन पीछे उसके श्रवण वा भावना की अपेक्षा नहीं होती वैसे प्रमाण से एक बार शिव स्वरूप का ज्ञान होने पर दूसरे श्रवण वा भावना वा ध्यानधारणादि क्रिया योग की अपेक्षा नहीं होती.

(७) – पुराण, आगम (वेद) प्रमाण और अनुमान से-जिस (महेश्वर) की शक्ति ज्ञात हो जावे वही महेश्वर अपनी आत्मा में अभिभूत होने पर उसकी शक्ति के सन्निधान से इस प्रकार का ज्ञान हो जाता है कि "मैं निश्चय वही ईश्वर हूं".

(८) ज्ञान (स्वतः सिद्ध) क्रिया (ज्ञानाश्रित) इन दोनों से जीवन व्यवहार होता है. लोक में शिवस्वरूप और साक्षात महेश्वर स्वरूप होने पर ही सदा सब विषय का ज्ञान होता है.

महेश्वर के साथ एकत्व विना विषय ग्रहण में समर्थ नहीं होता (सारांश सब ज्ञान में वोह है उसका प्रकाश चमत्कृति है).

(९) प्रत्यगात्मा महेश्वर से अभिन्न है. इसलिये उसे संसार बंधन नहीं हो सकता; परंतु यही प्रमाता मायावश से मोह अवच्छिन्न हो के कर्म बंध से संसारी होता है और विद्यादि की सहायता से ऐश्वर्य – ज्ञान – निरवच्छिन्न सत्ता वाला होता है तब मुक्त हो जाता है.

(१०) प्रमेय, प्रमाता से अभिन्न और भिन्न है अर्थात् आत्मा और मुक्त स्वरूप महेश्वर तो प्रमेय का अभेद रूप से ज्ञान करता है और बद्ध तब पुनः भेद से ग्रहण होता है.

(११) आत्मा, ईश्वर स्वभाव अर्थात् प्रकाश स्वरूप है; परंतु मायावश गत पूर्ण प्रकट नहीं हो सकता, इसलिये प्रत्यभिज्ञा की अपेक्षा है. तथाहि आत्मा का परमेश्वरत्व स्वभाव सिद्ध है. अतः प्रार्थना प्रत्यभिज्ञा की अपेक्षा नहीं, तथापि अर्थ-क्रिया दो प्रकार की है. बाह्य अंकुरादि क्रिया में प्रत्यभिज्ञा की अपेक्षा नहीं, आंतर प्रमाता की विश्रांतिचाली में प्रत्यभिज्ञा की अपेक्षा है.–मैं वही परमेश्वर हूं ऐसी

प्रत्यभिज्ञा की अपेक्षा है. परमेश्वर स्वात्मरूप होने पर भी गुण परामर्श होने से हृदय का आकर्षण नही कर सकता; इसलिये प्रत्यभिज्ञा की अपेक्षा है.

(१२) इस प्रतिभिज्ञा शास्त्र पर वृत्ति (लघु बृहद्, विवृत्ति, प्रकरण और विवर्ण) हैं. सोमनाथ, उत्पल, उदयकरण, सोमानंद, अभिनव, वसुगुप्त, अभिनवगुप्त व्याख्याता हुये हैं.

(नोट) यह शास्त्र किसने बनाया, यह हमके अज्ञात है. जैन, पुराण के पीछे बना है. जैसे श्रुति से विष्णु के ब्रह्म मुख्य रख के वेदांती जीव ब्रह्म की 'एकता करते हैं वैसे यह महेश्वर (शिव) के मुख्य रख के करता है. ईश्वर कृत होने से जगत् के मिथ्या नहीं कहता इतना ही अंतर है.

शोधक.

ईश्वर के भाग प्रत्यगात्मा में स्वस्वरूप का अज्ञान असंभव? ईश्वर के जगत् रचने की जरूरत क्या? अनुपादान असंभव. पाशुपत में जो दोप कहे हैं वे भी आवेंगे. *ब्रह्म के जिस अंश प्रत्यगात्मा में ज्ञान उसके बंधन नहीं, अन्य के बंध, यह* असंभव. किंवा ब्रह्म के मुक्त भाग में दूसरी उपाधि आवेगी तो फेर बंध होगा. इस प्रकार ब्रह्म बंध मुक्त होता रहेगा याने सावयव ठेरेगा. इत्यादि इस पक्ष पर आक्षेप हैं.

महेश्वर संप्रदाय में पशुपत और शिव तंत्र यह कर्म उपासना (भक्ति) कांड के बोधक और प्रत्यभिज्ञा शास्त्र ज्ञान कांड का बोधक हो, ऐसा जान पडता है. अभिन्न-निमित्तोपादानवाद समान इसका अपवाद है और अमुक अंश का मायावाद समान अपवाद है. परंतु इसमें जगत् के मिथ्या नहीं माना है, इसलिये ब्रह्मवाद वाले दोप आ सकते हैं. किवा अभावनवाद (सभाव से भाव रूप सृष्टि की) वाले दोप (वक्ष्यमाण इसराइल पक्ष वाले दोप) आते हैं. परस्पर विरोध भाव वाला पक्ष है. महेश्वर ही अपनी इच्छा से अभाव में से भाव रूप जगत् पेदा करे और फेर उसी मे उसका अंश (प्रत्यगात्मा) मोह जाल में फंसे (मकडी तंतुवत्) और फेर उसी का अंश प्रत्यभिज्ञा करावे, इत्यादि मंतव्य कल्पना मात्र है. विवर्त्तवाद से नहीं मिलता.

विभूपक मत.

तमाम शास्त्र हमके नही मिला, किसी अंश (चेतन भाग) मे तत्त्वमसीवाद मे मिलता है, किसी अंश में अभावनावाद से, और किसी अंश में ब्रह्मवाद मे मिलता है, इसलिये कुछ नहीं कहा जाता. तथापि इसका अनुयायी पंचदशांग पालने हुये इस मत के माने तो उसे हानीप्रद न होगा, ऐसा मैं मानता हूं.

अथ दर्शनसंग्रह-भाग २.

(शेष भारतीय दर्शन-और परखंड दर्शन).

२४. पुराण मतका सार.

पुराणो की शोध तो आगे कहेंगे. यहा इतना लिखना बस है कि विष्णु, शिव और शक्ति समदाय मे जैसा प्रकार जनावेंगे वैसा ही गणेश और सूर्य वगेरे उपपुराणो मे है. सब मे ब्रह्म और उसकी शक्ति याने शक्तिमान ब्रह्म एक मूल तत्त्व माना है. उसीको अभिननिमितोपादान मान के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, संहार माना है. यद्यपि जीव शिव का ही प्रकार वा अंश माना है तथापि उसको अविद्या का आवरण होने से उसको सद्कर्म, ईश्वर की भक्ति उपासना कर्तव्य कहा है ताकि ईश्वर की कृपा का पात्र होके अपने शुद्ध स्वरूप और स्वशक्ति को प्राप्त हो ऐसा भाव सब मे है. दूसरी तरफ उसी मूल तत्त्व को विष्णु, शिव, शक्ति का रूप दिया है जो जीवो के कर्म अनुसार नहीं किंतु अपनी इच्छा से सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति लय करते है, ऐसा भाव लिया है. किसी ने जीव को मान के उसके कर्म अनादि, ऐसा भाव अध्याहार रखा हो ऐसा जान पडता है. उत्पत्ति क्रम मे किसी मे तो सांख्यानुसार महतत्त्वादि का क्रम लिया है और किसी मे उपनिषदो का याने आकाशादि पंचतत्त्वो का क्रम लिया है. फक्त अंतर इतना है कि शिव पुराण मे शिव को मुख्य और वोह सृष्टि का कर्ता उपास्य तथा अन्य विष्णु आदि को गोण और कार्य माना है देवी पुराण मे देवी को मुख्य और वोह सृष्टि कर्ता उपास्य और शिव, विष्णु, ब्रह्मा वगेरे को गोण और कार्य माना है. एवं विष्णु पुराण मे विष्णु को मुख्य माना है अन्य को गौण कहा है इ. तथा सब मे मोक्षधाम मुख्य देव को कहा है. कहीं सालोक्य, कहीं सायुज्य, कहीं सामीप्य, और कहीं सारूप्य मुक्ति मानी है. इसके सिवाय जीव, ईश्वर, बंध, मोक्ष, और मोक्ष के साधनो मे विशेष

अतर नहीं है. अलबत्ते गाथा कथा ऐसे रूप में भी वर्णन की है कि यदि उनका कोई गुप्त अर्थ अन्य न हो वा कोई इच्छक रूपक न हो तो उन गाथा कथा को सुनके पुराणो से अरुची हो वा नावल जान के उनका परित्याग करे उनमे यथा देश, काल, उत्तम आचार, विचार, नीति धर्म का भी उपदेश है और कही कहीं ज्ञान मार्ग की भी छाया है, तथापि उसके दूसरे प्रकार के लेख उनके गुणो को उपर नहीं आने देते.

हमारा यहा इतना ही उद्देश है कि इस ग्रथ मे सब पुराणो का मत लिखना व्यर्थ है. नमूने मात्र एक दो का दिग्दर्शन करावेंगे:—

स्मार्त धर्म श्रुति स्मृति और पुराणोक्त धर्म को स्मार्त धर्म कहते है हिंदू सनातन मडल मे इस का विशेष प्रचार है. वे विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश और सूर्य इन पाचो देवो को मानते है और वेद को मुख्य मानते है. पुराणो के वाचने पीछे उनके मतव्य का ध्यान आ जाता है याने मिश्रित सप्रदाय है. *

२५. शिव पुराण.

इस पुराण मे नारद पूछता है, ब्रह्मा जवाब देते है, ऐसे उभय का सवाद है सूत पुराणी ऐसा कहते है कि व्यासजी ने जो मैंने सुना है सो ऋषियो तुमको कहता हू इस रूप मे ग्रथ है विष्णु आदि देवो से शिवजी को मुख्य ठेराया है.

आरभ की अध्याय १ से ६ तक मुख्य मंतव्य आ जाता है उसका सार:—

(१) सदसदात्मक दृश्यरूप नहीं था उस समय ब्रह्म (महेश्वर) ही था. सर्वत्र व्यापक, तेजस्वी, सूक्ष्मस्थूल शीतोष्णता आदि अवस्था से रहित, अत्यत शून्य अलौकिक था. त्रिकाल अबाध्य ज्ञान स्वरूप, देशकाल परिच्छिन्न रहित और महत् था

(२) जिस के द्वारा प्रकृति, पुरुष महत्तत्त्व, अहकार, तन्मात्रा, ग्यारे इंद्रिय और पचमहाभूत तथा ३ गुण यह सब जाने जावें और जिस द्वारा एक परमात्म तत्त्व का विचार हो उसे ज्ञान कहते है सब तत्वो का परम कारण ब्रह्म के जानने का नाम विज्ञान है यह सब ब्रह्म है ऐसा परोक्ष बुद्धि से जानने का नाम ज्ञान है और उपरोक्ष जानने का नाम विज्ञान है

* गुजरात देश मे अधिकाधिक वर्ग वगर स्मार्त के साथ वदात को भी मानते है कोली, जगम सेवक, ये शिवशक्ति मत के स्मार्त है वे विष्णु का यथायोग्य आदर नहीं करते

(३) सृष्टि लय के कुछ समय पीछे उस (ब्रह्म) को इच्छा हुई कि बहुत प्रजा सरजुं. इस इच्छा ही का नाम प्रकृति है यही जगत का मूल उपादान कारण है. यह शक्ति माया यद्यपि एक है परंतु पुरुष के संयोग से अनेक रूप हो जाती है. जहां यह देवी वहां पुरुष है. यह दोनों मिलके विचार करने लगे कि हम को क्या करना चाहिये. इस अवसर में आकाशवाणी हुई कि तुम तप करो. तब उन्होने तप किया, ध्यान किया, फेर जागे तो विस्मय को प्राप्त हुये तो उनके शरीर से जलधारा छूटने लगीः उस जल मे सब व्याप्त हो गया. यह जल ब्रह्म रूप था अपरिच्छिन्न था. उसका नाम नारायन प्रकृति का नाम नारा.

(४) इस समय प्रकृति पुरुष से अन्य कुछ नही था. यह पुरुष प्रकृति सहित जल मे शयन करता हुवा. इसके उपरांत ब्रह्म संबंधी तत्त्वो का प्रादुर्भाव हुवा. प्रकृति से महत् (अंतःकरण), महत् मे सत्व, रज, तम, इन से अहंकार, अहंकार से पंचतन्मात्रा (शब्दादि) इन मात्रा से पंच (आकाशादि) भूत उनसे ज्ञान विज्ञान अर्थात ११ इंद्रिय हुई. ऐसे २४ हुये.

(५) नारायण की नाभी में अनंत जोजन विस्तार वाला कमल पैदा हुवा उससे हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) उत्पन्न हुवा मैं कोन, कहां से आया ऐसा न जानके कमल के कर्ता को शोधने लगा. १०० वर्ष तक फिरा परंतु कमल का आदि अंत न मिला फिर तप किया तब ४ भुजा शंखचक्रादि वाले विष्णु भगवान ने दर्शन दिये. मैं तुम्हारा कर्ता, मुझ मे जगत होता है. मेरी माया से तुम भूल गये इत्यादि कहा. ब्रह्मा बोला कि तुम्हारा भी कोई कर्ता होगा ऐसे विवाद मे दोनो लडने लगे.

(६) इस अवसर मे ज्योति स्वरूप अग्निमय अनुपम और संसार की उत्पत्ति का कारण एक लिंग प्रकट हुवा. विष्णु मोहित हो गया. उसके खोज लेने वास्ते ब्रह्मा हंस पक्षी का रूप धारण कर उपर को और विष्णु बाराह का रूप रख के नीचे को गया. १००० वर्ष * तक घूमे, पता न लगा.

(७) दोनो थके एकत्र हुये. शिवजी (तेजस्वी लिंग) को प्रणाम करने लगे, ऐसे १०० वर्ष बीतने पर आनन्दमय शब्द निकला. ओ३म् शब्द हुवा यह लिंग के भागो में देख पडा.

(८) दोनो चुप थे कि पांच मुख—१० भुजा—गौर शरीर—अनेक आभरण युक्त एक पुरुष उत्पन्न हुवा. तब दोनो उस महेश्वर की प्रार्थना करने लगे. तब वे

* अभी सूर्यादि न थे. वर्ष कहां से आगये ?

उस लिंग मे स्थित हुये (उसके अंग अ. उ. म्. और १२ सुर से अलंकार वाला) प्रसन्न हो के बोले. ब्रह्मा जगत का पैदा करता और विष्णु पालक है, और मेरा एक अंग सृष्टि का संहार कर्ता होगा. प्रकृति मे ब्राह्मणी (सरस्वति) शक्ति, लक्ष्मी शक्ति, और कालि शक्ति होगी वे ब्रह्मा विष्णु और मेरे को क्रमशः प्राप्त होगी. यह सब मिलके सृष्टि का कार्य करें. विष्णु को नादात्मक तत्त्व (मंत्र) दिया. शिव गायत्री "तत्पुरुषायविद्महे महादेवायधीमही," मृत्युंजय, और पंचाक्षरी ऐसे ५ मंत्र दिये. श्वास रूप वेद भी विष्णु को दिये. विष्णु ने वेद ब्रह्मा को दिये और शंकर का दिया हुवा ज्ञान मुझे (ब्रह्मा को) दिया. शंकर ने द्रव्य लिंग की पूजाध्यान करने का उपदेश किया. कहा कि तुम दोनो बलवान प्रकृति द्वारा मेरी इच्छा से उत्पन्न हुये हो. मैंने ही अपना निर्गुणरूप तीन प्रकार से (ब्र. वि. शि.) सगुण किया है. तुम दोनो कर्मानुसार प्राणिओं को † फल देने के निमित्त उत्पन्न हुये हो मैं ही ब्र. वि और हर रूप से प्रगट हुवा हू मेरा तीसरा रूप ब्रह्मा के शरीर से प्रगट होगा. उसका नाम रुद्र होगा; ब्रह्मा की भ्रकुटी से उत्पन्न हूंगा. सब रूप एक जलतरंग रूप याने अभेद रूप हैं ब्र. वि दोनो प्रकृति से उत्पन्न हुये हैं रूद्र प्रकृति मे नहीं; इसलिये दोनो मे विशेष होगा वर्णाश्रमादि रच के सुखी हो. ऐसा कहके शिवजी अंतर्ध्यान हो गये. (!!)

(९) पुरुष प्रकृति के शरीर में से जो जल निकला उसमे ब्रह्मा ने वीर्य डाला उसमे २४ तत्त्व संयुक्त अंडा हुवा, वोह जडरूप था, विष्णु अनेक रूप से हो के उस अंडे में प्रवेश कर गये. तब अनंत शिरादि अर्धयाग (वैराट) रूप हो गया, चैतन्य हो गया. उसकी अवधि मनु तपादि १४ लोक हुये. मनु लोक मे विष्णु, तप लोक मे ब्रह्माजी इत्यादि स्थित हुये ‡

(१०) फिर ब्रह्मा ने सब से पहिले मानसिक पुत्र (अर्धमुनि) निर्माण किये (सनकादिक), फिर दूसरे बनाये वे भी विरक्त हुये तब ब्रह्मा रोने लगे उस रुदन से रूद्र उत्पन्न हुवा और कैलाश में चला गया. §

(११) फिर ब्रह्मा ने भृगु वगेरे १० ऋषि अपने हस्तादि अंगो से बनाये. कश्यप वगेरे हुये उनमे दक्ष के ६० कन्या हुईं उनमें से १३ कश्यप को व्याहीं.

† और पूर्व में है की नहीं
‡ विस्तार सनत्कुमार संहिता अ० ३, ४ में लिखा है
§ अभी ज्ञान नहीं हुए रुद्र कहां से आगया?

उनकी सतान से जगत् पसरा. देवता, दैत्य, दानव, मनुष्य अनेक प्रकार के हुये. वृक्ष, पर्वत, पशु, पक्षी, सर्प, गुल्म, लता यह सब उनसे पैदा हुये. (इति पच-माध्याय) जीवो के कर्म फल सन्मुख न होने पर रुद्र सृष्टि का सहार करेगा पूर्व-वत् शून्य हो जायगी.

(१२) प्रकृति, महत् तत्त्व, अहंकार, पचतन्मात्रा यह ८ अष्ट प्रकृति. इन के सबध से चेतनात्मा की जीव सज्ञा है. इनसे छूटे मुक्त इन को वश मे करना मुक्ति है. बधा हुआ जीव मुक्त हुआ या मुक्त होता है. (वि. सहिता. अ १६। २, ३)

(१३) उक्त ८ से यह देह. देह से क्रिया कर्म, फिर कर्म से देह. इस प्रकार जन्म कर्म बारबार होता है स्थूल, सूक्ष्म और कारण ३ शरीर है, उनमे कारण शरीर आत्मा के भोग का निमित्त है कर्म से सुख दुःख होता है जन्ममरण के चक्र मे रहना पडता है (अ. १६)

(१४) मोक्षोपाय — उस चक्र का मूल वोही है अतः छूटने वास्ते शिव की प्रसन्नता आवश्यक है शिव के प्रसाद से ८ बध का नाश हो जाता है शिव लिंग पूजा से शकर प्रसन्न होते है. शिव के उद्देश से सब कर्म करना. तब कर्म और प्रकृति वश हो जाते है; इस का नाम मुक्ति. मुक्त आत्माराम होता है ऐसा होने पर शिवलोक (सालोक्य) प्राप्त होता है तन्मात्रा वश में करने से शिव की समी-पता (सामीप्य) होती है उसके पीछे क्रिया त्रिशूलादि आयुधो से शिव की सायु-ज्यता को प्राप्त होता है. शिव प्रसाद से बुद्धि वश हो जाती है उससे सर्वज्ञत्वादि ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है. इसीका नाम सायुज्य है अ १६।२३ तक लिंग सेवन से जीव शिव रूप हो जाता है विद्येश्वर सहिता अ १६।१६९

(१५) यह सब जगत शिव स्वरूप ही है, ऐसा ज्ञान न हो तब तक कर्म से शङ्करदेव की आराधना करे सब शिव स्वरूप है जो भेद दीखता है वोह आभास-मात्र है विमुक्त को विधिनिषेध नहीं जिन को ज्ञान विज्ञान नहीं उनको प्रतिमा-लिंगपूजन करना उचित है निर्गुण की प्राप्ति के लिये प्रतिमा का ही अवलबन श्रेष्ट है. विज्ञान प्राप्ति तक प्रतिमा का पूजन करते रहना चाहिये ज्ञान सहिता अ. २१। १९ से ३० तक

(१६) कही शिव कीर्तन श्रवण और मनन भी साधन लिखे है

(१७) सत्, महादि ७ लोकशंभु के स्थान है. शिवलोक प्रलय मे भी नष्ट नहीं होता. जहा सनतकुमार और ब्रह्मा इत्यादि रहते है. सनतकुमार सहिता अ ७ यह नं ९ से विरुद्ध है

(१८) त्रिगुणातीत शिव, लीला से ही सृष्टि कर के ईश्वरत्व मे स्थिर है. वायु सहिता अ. ८ आगे महत् से साख्यमतानुसार सृष्टि उत्पत्ति कही है

(१९) वायु स. अ. २८ में पाशुपत योग और मुक्ति तथा २९ में पाशुपत व्रत कहा है. वायु स. उ. अ. १० मे शिव के अवतार का वर्णन है.

(२०) शिव पुराण मे लिंग पूजा की विधि, दिक्षा, मंत्र वगेरे का विस्तार सहित वर्णन है, जिसके बयान करने का यह प्रसग नहीं है

(२१) शिव पुराण मे ज्ञान सहिता अ. ४० मे शिवजी और ब्राह्मणीयो की कहानी—मुनियो का ब्रह्मा पास जा के पुकारना, ब्रह्मा सहित विष्णु पास आना, विष्णु सहित पारवती पास जाना, और फिर विष्णु का योनि रूप धरना इत्यादि विभत्स कथा भी लिखी है, जिसके जनाने का यहा प्रसग नही है. कदाचित्त यह कोई रुपाध्कार भी हो तो भी उपेक्षणीय है

शिव पुराण हिंदी अनुवाद श्लोक क्रम मे मिश्र ज्वालाप्रसाद ने किया. वेंकटेश्वर प्रेस मुबई वि. स. १९५२ मे छपा है उससे उतारा है

शोधक.

उपर के लेख में प्रकृति पुरुष का पता नहीं इच्छा को प्रकृति कहा है परतु उसका निर्वाह नहीं, क्योकि उभय का विचार करना और आकाश वाणी सुनना कहा है. मूल लिंग क्या, ब्रह्मा विष्णु हो जाना, उभय का विवाद हो जाना, कमल और लिंग का पता न लगना, शंकर का आना, वरदान देना, पुन. तीनो एक रूप रहना और उपासक उपास्य का भेद बताना, जल मे वार्य डाल्ना फेर ब्रह्म में से महतादि होना विष्णु का वैराट रूप होके अडे में प्रवेश करना इत्यादि वातें न तो अद्वैत में यथावत् घटती है और न सृष्टिनियम वा युक्ति में तुल्ती है

हा, बलात्कार से इतना सार ले सकते है कि ब्रह्म ही इच्छा (यही आदि कर्म) से प्रकृति, विष्णु और ब्रह्मा तथा शिव और रुद्र रूप हुवा और आप ही जगत् रूप होके उसमे प्रवेश कर के देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, गृह, उपगृह, लोक, वृक्ष इत्यादि रूप हुवा और आपही यथा कर्म कर्ता भोक्ता बध और आप ही अपने प्रमाद से मोक्ष

हुवा आप ही भक्तो के वास्ते अवतारधारी और आप ही भक्त हुवा. इत्यादि. (उक्त इच्छा, प्रकृति की गति इसी का नाम जीवो के कर्मानुसार सृष्टि. क्योकि अन्य जीव का ही कथन नही है)

अब जो ऐसा भाव (अभिन्न निमित्तोपादान इच्छा से) हो तो वक्ष्यमाण शुद्धाद्वैत वाला प्रतिपक्ष आ खडा होगा और जो यह भाव न हो किंतु गोलमोल हो तो पूर्वोक्त शिव मत वाला प्रतिपक्षी सामना करेगा.

विभूषक मत.

हमने तमाम शिव पुराण पढा है. यदि मूल सस्कृत ग्रथ के ऐसे ही अर्थ और भाव हो जैसे कि प्रसिद्ध है तो हम अपने को उसके दूषण भूषण दर्शाने का पात्र नही मानते; परतु जो कोई रूपालंकार रूप मे रचना हो तो हम यह कहेंगे कि शिव पुराण का मत अभिन्न निमित्तोपादानवाद है. जो पच दशाग सहित कोई भाविक व्यक्ति पाले तो उसकी हानी नहीं जान पडती. और ईश्वरावतारादि प्रसग मे अ. १ वत् ज्ञातव्य है.

---

२६. शाक्त मत–गत दक्षिण संप्रदाय.

देवी भागवत स्कध ७ अध्याय ३२ और ३३ अनुसार लिखते है. हिमालय पूछता है. देवी उपदेश करती है.

१. सृष्टि पूर्व मे ही थी, मेरे से इतर कुछ भी नहीं था. वोह मेरा आत्मरूप चित सवित परब्रह्म कहाता है. अनिर्देश, अनूपम, अनामय, जो मैं वही माया नाम वाली पहिले मे एक ही थी. जैसे उष्णता अग्नि के साथ, किरणें सूर्य के साथ, काति चद्र के साथ रहती है ऐसे मैं ब्रह्म के साथ ही रहती हूं.

२. उसी माया मे जीव, जीव के कर्म और जीव की कला का सचार रहता है. सुषुप्तिवत् माया मे लीन होते है. मे मेरी शक्ति के प्रभाव से बीज रूप हू. मेरे समागम से भी चेतन (ब्रह्म) जगत् का निमित्त कहाता है. मैं प्रपच में समवायी कारण उपादान हू. तप, तम, ज्ञान, प्रकृति, अजा, प्रधान अविद्या वगैरे पर्याय है. स्वाधिष्ठान के ज्ञान न होने से जडत्व है, दृश्यपना जड है, चेतन स्वरूप दृश्य नही. स्वप्रकाश है. जड पर से प्रकाशित होता है. मे अपरिच्छिन्न हूं, यह मेरा अलौकिक रूप है

३. लौकिक में ओं समान ह्रिं मेरा मंत्र है, क्योंकि इच्छा, ज्ञान, क्रिया मेरे में है. ह्रिं से शब्द मात्रा वाला आकाश, उससे स्पर्श गुणवाला वायु, उससे तेजात्मक रूप अग्नि, उससे रसात्मक जल, उससे गंधात्मक पृथ्वी उत्पन्न होते हैं

४ पंचभूतों से महत्तत्त्व सूत्र (जिससे लिंग कहते हैं सो) पैदा हुवा यही सूक्ष्म शरीर है अव्यक्त मूलकारण शरीर है.

५ सूक्ष्मदेह लिंगभूत में पंचभूत पंचीकरण को † प्राप्त हुये उनके जुदा जुदा सत्वांश ज्ञानेंद्रिय, रजांश से कर्मेंद्रिय, और समूहसत्व से अंतःकरण (चित्त, मनादि) और रजोगुण के मिश्रण से प्राण उत्पन्न हुये.

६. उपर कहे अनुसार वैराट स्वरूप है आत्मा स्थूल सूक्ष्म से बद्ध है

७ जगत् का व्यष्टि समष्टि स्वरूप है उस सब मे मैं प्रवेश कर जाती हू व्यष्टि याने पिंड दृष्टि से विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुर्यातीत तथा समष्टि याने ब्रह्मांड की दृष्टि से वैराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म यह सज्ञा है.

८ जीव ईश्वर यह कल्पित भाग मे कल्पना है जैसे महाकाश मे मठाकाश, घटाकाश माया करके ही जीव का नानात्व है और माया करके ही ईश्वर माना गया है यह सब अविद्या से भेद है.

९ मेरे (देवी) में सब और सब मे मैं हू उन व्यष्टि समष्टि मे विश्व (वैराटादि रूप) मैं हू ब्रह्मा, विष्णु, शंकर पशु, पक्षी, चांडाल सब रूप मैं हू सर्व का आत्मा मैं हू मेरे से जो पृथक् जान पडता है वाह रज्जु सर्पवत् वंध्या पुत्रवत् है— याने भ्रांति है

१० आत्मस्वरूप ज्ञान से मोक्ष होता है

११ जैसा गीता मे कहा वैसा देवी ने वैराट स्वरूप हिमालय को दिखाया

सार से यह जान पडता है कि ब्रह्म की शक्ति याने देवी गीता के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय करती है (नं २ विचारो) और साधनसंपन्न को ज्ञान से मोक्ष होती है उसकी अनावृत्ति है संक्षेप में नवीन वेदांत मत है क्योंकि ब्रह्म की जगह देवी शक्ति इतना फेरफार के सिवाय सब अभिन्न निमित्तो पादान वा अद्वैत मायावाद है

† शंकराचार्य के शिष्य सुरेश्वराचार्य कृत पंचीकरण के समान विभाग है

देवी का अवतार, उसकी मूर्ति, उसकी पूजा मंत्रदिक्षादि देवी भागवत मे भी है.

शोधक.

इसकी समीक्षा पूर्वोक्त अभिन्ननिमित्तोपादान और उपाधिवादानुसार जान लेना चाहिये. शक्ति चेतन नही हो सक्ती. शक्ति अर्थवाले ने अपने इष्ट प्रकार से वयान किया है.

विभूषक मत.

दक्षिण सप्रदाय अनुसार जो उपर लिखा है वोह वेदात की नकल है, इसलिये इसके सबध मे उपरोक्त वेदातदर्शन मे कहे अनुसार जान लेना चाहिये.

जिस कारण से इसका शक्ति पथ नाम हुवा है वोह देवी भागवत के वाचन से जान सकोगे. इस मत वाम पथ की क्रिया ही ऐसी है कि जिनका नाम मत वा धर्म नही कितु पथ ही कहना पडता है.

देवी भागवत के जो अर्थ चल रहे है—लोक मे प्रसिद्ध है, यदि वे ही हों तो शाक्त पथ के दूषण भूषण कहने के योग्य हम अपने को नहीं मानते, ऐसा जान लेना चाहिये. देवी भागवत वाचने से आप स्वय जान सकोगे

---

२७. शाक्त मत-गत वाम संप्रदाय.

शक्ति मत की दो सप्रदाय है उनमे से दक्षिण सप्रदाय का मत उपर कहा गया. वाम सप्रदाय का मूल सिद्धात तो वही है, परतु उसकी क्रिया और उपसिद्धानो में बडा भारी भेद है. भैरवी चक्र की सस्था इसी मत मे है कवल, भैरव, कापाली वगैरे इसकी शाखा है, कुडापथ, चोलीपथ, मातापथ और वीजमार्ग वगैरे इसकी उपशाखा है. सुनते है कि वाम मार्ग का विशेष प्रचार काश्मीर, मल्बार और बंगाल देश में है, हिंद के अन्य देशो में कम है दक्षिण सप्रदाय में पचमकार का त्याग है वाम मे उनका विधान है. वाम कहता है कि मद्य, मास, मुद्रा, मत्र और मैथुन यह पचमकार युग युग में मोक्षदा है. मुद्रा द्वारा मद्य इतना पीना चाहिये कि भूतल मे गिर जाय और जो पुनः उठ के पी लेवे तो उसकी मोक्ष हो जाती है. स्त्री के गुह्य स्थान मे मुद्रा करके मत्र जपने से सिद्धि होती है. जब भैरवी चक्र में शामिल हो तब जाति भेद नहीं रखना. जब वहा मे अलग हो तब अपने अपने (वर्ण) जाति रूप रहना

वाम मे दारू, मास, उचिष्ट, रजस्वला स्त्री का सेवन, इस प्रकार के उपसिद्धात और क्रिया है कि उनका वर्णन वाचने से भी पाठकवृंद को ग्लानि पेदा हो. वाम मार्ग के उपसिद्धात और क्रिया तथा क्रिया (प्रयोग) का सिद्धि चमत्काररूप फल, योग्य सत्य और आदरणीय है वा नही यह वात परीक्षा के विना कहना उचित नहीं है. हमको इस सप्रदाय का यथायोग्य ज्ञान नही है तथापि हमने जेसा जितना देखा, सुना और पढा उसमे हम यह कह सकते है कि व्यावहारिक १०० मे ९९ मनुष्यो के आचार, विचार और नीति, उनको पसद नहीं करते. प्रत्युत अरुची पेदा करने वाले है, इसलिये उनका लिखना ठीक नही समझा याने हम जितना जानते है उतना भी लिखना अयोग्य जाना. इसी वजह से इस सप्रदाय की क्रिया और वेसी क्रियाबोधक ग्रथ प्रसिद्धि मे नही आते किंतु अद्यापि उसके अनुयायी उन क्रियाओं (प्रयोगो) को गुप्त करते है और गुप्त रखते है. + तथाहि आज आठ सो वर्ष से वाम मत्र शास्त्री गोवध बद न कर सका और वाम मत पवलिक के मेदान मे नहीं आता इससे उनकी सिद्धि, मत्र, करामात का भी माप जान लिया जाता है, इसलिये भी चर्चा पात्र नही और भी इस त. द का उद्देश मतपथो के मूल तत्त्व जानने जनाने में है, चुनाचे इस सप्रदाय का मूल तत्त्व दक्षिण सप्रदाय के अनुकूल है सो उपर लिखा गया है इसलिये उनके उपसिद्धात और क्रिया के लिखने की जरूरत नहीं जान के नही लिखते

शक्तिवादी कहते है कि शक्ति के विना ब्रह्म कुछ नही कर सकता शक्ति सामान्यतः सर्वव्यापक है, उसके विशेष रूप मे अतर है. यथा पदार्थमात्र जिस शक्ति से काम करते है वोह उसी का विशेष रूप है किसी शक्ति उपासक में भोग (ऋद्धि सिद्धि) मोक्ष देनेवाली जो शक्ति उद्भव होती है वोह उसी का विशेषरूप है, और जब दृष्टि उत्पन्न करना होता है तो शक्ति को कोई प्रकार का विशेषरूप याने साकार रूप धारण करना पडता है सो शक्ति का विशेषरूप है सृष्टि उत्पत्ति के लिये ब्रह्मा, विष्णु बनाये, उन्होने उसका सबध स्वीकार नही किया, तो फेर शिव को बनाया शिव ने कहा कि अपनी इस देवी माता का स्वरूप का रूपातर कर ले. तब संबध होगा शक्ति ने ऐसा ही किया और दोनो के सबध मे सृष्टि पेदा हुई और प्रचार हुवा. इत्यादि रूप की कथा चल रही है ऐसा कथायें लिखना

+ श्रीमान महन्तो भी अपन सख्त गुप्त रखती है

फिलसुफी में योग्य नहीं. (वाम मत का कुछ वर्णन मुक्ति शास्त्र के पेज १४६ से १४९ तक में है वहां देखो). *

(क) अघोरी पंथ–शिव और शक्ति पथ की शाखा है. इनका मूल सिद्धांत तो वही है जो उपर कहा गया. फक़त उपसिद्धांत और क्रियाओं में अंतर है. उनका अघोर मंत्र तंत्र ग्रंथ का मंत्र प्रसिद्ध है. यह लोग मुरदा, सर्प, मल, वगेरे का भी ग्रहण कर लेते हैं. उनकी जो विधि है उसमें इसका निषेध नहीं है. दारू, मांस और उन्मत्त क्रिया के सेवन से यह लोक उन्मत्त रहते हैं. निर्जन स्थान को ज्यादे पसंद करते हैं. मूल पूर्ववत्.

(ख) भैरव मत–पाशुमत शास्त्र से निकला है. सगुण शिव (शक्ति–माया विशिष्ट) निर्गुण शिव के ज्ञान से मोक्ष मानते हैं. ओं और विश्व यह दो हैं. परमात्मा से शक्ति, शक्ति से नाद, नाद से बिन्दु, बिन्दु से ४ वाणी पैदा हुये. और शिव शक्ति के मेल से महत्तत्त्व अहंकारादि हुये (सांख्यवत्). शेष वाम तंत्र समान है क्योंकि वाम की ही शाखा है (मु. शा. पेज १४६ से १४९ तक वाम मत का वर्णन है सो देखो).

---

२८. वैश्नवी भागवत मत ⊛

(भागवत तृतीय स्कंध)

(अ. ५. श्लो २२) जीवों का स्वरूप भूत स्वामी सृष्टि के पूर्व माया का लय हो गया उस समय एक ही होता भया. (२३) परमात्मा प्रकाशमान था परंतु दृष्ट भाव न था. माया शक्ति सुषुप्ति, चेतन शक्ति जाग्रत, ऐसे परमात्मा नहीं होने समान मानता भया अर्थात् परमात्मा से इतर अन्य कुछ नहीं था. मायादि शक्तियें लीन थी

---

* बीज मार्गियो के मन्त्रों का नमूना—

सतयुगनी वेलडी तेना पुरुष छे चार इत्यादि ४ कडी घटपाट के मंत्र.

पाट महावी ने चोक पुरावो पर्त्या मगल चार. चार तेडावो महासतीयोने "

"जागी ज्योत तो भागो छोत" यह बीज मन्त्र है.

बीजमार्गियों ने उपरोक्त तथा पुनरागमन के मंत्र घड रखे हैं वामियो के मंत्र संस्कृत भाषा में हैं उनके अर्थ विचारने से उनकी कल्पना और आंतरिय विचार स्पष्ट हो जाते हैं. वामी लोक अपने गुप्त क्रियात्मक ग्रंथो को प्रसिद्ध नहीं करते; क्योंकि उन का अमुक भाग लोक के आचार-विचार और लोकनीति–लोकमान्य धर्म से प्रतिकूल माने जाते हैं

⊛ ऋषिकुमार-पंडित रामस्वरूप शर्मा रचित हिंदी भाषा टीका सहित मुरादाबाद नगर में लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबाद विषे संवत १९५८ में छपी उसमें से.

ओर उसकी ज्ञानशक्ति आमत थी (२३) जिस शक्ति कर क इस ससार का रचते हुये, वोह सदसदात्मक कारण कार्यरूपा माया थी (२५) काल शक्ति मे गुण क्षोभित हुई उस माया म अपने अश द्वारा वीर्य (चिदाभास–चैतन्य शक्ति) को स्थापन किया (२६) उस काल प्रेरित मे महत्‌तत्त्व पेदा हुआ वोह विशिष्ट ज्ञान स्वरूप महत्‌तत्त्व ओर अपने शरीर म विद्यमान जगत का प्रगट करने वाला ओर अज्ञान का नाश करने वाला था (२७) तिस पर भगवान की दृष्टि होते ही वोह चिदाभास (निमित्त कारण) तीन गुण (उपादान कारण) ओर काल (रूपातर होने का कारण) के आधीन होके उसने इस जगत का रचने कि इच्छा से आप ही अपने स्वरूप का रूपातर किया है (मायाविशिष्ट चेतन परमेश्वर जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है)

उस महत् तत्त्व मे अहकार पेदा हुवा यह अहकार (मै पना) अधिभूत (भुत) अध्यात्म (इद्रिय) और अधिदेव (कारण कार्य का कर्तत्वपना) इन तीन प्रकार का होके आकाशादि ५ महाभूत, दश इद्रिय, उनके १० देवता ओर मन का आश्रय हुआ (३०) सो सत्वादि ३ प्रकार का हुवा मन और जिनसे शब्दादि का ज्ञान हाता है सो १० देवता सात्विक अहकार मे, १० इद्रिय राजस अहकार मे और तामस मे आकाश का सूक्ष्मरूप शब्द पेदा हुवा तिस शब्द से तिसका बोध करान वाला जो आकाश सो आकाश पेदा हुवा (३१) फेर काल, माया, ओर चैतन्य क अश द्वारा भगवान के अवलोकन किये हुये आकाश ने अपने से उत्पन्न हुये स्पर्श का रूपातर करके तिस से वायु को उत्पन्न किया (आकाश मे वायु हुइ) (३२) आकाश ओर उक्त शक्तियोयुक्त वायु विकार को प्राप्त हुये उसने तेज को उत्पन्न किया (३३) तदनतर वायु से युक्त और ईश्वर से अवलोकन किया हुवा तेज, काल, माया ओर चिदाभास के द्वारा रूपातर को प्राप्त होने लगा तब उसने रस युक्त जल का पेदा किया, (तेज तन्मात्रा से रस, रस से जल पेदा हुवा) (३४) एव जल से गध गुण युक्त पृथ्वी उत्पन्न हुइ (३५) सबध वश आकाश म १ वायु में २ तेज म ३ जल में ४ पृथ्वी मे ५ (शब्दादि) गुण है (३६) उपरोक्त महत्‌तत्त्वादि क देवता (शक्ति) आग सृष्टि करने में असमर्थ ही रहे

(अ ६) भगवान ने उन २३ तत्त्वो के समूह म (अपने प्रवश होन क पहले) क्रिया शक्ति पेदा करके सबको एकत्र करके जाड दिया ३ उस समूह ने अपन

अपने अश से विराट शरीर पैदा किया. ४. वोह समूह ही अपने अपने मे प्रविष्ट हुये परमेश्वर के द्वारा परस्पर सयुक्त हो के अपने थोडे अशो मे जिस में चराचर लोक रहे हुये है ऐसे पुरुष (विराट पुरुष) रूप परिणाम को प्राप्त हुवा. ६. इस ज्ञान क्रिया और भोक्तृत्व शक्ति वाले द्वारा एक हृदय. १० प्राण और अध्यात्मादि ३ ऐसे विभाग किये ७ यह परमात्मा का आदि अवतार है इस मे सब ब्रह्माड सुरक्षित है ८ इस विराट के मन मे "आगे को ऐसा करू" ऐसा विचार आने लगा १०.

उस से उसके अग अर्थात् देवताओ के स्थान, मुख, तालु, दश इंद्रियो के गोलक, हृदय (मन शक्ति का स्थान) उत्पन्न हुये और अहकारादि (अतःकरण) उत्पन्न हुये. २५ तक. मस्तक से स्वर्ग, पाद से भूमि और नाभी से आकाश (स्थूल) पेदा हुये, जिस मे सब सृष्टि है २६ सत्व गुणी होने से देवताओ का स्वर्गलोक और रजोगुणी स्वभाव होने से कर्म कर्ता मनुष्य और उनके उपयोग में आने वाले पशु आदि भूमि मे रहते है. २८ (उसके चक्षु से सूर्य चद्रादि पेदा हुये) उस पुरुष के मुख से वेद और ब्राह्मण, भुजा से क्षत्री, उस विभु की जंघा से वैश्य और चरणों से शूद्र ऐसे ४ वर्ण पेदा हुये. ३२ इस वैराट का (योगमाया युक्त भगवान का) पूरा वर्णन करना और उसकी इच्छा भी होना अशक्य है. ॥३४॥

(अ. ७) (शं.) निर्गुण भगवान को लीला रूप मे भी त्रिगुण (माया) का सबध होना, निर्विकार मे सृष्टि होना, उस पूर्ण काम को इच्छा होना, उसको खेलने की इच्छा होना और उस असग को क्रीडा होना असभव है. वोह त्रिगुणात्मक माया से जगत को उत्पन्न, पालन और सहार करता हो यह भी नहीं बनता. जीव अविद्या का सबंध हो तब ऐसा हो सक्ता है, परतु जीव अविनाशी है इसलिये उसको अविद्या की प्राप्ति होना असभव है. जब कि ईश्वर ही तमाम शरीरो मे जीव रूप से रहा हुवा है तो कर्ता भोक्ता दु.खी क्यो होता है जो विना कारण ऐसा होता हो तो ईश्वर को भी दुखादि क्यो न हो अर्थात् होने चाहिये. ॥ १ से ७ तक ॥ (उ) यह भगवान की माया है कि जीव वस्तुतः मुक्त है और उसको बधन होना वा दीनता होनी यह वार्ता तर्क करने पर सर्वथा विरुद्ध है अर्थात् ठीक नहीं है परतु ठीक प्रतीत होती है. ।९। जैसे स्वप्न द्रष्टा को मेरा शरीर छेदन हुवा, हाथ पैर टूट गये, ऐसा विरुद्ध ज्ञान सत्य नहीं होता है परतु उस मे सत्यता जान पडती है. वेसे ही जीव को बध केवलाभास मात्र है. ।१०। जैसे जल मे चद्र प्रतिबिंब को जल के कम्पादि धर्म प्राप्त होते है अर्थात् असत होने पर भी देखने मे आते है परतु वोह चद्रमा मे

नहीं दीखते. इसी प्रकार देहादिक के धर्म मिथ्या होने पर भी द्रष्टा अभिमानी जीव में ही दीखते है. ईश्वर से इनका कोई सबध नहीं है. इसलिये ईश्वर में क्लेश बंधन नही है ११ .अनात्मा में आत्म बुद्धि सो वैराग्य, ईश्वरार्पण कर्म होने मे वा ईश्वर की कृपा मे प्राप्त हुई जो भगवदभक्ति उस से धीरे धीरे नष्ट होती है. १२.

(वर्तमान कल्प की सृष्टि)—

(अ. ८) जिस समय यह जगत प्रलय काल के समुद्र में डूब गया था उस समय चेतन शक्ति वाले आत्म स्वरूप में आनंद वाले निरीह (इच्छा रहित) एक ओर शेष शय्या पर सोये हुये भगवान ने अपने नेत्र बंद कर लिये थे. १०. वोह परमात्मा अव्यक्त शक्ति वाला अपने शरीर मे तमाम सूक्ष्म शरीरो को स्थापन करके अपनी काल नामक शक्ति के प्रगट करता हुवा. १२ और अपने मे लीन हुयो को देखा. १३. तब शब्दादि सूक्ष्म भूतो का समूह सृष्टि काल के अनुकूल रजोगुण से क्षोभित होके पेदा होता हुआ. उनकी नाभी स्थान मे से कमल की कली के रूप मे बाहिर निकला. १२ प्राणी मात्र के पुरातन कर्मो के सूचित करने वाले काल के द्वारा विष्णु मे उत्पन्न हुवा वोह कमल कली अपार जल के प्रकाश करती हुई एका एकी जल पर आई १४. तब सर्व शक्तिमान भगवान ने उस कमल मे अतर्यामी रूप मे प्रवेश किया. तब उस कमल मे से जिनके स्वयभु कहते है वोह विना पढे ही वेद मूर्ति ब्रह्माजी पैदा हुये. १९. चारो तरफ देखने से सृष्टि न दीख पडी परतु चारो तरफ देखने से उनके ४ मुख हो गये १६. लोक तत्त्व (कमल) क्या है और मे कौन हूं यह ब्रह्मा ने नहीं जाना. १७ कमल का अधिष्ठान होना चाहिये ऐसा मन मे विचार के कमल की दडी मे उतरे, परतु उसका आधार न मिला १९. फिर पीछे अपने स्थान पर आके समाधिस्थ हुये. २१. १०० वर्ष समाधि की तब उनके अधिष्ठान स्वरूप परमेश्वर का स्वरूप, अपने हृदय में स्वय प्रकट हुवा देखा. २२ शेष रूप विस्तार वाली शय्या पर शयन करते हुये प्रकाशमान एक पुरुष के देखा. २३. (पुरुष के स्वरूप याने विष्णु का वर्णन) उस पुरुष का अव्यक्त माया वा ब्रह्म ही मूल है ऐसे वे भगवान थे. २९. उस ईश्वर के दर्शन से ब्रह्मा के सृष्टि उत्पन्न करने का ज्ञान हुवा. उस कमल मे प्रलयकाल का जल, वायु और आकाश के सिवाय कुछ न देखा. ३२. (अ. ९) ब्रह्मा जी भगवान की स्तुति करने लगे. तुम्हारे सिवाय कोई भी सत्य वस्तु नहीं है जो है रूप मे प्रतीत होती है सो भी सत्य नहीं है,

क्योकि त्रिगुणात्मक माया के सबध से तुमही अनेक प्रकार के भासते हो और एक हो फिर सत्व, रज, तम इन तीन गुणो से अपनी मूल प्रकृति के तीन भेद करके उत्पत्ति, स्थिति, लय के कारणभूत विष्णु, मै (ब्रह्मा) और शंकर यह तीन जिसके गुद्दे है, ऐसे होके तदनन्तर प्रत्येक गुद्दे की मरीची आदि ऋषिरूप तथा मन्वतर आदि रूप शाखा उपशाखा युक्त होते हुये वृद्धि को प्राप्त हुये है, तिन जगद्रूप भगवान को मेरा नमस्कार हो. १९. जो तमाम विषय सुख की प्रतीति से रहित हुये भी अपनी ही रची हुई धर्म मर्यादा का पालन करने की इच्छा से पशु, पक्षी, मनुष्य और देवता आदि जीवयोनी मे अपनी इच्छा अनुसार शरीर धार कर क्रीडा करते हो, तिन पुरुषोत्तम रूप तुम भगवान को नमस्कार हो. २१ तिन ही भगवान के प्रभाव से युक्त इस जगत् को अपनी आज्ञा से उत्पन्न करने वाले भी मेरी बुद्धि की प्रवृत्ति करे. २३ अपने ज्ञान और ऐश्वर्य के द्वारा मेरी बुद्धि को सयुक्त करें कि जिससे जगत् को मै पहिले के समान उत्पन्न करुं २२. जिस पुरुष की नाभी रूपी सरोवर मेंसे महत्तत्त्व रूप चित्त का अभिमानी मैं उत्पन्न हुवा हू (श. १ से २४ तक, मे ऐसी प्रकार की स्तुति है कि जिससे सृष्टि क्रम का भान हो सकता है. शेष क्या, कमल क्या, ब्रह्मा क्या, इत्यादि का भाव जाना जाता है. हमने तो श्लोको मे से कोई कोई पद उठा के लिखा है).

स्तुति सुन के भगवान बोले कि तुम पुनः तपस्या करो तब तुमको दोनो लोक नजर आवेंगे. ३० + + +

(अ १०) भगवान अंतरध्यान हो गये उस पीछे ब्रह्मा जी ने अपने शरीर और मन से कितने प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की १ जल सहित उस वायु को ब्रह्मा जी ने पी लीया. ६. पीछे उस कमल के भूः भुव और स्वः यह ३ विभाग किये और उसमे अधिक रचना होना सभव था. ८. मह जन, तप और सत्य लोक यह यह निष्काम कर्म के फल है ब्रह्मा के दिवस में इनका नाश नहीं होता और उक्त ३ लोक का उत्पत्ति नाश होता है ९. स्वरूप शून्य और आदि अत शून्य जो काल तिस के ही निमित्त को स्वीकार के ईश्वर ने अपने को ही जगत रूप रचा है. ११. पहले विष्णु भगवान की माया से लय को प्राप्त हो के ब्रह्म स्वरूप हुये इस जगत को ईश्वर ने गुप्त काल के द्वारा भिन्न भिन्न प्रकार का प्रकाशित किया है. १२. यह जगत वर्तमानवत् पूर्व मे था और प्रलय होने पीछे ऐसा ही उत्पन्न होगा, तिस काल के द्वारा प्रकृति मे (देव जाति का) ६ प्रकार की और विकृति से मनुष्य जाति

की तीन प्रकार की ऐसे ९ जाती की सृष्टि पैदा हुई है और दसवा भी सृष्टि का प्रकार है. १३ नित्य नैमित्तिक और प्राकृतिक ऐसे ३ प्रकार का प्रलय होता है. महत्तत्त्व की उत्पत्ति पहिली सृष्टि है परमात्मा द्वारा तीनो गुणो का न्यूनाधिक होने का नाम महत्तत्त्व है. १४ जिससे पचमहाभूत, ज्ञानेंद्रिय और कर्म इन्द्रियो की उत्पत्ति होती है वो अहकार दूसरी सृष्टि है जिसमें पचमहाभूत पैदा करने की शक्ति है वोह शब्दादि (तन्मात्रा) सूक्ष्म भूतो की उत्पत्ति का प्रकार तीसरी सृष्टि है. १९. १० इंद्रियो की उत्पत्ति का प्रकार चोथी, सात्वकी अहकार से इंद्रियो के देवता पेदा हुये. यह पाचवी सृष्टि है इसी में मन का अंतर भाव है १६ पाच प्रकार की अविद्या सो छट्टी सृष्टि है. यह ६ प्रकृति सृष्टि है * १७ अब विकृति सृष्टि—वृक्ष † पाषाणादि स्थावरो की ६ प्रकार की सृष्टि सात्वकी है, उन ६ के भेद कहे है. १८ मे १९ तक २८ प्रकार के तिर्यक ‡ जाति वालो की आठवीं सृष्टि है. २० गोआदि २ खुर वाले, गर्धभादि १ खुर वाले, श्वानादि ५ नख वाले, मगर वगेरे जलचर, बाज वगेरे पक्षी थलचर, इस प्रकार से उन तिर्यको के भेद है २१ से २५ उपर से नीचे होने वाले मनुष्यो की नवीन सृष्टि है. वैकृत सृष्टि पहिली ६ सृष्टि से उत्पन्न हुई है २६ देवता, पितृ दैत्यादि ऐसे अष्ट प्रकार की देवताओं की सृष्टि है ऐसे ब्रह्मा की बनाइ हुई १० प्रकार की सृष्टि है २७।२८

(अ. ११) अखड, अवस्था रहित अति सूक्ष्म को परमाणु कहते है याने घट पटादि का सूक्ष्म स्वरूप २ काल व्यापक है अव्यक्त है भगवान की शक्ति म युक्त है ३ दो परमाणु का एक अणु और ३ अणु का त्रसरेणु कहाता है (सूर्य की किरणो में दृश्य होता है) ५. सूर्य इस त्रसरेणु का उल्लघन करे इतने काल का त्रुटि कहते है इससे तीन सौ गुना वेद ३ वेद=१ लव ३ लव=१ निमेष इत्यादि काल माप और तोल माप लिखा है ११ तक १०० वर्ष तक मनुष्यो की आयुष्य है १२. सूर्य भुवन कोश की परिक्रमा करते हैं १७. सृष्टि काल ब्रह्मा का दिन रात ब्रह्मा के प्रलय मे भू भुव. स्व. तीनो लोक लय हो जाते है तब भृगु वगेरे महर्लोक में चले जाते है ३९ वर्तमान वाराह कल्प दूसरे परार्द्ध के आरभ म हुवा है ३६

* अ ५।३६ तक क पीछे

† वृक्षों को ज्ञान शक्ति प्रकट नहीं होता भीतर म स्पर्श ज्ञान होता है १९

‡ तिर्यक को कल क्या होगा ऐसा ज्ञान नहीं होता

(अ १२) ब्रह्मा ने प्रथम अज्ञान की ५ वृत्ति (तम, मोह महामोह, क्रोध, अध तम) पेदा की पीछे सनकादि ५ ब्रह्मचारी, पीछे रुद्र (देवताओं से पूर्व) पेदा किये. १ से १५, रुद्र ने वहुत सतान पेदा की. १६. फिर ब्रह्माजी के १० पुत्र हुये. (मरीच, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ट, दक्ष और नारद). फिर धर्म, अधम, काम क्रोध, लोभ, वाणी, ७ समुद्र, राक्षस, देवहुति के पति कर्दम पेदा हुये इस प्रकार ब्रह्माजी के मन से और देह से यह जगत पेदा हुवा. १७, २७, ब्रह्मा के वाणी नाम की सुन्दर कन्या और ब्रह्मा का इतिहास. २८. ३२. शायद कोई रूपालकार होगा.

ब्रह्मा के मुख से ४ वेद पेदा हुये. ४ उप वेद हुये. चारों मुखो से पचम वेद रूप इतिहास पुराण उत्पन्न किये. ३८. उपरोक्त (अमैथुनी मानसिक) सतान से सृष्टि की वृद्धि न हुई. ५३. ब्रह्मा के शरीर के दो भाग हुये. उन भागों में से एक मिथुन याने स्त्री पुरुष का जोडा पेदा हुवा. पुरुष स्वायभुव नामक सार्वभौम (राजा) मनु हुआ और स्त्री शतरूपा उनकी पटराणी हुई. उन दोनो से मैथुनि सृष्टि चली. ५४, मनु के प्रियव्रत, उत्तानपाद यह दो पुत्र और आकूति (रुचीकी स्त्री हुई) देवहुति (कर्दम पत्नी) और प्रसूति (दक्षपत्नी) तीन कन्या हुई. इन तीन कन्या की सतति से * ससार भर गया. ५५.

(अ १३) मनु ने ब्रह्मा से कहा कि प्रजा के वास्ते स्थान दीजे. भूमि तो जल में डूबी हुई है ‡ उसे निकालिये १५ ब्रह्मा की नाक से शूकराकार एक वालक निकला. फिर वोह वहुत वडा हो गया उसे भगवान का रूप जान के स्तुति की २६. वोह वाराह समुद्र मे उतर गया. भूमि को वाहिर लाया. उसने विघ्नकारक हिरण्याक्ष दैत्य को मारा ३२ ३३ पृथ्वी को जल पर स्थापन करके वाराह भगवान निज धाम को गये. ४८

(अ. १४) दक्ष ने अपनी कन्या दिति मरीचि के पुत्र कश्यप को दी. ७.

(अ १७) दिति के हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दैत्य पेदा हुये. १८.

(अ १८) यह वही हिरण्याक्ष है जिसने वाराह साथ लडाई की और मारा गया ३.

---

* मैथुनी अमैथुना क नाईम मैथुनी, मैथुनी से मैथुनी रूपालकार होगा

‡ भूमि क विना मैथुना सृष्टि कहा रही हुइ थी ?

(अ २०) ब्रह्माजी ने अपनी कांति से सात्विकी देवता पेदा किये और तिस शरीर को त्याग दिया (२२). ब्रह्मा ने अपनी कमर के अगले भाग से कामी देत्यों को पेदा किया. २३. वे ब्रह्माजी के साथ युद्ध करने को उद्यत हुये + २३. ब्रह्माजी भय करके भागे. श्री हरि के पास शरणे गये और उनके कहने से वोह शरीर छोड दिया. २८. फेर ब्रह्माजी ने अपने शरीर में से गधर्व और अप्सरा के गण पेदा किये. ३०. अपने आलस्य से भूत और पिशाच पेदा किये. ४०. फिर अदृश्य शक्ति से साध्य और पितृगण पेदा किये. ४२. अपनी गुप्त शक्ति से सिद्ध और विद्याधर पेदा किये. ४४ अपने प्रतिबिंब से किन्नर पेदा किये. ४६. ब्रह्मा के केश से अहि नाम के सर्प पेदा हुये. ४८. फेर ब्रह्माजी के मन से १४ मनु उत्पन्न किये. ४९ योग समाधि द्वारा ऋषि मंडल ने प्रजा पेदा की. ५२.

(अ. २२) लड़ाई समय वाराह के रोम गिरे उससे कुश और कास वनस्पति पेदा हुई. २९.

(अ. २३) पहिले ससर्ग के दिवस ही कर्दम (देवहुती) के ९ कन्या पेदा हुई. ४७.

(अ २४) भगवान ने देवहुती के पेट में आ के साख्य शास्त्र कर्ता कपिल मुनि का शरीर जन्माया. याने भगवान ने कपिल मुनि रूप अवतार लिया. ६. एवं कर्दम ने अपनी कन्या मारिचादिओ को दी. २७ एव सृष्टि चली.

माया विशिष्ट चेतन ब्रह्म का विराट शरीर.

(भा. स्क. १२ अ. ११). चेतन अधिष्ठित प्रकृति, सूत्र, महतत्त्व, अहंकार और ५ तन्मात्रा इन ९ तत्त्व तथा इंद्रिय ११ पचभूत इन १६ विकार का समूह विराट पुरुष है. उसका स्वरूप यह है.

पृथ्वी (चरण) स्वर्ग (मस्तक) आकाश (नाभी) सूर्य (चक्षु) वायु (नाक) दिशा (कान) प्रजापति (शिश्न) मृत्यु (गुदा) लोकपाल (बाहु) चद्र (मन) यम (मुख) लज्जा (ऊपर का होठ) लोभ (नीचे का होठ) चादनी (दात) भ्रम (हास्य) वृक्ष (रोम) मेघ (केश) मनुष्य के शरीर समान उसका शरीर ब्रह्मांड उसको वालिश्त से ७ वालिश्त, शुद्ध जीव चैतन्य (कौस्तुभ) चेतन की व्यापक प्रभा (वत्स चिन्ह) त्रिगुणात्मक माया (वनमाला) वेद (पीत वस्त्र) ओ३म् त्रिमात्र (जनेऊ) साख्य, योग (कुंडल) ब्रह्मलोक

+ ब्रह्माजी की महिमा बोधक भागवत

(मुकुट) सत्व गुण, ज्ञान, धर्म, वैराग्य, (शेष कमलासन) मन की शक्ति (ओज) सह (इंद्रिय की शक्ति) बल (देह शक्ति) प्राण (गदा औजादि सहित) जलतत्त्व (शंख) तेज (सुदर्शन चक्र) आकाश तत्त्व (खड्ग) तम (ढाल) काल (धनुष) कर्म (तर्कस) इंद्रिय (बाण) सक्रिय मन (रथ) ५ तन्मात्रा (रथ का ऊपर का स्वरूप) धर्म (चंवर) कीर्ति (पंखा) कैवल्य (घर) वेद (वाहन गरुड) शक्ति (लक्ष्मी) पंचरात्र (पार्षद) सिद्धि (द्वारपाल). यह स्वरूप विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुर्या इन चार वृत्तियें से जाना जाता है. यह भगवान माया से जगत् की उत्पत्ति, पालन और सहार करते हैं. ब्रह्मा विष्णु और महेश जुदा नहीं है किंतु एक के ही एक रूप है.

शोधक.

भागवत का मत अभिन्न निमित्तोपादान है और कहीं मायावाद जैसा है और कहीं त्रिवाद जैसा (जीव अनादि अनंत) रूप लेता है. इनमे जितना असमीचीन अंश है उसका अपवाद ऊपर आ चुका है और आगे शुद्धाद्वैत में वाचोगे तद्वत माया-वादांश (जगत मिथ्या) तथा त्रिवाद के सबंध मे ऊपर लिखा गया और आगे वाचोगे.

भागवत के लेखों में यदि कोई इच्छित रूपालंकार न हो तो उसका सृष्टि क्रम सयुक्त नही जान पडता. पृथ्वी का जल मे डूब जाना, ब्रह्मा का वारंवार शरीर छोडना, पुत्री पर जाना, कामी पुत्रों से भागना इत्यादि बातें ठीक नहीं जान पडती.

जब कि जीव चेतन विष्णु रूप हो तो उसको बंध मोक्ष असभव, उसके लिये मोक्ष का साधन जो ईश्वर भक्ति सो भी नहीं बनती और उसे पुनर्जन्म होता है ऐसा नहीं माना जा सकता; क्यों कि चेतन निरवयव अखंड व्यापक है.

यदि माया कर के उस मे भासते है (यथा प्रतिबिंब का कप बिंब में भासता है तद्वत् ऐसा मानें) तो ऊपर कहे अनुसार बंध, मोक्ष के साधन और मोक्ष नहीं बनते; क्योकि प्रतिबिंब तो माया का कार्य है क्षणिक है (त द अ २. ४१८ याद में लीजिये) उसका बंध मोक्ष ही क्या? उसकी भक्ति भी क्या? व्यर्थ है इसलिये यह पक्ष भी ठीक नहीं जान पडता (विशेष आगे)

विभूषक मत.

श्रीमद्भागवत किसी का भी बनाया हुया हो और कभी भी बना हो परंतु साहित्य में एक उत्तम ग्रंथ है, उसमें अनेक विषयो का सग्रह है. भक्ति योग मुख्य है. वेदान्त और सांख्य शास्त्र के पीछे बना है क्योंकि उसमें इन दोनो की नकल की है.

यदि उसमे से रासलीला, चीरहरणलीला वगैरे और उपर लिखी जैसी अश्लील असभव बातों मे किनारा करके उसके एकादश स्कंध का अमुक भाग ले लिया जाय तो वोह अमुक व्यक्ति के लिये उपयोगी लाभकारी है.

भागवत की तीनों भावना (ब्रह्मवाद, जगत मिथ्यावाद और त्रिवाद में से) किसी व्यक्ति को जो पसद पडे उसको मानें और पूर्वोक्त पंचदशाग पूर्वक पाले तो उस व्यक्ति को हानिकारक हो, ऐसा नहीं मान पडता. जो ऐसा न हो और उसके शब्द शब्द का ग्रहण करें वा करावें तो जेसा उसके प्रचार का वर्तमान में अनिष्ट परिणाम हो रहा है वैसा होगा. परंतु हमारी उसके भूषण पर दृष्टि है इसलिये उक्त भूषण भाग ग्राह्य है, इतना ही कहना है.

---

२९. सौर्य.

सूर्य को पूजनेवाला मंडल हिंद में बहुत कम है. सूर्य पुराण इनका ग्रंथ है उसको व्यासकृत कहते हैं. तिलक लाल चंदन का. माला काच की. हर सक्रांति को और रविवार को नमक विना का भोजन. आदित्य हृदय का पाठ सूर्य दर्शन के विना अन्न न खाना. (मलेबार देश में इनका दर्शन हो जाता है).

यह प्राचीन सम्प्रदाय है. पारसियो मे इसका रिवाज है. सूर्य का सामान्य प्रकाश व्यापक है. विशेष साकार है. सामान्य सर्व का अधिष्ठान है (वेदात का भाति) अहं भानु, ऐसा ज्ञान हुये अज्ञान और जगत की निवृत्ति होती है. ज्ञेय ब्रह्म निराकार रूप है. साकार रूप देव ब्रह्म रूप है. इसी को निर्गुण सगुण ब्रह्म कहते है. सब वेदातानुसार है (विभूपक मत). पचदशाग पूर्वक इस भावना के पालने में उस भाविक व्यक्ति को हानी हो, ऐसा नही मान पडता.

---

३०. गाणपत्य.

गणेश उपासक. हर काम में इस देवता की पूजा होती है. गणेश पुराण इनका ग्रंथ है. उसे व्यासकृत मानते हैं. गणेशाष्टक है. यह मंडल हिंद में ही है. बहुत थोडे है. इनकी कथा में आदि देव गणेश (गणेश का ईश--ईश्वर) है (विभूपक) सौर्य प्रसगवत्

---

३१. शटकोप-मुनिवाहन.

यह दो पुरुष राजा भोज के १५० वर्ष पीछे (वि. ७०० में) हुये है. इन्होने वैष्णव मत की बुनियाद डाली है. ऐसा एक इतिहास में लिखा है. (स्वा द च) उसी में एक कुरसी नामा है

शट गोपाचार्य १, मुनि वाहन २, यमनाचार्य ३, रामानुज ४, रामानद ५, कबीर ६ (वि १३ सदी से पीछे आचार्य रूप का यह कुरसी नामा है)

वैष्णवो के ९ मत वा सम्प्रदाय प्रसिद्ध है—

रामानुज, माधव, रामानद, विष्णु, निम्बार्क, वल्लमी सम्प्रदाय, * वल्लभ सम्प्रदाय (शुद्धाद्वैत) स्वामी नारायण और बगाल मे चेतन सम्प्रदाय है रामानुजादि शटकोप वा मुनि वाहन के अनुयायी हो वा न हो, परतु यह सब वेद, वेदात और गीता पुराण को मानते है. दसवा सम्प्रदाय निष्कलकी डेढराज का है जो रेवाडी के जिले मे प्रचलित है.

३२. श्री रामानुज (वैष्णव संप्रदाय).

रामानुजाचार्य द्रावड देश निवासी ब्राह्मण कहलाते है इन्होने वेदात पर जो बोद्धायन कृत वृत्ति है (जो आज कल गुम है और ठीक मानी जाती है) उस वृत्ति के अनुसार वेदात भाष्य किया है, ऐसा माधवाचार्य अपने सर्व दर्शनसग्रह मे जनाते है. इन्होने वेदात श्रीभाष्य मे श्रीशकराचार्य का मायावाद (केवल अद्वैतवाद) और जीव ब्रह्म की एकता का बडे जोर के साथ खडन किया है § इनकी श्री संप्रदाय

---

* वैकुंठ मे राधा याने आद्य शक्ति और विष्णु भगवान रहते है उभय युक्त राधा कृष्ण से सृष्टि हुई है कृष्ण में नर और राधा में स्त्री लय हो जाती है इत्यादि वल्लभी सम्प्रदाय का कथन है (मु. शा)

§ यथा अभाव भाव से जुदा पदार्थ नहीं, अज्ञान (अनादि भावरूप) पदार्थ हो तो उसका अभावरूप नहीं हो सकता ज्ञानस्वरूप ब्रह्म में अज्ञान नहीं बनता, क्योंकि तम प्रकाश का विरोध है माया, अज्ञान का नाम नहीं किंतु श्रुति में प्रकृति का नाम लिया है विरुद्ध धर्म होने से ब्रह्म जीव की एकता नहीं हो सकती तत्त्वमसि में ऐसा समानाधिकरण है अर्थात् जिससे यह जगत उत्पन्न नाश होता है सो (तत्) चिद्विशिष्ट जीव, जीव शरीरी, ब्रह्म तू (त्वं) है श्रुतियों में जीव ब्रह्म का भेद कहा है (द्वासुपर्णा सयुजा) जीव शरीर, ब्रह्म शरीरी इसलिये अपृथकत्व है निर्विशेष कोई वस्तु नहीं सविशेष का निर्विकल्प प्रत्यक्ष होता है यदि ब्रह्म से इतर सब मिथ्या तो यह कथन, यम नियमादि वेद शास्त्र भी मिथ्या होते हैं इ इ

का प्रचार दक्षिण देश मे तोताद्री की तरफ ज्यादे हुवा. रामानदजी इनके शिष्य हुये है जिनका चेला कबीर हुवा है. रामानुज आचार्य बडे विद्वान, योग्य, ईश्वर के सच्चे भक्त हुये है उनका साम्यभाव प्रसिद्ध है, वे जात पात के भेद को नही चाहते थे किंतु सब को ईश्वर का शरीर मान के सब को समान देखते थे, ऐसा ग्रंथो में देखते है

इनके समय का ठीक पता नहीं एक जगह महमूद गजनवी से पहिले लिखा है. दूसरी जगह स. १३०० है तीसरी जगह १२०० है रामानुज का शिष्य रामानद उसका शिष्य कबीर उसके शिष्य श्री नानकजी हुये हे कबीर वि १४२७-१४७७ दूसरी जगह १९४० वि रामानदजी वि. १३१७ दूसरी जगह वि. १९०० लिखा है कबीरपंथी कहते है कि कबीर रामानद का चेला नही था स्वतंत्र पुरुष था. तद्वत सिख मडल गुरु नानक को कबीर का चेला नही मानते. श्री सम्प्रदाय वाले रामानुज को शठकोप का शिष्य नही कहते सब को उपर अनुसार नही कहने में सम्प्रदाय का महत्व हेतु हो ऐसा जान पडता है

श्री रामानुजाचार्य का मतव्य

(१) चित् (भोक्ता जीव) अचित् (भोग्य-प्रकृति-माया) और ईश्वर (नियामक) ऐसे तीन प्रकार के पदार्थ है

(२) जीव=असग, अपरिच्छिन्न, ज्ञानस्वरूप, चेतन, अनादि से कर्म म लिपटा हुवा, नित्य ईश्वर परमात्मा से भिन्न अणु परिमाण, अनुभव स्वरूप, भोग्य का भोक्ता, यथाकर्म ज्ञान का सकोच विकास पाने वाला, ससर्गी सुख, दु ख, उपभोग पाने वाला, भगवत प्राप्ति और ईश्वर पद प्राप्ति करने योग्य

(३) अचित्=भोग्य-अचेतन, अपुरुषार्थ (परतत्र), विकारी स्वभाव, सत्वादि त्रिगुणात्मक, भोग्य (विषय) भोगोपकरण (साधन) भोगायतन (शरीर) यह तीनो उसके कार्य है. काल भी शब्द प्रभृति आकृति सपन्न है

(४) ईश्वर=भोक्ता भोग्य का अतरर्यामी, सर्वज्ञ है, और ऐश्वर्य, वीर्य-शक्ति, तेज, असख्य कल्याण गुण वाला है, और स्वसकल्प से चिद्अचिद् का अधिष्ठाता, एक, दिव्य, निरतिशय, अनत भूषण वाला, करुणामय परमपुरुष है जीव और प्रकृति जिसके शरीर है सो वासुदेव ईश्वर इस जगत का कर्ता और उपादान है अर्थात् जीवो के कर्मानुसार सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का निमित्तकारण है और प्रकृति उपादान है

(५) सो ईश्वर अपनी लीला से पाच रूप म प्रतिष्ठित हे १. अर्चा (प्रतिमादि) २. विभव (रामादि अवतार मे अवतरण होना) ३ व्यूह (वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) ४ सूक्ष्म षड्गुण पूर्ण वासुदेव नामक परब्रह्म यहा गुण शब्द से अपहतपाप्मत्व प्रभृति हैं. ५. अंतर्यामी (सब मे नियामक रूप से रहा हुवा) अर्चादि रूप मे भक्तो के साम्ने अधिष्ठित होता हे.

(६) उनमे पूर्व पूर्व मूर्ति की उपासना द्वारा उत्तरोत्तर मूर्तियो की उपासना मे अधिकार उत्पन्न होता है. सूक्ष्म मे अधिकार होने पीछे अतर्यामी के साक्षात करने की शक्ति उद्भुत होती हे उपासना पाच प्रकार की होती हे १. अभिगमन (देवस्थानादि का मार्जन लेपन) २. उपादान (गधादि पूजा के साधन का आहरण). ३. इज्या (देव का पूजन). ४ स्वाध्याय (अर्थ सहित मत्र जप, नाम, कीर्तनादि याने तत्त्वप्रतिपादक का अभ्यास) ५. योग (देव का अनुसधान) इस कर्म उपासना से विज्ञान उद्भव होता है योग सहकार से दृष्ट दर्शन निवृत्ति होने पर वासुदेव अपना अनत स्वरूप (दर्शन) और स्वकीय पद भक्त को प्रदान करते हैं, वोह पद कैसा है? जहा से पुनर्जन्म (पुनरावृत्ति) नही होती, और अक्षय आनद तथा स्वीय (अपना) धाम (सालोक्य मुक्ति) प्रदान करते हैं.

भगवान निदिध्यासन रूप से भक्ति करने पर प्रसन्न हो कर क्रम २ से कर्म सघात रूप अविद्या का नाश करते हे तब पुरुष का ससार तिरोहित, और स्वभाव-सिद्ध सर्वज्ञत्व प्रभृति, कल्याण गुणो का आविर्भाव होता है. इस प्रकार ईश्वर और भक्त दोनो के समान गुण होते हैं. उनमे से सर्व (जगत्) कर्तृत्वादि ईश्वर मे ही होते हैं. उपासक मे नहीं. शेषरूपी भक्तगण मुक्ति लाभ कर, वहीं शेषरूपी ब्रह्म में लय होकर समुदाय अभीप्सित सिद्ध सभोग करते हैं (सायुज्य मुक्ति) (सर्व-दर्शनसग्रह मे से)

(७) लोकिक मे इतर प्रस्तुत विषय में श्रुति, गीता, वेदातदर्शन इन ३ को मुख्य प्रमाण मानते हैं. स्मृति, पुराण और पचरात्र को भी प्रमाण करते हैं. इनके स्वर्ग का नाम वैकुठ हे

अवतरण.

रामानुज श्री के कितनेक सस्कृत वाक्यो का तरजुमा लिखते हैं जो उनके श्री भाष्य में है, जिससे उनका आशय निकल आता है

१. मुक्त जीव का ऐश्वर्य है, परतु ईश्वर समान (जगत्कर्ता, धरता हरता इ) नही होता. वेदात अध्याय १ पाद ३ सू १८ के भाष्य में. २. जीवात्मा ईश्वर का शरीर है. श्रुति प्रमाण "य आत्मनितिष्ठित्. वृ." जो आत्मा मे रहता है, आत्मा जिसको नही जानता. आत्मा जिसका शरीर है, जो आत्मा को नियम में रखने वाला है, वोह तुम्हारा अतर्यामी आत्मा है. शरीर रूपी जीवात्मा में स्थिर होने से जीव रूप से स्थिति मानी है (१।४।२२). ३. प्रकृति ब्रह्म का शरीर है. प्रकृति उपादान और ब्रह्म निमित्तकारण है. (१।४।२६). ४. शरीर (प्रकृति) भोग्य है. शरीरी (ईश्वर) दुःखी सुखी नहीं होता (२।३।१३) ५. सो (ईश्वर अर्थात् प्रकृति और जीव जिसका शरीर है) तू है. अर्थात् जीव प्रकृति एकता ब्रह्म के साथ शरीरी भाव से की है. (२।३।१४). ६. विशिष्ट च. सूक्ष्म चिदचिद्- (जुदा जुदा) विशिष्ट ईश्वर, स्थूल चिद अचिद् विशिष्ट ईश्वर, दोनो कारण कार्य रूप शरीर विशिष्ट के एक्य का नाम विशिष्टाद्वैत है श्री भाष्य प्र. ९६०।२।१।२३ का भाष्य=जगत् उत्पत्ति काल में प्रकृति ओर जीव-शरीर विशिष्ट ब्रह्म जगत का कारण है और स्थूल जगताकार शरीर विशिष्ट कार्य कहाता है अर्थात जीव और प्रकृति दोनो पदार्थों के साथ मिला हुवा विशिष्टाद्वैत कहाता है. ७ जड चेतन रूप सब वस्तु मात्र का ब्रह्म के साथ अभेद, उसका शरीर होने के अभाव से, इसलिये ब्रह्म से भिन्न सपूर्ण पदार्थ उसके शरीर रूप से है, और उनके प्रतिपादक शब्द, ब्रह्म को ही कथन करते हैं; यह "ऐतदात्म्यमिद सर्वं" का अर्थ हैं. इसी वात को "तत्त्वमसि" इस समानाधिकरण बोधक वाक्य से विशेष रूपता कर के उपसहार किया है (श्री भाष्य पृ. ९६०). ८. ३ पदार्थ अनादि है. परिणाम पाना माया में है दुःख पाना जीव में और कल्याण गुणाकरत्व ब्रह्म म है (२।१।२३). ९. ज्ञान मात्र से जो परमार्थ सिद्धि मानते है ओर जो सब पदार्थों को मिथ्या मानते हैं, वे लोग, पर्दा लगा के वेदवादी बनते हैं. परतु प्रच्छन्न बोद्ध * (छिपे हुये बोद्ध) है. (२।२।०९). १०. मायावादि जो जीव को विभु कहते हैं या जीव को ब्रह्म वर्णन करते हैं वोह सब तर्क आभासमात्र है. (३।२।९०). ११ प्रकृति का गुण ब्रह्म में नहीं इसलिये ब्रह्म निर्गुण, और अपने सत्यादि गुण होने से सगुण है. (३।२।१९). १२. मोक्ष का साधन जो ज्ञान उसी के ध्यान-उपासना-निदिध्या- सनादि नाम हैं इसलिये वोह ज्ञान ध्यान रूप भक्ति से कोई जुदा वस्तु नहीं. जब

* शंकराचार्य की तरफ कटाक्ष है

वोह निवेचन करता है तब ज्ञान कहाता है और जब वोह अनुष्ठान से ईश्वर भक्ति रूप होता है तो वोह ध्यान कहाता है (३।४।२७) १३. ब्रह्म से भिन्न मे ब्रह्म दृष्टि करना सो प्रतीक उपासना परंतु उपासना अधिकरण में ऐसा नही है. अपने में ब्रह्म भाव वा ब्रह्म में जो आत्म भाव का उपदेश, सो अन्य मे अन्य भाव से नही किंतु अपहत पापमादि धर्मो के अभिप्राय से अहंग्रह उपासना है इसलिये प्रतीक उपासना से महत् अंतर है (४।१।५) विजाती वस्तु के ज्ञान से व्यवधान रहित जो एक रूप से चिंतन है उसे ध्यान कहते है तो फिर निराकार का ध्यान कैसे न हो (हो सकता है) (४।१।८) (आर्य भाष्य में से) १४ सर्व में ब्रह्म इसलिये अभेद. ब्रह्म चिद अचिद प्रकार से नानावशात् विराजता है इसलिये भेदाभेद और चित् (जीव) अचिद् (प्रकृति) और परमेश्वर इन तीनो के स्वरूप की विलक्षणता है इसलिये भेद है ‡ (स द. स से) १५ तापः पुण्ड्र इतिश्रुते रामानुज पटल पद्धति शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिह्न अग्नि में तपा के भुजा में दाग देके दूध युक्त पान में बुझाना § तिलक, नाम, माला और मंत्र यह पांच संस्कार, परम एकांत के हेतु है (सत्यार्थप्रकाश पृ. ३२० म से) +

शोधक

रामानुज श्री ने जो भेद, भेदाभेद और अभेद यह तीन पक्ष माने हैं इनका खंडन आनंदतीर्थ (पूर्ण प्रज्ञ) ने किया है. जो भेद वोह अभेद और जिसका भेद

---

‡ रामानुज श्री का त्रिवाद द्वैतवाद और भेदवाद है विशिष्टाद्वैत, और भेदाभेदादि रूप कथन शैली मात्र है ईश्वर का अवतार होना मानते हैं इसलिये अवतार त्रिवाद है और मुक्ति से अनावृत्ति मानी है अतः अनावृत्ति त्रिवाद है

शुद्धाद्वैत मार्तंड की उपोद्घात पृष्ठ ५९।६० म से—रामानुज के मत में जड का अभेद ब्रह्म के साथ और चित्त का अभेद आचित् के साथ स्वीकारा है प्रलय अवस्था में भी ऐसा ही है अक्षर ब्रह्म का भगवद् का धाम माना है कर्म, ज्ञान और भक्ति यह साधन क्रम है दूसरा जीव में दास्य माना है 'तत्त्वमसि' का तस्य त्वं (तिसका तू दास) ऐसा विग्रह किया है मोक्ष अभावात्मक और परोक्ष माना है विशिष्टाद्वैत में सालोक्य सामीप्य, सार्ष्टि (सायुज्य) और सारूप्य मोक्ष का स्वीकार है विशिष्टाद्वैत का अस्वीकार ख्यात है

§ पूर्ण प्रज्ञ ने भी तप्तमुद्रा की छाप लेना माना है लिंगायत, शंकर के लिंग की छाप लेते है

+ रामानुज के मत का मूल पूर्वोक्त भागवत मत और पंचरात्र मत है ऐसा वाचन में आता है

उसका अभेद नही हो सकता. एवं अभेद वास्ते जानो. एक प्रति भेदाभेद विरोधी धर्म मानना व्याघात है. वेदात अ. २।२।२२ मे व्यासजी ने भी खडन किया है. श्रुति भी (द्वासुपर्णा) भेद ही कहती है. आर्य समाज के स्थापक स्वामी दयानदजी ने अवतारवाद का खडन बडे जोर के साथ किया है तथा छाप तप्त मुद्रा लेने और उसके दूध के पीने का खडन दरसाया है (स समुल्लास ११). अवतार का अपवाद उपर अवतारादि प्रसग सू ८१ की टीपण मे वाच चुके हो. त्रिवाद का अपवाद वक्ष्यमाण आवृत्ति त्रिवाद (दडीमत) मे वाचोगे और उपर वाच आये हो, और मुक्ति मे अनावृत्ति असिद्ध है यह अ. ३ मुक्ति प्रसग तथा वेद अक ९ में वाच चुके हो अर्थात् आवृत्ति ही सिद्ध होती है रामानुज श्री का द्वैतवाद ही है. विशिष्टाद्वैत कथन मात्र है

त्रिभूपकमत

रामानुज श्री का मत त्रिवाद है त्रिवाद के भूपण उपर वेद उपनिषद् प्रसंग में तथा अ ४ में लिखे हैं, उस अनुसार यहा जान लेना चाहिये, यदि पचदशाग पूर्वक पाला जाय तो पालने वाले की हानी नहीं जान पडती, क्योकि मुख्य ज्ञान प्राप्ति का साधन है इसी पक्ष में भक्तिभाव बन सकता है अ. १ विभूपकमत अक २९ विचारो, और ईश्वरावतारादि प्रसग में अ १ वत् ज्ञातव्य है.

---

२३. श्री पूर्णप्रज्ञ आनंदतीर्थ मध्व का मंतव्य.

(१) जीव का अणुत्व, दासत्व, वेद का अपौरुषेयत्त्व सिद्धार्थ बोधकत्व और स्वत. प्रमाणपना, तीन (श्रुति, वेदात, गीता) प्रमाण और पचरात्र की मान्यता इन सब विषय में श्रीरामानुज के साथ एकता है तथा मायावाद (जगत् मिथ्या जीव ब्रह्म की एकता) के निषेध में भी वैसे ही समत है. परतु रामानुज श्री ने भेद, अभेद, भेदाभेद यह तीन रूप मानें उनमें यह केवल भेद का ही स्वीकार करता है अभेद और भेदाभेद का बडे जोर से खडन करता है.

(२) स्वतत्र (विष्णुभगवान), अस्वतत्र ऐसे २ प्रकार के तत्त्व है.

(३) विष्णु की सेवा ३ प्रकार की है (१) अकन–विष्णु के चक्रादि का चिह्न धारण करना. अर्थात् मुद्रा को तपा के शरीर पर दागना (जैसा कि द्वारिका

वगैरे में करते हैं चक्रांति कहलाते हैं) ऐसा करने से स्वर्ग वास होता है, पुनर्जन्म नही होता (शाकल्य साहित्य परिशिष्ट और तैत्तिरीय § श्रुति प्रमाण है) किस प्रकार का और कहां चिह्न करना यह रीति अग्निपुराण मे लिखी है और किन मंत्रों से करना वे दूसरी जघे अंकित हैं. (२) **नाम करण**–पुत्रादिकों का नाम ईश्वर वाले (केशवादि) नाम रखना. इससे ईश्वर का स्मरण होता है. (३) **भजन**–सत्य हित प्रिय बचन, वेदपाठ, दुखियो का दुःख निवारण, उनकी रक्षा, दया, दासत्त्व मे स्पर्धा, श्रद्धा. इन तीनों प्रकार के वर्तन से ईश्वर प्रसन्न होता है. (४) धर्म काम और अर्थ अनित्य हैं, मोक्ष ही नित्य है. सो विष्णु की कृपा बिना नही होती (लाल्लेवया श्रुति,नारायण श्रुति देखो), इसलिये विष्णु भगवान की चिंता करना चाहिये. तब वोह प्रसन्न होंगे. (५) विष्णु के गुणोत्कर्ष के ज्ञान होने पर विष्णु की प्रसन्नता सग्रह मे समर्थ हो जाता है. (अभेद भावना से वोह फल नही मिलता). इस प्रकार गुण विदित होने पर ससार त्रिनिवृत्त होजाता है, सब दुःखो का अभाव हो जाता है नित्य परमानंद भोगता है. एवं उसका **सामीप्य** लाभ होता है.

(६) विष्णु की प्रसन्नता बिना मोक्ष नही होती, और प्रसन्नता उसके ज्ञान बिना नही होती, इसलिये ब्रह्म जिज्ञासा कर्तव्य है ऐसा वेदांत सूत्र का आशय है. वोह ब्रह्म कैसा है? जिससे सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होती है.

(७) मुक्ति मे भी स्वरूप की एकता नही होती, मुक्त अल्प और परतंत्र रहता है विष्णु स्वतंत्र और पूर्ण है.

(८) शास्त्र ऋगादि ४ वेद, महाभारत, पंचरात्र और मूल रामायण हैं और जो इन के अनुकूल हों सो. (विशेष इनके वेदांत भाष्य में है).

(९) **अभेद (अद्वैत) खंडन**–ब्रह्म विजातीय भेद रहित हो तो शास्त्र और कर्मादि की व्यवस्था ही न हो. प्रत्यक्ष भेद को कल्पित नही मान सकते. शूद्र ब्राह्मण नहीं होता ऐसे जीव ब्रह्म नही हो सकते. ईश्वर जीव नहीं, क्योंकि सेव्य है; मैं राजा ऐसे कहने वाला दंड पात्र ठेरता है; इसलिये उभय का मुक्ति मे भी भेद ही है. क्षर (प्रकृति) अक्षर (जीव) और पुरुषोत्तम (विष्णु) यह ३ जुदा जुदा है ऐसे गीता में भी कहा है. तत्त्वमसि में सो (परोक्ष) त् (अपरोक्ष) की एकता नहीं हो सकती किंतु अतत्त्वमिति अर्थात स्वतंत्र गुण वाला ज्ञान स्वरूपात्मा तू नहीं है, ऐसा भाव है.

§ अर्थ भेद है

मायापद से ईश्वरेच्छा निर्देश है. महामाया, अविद्या, मोहनि, नियति, प्रकृति और वासना सब उसकी इच्छा ससार मे लिप्त करने से प्रकृति को वासना कहते हैं. अ. (ईश्वर) की माया होने से अविद्या कहते हैं. इत्यादि. द्वैत भ्राति कल्पित नही. यदि प्रपंच मिथ्या तो (द्वै.) यह कथन मंतव्य सत्य १ वा मिथ्या २? (उ.) सत्य. (द्वै.) तो द्वैत सिद्ध हुवा. (उ.) मिथ्या (द्वै.) तो प्रपच सत्य ठेरा. इसलिये जीव, ईश्वर का भेद, जड ईश्वर का भेद, जड जीव का भेद, जीव जीव का भेद जड जड का भेद यह पाच भेद अनादि अनंत है. (विशेष भाष्य मे)

(१०) शुद्धाद्वैतमार्तंड की उपोद्घात पृष्ट ६१।६२ में से-माध्व (पूर्ण प्रज्ञ आचार्य) शब्द, प्रत्यक्ष और अनुमान यह ३ प्रमाण मानता है ब्रह्म, जीव और जगत एक तत्त्व नही किंतु जुदा जुदा है. स्पष्ट द्वैत ही है. ब्रह्म सधर्मक है ब्रह्म निमित्त कारण और प्रकृति उपादान कारण है. "तत्त्वमसि=अतत्त्वम् असि" ऐसा विग्रह करते है. कर्म, ज्ञान, भक्ति यह साधन क्रम है. मोक्षाभावात्मक और पराश्रय. द्वैतीअभिनव अन्यथा ख्याति मानता है.

(११) जेसे हनुमान और भीम यह दो वायु के अवतार कहाते है, वेसे पूर्णप्रज्ञ (मध्व) वायु का तीसरा अवतार कहाता है (सर्व दर्शनसग्रह में से). मध्व श्री स° १४९२ में हुये है.

शोधक.

इसका अपवाद त्रिवादि रामानुज श्री के अनुसार जानलेना चाहिये. तप्तमुद्रा लेने से स्वर्ग वा मोक्ष प्राप्ति मानना कथन मात्र है, यह स्पष्ट ही है.

विभूषक मत.

तप्तमुद्रादि भाग को छोड के श्रीरामानुज के मत में विभूषक मत दरसाया है वेसे ही यहां मान लेना चाहिये. अन्यथा कल्पनामात्र है.

---

३४. रामानंद स्वामी.

(वि. १४०० के लगभग) यह श्रीरामानुज जी के चेले थे ऐसा मानने में आता है. (परंतु इनका और रामानुज जी के सवत में विवाद है) इन्होने श्रीसम्प्रदाय के अनुयायी होते हुये वैराग्य पथ चलाया. और जेसे श्रीशंकराचार्य के शिष्यो ने शारदा, शृंगेरी, गोवरधन और जोशी ऐसे ४ मठ धर्म उपदेशार्थ बनाये और शिष-

दल (अतीतो) के अखाडे बने ऐसे ही वैष्णवो की ४ सम्प्रदाय (रामानंद, विष्णु, माधव निंबार्क) ने धामक्षेत्र बनाये उनकी बुनियाद में स्वामी रामानंद जी मुख्य है. इनका मत रामानुजानुसार है. श्री सम्प्रदाय है भक्ति मार्ग है. इनके अनुयायी वैरागी होते है. इनके १२ शिष्यो में से कबीर भी था. चार सम्प्रदायो का दल रामादल कहाता है. मुक्ति शास्त्र (पृ. १९८) मे यूं लिखा है कि रामानंद ज्योतिष मठ का सन्यासी था. भक्ति मार्ग पसंद पडा. रामावतार के उपासक हुये. कविंदु तुलसीदास भक्त इसी सम्प्रदाय मे हुवा है. अपवाद और भूषण रामानुज मत वत्.

---

३५. निम्बार्काचार्य का मत.

वैष्णवो की चार सम्प्रदायो में निम्बार्क सम्प्रदाय है. निम्बार्क भेदाभेद को स्वीकारता है. अर्थात् सादृश्यत्व से जीव ईश्वर का अभेद और वस्तुतः भेद मानता है. मुक्ति मध्वादियो की जैसी मानता है. अवतारादि और भक्ति को प्रधान रूप से स्वीकारता है. दूसरो का अवतरण है अतः विशेष नही लिखा द्वैत वास्तविक है अद्वैत औपचारिक है. प्रायः माध्वमत सदृश यह मत है (शुद्धाद्वैत मार्तंड उपोद्घात पेज ९३).

इसका अपवाद और इस विषे विभूषक मत पूर्व श्रीरामानुजवत् जान लेना चाहिये.

---

३६. विष्णु स्वामी का मत.

वैष्णवो की चार सम्प्रदायो मे से एक सम्प्रदाय है. कृष्ण की भक्ति को मुख्य मानता है. रामानुज मध्व से नाम मात्र अंतर है.

इसका अपवाद और इस विषे विभूषक मत पूर्व (रामनुज) वत् जान लेना चाहिये.

३७. कबीर.

(वि. १४३७-१५१५. अब्दुलकरीम बिननूराजुलाहा बनकर).

भगतमाल और दूसरे ग्रंथो में लिखा है कि यह रामानंद के चेले थे. अलीपुर के एक जुलाहे के पुत्र थे और गृहस्थ था. त्यागी नहीं था. कबीर पंथी इस लेख के

साथ नहीं मिलते. तवारीख चद्रिका मे लिखा है कि बादशाह सिकदरलोधी के समय कवीर था सिकदर वि. १५४५ मे गद्दी बेठा वि १५६३ मे मरा. कवीर वि १६-४० में मर गया. इससे जान पडता है कि कवीर १४३७ में नही था किंतु १५३७ के पीछे हुवा हो.

कवीर की जन्म कथा उसके जाति (हिंदू था वा मुसल्मान) उसके मरण सबधी कथा में मत भेद है भगतमाल में उसके हिंदू जुलाहा रामानद का चेला कहा है. और कमाल उसका पुत्र था ऐसा माना जाता है, परतु कई कवीर पथी उसका जन्म मरण ही नहीं मानते, वोह रामानद का चेला नही था किंतु उसका उपदेष्टा था (आगे वाचोगे) ऐसा कहते है "वूडा वस कवीर का उपजा पुत्र कमाल (उंची युक्ति—उत्तमप्रयुक्ति) पेदा हो गया है, इसलिये इसका उपदेश न चलेगा याने इसका वश (अनुयायी) न होगे साराश कवीर ने गार्हस्थ्य भी नहीं किया था, इ कुछ भी होगा इनके मत का समावेश सत मत में हो सकता है, क्योंकि इस मत की कोई थीयरी वा दर्शन नहीं है किंतु एक प्रकार का पथ है *

कवीर के पक्ष मे भी मत भेद है, कोई कहता है कि यह ईश्वर के भक्त थे और पीछे वेदाती हुये (भक्तमाल). उनके वीजक ग्रथ और उनका ज्ञान समाज ग्रंथ दो पक्ष वताता है, कवीर पथी और ही प्रकार वताते है यहा प्रथम वीजक ग्रंथ से पीछे ज्ञान समाज ग्रंथ से उतारा लिखते है

कवीर वीजक.

कवीर पथ में यह ग्रथ उनका वेद है हिंदी भाषा में कवीर कृत ३६२ साखी हैं. इसकी टीका प्रयागदास कवीर पथी ने की है सो सन् १९११ इ में छपी है प्रयाग दास लिखता है कि इसकी पहिली टीका रीवा के राजा विश्वनाथसिंह ने वनाई जिसमें राम की सगुण उपासना सिद्ध की है सो गलत है दूसरी पूणदास ने सं. १८९४ ई मे वनाई तीसरी यह है सो सत्य है

इस ग्रथ मे दो चार साखी के सिवाय सव साखी ऐसे शब्दो में रची हैं कि पुनर्जन्म वादि हर कोई धर्म मत वाला हो वोह अपने धर्म के अनुसार अथ कर सकता है और अर्थ भी अच्छे वोध का हो जाता है, इससे जान पडता है कि कवीर वडा होशियार (चालाक) होना चाहिये.

* कवीर पथ का विशेष प्रचार नहीं है तथापि इनके अनुयायी गृहस्थ तथा साधु हैं तथा जघे जघे स्थान हैं कोइ भी वडा शहेर वा कसवा एसा न होगा कि जहां इनका स्थान न हो

प्रयागदास ने जो टीका की है वोह बहुत जघे साखी के साथ नही मिलती. कारण कि उनका उद्देश कवीर से इतर सब पाखंडी है. और जीव नाना है. अपने अहंकार मे आप ही बंधन मे आया है, इतना ही है वे कवीर की साखी के अर्थ मे सिद्धांत जनाते है.

जीव का आनंद अहंकार उसका काल हो गया. विषयानंद मे फसके चोरासी भोगता है देह और प्रकृति बदल गई आनंद रूपा दारू पी के हसा इच्छा रूपी नारी पेदा हुई. उससे ३ ताप हुवे स्थूल, सूक्ष्म कारण और महाकारण यह ४ देह बन गये. इत्यादि कल्पना करके भूल गया. पेज २.

जब जीव ने भूल के सृष्टि बनाई तो प्रकाश की चाह हुई, तो सूर्य चंद्र बन गये पृथ्वी सत्य के आधार से टिकी. सरदी ने सताया तो धूप की चाह हुई इस प्रकार ज्यो ज्यो जो जो इच्छा होती गई त्यो त्यो तेसे पदार्थ बनते गये. परंतु कच्ची देह अमर न हुई तो ईश्वर को अनुमान से माना. एव अनेक कल्पना (वेद) वगेरे हुई. पेज ३४

वस्तुतः जीव के कारण सूक्ष्म शरीर नहीं है न कोई अंतःकरण है. पेज ३९. देह से देह पेदा होती है और कुछ नहीं है. अपने को आप कोई नहीं देख सकता, परंतु जेसे शीसे द्वारा चक्षु देखी जाती है वेसे जीव के स्वरूप ज्ञान होने मे तनवीज है

जहा जन्म मे मुक्त था तहां हता नहीं कोय।
छूटी तुम्हारी वोह जगह तू कहा चला बिगोय ॥ ४४ ॥

हे जीव जहा तू जन्म मे मुक्त था वहा तेरे पर कोई न था (हम थे तुम थे) तेरा भी पक्का देह था और मेरा भी परंतु मे पारख था, तू बेपारखा था वहा हर्ष शोक न था. परंतु तूं बेपारख होने मे हर्ष शोक करने लगा, तुझको मैंने समझाया परंतु तूने न माना. तिससे तेरी देह छूटी हो गइ

वहा सत्य, विचारशील, दया और धैर्य इन पाच पक्के तत्त्वो का तेरा शरीर था और ऐसा ही ब्रह्मांड था ऐसा ही इंद्रिय थी

१. सत्य की इंद्रिय श्रोत्र वाक्; दया की त्वचा हाथ; शील की नेत्र पाद धैर्य की गुदा नाक विचार की जाभ लिंग यह १० इंद्रिय थी. २ विवेक, वैराग्य, निज बोध भाव यह ३ गुण थे. ३. सत्य की प्रकृति, निर्द्वंद्वता, निर्मलता, प्रकाश की त्वचा, क्षमा का रोम, धिरता की हड्डी, निर्वेदता का नाडी, विचार का प्रकृति, अग्निनाग्निपर

की जुदाई, सो ही पसरना, शुद्धि का विंदु, प्रेम का रक्त, अमल का लार, निर्मलता का मूत्र. शील की प्रकृति – निराहार, निर्मैथुन, तृष्णा रहित, निरालस्य, दया की प्रकृति– अमल – अचल – अपार – असकोच – असोच. धैर्य की प्रकृति निष्काम, निक्रोध, निर्लोभ, निर्भय. एवं ५ + १० + २५ यह ४० वाला तेरा शरीर था

तूं विचार द्वारा अपने रूप को देख के हर्षमान हुवा आनंद स्वरूप हो गया, बुद्धिहीन हो गया तो गाढ निद्रा में (शून्यरूप) आ गया, अपने निजस्वरूप को भूल गया तब उक्त पक्का देह कच्चे तत्त्व का बन गया तहां—

सत्य से आकाश, प्रकाश, तेज हुवा दया शील से वायु हुवा. धैर्य से जल हुवा विचार से पृथ्वी हुई. इन पांचों तत्त्वों से कच्चा देह हुवा जैसा पक्का देह था (ऊपर कहा) वैसे ही कच्चा देह बन गया. और जैसा उपरोक्त पक्का ब्रह्मांड था वैसा ही कच्चा बडा बडा ब्रह्मांड हो गया. एवं पक्की से कच्ची इंद्रियें और प्रकृति हो गई. जैसे कोई रूपवान अपना प्रतिबिंब देख के हर्ष में घेला हो उसे जेल में देवें तो दुःखी और निस्तेज हो जाता है और आल बाल बकता है. हे जीव, ऐसी तेरी दशा हुई है.

सत्य से असत्य देह, विचार से अविचार, दया से निर्दयता, शील से अशील, धैर्य से अधैर्य पैदा हो गये मे सत्य मे आनंद, यही तेरा काल हो गया. अज्ञान अविचार से तूं भ्रमा गया.

(शं.) ऐसा होना किसी ने न जाना (उ.) कबीर साहब ने देह धर के सो कसर दरसाई.

पीछे इच्छा (कामना) नाम की स्त्री पैदा हुई. उससे संतान चली. विषय भोग प्यारा लगा तो ८४ लक्ष योनी तैंने पैदा की. जैसे स्वप्न मे आप बादशाह होके तमाशा देखता है, ऐसे जीव योनियों को पाता है.

भगवान का आधार कौन? उत्तर नहीं मिलता. जगत कर्ता निर्गुण निराकार ईश्वर नहीं हो सकता. ईश्वर के विरुद्ध कोई कहे (यथा ईश्वर नहीं है) तो ईश्वर कुछ नहीं बोलता–दंड नहीं देता. तुम सुनी सुनाई बातों में अंधे हो के ईश्वर मान रहे हो.

सोई नूर + + जाका की. २९९ सब वाणी, साणी तेरी (जीव की) बनाई हुई हैं. बेचून खुदा ईश्वर कोई भी नहीं है.

उपर का सार– जीव चेतन परिच्छिन्न शुद्ध और असंख्य हैं. अनादि अनंत हैं (अमर हैं). आनंद अज्ञान अहंकार कामना वश हुवा परीक्षा और विचार की

स्वामी मे पक्का देह से कच्चे देह को प्राप्त होके दुःखी होता है यहां तक बीजक पेज २,३२ में से कबीर का मत कहा.

सांचा सौदा कीजिये ++ ४८.

उपरोक्त सत्यादि पांच पक्के तत्त्वों का देह बनाओ. तद्वत उपरोक्त पक्की इंद्रिय करो, विचार के नेत्र पांव बनो, विचार के देखो, नेत्रादि स्थूल, द्वैत, ईश्वर उसका ध्यान, मैं आत्मा (ब्रह्म), सब वेष मिथ्या है, मैं और मेरा गुरु कबीर सत्य. कबीर का स्मरण करो लोभ, मोह, आशा, भय, द्वंद्व रहित प्रकृति बनाओ तो जो झूठ–भूल तुमको आदि से लगे हैं सो नष्ट हो जायेंगे. उक्त ४० पक्का सेर का हीरा पाने से झूठ कच्चे तत्त्वों की हानी हो जायगी.

जो तुम पक्का होना चाहते हो वा जन्म मरण से छूटना चाहते हो तो प्रथम अडिग वैराग्य करो, स्वर्गादि की इच्छा छोडो. मुझे (कबीर) को देखो. पेज २८.

(शं) पूर्ववत पुनः कच्चा देह हो जायगा. (उ.) नहीं. क्योंकि अब अपनी भूल और उसका परिणाम दुःख (योनी भोग–जन्म मरण) जान लिया है. (पेज ७).

कबीर सतलोक में रहता है अर्थात् सचाई में. (पेज ७।२०) जो वैराग्यवान् होके कबीर को देखे तो कबीर उसकी रक्षा करता है (१९). जीव जैसा करता है वैसा भोगता है. (पेज ९१).

शब्द से जीव बडा है कि उसका उससे उपयोग होता है. (१). अद्वैतवाद में गधा और संत समान हैं क्या ऐसा हो सकता है? (पेज २) जो जीव मुक्तस्वरूप था तो बंध होना नहीं बनता. जो इंद्रिय ही भोग भोगती हो तो मरा हुवा शरीर भी भोगता. ईश्वर गुरु–शिक्षक होता तो किसी को कहने आता, परंतु ऐसा नहीं हुवा. ईश्वर वगेरे और ग्रंथ तो जीव के बनाये हुये हैं. जो जीव न कल्पता तो ईश्वर वगेरे नाम भी न होता. जो ईश्वर होता तो रावण वगेरे वा भक्तों का मन क्यो नहीं बदल देता.

कबीर की नीचे की लिखी हुई साखी इसलिये लिखते हैं कि उसके मंतव्य का भान हो, अनेक साखी ऐसी हैं कि सबको मान्य हैं और उनका हरेक धर्म मत पंथ वाला अपने मत अनुसार भावार्थ निकाल सके * और भी अनेक दूसरे ग्रंथ से भेद जान पडे. (आगे वाचोगे).

---

* कबीर पंथ, रामस्नेही वगेरे कोई मोटी संप्रदाय नहीं है. परंतु है. इसमें संदेह नहीं कि कबीर बहुश्रुत होशियार था, हिंदुओं के मुसलमान न होने में उपयोगी हुवा क्योंकि ईश्वर

नीचे की साखियों में दो चार जगह पद अशुद्ध और छंद भंग दोष था सो सुधरवा के लिखा है. जिससे अभिप्राय में अंतर नहीं पडा है.

नीचे की साखीयों में इतनी विगत है कबीर अपनी आत्म श्लाघा करता है. (नं. ३।९।१२।३६।२९।९११।१२२।२०५।२१८।२६७।३.१४।३६२. क. (१२). कृष्ण निंदा (२२८), वेद निंदा (१९।८५।२९५), षड्दर्शन निंदा (३३१.३३९।१२९), भक्ति निंदा (३३३), योग निंदा (३३१।२२६), ब्रह्मज्ञान निंदा (५२।३५९), देवता निंदा (११), तीर्थ निंदा (१३८), राम नाम निंदा (९।२।११।२५।११०। १२६), ईश्वर निंदा (९।१।२८।३५३).

इनके सिवाय जितनी साखी हैं उनके भावार्थ कबीर पंथी तो कबीर से इतर सब मत-पक्ष, रीफॉर्मर, ग्रंथ, नबी, देवता, अवतारादि के निषेध में बताते हैं. परंतु वे साखी ऐसी हैं कि उनका भावार्थ अपने धर्म पंथ अनुसार करना चाहे तो कर सकता है अर्थात् अपने से इतर का निषेध कर सकता है. और यदि भावार्थ की खेंचतान में न उतरे तो हर कोई को शिक्षा रूप में मान्य है.

कबीर श्री का कटाक्ष नाना सम्प्रदाय और मतभेद पर रहा है.

रामानंद राम रस चाखे. कह कबीर हम कह कह थाके इसके दो अर्थ हैं. रामानन्द ने राम रस चखा तो पार उतरा तुमको राम रस चखने के लिये कह कह के थक गया. प्रागदास कहता है कि रामानन्द का कबीर चेला नहीं था सो इस दोहे से जान पडता है अर्थात् रामानन्द राम रस मे रहता. मैं ने उनको वर्जा कि इसमें कुछ नहीं इ. कह कह के थक गया.

एक कहूं तो है नही दूजा कहूं तो गार;
है जैसा तैसा कहूं कहे कबीर पुकार ।
माया तजी तो क्या भया मान तजा न जाय;
जिहि माने मुनिवर ठगे मान सबन को खाय ॥
बोलि हमारी पूर्वी हमे लखे नहा कोय;
हमको तो सोई लखे जो धुरपुर का होय ॥ २ ॥

अवतार, मूर्ति पूजा, तीर्थ, पुराण वगैरे का निषेधक, मुसल्मानी सिद्धांत अपुनर्जन्म वगैरे का बाधक था. जो यदि वोह संस्कृत का अभ्यासी हो के वेद शास्त्रों का अभ्यासी होता तो बहुत बडा काम करता और नाम निकालता.

जाका गुरु है आंधला चेला काहे कराय,
अंधे अंधा पेलिया दोऊ कूप पराय ॥ ४ ॥
कहता सो करता नहीं झूठा बडा लवाड,
अंत फजीयत होयगा साहब[1] के दरबार ॥ ५ ॥
साच बराबर तप नहीं झूठ समान न पाप,
जाके हृदय साच है ताके हृदय आप[2] ॥ ७ ॥
मैंने तो सबकी कही, मोको कोइ न जान,
मैं तब अब अच्छा रहा जुग जुग होवु न आन ॥ ९ ॥
साचा शब्द कबीर का परगट कहूं जगमाहि,
नेमे को नेमा कहूं ताम निंदा नाहि ॥ ६ ॥
सुमरन करने राम का काल गहेगा केश,
ना जानु कबमार ही क्या घर क्या परदेश ॥
मैं सरगु म मागह मैं जाकू मैं खाव,
जल थल मे मैं रमि रहा मोर निरंजन नाम ॥
माया के वश सब परे ब्रह्मा विष्णु महेश,
सनक सनंदन सनत ओर गोरी पुत्र गणेश ॥ ११ ॥
जो तू मोसे चाहता छोड सकल की आस,
मेरे जैसे हो रहो सब सुख तेरे पास ॥ १२ ॥
हीरे की बोरी नहीं मलियागर नहीं पात,
सिंहो का लहडा नहीं, साधु की न जमात ॥ १७ ॥
जो मोहि जाने ताहि. म जानू,
लोक वेद का कहा न मानूं ॥ १९ ॥
सिंहो की जो खाल मे मींढा बैठे जाय,
बचन हिमे पहिछानिये शब्द ही देतल खाय ॥ २३ ॥
गुरु बिचारा क्या करे शिष्य ही में है चूक,
शब्द बान बेधे नहीं बास बनाये कूप ॥ २४ ॥
बिरहन मांगी आरती, दरशन दीजे राम
तीने दरशन ना हुवा मूये कोन है काम ॥ २० ॥

१ गुरु कबीर म देव दूसरा इसका अर्थ २ कबीर मे भेद नहीं

हरि हीरा जन जोहरी सबन पसारा हाठः
जब आवे जन जोहरी रूके हीर की साट ॥ २८ ॥
पक्षा पक्षी कारणे भूला सकल जहानः
निर्पक्ष होके हरि भजे सोई सत सुजान ॥ ३९ ॥
मनुष्य जन्म नर पायके चूके अबकी बातः
जाय परे भव चक्र में सहे घनेरी लात ॥ ४२ ॥
कबिरा भ्रम न भाजिया, बहुविधि धरिया भेख;
सांई के परिचय बिना अन्दर रह गई रेख ॥ ३३ ॥
मैं रोवु या जगत को मोको रोवे न कोय;
मोको रोवे सो जना शब्द विवेकी होय ॥ ३९ ॥
मैं तो लखा तिहूं लोक को, तू कस कहे अलेखः
सार शब्द जाने नहीं धोखे पहेरा वेश ॥ ३६ ॥
कहते तो बहुते मिले गहता मिला न कोयः
वह कहता बहि जान दे जो न गहता होय ॥ ३७ ॥
कर मैया बल आपका छोड बिरानी आस;
जा आंगन नदिया बहे सो क्यों मरे पियास ॥ ४० ॥
चलती चक्की देख के दिया कबीरा रोय;
दोपाटन बिच आयके साबित रहा न कोय ॥ ४१ ॥
सुनी बात अधा कहे देख कहे सो साधः
सुनी माने देखी तजे ताके बडि है व्याध ॥ ४९ ॥
आशा दे जग बाधिया तीन लोक को बार;
कह कबीर कोइ बाचि है जाके हृदय विचार ॥ ५१ ॥
वे तो ऐसे ही भये तूं मत हो अजान;
वे निर्गुणिये तू गुणी मत एकहि में ज्ञान ॥ ५२ ॥
कर विवेकको बंदगी नेश धरा सब कोयः
सो जाने यह बंदगी शब्द विवेक न होय ॥ ५४ ॥
लोगो की अथडाइयों मत कोई पैठो धाय;
एके खेते चरत हैं बाघ गधेडा गाय ॥ ५५ ॥

साचा शब्द कबीर का हृदय देख विचार-
चित्त दे समझे नाहि मोहि कहता भये युग चार ॥ ६९ ॥
जो मिलिया सो गुरु मिला शिष्य मिला न कोय;
छलख छानवे रमैनी एक जीव पर होय ॥ ६२ ॥
इन मे तो सब ही गये भार लदाय लदाय,
उत मे कोई न आइया जा मे पूछो धाय ॥ ६३ ॥
सिद्धि हुई तो क्या हुई चहु दिश फूटी बास,
अदर वाके बीज है फिर जा मनको आस ॥ ६४ ॥
जीव न मारो बापुरे, सबका एकहि प्राण,
जीव हत्या नहीं छुटि ही कोटिन सुनो पुराण ॥ ६७ ॥
बाजन दे बाजतरी कल कूकी मत छेड,
तुझे बिरानी क्या पडी अपनी करो निबेड ॥ ७९ ॥
पानी प्यावत क्या फिरो घर घर सायर बार
तृषावत जो होयगा पीयेगा झकमार ॥ ८० ॥
बडते को वहि मान दे कर गहि चहू ओर
कथन मार माने नहीं तो दे धक्का ओर ॥ ८१ ॥
शब्द बिना श्रुति आधरी कहो कहा को जाय,
द्वार न पावे शब्द का तो फिर भटका खाय ॥ ८५ ॥
राम वियोगी विकल तन इन दुखवो मत कोय
छूपत ही मर जायगे तालावेली होय ॥ ९० ॥
लोह चतुर प्रीति जम रोग लेत उठाय,
ऐसे शब्द कबीर के काल से लेत छुडाय ॥ ९१ ॥
मुख की मीठी जो कहे हृदय में मत जान,
कह कबीर तिन लोक मे रामो बडा सियान ॥ ९६ ॥
कर मारग सग आधरा शब्द न चीन्हे कोय
जाय कहो हित आपका सो उठ वैरी होय ॥ १०० ॥
स्वप्ने सोया मानवा खोल जो देखे नेन,
जीव पडा बहु लूट में ना कुछ लेन न देन ॥ १०१ ॥

सबमे सांचा है भला दिल जो सांचा होय;
सांच बिना सुख है नहीं कोटि करे जो कोय ॥ १०७ ॥
हीरा सोहि सराहिये सहे घनो की चोट;
कपट कुरंगी मानवा पर खत निकला खोट ॥ १०८ ॥
संशय सब जग खंडिया संशय खडा न कोय;
संशय खंडे सो जना शब्द विवेकी होय ॥ १०९ ॥
जो मतवारे राम के मगन होय मन मांहि;
ज्यों दरपन की सुंदरी गहे न आवे बांहि ॥ ११० ॥
बिन देखे उस देश की बात कहे सो कूर;
आपे खारी खात है बेचत फिरे कपूर ॥ ११६ ॥
साधु तो सब ही भले अपनी अपनी ठौर;
शब्द विवेकी पारखी सो माथे का मोर ॥ ११३ ॥
जैसा कहे वेसा करे राग द्वेष निवारे:
ता में घटे बढे रति भी नहीं यह विध आप संभारे ॥ ११६ ॥
दिल का महरम कोई न मिला जोई मिला सो गरजी;
कहे कबीर असमान ही फाटा केता सीवे दरजी ॥ १२० ॥
द्वारे तेरा रामजी मिलो कबीरा मोय;
तूं तो मिलिया सर्व में मैं ना मिलूंगा तोय ॥ १२६ ॥
संगत से सुख उपजे दुःख दुसग से होय;
कहे कबीर तहां जाइये अपनी सगत होय ॥ १२७ ॥
बलिहारी इस दूध की जामे निकले घीव;
आधि साखि कबीर की चार बेद का जीव ॥ १२९ ॥
फहम है आगे फहम है पीछे फहम रही ना डेरी;
फहम पर जो फहम करे सोई फहम है मेरी ॥ १३१ ॥
तीरथ है विष बेल्री, रही युगन युग छाय;
कबीरे मूल निकंदिया कौन हलाहल खाय ॥ १३८ ॥
यह माया सग चूहडी अरु चुहडों की जोय;
बाप पूत उरझायके संग न काहु की होय ॥ १४० ॥

मरते मरते जग मुआ मुये न जाना कोय;
ऐसा हो के ना मुआ बहुरि न मरना होय ॥ १४३ ॥
सब जग जरते देखिया अपनी २ आग;
ऐसा जियरा ना मिला जा सग रहिये लाग ॥ १४८ ॥
जहर नमीदे रोपिया, अमि सींचे सौ बार;
कबीर खलक ना तजे जामें जौन विचार ॥ १९२ ॥
गुरु द्रोही और मन मुखी नारी पुरुष विचार;
ते नर चौराशी भ्रमहि जौलों शशि दिनकार ॥ १९३ ॥
साहब २ सब कहे मोहि अंदेशा और;
साहब से परचे विना बैठेगा केहि ठौर ॥ १९९ ॥
मूरख को सिखलावते ज्ञान गांठ का जाय;
कोयला होय न उजरा सौ मन साबू लाय ॥ १९९ ॥
हीरा तहां न खोलिये जहां कुंजडों की हाट;
सहजे गांठि बांधके चलिये अपनी बाट ॥ १८४ ॥
अरव खरव लौं द्रव्य है उदय अस्त लौं राज;
भक्ति महातम ना तुले यह सब केने काज ॥ १९१ ॥
हृदया भीतर आरसी मुख देखा नहि जाय;
मुख तो तब ही देखि हो दिल की दुबधा जाय ॥ २०३ ॥
अलख लखों अलखों लखे लखो निरंजन तोय;
हों कबीर सब को लखें मोको लखें न कोय ॥ २०९ ॥
जो जानहु जग जीवना जो जानो सो जीव;
पानीप चाहो आपना पानी मागि न पीव ॥ २११ ॥
एक समाना सकल में सकल समाना ताय;
कबीर समाना बूझ में जहां दूसरा नाय ॥ २१८ ॥
जान बूझ जड हो रहो बल तन निर्बल होय;
कहें कबीर ता दास का पला न पकडे कोय ॥ २१९ ॥
किते मनाओ पांव परि किते मनाओ रोय;
हिंदू पूजे देवता तुरक न काहू होय ॥ २२० ॥

गोरख रसिया जोग के मुए न जारी देह;
मांस गली माटी मिला कोरी मांजी देह ॥ २२६ ॥
कृष्ण समीपी पांडवा गले हिंमाले जाय;
लोहा को पारस मिले काहे को काई खाय ॥ २२८ ॥
हद चले सो मानवा बेहद चले सो साध;
हद बेहद दोनों तजे ताका मता अगाध ॥ २३२ ॥
यह माया है मोहनी मोहा सब जग झार;
हरिचन्द सत के कारणे घर घर शोक विकाय ॥ २३४ ॥
मन मतंग माने नहीं चले सुरत के साथ;
दीन महावत क्या करे, अंकुश नाही हाथ ॥ २४२ ॥
मारग तो बहु कठिन है वहां नहीं कोई जाय;
गये सो फिर ना बाहुरे कुशल कहे को आय ॥ २६२ ॥
मसि कागज छूया नहीं कलम गही नहीं हाथ;
कबीर चारों जुगन की मुखे जनाई बात ॥ २६७ ॥
मोटी माया सब तजे झीनी तजी न जाय;
पीर पेगंबर ओलिया झीनी सब को खाय ॥ २६८ ॥
आपा तजै अरु हरि भजे नखसिख तजे विकार;
सब जीव से निर्वैर रहे साधु मता है सार ॥ २७४ ॥
जे मारग गये पंडिता तेही गई बहीर;
ऊंची घाटी राम की तें चढि रहु कबीर ॥ २८० ॥
जाको मुनिवर तप करे वेद थके गुण गाय;
सोही देउं सिखापना कोई नहीं पतियाय ॥ २९९ ॥
समझे की गति एक है जिन समझा सब ठोर;
कहे कबीर यह बीच के बलकहिं और की और ॥ ३११ ॥
जहियां कीरतम ना हता धरती हती न नीर;
उत्पत्ति प्रलय ना हता तब की कहे कबीर ॥ ३१४ ॥
समझाये समझे नहीं परहथ आप बिकाय;
मैं खेंचत हूं आपको चला सो जमपुर जाय ॥ ३३१ ॥

स्वर्ग पाताल के बीच में दुई तुमरिया बद्ध;
पटदर्शन संशय पडा लख चौरासी सिद्ध ॥ ३३१ ॥
भक्ति पियारी राम की जेसे प्यारी आग;
सारा पट्टन जरि मुआ बहुरि ले आवे मांग ॥ ३३३ ॥
जेहि खोजत कल्पों गये घट ही मां सो मूर;
बाढ्यो गर्व गुमान से ताते परि गयो दूर ॥ ३३९ ॥
सुर नर मुनि और देवता सात द्वीप नौ खंड;
कहे कबीर सब भोगिया देह धरे का दंड ॥ ३३६ ॥
छ दर्शन में जो परवाना तासु नाम बनवारी;
कहे कबीर सब खल्क मियाना इनमें हम ही अनारी ॥ ३३९ ॥
सब मे लघुता भली ऌघुता से सब होय;
जस द्वितीया का चंद्रमा शीश नामे सब कोय ॥ ३४३ ॥
ढूंढत २ ढूंढिया भया सो गुनागून;
ढूंढत २ ना मिला हारि कहा बेचून ॥ ३५३ ॥
सोई नूर दिल पाक है सोही नूर पहिचान;
जाके किये जग भया सो बेचूं न क्यों जान ॥ ३५५ ॥
रेख रूप वाके नहीं अधर धरा नहीं देह;
गगन मंडल के बीच में निरखो पुरुष विदेह ॥ ३५७ ॥
धरे ध्यान गगनके मांहि लाये वज्र किंवार;
देख प्रतिमा आपकी तीनों भये निहाल ॥ ३५८ ॥
यह मन तो शीतल भया जब उपना ब्रह्मज्ञान;
जेहि बसंदर जग जरे सो पुनि उदक समान ॥ ३५९ ॥
साखी आंखी ज्ञान की समझ देखु मन मांहि;
बिन साखी संसार का झगडा छूटत नाहि ॥ ३६२ ॥ } अंतिम.

खंडन.

बीजक ग्रंथ की टीका में इतनी बातों का छूट के साथ खंडन किया है. (१) वेद, ६ दर्शन, गीता, पुराण, बायबल, कुरान. और ओंकार का. (२) ब्रह्मा,

विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, नृसिंह, व्यास, गोरख, सनकादिक, शूक, स्वामी दयानंद और चार्वाक वगैरे का. (२) द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, जडवाद, शून्यवाद, भ्रमवाद, अभिन्ननिमित्तोपादानवाद, ईश्वरवाद, (ईश्वर जगत् का कर्ता). जीव ब्रह्म की एकता, तत्त्वमसि, अहंब्रह्म, सामान्य चेतन, विशेष चेतन, आत्मानंद, ब्रह्मानंद, ९६ पाखंड (नाम मात्र) और व्याकरण का. (३) भेख धारना, संप्रदाय, १२½ डोरी कबीर संप्रदाय, जाति भेद, कर्म, उपासना, ज्ञान ईश्वर भक्ति का. (४) विभुति लगाना, पंचाग्नि तपना, जलशय्या, पुजा पाट, चौका, आरती, शिखा सूत्र, संनत कराना, स्वर्ग, वैकुंठ, भूत पूजा, ग्रंथ पूजा, मूर्ति पूजा, समाधि पूजा (कब्र पूजना), मंदिर, तकिया, तीर्थ, श्राद्ध, ज्योतिष, मंत्र, तंत्र. (५) योग, समाधि करने का (६) लोकेषणा, वित्तेषणा, पुत्रेषणा, पास ८, मद ८, आशा, अभिमान, हिंसा, अध्यास, जीते जलाने का. (७) विवाह, संतानोत्पत्ति, जीते जलाना, खेती, व्यापार का. §

प्रतिपादन—सतसग, मन स्वाधीन करना, जितेंद्रिय होना, पुनर्जन्म से बचने का उपाय लेना, वैराग्यादि (उपर कहे हैं) इनका प्रतिपादन किया है. (यह उत्तम उपदेश है).

उक्त खंडन मंडन यद्यपि शास्त्रीय पद्धति और सयुक्त नही है किंतु एक प्रकार का वाक्‌वाद रूप है, और विषय के पूर्वापर विचारे बिना है तथापि कहीं कहीं तो ठीक समझाया है. यद्यपि तमाम का खंडन साखी में नहीं पाया जाता किंतु तीर्थ वगैरे कोई कोई विषय साखी मे खंडन किये हैं, तथापि साखी की रचना ऐसी है कि हरकोई धर्म मत पंथ वाला अपने मंतव्य के अनुकूल खंडन मंडन वाला अर्थ कर सकता है, इसलिये टीकाकार का लेख साखी के विरुद्ध है ऐसा भी नहीं कहा जाता. परंतु टीकाकार ने वेदादि ग्रंथ, ब्रह्मादि और ईसू वगैरे को असत्य ठेराया सो तो ठीक याने उसका पक्षपात है, परंतु उनके लिये बहुत अश्लील शब्द लगाये हैं, यह ठीक नहीं किया है.

ज्ञान सपान.

कबीर साहेब के कहे हुए अनेक ग्रंथ हैं उनमें से एक उर्दू छंद में **ज्ञान सपाज** इस नाम का ग्रंथ रोहतक में छपा था. यह ग्रंथ गुडगाव जिले में कहीं कहीं

§ नं. ५, ७ यह खंडन अनुचित है. नं. ६ यह खंडन उत्तम है बाकी नंबरों में ज्यादा विषय ऐसे है कि उनका खंडन योग्य है. कितनेक अनुचित है.

मिलता है और कहीं कहीं उसकी लिखित कापी देखने में आई. इस ग्रंथ में से कुछ केटेशन लिखते हैं

(१) मन मुरशद से पूछूं लेवा, तुम हो आदि निरंजन देवा. उस देही में प्रेरक कौन, प्यारे मुझे बताओ जौन. यह उसका आरंभ है. (२) रामादिक अवतार सब केवल ज्ञानस्वरूप, है अवतार श्रीकृष्ण का इच्छारूप अनूप. (३) पाना अपना आपका यही धर्म निजरूप. (४) अपनी २ समझ मे धर्म बनावे लोग (५) कौ जोत का ध्यान (साधनो से सिद्धि). (६) जड चेतन दो पदार्थ. (७) अधिष्ठान (ब्रह्म) मे इच्छा उठती है. इच्छा चेतन एक है. (८) जा ब्रह्म से एक दिन कबीर किया सवाल, कहो जुगत मोह कौन है क्षण मे होय विशाल. ब्रह्मा का उत्तर. हरकत (गति) बंध होना. (९) वामदेव, जडभर्त, पाराशर के साथ कबीर के सवाल जवाब. (१०) ब्रह्मा, सनतकुमार, शुकदेव, नारद, दत्तात्रेय और उद्धव से कबीर का मिलना, सवाल जवाब होना, वेद शास्त्र तो भागवत की अधाधुंधी साक्षी देना इत्यादि.

कबीर को आज करीब ५०० वर्ष हुये तो भी उसके इतिहास और मंतव्य में मतभेद! इसका कारण क्या? हिंद की दुर्दशा, पक्षापक्ष, नाना संप्रदाय, हमारा सत्य, और का मिथ्या, ऐसी भावना होना. इ.

पाठक को ज्ञात हुआ होगा कि उक्त दोनो ग्रंथो के मंतव्य मे मतभेद और विरोध भी है. यह कह सकते है कि इन दोनो मे से एक किसी ने कबीर के नाम से बना दिया होगा; परंतु पुरवार नहीं कर सकते. उनके समय के ग्रंथो से कवि, भक्त, योगी और ज्ञानी और स्वतंत्र हुवे है, ऐसा जान पडता है. और कुछ भी होगा. उनके मत खंडन मंडन में कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, क्योंकि थीयरी बिना का है.

शोधक

कबीर का मत पीनक अनुसार मान के ईश्वरादि को न माने तो इस मत की सिद्धि नहीं होती (१) जीव तत्त्व अणु मानें तो अ. ५ सनसूत्र ... वाले दोष आते हैं तथा जो मध्यम परिमाणी परिणामी मानें तो भी दोष आते हैं अ. ३ सूत्र २०२ देखो. (२) सत्यलोक में रहे हुवे तमाम जीवों का एक साथ अज्ञान होके सबका कभी देह और कभी ब्रह्माण्ड बन गया या आगे पीछे होना कहना है और इतर ब्रह्माण्ड कौन से आते हैं! क्योंकि नाना सूर्यादि नहीं है. जो सब का

एकदम होना मानें तो नाना ब्रह्माड होने चाहियें सो नहीं है और यदि आगे पीछे होना मानें तो भी यही दोष आवेगा. जो वाचस्पति के मतानुसार हरेक जीव उसका ब्रह्माड जुदा जुदा है ऐसा मानें तो दृष्टि विरुद्ध दोष है, यह सूर्यादि ब्रह्माड किसका, यह निश्चय न होगा और मुक्त जीव का ब्रह्माड कहा गया यह नही बता सकोगे. कच्चे ब्रह्माड का पहिलेपहल आरभ तो उस पूर्व के जाव अनुपयोगी. और जो आगे पीछे अनियमित तो अनेक ब्रह्माड बताना चाहिये परतु ऐसा नही है, पुनः जब सब जीव मोक्ष हो जायेंगे (पक्की देह पालेंगे) और पुनः कच्ची देह न धारेंगे तो ब्रह्माड का अभाव हो जायगा. जीव निकम्मे रहेगे सो असभव है, क्योंकि जीव जितने हैं उतने है अनत नही है. वर्तमान ब्रह्माड जो किसी एक जीव का हो तो दूसरे के उपयोग में न आना चाहिये परतु एक सूर्यादि सब जीवो के काम में आ रहा है. अतः ब्रह्माड जीवरचित नही ठेरा परिच्छिन्न जीवो को आधार की अपेक्षा है (अ २ सूत्र २९।१।२८ देखो) इसलिये अधिष्ठान ईश्वर की सिद्धि होती है अनीश्वरवाद गलत है जो जीव की कल्पना से ब्रह्माड मानें तो मेटर के बिना कल्पना मात्र से ब्रह्माड नहा हो सकता वोह मेटर (पचतत्त्वादि) परिच्छिन्न होने से उनका अधिष्ठानाधार मानना होगा अर्थात् अनीश्वरवाद नहीं बनता.

जो कि उक्त सिद्धात धायरी वाला नहीं, अतः विशेष शोध की अपेक्षा नही है. कबीर मत साक्षीसाक्ष्य भाव तक तो वेदात से मिलता है उससे आगे जीव को नित्य जुदा जुदा मानता है, वहा जैन वा वेदात से नहीं मिलता विवाह, सतानोत्पत्ति, खेती वाडी, व्यापार, सोसाइटी के रक्षक नियम इत्यादि का खडन ज्ञान और उपयोग नहीं सहार सकता अतः त्याज्य है

विभूषक मत

कबीर श्री की पोलिसी वहम को दूर करती है, कितनेक मिथ्या अध्यासो (मतव्यो) को दूर करती है, हिंदुओं का मुसलमान होने से बचाने वाली हुई, स्वतत्र होके शोधना सिखाती है इतने अश में ठीक जान पडती है और कर्मवाद से मिलती है, इसलिये जिसकी भावना इस मतव्य मे हो वोह दूसरो की निंदा-अयोग्य खडन मंडन छोड के उपरोक्त पचदशांग का पालन करता हुवा इस पक्ष को मन म पाले तो उसके लिये बुरा नहीं है किंतु देशहित में उपयोगी हो सकता है.

२८. गुरु नानक.

स. १४६९ ई. में बाबर बादशाह के समय जन्मा. क्षत्रीय था. उदार, वैराग्यवान था. जंगल में अभ्यास किया. देशाटन किया. राजा शिवनाथसिंह को प्राणायामादि के बिना सुरत शब्द योगाभ्यास-सहजयोग सिखलाया. अभ्यास और देशाटन के पीछे अपने जन्मनगर करतारपुर में आये. हिंदू मुसलमान दोनो को चेला करने लगे

नानक के वचन–मृगतृष्णा यह जगरचना है देखो हृदय विचार. कहे नानक भज सतनाम नित्य जातें होत उधार. सकल जगत् है जैसे स्वप्ना सत गये नेह पार. ++ तैसो है यह सुख माया को. सर्व निवासी सदा अलेखा तो सग रहत सदा है. पुष्प मध्य जैसे बास रहत है ++ घट में खोजो भाई. नानक कहत जगत् सब मिथ्या (एक चापटर में से).

गुरु नानकजी पंजाब देश में एक नामांकित पुरुष हुये हैं. आर. सी. बास. लिखता है कि यह कबीर के चेले थे. कबीर सिकंदर लोधी बादशाह दिल्ली के समय हुवा है. सिखो (शिष्यो) के आदि ग्रंथ में कबीरजी के बहुत वचन है. ई. १५४९ में गुजर गये. (हरविलास कृत दयानंद जीवन चरित्र में से).

इनका पहिले भक्तिमार्ग. पीछे ज्ञानमार्ग है. अर्थात् ब्रह्म अभिन्ननिमित्तोपादान और ब्रह्मवित् आप परमेश्वर निदान नवीन वेदांत में इनके मतव्य का समावेश है (सुखमनीजी और जप साहेब से इनका आशय स्पष्ट हो जाता है). यह मूर्ति को नही मानते थे. इनकी वाणी गुरुग्रंथ साहेब में है. इनके अनुयाइयो का नाम सिख है. गुरु गोविंदसिंहजी वीर पुरुष जो औरंगजेब के समय हुये है वे इनके संप्रदायी वंश में दसवे है *

‡ नानक शाहियो के ७ फिरके है. सब नानकी तालीम करते है. उसी के असूल के अनुयायी हैं बहुधा नाम भक्ति मार्ग वाले अभिन्न निमित्तोपादान भाव को मानते है.

* बाबर बादशाह का समय वि. १५८३ १५८७ है. शायद तैमरलिंग (तैमूर) के वंश हुआ हो

‡ आज १० वर्ष हुए कि गुरु नानक के नाम से एक नवीन उपनिषद् प्रसिद्ध हुआ है. उसका नाम विश्वद्रोह उपनिषद् वा नानक उपनिषद् है. उस पर संस्कृत में उसका भाष्य

१–उदासी–इसका प्रचारक गुरुनानक का पोता धर्मचंद हुवा है. इन में गुरुग्रंथ साइव-की पूजा करते है पुष्प द्रव्य वगेरे चढाते हैं. दूसरे मजहब वाले के साथ सलूक रखने का उपदेश देते है. गुरुनानक का सम्प्रदायी मन्त्र–ओ३म् सत नाम, कर्ता. पुरुष, निर्भै, निर्वैर, अकालमूर्त, अजूनी, सहसम, गुरुप्रसाद, जप आदि सच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच. भावार्थ=ओ३म् जिसका नाम सत (हक) है. वोह जगत कर्ता पुरुष है. भय रहित है, द्वेप से रहित है, वो अकाल मूर्त याने अनादि अनंत है, वोह अजन्मा है, प्रकाशमान है. इसी का जप गुरुकृपा से कर, वोह परमात्मा पूर्व मे भी सच था. जुगो के आरंभ मे भी सच था. वर्तमान में सच है और भविष्य मे भी सच रहेगा.

२–गजवखशी–इस फिरके मे कोई कोई साधु होते हैं.

३–रामराई–रामराय को गद्दी न मिली तो दूसरी शाखा निकाली. स १६६० में हुवा है इस पथ के अनुयायी थोडे हैं.

४–सुथराशाही–सुथराशाह ने चलाया काला टीका करते दंड वनाते भीख मागते फिरते हैं. दुकानो पर गाली देके भी लेते हैं.

५–गोविंदसिंही–गुरुगोविंदसिंह ने लडवैया जुत्थ वनाया. पाच ककार कायम किये १ केश (वाल) २ कगन (अकाली पगडी मे रखते हैं) ३ कडा (हाथ में पहनते है) ४ कच्छ (जांगिया). ५ काचु (चाकू) इन ५ के सेवन से महनती सिपाही स्वभाव वाला हो जाता है. जाती भेद तोडा. गाय के सिवाय सब मास की छूट दी.

६–निर्मळा–जपे नहीं वनाते. साधु नाव मे रहते हैं वहुधा साक्षर होने है पठन पाठन में समय लगाते है. वेदाति होते है. शास्त्राद्वैत को मानते हैं.

७–नागा–वेरागी नागे, अतीत नागो से जुदा प्रकार के होते. हथियार नहीं रखते. नगे रहते हैं ग्रथ साहेब की सवारी निकाला करते हैं

वना है और शकर टीका है मूल उपनिषद में कथा है कि अमुक अमुक ऋषि गुरुनानक के पास जगल में गये नानक ने उनको ओंकार का उपदेश किया अर्थात् पिंड ब्रह्माड की एकता दरसाइ है तत्त्वमसी रूप से उपदेश है उसी में जनाया है कि गुरु नानक ईश्वर के अवतार और सर्वज्ञ हुये हैं यह ग्रथ छप के प्रसिद्ध हो चुका है १० उपनिषद के ५२ और १२ के ११२७ और ११२७ के ११२९ और ११२९ से ११३० नबर हो गये भारत की उपात ? और शब्द प्रमाण की मान्यता के चिन्ह यही तो है यह ग्रथ आत्म ज्ञान के लिए उपयोगी जान पडता है

शोधक.

इसका अपवाद पूर्वोक्त अभिन्ननिमित्तोपादान (वेद उपनिषद् प्रसंग याद कीजे) वत् जान लेना चाहिये.

विभूषक.

इनका मत कुछ भी हो परंतु गुरुनानक के मंतव्य में जिसकी भावना हो वोह यदि पूर्वोक्त पंचदशांग सहित वर्ते तो उसकी कोई हानी नहीं जान पडती. गुरुनानक गुरुगोविंदसिंह जी ने पंजाब को और शिवाजी महाराज ने दक्षिण भाग को हिंद की दाहनी और बांइ भुजा बनाई हैं. इसलिये इन दोनों मंडल को धार्मिक तालीम मिले तो बहुत अच्छा उपयोग हो.

सिद्धांत प्रसंग को एक तरफ रखके गुरुनानक श्री के प्रति हमारा बडा मान है, उनकी योग्यता और आत्म भोग वोह ही जान सकता है जिसने उनका जन्म चरित्र तथा गुरुगोविंदसिंह जी का जीवन चरित्र बांचा होगा.
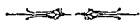
३९. चैतन्य देव.

(गौरांगवानमाई. वैष्णव-भक्तिमार्ग-बंगदेश मे प्रसिद्ध पुरुष. जन्म शाके १४०७=वि.१५४०=१४८५ ई. मरण शाके १४५५.) यह विद्वान शास्त्रों में निपुण था. वाद विवाद करता अंत में भक्ति पक्ष हुवा. दशाक्षर मंत्र की दिक्षा ली. प्रेम भक्ति में मस्त रहता था. फिर माता और स्त्री को छोडके २९ वर्ष की उमर में केशव भारती से संन्यास धारण किया. श्रीकृष्ण चैतन्य नाम हुवा. फिर घूमने लगा. हिंद के चारों तरफ के देशों में फिरा वैष्णव धर्म का उपदेश करता रहा. स्वामी प्रकाशानन्द ने कहा कि तू संन्यास धर्म का त्याग करके देवाना जेसा क्यों रहता है, चेतन्य देव ने जवाब दिया कि मेरे गुरु ने मुझको मूर्ख जानके उपदेश दिया कि तू वेदांत विद्या का अधिकारी नहीं है, कलियुग में केवल हरिनाम के जप करने में ही सार है, और कृष्ण की भक्ति करना यही श्रेष्ठ साधन है.

गौरांग की स्त्री ने उसकी मूर्ति स्थापन की, इस सुशीला के मरने पीछे उसके भाई (गौरांग के साला) माधवाचार्य मूर्ति कि सेवा करने लगे. नवद्वीप में जो चैतन्यदेव की मूर्ति प्रतिष्ठित है सो उसकी पत्नी की स्थापित करी हुई है.

वैष्णव तत्व निरूपण (चैतन्य का सिद्धांत)

१. उपास्यदेव में अनुराग अथवा तन, मन, वचन द्वारा भगवान की शरण होना इसका नाम भक्ति. सो ३ प्रकार की (१) साधन (२) भाव (३) और प्रेम.

२. हर कोई वस्तु की अभिलाषा रखे बिना और ज्ञान कर्म वगेरे के व्यवधान रहित भक्ति द्वारा भगवान प्राप्त होता है.

३. नास्तिक का संग, पाखंडी तपस्वियों का सहवास, कुशिष्य कुमित्र का ग्रहण, वैष्णव के साथ संकोच, शोक मुग्धता, कुसंस्कार की रक्षा, परनिंदा जीवहिंसा, कलह, पर स्त्री की कामना, सेवा में बेदरकारी, अहंकार, हरिनाम की महिमा अर्थवाद मात्र मानना, हरिनाम का दुरुपयोग, हरिनाम की परवस्तु के साथ समानता बताना, भगवान की निंदा सुनना वा उसका अनुमोदन करना, यह सब नाशकारक होने से त्याज्य हैं.

४. प्रथम विश्वास, पीछे साधु संग, पीछे अर्चना, पीछे विघ्न निवृत्ति, पीछे निष्ठा, पीछे रुची, पीछे भाव और उस पीछे प्रेम का उदय होता है.

५. एक शुद्ध भगवान का भजन करना. दूसरा दूसरी प्रकार से साधन करता हो तो उसकी निंदा नही करना. बाहिर का भाव दूसरा है, ऐसे जानके तर्क वितर्क नहीं करना.

६. विशुद्ध प्रेम यही यथार्थ धर्म है. कृष्ण प्रेम ही विमल है. प्रेम की अमुक अवस्था का नाम भक्ति है. भक्ति की उन्नति करना यह कृष्ण भक्त का सर्वस्व है.

७. सेवा में प्रीति, भागवत का रसास्वाद, साधु संग नाम कीर्तन यह यथा रूची करना.

८. इसका अर्थ आनन्द है. चित् रस का आनन्द शुद्धानन्द है और जड रस याने सांसारिक सुख. चित् रस ही विकार को पाके दांपत्य प्रेम, संतान स्नेह वगेरे में बदल गया है.

९. सब न्यात जात के लोक, हिन्दू और मुसलमानादि प्रेम भक्ति के अधिकारी हो सकते हैं. परमेश्वर पर प्रेम, भक्ति और अनुराग रख के भजन न करे तो परमेश्वर की प्राप्ति सुलभ नहीं है. यह रस वा भाव ५ प्रकार का है. शांत, दास्य, साख्य, वात्सल्य और मधुर वा कांता.

१०. प्रथम साधन भक्ति, पीछे भावभक्ति और उस पीछे प्रेमभक्ति (रति). परंतु रति भक्ति केवल चिन्मय अवस्था में हो सकती है.

११. कृष्ण की कृपा से ही रति की उत्पत्ति होती है, उसका शिक्षण देना अपूर्ण है. साधु संगति से रति को पुष्टि मिलती है. स्वेद, कंप, अश्रु, पुलक, विवर्णता इत्यादि रति के लक्षण हैं.

१२. रति कई प्रकार की होती है भागवति रति, छायारति, जड़रति और कपटरति.

१३. वैष्णव धर्म को श्रेष्ठ मानना, इस धर्म के चिह्न धारण करना, वैष्णव के घर में जन्म होना, इन से सच्चा वैष्णव नही हो सकता, यह सब वैष्णव पक्ष के हैं. परंतु एक मात्र भक्त की साथ ही प्रभु रसालाप करता है. दूसरे के साथ नहीं.

१४. हरिनाम सुनते रहने से शरीर शुद्ध होता है. मन में भगवान की जब पूर्ण निष्ठा हो जायगी तब सब सहज हो जाता है. कोई शंका नहीं रहती

१५. दम (इंद्रिय दमन) शम (मनका जय) तितिक्षा (सहन शीलता) वैराग्य (नश्वर को अवस्तु जानना). तितिक्षा और वैराग्य यह वैष्णव संन्यासियों का मुख्य धर्म है.

१६. श्रद्धा, साधुसंग, भजन और निवृत्ति वगैरे जब भगवतरति का उदय होता है तब विरक्ति धर्म उदय होता है. इस समय वैष्णव, कोपीन वगैरे धारण करके और भिक्षा मांग के जीवन करता है. यही वैष्णवों का भेख है. सो दो प्रकार का होता है. (१) किसी साधु से लेना (२) स्वयं ऐसे वर्तना.

१७. घर बार छोड़ने में अशक्त हो वहां तक कामना और उसका फल दुःख जनक और मंद होता है, ऐसा जानके भगवान का प्रीति पूर्वक भजन करना, यह गृहस्थ वैष्णव का लक्षण है.

१८. भेख लेने पीछे विचरो तो सब आश्रमों का त्याग करके सब विधियों से अतीत जो परम हंस वैष्णवाश्रम है उस में विचरना.

१९. कृष्ण नाम का ही जप करते करते संसार से उद्धार हो जायगा.

२०. त्रेता, द्वापर मे ध्यान, यज्ञ द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति हुई है, परंतु कलियुग में भगवान के नाम कीर्तन करने से भगवान को पाता है.

२१. हरि शब्द जिसकी जिह्वा पर सदा वर्तमान है उसको तीर्थ करने की अपेक्षा नहीं.

२२. बहुत शास्त्र देखके लम्बी मुद्दत तक विचार करके मैंने एक ही सिद्धांत निकाला है अर्थात नित्य नारायण का ध्यान करना.

२३. ध्यान करने से पाप की शुद्धि होती है; हरिनाम, पुनर्जन्म से छुड़ा देता है.

२४. चित्त में रहा हुवा विष्णु सर्व पाप नाश कर देता है.

२५. सर्व को यथा कर्म फल मिलता है, परंतु खरे वैष्णव को नहीं, क्योंकि भक्तवत्सल प्रभु भक्त के कर्म फल का पहिले से ही संहार कर डालता है.

उपरोक्त चरित्र और (१० के) २५ उपदेश भारत के संत पुरुष इस गुजराती चोपड़ी के पेज १०४ से १२६ तक में से उतारे हैं. चैतन्य देव की अन्य हिस्ट्री और चमत्कारों का बयान इस ग्रंथ का विषय न था.

शोधक.

वासुदेव और देवकी का पुत्र कृष्ण यह ईश्वर वा ईश्वर का अवतार होना असिद्ध है, इसलिये उसकी भक्ति मनुष्य प्रेरित कहाती है. हां वे पराक्रमी उपदेशक हुये हैं, इसलिये उनकी भक्ति को गुरु भक्ति जैसी मान सकते हैं. शेष वास्ते त. द. अ. १ अवतारादि प्रकरण बांचो.

विधूपक मत.

कृष्ण अर्थात् इस ब्रह्मांड का आधार सर्व व्यापक ब्रह्म उसके नाम का कीर्तन करना (ओंकारादि का रटन) उत्तम है, कलियुग में हरिनाम के जप से अधिक और स्वल्प साधन अन्य नहीं है; परंतु चैतन्य देव ने जो सदाचरण और वैराग्य का उपदेश किया है सो पालनीय है. मंदिर में चैतन्य देव का उपदेश अमुक धनाढ्य व्यक्ति के लिए उमदा है, परंतु वेद पूर्वोक्त ब्रह्म की सत्कार और पंचदशांग पूर्वक होना चाहिये. शेष उ. द. अ. १ विमूरक मत अंक २९ बांचो. अर्थात् हरि भक्ति उत्तम मार्ग है.

---

४०. शुद्धाद्वैत.

इस संप्रदाय वा मत के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य हैं. इनका जन्म वैशाख वि. सं. १५३५ है. वह महाप्रयाण सं. १५८७ (१५३१ ई.) में मुक्तात्मा हुवे थे. पीछे उसका लाभ का भक्ति पथ में डाले. इन्होंने अद्वैतवाद यानी जगत को मिथ्या मानने वालों के साथ विजय नगर में शास्त्रार्थ किया. इस संप्रदाय का नाम

पुष्टिमार्ग भी है. और रामानुज, रामानंद आदि जो वैष्णवों की ४ सम्प्रदाय कहाती हैं उनसे भिन्न वैष्णव संप्रदाय है. श्रीकृष्ण को मुख्य अवतार मानते हैं. व्रज में इस सम्प्रदाय की अधिक प्रवृत्ति है. तमाम व्रज यही कहें तो भी चले. मुंबई प्रदेश में भाटिये लोग इसी सम्प्रदाय के अनुयायी है. § वल्लभाचार्य ने वेदांतदर्शन पर अणुभाष्य रचा है. इस संप्रदाय के आचार्य गोस्वामी कहाते है.

मथुरा, गोकुल, नाथद्वारा, काकडोली वगेरे इनके प्रसिद्ध स्थान हैं. इस संप्रदाय में भी अनेक शाखा है और वर्तमान मे मर्यादी मथुरापंथी नवीन शाखा निकली है. (विशेष पुष्टि मार्ग गुजराती प्रसिद्ध ग्रथ में देखो).

आगे जो मंतव्य लिखा है वह वल्लभ संप्रदायी की तरफ से दो ग्रथ छपे हैं उनमे से लेके लिखा है. उस एक ग्रंथ मे वल्लभ और मायावादी का सवाद है. एक में मि. डाक्टर थीबो योरोपियन ने जो ब्रह्म सूत्र और शंकर भाष्य का भेद बताया है सो लिखा है.

श्री वल्लभाचार्य का मत ब्रह्मवाद वा शुद्धाद्वैत वा विरुद्ध धर्माश्रयवाद है, यह जगत को मिथ्या (अर्थशून्य–भ्रम रूप) नही मानते है. किंतु जगत को सत ब्रह्म रूप † और ससार को मिथ्या मानते है. इस सम्प्रदाय को पुष्टिमार्ग § भी कहते हैं

वल्लभ श्री वेद, उपनिषद, गीता, ब्रह्म सूत्र और भागवत को प्रमाण मानते है.

तुंगभद्रा नदी पर विद्यानगर गाम वहां के राजा ने सं. १४९३ धर्म परिषद की. उसमें वल्लभ श्री ने ब्रह्मवाद सिद्ध किया प्रतिपक्षिओ पर जय किया. कृष्ण देवराजा ने वल्लभ श्री को आचार्य और महाप्रभुजी की पदवी दी. इस समय वल्लभ की उमर १४ वर्ष की थी. ※ २८ वर्ष की उमर मे विवाह किया और ब्रह्मवाद, भक्ति मार्ग का बोध काशी में हनुमान घाट ऊपर ५३ वर्ष की उम्र गंगा मे प्रवाह लेके शरीर छोड़ दिया (भारतना सतपुरुषो पेज ८८).

---

§ विशेष प्रवृत्ति का हेतु शृंगार और वैभव है ऐसा जान पड़ता है

† गुजराती भाषा में पुष्टिमार्ग नाम का ग्रथ प्रसिद्ध है उसमें इस पंथ के आतरिय अश्लील तथा चालबाजी वाली चेष्टा का वर्णन है

* आज २३०० वर्ष में प्रचारक प्रसिद्ध आचार्य श्री शंकर, श्री रामानुज और श्री वल्लभ और इस सदी मे स्वामी दयानंद इन चारो में से शंकर श्री १६ वर्ष की उम्र में पराजय करने योग्य हुये, वल्लभ श्री ने १४ वर्ष की उम्र में शास्त्रार्थ करके पराजय किया, आर्य समाजियो को चाहिये कि दयानंद श्री को १० की उम्र में पराजय करने वाला बतावें.

वल्लभाचार्य ने कितने ही ग्रंथ बनाये हैं. (१) तीन प्रकरण वाला तत्त्व दीप (गीता का अर्थ, सर्व निर्णय, भागवतार्थ यह ३ प्रकरण उसमें हैं).

(२) ब्रह्मसूत्र पर अणु भाष्य. २॥ अध्याय का भाष्य शेष उनके पुत्र विठलनाथजी का लिखा हुआ है. (३) पूर्व मीमांसा भाष्य. मिलता नहीं है. (४) सुबोधनी. इस में भागवत पुराण के पहिले ३ स्कंध और दशवें स्कंध पर टीका है. (५) सिद्धात मुक्तावली, बालबोध, कृष्णाश्रम, सन्यास निर्णय वगैरे नं. ३ से इतर सब संस्कृत में छपे हैं. (भा. स. पु. पेज ९६)

श्री वल्लभाचार्य का मंतव्य.

सत चित्त आनन्द ब्रह्म है जैसे मकडी जाले की अभिन्न निमित्तोपादान है ऐसे इस जगत का वोह अभिन्न निमित्तोपादान है अपनी इच्छा से आप लीलाभाव से जगत रूप परिणाम को पाता है, इस लिये यह सर्व ब्रह्म स्वरूप है उसकी माया इच्छा संकल्पादि शक्ति है जैसे एक ही भूमि में क्षार, मधुर, कटु, सुगंध, दुर्गंध वाले पदार्थ होते हैं अतः भूमि विरुद्ध धर्माश्रय है. ऐसे वोह (सगुण निर्गुण, साकार निराकार, सक्रिय अक्रिय, जड चेतन, तम प्रकाश, उपास्य उपासक, आविर्भाव कर्ता, आविर्भाव होने वाला, रक्षक रक्ष्य, सहारक सहार्य, दुःखी सुखी, ज्ञान अज्ञान इत्यादि) विरुद्ध धर्मों का आश्रय है. जैसे कनक कुंडल, जल बरफ और सर्प गोल एवं परिणाम पाके वे पुनः पूर्व रूप में आ जाते हैं इसी प्रकार ब्रह्म अविकृत परिणाम है धर्म धर्मी का अभेद होने से जगत् ब्रह्म का अभेद है. जगत् जीव की रचना में ब्रह्म का स्वभाव, परमाणु, जीवो के अदृष्ट, माया, या भ्रम कारण नहीं है; किंतु उस सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान की लीला रूप इच्छा ही कारण है; क्योंकि स्वभावादि को कारण मानने में परतंत्रादि दोष की आपत्ति होती है जब वोह इच्छा करता है तब जैसे अग्नि में चिंगारी वैसे जीव, प्रकृति और कार्य हो जाते हैं.

उसके सत अंश (प्रकृति) से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि होते हैं, उनसे विषय, ग्रह, बीज, सूक्ष्म सृष्टि और स्वर्गादि लोक बनते हैं और चित अंश से असंख्य जीव होते हैं, उनका आनन्दांश तिरोहित हो जाता है इसलिये उनमें द्वंद्वों की उत्पत्ति हो जाती है जैसे कि तम प्रकाश, साध्य साधक इत्यादि हैं. ब्रह्म का जो आनन्द अंश है वोह व्यवस्थापक पुरुषोत्तम है

जीव को अविद्या प्रदान होने से उसकी शक्ति का तिरोभाव हो जाता है, ऊंच नीच भाव वाला अणु चेतन जीव है, अल्पज्ञ है, रागादि वाला है, जीव मर्यादा मार्ग

की दृष्टि से यथा कर्म जन्मो को पाता है. ससार, बध का हेतु है, जगत नही. जगत ईश्वर सृष्टि है सो सत्य है और इतर (म, त, मेरा, तेरा इत्यादि भाव) जीव दृष्टि है, उसे **संसार** कहते हैं सो बंध का हेतु है.

जब प्रभु विद्या प्रदान करते है, जीव ईश्वर की भक्ति करता है वा ईश्वर की कृपा होती है तब जीव के बध का अभाव होके मुक्ति हो जाती है अर्थात् तिरोहित आनन्द उदय होके ब्रह्म मे सायुज्य होता है (किवा साधन भेद से ईश्वर के लोक (गोलोक) वा ईश्वर की सामीपता को सपादन कर लेता है). इस मुक्ति प्रसग मे ज्ञान पक्ष मे अभेद है अन्यथा (भक्ति पक्ष तक) भेद है. उक्त मोक्ष मे अनावृत्ति है. पुनः जन्म नहीं होता, क्योकि वहा निरतिशय आनन्द की प्राप्ति है

वोह प्रभु अन्यथा कर्ता अर्थात् इच्छा मे आवे वेसा करता है निरपेक्ष है; क्योकि जीव, जगत, बंध मोक्ष, उसकी लीला मात्र है, उन्नति अवनति और त्रिपुटी व्यवहार मात्र भी उसकी लीला रूप है इसलिये विना कारण अविद्या प्रदान वा विषमता निर्घृणता, कृपा अकृपा, उत्तम मध्यम, कनिष्ठ इत्यादि होनेमें शंका और दोष आरोप करना व्यर्थ है, क्योकि सब आप ही स्वरूप है.

जेसे अकित पट (अनेक छबी आकार रग रूप वाला पट) खोलें तब विचित्र रूप (कर्ता भोक्ता उत्तम मध्यमादि रूप) जान पडते ह और उसको लपेटें तो कुछ नही जान पडता किंवा जेसे कछवा अपने अग बाहर करता है तब अग वाला जान पडता है जब सुकेडता है तो कुछ नही जान पडता है. इसी प्रकार जब सच्चिदानन्द ब्रह्म लीला की इच्छा करता है तब अनेक रूप परिणाम को पाता है वे आविर्भाव को पाते है, और अपनी लीला सकोच लेता है तब कुछ नही याने तिरोभाव को पाते हैं. आप ही आप रहता है (इसका विवाद आगे बाचोगे).

व्यवहार मे जेसे प्रत्यक्षादि है वेसे प्रवृत्ति और कथन है वस्तुतः सर्व खल्विद ब्रह्म, आत्म से आकाश, उर्णनाभिवत्, विस्फुलिग, एकोऽहं बहुस्याम, आत्मेव इदं सर्व, नेहनानास्तिकिंचन. इत्यादि वेद की श्रुति अनुसार यह सब ब्रह्म स्वरूप ही है. लीला मात्र है. प्रभु की कला, जीव नहा जान सकता, इसलिये व्यवहार में अनेक कल्पना करके मत बाध लेता है, दयालु भगवान भक्तो की भावना वश और कष्ट निवारण तथा धर्म स्थापनार्थ अवतार भी लेते है; सो भी लीला रूप है.

इस प्रकार यथेच्छा उत्पत्ति स्थिति प्रलय रूप लीला करता रहता है, क्यो, किस प्रकार और कब से? इनका जवाब देना मनुष्य के अधिकार से बाहिर है.

व्यवहार में प्रत्यक्षानुमान प्रमाण हों, परंतु प्रस्तुत विषय में श्रुति, गीता और वेदांतदर्शन तथा भागवत का समाधि पाद यह शब्द प्रमाण हैं. †

(श्री वल्लभ कृत श्लोक).

निर्दोष पूर्ण गुणविग्रह आत्मतंत्रो, निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्चहीनः ॥ १ ॥
आनंदमात्र करपाद मुखोदरादिः, सर्वत्र च त्रिविधभेद विवर्जितात्मा ॥ २ ॥
अनंत मूर्ति तदब्रह्म, कूटस्थं चलमेवच; विरुद्ध सर्वधर्माणामाश्रयं युक्तिगोचरम् ॥ ३ ॥
आत्मैव तदिदंसर्वं, सृज्यते सृजतिप्रभुः त्रायते त्रातिविश्वात्मा, ह्रियतेहरतीश्वरः॥४॥
आत्मैव तदिद सर्वं, ब्रह्मैव तदिदं तथा; इतिश्रुत्यर्थमादाय साध्य सर्वैर्यथामति ॥५॥
अयमेव ब्रह्मवादः शिष्टं मोहाय कल्पितम् ॥ ५ ॥
बहुस्यां प्रजायेयेति वीक्षा तस्य ह्यभूत् सती ।
तदिच्छा मात्र तस्तस्मात् ब्रह्मभूतांश चेतनाः ॥ ६ ॥
सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारास्तदिच्छया ।
विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि ॥ ७ ॥
अर्थोऽयमेव निखिलैरपि वेदवाक्यै रामायणैः सहित भारतपंचरात्रैः ।
अन्यैश्चशास्त्रवचनैः सह तत्त्वसूत्रैर्निर्णीयते सहृदयं हरिणा सदैव ॥ ८ ॥

व्युत्पत्ति.

अवतरण वल्लभाचार्य के वाक्य (ब्रह्मवाद ‡ में से).

(पेज ७) ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा और भगवान एक अर्थ के वाचक हैं. गीता गत पुरुषोत्तम यही है. जिस पर प्रकृति (माया) के सत्व, रज, तम इन गुणों की सत्ता न हो वोह निर्गुण याने ब्रह्म है. धर्म के लक्षण रहित का नाम निर्गुण नहीं है. ब्रह्म अंतरात्मा, अंतरयामी, कर्मफल दाता और द्रष्टा, यह उसके गुण वा धर्म हैं और साक्षी निर्गुण है (श्वे.उ.) ब्रह्म मे प्राकृत धर्म नहीं है, जैसे कि अशब्द अस्पर्श इ. अतः निधर्मक है. परमात्मा सब को वश में रखने वाला, सब का अंतर्यामी, एक रूप को बहुत करने वाला है (कठ), यह परमात्मा के धर्म हैं, वास्ते सो सधर्म है. निधर्म नहीं सर्वज्ञादि उसके गुण है.

† ई. शोपनेर का शिष्य लिखता है कि रामानुज के अनुयायी दश सेकडे १५, मध्व के ५, वल्लभ के ५ और शंकराचार्य के ७५ हैं.

‡ शुद्धाद्वैत सिद्धांत. प्रसिद्ध कर्ता लल्लुभाई भाजी अडज. गुजरात प्रिंटिंग प्रेस में सन् १९१० में छपा.

(पे. १४) सजातीय (जीव) विजातीय (जड) और स्वगत अंतर्यामी इन तीनों में भगवान रहा हुवा है. और इन तीनों रूप वाला आप ही होता है, इसलिये तीनों भेद से वोह रहित है. सहस्रशः (मुंडक) अपरिमित चेतनत्व समान धर्म वाला अपरिमित अनेक जीव प्रादुर्भूत होते हैं चेतनत्व और नित्यत्व होने से जीव, ब्रह्म का सजातीय कहाता है. जडत्व और अनित्यत्व होने से जड विजातीय कहा जाता है. अंतरयामी प्रकटित सच्चिदानंद रूप होते हुये भी परिच्छिन्नपने से और नियत कार्य करने से वही स्वगत कहाता है. सींग पूंछ विना की गायें एक जाति हुये भी उनमें व्यक्तिभेद है, इस भेद को सजातीयभेद कहते हैं. घट और पट का विजातीयभेद है. झाड और पुष्प का भेद स्वगत भेद है. सच्चिदानंद भगवान चित्तरूप से जीव में, सतरूप से जड में और आनंद रूप से अंतरयामी में रहे हुये हैं; इसलिये उनमें तीनों भेद नहीं हैं "आत्मा वा इदं सर्वम्" इसलिये ब्रह्म तीनों भेद रहित है. तथा जड, जीव और अंतर्यामी इन तीनों में उत्तरोत्तर अधिक अंश से भगवद् बुद्धि कर्तव्य "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेहनानास्तिकिंचन" †

(पे. १९) ब्रह्म जगत का समवायि (उपादान) और वोही निमित्तकारण है. "एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" यह श्रुति निमित्त वताती है, "सआत्मान स्वयमकुरुत" परमात्मा ने आपही अपनी आत्मा को जगत रूप किया. यह श्रुति उसे उपादान वताती है.

(पे. २४) वेद शास्त्र और जगत अध्यास रूप नहीं हैं. और न अविद्या रूप हैं.

(पे. २७।२८) ब्रह्म अनंत मूर्ति कूटस्थ, चल, सर्व विरुद्ध धर्म का आश्रय है और युक्ति का * विषय नहीं है. (नि. शा. ७१) जैसे पृथ्वी सहज विरुद्ध उंदर, विल्ली वगेरे का आधार है वेसे सो ब्रह्म सब विरुद्ध धर्मों का आधार है. § भूमि में जो विरुद्ध धर्म का आश्रयत्व जान पडता है सो उस कारण का ही है. लौकिक पदार्थों में विपरीत गुण नहीं भी हो; परंतु यह वात अलौकिक ब्रह्म प्रति नहीं घटती; क्योंकि वोह सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान है और वोह अनेक रूप धारण

† यह श्रुति वेद, १० उपनिषदों में नहीं जान पडती है.

* युक्ति भी तो उसी की है, अतः उसका विषय न हो, इसमें कोई प्रमाण नहीं है.

§ उंदरादि भूमि से अन्य है, ब्रह्म से इतर अन्य नहीं है अतः विषम दृष्टांत है.

करता है. जेसे पृथ्वी सहेज मूशक बिल्ली, सर्प, नोलिया वगेरे विरोधिओं की आधार भुत है. तथा कटु, मिष्ट, खार, तीक्ष्ण विरोधी पदार्थों के उत्पन्न करती है ऐसे *ब्रह्म भी दिखाते विरुद्ध धर्मों का आश्रय है. जब कि ब्रह्मेतर अन्य नहीं* ऐसा श्रुति कहती है तो उपाधि (अध्यास–अज्ञान, अविद्या, अन्योऽन्याध्यास) कहां से आ गया ?

(पे. ३०) जीव उपाधि–कल्पित रूप नहीं है. जीव मेरा (ईश्वर का) अंश है.. (गी. १५।७). जीव अहंकार और संकल्पयुक्त है, अंगुष्टतुल्य है. सूर्य समान प्रकाश वाला है. इ. (श्वे. उ.). जीव अंश जेसा है, इसमें श्रुति प्रमाण नहीं है. ब्रह्म विरुद्ध धर्म आश्रयी होने से निरवयव है तो भी इसमें से इसके अंश रूप जीव व्युच्चरण पाते हैं.

(पे. ३१) जेसे मकडी तंतु से बाहिर जाल बांधती है, जेसे अग्नि में से चिंगारी निकलती हैं, ऐसे ब्रह्म में से सब (प्राणी, लोक, भुत) व्युच्चरण पाते हैं. सो और जिसमें से (परमात्मा में से) निकले सो सत्य हैं. निदान जीव ब्रह्म का अंश है उसमें से ही व्युच्चरण हुवा है.

(३४) ब्रह्म वा ईश्वर के गुणों को अविद्या रूप उपाधि से कल्पित कहना यह योग्य नहीं है. इसी प्रकार माया उपाधिजन्य ईश्वर है, ऐसा कह के ब्रह्म को उससे जुदा मानना श्रुति से विरुद्ध है.

(३५) गीता ५।१४ में "प्रभु में लोक का कर्तापना या नहीं, प्रभु कर्म नहीं सर्जता तथा कर्मफल के संयोग को भी नहीं पेदा करता, परंतु स्वभाव से ही होता है." यह जो स्वभाववाद कहा है सो अर्जुन को भेद बुद्धि होने से उसको ब्रह्मवाद आरूढ न होने के कारण प्रथम लोक में अपनी जनाती हुई स्वभाव रूप शक्ति बता के बोध किया है. स्वभाव भी ईश्वर की शक्ति रूप ही है. परमेश्वर ने सृष्टि रचने की इच्छा से अपने में लय पाये हुये काल, कर्म और स्वभाव को अपनी शक्ति से पीछे प्रकट किये.

(३६) अज्ञान यह ज्ञान का अभाव है. सो लोक में देखते हैं, भगवान द्वारा ज्ञान होता है.

(३७) सृष्टि भगवत इच्छा से ही उत्पन्न होती है. "तदात्मान स्वयमकुरुत" श्रुति है.

(३८) वेद, गीता, व्यास सूत्र, भागवत में व्यासजी की समाधि-भाषा, यह हम प्रमाण मानते हैं. तत्त्वमसि, अहं ब्रह्म, जीव ब्रह्म का ऐक्य वता के परमात्मा में भक्ति भाव करने वास्ते हैं.

(४१) नान्यथा (कूर्म पुराण), इतिहास (ब्रह्मांड पुराण), इनका भावार्थ. पुराण जाने बिना धर्म और वैदिक ब्रह्म विद्या समझ में नहीं आती. वेदार्थ को इतिहास और पुराण से वृद्धि करना

(४२) इतिहास पुराण पांचवां वेद जान (छां. उ). १८ पुराण में मत्स्यादि ६ तामसी, ब्रह्मांडादि ६ राजसी और विष्णु आदि ६ सात्विकी हैं.

(४३) ब्रह्म निर्णय प्रसंग में प्रत्यक्षादि ६ प्रमाणों में से हम एक (उक्त) शब्द प्रमाण ही मानते हैं. + लौकिक विषय में प्रत्यक्षादि का उपयोग कर सकते हैं. ‡ ब्रह्म अलौकिक है. अतः उस संबंध में वेदादि को ही प्रमाण मानते हैं.

(४४) कृष्=सत्ता. ण=आनन्द. अतः कृष्ण=सदानन्द=परब्रह्म. सो अनेक रूप धारता है.

(४६) ब्रह्म में सत् चित् और आनन्द यह ३ धर्म हैं जीव में सत् और चित् मात्र है आनन्द नहीं. जेसे ब्राह्मणत्व रहित को ब्राह्मणाभास कहा जाता है वेसे ब्रह्म धर्म की स्फुर्ति न हो (आनन्दाभाव हो) तब जीव को ब्रह्माभास कहा जाता है. परंतु जीव आभास वा प्रतिबिंब नहीं है. ब्रह्म से इतर अन्य नहीं तो फिर आभास वा प्रतिबिंब कहना ही नही बनता.

(४८) जगत् तीनों काल में सत्य है. सदेव सोम्यदेमग्र आसीत. (छां. उ.)

(४९) जगत् में जो विकार मालूम होते हैं. सो भ्रांति से † दिखाते हैं वस्तुतः जगत् विकार वाला नहीं है. * मात्र आविर्भाव और तिरोभाव होने से उस में जन्म मरण की भ्रांति होती है. कार्य और कारण का अनन्यत्त्व है जीव ईश्वर और जगत् परमार्थतः सत्य न हों तो ईश्वर भक्ति, धर्म का मूल जो श्रद्धा नीति इनका उच्छेद हो जाता है.

+ यदि अनेकार्थबोधनी उपनिषद की श्रुति को विश्वास से न मानें तो अभिन्न-निमित्तोपादानवाद (ब्रह्मवाद) सिद्ध ही नहीं होता.

‡ जब कि ब्रह्म स्वयं अलौकिक तो उसका कार्य जगत् (अनन्य) लौकिक मानना हास्यास्पद है.

† भ्रांति, विकार नहीं तो क्या? ब्रह्म वा तदंश को भ्रांति होना माना कि भ्रांत विकारी ठेरता है इसलिये वदतो व्याघात है.

(९०) प्रभु ही इस जगत् का सर्व तंत्र चलाता है. और उसको योग्य लगे तब योग्य विचार आप वा कोई व्यक्ति को निमित्त बना के प्रगट करता है.

श्री वल्लभ का सिद्धांत.

(९१) गीता और व्यास सूत्र के आधार से हमारा यह सिद्धात है— ब्रह्म सब धर्म वाला है. सगुण निर्गुण और सधर्म है. निराकार (प्राकृताकार * रहित) साकार (आनन्दाकार) है, ब्रह्म के सब धर्म सहज स्वाभाविक हैं. जगत जीव सब ब्रह्म के कार्य हैं. ब्रह्म रूप है. ब्रह्मानन्य है. ब्रह्म से जुदे नहीं है ब्रह्म विरुद्ध सर्व धर्माश्रय युक्त है (उभय व्यपदेशात्त्वहि कुंडलवत व्या. ३।२।२७) अविभक्त है तथापि विभक्त है.

(९२) ब्रह्म अविकृत, निर्गुण अद्वैत, सच्चिदानन्द और जगत कर्ता है. *गुणाधिष्ठाता ब्रह्मादि देव तदंश हैं. ब्रह्म आप अपने मे से सब सृजता है (आत्मकृतेः* परिणामात् (व्या. १।४।२६). ब्रह्म आत्म सृष्टि करता है; इसलिये उसमे वैषम्य नैर्घृण्य यह दोष नहीं आते (व्या. २।१।३४). ब्रह्म के तीन स्वरूप हैं १ आधिदैविक (पर ब्रह्म), २ अध्यात्मिक (अक्षर ब्रह्म) ३ जगत् (आधिभौतिक). तीनो अनन्य हैं–अभिन्न हैं. आधिदैविक स्वरूप भक्ति से ही प्राप्त होता है और अक्षर, ज्ञानी को + प्राप्त होता है. मैं अनेक होवु, उच होवु, नीच होवु, ऐसी भावना जब ब्रह्म ने की तब उसकी इच्छामात्र से ब्रह्म मे से चित प्रधान असख्यात अंश अग्नि की चिंगारी समान निकले, वे आनदरूप थे तो भी उच नीच भाव से निर्गमन को प्राप्त हुये. इसलिये आनंद रहित हो गये, उनका आनंद अश तिरोहित हो गया, उनके ऐश्वर्यादि अश भी तिरोभूत हो गये, और पराधीनत्व प्राप्त हुवा. वीर्य के तिरोभाव से सर्व दुःख सहन, यश के तिरोभाव से सर्व हीनत्व, श्री के तिरोभाव से जन्मादि ‡ आपद, ज्ञान के तिरोभाव मे देहादि मे ‡ अहंबुद्धि तथा विपरीत ज्ञान और वैराग्य § के तिरोभाव से विषयासक्ति प्राप्त हुई (ऐश्वर्य तिरोभाव ++

---

* जब कि ब्रह्म अप्राकृत निराकार है तो प्राकृत आकार कहां से आ गये यदि वे ब्रह्म के ही आकार है तो ब्रह्म साकार ठेरा निराकार नहीं और प्राकृत हुवा.

\+ दोनो हाल्त किसी को प्राप्त होते हैं? आप ही परब्रह्म आप ही अक्षर है वाहरे कल्पना !!

‡ जन्म पाने देह मिलने का कोई हेतु नहीं रहते. यदि प्रभु की इच्छा तो बापडे जीव का क्या दोष फिर ब्रह्म ही जन्मधारी ठेरा.

§ ब्रह्म मे इतर न था तो वैराग्य किसने किसको था?

अणु भाष्य ३।२।३) सो जीव नित्य है. ज्ञाता है. ज्ञान उसका धर्म है जीव धर्मी है. प्रकाशक चैतन्य उसका धर्म है. सूर्य प्रकाशवत् धर्म धर्मी का अभेद है. जीव अणु है. आनंदांश प्रकट होने पर उसका विभुत्व * प्रकट होता है. जीव में भगवद् का जब आवेश हो तब उसमें सर्व भगवद् धर्म आविर्भाव होते हैं.

(९३) ब्रह्म सर्व धर्म विशिष्ट कर्ता है भोक्ता है, तो तदंश जीव भी ब्रह्म के संबंध से कर्ता भोक्ता होता है, अतः जीव कर्ता और भोक्ता है. उसमें बुद्धि तो कारण मात्र है. जीव ब्रह्म का अंश है प्रतिबिंब नहीं. ब्रह्मवाद में अंशांशी भाव से अभेद सिद्ध होता है. सर्वं खलु + इदं ब्रह्म. जड जीव सर्व ब्रह्म है.

(९४) आनंदांश प्रकट होने पर जीव ब्रह्म ही है. जगत् भगवद् रूप है. संसार (जीवसृष्टि) अहंता ममतात्मक है सो जीव ने अविद्या से कल्पी है. इस संसार का नाश ज्ञान से होता है. तथापि जगत् तो वैसे का वैसे रहता है. जगत् का लय तो तब ही होता है कि जब भगवान लय करे. जगत् (प्रपंच) अविद्या का कार्य नहीं है किन्तु द्वैतज्ञान अविद्या का कार्य है. अविद्या जीव को लगती है; ब्रह्म को नहीं. स्वरूपाज्ञान, देह, इंद्रिय, प्राण और अन्तःकरण का अध्यास, यह पांच पंचपर्वा अविद्या है. वैराग्य, सांख्य, योग, तप और प्रेम यह पंच पर्वा विद्या है. विद्या अविद्या दोनो भगवान की मायारूप शक्ति के आधीन है. भक्ति प्राप्त होने पर अविद्या † की निवृत्ति हो जाती है.

मूल कारण जुदा जुदा नाना कार्यरूप होवें तथापि कारण में कोई भी विकृति नहीं होती, इस परिणाम को अविकृत परिणाम कहते हैं; कनककुंडलादिवत्. इसी प्रकार ब्रह्म में से अनेक जड जीव निकलें तो भी ब्रह्म में कुछ विकार नहीं होता. इस अविकृत परिणाम से ब्रह्म को ही जगत् का उपादान और निमित्त माना है, इसलिये इस सिद्धान्त को ब्रह्मवाद भी कहते हैं. मायावाद या विवर्त्तवाद नहीं कहते

अविकृत निर्गुण ब्रह्म आविर्भाव तिरोभाव नाम की अपनी शक्ति द्वारा अक्षर, जीव, जगत्-सर्व रूप से लीला करता है. यह हमारा (मतुन का) संक्षेप में लिखा कहा.

(९८) माया यह ब्रह्म की शक्ति है (दे ध्यान योग. चौ. ११२. मायानु चौ. ४११०. अध्यात्ममार्गी. चौ. ४१९). माया शक्ति जगत् को नहीं जनती. माया

* [illegible]

† [illegible]

का स्वामी विश्व को रचता है. विद्या अविद्या यह दोनों श्रीहरि की शक्ति हैं. जीव को लगती हैं.

(९९) माया करके भगवान ने विद्या और अविद्या दो शक्तियों को निर्माण किया है. भगवान अपनी माया शक्ति से आच्छादन होके रहता है, इसलिये सब प्राणिओं में होते हुये भी नहीं दिखाता. परमात्मा आनंदाकार वाला है. सर्व शक्तिमान होने से अनेक रूप धर लेता है.

(१०) जीव परिच्छिन्न अणु है, व्यापक नहीं है; तो भी विद्या की प्राप्ति से भगवत धर्म का उसमें आविर्भाव होता है तब, यह व्यापक हो सकता है अर्थात् व्यापकता जीव का धर्म नहीं है किंतु ब्रह्म का है. नित्य सर्वगत, स्थाणु, अचल, (गी.) यह वाक्य भगवद् धर्म आविष्ट हुये जीव के स्वरूप उपर है.

(१३) परमाणु प्रदेश रहित होने से परमाणु कारणवाद असिद्ध है. श्रुति में परमाणुवाद नहीं कहा है किंतु ब्रह्म से उत्पत्ति कही है.

(१४) अनादि सृष्टिवाद नहीं है किंतु ब्रह्म से उत्पत्ति, उसी में स्थिति, उसी में लय होता है.

(१५) जगत का कारण प्रधान नहीं किंतु ईश्वर है.

(१६) लोक में भगवान की लीला कैवल्य (मोक्ष) के वास्ते होने से (व्या. २।१।३३) और जगत वस्तुतः आत्मसृष्टि होने से ईश्वर में कोई दोष + नही आता.

(१७) असत, आत्म, अन्यथा, अख्याति और अनिर्वचनीय यह पांचों ख्याति मानना यथार्थ नहीं है. (१९) इस वास्ते अन्य ख्याति ही मान्य है. (ब्रह्म ही अन्य रूप होने पर उसके अन्य रूप की जो ख्याति सो अन्य ख्याति).

(१८) जगत् नित्य है, तदंतः पाति वर्ण तथा पद भी नित्य है. जो नाश होता हो तो दूसरा पुरुष स्थानि (पद) को कैसे साध सकता है. वेद के वर्ण, पद और वाक्य नित्य हैं. लोक में वर्ण, पद नित्य और वाक्य अनित्य हैं. यह हमारा मत है. ‡

+ जो ईश्वर स्वतंत्र तो कर्म बिना भी सृष्टि करे. जो ईश्वर कर्म का सहायभूत होय तो ईश्वर में गौणत्व होने से कर्म ही कर्ता ठेरे जो ईश्वर स्वार्थ वास्ते करे तो अकामत्व तथा सर्वज्ञत्व तथा प्राप्त कामत्व का नाश हो. अन्य के वास्ते करे तो दयालु होने से दुःखमय सृष्टि करना असंभव अन्य प्रकार मानो तो भी ईश्वर में रागत्व की प्राप्ति हो (इत्यादि दोष) अतः ईश्वर जगत्कर्ता नहीं है.

‡ यदि शब्द या जीव नित्य हैं तो अविकृत परिणामवाद न रहा.

(७१) ब्रह्म निष्कलंक, निष्क्रिय, शांत, निरवेद्य, निरंजन (श्वे. ६।१९) एकं बीजं बहुधायः करोति (श्वे. ६।१२) सविश्वकृद (श्वे. ६।१६). यहां निष्कलंकादि प्राकृत गुणों का निषेध है, क्योंकि दूसरी श्रुति में सधर्मक जगत् कर्ता कहा है.

(७६) मुक्ति में अहंता, ममता मूलक संसार का लय होता है. परंतु प्रपंच का लय नहीं होता; क्योंकि प्रपंच का लय भगवान के आधीन है. †

शोधक.

ब्रह्म को निरवयव अपरिणामी माना गया है. (क. वगैरे ऊपर की श्रुतियें देखो). निरवयव एकत्व का परिणाम नहीं होता. जगत् का नाना विरोधी रूप देखते हैं. ऐसी व्याप्ति नहीं मिलती कि जो एक ओर विरुद्ध परिणामी हो. विरुद्ध धर्म सावयव पुंज में ही हो सकते हैं, यथा भूमि सावयव पुंज है उसमें से भिन्न भिन्न परमाणु खिंच के उनके रसायणीय संयोग से एक कुंडे में ही मधुर, कटु आदि विरोधी कार्य होते हैं, उनमें मूल रसायणीय संयोगजन्य बीज हैं. जो यह कहो कि विरोध नहीं है किंतु बुद्धि ने विरोध पद कल्पा है, तो जल से अग्नि ठंडी, जल से तृषा का अभाव, अग्नि से त्वचा का दाह और दुःख, भोजन से क्षुधा का अभाव, भोजन न मिलने पर शरीर का पात, सिंहादिक गौ आदि के घातक, विजली का नेगीटीव पाजीटीव भाव, प्रकाश से तम का निवारण, इत्यादि न होना चाहिये, परंतु

† इस मत में गोलोकाधिपति श्रीकृष्ण सेव्य है. परामक्ति (प्रेमभक्ति) सिद्ध हुये श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं. तन-धन यह दो रूप की सेवा है और मानस सेवा फलरूपा है. पुरुषोत्तम में सायुज्य की प्राप्ति किंवा पृथक परिच्छेद की निवृत्ति मोक्ष है.

वेद शास्त्रानुसार प्रभु की पूजा सेवा करना मर्यादा भक्ति है. प्रभु की कृपा विना कोई अन्य साधना नहीं, ऐसा निश्चय कर के प्रभु का प्रसन्नतार्थ निःसाधनता सूचक भगवतायीनता मूलक तन, मन, वाणी से ग्रहण कर के प्रभु की भक्ति के मार्ग को मर्यादा व्यतिरिक्त पुष्टि मार्ग कहते हैं (इसी में लौकिक रहस्य भर दिया है)

जैसे श्रीशंकर की विवर्त्तवाद कल्पना के अनुसार हो वा न हो परंतु विवर्तवाद कल्पना अद्भुत और प्रशंसनीय है, ऐसा मानना पडता है. तद्वत् श्रीवल्लभ की अविकृत परिणामवाद-ब्रह्मवाद, इस भावना के अनुकूल हो वा न हो, परतु इस ब्रह्मवाद में जो उनकी भावना, श्रद्धा, प्रेम जान पडता है वोह प्रशंसा करने योग्य है; क्योंकि अव्याप्ति वाले विषय में विश्वास से ऐसी श्रद्धा भावना होने वास्ते वाह वाह कहना पडता है. इसी प्रकार ईश्वर ने अपनी इच्छा से अभाव से जीव जगत् बनाये, इस व्याप्तिरहित में किरानी कुरानिओं की जो दृढ श्रद्धा (इमान) है, विश्वास है वोह भी सराहने योग्य है. क्यों? उन भाविकों के भाव के चश्मे लगा के देखोगे तब आप ही उत्तर पा लोगे.

उक्त सब कुछ होता है. इन विरोधों में बुद्धि की कल्पना काम में नहीं आती. अतः एक में विरुद्ध धर्माश्रयत्व मानना कल्पना मात्र है; क्योंकि ब्रह्म को अपना आप ही विरोधी मानना हास्यास्पद है. जो यह कहें कि आप ही आप दुःखी सुखी होता है, कर्ता भोक्ता बनता है; अतः उसमें विषम दृष्टि वाला (विना कर्म किये हुये एक जीव दुःखी, एक सुखी इत्यादि) दोष नही आता, सो भी कल्पना मात्र है; क्योंकि एक दूसरे का दुःख सुख एक दूसरे को भान नहीं होता और न ऐसा जान पड़ता है कि हम आप ही दुःख सुख को यथेच्छा कर के भोगते हैं; अतः उक्त मंतव्य ठीक नहीं है. एक अंश (ब्रह्म) आधार, दूसरा जड और आधेय इस रीति से सच्चिदानंद सावयव हुवा अर्थात् प्रकृति ईश्वर और जीव के समूह का नाम ब्रह्म रखा है, ऐसा मान सकते हैं; इसलिये शुद्धाद्वैत नाम ठीक नही. द्वैतवाद ही है. विभु अणु नहीं हो सकता, द्रष्टा दृश्य, कर्ता कर्म और भोगता भोग्य रूप नहीं हो सकता, क्योंकि न तो ऐसी व्याप्ति मिलती है और न किसी को ऐसा अनुभव है. यदि ब्रह्म एक ही तत्त्व हैं तो उसका उसमें संयोग वा अकेले का उपयोग नहीं हो सकता, और न उसमें विरुद्ध देशी तथा समकालीन नाना गति हो सकती हैं परंतु विरुद्ध गतियें और संयोग विभाग तथा उपयोग देखते हैं; इसलिये समूह पुंज माना है, न कि एक तत्त्व. एक के समकाल मे अनेक परिणाम नहीं हो सकते, एक तत्त्व के एक भाग का परिणाम हो दूसरे का नही तथा एक भाग मे क्रिया हो दूसरे में नहीं, ऐसी व्याप्ति नहीं मिलती और न किसी के अनुभव में है. साकार निराकार, निराकार साकार, सगुण निर्गुण, निर्गुण सगुण, जड चेतन, चेतन जड, ज्ञान अज्ञान, अज्ञान ज्ञान इत्यादि नहीं हो सकते. जल सावयव है अतः क्रिया परिणाम होते हैं. आकाश ब्रह्म (व्यापक निरवयव) है उसमे क्रिया वा परिणाम नहीं होते, इत्यादि व्याप्ति तो देखते हैं, परंतु उससे उल्टी व्याप्ति नहीं देखते; अतः विरुद्ध धर्माश्रयत्व असिद्ध है. जब तक ब्रह्म के स्वरूप मे विजातीय, स्वगत भेद न माना जाय वहा तक जगत् रूप परिणाम नहीं हो सकता. ब्रह्म के अंश जीव में अज्ञान—अविद्या कहना व्याघात है. उपादान उपादेय सम होता है परंतु जीव और जगत् ब्रह्म जेसे नहीं;

वल्लभ श्री के वाक्यो पर से हम ऐसा मानते हैं कि वे बडे योग्य पुरुष, श्रुति के परम जिज्ञासु और ईश्वर के परम प्रेमी भक्त होने चाहियें. यहां सिद्धांत के विरुद्ध को एक तरफ रख के उनकी भावना पर ध्यान देंगे तो यह बात समझ में आ जायगी. उनके पीछे महाप्रभुजी का रूप मनाने से उनका मतव्य—सिद्धांत को रूपांतर मे माना गया हो तो यह बात स्वाभाविक है, क्योंकि परिवर्तन पाना जीव सृष्टि का नियम है (सृष्टि नियम भी है).

अतः ब्रह्म उनका उपादान नही. अश वाला परिच्छिन्न होता है. विस्फुलिंग से ही सावयव जान पडता है. मकडी का शरीर जाले का उपादान और जीव निमित्त है अर्थात् अभिन्ननिमित्तोपादानपना असभव है ब्रह्म ही त्रिपुटीरूप मानने से उच्च नीच, उत्तम मध्यम, और सफल निष्फल व्यवहार की अव्यवस्था है. जैसे तुम शुद्धाद्वैत मानते हो वैसे दूसरे का मतव्य भी क्यो न माना जाय ? क्योकि वोह भी उसकी लीला है. गौ रक्षक गौ भक्षक भी समान मान लो, माता, स्त्री आदि मे भी भेद न मानना चाहिये. व्यवहार मे यू वैसे यू, यह क्या अव्याप्ति दोष नही ? ब्रह्मवाद वास्ते शास्त्रार्थ वा उपदेश क्यो किया? क्योकि प्रतिपक्ष भी ईश्वराश की ही मान्यता थी.

जो ब्रह्म सावयव तो विनाशी और उसको किसी आधार की अपेक्षा होगी, परतत्र होगा. जीवो में दुःख देखते है, परस्पर मे रागादि होते है, यह ब्रह्माश में अघटित है जगत से इतर किंवा ब्रह्म से इतर कुछ नहीं तो फेर जगत् ससार का भेद और भ्रम कहा से आ गया, याने जगत् सत्य और ससार मिथ्या कहना व्याघात है

जब जीव मे आनदाश और शक्ति उद्भव हुये तो वे ब्रह्मरूप हो जाने से नाना ब्रह्म मानने पडेंगे, क्योकि दो एक, एक दो नहीं होते अर्थात् अणु जीव ब्रह्मस्वरूप नही हो सकता और न ब्रह्म में लय होके तद्रूप हो सकता है. जब यू नहीं तो विकृत परिणाम सिद्ध होगा ब्रह्म अपने जैसा ब्रह्म न पैदा कर सकता है न अपने को मार सकता है और न अग्नि को शीतल कर सकता है, अतः अन्यथा कर्ता नहीं. ब्रह्म अन्यायी और विषम दृष्टिवाला हो तो ईश्वर ही नहीं. बिना कारण अविद्या वा जन्म देने मे ख्रिस्ति और मुसलमान मत में जो दोष (आगे) कहे है वे सब आवेंगे जो व्याप्ति बिना लीला लीला कहोगे तो यूं क्यो न माना जाय कि आपके प्रतिपक्षी की लीला है कि आपकी बुद्धि को अन्यथा दिखावे, जिसको तुम नहीं जान सकते. त. द अ. १ गत अवतारादि सूत्र ८१ वाला प्रसग याद कीजिये. अपने स्वरूप से आप उच्च नीच हुवा इसलिये उसमें विषमतादि दोष नहीं, ऐसा मानें तो फेर कर्म, उपासना, बध, मोक्ष मानने की और उपदेश की अपेक्षा नहीं जो प्रभु से जुदा चिंगारी (जीव) होने से जीव की शक्ति तिरोहित हुई हो तो अविद्या शक्ति उसको क्यो मिली. जो कहो कि उसकी अपनी लीला मरजी तो हमारा कथन मंतव्य भी उसकी लीला है, ऐसा मान लो. श्रुति के जो प्रमाण

दिये हैं उनके अर्थ में विवाद है और वोह यहा चर्च्चनीय नहीं है. उपनिषदों का विरोधाभास उपर कहा है.

(शं.) वर्तमान सायंस एक शक्ति की गति से नाना रूप जगत् मानती है तो उपरोक्त के स्वीकारने में क्या दोष? (उ) वोह ईश्वरत्व, भक्ति, वेद, अवतार, पुनर्जन्म, बंध, मोक्ष और जीव शरीर से भिन्न ऐसा नहीं मानती; इसलिये प्रथम आप वैसे मान लो पीछे उत्तर दिया जायगा (एक शक्तिवाद का अवतार ऊपर लिखा गया है); क्योंकि ईश्वर, जीव, बंध, मोक्ष मानने पर वोह थीयरी भग हो जाती है.

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय यथेच्छा है तो मोक्ष, बंध की कैसे व्यवस्था हो सकती है. प्रलय समय जो अमुक्त जीव होगे तो क्या वे भी अविकृत परिणाम होने पर ब्रह्म स्वरूप हो जायेंगे? जो ऐसा हो तो कर्म, उपासना, ज्ञान और पाप पुण्य मानना व्यर्थ रहेगा, और यदि प्रलय में वे रहेंगे और उत्पत्ति काल में उनका यथा कर्म जन्म है तो लीला मात्र मानना लीला मात्र (कथन मात्र) ही है; क्योंकि पूर्व पूर्व के कर्म अनुसार यथा पूर्व सृष्टि है. इस प्रकार जीव जगत के उपादान की सिद्धि वा उत्पत्ति नही ठेरी किंतु अनादि होने से त्रिवाद द्वैत सिद्ध हुवा.

जो पक्ष जगत जीव को समुद्र तरगवत् ब्रह्म का स्वरूप मानके शुद्धाद्वैत मानता है उसमे भी पूर्वोक्त दोष है वे अविकृत परिणाम नही मान सकते. अस्वतंत्रता से बंध मोक्ष की अव्यवस्था रहती है.

जो ऐसा मानें कि सब जीव (सृष्टि आरभ मे जितने हुये वे सब) जब मोक्ष हो जायेंगे तब प्रलय करेगा याने पूर्व रूप में आ जावेगा, तो मोक्ष से अनावृत्ति किसकी, यह न कह सकोगे; क्योंकि पुनः जब सृष्टि रूप (जीव जगत रूप) परिणाम होगा तब वे मुक्त अश भी जन्मधारी होगे. जो कहो कि नहीं तो ब्रह्म का उतना भाग अपरिणामी रहेगा और अत में जब तब सब अंश मुक्त होने पर लीला बंध पडने से ब्रह्म निकम्मा रहेगा और जो जीव, सायुज्य मुक्ति नित्य है तो अविकृत परिणामवाद और आविर्भाव तिरोभाव वाली थीयरी न रहेगी (आगे बांचोगे).

प्रत्यक्षादि को नहीं मान के वेदादि ४ प्रमाण याने शब्द प्रमाण माना है, यह ब्रह्मवादि का विश्वास है. कोई संहिता से इतर उपनिषदादि को प्रमाण रूप नहीं मानता, कोई भागवत को बनावटी ग्रंथ मानता है, कोई वेदादि को प्रमाण नहीं मानता किंतु बायबल वा कुरान को मानता है, कोई इनको नहीं किंतु भगवती सूत्र को प्रमाण मानता है. इस बात का विचार करें तो विश्वास से इतर प्रमाणता सिद्ध न होगी.

अचिद्वाद याद कीजे. अथवा शुद्धाद्वैत की रीति से सब के वाक्य, ब्रह्म वाक्य होने से प्रमाण रूप माननीय होंगे, परतु ब्रह्मवादि ऐसे नही मानता.

जहा रज्जु मे सर्प का भ्रम हो वहा अन्यख्याति की रीति से डोरी ने ही सर्प रूप परिणाम पाया है, ऐसा मानना पडता है, परतु डोरी में सर्प दडादि अनेक भ्रम अनेक व्यक्तिओ को समकाल मे होते है, अतः अन्य ख्याति असिद्ध है. (विशेष ख्याति प्रसग मे)

विशेष वर्णन.

वल्लभ सम्प्रदाय (पुष्टि मार्ग-ब्रह्मवाद)

ब्रह्मवाद और उसका फिलोसोफिकल अपवाद जितना चाहिये उतना ऊपर कहा है, परतु —

१ जो इस सप्रदाय के सिद्धात से नावाकिफ है उनको आक्षेप करते देखा है सो कहा तक ठीक है, इसका भान हो जाय.

२ द्वैतवादियो मे सिद्धात विषे इतनी तकरार नहीं है कि जितनीक उनके उपसिद्धातो मे है, परतु अद्वैतवादियो विषे तो मुख्य सिद्धात मे ही तकरार है. मुसलमानी सूफी मत मे उभयवाद (ब्रह्मवाद, मायावाद है), उनकी शैली भी है (आगे वाचोगे) वेद ससार म यह शैली उपनिषदो विषे सक्षेप रूप से है और शब्द के अर्थों म तकरार है तदगत दूसरी सप्रदाय वालो ने (पुराण-शाक्त वगेरे ने) अभिन्ननिमित्तोपादानवाद माना है, परतु प्रस्थानो (वेदादि) के वाक्यो को ले लेके पूरा सिलसिला जनाया हो, ऐसे जानने मे नही आया है जो कुछ लिखा है तो प्राचीन साख्य की पद्धति की छाया है, परतु शुद्धाद्वैत मे अन्य सिलसिला लिया है, इसलिये जनाना ठीक जाना

३ उपरोक्त वल्लभ सिद्धात का विवेचन ज्ञात हो जाय अर्थात् आतरिय भाव स्पष्ट हो जाय, क्योकि ऊपर (मॉरल) के ओर अतर के भाव मे अंतर भी होता है. *

४ पर धर्म जानने के लिये कितने अभ्यास की जरूरत है, यह समझ में आ जावे

५ सप्रदाय चलाने वास्ते कैसी कैसी चाल चलनी और रचना करनी पडती है इनका आभास हो जाय. §

---

* जो उस मडल में रह के अभ्यास करें तो वक्ष्यम ण लिखित से विशेष रगत ज्ञात हो

§ इस आख्या की रीति प्रसिद्ध है वैरागी बन के, भगवा कर के भी उपदेश करते है.

६. हमको एक संप्रदाय का उदाहरण लिखने से संतोष हो जाय. अर्थात् अन्य स्वामी नारायण, कबीरादिक संप्रदायों के विशेष वर्णन करने की अपेक्षा न रहे.

७. पुष्टि मार्ग के दूषण भूषण जान सकें.

८. और-बहुधा हिंदी वाले इस संप्रदाय के सिद्धांत से सर्वथा अज्ञात हैं, उनको इसका ज्ञान हो. ‡

९. कहीं अविकृत परिणामवाद मान के अद्वैत का मोह दिलाया है, कहीं उसके विरुद्ध जीव और मोक्ष को नित्य मान के लुभाया है और कहीं इसके विरुद्ध आविर्भाव तिरोभाव मान लिया है अर्थात् ऊपर के लेख में स्पष्टभाव नहीं जान पडता इसलिये इसी सिद्धांत को खोल के दूषण भूषण जनाना उचित समझा.

१०. इसलिये *शुद्धाद्वैत मार्तंड ग्रंथ* में से लेके कुछ विशेष लिख के पाठक श्री का कीमती समय लिया जाता है, क्षमा हो.

वल्लभ श्री का पुष्टि मार्ग प्रेममय और जीवन का उत्तम साधन है, भक्ति रस से भरा हुवा है (आगे बांचोगे) परंतु वोह कैसे रूप में आ गया है यह उभय बात आगे जान सकोगे.

शुद्धाद्वैत मार्तंड.

यह ग्रंथ संस्कृत में गोस्वामी श्री गिरधरलालजी का बनाया हुवा है, उस पर श्री रामकृष्ण कृत प्रकाशाख्या गुजराती भाषा में है और सुबोधिनी टीका गुजराती में है, यह तीनों एक बुक में सं. १९९९ में प्रसिद्ध हुये हैं (मुंबई गुजराती प्रिंटिंग प्रेस).

इनसे शुद्धाद्वैत मत का स्पष्ट रूप ज्ञात होता है, इसलिये उसके भावात्मक कोटेशन लिखे हैं.

१. ब्रह्म सर्व धर्मवत्त्व—ब्रह्म सर्व धर्म वाला है (सर्व धर्मोपपत्तेश्च. व्या. सू.) *जो नियत धर्मवाद मानें तो ब्रह्म में इयत्ता की आपत्ति हो. निर्गुण मानें तो उसके* ज्ञान की अप्राप्ति होने से मोक्ष सिद्धांत न रहे, शास्त्र व्यर्थ हो जायं. उपोद्‌घात पेज २. सच्चिदानंद, परब्रह्म, व्यापक, अव्यय, सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, स्वतंत्र और निर्गुण याने प्राकृत धर्म[1] रहित होने से निर्गुण है. उ. २. उसके ज्ञान, शक्ति

‡ दूसरी वार मिला तब शांति हुई.

[1] ब्रह्म से इतर कुछ भी नहीं वोह सब धर्मवाला है, तो यह प्राकृत धर्म आकृति-पदार्थ नवीन कहां से आ गये? यदि नवीन तो आविर्भाव तिरोभाव, यह सिद्धांत न रहा. और जो आविर्भाव रूप तो पूर्व में प्राकृत धर्म भी ब्रह्म के होने से निर्गुण नहीं कहा जायगा विलक्षण न माना जायगा.

और क्रिया स्वभावतः हैं. देश, काल, वस्तु और स्वरूप इन चार परिच्छेद से रहित है, अतः सजातीय विजातीय और स्वगत ३ भेद रहित है. जीव ब्रह्म सजातीय, जड ब्रह्म विजातीय और अंतर्यामी स्वगत[२] है. माया ब्रह्माधीन[३] है. ब्रह्म कैवल्य नहीं परंतु अद्वैत है. सर्व रूप है–सेव्य–ज्ञेय–अविछिन्न–कर्ता–भोक्ता–अंतर्यामी–आधेय–आधार–मुक्त–अक्षर–परपुरुष–परतःपर–परमात्मा–अपहतपाप्मन्–आघ्राणादि रूप–अव्यक्त–अधिष्ठान, सब का अभिन्ननिमित्तोपादान, निराकार (प्राकृत आकृति रहित[१]) साकार–आनंदाकार–रसाकार और सर्व का आवरक है. उपरोक्त सब धर्म जगत् का आविर्भाव हुये पीछे स्पष्ट होते हैं; तथापि वे नित्य[१] सहेज और स्वाभाविक हैं. उ. पेज ३. जगत् जीव सब ब्रह्म–कार्य है, ब्रह्म रूप है तथापि प्रापंचिक पदार्थ से[१] ब्रह्म से विलक्षण हैं. क्रीडा (लीला) करने की इच्छा से आनंदांश तिरोभूत (दबना) होने से ऐश्वर्यादि भगवत धर्म की जडत्वादि रूप से प्रतीति होती है सब जगत् ब्रह्म में[२] आतप्रोत है. सब जगत् अव्यक्त रीति से ब्रह्म में लीन है सो ही लीला की इच्छा से प्रकट करता है; कारण कि स्वतंत्र कर्ता है. ब्रह्मवाद में सत्कार्यवाद है. द्वैत की गंध नहीं है. उक्त ब्रह्म का महात्म्य ज्ञान होने के पीछे उस स्वरूप में स्नेह–भक्ति प्राप्त होती है और उससे (ब्रह्म का कृपा से) मुक्ति होती है श्रवण, मनन और निदिध्यासन रूप यह ३ अंतरंग और शमदमादि बहिरंग साधन द्वारा चित्त शुद्ध होने पर स्वयं आविर्भूत स्वप्रकाश स्वरूप में सायुज्य रूप परमपुरुषार्थ सिद्ध होता है. उपोद्घात पेज ४.

२ विरुद्ध सर्व धर्माश्रयता–[३] 'अपाणिपादोजवनोग्रहीता' इत्यादिक धर्म निषेधक श्रुति और आनंद मकरन्द. [४]इत्यादि श्रुति ब्रह्म में धर्म कथन करती हैं. ब्रह्म निर्धर्मक तथापि सधर्मक है. यथा [५]निराकार (तथापि) साकार, निर्विशेष सविशेष, निर्गुण सगुण, परम अणु महान्, अनंतमूर्ति एक व्यापक ही, कूटस्थ चल, अकर्ता

२ [illegible]

३ [illegible]

४ [illegible]

५ [illegible]

१ [illegible]

कर्ता, अविभक्त विभक्त (केवल स्वेच्छा से विभक्त), अगम्य गम्य, अदृश्य दृश्य, नाना विधि की सृष्टि कर्ता तथापि विषम नहीं,[४] क्रूर कर्म करता है तथापि निर्घृण[४] नहीं, ब्रह्म और तद्धर्म सूर्य-प्रकाशवत अनन्य है. उसमें धर्म स्वाभाविक हैं. उसका स्वरूप विचित्र है. ब्रह्म अनेक रूप तथापि घनीभूत, सैंधववत बाह्याभ्यंतर एक रस, शुद्ध है, बालक है तथापि रसिक मूर्धन्य है, स्ववश (स्वतंत्र) तथापि अन्य [५](भक्त) वश, अभीत तथापि (भक्त पास) भीत, निरपेक्ष (तथापि भक्त पास) सापेक्ष, चतुर तथापि (भक्त पास)[५] महामुग्ध, सर्वज्ञ (तथापि भक्त पास) अज्ञ,[६] आत्माराम तथापि रमण कर्ता पूर्ण काम तथापि (भक्त की कामना पूर्ण करने वास्ते) कामार्त, [६]अदीन तथापि (भक्त पास) दीन,[५] स्वयं प्रकाश तथापि भक्त से अन्यत्र) [५]अप्रकाश, [६]बहिःस्थ तथापि अंतःस्थिति करता है. स्वतंत्र तथापि (भक्त पास) अस्वतंत्र-रसिक वश है. सब मे परंतु अस्पर्श, आधार आधेय है तथापि अविकृत-निर्लेप है. क्रीडार्थ [६]सर्व रूप होता है, यह लीला स्वरूपाभिन्न है,[६] प्रमाण प्रमेय, साधन फल, सब स्वीकीय शरीर सर्व का ज्ञापक तथापि स्पर्श नहीं करता. ब्रह्म के समान और उससे अधिक कोई नही तथापि ब्रह्म सर्व के समान है, मन, वाणी, इंद्रिय का अविषय तथापि उसका आनंद उनका [६]विषय, सब वाद अनवसर पराहत ही है. वादमात्र भ्रांति कल्पित है, [७]कोई भी वाद में ब्रह्म का

---

४ जब कि विषमता निर्घृणता नहीं है तो वदतोव्याघ व (ब्रह्म सर्व धर्मी) यह दोष आ गया. लोक मे यह उभय धर्म देखते हैं ब्रह्म से इतर नहीं, तो यह दो धर्म और उनके धर्मी कहां से आ गये! बात यह है कि पक्षपात, अज्ञान, स्वार्थ वाली कल्पना में दोष आता ही है.

५ यह अन्य यहां से आ गये यूं कहना था कि आप अपने से ही भयभीत, मूढ, दीन, अप्रकाश, भ्रमित, अज्ञानी, नाना मत पंथधारी, वेद पुरान बायबल का कर्ता, गौ भक्षक, माता पत्नी भगनी, मल इ इ.

६ जो ऐसे विशेषण न मिलावे तो पुष्टिमार्ग की प्रवृत्ति ही न हो इन बातों की समीक्षा पुष्टिमार्ग-गुजराती भाषा मे है जिसमें किसी वैष्णव ने ही सच्ची २ खूब पोल खोली है.

७ ब्रह्म विरुद्ध धर्माश्रय यह वाद भी ऐसा (भ्रांत) क्यों न हो, अन्य वादों समान वैसा ब्रह्म भासता हो, ऐसा क्यों न हो? जो यूं है तो वादों अनिश्चितवाद की आपत्ति होगी या तो अनीश्वरवाद गोहिंसकवाद ब्रह्मवाद, समीक्षकवाद श्रुतिनिषेधकवाद और कुरानवाद एवं अन्य वाद भी स्वीकारने होंगे और तदनुसार वर्तन करना होगा; क्योंकि सब ब्रह्म की तरफ से है, परंतु ब्रह्मवादी इस बात को कभी नहीं स्वीकारेगा, क्योंकि उनका सब ब्रह्म, यह मतव्य (संसार मिथ्या) कथन मात्र है. उनके मंडल में जो कोई लागा वगैरे से जुदा पड जावे तो उसके साथ कैसा उलटा व्यवहार होता है, सो उस मंडल से जान सकते हो तथा सयुक्त मत नही है.

स्पर्श नही है तथापि ब्रह्म अपनी इच्छा से सब वादों के अनुकूल[7] हो जाता है. प्रत्येक वाद ब्रह्म का एक एक धर्म प्रतिपादन करता है और ब्रह्म सब वाद को अनुसरता है. [7] इंद्रियों से ब्रह्म अदृश्य है तथापि स्वेच्छा से उनका दृश्य होता है. अवतार दशा में भी ब्रह्म प्रापंचिक धर्म का [6]अंगीकार करता है तथापि अच्युत है. इस प्रकार विरुद्ध सब धर्म वाला है. विशेष क्या अविकृत है तथापि कृपा कर के [8]परिणाम को धारता है पेज ५।६.

३. ब्रह्म सर्व नर्तृत्व-कारण कार्य की अनन्यता से द्वैतापत्ति नहीं. सहेज कारण होने से अपूर्णता और आप्तकाम का अभावत्व नहीं (सू. लोकवत्तु). परिणामी और अविकारी है. आप ही क्रीडा वास्ते एक अनेक रूप होता है. (एकोऽहं भवम्याम) उर्णनाभि, कनककुंडल, कामधेनु, अहिकुंडल कल्पवृक्षवत् रूप रखके लीला करता है. पेज ७. ब्रह्म चेतन और जगत जड, ऐसी भावना न करना. चेतन शरीर मे से अचेतन केश, अचेतन गोबर में से चेतन विच्छुं. ऐसा, ब्रह्म अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है. कारण कार्य उभय में सदंश समान है. जड स्वयं परिणाम नहीं पा सकता. ८. सनियम कार्य होने से स्वभाववाद की अनुमति है. सींग में घास का दूध नहीं होता. चेतन्य की सनिधि से जड में क्रिया मानें तो भी (अनियमित होने का) दोष ही रहा. चेतन्य जो स्वाभाविक प्रेरक होय तो जड का प्रयोजन न रहा. जड चेतन का अंगाअंगी भाव नही, ऐसा माने तो ब्रह्मवाद हो जाय; क्योंकि जड में ज्ञान नही यह दोष है. कारण को असत् नहीं कह सकते. जगत-कार्य उपलब्ध है अतः कार्य भी असत् नहीं; क्योंकि अन हुये की उपलब्धि नहीं होती. स्वप्न वगेरे वत् जगत नहीं है; क्योंकि उससे वैधर्म्य है. जगत में

यदि विरुद्ध धर्माश्रय. ऐसा मत मानें तो जगत् गत सबका मतव्य और कृति (सत्य, असत्य, छल, कपट, अहिंसा, हिंसा, अवतार मूर्ति का निषेध, प्रतिपादन, साहु, चोर, नीति, अनीति धर्म अधर्म, माता, स्त्री यह सब) यथार्थ और समान ही मान लेना पडेगा; क्योंकि प्राकृत और अप्राकृत सब ब्रह्म ही का स्वरूप है. इसका फलितार्थ क्या? अनिश्चित!!

(ब्रह्मवादि) ईश्वर की इच्छा से जो जिस रूप में नियत हुवा सो मानो (उ) इंजील और कुरान को भी मानो, उसके अभावजा, अपुनर्जन्म, जीव ईश्वर कृत और जीव सादि, पशुवध, इन पक्षों का भी स्वीकार कीजिये (ब्र.) ईश्वर का नियत किया हुवा क्या? ईश्वर का बोधरूप ग्रंथ कौनसा, उसका निर्णय करो (उ.) तो फेर व्याप्तिग्रह, सृष्टि नियम युक्ति तथा तर्क को भी बीच में लेना पडेगा अर्थात् सत् सिद्धांत कौनसा और असत्-कल्पित सिद्धांत कौनसा, इसका निर्णय भी व्याप्तिग्रह आदि से ठीक करना पडेगा. ऐसा होने पर ब्रह्मवाद नहीं टिकेगा.

[8] ब्रह्म से इतर अन्य नहीं, सर्व आप ही तो किस पर कृपा! शब्द मात्र.

स्वमवत् अन्यथा भाव नहीं है. मूल में न होय तो जगत की वासना ही न हो. अनादि वासना मानें तो अंध परंपरा प्राप्त हो. ९.

इसलिये ब्रह्म को ही कारण (उपादान—निमित्त) मानना पडा. नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, विभु एवं ब्रह्म में नित्यादि गुण, + निर्गुणवादि को भी मानने पडते हैं. 'तदात्मानं स्वयं अकुरुत' (निर्गुणात्मा का परिणाम बोधक श्रुति). आत्मकृते परिणामात क्षीरवद्धि. अहिकुंडलवत. (व्याससूत्र). निष्कलं निष्क्रियशांतं, (इ. निरवयव बोधक श्रुति). उभय श्रुति वाक्य ग्राह्य हैं; क्योंकि ब्रह्म का महात्म्य अग्राह्य है. तर्क की अप्रतिष्ठा है ब्रह्म निरवयव है तो भी कर्ता (परिणामी) यह विरुद्ध धर्माश्रय भूषण है, दूषण नहीं. देशकालादि की अपेक्षा विना सृष्टि (देशकालादि) करता है. प्रयोजन विना अपनी इच्छा से लीला—क्रीडा करता है. पे १० *

४. ब्रह्मगत वैषम्य नैर्घृण्य दोषपरिहार. ब्रह्म किसी को सुखी किसी को दुःखी करता है यह विषम भाव और प्रलयादि करता है इसलिये निर्घृण है; ऐसी शङ्का नही करना. सूत्रकार (व्यास भगवान) विहित का निषेध न हो इसलिये ब्रह्म को कर्म सापेक्ष बता के[१] और भाष्यकार (वल्लभ श्री) "सआत्मानं स्वयम् अकुरुत" "आत्मकृतेः परिणामात्" आत्म सृष्टि (जीव, कर्म, फल भोक्ता भोग्यादि यह सब आपरूप) इस हेतु से और अग्नि कुमार "लीला करना" इस हेतु से उक्त शङ्का का समाधान करते हैं. ६६, कर्म से बद्ध नहीं है, जड स्वतंत्र फल नही दे सकता, कर्मानुसार फल देना मानने से कर्माधीन ठेरता अर्थात

+ यह नित्यादि गुण नहीं है और न धर्म है किंतु अपेक्षा से व्यवहारार्थ कल्पना है. यथा हमेशे रहने-अभाव न होने से नित्य, असीम-पररहित होने से विभु, निराकार और अमिश्रित होने से शुद्ध कहते हैं नहीं कि उसमे यह गुण या धर्म हैं

* *ब्रह्म अभिन्ननिमित्तोपादान और निरवयव इसकी असमीचीनता त द अ.* २ गत निरवयव, अभेद एक कार्य, संयोग कारण उपादान, उपादेय, निमित्त, विरोध, भेद, ब्रह्म, आधार इन १२ अधिकरण याने सृष्टि नियम द्वारा तथा अ. ३ मे इनका उपयोग बताया है वहां कहा. तथा अ ३ सू ३०८ से ३११ तक ने दरसाई है. अतः *यहां समीक्षा नहीं की है* और शब्द प्रमाण में अर्थों के विवाद हैं शंकर भाष्य, श्री भाष्य, अणुभाष्य में देखो, इनके गीता भाष्य में देखो इसलिये बीच में नहीं लिया है

प्रकृतिवाद, स्वभाववाद, शून्यवाद, मिथ्यावाद, जडचैतन्यवाद वगैर का जो खंडन दरसाया है, उसमें से कितनाक भाग ठीक भी है, बाकी उन पक्षों की अज्ञानता जान पडती है.

१ व्यास सूत्र जो देख के विचारेंगे तो अन्यभाष्य मे जान पडेगा

स्वतंत्रता–सर्वेश्वरत्व–अन्यथा येथेच्छाकर्तृत्व का अभाव होता है, किंतु ईश्वर अनीश्वर हो जाय; इसलिये ईश्वर कारणता ही मानना चाहिये. ११.

स्वमहात्म्यप्रदर्शनार्थ ही ब्रह्म आत्म सृष्टि करता है. [2]जीव, कर्म, फल, सर्व भगवद्रूप ही है. कर्म विना भी वैसे फल देने को समर्थ है, ऐसा किया भी है; क्योंकि अन्यथा कर्ता है. कर्मानुसार फल, यह मर्यादा भी उसकी लीला. बीज वत् कर्म और वर्षावत् भगवान, ऐसी मर्यादा मार्ग में व्यवस्था रच के उसके अनुकूल आप होता है १२. मर्यादा की रक्षा वास्ते वेद किये. भ्रामयन् सर्वभूतानि गीता. धियो यो नः प्रचोदयात् . गायत्री. सारांश भगवान क्रीडार्थ जीवादि की विचित्रता करके प्रयत्न करता है, ऐसा प्रयत्नशील भगवान, जीव पास वैसे कर्म कराके विविधरस भोग करता है. [3]वेद का विधिनिषेध व्यर्थ न हो इसलिये यथा कर्म फल देके लीला सिद्ध करता है. लीला निरस न हो जाय इसलिये आप प्रयत्न करके जीव से प्रयत्न कराके विरुद्ध धर्माश्रयत्व प्रगट करता है १३.

९. ब्रह्म जगत का अनन्यत्व– जगत मिथ्या नहीं, किंतु सत्य है. ब्रह्म के ३ स्वरूप हैं. (१) पर ब्रह्म आधिदैविक. (२) अक्षर ब्रह्म अध्यात्मिक (३) जगत आधिभौतिक. यह तीनों † स्वरूप अनन्य हैं. मृतिका सत्य तो घट भी सत्य घट मृतिका का ही अनन्य रूप हैं. "वाचारंभण विकारो नाम धेयमं मृत्तिकेत्येव सत्या" 'यदिदं किंच तत्सत्यम्" इस प्रकार जगत ब्रह्म सत्य है, उनका अनन्यत्व है.

कार्य कारण का असंबद्धत्व मानें तो मिथ्यात्व प्राप्त हो. वींटे हुये पट और विस्तृत पट का जैसे अनन्यत्व है. वैसे ही आविर्भाव तिरोभाव से ब्रह्म जगत का अनन्यत्व है. जैसे प्राणापान का भेद नहीं, वैसे ब्रह्म जगत का भेद नहीं कह सकते. जैसे मकडी अपनी लाल से जाल करके उसमें क्रीडा करके पीछे जाल को अपने में

---

[2] क्या कोई दूसरा है कि जिसको दिखावे अपना महिमा आप जानता होना चाहिये; क्योंकि सर्वज्ञ मानते हैं अतः कर्मादि कोई योग्य हेतु के विना सांई कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता; क्योंकि उनको कृति स्वयं–अकारण नहीं हो सकती

[3] भक्त के हस्ति द्वारा भक्त का रस भोगना, दुष्ट मनुष्य वा सिंहादि प्राणि द्वारा गौ मांस का रस भोगना; दूसरे मतवादि जो ब्रह्म पर उनके मत का खंडन करा के मन मोद का रस भोगना, इसका मंतव्य प्रतिपादन कराके सबके मनमोद का रस भोगना, आपही पुरुष स्त्री बनाके उन द्वारा रस भोगना. इस बारीक फिलोसोफी को अब नाम का ब्रह्म नहीं चलता, यह ही कहना पड़ेगा क्या!! वाह रे हिंदी प्रज्ञा

† नं १ स्वरूप नंद को ही प्राप्त होता है नं २ स्वरूप भक्ति रहित पुष्टि [illegible] ज्ञानी को प्राप्त होता है नं ३ ब्रह्म का जगत् रूप है पेज १५. यह मंतव्य भक्त को सुखकर बताता है.

लेके अकेली आप ही रहती है और वोह भोक्ता भोग्य रूप हुये भी शुद्ध रहती है, † वेसे ब्रह्म भी अपनी रचना कर के भोक्ता भोग्य हुआ भी शुद्ध रहता है. कनककुंडल सुवर्ण ही, परंतु लोक में कनक, कुंडल नहीं कहा जाता इसी प्रकार भोक्ता और भोग्य ब्रह्म ही है, तो भी उनको एक नहीं कहा जाता. इस प्रकार शुद्धाद्वैत में कारण कार्य का शुद्ध–माया रहित अनन्यत्व है. १९.

६. अक्षर ब्रह्म रूप–भगवान जिस प्रकार कार्य करने की इच्छा करता है उस प्रकार व्यापार करता है. जब ज्ञान द्वारा मोक्ष करना इच्छे तब अपने आधार चरण स्थानी[१] अक्षर ब्रह्म को अक्षर रूप–काल रूप–कर्म रूप–स्वभाव रूप एव चार रूप ग्रहण कराता है. उस में जो प्रकृति पुरुष दो रूप हैं वोही सर्व कारण अक्षर ब्रह्म पुरुषोतम पूर्ण सत्–पूर्ण चित्त और पूर्ण प्रकटानंद है; परंतु अक्षर ब्रह्म (अंश) में कुछ आनंदांश तिरोभाव को पा जाता है, इतना पुरुषोत्तम प्रकटानंद से विलक्षणता है. १९.

मेरे इस प्रकार प्रकट होके लीला करना है, ऐसी पुरुषोत्तम की इच्छा मात्र से अंतःकरण में सत्त्व समुत्थान होता है, उससे आनंदांश तिरोभूत जेसा हो जाता है. पुरुषोत्तम,तो सदा अतिरोहितानंद रूप है. उक्त अक्षर ब्रह्म (अंश) (भगवान की) इच्छा से उक्त सन्मूलभूत तत्त्व से तिरोहितानंद होने पर मुख्य जीव (पुरुष) कहाता है. इससे अक्षर ब्रह्म विलक्षण है.

अक्षर ब्रह्म में इच्छा का प्रविष्ट होने से कार्य व्यापृति से उसके आनंद का तिरोभाव कहाता है, वस्तुतः आनंदमय है; इसलिये पुरुषावतार वोह होता है वा उस में से होता है.

इस पुरुष को जो प्रथम इच्छा हुई सो पिंडित हुये घनीभूत होने से प्रकृति कहाती है. अर्थात् प्रकृति से भी अक्षर भिन्न है. प्रकृति और पुरुष से अक्षर उत्कृष्ट

---

† मकडी का जीव निमित्त और शरीर भाग उपादान है. उस भाग में से तार रचती है मकडी चली जावे वा मर जावे तो भी तार रहते हैं. यदि अनन्यत्व हो तो शरीर से भिन्न तार न होते और मकडी के अभाव हुये तार न रहते. मकडी का शरीर सावयव है. अतः जेसे शरीर में से मल, थूक, नख, बाल, लोही जुदा होते हैं वेसे तार हैं; अतः जीव (मकडी का जीव) शरीर और तार का अनन्यत्व नहीं. तद्वत् ब्रह्म और जगत् का अनन्यत्व नहीं किंतु कनककुंडलवत् जड प्रकृति (उपादान) और जड जगत् का अनन्यत्व है

१ आधेय, आधार का नियामक बताना, क्या यह ज्ञान वा कपोलकल्पना?

है. ब्रह्म, कूटस्थ, निर्विकार, अव्यक्त, इत्यादि से सर्व कारण अक्षर का ग्रहण है. विरुद्ध धर्माश्रय होनेसे अक्षर ब्रह्म पुरुषोत्तम का आधार है[1], प्रतिष्ठित है, परमधाम है. कभी बैकुंठ मे रहा हुआ प्रभु जगताकार मे आविर्भाव के पाता है, तब अक्षर ब्रह्म भी अनेक प्रकार में आविर्भाव के पाता है.[2] हरि की स्फुर्ति से[1] अक्षर ब्रह्म लोकादि रूप से उद्भव होता है.[1] वैकुंठस्थ भगवदीय अक्षरात्मक होने से मुक्त है, परतु अक्षर से पुरुषोत्तम महान है. अतरोपासना से जब अक्षर ब्रह्म अतर्यामी स्वरूप से प्रगट होता है तब ज्ञानी वर्ग उसके (पुरुषोत्तम) चरणार्विंद में प्रवेश करता है. ज्ञान मार्ग मे अक्षर ब्रह्म रूप से ही सेव्य है. उससे परमात्मा पुरुषोत्तम के पाता है. भक्ति मार्ग मे आरभ से ही आनंद है. ज्ञान मार्ग मे अत मे ही आनद है (गीता. पुरुष सूक्त प्रमाण है). हरि पूर्णानद है. अक्षर गणितानद (परिमित) है शुद्धाद्वैत के ज्ञानी अक्षर मे लय होते है. परतु रसमय स्वरूप का आनद-पूर्ण रसास्वाद तो विरल रसिक भक्त के ही प्राप्त होता है मायावाद अतीव निकृष्ट है, तथापि वर्तमान में उसके अनुयायी उसे उत्कृष्ट करने के मथन करते है, यह उनका महामोह है. १७

७–जीव स्वरूप–मे अनेक होऊ, ऐसे रमण करने (खेलनी) की इच्छा करते अपना पूर्णानद तिरोधान कर के[1] जीव स्वरूप ग्रहण करके ब्रह्म क्रीडा करता है, यह ब्रह्मवाद का सिद्धात है

मैं अनेक होऊ, उच्च होऊ, नीच होऊ, ऐसी ब्रह्म ने वीक्षा (भावना) करी, [1]तब उसकी इच्छा मात्र से ब्रह्म मे से ब्रह्मभूत (योग बल से आविर्भूत नही) साकार, सूक्ष्म परिच्छन्न, चित्प्रधान असख्यात अश का प्रथम सृष्टि समय निर्गमन हुवा यह सब जीव भगवद् रूप थे तो भी उच्च नीच भाव की इच्छा कर के निर्गमन हुये यथा अग्नि मे से चिंगारी तद्वत्, ब्रह्म मे से जीव व्युचरण पाते है. स्वरूप भोग और जीव भोग सिद्ध करने की ब्रह्म की इच्छा होते–कृपा होते [2]आनदाश तिरोधान होते ऐश्वर्यादि धर्म भी तिरोभूत हो गये. ऐश्वर्य के तिरोभाव से दीनत्व, पराधीनत्व, वीर्यतिरोभाव से सर्व दु:ख सहन, यश के तिरोभाव से हीनत्व, श्री के तिरोभाव से जन्मादि सर्वापद् विषयत्व, ज्ञान तिरोभाव से

२ परिणामी आधार नहीं हो सकता निरवयव अविकृत परिणामी मान के भः एसी एसी कल्पना करना आकाशगत फूल समान ज्ञान पडती है

१ अपना पूर्णानद गुमा के उच्च, नीच दुःखी होना ऐसी क्रीडा अज्ञानी की या सर्वज्ञ की?

२ किस पर कृपा का? कोइ अन्यथा ही नहीं

देहादि मे अहंबुद्धि और विपरीत ज्ञान और वैराग्य तिरोभाव से विषय शक्ति यह सब जीव मे अविर्भाव[३] हुये. पहिले ४ (ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री के तिरोभाव से जीव के बंध हुवा और दे के तिरोभाव से विपर्य हुवा, बध, जीव स्वरूप के हुवा है ब्रह्मस्वरूपके नही. १८.

८. **जीव नित्य**–विस्फुलिंगवत व्युचरण यह उत्पत्ति नही कहाती है; किंतु पूर्व में है; † सो है.

९. **जीव ज्ञातृत्व**–जीव ज्ञान रूप है, दामावादि मानते हैं. ब्रह्मवाद में जीव ज्ञाता है, ज्ञान उसका धर्म है; जीव धर्मी है, प्रकाशक चैतन्य उसका धर्म है. सूर्य प्रकाशवत धर्म और धर्मी का अभेद है–अनन्यता है. प्राकृत इंद्रियो से जीव अगोचर है. योग से, या जिस दृष्टि से भगवत के दर्शन होते है उस दृष्टि से वा दिव्य ज्ञान दृष्टि से भी जीव के दर्शन होते है.[१]

१०. **जीव परिमाण**-ब्रह्मवाद मे जीव अणु परिमाण है. आनंदांश प्रगट होने पीछे उसका विभुत्व भी [२]प्रगट होता है. शास्त्र में जीव की उत्क्रांति गति आगति कही है, इसलिये अणु ही मानना चाहिये, अविद्या से परिच्छिन्न भासता हो, ऐसा नहीं है. "आनताय कल्पते" श्वे. उ. अणु से विभु हो जाना कहती है.[२] जीव हृदय मे है परतु मणि प्रकाशवत, चपक सुगंधिवत उसका चेतन गुण अधिक देश (तमाम शरीर) मे व्यापता है.[३] जीव शरीर परिमाण नहीं क्योकि उपचयापचय–

---

३ दीनत्व दुःख, हीनत्व, भापद अहंत्व, विपरीत ज्ञान, विषयासक्ति यह सब जो ब्रह्म के अंश जीव में पहिले थे तो उनका आविर्भाव हुवा याने नवीन पैदा न हुये. सारांश जैसे चिंगारी में थोडा दाहकत्व प्रकाशत्व और अग्नि म विशेष होता है वैसे ब्रह्म के स्वरूप में भी दीनत्वादि सिद्ध हुये, जो कहो कि नवीन हुये तो आविर्भाव तिरोभाव वाला सिद्धांत गया एवं ब्रह्म म जीवभाग भी पूर्व में होना चाहिये जो यू हो तो ब्रह्म का अविकृत परिणाम सिद्ध न होगा.

† जब के जीव पूर्व में है और नित्य रहेगा तो अविकृत परिणामवाद न रहा.

१ दर्शन किस को ? ज्ञाता ज्ञेय, द्रष्टा दृश्य जुदा जुदा होते है तो क्या अणु जीव सावयव है याने द्रष्टा भी हो और दृश्य भी हो ! जीव से इतर वहां द्रष्टा है नहीं अत कल्पना मात्र लेख है

२ अणु विभु होना असभव (त. द. अ. २।१७८ से १८३ तक देखो)

३ गुण गुणि से भिन्न देश में नहीं जा सकता (त. द. अ २ सू. ३३२।३३४ देखो). सूर्य और मणि का प्रकाश उनसे अन्य स्वरूप होता है. गंध परमाणु सहित जाती है फूल, कपूर, कस्तुरी नैनै कम कम होते जाते हैं.

सकोच विकास होने से जीव विकारी ठेरता है.[४] आनन्द आविर्भाव हुये विभुत्व प्रगट होगा और विरुद्ध धर्माश्रय होने से जीव मे भी सर्व (अणु विभु होना वगेरे) सभवता है. जीव मे भगवदावेश हुये तमाम भगवद् धर्म उसमें आविर्भाव पावें.[४] यह स्वाभाविक है. जीव स्वतः विभु नही है परंतु भगवत से उस में व्यापकत्व उपपन्न होता है. १९.

११. जीव कर्ता भोक्ता–जीव अकर्ता अभोक्ता है, वा अविद्या से अथवा बुद्धि संबंध से कर्ता भोक्ता है, ऐसा नही है; किंतु सर्व धर्म विशिष्ट ब्रह्म कर्ता है, भोक्ता है तो तदंश जीव भी ब्रह्म सबंध से कर्ता भोक्ता हो ही. * बुद्धि तो कारण मात्र है. जो कर्ता भोक्ता न हो तो शास्त्र निष्फल ठेरेंगे. विपर्यय हो गया है, सामर्थ्य है नहीं अर्थात् दैव योग मे अनिष्ट भी कर बेठता है. जीव में कर्तृत्व सहेज स्वभाव से है. वस्तुतः तो ब्रह्म ही सब कर्ता भोक्ता है. और ब्रह्म के संबंध से जीव में कर्तृत्व है. विविध भोग सिद्धि अर्थ ब्रह्म ही खेल करता है, यह ब्रह्मवाद का मर्म ‡ (गुप्त सार) है. २३.

१२. जीवांशत्व–अविद्या से जीव अशवत भासता है, ऐसा नहीं है किंतु जीव यह ब्रह्म का अंश (भाग–टुकडा) ही है. (शं.) जीव को अंश मानें तो ब्रह्म सावयव टुकडे वाला हो जाय. (उ.) अंशो नाना व्यपदेशात (व्यास सूत्र) पादोऽस्यविश्वा (पु. सूक्त). ममैवांशो जीव (गीता). ब्रह्म सांश वा निरंश है इसका निर्णय लौकिक युक्ति का विषय नहीं है, किंतु वैदिक समधिगम्य है. † वैदिक युक्ति (शब्द की

---

४ जीव में है तो उद्भव होंगे अर्थात् जो जीव प्रथम विभु होगा तो ही विभु बात होगा-विभुत्व का आविर्भाव होगा. सारांश या तो जीव अणु नहीं वा तो विभु नहीं, यह निश्चित है संकोच विकास हुये विना विभु अणु और अणु विभु नहीं हो सकता. अतः ब्रह्मवाद की रीति से भी जीव विकारी नाशवान ठेरा

* जेसे ब्रह्म का कर्तृत्व भोक्तृत्व धर्म है तो दूसरे धर्म क्यो न उद्भव हुये? (उ.) प्रभु की इच्छा. वाह साहेब.

‡ यथा शास्त्र व्यर्थ न हुये. गौ भक्षक मूर्ति निषेधक भी तो ब्रह्म ही है तो अहिंसा प्रतिपादक और मूर्ति पोषक शास्त्र व्यर्थ हुआ वा नहीं?

† किरानी, कुरानी, जेनी, वगेरे भी ऐसा ही कहते हैं कि अभावज भावरूप वगेरे विषय, लौकिक युक्ति से निर्णय नहीं होता किंतु तोरेत, इञ्जील, कुरान, भगवती सूत्र वगेरे जो कहें वैसा मान लो उस अनुसार शंका का समाधान करो किरानी, कुरानी पुनर्जन्म का अभाव और जीव जगत की अभाव से उत्पत्ति मानते हैं. जैन शास्त्र ईश्वर को जगत कर्ता नहीं मानता तो फेर आपके ठेका पर कहांतक विश्वास करें. यानें वयुक्त हेतु नहीं हैं; इसलिये यदि ब्रह्म विभु तरह हो तो परिच्छिन्न-अणु जीव, उसको अंश-टुकडा नहीं मान सकते.

एक-वाक्यतादि) का समाश्रय करते 'विरुद्ध धर्माश्रय' इस सिद्धांत द्वारा सब समाधान हो जाता है. २२.

मायावाद में प्रतिबिंब आभास वाद मानने में अनेक दोष आते हैं + + २३. आनन्दांश तिरोभूत होने से जीव को आभास कहा है (व्यास सूत्र). नहीं कि उसका *अर्थ अलीकत्व या मिथ्यात्व है, और रामानुज के कहे समान हेत्वाभास भी अर्थ नहीं* है. सदंश की स्फुर्ति हो तब और सचिदंश की स्फुरती हो तब जीव को प्रतिबिंब कहते हैं. जैसे ब्राह्मण के जनेउ हों और संध्या वंदनादि रहित हो तो ब्राह्मणाभास कहा जाता है, और कुछ क्रिया करता हो तो ब्राह्मण का प्रतिबिंब कहते हैं वैसे. २४.

१३. जीव ब्रह्माभेद—भाग त्याग लक्षणा से नहीं किंतु अंश अंशी भाव से जीव ब्रह्म का अभेद है. आनन्दांश उद्रेक होने पर जीव भी सच्चिदानन्द रूप होता है—[1] परम सायुज्य कराने में सब भेद—अभेद प्रतिपादक श्रुति का पर्यवसान है. ब्रह्म सत्यं जगतमिथ्या कहने में वेद की प्रवृत्ति नहीं है किंतु "सर्वं खलु इदं ब्रह्म" *जड जीव सब ब्रह्म है*, इस पर वेद है. *तद्गुण सारत्वात (व्यास सूत्र) ब्रह्म के प्रज्ञा* इष्टत्वादि गुण जीव में सार है. भक्ति से आनन्दांश प्रगट होता है. ब्रह्म का सब (जीव जगत) के साथ अभेद है.[1] २५.

१४. जगत सत्यत्व—जगत ब्रह्म की विवर्त्त है, ऐसे मायावादि मानता है. जगत ब्रह्म रूप ब्रह्म से अनन्य है, जगत का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म है, ऐसा ब्रह्मवाद का निष्कर्ष है.

---

१ जब जीव आनंद तिरोहित है उस काल में ब्रह्म-पुरुषोत्तम प्रकटानंद रूप है, इसलिये यह दो हुए याने भेद रहा. मुक्ति में आनंद वाला जीव ब्रह्म-पुरुषोत्तम के साथ सायुज्य हुआ है, इसलिये दोनो सयोगी रहने से भेद ही रहा, क्योंकि जीव को नित्य माना है और मुक्ति को भी नित्य माना है. *जो अंत में सुवर्ण कुण्डलवत् वा जल तरंगवत्—ब्रह्मरूप ही हो* जाय तो जीव और मुक्ति नित्य न रहे. तथा आविर्भाव तिरोभाव का सिद्धांत लुप्त हो जाय, क्योंकि पूर्वोत्तर में जीवत्व की अनुपपत्ति है और सृष्टि लीला के आरंभ में ब्रह्म ही जीव रूप हुआ, ऐसे जीवत्व की उत्पत्ति होती है. शुद्धाद्वैतवादि इधर उधर डावाडोल होता है तो भी अपने मंतव्य को सिद्ध नहीं कर सकता; किंतु उसके सिद्धांत में जीव, ईश्वर, प्रकृति यह तीनो अनादि अनंत और स्वरूप से भेद वाले हैं, यही रहस्य निकलता है. सर्वं ब्रह्म, यह सिद्ध नहीं होता. दो त्रिवादी से इतना अंतर भी मान सकते हैं कि जीव और प्रकृति उस अन्यथा कर्ता के स्वाधीन हैं, अतः उनका यथेच्छा उपयोग करता कराता है. परंतु अंतर मानें तो बंध मोक्ष, साधन और शास्त्रों की व्यवस्था नहीं हो सकती, यह जीव कर्म का जवाबदार नहीं ठरता.

भाव की उपलब्धि होती है, जगत की उपलब्धि है अतः जगत सत्य है. उत्पत्ति के पूर्व जगत अव्याकृत–अव्यक्त था; असत्–अभाव में से सत्–भाव रूप नहीं हो सकता; अतः कारण कार्य का समवाय होने से जगत् सत्य है. तिस आत्मा से आकाश इत्यादि श्रुति आकाशादि का आविर्भाव क्रम कहती है. "सब भूत उससे उत्पन्न, उसमे लय" यह श्रुति भी सत्यत्व और आविर्भाव तिरोभाव की बोधक है. निर्गुण ब्रह्म में से जगत का आविर्भाव होता है– ब्रह्म परिणाम पाता है तो भी ब्रह्म मे विकार नही होता.[1] २८.

ब्रह्म सच्चिदानंद है. रमण करने की इच्छा से चिदानन्दांश का तिरोभाव हुवा अर्थात् ब्रह्म के सदश मे[2] से जगत रूप परिणाम हुआ. जगत भगवद् का कार्य–उपादेय है, प्रकृति मे से उसका आविर्भाव नहीं है, तद्वत परमाणु मे से उसका आरंभ नही है, और विवर्त्त से उसका आभास नहीं है. अदृष्ट (कर्म) स्वभाव और वासना भी जगत का कारण नही है मायाः= विचित्र शक्ति ऐसा मान के वोह निर्गुण ब्रह्म की ही विचित्र शक्ति परम कारण मानें तो कोई दोष नहीं आता.[3] शक्ति शक्तिमान का अभेद होता है.[4] इस प्रकार जगत ब्रह्म स्वरूप ठेरती है. अविद्या मानने की अपेक्षा नही है. ब्रह्म सर्व शक्तिमान विरुद्ध धर्माश्रय है. यह ब्रह्मवाद का उद्‌घोष है. (मायावाद के दोष). २९.

२५. जगत संसार का भेद – जगत् भगवद् कार्य (उपादेय) भगवद् रूप है. परतु ससार अहता ममतात्मक है. सो जीव अविद्या मे[1] कल्पता है. ससार का नाश[2]

---

१ विकार यह व्याप्ति ही विकार को ब्रह्म में वा उससे किसी अन्य में होना बताती है, परतु अन्य तो है नहीं अतः ब्रह्म मे ही विकार है.

२ तीन अंश और २ (सत्–चित्) का परिणाम माना कि ब्रह्म सावयव हो गया.

३ यहा ब्रह्म सावयव परिच्छिन्न और किसी का आधेय–परतंत्र ठेरता है, यह दोष आता है प्रकृति और माया मे ऐसा मानें तो वोह सावयव परिच्छिन्न, आधेय परतंत्र है ही

४ स्वरूप से दो हो तब अभेदवाद का प्रयोग हो, यही द्वैत की आपत्ति करता है व.द.अ. ११३८२ का विवेचन देखो

१ अहंत्व ममत्व और द्वैतज्ञान यह ईश्वर की शक्ति याने अविद्या मे पूर्व से होने चाहियें. जो ऐसा नहीं तो आविर्भाव तिरोभाव का सिद्धांत न रहे अविद्या हरि की शक्ति, इसलिए अहंत्वादि हरि कल्पित होने से वा वोह उनको आविर्भाव करता है, इसलिए हरि प्रति है, जीव प्रति नहीं

२ नाश–अभाव माना तो "आ. तिरो." सिद्धांत गया अत. जगत्वत् ससार का भी आ. ति. होता है, ऐसा मानना होगा. ससार वृत्ति जब ही होगी कि हरि का जो देहादिरूप उसका जीव के साथ सबध हो. दोनो हरि रूप होने से संसार वृत्ति भी हरी रूप ठेरी.

ज्ञान से होता है. जगत् तो रहता ही है. जगत् का लय तो आत्म रमणेच्छा से भगवान करे तब ही हो सकता है. द्वैत अविद्या का कार्य नहीं है किंतु द्वैतज्ञान[2] अविद्या का कार्य है. इस अविद्या से ब्रह्म नहीं परंतु जीव ही बद्ध होता है अविद्या से जीव पेदा नहीं होता; परंतु भगवद् इच्छा वश उसका चिंगारी समान व्युच्चरण होता है. अविद्या से उसको बंध[3] होता है, तब संसारी कहाता है, वस्तुतः संसारी नहीं है, अविद्या के अध्यास[4] से जीव को ऐसी अभिमति होती है.

जगत् का उपादान कारण ब्रह्म है और निमित्त कारण ब्रह्म की शक्ति है;[4] परंतु संसार अनुपादान[5] है, उसका निमित्त कारण अविद्या है मुक्ति समय संसार का लय हो जाता है. मैं कर्ता भोक्ता इत्यादि जीवका ज्ञान भ्रम[6] है. पंच पर्वात्मक अविद्या जीव को लगती है. स्वरूपाज्ञान, देहाध्यास, इंद्रियाध्यास, प्राणाध्यास, और अंतःकरणाध्यास यह ५ पर्व है

ब्रह्म की माया शक्ति से विद्या और अविद्या का निर्माण होता है. मोक्ष[6] भी एक सर्ग ही है, इस वास्ते विद्या भी विनिर्माण कही. स्वरूप लाभ आत्मा को विद्या से होता है, अविद्या से देह लाभ होता है. विद्या अविद्या दोनों हरि की शक्ति है. भगवदेच्छा से दोनों का आविर्भाव तिरोभाव होते, दोनों भगवान को सर्व

३ बंध भी पूर्व में था अब उसका आविर्भाव हुआ ऐसा कहना पडेगा नहीं तो स्वसिद्धांत त्याग होगा

४ ब्रह्मरूपोपादान, शक्तिवश हो गया; क्योंकि उपादान को निमित्ताधीन होना पडता है; परंतु शक्ति शक्तिमान के तावे हुआ करती है; अतः यह मंतव्य ठीक नहीं

५ अनुपादान-अभाव व कुछ नहीं होता जो मानो तो ब्रह्मवाद गया; ईसराइली मत आ जायगा. अहत्वादि वृत्ति, यह जीव वा अंतःकरण का परिणाम होना चाहिये यह हो (याने ब्रह्म ही) उसका उपादान है इसका नाश मानें तो ब्रह्म का नाश होगा; इसलिये आविर्भाव मानना होगा. जीव यूं है तो संसार घटादिवत् है, अनित्य-नाशवान नहीं ठेरो.

६ अध्यास-भ्रम, विद्या अविद्या, इन उभय की निवृत्ति, संसार की निवृत्ति, मोक्ष की उत्पत्ति, जीवन मुक्ति का होना, यह सब बातें नवीन हुई एसा नहीं बनता। कि तु इनका अस्तित्व पूर्व में ही होना चाहिये. अर्थात् उनका आविर्भाव हुआ है (बंध का तो तिरोभाव और मोक्ष का आविर्भाव हुआ है). ऐसा मानना पडेगा. जो ऐसा न मानें, नवीन होना मानें तो आ तिरो वाला स्वसिद्धांत छोडना पडेगा तथा अविद्या विद्या यह उभय हरि की शक्ति हैं तो तदुत्पन्न भ्रम-संसार-अध्यास बंध और मोक्ष भी उसमें होने चाहियें, क्योंकि कारण कार्य का अभेद है. इस प्रकार जीव हमेशा बंध और हमेशा मुक्त होता रहे, ऐसा मानना होगा जो फेर बंध न हो तो आ. तिरो. यह सिद्धांत न रहेगा. इस रीति से बंध मोक्ष की अव्यवस्था रहती है.

सामर्थ्य रूप शक्ति से निर्मित होती हैं. याने दोनों माया शक्ति के आधीन हैं. भक्ति से दोनों निवृत्त[१] होती हैं. वैराग्य, सांख्य, योग, तप और प्रेम यह पंच पर्वात्मक विद्या है, इससे अविद्या का नाश होके संसार की निवृत्ति[१] होती है. जीवन मुक्ति होती है.[१] देहादि कहीं नहीं जाते परंतु उनका अध्यास[१] निवृत्त होता है. सुख दुःखात्मक संसार है जगत् नहीं. ३२.

१६–अविकृत परिणामवाद. मूलकारण, नाना कार्य, रूप हो तो भी उसमे कोई विकृति न हो, सर्वथा कार्य कारण रूप ही रहे, इसको **अविकृत परिणाम**[१] कहते हैं. यथा उर्णनाभि, कनककुंडल, अहिकुंडल, कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिंतामणि के उदाहरण हैं ३२.

सच्चिदानंद निर्गुण ब्रह्म ही जगद् रूप से परिणाम पाता है, तो भी उसमें विकृति नहीं होती. मायावाद–भ्रमवाद–विवर्त्तवाद में उपादान माया है. और ब्रह्मवाद में उपादान ब्रह्म है. वेद, गीता, व्याससूत्र और समाधि भाषा (भागवतगत) इन चार प्रस्थानों में तो अविकृत परिणामवाद–ब्रह्मवाद ही है. शंकराचार्य ने भी

१ परमाणुवाद, प्रकृतिवाद, मायावाद वा कुछ भी मानो सब में अविकृत परिणामवाद ही है अर्थात् जगत् रूप हुये पीछे मूल रूप ही हो रहता है इस प्रकार सावयव परिणामी ब्रह्म का परिणाम बन सकता है जो विकृत परिणाम भी है तो वोह भी ब्रह्म का ही हुवा यथा दूध दही. इसलिये निरवयव एक ब्रह्म का परिणाम नहीं किंतु सावयव रूप ब्रह्म–प्रकृति का परिणाम सिद्ध हुवा. यथा मकडी के शरीर का तार, माटी के परमाणु समूह का घट सावयव कनक पिंड से कुंडलादि. सावयव समूह सर्प का कुंडल तंतु समूह पट. क्षीर दही. लोहा गोली, छुरी. सारांश जितने उदाहरण दिये हैं वे सावयव के दिये हैं. एक अविमिश्रित तत्त्व नाना रूप अविकृत परिणाम वाला, ऐसा उदाहरण नहीं दे सका याने वैसी व्याप्ति ही नहीं मिलती. आकाश वा परमाणु ऐसा नहीं होता. सत्व, रज, तम मिश्रित परमाणु परिणाम पाते हैं, जैसे कि बीज द्वारा वृक्ष में पाते हैं निदान जैसे समष्टिवादि (अचिद्वादि) समूह पुंज का परिणाम जगत् ऐसा कह के समष्टि समूह रूप ईश्वर सत्ता के व्यवस्था करता है ऐसे उदाहरण है.

दूध में, जल में गरमी ठंडी के मिलने से उनका दही बर्फ रूप होता है वे स्वयं नहीं होते. देवयोगी से इतर उपादान नहीं ईश्वर वगेरे में से पदार्थ बनते हैं, अतः विषम दृष्टांत है कल्पवृक्ष वगेरे में से उपादान बिना यथेच्छा पदार्थ मिलना दंतकथा–बनावटी बातें हैं. और मान भी लेवें तो उनमे भिन्न उपादान में से बन के उपलब्धि मानी जायगी–वे स्वयं परिणाम को नहीं पाते. संक्षेप में कोई व्याप्ति वा उदाहरण ऐसा नहीं मिलता कि जिससे एक अनेक, एक में से अनेक रूप होना हो मान लिया जाय (यहां त. द अ २ सू १९८ से २०६ तक अभेदाधिकरण और सू १७४ से १८३ तक निरवयवाधिकरण देखो). नाना प्रकार के नाम रूप का आविर्भाव तिरोभाव ही नानात्व और द्वैत को सिद्ध कर देता है किसी के विश्वास से एक और निरवयव के नाना विरोधी परिणाम मान बैठना यह दूसरी बात है.

अपने भाष्य में इसी का उपन्यास किया है माया कर के कारण, कार्य रूप मात्र भासता है, यह विवर्त्तवाद का तात्पर्य है. ३३.

ब्रह्म स्वेच्छा से स्वरूप में से जगत प्रकट करता है, विस्तारता है और पुनः स्वरूप में लय कर लेता है ब्रह्म धर्मी है; जगत रूप धर्म स्वरूप से परिणाम पाता है. मृतिका में से घटादि प्रकट होते है. उसी में लय होते है तथापि मृतिका में विकार नहीं होता. ऐसे ही ब्रह्म में से जगत् स्वरूप का आविर्भाव तिरोभाव होता है तो भी ब्रह्म में विकार[२] नहीं होता. कनक कुंडलादि रूप हुये भी कनक है तद्वत् ब्रह्म जगत जैसे साप कुडल अभिन्न सकुचित विस्तृत पट अभिन्न तद्वत् ब्रह्म जगत अभिन्न. जैसे पाषाण का हीरा कूडी उच्च नीच तो भी पाषाण की हानी नहीं एव नाना उच्च नीच रूप जगत से ब्रह्म की हानी नही दूध अन्य साधन के विना दही रूप हो जाता है, एव ब्रह्म स्वयं जगत रूप हो जाता है जैसे देव-योगी अनेक अभिष्ट पदार्थ करे परतु उससे हानी नहीं होती, ऐसे ब्रह्म अनेक रूप जगत करे उसकी हानी नहीं होती. जैसे कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिंतामणि, मत्र, तैजस दिव्य पदार्थों में से अनेक पदार्थ परिणाम को पाते है, तो भी उनमें विकृति नहीं होती, ऐसे ही ब्रह्म अपनी इच्छा से अनेक रूप परिणाम पा के खेलता है तो भी उसमे विकार नहीं होता ब्रह्म कर्ता, अकर्ता, अन्यथा कर्ता है

ब्रह्म से इतर कुछ (अविद्या-माया अज्ञानादि) भी माना तो द्वैतापत्ति हो जायगी[१] यहा अणुवाद, आरभवाद, प्रकृतिवाद-प्रधानवाद, स्वभाववाद, जड-चेतनवाद, ईश्वरनिमित्तवाद. असतवाद-मायावाद (अविद्या-भ्रमवाद) का निषेध किया है. ३५ से ३९.

ब्रह्म का अर्थ वृद्धि पाना. यह उसका स्वाभाविक धर्म है. ३९

कूटस्थ और परिणामत्व यह उभय विरोधीधर्म ब्रह्म में है उससे चकित न होना. विरुद्ध धर्माश्रय के दृष्टांत न्यायादि में से-स्पर्श शीतोष्णाश्रय, गध सुगध दुर्गंध, रस मधुर-अम्ल-लवण-कटु-कसाय तिक्त, रूप शुक्ल-नील-पीत-रक्त-

२ यहा आविर्भाव का उत्पत्ति (न था और परिणाम रूप हुवा) और तिरोभाव का नाश (जो परिणाम हुवा उसका अभाव) अर्थ लेता है

२ कहीं व्यक्त अव्यक्त भाव करता है. वैसी फिलोसोफी

१ जब कि ऊपर कहे अनुमार अविद्या-ससार भ्रम और प्राकृत गुण आकृति को ब्रह्म से अन्य मानते हुये भी ब्रह्मवाद द्वैत नहीं मानता; तो शकर के मायावाद-विवर्त्तवाद को द्वैत नही कह सकता, और कहता है यह पक्ष और ब्रह्मवाद है.

हरित–कपिश, यह विरुद्ध धर्माश्रय युक्त प्रतिपादन किये जाते हैं. सत्व, रज, तमस् रूप विरुद्ध धर्माश्रययुक्त प्रकृति सांख्याचार्य मानता है. जडत्व और फलदातृत्व ऐसे विरुद्ध धर्माश्रययुक्त कर्म का मीमांसक मंडन करते हैं. सत् असत मे विरुद्ध[२] धर्म का स्थापन विवर्तवादि करता है. संगमरस और विप्रलंभरस इन दोनों विरुद्ध धर्म का आश्रय एक शृंगार रस है[३] इसी प्रकार कूटस्थ और परिणामित्व उभय विरुद्ध धर्म का आश्रय निगम (वेद) प्रतिपाद्य कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम् समर्थ अद्वितीय निर्गुण ब्रह्म है. ४०.

आगे ब्रह्मवाद सिद्धि में वेद, उपनिषद, गीता, व्याससूत्र, और पुराणों के प्रमाण दिये हैं उनके अर्थ दूसरे दूसरी प्रकार के करते हैं, इसलिये विवादित होने से हमने यहां उद्धृत नहीं किये. ४१ से ४८ तक.

व्याससूत्र में एक सूत्र भी माया कारणवाद नहीं कहता. "मायामात्रंतु कार्त्स्न्येन" इस सूत्र में माया शब्द है. परंतु स्वप्नसृष्टि विषयक है. जगत् विषयक नहीं है, ऐसा मायावादि कहता है. ४८

---

१ स्पर्शादि–यह सब उदाहरण विषम हैं–सावयव के हैं क्योंकि शीत, उष्ण, गंध, रस, रूप यह नाना प्रकार के जुदा जुदा विषय हैं धर्माश्रयवादि के अनुकूल नहीं आंख भिन्न भिन्न अतः विरुद्ध रंगों को देखे जिह्वा भिन्न भिन्न रसों का ग्रहण करे, प्रकाश अनेक विरोधियों को प्रकाशे, आकाश में अन्य अनेक विरोधी रहें तो क्या आंख, जिह्वा, प्रकाश और आकाश विरुद्ध धर्म वाले हुए? कभी नहीं. ऐसे यह दृष्टांत हैं शीतोष्ण त्वचा में स्पर्श पाते हैं सुगंध दुर्गंध पदार्थों की अवस्था है तद्वत् मधुरादि रस रंगों के जुदा जुदा प्रकार के अणु हैं. एक के धर्म नहीं. प्रकृति स्वयं कोई वस्तु नहीं–तीन पदार्थ के समूह का नाम प्रकृति है अनीश्वरवादि कर्म को फलदाता नहीं मानता किंतु मक्खी मधुवत् वासनावश जीव खिंचाते हैं, ऐसा मानता है

२ सत् से विरुद्ध असत् और असत् से विरुद्ध सत् ऐसे माया को नहीं मानते किंतु विवर्तवादि इनसे विलक्षण मानता है. इस प्रकार उक्त दृष्टांत विरुद्ध धर्माश्रय के नहीं हैं (अ. वि. में इनका अन्य प्रसंग में वर्णन है यहां तो संक्षेप में कहा है) किंतु बालकों के खिलौने रूप हैं विद्वान उनको नहीं स्वीकार सकता पर एक हो, अमिश्रित हो, निरवयव हो, कूटस्थ हो और परिणामी हो तथा विरुद्ध धर्म वाला हो ऐसे पदार्थ को अव्याप्ति है और असिद्धि है विशेष क्या कहें यातो ब्रह्मवाद जो जड चेतन सत्ता नहीं मानते किंतु पदार्थों की अवस्था मानते हैं उन अनिर्वचनीयवादियों के समष्टिवाद जैसा है. व तो ऐसा ब्रह्म है ही नहीं, कल्पना मात्र है. यातो त्रिवाद (ईश्वर, जीव और नाना समुदायात्मक प्रकृति यह तीन) जैसा है

३ रस या प्रेम. किसी सावयव वस्तु (अंतःकरण–चित्त) की द्रवत्व रूप अवस्था है जैसे राग, द्वेष, सुख, दुःख यह अंतःकरण की असमकालीन अवस्था है वैसे रस या प्रेम भी अवस्था है; क्योंकि दृश्य-भोग्य और किसी के वैद्य-वंद्य है न्यूनाधिक होती है. किसी वस्तु के संबंध से होती और किसी के संबंध से नहीं होती है और कभी होती, कभी नहीं होती तथा

१७. आविर्भाव तिरोभाव–मायावाद में अध्यारोपापवाद का आश्रय लिया है. ब्रह्मवाद में आविर्भाव तिरोभाव भगवत की शक्ति है उससे सब सिद्ध हो जाता है. अविकृत निर्गुण ब्रह्म इन अपनी दोनों शक्ति करके जीव जगत् सर्व रूप में लीला करता है.

पहिले घट न था (असत् था) उसकी उत्पत्ति (असत् की उत्पत्ति) असंभव और उत्पत्ति धर्म मानें तो अनवस्था प्राप्त हो; क्योंकि धर्म किसी धर्मी के आश्रित होता है. ऐसे धर्मी की अनवस्था हो; क्योंकि उत्पत्ति की उत्पत्तियें मानना अनवस्था है. इस वास्ते एक सनातन धर्मी (ब्रह्म) मानना बस है. प्रागभाव मानने की भी जरूरत नहीं है; क्योंकि उसमें व्यापार नहीं होता और आविर्भाव मे उसका अनुभव हो जाता है. तिरोभाव से इतर प्रध्वंस मानना भी अघटित है; पदार्थ के तिरोभाव को अत्यंताभाव मान रहे हैं. जो युक्ति अत्यंताभाव की सिद्धि मे लगाते हैं वे ही तिरोभाव शक्ति की सिद्धि में लगा लेना अनुकूल है.

भगवान की मूल इच्छा से घट में पट का, पट में घट का तिरोभाव है, इसलिये अन्योऽन्याभाव मानने की जरूरत नहीं है. ९०.

१८. पर से वैलक्षण्य सूचक कितनीक बातें. ब्रह्मवाद सिद्धांत जिन बातों में दूसरों से जुदा पडता है वे बातें विस्तार से जनाई हैं. यहां मायावाद, भास्करमत, भिक्षुमत, रामानुजमत, शैवमत, माध्वमत, निंबार्कमत, शाक्तमत इन मतों के मंतव्य

कभी जिसके संबंध से होती है उसी के संबंध से नहीं होती. यदि रस वा प्रेम तत्त्व वस्तु होती तो ऐसा नहीं होता. ब्रह्म को रस रूप वा प्रिय स्वरूप वा प्रेमा स्वरूप कहा है वोह भोग्य दृष्टि मे नहीं कहा है किंतु अपना मुख्य स्वरूप तथा जीवन है और अपने में आप प्रिय रूप है इस दृष्टि से कहा है. शृंगार रस को जो विरोधी दो रस का आश्रय कहा है सो भी चित्त की असमकालीन अवस्था है शृंगार रस भी अवस्था है, यह सब सावयव-मध्यम चित्त की असमकालीन अवस्था हैं. विरुद्ध धर्माश्रय मे दो विरोधी धर्म एक अनिमित तत्त्व में माने जाते हैं हां वे सजातीय विजातीय सावयव में माने भी जा सकते हैं, परंतु निरवयव मे नहीं मान सकते अत उक्त दृष्टांत विरुद्ध धर्माश्रय, इस सिद्धांत का साधक नहीं हो सकता (अ.) पश्चिम की शारीरिक विद्या कहती है कि शब्द स्पर्श रूप रस और गंधादि ब्रेमेटर (मगज) के परिणाम अवस्था, इम्प्रेशन हैं अर्थात् मगज विरुद्ध धर्माश्रयवाला (मिष्ट कटु, शीतोष्ण शीतोष्णादि) रूप होता है (उ) एक ही मगज संसार के तमाम रूप धर सके, ऐसा नहीं हो सकता; क्योंकि अल्प और लिमिटेड है. तथापि वैसा मान लेवे तो भी वोह नाना प्रकार के सजातीय विजातीय परमाणुओं के रसायणीय संयोगजन्य है, अतः उसके नाना परिणाम-अवस्था होना संभवता है, परंतु ब्रह्म वैसा-सावयव नहीं, अतः उसमें विरुद्ध धर्माश्रयत्व नहीं बनता.

और ब्रह्मवाद का मंतव्य दरसाके उनका भेद जनाया है. हम सब नहीं लिख के उनमें से शुद्धाद्वैत का जो स्पष्टीकरण करते हैं वे ही वाक्य वा वोह आशय लिखेंगे—

मायावाद से अन्यथा—मायावाद में ६ प्रमाण. ब्रह्मवाद में स्वतः प्रमाण नित्य[1] शब्द ही प्रमाण है. स्वतः प्रमाण सांग वेद, श्रीकृष्ण वाक्य, मीमांसा द्वय और श्री समाधि भाषा. वेद ब्रह्म का निःश्वसित. वेद ब्रह्मरूप ब्रह्म से अभिन्न है.

प्रत्यक्षादि प्रमाण वस्तुतः जीव के सत्त्व गुणोद्रेक पर ही आधार रखता है. जो ऐसा न हुआ हो तो राजस तामस भाव के आविर्भाव में तो प्रमाण में भी भ्रम बुद्धि और अप्रमाण में प्रमाबुद्धि भी हो जाती है; ऐसा न होता.

ब्रह्म और ब्रह्म के धर्म सब ब्रह्म ही हैं. ब्रह्मवाद में परा अपरा विद्या का भेद नहीं है. ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या यह भेदवाद ब्रह्मवाद में नहीं हैं. तिरोहितानंद ब्रह्मस्वरूप सोही जीव है सो जीव नित्य[2] है. ब्रह्म ही जब जीव स्वरूप धारण करके क्रीड़ा करता है, तब विभु परिमाण भी तिरोहित करके आप ही अणु परिमाण[3] होता है. पुनः आनन्दाविष्कार होने पर विभु—अपरिच्छिन्न हो जाता है. ब्रह्म स्वेच्छा से अनेक जीवरूप धारण करता है. वस्तु अवस्तु कल्पने से मायावाद द्वैतवाद है. ब्रह्मवाद में पूर्ण ज्ञानी योगियों को अख्याति[4] है और अन्यों को अन्य ख्याति है. कर्म, उपासना, ज्ञान और भक्ति यह साधन-क्रम है पहले तीनों भक्ति के अंग हैं. अविद्या से जीव बद्ध हुआ. भगवान ने उसकी मुक्ति के वास्ते ब्रह्मरूप वेद प्रकट किये ब्रह्म रूप साधन से[5] ब्रह्मरूप जीव.[5] ब्रह्मरूप परम फल[5] की प्राप्ति करता है यह ब्रह्मवाद का सिद्धांत है.

---

१ यदि शब्द नित्य तो अविकृत परिणामवाद गया. तथा आविर्भाव तिरो. सिद्धांत न रहा

२ नित्य तिरोहित तो आवि. तिरो. पक्ष गया. यदि मुक्ति में आनंद का आविर्भाव और वोह-मुक्त सायुज्य जीव नित्य तो भी यह सिद्धांत गया

३ अणु विभु होने की व्याप्ति और सिद्धि की अनुपपत्ति है

४ यहां भ्रम प्रमा वाली ख्याति नहीं किंतु ब्रह्म अगोचर है योगियों को ही ज्ञात होता है. ऐसा भाव है (आगे श्लोक है)

५ क्या उत्तम सिद्धांत है, विश्वासी रसीले के सिवाय इस सिद्धांत को कौन स्वीकारे? कोई न माने. क्या कुछ भी नहीं था तब ब्रह्म को अपने आप उत्पन्न किया और अंत में अपना नाश कर लेगा? जवाब में ना मिलेगी. क्यों! अभाव से भाव नहीं होता, अपनी आप उत्पत्ति नहीं कर सकता, नित्य का नाश नहीं होता तो क्या साधन साधक और साध्य, कर्ता

ब्रह्म लीला करता है–खेलता है.[६] आत्यंतिक दुःख निवृत्ति पूर्वक परमानंद प्राप्ति (पुरुषोत्तम प्राप्ति) यह मोक्ष है. और वोह पराश्रय है, सायुज्य है, मायावाद जैसा कैवल्य नहीं है. अविद्या में से विद्या नहीं हो सकती, यह मायावाद में दोष है. ब्रह्मवाद में जीव के आनन्द का अविर्भाव यह मोक्ष है. मायावादि और ब्रह्मवादि इन उभय पक्ष को अद्वैत ही ग्राह्य है. उभय की शैलि में भेद है; ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या यह मायावादि अडाता है. "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" यह ब्रह्मवादि कहता है. माया, इच्छा यह सब ब्रह्म की शक्ति, ऐसा मानें ते उभय पक्षी का समाधान सुलभ है; परंतु ऐसा मानें ते ब्रह्म शक्ति मत सधर्मक हो जाय, द्वैतापत्ति हो जाय, ऐसी भीति से मायावादि नहीं स्वीकारता. माया–अविद्या करके ही ब्रह्म में शक्ति जान पडती है, सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमतत्व परमार्थतः नहीं, ऐसा मायावाद का मर्म है. परंतु सत, असत् वा अनिर्वचनीय–कैसी भी मायामानी के अद्वैत सिद्ध नहीं हो सकती. मायावादि अमुक श्रुति उपजीवक. अमुक उपजीव्य. एवं ज्ञेय, उपास्य, सगुण, निर्गुण, पर इत्यादि भेद कर डालता है. (इत्यादि शंकर मत और शंकर के साथ हरीफाई लिखी है और अयोग्य शब्द भी लिख डालता है. ‡)

भास्करमत से अन्यथा–कुछ अंश में द्वैत, किसी अंश में अद्वैत, इसको द्वैताद्वैत कहते हैं. धर्म धर्मी का अनन्य भाव हुये ऐच्छिक द्वैत और कारणावस्था में अद्वैत, ऐसा ब्रह्मवाद में द्वैताद्वैत है. मध्यमाधिकारी को उपयोगी है.

और कर्म द्रष्टा दृश्य, और उपासक उपास्य एक हो सकते हैं? कभी नहीं. जो विरुद्ध धर्माश्रय मान के ऐसा माने ते उपरोक्त बातें भी मान लो. अर्थात् अपनी उत्पत्ति, अनुपादान अपने जैसे की उत्पत्ति, अपने विरोधी की उत्पत्ति और उनका नाश भी क्यों न करे. क्योंकि सद् असद्. नित्यानित्य, विरुद्ध अविरुद्ध, अपना रक्षक, अपना घातक, साकार निराकार, निरवयव परिणामी इत्यादि विरुद्ध धर्म वाला है.

६ शायद आपका उक्त मंतव्य कथन बालकों का खेल हो ते हमको उपेक्षा कर्तव्य है.

‡ मायावादि टीकाकार तत्वसूत्री की टीका में ब्रह्मवाद के विरुद्ध धर्माश्रय का खंडन करता है. उसका परिश्रम सिद्ध न होने से उसका प्रत्यक्ष नास्तिकय में पर्यवसान भी होता है. बौद्धादि मत का उत्थान किये पीछे उस समय की संस्था में शंकराचार्य बौद्ध सदृश मत उपादान करें इसमें, ऐतिहासिक स्वभावता है पृष्ट ५७.

शोधक–जो राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकर और वल्लभ क्या किंतु हरएक व्यक्ति को ब्रह्मस्वरूप मानते हैं, और ब्रह्म ही जीव से कराता है, ऐसी लीला मानते हैं उस हिंदू प्रजा का वदतोव्याघात दर्शक यह लेख नमूना है. हा! संप्रदायी धर्म द्वेष!

भास्कराचार्य का द्वैताद्वैत ऐच्छिक नहीं; किंतु औपाधिक है—मायावाद जैसा है. निंबार्कमत में द्वैत वास्तविक है. अद्वैत औपचारिक है. १७.

भिक्षुमत से अन्यथा—विज्ञान भिक्षुक का मत शंकराचार्य जैसा है. इस मत में ब्रह्म समवायी वा निमित्तकारण नहीं है, जिसके आश्रय से उपादान कारण कार्य रूप परिणाम को पावे उसको अधिष्ठान कारण कहते हैं. उपादान माया ब्रह्म से अभिन्न तदाश्रित रहती है; अतः ब्रह्माधिष्ठान कारण है. जीव नित्य भिन्न, व्यापक और अंश तथा नाना हैं. ब्रह्म जीव का अविभाग रूप भेद है. तदनुयायी अविभाग का प्रतियोगी सो अंश, अविभाग का अनुयोगी सो अंशी ऐसा लक्षण करते हैं. शरीर केश, पिता पुत्र, समूह इन तीन दृष्टांत में वैसा अंशांशी भाव घटाते हैं. लय समय मे जीव, ब्रह्म से अनन्य होता है, सर्गकाल में ब्रह्म में से विषयभासन स्वरूप ग्रहण करके पिता से पुत्रवत प्रकट होता है, इसलिये जीव अंश कहाता है. (शरीर केशवत मानें तो जीव को प्रकृति का विकार मानना होगा).

परंतु ब्रह्मवाद में वैसा नहीं है; किंतु ब्रह्म विरुद्ध धर्माश्रय अविकृत परिणामी अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है, और जीव जगत् ब्रह्मरूप हैं, ऐसा माना है. १८.

रामानुज से अन्यथा—रामानुज मत में चिद और जड का हमेशे भेद है ब्रह्मवाद में हमेशा अभेद है. * अखंड अद्वैत है विशिष्टाद्वैत में प्रत्यक्षादि सब प्रमाण का स्वीकार है ब्रह्मवाद में इतने ही प्रमाण ऐसे नहीं हैं. वेदानुकूल सब प्रमाण तदेतर सब अप्रमाण. पूर्ण ज्ञानावस्था मे तो सब प्रमाण हैं. विशिष्टाद्वैत में जीव हमेशा अणु रहता है, ब्रह्मवाद में आनन्द अभिव्यक्त हुये अणु जीव व्यापक हो जाता है. ऐच्छिक आविर्भाव तिरोभाव रामानुज के मत में नहीं है. विशिष्टाद्वैत में सालोक्यादि ४ मोक्ष स्वीकारी है. ब्रह्मवाद में एक सायुज्य का ही अंगीकार है; दूसरे तमाम प्रकार के मोक्ष स्वरूप का संबंध स्वरूप स्वरूप ही माने है. जगत् और संसार का भेद विशिष्टाद्वैत में नहीं है, ब्रह्मवाद में है रामानुज को अख्याति (ख्याति), ब्रह्मवाद में अविद्दशा में अन्यथाख्याति और पूर्ण ज्ञानी योगी की दृष्टि मे अख्याति है. इत्यादि अनेक भेद हैं. १०।११.

* ब्रह्म में भी भिन्न भेद (पुरुषोत्तम और जीव का भेद) माना है.

शैव मत से अन्यथा—इस मत में कुछ विशिष्टाद्वैत और कहीं द्वैत का अनुकरण है. हरि के बदले परमेश्वर, पशुपति वगेरे शब्द के प्रयोग हैं. ब्रह्मवाद के साथ उसका विभ्रम नहीं होता. ९१.

माध्व मत से वैलक्षण्य—माध्व नित्य भेद मानता है, ब्रह्मवाद अभेद मानता है. माध्व की *अन्यथा ख्याति* है. ब्रह्मवादी प्रायः *अन्य ख्याति* स्वीकारता है और पूर्ण ज्ञानावस्था में वा पूर्ण योगिनी अवस्था में.

अनागतमतीतंच वर्तमानमतींद्रियम् ।
सन्निकृष्टं व्यवहितं सम्यक्पश्यन्ति योगिनः ॥

इस श्लोक अनुसार अख्याति † स्वीकारता है.

शुद्ध अखंड अद्वैत ऐसा अनुभव हुये पीछे भी ज्ञानी–भक्त हुये. महात्म्यज्ञान पूर्वक सुदृढ सबसे अधिक स्नेह रखने मे कृतार्थता मानना यह ब्रह्मवाद का साम्राज्य है. द्वैत पूर्वक भक्ति तो अज्ञान भी करते हैं. परंतु ज्ञानी भक्त का उत्कर्ष है, इसलिये भगवदाभिन्न–अनन्य मान के भगवत सेवा करते हैं; यह शुद्धाद्वैत की विजय पताका है + ९२.

वैष्णवमत के सब आचार्य वेदादि प्रमाण से उपरांत श्रीमदभागवत, महाभारत, रामायण, नारदपंचरात्र, शांडिल्य सूत्र, नारद सूत्र वगेरे वैष्णव आगम को भी प्रमाण मानते हैं. रामनुजाचार्य रामायण को और मध्वाचार्य महाभारत को वेद तुल्य मानते हैं और आचार्य श्री (वल्लभाचार्य) श्रीमदभागवत शास्त्र को चौथा प्रस्थान * मानते हैं. श्री कृष्णचन्द्र जी की सेवा करते हैं. ९३

निम्बार्कमत से वैलक्षण्यता स्पष्ट है. वोह द्वैताद्वैत वादि माध्व सदृश है.

---

† यहा भ्रम प्रसग का ख्यातिवाद नहीं किंतु योगी से इतर को ब्रह्म की अख्याति है, यह भाव ज्ञात पडता है

+ यातो मायावादियो के अविद्या लेस (अहं ब्रह्म, ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या ऐसे ज्ञान हुए पीछे शरीर भोग और जगत् दर्शन) के समान भेद–अपूर्ण अनन्यत्व हो, यातो मैं नहीं हू ऐसे दंभ के समान कोई अन्यथा वृत्ति हो तब ऐसा हो सकता है. यातो लोक प्रवृत्ति अर्थात उपर से दिखाने वास्ते मान सकते है अन्यथा अर्थात् विभुस्वरूप आनंद आविर्भाव हुए सेवक सेव्य भाव की अनुत्पत्ति है. जो ऐसा न मानें तो अविकृत परिणाम छोडना पडेगा

* वेदोपनिषद्, व्याससूत्र गीता और भागवत यह चार.

शाक्तमत से वैलक्षण्य–शक्तिमत में ब्रह्म उपादान कारण और शक्ति निमित्त कारण है. जो शक्ति को उपादान मानें तो विकृति प्राप्त हो जाय. सार यह कि ब्रह्म को अभिन्न निमित्तोपादान नहीं माना है. ब्रह्मवाद में तो एक ब्रह्म ही अभिन्न निमित्तोपादान और जगत् जीव ब्रह्म रूप माना है. १३.

१८–भक्तिसाम्राज्य–जैसे ब्रह्म के आध्यात्मिकादि ३ स्वरूप तद्वत् रमणार्थ ३ मार्ग हैं. (१) कर्म आधिभौतिक, (२) ज्ञान आध्यात्मिक और (३) भक्ति आधिदैविक मार्ग है. कर्म से जगत् में आवृत्ति रूप विषयानंद फल है.[1] ज्ञान से उपरोक्त अक्षर ब्रह्म में पुनरावृत्ति रहित लय फल होता है. (अनावृत्ति शब्दात्). विभुति उपासक, उपास्य के लोक में स्थिति करता है. जब शिवादि उपास्य का ब्रह्म में लय होता है तब उसके साथ उपासक भी क्रमशः लय पाता है. भक्तिमार्ग में उन लय पाये हुये ज्ञानवान जीवों का भी पुनरुद्धरण होके पुरुषोत्तम (आधिदैविक ब्रह्म) स्वरूप का सहवास होके उसके कृष्णानंद का परिपूर्ण पान होता है. अक्षर ब्रह्म, पुरुषोत्तम का परम धाम है, अहं ब्रह्मास्मि ऐसे शुद्धाद्वैती ज्ञानी अक्षर ब्रह्म की भावना करता है–भगवदीय भगवत् कृत सब लीला साक्षात् स्वतः कर लेता है. १४.

हरि सब करेगा, ऐसे चित्त में प्रसन्नता रखना, यह कर्म मार्गीयनिष्ठा. लोक वार्ताविलग्न पैर्य, तीनो दुःख का सहन करना, सर्वत्र शुद्ध अद्वैत (सर्व वासुदेव) का अनुभव करना, यह उत्तम ज्ञान मार्गीय निष्ठा है. सर्व लोक में श्री हरि का ही शरण रखना अनन्याश्रय रखके श्री कृष्ण का प्रसाद प्राप्त करना यह उत्तमोत्तम भक्तिमार्गीय निष्ठा है.

ज्ञान मार्ग में अक्षर ब्रह्म ही पराकाष्ठा है, इसलिये शुद्धाद्वैतीय शुष्क ज्ञानी का[2] अक्षर ब्रह्म में ही लय होता है, सायुज्य नहीं होता.[2] शुद्धाद्वैतीय ज्ञानी का जो अक्षर ब्रह्म में लय होना भी भक्ति के बिना नहीं हो सकता.[2] ऐश्वर्यादि षड्धर्मयुक्त भगवान का एक धर्म ज्ञान है. इस ज्ञान द्वारा कर्म

१ [illegible]

२ [illegible]

वाले जिज्ञासु को भक्ति वगेरे साधन[२] करा के अक्षर ब्रह्म मे सायुज्य मुक्ति प्रदान करता है. ब्रह्मानन्द में प्रवेश कराता है. ६६.

जीव कृत अध्यास निवृत्त हो जाता है, भगवत्कृत अध्यास की निवृत्ति भगवान की इच्छा विना नहीं होती.[३] ६७.

(ऊपर जितना सायुज्य मुक्ति का विषय कहा उस संबंध मे व्यास सूत्र और उपनिषदों के वाक्य देके यथेच्छा अर्थ भी किये हैं).

अक्षरानन्द से उपरोक्त पुरुषोत्मानन्द अगणित हैं. पुरुषोत्तम की ऐसी स्निग्ध भक्ति के सामने शुष्क ब्रह्मवाद का अखंड अद्वैत ज्ञान अल्प हो यह सहज ही है. दूसरों की तो बात ही क्या करना. ७०.

अक्षर ब्रह्म मे प्रलय फल है भक्ति मे भिन्न स्थिति रहने रसपान फल है. आत्मा सहित ग्यारा इंद्रिय[१] (मन, वगेरे) बाह्य परिकारादि भी आनन्द रस भावावगाह करता है. काम, क्रोध, लोभ, मोहादि जो ज्ञान होने के बाधक हैं वे भक्ति मे साधक हो जाते हैं, फल प्राप्ति मे उपयोगी हो जाते हैं. भक्ति तिरोधान को नहीं पाती[२] ७१.

पुरुषोत्तम के दर्शन मे द्वैत भी नहीं आता. "सदा पश्यन्ति सूरयः ७२.

अक्षर ब्रह्म का ज्ञान होने पीछे भी जो प्रभु कृपा करके भक्ति प्रदान करे तो भक्ति करने से पुरुषोत्तम के स्वरूप का ज्ञान होके उसकी लीला मे प्रवेश हो.[१]

श्री हरि के गुण (गान) ऐसे हैं कि उसके अभ्यासी को किसी ग्रंथ पढने की आवश्यकता नहीं होती. तो भी जिसमें भगवान के गुण गाये हो उसका अभ्यास करके निष्कारण भक्ति करता है. उसीमे सालोक्यादि चतुर्विध मुक्ति प्रभु दे देता है.[२] ६९.

---

१ जब ऐसा समझ गये कि ईश्वर आप ही जीव बन के क्रीडा करता है तो फेर पुरुष प्रयत्न की क्या जरूरत अपना अध्यास वोह आप दूर करेगा यथेच्छा करके वाता रसास्वाद मे रमण हो तो भी क्या गौ भक्षक रक्षक आप ही है.

१ इंद्रियों के विषय मर्यादि का वर्णन नहीं किया है

२ मुक्त भक्त का तिरोभाव नहीं तो आविर्भाव तिरोभाव का सिद्धांत लुप्त हो गया.

१ अनुयायी ब्रह्मज्ञान (शंकर मत) में न जाय वा ब्रह्मज्ञान से उपेक्षा हो, ऐसी रचना जान पडती है

२ अनुयायी यदि दूसरों के ग्रंथ बाचेगा, तो हमारा भक्त न रहेगा, इस बात की पक्षकदी मालूम होती है.

व्यास सूत्र में मुक्ति विषे प्राकृत शरीर का निषेध है, अप्राकृत-लीला योग्य शरीर का निषेध नहीं है. मुक्त (सायुज्य वाले) को अलौकिक-ब्रह्म संबंधी देहादिक भगवान की इच्छा से प्राप्त होते हैं-इस पीछे प्रभु अपना स्वरूप प्रकट करता है भक्त मन चक्षु से उसे अनुभवता है, आनन्दित होता है. ७०. पीछे ऐसे कोई प्रचुर भाव का स्जनन होता है कि सब इंद्रियो सहित उस स्वरूप के साथ संभाषण, आश्लेष आदि सगम रस भोग करने की[३] इच्छा होती है. कभी बंसरी नाद मात्र से भी प्रभु के साथ संभाषणादि संयोग रसोपभोग[३] करने की इच्छा होती है. पीछे ऐसे हो जायगा. ऐसा विचार कर वाणी मन के साथ समागम करता है (कहता है); इस प्रकार समागम हुये वाणी भगवद् रससंपन्न हो जाती है. उक्त संभाषणादि इच्छा पूर्ण होती है[३] इसी प्रकार इंद्रिय मन की संगति करके भगवद् रति संपादन करता है.[३]

लीला मे प्रवेश हुये पीछे अलौकिक शरीर हो जाता है, उस पीछे उस अलौकिक शरीर मे भगवत लीला रस का सम्यक् भोग करता है. अशन करता है. अनुभव करता है.[४] ७०.

१९-पुष्टि शिखर-वर्तमान मे विद्वानो को भी वल्लभ आचार्य श्री और उनके धर्म का ज्ञान नहीं है, ऐसा जान पडता है; क्योंकि आक्षेप करते है. उनको चाहिये कि मुंबई मे गटुलालजी की लाइब्रेरी (पुस्तकालय) की झांकी करें इ.+++. तो उनके धर्म का ज्ञान हो जायगा. इ. दूसरा यह आक्षेप है कि वल्लभाचार्य ने प्राचीन वैष्णव मार्ग को विषयात्मक बना दिया, इस आक्षेप का कारण पुष्टि शब्द का अज्ञान है. इस विषे कुछ लिखते है—

अणु भाष्य ३।३।२९. ४।१।१३. भगवान के अनुग्रह मार्ग को पोषण वा पुष्टि मार्ग कहा है. उपरोक्त पंचपर्वा विद्या बताई है. वस्त्रहरण लीला

---

३ इस परिमाण वाली रचना ही ब्रह्मवाद का उद्देश जान पडता है, इसलिए इस विषय की जितनी चर्चा की जाय उतनी ही थोडी है, परन्तु जो रसीले भोग विलासी हैं व या रासमंडल की गोपियें इस सायुज्य मुक्ति के रस-रहस्य का ममर्म समझ सकते हैं अर्थात् जो समझें वे ही विवेचन कर सकेंगे. अन्यथा कल्पना मात्र जान पडता है, क्योंकि व्याप्ति और सृष्टि नियम से विरुद्ध है तथा इस मन्तव्य में अनेक विगार है.

४ पाठकों! यहां तक सायुज्य मुक्ति और उसके क्रम को जाना. अब आगे अपूर्व समाधान बांचोगे

में ९ वर्ष तक की कन्या थी राम लीला जब करी तब श्रीकृष्ण की उमर ११ साल की थी. निष्कामता थी. लौकिक शृंगार के आचार्य श्री रसाभास मात्र कहते हैं — इसे आगमापायी अनित्य बताते हैं. रसात्मक प्रभु के अलौकिक शृंगार रसोपभोग मे लौकिक विषय की वासना मात्र निवृत्त हो जाती है. (रसः वै सः श्रुति) ७३ से ७८ तक

वैदिक मार्ग ब्रह्म की वाणी मे से और पुष्टि मार्ग श्री अंग मे से आविर्भूत हुवा है. मर्यादा मार्ग मे वेदोक्त फल और वेदादि शब्द, फल प्राप्ति में प्रमाण है. पुष्टि मार्ग मे श्री अंग में मे फल और भगवान स्वय वा बंसरी का नाद प्रमाण है मर्यादा में ब्रह्म और पुष्टि मार्ग में पुरुषोत्तम प्रमेय है. मर्यादा मार्ग में ज्ञान भक्ति साधन है. पुष्टिमार्ग में विप्रयोग रसात्मक सर्वात्म भाव प्रदान साधन है मर्यादा में प्रायः सायुज्य फल है और यहा (पुष्टि मार्ग में) साक्षात भगवान का अधरामृत * फल है.

पुष्टिमार्ग में सेवात्मक अनुराग सन्यास साधन (श्रवणादि नहीं). देह रक्षार्थ भिक्षाटन भी नहीं, वेदांत श्रवण भी नहीं, कोई भी धर्म का निरूपण नहीं, मोक्ष की भी इच्छा नहीं, किंतु श्रीहरि की ही इच्छा है, यहा सन्यास में श्रीकृष्ण भी प्रतिबंधक नहीं हो सकते. तपात्मक विप्रयोग क्लेश मात्र की भावना है (प्रणव की नहो) यह सन्यास अनुग्रह से साध्य है, जीव कृति से साध्य नहीं है. ७९।८०.

मार्ग निष्ठता से क्रमशः श्रीकृष्ण का सबंध और परमानन्द मे प्रवेश इसका नाम सायुज्य मुक्ति है; सो जीव कृत मुक्ति है. स्वतः श्रीकृष्ण जीव मे प्रवेश करे सो सद्योमुक्ति कहाती है. इसमें कोई साधन नहीं है. अत्यंत कृपा से *स्वप्रेम बल से श्रीकृष्ण जिस क्षण मे जीव विषे प्रवेश करे उसी क्षण में मुक्ति हो* जाती है. पूर्व मार्ग में जीव को भगवत्प्राप्ति होती है, पुष्टि मार्ग मे भगवान को जीव की प्राप्ति होती है !!! [१] ८०.

(१) पादसेवन श्रवण कीर्तनादि रूप भक्ति नारदादि को सुलभ है, शीतल है. (२) मुखारविंद की भक्ति दुर्लभ है, कारण कि श्रीकृष्ण के अधरामृत का सेवन है,

* इसी भावना न रसीले पुरुष स्त्रियों को मोहित कर लिया हो. ऐसा अनुमान कर सकते हैं

१ भागवत के दशम स्कंध की इस भक्ति ने कैसा परिणाम निकाला है सो लोक में प्रसिद्ध है

गोप सीमंतिनी के भाव भावना रूप विरहानुभवात्मक मो प्रचुर उत्कट भक्ति है,[१] इसका दान हरि आप प्रेम बल से करता है. पहिली भक्ति वेदोक्त है, दूसरी स्वतंत्र है. ८०. इसमें फलकी अपेक्षा नहीं है. मर्यादामार्गीय पुरुषोत्तम (धर्म) से भी पुष्टिमार्गीय पुरुषोत्तम (धर्म) विलक्षण है. मर्यादा पुरुषोत्तम दक्षिणांग है, पुष्ट पुरुषोत्तम वामांग है. मर्यादा पुरुषोत्तम निहित है–उसका स्थल वैकुंठ है, पुष्टि मार्गीय पुरुषोत्तम साक्षात् और उसका स्थान गोकुल है. इस पुरुषोत्तम के अधिकारी स्वतंत्र रसिक भक्त होते हैं. इ. ८१.

पुष्टिमार्ग अनुग्रह मात्र से साध्य है;[२] प्रमाण मार्ग से विलक्षण है. सब धर्म छोड के मेरी शरण आ.

पुष्टिमार्ग. जिसमें धर्म स्वरूप की नहीं किंतु धर्मी स्वरूप की निष्ठा. १. जिसके अधिकार में योग्यतादि का विचार नहीं[३] प्रभु कृत विलंब नहीं. २. जिसमें लोक[४] वेद की अपेक्षा वा भीति नहीं (निस्त्रै गुण्यः भवार्जुनः). ३. जिसको निस्पृही भगवान वरण करता है, ४. जहां आविर्भाव की भी अपेक्षा, नहीं है. ५. जिसमें मोक्ष विरुद्ध बंध, संबंध, सम्यक् बंध फल है, जहा साधन भी संबंध है. ६. जहां तत्संबंधी में तद्भाव, तद्विरोधी में विरुद्धभाव, और उदासीन में सम भाव है. ७. जिसमें देह विषे अहंत्व ममत्व भावना नहीं. ८. जिसमें सेव्य के भजन की उपकृति नहीं है किंतु भाव मात्र[८] का ही पोषण है. ९. और जिसमें

२ व्रजस्थ गोकुल में देह त्याग हुवा कि मोक्ष होना मान लो तो यहां पशु पक्षी और गौ भक्षक और चांडाल भी रहते हैं. वे भी परमधाम को पहुंच गये? शायद काशी 'मरण मुक्ति' इस वाक्य समान मंडल में शामिल होने वास्ते रोचक वाक्य हो

३ तो फेर समर्पण, कंठी और त्यागा क्यों?

४ कंठी तोडने वाले और त्यागा न देने वाले के साथ अन्यथा व्यवहार क्यों होता है? परन्तु यह कथन शब्द मात्र है, इस वास्ते.

५ इस बंध को कौन इच्छा करेगा. यह तो स्वामी दयानंद की आवृत्ति वाली मुक्ति से बढ कर परतन्त्रता कहा.

७ ऐसे उपदेश और ऐसी भावना ही दुर्भाग्य से नास्तिक बनाती है और विरोध भाव उत्पन्न कराती है

८ १ जैसे व्यभिचार मिथ्या रस भाव का जो फल आता, ऐसा देखते हैं, वैसे ही शुद्ध वादकी विना के भावमात्र का अनिष्ट परिणाम देखने में आता है. जब हम अब तक लोक मंडल पर दृष्टि डाल के देखें तो यह (उपरोक्त नोट) भावार्थ रूप पुष्टिमार्ग का भाव ठीक नहीं जान पडता. विशेष भावार्थ में देखो.

भगवत् संबंधी कृति होने पर भी दीनता उद्भवार्थ नित्य पश्चातापात्मक क्लेश रहा करता है. १०. (इ.) उस मार्ग को पुष्टिमार्ग कहते हैं. ८३.

पुष्टि मार्ग के मिश्रित ३ और शुद्ध ऐसे ४ प्रकार हैं. ३. पुष्टि विमिश्रित पुष्टभक्त सर्वज्ञ[1] होता है. पुष्टि–मर्यादा रहित मार्ग का उपदेश भी नहीं हो सकता; क्योंकि उसकी विरह और संगम यह दो ही दशा रहती हैं. ८४.

प्रभु के दर्शन विना पल, युग समान लगती है. प्रभु भी काम भोग समर्पण करने की क्रीडा[2] करता है. भक्त को अनेक ++ प्रदान करता है. +++ ८५. ऐसे विविध प्रकार से १२ अंग रमण करते हैं. अष्टविध आनंद पान करता है. "आत्मरतिः आत्मक्रीडाः आत्ममिथुनः" पुरुषोत्तम के साथ रति, क्रीडा और मिथुन[2] करता है. विविधरसभोग रसिक पुरुषोत्तम के साथ यह रास मंडल मंडन भगवदीय सर्व काम भोग[2] करता है. इस अलौकिक शृंगार रस मे भक्त कृत अमद काम भोग[2] मुख्य है, प्रभु कृत गौण है "सः अश्नुते सर्वान् कामान् +" ८७.

पूर्व निरूपित ब्रह्म सर्व धर्मत्व, विरुद्ध धर्माश्रय, ब्रह्म सर्व कर्तृत्वादि का भी अब **दर्शन करालो.** उ. पे. ८८. मगनलाल गणपतराम शास्त्री. बी. ए. लेट फेलो वडोदरा कालेज. इन शास्त्री जी महाराज का में उपकार मानता हूं; क्योंकि पुष्टि मार्ग के बोधक हैं (संपादक).

शुद्धाद्वैत मार्तंड की टीका.

प्रकाश, विद्वन्मण्डन, कारिका सहित गुजराती.

उपर उपोदघात में शुद्धाद्वैत मत का रहस्य स्पष्ट किया है. वैसा ही इस टीका में आशय है. अतः उपरोक्त विषय मे जो नवीन लिखने योग्य उन विषयों के भाषात्मक कोटेशन टांकते हैं —

---

१ जैसे ब्रह्म बनने को भी सर्वज्ञ हो जाना यह बड़ी परीक्षा है. परंतु ऐसा आज तक कोई न हुवा वैसे पुष्टिमार्ग के अनुयायी भक्त को भी यह बड़ी परीक्षा है परंतु इस मार्ग में आज तक कोई ऐसा नहीं हुआ इतना ही नहीं किंतु गोकुल में हुए भी श्रीकृष्ण गोपाल के भोग में दूध देने वाली गायों का वध-गौवध भी बंद न कर सका. पुरुषोत्तमधाम में लीला करेंगे, यहां तो गौवध का दर्शन करेंगे. वाहरे लीला!

२ साधारण जन मंडल किस प्रकार के और किस शैली से उपदेश का पात्र है, यह नहीं जान के ऐसे ऐसे शब्द का प्रयोग है, जिसका नतीजा अच्छा नहीं निकला. जब कि काईगत भावना ही करना था तो प्राकृत शरीर रहित-विदेह भक्त के सब काम पूर्ण हो जाते हैं इतना ही लिखना बस था.

ब्रह्म सधर्म. अस्ति, भाति और प्रिय मानने से ब्रह्म मे सधर्मपना हुवा. पेज. ४. अपाणिपादो जवनो गृहीता. इत्यादि धर्म बोधक वाक्य हैं. १२. तदेजति तन्नेजति. यजु. अ, ४०. सगुण निर्गुण बोधक वाक्य.[1] १४.

जीव नवीन पेदा नही हुये किंतु चिंगारी वत ब्रह्म में से निकले हैं. जो उत्पन्न होना मानें तो नाशवान हो. श्रुति अमर कहती हे. पे. १९ जीव अणु है. गंध मणिप्रकाश, रूप, सूर्य प्रकाश, चंदन, इन समान शरीर में उसकी चेतना (चेतन गुण) है. इत्यादि लिखा है.[2] १६।१८.

प्रकाश और अग्नि जुदा है. उष्णता और प्रकाश अग्नि का धर्म है. इसी प्रकार चैतन्य से जीव जुदा है और चैतन्य उसका[3] गुण-धर्म हैं.

बृहदारण्यक श्रुति — एका एकी न रमते सद्वितीय मैच्छन् स हैतावानास. यद्वैतत्सुकृतम्. ब्रह्म को रमण करनेकी इच्छा हुई तव अकेला नहीं रमता, इसलिये दूसरे सहित रमने की इच्छा की तव इतना जगत रूप हुवा. (इतना उसका सुकृत है). दूसरी श्रुति में कहता है तदात्मानं स्वयन कुरुत. आप अपने आत्मा को जगत रूप किया. पे. २१.

साक्षी चेतो केवलो निर्गुणश्च. श्वे. उ. यहां साक्षी और निर्गुण यह विरुद्ध धर्माश्रयत्व है. एकोवशी निष्क्रियाणाम् ++ बहुधाय; करोति. श्वे. अरे अयमात्मा- ऽनुच्छित्ति धर्मा. वृ. एवं ब्रह्म सधर्म है. विरुद्ध धर्माश्रय है.

आविर्भाव तिरोभाव-आ=आविर्भाव. ति=तिरोभाव.[1] पदार्थ अनित्य नहीं हैं. घटपटादि सव आकार स्वरूप से आविर्भाव होने की जो भगवान की इच्छा उससे आविर्भूत होते हैं. मृतिका में घट न रहा हुवा हो तो उसमें से घट का प्रादु- र्भाव न हो. २३. मृतिका वगेरे भगवद रूप हैं उसमें घट वगेरे कार्य भगवद्रूप हैं. हरि

१ मायावादि-निर्गुणवादि भी ब्रह्म की सत्ता और स्फुर्ण देना मानते हैं (अतः ब्रह्म सधर्म सत्त्वक सगुण हुवा).

२ यह सब उदाहरन विषम और अयुक्त हैं. त. द. अ. ७।३३२।३३४ देखो.

३ जीव चैतन्य नहीं तो जड हुवा. शक्ति गुण गुणी यदि स्वरूपतः कुछ हो तो वे जड वा चैतन्य होने चाहिये, यह बडा बारीक सवाल है, और इसका निर्णय हुए ब्रह्म चिन्मात्र- ज्ञान स्वरूप ठेरेगा; नहीं तो जड चेतनात्मक-मिश्रित मानना होगा.

१ घटादि पूर्व मे नहीं थे, हरि तद्रूप हुवा यानें नवीन रूप हुवा. वा हरि के संकल्प में उस अनुसार नवीन रूप हुवा वा अव्यक्त रूप मे थे सो हरि की इच्छा से व्यक्त हुये. इसके निर्णय का परिणाम आगे वांचोगे.

स्वइच्छा से घटादि रूप होता है. प्रलय में जगद्रूप कार्य ब्रह्म रूप होके रहता है. यह कार्य का तिरोभाव जानो (नाश नहीं). २४. खंडन मंडन २८, तक.

अनुभव के विषय में जो आने योग्य हो उसको **आविर्भाव** जो अनुभव के विषय में न आने योग्य हो उसको **तिरोभाव** कहते हैं. अर्थात अनुभव विषयपने की जो योग्यता सो आविर्भाव और अनुभव के अविषयपने की जो योग्यता सो **तिरोभाव** कहाता है. यह दोनों योग्यता अपने धर्मी पदार्थ का धर्म है. २९. घटादि हो गये, वा होने वाले हैं, इस व्यवहार मे वर्तमान विषे घटादि की सत्ता स्वीकारना ही चाहिये. इस प्रकार पदार्थ का प्रागभाव और प्रध्वंस असिद्ध रहता है. लौकिक प्रत्यक्ष के विषय में जितने पदार्थ हैं वे और लौकिक प्रत्यक्षता यह सब घट के अनुसार नित्य ही हैं. ऐततात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यम् (यह सब ब्रह्म है सो सत्य है). पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्चभाव्यम्. पुरुषसूक्त. जो दिखाता है सो सर्व जगत, जो हो गया ओर जो होना है सो सब पुरुष रूप है.[२] ३२. जैसे पृथ्वी रूप ब्रह्म में गंधात्मक ब्रह्म है दूसरे में नहीं, इसी प्रकार अन्यत्र भी व्यवहार में जान लेना विरोध वा दोष नहीं आता. ३३.

हरि की इच्छा अनुसार उस देश उस काल में पदार्थों की प्रतीति (आविर्भाव) अप्रतीति (तिरोभाव) होती है. इसलिये घटादि नित्य हैं तो भी योगी अयोगी को प्रतीत होते वा नहीं होते. हरि की इच्छा फल जानने के पूर्व नहीं जानी जा सकती. अमुक काल अमुक देश में अमुक कार्य, ऐसी रीति से हो ऐसी हरि की इच्छा में आवे सो आविर्भाव और अमुक काल मे अमुक देश मे वैसी रीत से वोह काम न हो ऐसी हरि की इच्छा मे आवे सो तिरोभाव, ऐसा कहना भी योग्य है.[१] परस्पर मे एक दूसरे का अनुभव न होने की इच्छा हरि को हो सो प्रलय काल, उसमे उलटी इच्छा सृष्टिकाल कहाता है. ३६. वृक्ष तथा शरीर आदिक की वृद्धि होती है तहां प्रथम के रूप का तिरोभाव हो के दूसरे रूप का आविर्भाव होता है.[२] दूध के रूप का तिरोभाव हो के दही के रूप का आविर्भाव होता है.[३] पेज ३७. (यहां प्रागभावादि का विवाद और शंका समाधान है. ३८ से ४१).

---

२ अन्य धर्म-मत-पक्ष-यों भक्षक-यों रक्षक सब ब्रह्म?

१ इच्छा से पूर्व विद्यमान दिखना आविर्भाव और इच्छा से कार्य होना यह न था और उत्पन्न कार्य हुवा, यह विरोध है, अतः एक पक्ष होना चाहिये.

२ क्षण क्षण में वृद्धि रूपांतर होने से क्षणिकवाद होगा.

३ जुदा जुदा टेर

तिरोभाव=तिरः (अप्रकट) भावयति (करता है). ४१.

ईश्वरेच्छा से पटादिक में घटादिक का, घटादिक में पटादिक का तिरोभाव है.[४] ४२.

यह जगत जहां, जिस कर के, जिसमे, जिसका, जिस वास्ते, जो जो, जिस रीति से और जब हो सो साक्षात प्रधानपुरुषेश्वर भगवान ही है (भागवत). ब्रह्म विरुद्ध धर्माश्रय होने से सर्व शक्तिमान है. ४३.

जो यह अत्यंत सूक्ष्म रूप आत्मा जगत का कारण रूप है, सो रूप ही यह दृश्य सर्व जगत है, सो सत्य है, सो आत्मा है और श्वेतकेतु! सो तूं है (छां. तत्त्वमसि). ४६.

(शं.) कारण (उपादान) वत कार्य. ब्रह्म जगत का साधर्म्य नहीं. अतः जगत् का कारण अज्ञान है (शुक्ति रजतवत ब्रह्म मे जगत है). ब्रह्म निष्कल, निष्क्रिय, शांत, निरवद्य (अनिद्रा), निरंजन है. अथात आदेशो नेतिनेति. तेसा जगत नहीं. अज्ञान (मैं नहीं जानता ऐसे अनुभव[५]) का नाम ही माया और अविद्या है. सो माया विचित्र रूप मे परिणाम पावे ऐसे स्वभाव वाली है उससे यह जगत दिखाता है.

(उ) नही. अनेक श्रुतिओं में ब्रह्म को साकार और कर्ता कहा है. इ. (इस प्रकार पृ. ९० से ७१ तक वादविवाद करके मायावाद का खंडन और ब्रह्मवाद का मंडन किया है. उसमें से कोई कोई कोटेशन नीचे लिखे हैं).

नेति का अर्थ—लौकिक प्रकार वाला ब्रह्म नहीं. ९२. ब्रह्म, मनवाणी का विषय नहीं (तैत्तरीय). ब्रह्म का आनन्द जो जानता हो वोह किसी से भय नहीं पाता. (तै.) याने विषय होना कहा है. ९३. आकाश का प्रतिबिंब होना और दीखना मानोगे तो निरूप ब्रह्म भी जनाता है ऐसा मानना होगा. ब्रह्मवाद मान लेना पडेगा. ९६. जल गत अंब वृक्ष (प्रतीति मात्र है) के ज्ञान हुये पीछे उसमें प्रवृत्ति नहीं होती, एवं वेदादि में प्रवृत्ति नहीं होगी; क्योंकि वे भी ऐसे ही (मिथ्या) मानते हो ६०. अविद्यालेस (अविद्या का अंश—प्रारब्धमात्र) रहे तो ज्ञान करके क्यों नहीं नाश हुवा, इसलिये जीवन मुक्ति भी असिद्ध. ६३.

---

४ यूं हो तो अणु अणु में आकाशादि रूप सृष्टि माननी होगी.

५ यह लक्षण मायावादि का नहीं है. मैं नही जानता इस प्रतीति का भाव रूप जो विषय सो अज्ञान ऐसा कहता है.

जीवेशावाभासेन करोति, मायाचाविद्याचस्वयमेवभवति. नृसिंहतापिनि श्रुति. (जीव और ईश्वर को आभास से करती है. माया, अविद्या आप ही होती है) व्याससूत्र का यह आशय है कि आचार शून्य ब्राम्हण ब्राम्हणाभास. तद्वत् आनन्दादि तिरोहित होने से जीव, ब्रम्ह का आभासमात्र कहा जाता है. परंतु जीव यह ब्रम्ह का आभास (प्रतिबिंब) है, ऐसा नहीं है. ६९.

जो जीव सत्य न हो तो उसको भ्रम नहीं हो सकता. (भ्रम को भ्रम नहीं होता) और ब्रम्ह को तो दोष (अज्ञानभ्रम) का संबंध नहीं है, तो भ्रम किसको और किसका हो (भ्रम होना नही बनता). ६६.

जंगल के मेदान में सूर्य की किरणे पडती हो और वृक्षों का अंतराय समान हो उसके अंदर आकाश दिखाता हो वहा वायु के संबंध से किला (गढ) जेसा दिखाता है उसे **गंधर्वनगर** कहते है. जो जगत गंधर्वनगर जैसी मानते हो तो वहां दूसरे का संबंध मानना पडेगा, परंतु ब्रम्ह से इतर अन्य है नही. तो फेर गंधर्वनगरवत् कहना ही नहीं बनता. ६७

ब्रम्ह और माया दोनो अनादि मानो तो द्वैतापत्ति होगी. माया को सात (वा कभी हो कभी न हो) मानना असंभव है; क्योंकि अनादि, अनंत ही होता है. ६९. तथा पहिले जीव माया अनादि और पीछे अद्वैत मानो तो एक प्रकार का द्वैताद्वैत हुवा, अद्वैत पक्ष न रहा. ७१.

शुद्धाद्वैत = शुद्ध ऐसा अद्वैत. टं. ७१।७२.

उत्तमाधिकारी को यह सब ब्रम्ह, मध्यम को भगवान जेसा जगत परंतु भगवान रूप नहीं (हरि की इच्छा से ब्रम्ह का कार्य), अधम को जगत से भिन्न भगवान है, ऐसा बोध–प्रतित होता है, (मुनोर्थिनी). ७४।७५.

क्रीडा वास्ते हरि की इच्छा से भेद हुवा है. लयकाल में घट की जेमे मृतिका में स्थिति होती है वेसे जीव की कारण मे स्थिति होती है. प्रथम मृतिका रूप अवस्था पीछे घट रूप और पीछे लय में मृतिका ही रहती है इसी प्रकार तीनो अवस्था में[1] जगत ब्रम्ह रूप है. ७८.

---

[1] जो कनक, कुंडल मीटी रूप हो के, कनक और माटी घट व आदि रूप हो के माटी हो याने परिणाम पाके पूर्व रूप ने आवे. ऐसे मानें तो आविर्भाव तिरोभाव रह तथा जगत् सत्य–नित्य यह सिद्धांत न रहा उक्त कथन से विरोध आता है

श्रुति में ब्रह्म (वा माया) से आकाश, आकाश से वायु, ऐसे उत्पत्ति कही है, जीव की नहीं. इसलिये जीव अजो नित्यः शाश्वतोऽयंपुराणः (जीव अज अविनाशी) है.[२] औपाधिक नहीं है. ८०.

जहां यथा कर्म फल का भोग, ऐसा कहा है, वहां भी कर्म कराने वाला ईश्वर है, इसलिये जिस जीव के जेसे फल देने की हरि की इच्छा हो उस जीव पाससे वेसे कर्म कराता है. तमेव साधु कर्म कारयति यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषति श्रुति. ८३.

शंकर, शिव, माध्व, रामानुजादिक, निंबार्क; भास्कर, भिक्षु इन मत के अनुयायी और दूसरे मत वाले दोष युक्त हैं. ८४.

(शं.) जीव, ब्रह्म रूप होने से उसके ऐश्वर्यादि धर्म स्वाभाविक हैं, उनको तिरोहित करने और मिथ्या ज्ञानादि दोष युक्त उसके करने से उसकी हानी और अकृत आने का दोष आता है (उ.) जीव की कृति में दोष है. जेसे राजा अपने सेवकों के मकान और साहबी देता है और पीछे ले लेता है पुनः देता है. इसी प्रकार सर्वोपरी हरि अपने दास-जीवों वास्ते अन्यथा करे तो उसमें क्या शंका करना? नहीं ही.[३] ८५. जो यथा कर्म फल मिलना मानें तो ईश्वर की जरा भी सत्ता न रही, अनीश्वरवाद की आपत्ति होगी. प्रपंच से रमण करने की अपेक्षा वाले हरि ने विचित्र रसके अनुभव करने वास्ते[१] कर्म मर्यादा बांधी है., ८६.

प्रयत्न तक जीव का कृत्य है और पीछे जीव की शक्ति न होने से हरि स्वयं कराता है पिता पुत्रवत्. वेदादिक में कर्मों के गुणदोष हरि (पिता) ने वता दिये हे. जीव (पुत्र) का अभिनिवेश देख के हरि जीव की इच्छा अनुसार उसको कर्म करने देता है और फल अपनी इच्छा अनुसार-अर्थात् फल देने मे कर्म की, कर्म मे जीव के प्रयत्न की, इसमे कामना की, और स्वर्गादि की कामना मे लोक प्रवाह की अपेक्षा भगवान रखता है, इस मर्यादा को पालता है. साराश यथा कर्म

२ जीव पूर्व मे था और नित्य मुक्त रहेगा, ऐसा मानें तो अविकृत परिणामवाद तथा आविर्भाव तिरोभाव वाला सिद्धांत न रहा; क्योंकि जीव परिणाम रूप नहीं और मुक्त का तिरोभाव नहीं

३ जब अकृत का फल मिला. कृत का नहीं भी मिलता तो अन्याय और शास्त्र निष्फल इसमें जीव की कृति क्या; वोह तो परतन्त्र है. ऐसे २ मतव्यो ने आर्य प्रजा को हिंदू बना दिया.

१ हरि असर्वेश और कामना वाला ठेरा.

फल देता है, इसलिये ईश्वरत्व में दोष नहीं आता.[२] और जो जीव अनुग्रह के पात्र हैं उनको कर्म की अपेक्षा विना फल देता है, इससे ईश्वरत्व सिद्ध रहता है ८७.

ब्रह्म चैतन्य से उसकी शक्ति जुदी मानें तो शक्ति जड हो जाय. उस शक्ति से कोई काम न हो सके. + [३] शक्ति का स्वरूप कहने वास्ते भगवान की शक्ति, ऐसा कहा जाता है. ८८. ब्रह्म का धर्म ब्रह्म से जुदा नहीं; सूर्य प्रकाश वत्[४] ८९.

जैसे एक ही पुरुष पिता, पुत्र, भाई होता है, ऐसे अवच्छेद के भेद से कारण में रूप अरूप रहे हुये हैं, या भगवान की अचिंत्य शक्ति से रहे हुये हैं [५] ९०.

भगवान के करचरणादिक[६] सर्व अवयव[६] आनंदात्मक-चैतन्यघन हैं. ९२. ब्रह्म एक ही है. सजातीय, विजातीय[७] स्वगत[८] भेद रहित है. ९१. प्रलय होने पीछे एक ब्रह्म ही रहता है.[९] ९५.

केशव और शिवजी ने मोह शास्त्र, कापल, लाकुल, वाम, पूर्व पश्चिम, भैरव, पांचरात्र, पाशुपत और वैसे हजारों शास्त्र किये हैं. वेद मूलक पुराणों में भी कहीं कहीं निर्मूल तंत्रों के अंश हैं, सो वैदिक मंडल को अमान्य है. "कूर्म पुराण" १०९. अमेध्य भक्षण और सुरापानादिक से पोषित हुये सांख्य और योग यह दोनों शास्त्र ‡ कहाते हैं, उनमे वैदिक, वैष्णव, शैव, शाक्त, वाम, सिद्धांत और कौल यह

---

२ कानून-वेद आप ही बनाया जीव से आप ही कर्म कराता है. इसका अर्थ क्या? मरजी बस जीव जवाबदार नहीं.

३ अभिन्न मानो तो भी ब्रह्म उपादान और शक्ति निमित्तकारण, ऐसे २ स्वरूप हुए उनमे १ को जड कहना ही होगा. दोनो को जड वा चैतन्य मानो तो सजातीय दोष आवेगा. एक को जड एक को चैतन्य मानें तो विजातीय दोष आवेगा सारांश उभय पक्ष में द्वैतापत्ति होगी.

४ प्रकाश संकोच विकास वाला और सूर्य व्यक्ति से भिन्न देश में भी पसरता है, अत. उसका धर्म नहीं किंतु परमाणुओं का पुंज है ऐसे ही ब्रह्म के धर्म मानने होंगे.

५-७ विजातीय और विरुद्ध धर्माश्रय मानने से विजातीय भेद की आपत्ति स्पष्ट है.

६ मूल द्वारादि व्यर्थ न होने चाहियें. ब्रह्मधाम में उनका उपयोग क्या? विसर्ग काम भोगादि वा क्या?

८ जीव नित्य होने से स्वगत भेद की सिद्धि हो गई द्वैत हो गया.

९ आविर्भाव, तिरोभाव वाला पक्ष गया.

‡ विवेकबोधक सांख्य शास्त्र और सिद्धांत परीक्षक योग शास्त्र द्वारा कल्पित मत पंथों की पोल खुल जाती है. इसलिये उन पर ऐसे ऐसे आरोप कर देते हैं क्या मांस मदिरा सेवी योगी हो सकता है. कभी नहीं क्या सांख्यी शृंगार रस में फस सकता है? कभी नहीं. वनावटिओं की यहां चर्चा नहीं है.

सर्वान कामान्[८] स ब्रह्मणा[७] विपश्चिता.[६] तै. आनंदवल्ली.[१] ब्रह्म के जानने वाला ब्रह्म से पर-पुरुषोत्तम के प्राप्त होता है[२] ब्रह्मवेत्ताओं ने ऐसा कहा है.[३] हृदय में अक्षर ब्रह्मात्मक-आदि वैकुंठ में[५] स्थापन किया हुवा जो सत्य, ज्ञान और अनंत ऐसा जो ब्रह्म उसको जो जानता है सो भक्त[६] नाना प्रकार के भोग में चतुर[७] ऐसे ब्रह्म के साथ[८] कामों को भोगता है. यहां ब्रह्मपद श्री पुरुषोत्तम का बोधक है. ११५.

हे उद्धव! विद्या और अविद्या मेरा शरीर है सो (क्रमशः) मोक्ष और बंध करने वाली हैं. मेरी माया ने निर्माण की है. * ११६.

द्वाविमौ पुरुषो. गीता. क्षर (जीव) † अक्षर (अंतर्यामी) इन उभय पुरुष से उत्तम पुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण) है.

श्री पुरुषोत्तम का लाभ कैसे मिले? तहां भक्त्या लाभो +++ *श्री मदाचार्य चरण* +++ *अर्थ-पुरुषोत्तम का लाभ भक्ति से होता है और भक्ति श्रीवल्लभाचार्य* जी के चरण के भजन से प्राप्त होती है, इसके सिवाय नहीं होती.[१] टीका-भगवान की कृपा का अंकुर होता है उसके संस्कार से अथवा भगवद्भक्त के संग से जब उद्बोध हो तब इस मार्ग में प्रीति होती है. इस मार्ग में प्रवेश होना सो श्री वल्लभाचार्य महाप्रभुजी का द्वारभूत-श्री आचार्य कुल द्वारा शरणागत करे[२] उस पीछे शुद्ध हो श्री कृष्ण की सेवा करे; ऐसा सिद्धांत है. ११९.

भागवत स्कंध ११ प्रबुद्ध योगेश्वर-दारा न सुता न इ. स्त्री, पुत्र, गृह और प्राण जो कुछ है सो सब पुरुषोत्तम भगवान के अर्पण करना.[१] यह भगवद्भक्त का धर्म है. इस अनुसार समर्पण सिद्ध होता है. इसलिये आचार्य श्री सिद्धांत रहस्य में कहते हैं-ब्रह्म संबंध करणात सर्वेषां देह जीवयोः. सर्व दोष निवृत्तिर्हि. ब्रह्म संबंध करने से

---

* यहां मायावाद से मिलता है. याने ज्ञान और अज्ञान उभय माया निर्मित

† जीव को क्षर (नाशवान) माना. यह पूर्व से विरुद्ध है. शुद्धाद्वैत जीव को अमर मानता है.

१ दूसरे धर्म मंतव्य वाले को लाभ न मिलेगा-याने क्या सर्व बंध में ही रहेंगे?

२ यह देखते हुये सहजानंद स्वामी नारायण ने अपने कुटुंबी को गादी का मालिक किया, सो क्या आक्षेप के योग्य है

३ पुरुषोत्तम आके नहीं लेता अन्यथा अन्य मंदिरों में भी भगवान है और अन्य व्यक्ति भी हरि रूप है, उनको क्यों न दिया जाय?

सबके देह सबधी और जीव सबंधी दोष निवृत्त हो जाते है.[४] जेसे गंगाजल में मलादिक दिखाते हो तो भी उसका निरूपण गगा जल शब्द से होता है; ऐसे ही ब्रह्म सबध हुए पीछे तन, मन, इद्रिय और उनके धर्म जीव ने अपनी आत्मा सहित भगवान को अर्पण करे तो वे सब भगवान के हो गये, उसे दोष गौण हो गये, इसलिये सेवा में अधिकार होता है. उस पीछे सत्पुरुषो अथवा द्वारभूत (वल्लभ कुलक वाले) गुरु के सग से उसको शिक्षा द्वारा श्री आचार्य चरण में भगवान से अभेद की बुद्धि होती है, उस पीछे उसका भजन होता है. पीछे भजन, ग्रंथ अवलोकन और श्रवण करने मे प्रतिबध की निवृत्ति हो तब दोष दिखाते हो तो भी निवृत्त होते है उस पीछे निरतर सेवा करने मे सकुटुम्ब को भगवद्भक्ति प्राप्त होती है; ऐसा यह भगवन्मार्ग है. १२०.

जिसने श्री वल्लभाधीश का आश्रय, सुबोधिनी का दर्शन (अनुभव) और राधिका नाथ श्रीकृष्ण का आराधन नही किया, उसका जन्म निष्फल है. (श्रीहरि रायजी कृत अष्टक). १२०.

सायुज्य मे अलौकिक देह को प्राप्ति होती है सो देह नाश नहीं होता; क्योंकि भगवान की लीला नित्य होती है. उत्तरार्द्ध के अतिमाध्याय में शुकदेवजी ने कहा है. जयति जननिवासो +++ कामदेवम्. मनुष्य के निवासरूप देवकी के जन्म होना कथन मात्र है. जो अजन्मा है, उत्तम यादवो की समारूप—अपने हाथ से अधर्म को नाश कर्ता है, स्थावर जंगम के दुःख को मंद हास्य से हरने वाला, व्रज तथा पुर (मथुरा द्वारिका) की स्त्रीयो को कामदेव ज्यादे करने वाला—ऐसे श्रीकृष्ण जय पाते है. यह सब लीला हमेशे होती हे, ऐसा इस श्लोक से सिद्ध होता है. जब हरि को लोक में लीला करनी हो तब योग्य स्थल मथुरादि शुद्ध देश में करता है. इस लीला में लौकिक व्यापार का संभव नहीं होता[१] १२६.

---

[४] पादरी से दोष कहे और फेर न करना, ऐसा कहा के दोष निवृत्त हो गये अथवा ईश्वर के नाम पत्र लिखने जेसा हुवा सचमुच जो ऐसे प्रकार के ठेके वाले उपदेश न हो तो क्या सप्रदाय की बहार का भोग हो सकता है? क्योंकि स्वतत्र हो जाय तो हमारा ताबे न रहे. ब्रह्म सबध क्या? गायत्री छोड के श्रीकृष्ण शरण मम, यही वेदानुयायी और समर्पण क्या? इसके जानने वास्ते गुजराती पुष्टिमार्ग ग्रंथ देखो

[१] गीता अ. ३ में श्रीकृष्ण अपने को नीति कर्म में चलना कहते हैं. परन्तु आप रासलीला उस वाक्य से विरुद्ध है.

लीला मध्यपाति जीवों की इंद्रियें भी अलौकिक होती हैं. १२७. भगवान की लीला मे विरुद्ध अर्थ सो विकार कहाता है.[२] १२७.

यह मति (अलौकिक लीला) तर्क से नही मिटा देना.[३]

तावां वास्तून्युष्मसि गमध्ये यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः अत्राह इत्यादि ऋग्वेद.

अर्थ—श्री गोपी माधव रूप से आप के रहने के जो स्थान उसके प्राप्त करने को हम इच्छते हैं. जहां बहुत सींग वाली गायें बसती हैं. सो पद यहां ही है.[४] इ. वैकुंठ भगवान का स्थान है, उससे भी यह श्री गोकुल अधिक है.[४] १२८.

अक्षर ब्रह्म व्यापक. भगवद् भक्त का अलौकिक आकार व्यापक. जब आनंद तिरोहित हुये आकार नहीं होता—तब जीव निराकार रहता है. जब आनंद का प्रादुर्भाव हो तब जीव साकार * होता है. तब भगवान की लीला भी प्रादुर्भाव को पाती है; इसलिये लीला का अनित्यता नहीं है. हरि की इच्छा से शरीरादिक का भेद है, अतः उसे भेद नहीं कह सकते. श्रुतियें अक्षर ब्रह्म के साथ अभेद कहती हैं, पुरुषोत्तम के साथ नहीं कहती, इसलिये श्री आचार्य जी (वल्लभश्री) ने अणु भाष्य में लिखा है कि जो श्री पुरुषोत्तम के साथ जीव का लय हो तो भी लीला का अनुभव नहीं होता किंतु जीव का नाश ही हुवा, ऐसा जानना चाहिये. १२९. इसी वास्ते श्री गुसांईजी के पौत्र देवकीनंदनजी ने लिखा है कि अक्षर ब्रह्म के साथ जीव को ऐक्यता को ही श्रुति कहती है; इसलिये अक्षर से पर ऐसे जो पुरुषोत्तम उसके साथ अभेद का बताने वाला मार्ग सो तामसी मार्ग है, ‡ ऐसा

२ गृहस्थ व्यवहार भी तो हरि ही करता है, क्योंकि जगत् के दोनो शरीर भगवान रूप है, तो फेर उसको विकार कैसे कह सकते हैं तद्वत् अन्य संबंध !!

३ सब संप्रदाय वाले सृष्टि नियम, व्याप्ति-तर्क से डरते हैं क्यो? उनका मंतव्य पोला होता है

४ मथुरा भरतजी ने बसाया था गोकुल उस पीछे बसा है, तो भी उसकी चर्चा वेद में है. जो गोकुल मथुरा वगैरे भगवद् के धाम होते तो मनुस्मृति में अवश्य जिक्र आता; परंतु ऐसा नहीं है जो अजुध्या, काशी, मथुरा, गोकुल वगैरे भगवद्धाम होते तो वहां मुसलमानी राज्य, उनकी मस्जिदें और गौवध-पशुवध हरगिज न होता; परंतु ऐसा भी न हुवा अतः ऐसे उपदेश अर्थवाद मात्र जान पड़ते हैं

* पूर्व में आनंद उद्भव हुए विभु-निराकार होना माना है (मायावाद से अन्यथा प्रसंग देखो)

‡ जब कि नित्य भेद है तो अविकृत परिणामवाद न हुवा, और जो नित्य सायुज्य तो प्रादुर्भाव आविर्भाव यह सिद्धांत असिद्ध ठेरा उभयथा ब्रह्मवाद नहीं बनता।

पद्म पुराण के उत्तर खंड में कहा है. मायावाद सच्छास्त्र प्रच्छन्नंबौद्धमुच्यते मयैवकथितंदेविकलौ ब्राह्मणरूपिणा. इत्यादि ९ श्लोक. अर्थ—मायावाद असत् शास्त्र है सो गुप्त बौद्ध कहाता है. सो हे देवी! कलियुग में मैंने ब्राह्मण का रूप धार के किया है. +++ वेद के अर्थ वाला बडा शास्त्र मायावाद है सो अवैदिक है. सो जगत के नाश करने वास्ते मैंने कहा है. इ. *

इसलिये सायुज्य शब्द का एक अर्थ ब्रह्म में लय और दूसरा अर्थ पुरुषोत्तम साथ युक्त हो के रहना. १३०.

यह ब्रह्मादिक को भी अत्यंत दुर्लभ ऐसा परमानंद का आस्वादन (पुरुषोत्तम का अधररस) सो श्री महाप्रभुजी (वल्लभ श्री) के चरणारविंद की कृपा बल से प्राप्त होता है, उससे अन्य मार्ग नहीं है.[1] १३२. श्री आचार्यजी के १०८ नाम का अर्थ सहित नित्य पाठ करें तो श्री कृष्ण के अधरामृत के आस्वाद रूप[1]—फल की सिद्ध हो. "इति श्री वल्लभाचार्य" १३३. श्री महाप्रभु (वल्लभजी) अपनी सान्निध्यमात्र में श्री कृष्ण विषे प्रेम देता है, मुक्ति से विशेष फल देता है.

रासलीला का फल—लोकासक्ति छोड के भगवदासक्ति, यह आचार्यजी ने सिद्ध किया है. बृहद्वामन पुराण में ब्रह्माजी भृगु को कहते हैं कि "नंस्त्रियोव्रजसुन्दर्य: इत्यादि—" हे पुत्र व्रज की स्त्रियें, स्त्री नहीं किंतु निश्चय वे वेद की श्रुतियें है,[2] उनकी चरणरज प्राप्ति के वास्ते मैंने ६० हजार वर्ष तप किया. १३३. श्रुतियों की प्रार्थना से भगवान ने ऐसा वरदान दिया. १३५. मैं शुद्धाद्वैत-

* वर्तमान प्रसंग यह कहता है कि पद्मपुराण बुद्ध और शंकराचार्य पीछे हुवा है. किसी ने व्यास के नाम से घड लिया है (आगे पुराण प्रसंग में बांचोंगे शिवजी की भी निंदा की अर्थात् शिवजी असत्‌वादी, लोगों को उलटे मार्ग चलाने वाला ठेरा वाहरे हिंदू प्रजा! जान पडता है कि वल्लभाचार्य के समय के आसपास अज्ञानता का ज्यादे प्रसार होगा कि जिस लिये ऐसे वाक्य और वदतोव्याघात वाला प्रकार (अविकृत और नित्य भेद इ.) मान लेते थे.

१ देह त्यागने पीछे वा अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति पीछे आचार्यजी की कृपा से पुरुषोत्तम भगवान का चुंबन तो मिले परतु उनके समय से लेके आज तक भगवान वा आचार्यजी को दूध देने वाली गायों का वध न अटका सके और मुसलमानो ने जो मूर्तियों का खंडन किया और जिस कारण से श्रीजी को मथुरा छुडा के नाथद्वारे में लाना पडा उनमें न बचा सके. यही महिमा! हरि हरि. (ख) ईश्वर की ऐसी ही इच्छा. (ग) असत्य वा अहितकारक मंतव्यो का निरीक्षण हो यह भी तो हरि की इच्छा.

२ श्रुति तो रचित शब्द हैं, उनको वाणी और उनका अवतार (शरीर धारण) कोई भी नहीं मान सकता. यहां वक्ष्यमाण स्वीडनबोर्ग का स्वर्ग, कुरानी स्वर्ग और सुनों के परलोक

मार्तंड के कर्ता और उसकी प्रकाशास्या करने वाले श्री रामकृष्ण भट्टजी का उपकृत हू क्योंकि पुष्टिमार्ग के प्रकाशक है (सपादक)

अपवाद

अविकृत परिणामवाद और आविर्भाव, तिरोभाव का अतर

ब्रह्मवाद-यह अविकृत परिणामवाद, विरुद्ध धर्माश्रय और आविर्भाव तिरोभाव इन तीन सिद्धांतों को कहता हुआ सर्वं खलु इदंब्रह्म ऐसा कहता है. इसलिये उसका विचार कर्तव्य है यद्यपि परिमाणुवाद वा प्रकृतिवाद वा अन्य तत्त्ववाद कुछ भी मानें सब पक्ष मे अविकृत परिणाम ही सिद्ध होता है, क्योंकि तत्त्व पदार्थ अपने स्वरूप को नहीं बदलते ऐसा अ १ गत मूलाधिकरण में सिद्ध हुआ है, तथापि ब्रह्मवाद एक तत्त्व (अद्वितीय) को मानके परिणामवाद मानता है, इसलिये विवेचनीय है—

१—कनक का कुंडल, छुरी वगैरे नाना रूप (आकार) हो और फिर वे मिलके उनके नाम रूप का अभाव होके कनक रूप हो जावें, इस स्थिति वा अवस्था का नाम अविकृत परिणामवाद है एव जल तरग, मृतिका घटादि के सबध में ज्ञातव्य है

अद्वितीय शुद्ध अमिश्रित तत्त्वरूप जो ब्रह्म सो अपनी इच्छा से जल तरग, कनक कुडल, मृतिका घट समान नाना जीव जगत रूप हुआ और फिर ब्रह्मरूप हो जायगा, एव प्रवाह है, ऐसा मानें तो अविकृत परिणामवाद है जो यू हो तो आविर्भाव (पूर्वक नाम रूप अव्यक्त का व्यक्त होना) और तिरोभाव (व्यक्त का अव्यक्त रूप में हो जाना) सिद्ध नहीं होता; क्योंकि पूर्वोत्तर में नाम रूप बिना का शुद्ध ब्रह्म (कनकवत्) मानते है (आगे बाचोगे).

२—अब आविर्भाव=(आ) और तिरोभाव=(ति) प्रक्रिया का विचार करें.

(क) गुप्त वा प्रकट कहीं भी नहीं था और उत्पन्न हुआ याने उपादान किसी रचना में आया (कार्यरूप हुआ) इसका नाम आविर्भाव, और फिर वोह आकृति-रचना नष्ट हो गई याने कार्य का नाश (उपादानरूप) हो गया-कहीं भी न रहा इसका नाम तिरोभाव यथा कनक कुडल, जलतरग, अहिकुडल,

---

का वाचक मुकाबला करोगे तो कल्पना की तारतम्यता-उच्चत्व और नाचत्व, तथा सम्प्रदायी भावना को तलना कर सकोगे

मृतिका घट है. इस प्रकार उत्पत्ति नाशभाव निकला. ऐसा मानें तो अविकृत परिणामवाद ठेरता है, इसका अपवाद उपर कहा गया है.

(ख) पूर्व काल में अव्यक्त (तिरोहित) हो (किसी अधिष्ठान आधार वा उपादान वा ईश्वर के विचार में विद्यमान हो परंतु अदृष्ट—अज्ञेय) फिर व्यक्त (आविर्भाव) हो याने ईश्वर की इच्छा से अनुभव मे आने योग्य हुआ; क्योंकि अनुभव में आने की योग्यता यही आविर्भाव है. यथा—आकाश में बिजली, मकडी में से तार, लकडी में से अग्नि, कछवे के शरीर में से उसके अंग यह तिरोधित रहे हुये आविर्भाव को पाते हैं. किवा मान लो कि कनक में कुंडल और छुरी अव्यक्त थे. जब कुंडल का प्रादुर्भाव हुआ तब उसमें छुरी भी अव्यक्त रूप में विद्यमान है. जब छुरी हुई तब कुंडल उस में अव्यक्त हो गया इस प्रकार का अर्थ करें तो पदार्थ मात्र की अनुत्पत्ति और अनाश यह भाव निकलता है.

(ग) जेसे अनेक रूप—मूर्ति वाला चित्रित वस्त्र है, यदि उसको लपेटें तो वे चित्र (पशु पक्षी, मनुष्य और झाड वगेरे की तथा रासलीला की मूर्ति) अव्यक्त (तिरोहित) है और जो उससे खोलें तो प्रादुर्भाव भाव (व्यक्त) हुआ, ऐसा अर्थ करें तो भी ख. वत् आशय निकलता है.

(घ) जेसे बीज से वृक्ष होता है, शरीर से नाखून वा बाल होते हैं वेसे तिरोभाव आविर्भाव का अर्थ करें तो भी या तो ख समान भाव मानना होगा वा तो प्रवाह से उत्पत्ति नाश माना होगा. इस पक्ष में अविकृत परिणामवाद की सिद्धि नहीं होती और पूर्व में अव्यक्त ऐसा भाव भी नहीं निकलता किंतु परमाणुवाद वा प्रकृति परिणामवाद सिद्ध होता है जो ब्रह्मवाद से स्वीकारित नहीं है.

उपर वल्लभ सम्प्रदाय की मान्यता लिखते हुये उसके असमीचीन अश का सक्षेप मे अपवाद वहीं ही नोट में लिख आये है, इसलिये यहां ज्यादे अपवाद लिखने की आवश्यकता नहीं है. किंतु मुख्य मुख्य विषय की असमीचीनता लिखेंगे:—

जो उपरोक्त परिणामवाद मान के शुद्धाद्वैतवाद मानें तो आविर्भाव तिरोभाव का अर्थ उपरोक्त क अनुसार ही होगा. ख. वा ग. वा घ. अनुसार न होगा. कारण कि जीव जगत दर्शन के पूर्व कुछ भी न था, ब्रह्म ही था. और पीछे भी नाम रूप जीव जगत कुछ भी न रहा, ब्रह्म ही रहा; ऐसा मानें तब ही अविकृत परिणामवाद कह सकेंगे. जो पूर्व में किसी का अनादित्व और उत्तर में अनंतत्व मानें तो

अविकृत परिणाम नहीं यह सकेंगे. याने एक अद्वितीय के वे परिणाम, ऐसा नहीं कह सकते. जब यूं है तो जीव नवीन पैदा न हुवा किंतु पहिले था और सायुज्य में अधरामृत लेना हुवा हमेशे रहेगा, यह सिद्धांत जाता रहा.—अर्थात् जीव सादि सांत रूप परिणाम ठेरा. तद्वत जगत सादि सांत ठेरा नित्य—सत्य नहीं. ऐसा हुये विरुद्ध धर्माश्रय भाव भी न रहेगा; क्योंकि जो पूर्व रूप मे आ जावे और विरुद्ध धर्म (साकारत्व, निराकारत्व, तम प्रकाश, ऊंच नीच, जीवत्व, जगतत्व वगेरे) रहे तो विजातीय द्वैतही रहेगा याने शुद्धाद्वैत नहीं माना जा सकता. अविकृत परिणामवाद में सृष्टि की उत्पत्ति, लय, जीव बंध मोक्ष के संबंध विषे एक ओर दोष आता है सो उपनिषद मत के अपवाद मे कहा है वोह ध्यान में लिजिये.

अब जो ख ग. घ. पक्षवाले अर्थ लें तो विकृत परिणामवाद अलीक रहता है क्योंकि —

१—मानलो कि य. र. और ल यह तीन कनकके पिंड जुदा जुदा हैं. य. में से छुरी र. में से कुंडल, ल मे से तलवार बनी याने उनका आविर्भाव हुवा. फेर उनको गलाके य. र. ल. एव पूर्व रूप कर लिया तो छुरी वगेरे का तिरोभाव हो गया. फेर कुछ भाग य. मे से कुछ भाग र. में से और कुछ भाग ल. में से ले के यह तीनो भाग मिला के छुरी बनाई 'अब इस छुरी का किसमें तिरोभाव था और किसमे से अविर्भाव हुवा.' इसके दो ही उत्तर बनेंगे (१) एक एक परमाणु मे असख्य पदार्थों का तिरोभाव है याने उसमे अव्यक्त है जो यूं हो तो एक एक अणु मे से भी छुरी हो जानी चाहिये थी और तैयार छुरी मे अव्यक्त कुंडलादि का वजन जान पडता—परंतु ऐसा नहीं देखने, और ब्रह्मवाद को परमाणुवाद का अधिकार भी है अतः पिंड वा अणु अणु में तो अव्यक्त रूप से नहीं रहते यह सिद्ध हुवा (२) दूसरा उत्तर यह है कि ईश्वर की इच्छा ऐसी होती है कि मैं अमुक सामग्री (पिंड, परमाणु) रूप रहुं, जब अमुक सामग्री एकत्र हो तब में अमुक रूप (छुरी वगेरे) रूप) हो जावु—अर्थात् छुरी वगेरे आकार ईश्वर के विचार मे थे, फेर ईश्वर आपही छुरी रूप हुवा ऐसा मानें तो उपरोक्त ख. ग. घ. वाला अर्थ वा पक्ष न रहा. और जो यह कहे कि ब्रह्म छुरी वगेरे रूप भी पहिले ही था, अमुक सामग्री एकत्र हुये व्यक्त हुवा (अनुभव में आने योग्य हुवा) तो जेसे पूर्व में य. र. ल. मे छुरी वगेरे बने वेसे ही उतने भाग (याने य) में से ही दूसरी छुरी बनती, अन्य र. ल. भाग मिल गये थे, इसलिये छुरी न बनना चाहिये था; क्योंकि इच्छित य. सामग्री

से इतर (र. ल.) भी शामिल थी; इसलिये सामग्री की मान्यता भी असिद्ध रहती है; किंतु हरि की इच्छा हरि की इच्छा, इतना ही मान लो, यही उत्तर है तो वक्ष्यमाण दोष आवेंगे —

२–छुरी वगेरे (जगत) और जीव रूप पहिले से ही (अनादि से ही) हैं, और जीव नित्य है; इसलिये ब्रह्म (कनक) ब्रह्मरूप कभी भी न हुवा; किंतु छुरी, कुंडलादि रूप ही था, है और रहेगा, जीव (चिंगारी) रूप था, है और रहेगा. इसका परिणाम यह आया कि जो अधरामृत वाली लीला नित्य भोगता है तो लीलावादी के कहे अनुसार आनंदांश उद्भव रहने से जीव साकार ही रहा. वा तो अक्षर ब्रह्म मे एकता रूप से रहा हुवा निराकार ही रहा क्योंकि अक्षर ब्रह्म में से उसको निकाल लेते भी हैं पीछे सायुज्य में साकार होता है. और पुष्टि-मार्ग–लीलावादी का यह मुख्य निष्कर्ष–सिद्धांत है कि पुरुषोत्तम के साथ कभी भी अभेद नही होता, किंतु भेद ही रहता है. यह बात अविकृत परिणामवाद और आविर्भाव तिरोभाव सिद्धांत को जुदा जुदा बताती है. अर्थात् या तो अविकृत परिणामवाद अलीक रहा वा तो जीव नित्य अधरामृत लेता है–सायुज्य मुक्ति नित्य है, यह पक्ष असंगत ठेरा. जीव जगत पहिले थे वे ही व्यक्त हुये अर्थात् ब्रह्म के नवीन परिणाम नही. यह सिद्ध हुवा (पुरुषोत्तम–ईश्वर तथा जीव और अपने उपादान सहवर्तमान जगत् अनादि अनंत है, यह स्पष्ट हुवा). पुनः विचारो —

३–एक चिंगारी–जीव श. ब्राह्मण शरीर में है, दूसरी स. ज्ञानी हरिभक्त शरीर में है. तीसरी ह. वल्लभ संप्रदायी भक्त के शरीर में है. चौथी क्ष. गो भक्षक, दुष्ट. शरीर में वा मूर्ति भंजक, खंडन मंडन कर्ता, वा भिन्न निमित्तोपादान-वादी ऐसे शरीर में है. पंचमी त्र. सिंह के शरीर मे है. पांचों चिंगारी–जीव और पांचों शरीर पूर्व में थे और नित्य तिरोभाव प्रादुर्भाव के चक्कर में रहेंगे.

उपरोक्त जीव ब्रह्म नाम की अग्नि में पडे थे, ईश्वर की इच्छा हुई तब श. वगेरे शरीर में डाले, क्योंकि लीला करना है, आप ही ब्राह्मण–दुष्ट वगेरे रूप हुआ है. फिर श. तो साधन द्वारा वा भगवत की कृपा इच्छा से अक्षर ब्रह्म में लय हो गया. स. भी अक्षर ब्रह्म में लय हुआ परंतु भक्ति के सबब से उसको वहां से निकाल के पुरुषोत्तम के साथ सायुज्य किया (सामीप्य–सालोक्य भी अर्थ हो जाता है). ह. वल्लभ संप्रदायी होने से लीला करता हुआ कृपा

पात्र ठेरा और गोकुल में से पुरुषोत्तम लोक में जाके अलौकिक शरीर पाके सायुज्य हुआ. क्ष. और त्र पुनर्जन्म के चक्कर में आव जाव कर रहे हैं.

अब विचारिये-श. वगैरे चिंगारी, श. वगैरे शरीर, श. वगैरे चिंगारी में उत्तम नीच गुण (गो भक्षकत्व, गो रक्षकत्व वगैरे गुण) और आनन्दांश भी पूर्व में विद्यमान थे, ईश्वर के वे विषय थे; अतः उसको व्यक्त कहो. और अन्यों की दृष्टि में अव्यक्त थे. जब ईश्वर की इच्छा से अविद्या वगैरे प्राप्त हुये तो जीव शरीर का और उनके संबंध का आविर्भाव हुवा. पुनर्जन्म पाने वाली चिंगारियों को अनेक शरीरों का संबंध होने से अनेक रूप तिरोभाव और उद्भव हुये.

त्र. को अविद्या और सिंह शरीर का संबंध नवीन हुआ, यह पूर्व में नहीं था, अतः आविर्भाव सिद्धांत गया. तद्वत् उसके वियोग से तिरोभाव सिद्धांत गया. जब श. जगत् में पीछा नहीं आवेगा तो श. शरीर निकम्मा रहेगा. यदि यह वा अन्य उपदेशादि वाला शरीर अन्य जीव को मिलेगा तो, आ. ति. सिद्धांत गया. श. स ह. में जो पूर्व के नीच वा उत्तम गुण न रहे तो आ. ति. वाला सिद्धांत गया. अक्षर ब्रह्म और अधर अमृत का संबंध पूर्व में न था-नवीन हुआ-इससे और वे जीव पुनः जन्म में न आवेंगे इससे आ. ति. का सिद्धांत गया. जो मुक्तों में नीच गुण तिरोहित हैं तो लीला पात्र न रहे, अक्षर ब्रह्म में भी न मिल सकेंगे, अथवा मुक्ति से पीछे संसार में आना होगा. और जो वे गुण नहीं रहे तो आ. ति. का सिद्धांत गया. नित्य में नित्य गुण होते हैं इसलिये उनके रागादि गुण होने से वे मोक्ष के पात्र न ठेरे-याने सायुज्य की कल्पना सत्य न रही. सायुज्य में जो अलौकिक नवीन शरीर मिलता है वोह शरीर यदि पूर्व में था तो निकम्मा रहा हुआ था, और यदि नवीन किया तो आ. ति. का सिद्धांत गया, तद्वत् उसके साथ सायुज्य वाले का नवीन संबंध हुआ उससे आ. ति. का सिद्धांत गया. अब वोह शरीर नाश न होगा, दूसरे को भी न मिलेगा; इसमें भी आ. ति. का सिद्धांत गया.

ब्रह्म है जितना है जीव हैं जितने हैं; अतः सब मोक्ष हो जाने पीछे लीला से इतर सृष्टि होने का अभाव रहेगा; मैं उच्च नीच होऊं ऐसी ब्रह्म की इच्छा पूरी न पडेगी. और यदि पुनः जगत जीव करके लीला करेगा तो

प्रथम के तमाम नाम रूप (लीला वाले जीव शरीर-मुक्त वगेरे) का अभाव होगा अर्थात् ब्रह्म पूर्व के (कनक) रूप में आवेगा तब कर सकेगा; तो जीव मोक्ष और जगत् अनित्य ठेरने से आविर्भाव तिरोभाव वाला सिद्धांत गया. (ग. घ का विस्तार इस ग गत हो जाता है).

उपरोक्त कही हुई रीति से अविकृत परिणामवाद और आविर्भाव, तिरोभाव इन दोनों मंतव्यों का विरोध है तथा उभय पक्ष असिद्ध रहते हैं, किंतु केवल कपोल कल्पना है, ऐसा जान पडता है. जो शब्द प्रमाण दे दे के स्वपक्ष सिद्ध किया है, उसका परिणाम उपर दिये हुये (वेद प्रसंग याद में लीजे) वेद, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता के वाक्यों द्वारा जान सकते हो. पक्ष विवादित ही रहेगा.

वल्लभ श्री से जो मान्य शब्द, उनका अनुयायी और उनका प्रतिपक्षी, और उनमें से अमुक अंश मानने वाला अमुक न मानने वाला, और वल्लभ श्री से अन्यथा अर्थ कर बताने वाला और वल्लभ श्री के मान्य ग्रंथों से इतर (अन्य तोरेत, इंजील, कुरान, भगवतिसूत्र, अवस्ता वगेरे) ग्रंथों को प्रमाण मानने वाला, तथा जडवादी यह सब ब्रह्म स्वरूप, यह सब ब्रह्म की लीला अर्थात् सब आस्तिक सब नास्तिक मान सकते हैं. इसलिये उनका पक्ष मंडन परपक्ष खंडन ही उनके मंतव्य को कल्पनामात्र ही ठेराता है; अतः उपेक्षा.

अद्वैतवादी **मायावाद** और अद्वैतवादी **ब्रह्मवाद** की तुलना.

मायावाद (शंकर वेदांत) का हरीफ ब्रह्मवाद (वल्लभ मंतव्य) है. पहिला हरीफ रामनुज श्री है; परंतु वोह द्वैतवादी होने से उसकी चर्चा यहां नहीं हो सकती; इसलिये इन उभय की तुलना संक्षेप में लिखते हैं—

मायावाद (कैवल्याद्वैत)	ब्रह्मवाद (शुद्धाद्वैत–पुष्टिमार्ग)
१. केवलाद्वैत ...	१. शुद्धाद्वैत ....
२. माया उपादान	२. ब्रह्मोपादान ....
३. अधिष्ठान (सत्ता स्फुर्ण देने वाला) निमित्त कारण	३. ब्रह्म की शक्ति निमित्त कारण ....
४. मायाविशिष्ट चेतन अभिन्न निमित्तोपादान कारण ...	४. शक्तिमत ब्रह्म अभिन्ननिमित्त उपादान कारण ....

५. ब्रह्म निर्गुण व्यक्तिमात्र, चिह्नमात्र, असंग ...	५. ब्रह्म सधर्म (सगुण) किंतु विरुद्ध धर्माश्रय और जगत रूप तथा असंग.
६. ब्रह्मचेतन अज्ञानी भ्रमित	६. ब्रह्म चेतन कामी भोगी. ....
७ संसार और जगत् मिथ्या ...	७. संसार मिथ्या जगत सत्. ....
८. वैराग्य निराशा	८. शृंगार, रसभोग की आशा. ....
९. बंध मुक्ति भ्रांति	९. बंध निवृत्ति और सायुज्य मुक्ति और अधरामृत का भोग यह सत्य. ....
१०. निवृत्ति प्रधान और खुश्क	१०. शृंगारप्रधान और रसिया ....
११. ईश्वर (पुरुषोत्तम) मायावी	११. ब्रह्म, पुरुषोत्तम का चरण. ....
१२. जीव ब्रह्म एक	१२. जीव ब्रह्म सजातीय. ....
१३. जीव ब्रह्म का उपहित अंश	१३. जीव ब्रह्म का अग्नि चिंगारी वत सजातीय अंश. ....
१४. ब्रह्मेतर माया अविद्या अनादि सांत	१४. माया अविद्या यह ब्रह्म की शक्ति हैं अतः नित्य हैं. ...
१५. ब्रह्मवित को विधि निषेध नहीं....	१५. पुष्टिमार्गीय प्रेमी को विधि निषेध नहीं. ...
१६. विवेकादि हुये .... जीव ब्रह्म की एकता के ज्ञान से मोक्ष	१६. ब्रह्म समर्पण कंठी वगैरे संपन्न हुये ईश्वर कृपा से सायुज्य मोक्ष. ....
१७. कर्म, उपासना (भक्ति) ज्ञान इस-क्रम से साधन	१७. कर्म-ज्ञान भक्ति इस क्रम से साधन. ....
१८. ब्रह्मेतर को मिथ्या मानते हुये भी न्याय बौद्ध वगैरे का खंडन करना ऐसी निष्ठा ...	१८. सब ब्रह्म रूप, और हरि आप लीला करता है उच्च नीच रूप वही है, ऐसा मानते हुये भी मायावाद बौद्ध वगैरे का खंडन करना ऐसी निष्ठा. ....
१९. संख्या प्रचार में ब्रह्मवादि से लाखों ज्यादे	१९. संख्या प्रचार में मायावादियों से बहुत कम. ...

जो दोनों पक्ष वाले शक्ति को उपादान मान लें वा ब्रह्म को ही उपादान मान लें तो मुख्य सिद्धांत में एक हो जायँ. परंतु शक्ति को उपादान मानें तो जड होने से अधरामृत न मिले; क्योंकि भोक्ता तो एक ही ठेरे. और वोह भी निराकार ठेरे, इसलिये अग्राह्य और जो ब्रह्म को उपादान मान लें तो वोह दूषित विकारी होने से त्याज्य (हेय) हो जाता है; इसलिये अस्विकारित है.

हमको तो आजतक में निर्विवाद शुद्ध और अद्वैत प्रतिपादक सिद्धांत नहीं जान पडा है, जो कुछ देखने सुनने में आया वोह अर्थवाद मात्र जान पडा, याने सब अद्वैतवादि को द्वैत का आश्रय लेना पडा है. यदि कुछ है तो, कैसी भी उसे उपमा दें परंतु है तो चेतन को अनादि से अज्ञान तिससे भ्रम इतना बाध करके शुद्ध ब्रह्म मे विलक्षण सत्ता वाली अनिर्वचनीय माया के संस्कार जन्य नाम रूपात्मक यह अनादि नैसर्गिक अवभास है इस प्रकार के शंकर श्री के मत में ब्रह्म कैवल्याद्वैत रह सकता है वा कह सकते है, तथापि इस पक्ष में माया कैसी भी मानो परंतु माया स्वीकारने से माया मात्र तो द्वैत मानना ही पडता है.

शुद्धाद्वैत प्रशंसनीय.

हमारी समझन के अनुसार मायावाद और ब्रह्मवाद प्रशंसा के योग्य हैं; क्योंकि आर्य मना को वेदोपनिषद ही इष्ट हैं उनमे ही उसका उद्धार होना है; उनका मुख्याशय दूर पड गया है; इसलिये उनके मंत्र वाक्यों में विरोधभास है जैसा कि उपर दरसाया गया है. इस विरोध को शंकर श्री ने माया (अविद्या) उपाधि द्वारा विवर्तवाद कायम करके निवृत्त किया, और वल्लभ श्री ने विरुद्ध धर्म मानके निवारण होना दरसाया है; क्योंकि विरुद्ध धर्म मान के श्रुति का जो चाहो सो अर्थ कर लो, माया या विरुद्ध धर्माश्रय का आश्रय लेने से बंध बेठ जायगा. जैसे कि उपर ब्रह्म को जानके पर (पुरुषोत्तम) को पाता है, ऐसा ब्रह्मवादि ने अर्थ किया है. इ. एवं गीता, व्यास सूत्र के संबंध में ज्ञातव्य है. इतना ही नहीं किंतु जैसे व्याकरण के उणादि प्रत्ययों द्वारा हर कोई शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं, एवं इन उभय शैली की मदद से जीव जगत ईश्वर द्वारा अभावना, क्षणिक विज्ञानता, इत्यादि सब पक्ष मान सकते हैं. अब उन दोनों की पद्धति से जो अर्थ किया जाता है, वा विरोध निवारण किया जाता है वा पक्ष (विवर्त–ब्रह्म परिणाम वगेरे) मनाया जाता है वोह यथार्थ है या नहीं इसकी निरिक्षा

करने की अपेक्षा नहीं रखना चाहिये; क्योंकि यहां तो उनके एक गुण ग्रहण करना है.

विभूषक मत (शुद्धाद्वैत के भूषण).

यदि प्रचलित संप्रदायी कल्पित भावों से एकदम किनारा करके अंक १९ में जो पुष्टि शिखर लिखा है ऐसे ब्रह्मवाद प्रतिपादित पुष्टि शिखर को ग्रहण करें अर्थात् हरि का शरण, हरि का विश्वास, हरि के विरह में तपन, हरि मिलन की आशा और हरि के प्रेम में * मग्न रहना, सर्वथा स्वतंत्र, कोई भी धर्म संप्रदाय के बंधन में न रहना, सारांश ऐसे प्रकार का पुष्टिमार्ग सेवने में आवे तो उस व्यक्ति को कितना बडा लाभ हो, यह स्पष्ट ही है; इसलिये ऐसे पुष्टिमार्ग की मैं तो तारीफ ही करूंगा. और इस पंथ का नाम प्रेम मार्ग कहूंगा (त. द. अ. १ विभूषक मत का अंक ८ पृष्ट २३७ देखो).

उपर जितना कुछ ब्रह्मवाद की तरफ से लिखा है सो तमाम सिद्धांत (शुद्धाद्वैत), न्याय (लॉजिक) व्याप्तिग्रह और फिलोसोफी को जरा भी सहन नहीं कर सकता, किंतु केवल भावना विश्वास (वा स्वार्थ) के आधीन है, १. मन ही बंध मोक्ष का कारण है, २. हरि के प्रेम मार्ग में (वा लौकिक प्रेम मार्ग में) कोई प्रकार की रीति–प्रतीति–नीति–मर्यादा नहीं होती, ३. ऐसा प्रेमी भक्त किरोडों में से कोई बिरला निकलता है, ४. ऐसे की वाणी, चेष्टा, तथा भावना लोक मंडल की दृष्टि में उन्मत्तों की जेसी माने जाने से प्रमाण रूप में नहीं मानी जाती, इसलिये उसके वर्तन से लोक मर्यादा को हानी नहीं होती (हां यदि ऐसे बनावटी अलमस्त अनेक हों तो प्रजा मर्यादा को हानी पहुंचना संभव है परंतु उनकी बनावट जानने में आ जाती है. जेसे कि वर्तमान के शृंगारी देखते हैं और वैसे बनावटी शिक्षा पात्र ठेरने वा माने जाते हैं), ५. इसलिये जो ब्रह्मवादी पक्ष वाली–संप्रदायी तमाम कल्पित बातों को + किनारे रख के समीप में ही जिसको प्रेम मार्ग कहा है उस तरफ पेर उठा के चले और गीता अ. २ के अंत के (त. द. अ ४ में) कहे अनुसार स्थितप्रज्ञ हो और बाह्यांतर में "यह सब

---

* मातावत् वात्सल्य रूप प्रेमरस में किंवा यदि गोपिकाओं का वा जैसे मजनू का संसारी वासना रहित शुद्ध अकृत्रिम प्रेम हो तो वैसे प्रेम में (यहां वल्लभाचार्य जी का शुद्ध प्रेम भाव ध्यान में रखिये)

+ कुब्जा, वृंदा, गोपी, भंग वा कुंभेग या ऐसे कल्पित कल्को से कलंकित किये हुए कल्पित कृष्ण, गोकुल हरिधाम, कनक कांता तथा वैभव की आसक्ति, वृंदावन की रासलीला, चीरहरण, सायुज्य का अधररस.

वासुदेव" (त द. अ १ विभुपक्ष मत अक १६ पृष्ठ २३८ में देखो) ऐसी भावना निष्ठा वाला हो तो वोह अवश्य राग, द्वेष, हर्ष, शोक रहित होगा उसमे किसीको उद्वेग न होगा, उसको किसीसे उद्वेग न होगा, उसकी जात (प्रसन्नत्वाच्य) प्रसन्न रहेगी और अन्यो से उत्तम जीवन होगा, अतः मेरा तो उसको नमस्कार हो. यहा "सर्वं खल्विद ब्रह्म' यह सिद्धात यथार्थ है वा नही, इसकी निरिक्षा करने की अपेक्षा नहीं है किंतु "मन एव मनुष्याणाम् कारण बधमोक्षयोः बधाय विषयासक्तम बधा याप्यवामनम्" इसके रहस्य पर दृष्टि डाल्ने की है

ओर यदि कोई भाविक ब्रह्मवाद को पसद करके सप्रदायी भाव-क्रिया, आडबर, पराश्रयत्व-पराधीनता के किनारे रखके उपरोक्त सतक की समझन सहित पचदशाग पूर्वक जीवन करे तो ऐसी व्यक्ति की हानी होती है, ऐसा नहीं जान पडता, (त द अ. १ विभूपक्ष मत अक २२ देखो), अन्यथा (जैसे वर्तमान में चल रहा है वैसा हो तो) हानीप्रद प्रकार है
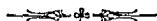
४१. तुलसीदासजी.

स १६१६ में हुये हैं. रामोपासक थे. वैष्णव सप्रदाय में इनका समावेश होता है स १६३१ में आपने रामायण बनाई. जो कविता, अलंकार, नीति ओर भक्ति रस में प्रसिद्ध है

यह महाराज वैराग्य, भक्ति, नीति की मूर्ति थे, ओर कवियो में सूर सूर और तुलसी कवि इदु कहाते हैं. इनके रामायण ग्रथ का श्रीमदभागवत से भी अधिक प्रचार है उसका वही कारण है कि जो उपर कहा

(विशेष आगे घर रामायण प्रसंग में)

४२. दादूदयाल.

(जन्म वि १६०० मरण वि. १६५९ मु. नारायणा राज्य, जयपुर. समय अकबर बादशाह) 'भारत के संत पुरुष' इस चौपडी के पेज १२८ में लिखा है कि अहमदाबाद (गुजरात) के लोदिराम नागर गृहस्थ के यह (दादू) अयोनिज पुत्र थे दादू ने साभर या आबेर (राज्य जयपुर) में पिंजारापने का धधा किया था इसलिये दादू नेमी का पुत्र मशहूर हुआ.

जो कि यह विद्वान नहीं थे, परंतु इनकी वाणी (उपदेश) हृदयभेदक होता था. आरंभ में ईश्वर का नाम और निर्गुण भक्ति तथा अंत में शांकर वेदांत (जीव ब्रह्म की एकता अभिन्न निमित्तोपादान, ब्रह्मसत्यं जगत् मिथ्या) इनका मंतव्य था. संतमत (ज्योतिदर्शन) के भी अनुयायी हुये थे.

इनके बडे बडे ५२ शिष्य हुये जिन्होंने स्थान बनाये–गद्दी स्थापीं. इनका ग्रंथ दादूवाणी कहाता है. उनके मुख्य स्थान नारायणा राज्य जयपुर में प्रसिद्ध है. इनकी संप्रदाय जयपुर अलवर के राज्य में प्रसिद्ध है. इनमें त्यागी (विद्वान) नागे (लंगोटिये सिपाही) और गृहस्थ भी होते हैं. जयपुर राज्य में जो नागों की पलटन है वोह इसी पंथ में है. इस संप्रदाय में भी अनेक भेद हो गये हैं.

दादू श्री के सुंदरदास वैश्य (वि १६५२–१७४६) प्रसिद्ध शिष्य हुये हैं. उनके ग्रंथ प्रसिद्ध है साधु निश्चलदास चारण इसी संप्रदाय में पण्डित हुये हैं. जिन्होंने विचारसागर और वृत्तिप्रभाकर नामक भाषा के उत्तम ग्रंथ बनाये हैं. विचारसागर का प्रचार बहुत है. वृत्तिप्रभाकर का प्रचार पण्डितों में है. इनका समय १८४९–१९१९ है

---

४३. चरणदास.

(स १७८१) इनका वर्णन संत मत में बांचोगे).

---

४४. बाबा लाली.

बाबालाल. जहांगीर के समय सं. १६४९ इ. में हुवा है क्षत्री था. चैतन्य स्वामी का चेला था. दाराशिकोह ने इसके वाक्यों की नादरुल नुकात किताब की इसी ने शाहजादे के सवालों का जवाब दिया है. आम होने से यहां सार जनाते हैं. (स.) फकीर का उद्देश क्या? (उ.) ब्रह्म ज्ञान (स.) उसकी शक्ति (उ.) चेतावती. (स.) उसका ज्ञान (उ.) इष्ट में दिल को लगाना. (स.) उसके हाथ का काम (उ.) कान बंद करना. (स.) उसके पांव कहां (उ.) कपडे विना छिपे हुये. (स.) उसकी जरूरत :(उ.) अपनी चौकीदारी. (स) परहेज (उ.) विषम भोजन से (स.) उसे आराम कहा (उ.) एकांत में ईश्वर के ध्यान में. (स.) निवास (उ.)

ईश्वर के बंदों में. (स.) उसका राज्य. (उ.) ईश्वर. (स.) वस्त्र ? (उ.) जमीन. (स.) जरूरी पाबंदी (उ) ईश्वर की स्तुति. और जरूरत का अभाव. (स.) कर्तव्य (उ.) निर्धनता और विश्वास. (स.) उसका सोहबती (उ) ईश्वर (स.) सबसे उत्तम धर्म कौनसा (उ.) प्रेम. (स) साधु को संबंध त्याग की आवश्यकता है. (उ.) नहीं. अनासक्त गृहस्थ साधु है. आसक्त फकीर दुनियादार है. (स.) अनुत्पन्न और उत्पन्न में क्या अंतर है. (उ.) नहीं. मूल में एक है. रचना में ईश्वर उसका सबब है. (साधु के लिये यह उत्तमाचार जान पडता है).

४५. साध पंथ.

दिल्ली और फर्रुखाबाद के बीच में २००० के करीब पंथी हैं. बीरभान जोगी (वि. सं. १७१४ में पेदा हुवा) ने चलाया. कबीर, दादू और नानक जेसा मंतव्य है. मंदिर नहीं बनाने. उनके १२ असूल हैं. १ जगत कर्ता ईश्वर उपास्य. उस अन्यथा कर्ता से इतर अन्य उपास्य नहीं. २. नम्रता, धीरज, अनासक्ति, निश्चय, भीख मने. ३. असत्य त्याग, निंदा मने, ईश्वर का कीर्तन, चोरी न करो. पर का हक मत लो, संतोष. परदोष को खयाल में न लेना, रागरंग मने. ४. निंदा का अश्रवण. व्यर्थ बकवाद मने. ५. लोभ त्याग. ईश्वर विश्वंभर है. ६. जात पांत का भेद मत करो. विवाद त्याग. अपने निश्चय में द्रढता. परका विश्वास मत करो. ७. श्वेत वस्त्र रखो. खिजाब, तेल, अत्तर, तिलक, माला, जेवर का त्याग. ८ नशीली वस्तु मने पान नहीं मूर्ति और मनुष्य को मत पूजो ९. खून न करना, किसी को दुःख न देना, झूटी गवाही न देना, जबरदस्ती से मत खोसो. १० एक पुरुष को एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरुष होना स्त्री मर्द के तावे रहे. स्त्री का झूठा न खाना. ११. साधवी वेश मत पहनो. दान लेना, भीख मांगना बंद-मंत्र जंत्र से मत डरो-परीक्षा करके भजनों का सत्कार करो और उनका संग करो. १२. ज्योतिष-महूर्त-शुकन-फाल पर विश्वास मत करो. ईश्वर की मरजी के तावे रहो. (वि.) यह सब बातें एकंदर उत्तम जान पडती हैं.

४६. रामस्नेही.

सं. १८७६ में एक वेश्य (रामचरण) साहुकार ने यह संप्रदाय चलाई. शाहपुरे मेवाड में इसका मुख्य स्थान है, और मारवाड तथा दूसरे नगरों

में भी इसके स्थान है. सामान्य प्रवृत्ति है. * इनका मत प्रथम रामभक्ति याने राम नाम स्मरण, उसके पीछे ज्ञान याने जीव ब्रह्म की एकता, अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है. (अपवाद पूर्ववत्).

४७ राधा स्वामी मत.

इस पंथ के चलाने वाले शिवदयालसिंह खत्री सं. १८७९ में हुये हैं. सं. १९३९ में मर गये.

इस मत का वर्णन संत मत में बांचोगे.

४८. शून्यवादि.

गत सेकडे में राजा दयाराम हाथरस का राजा हुआ है. मारकेस अफ हेस्टेंगज ने इसका गढ खोस लिया इसके हाथ नीचे बखतावर कवि साधु ने शून्यसार नाम ग्रंथ बनाया. उसका सार—ब्रह्म से लेके अणु तक आस्तिक नास्तिक त्रिपुटिमात्र (दृश्य मात्र) शून्य है. अपने विचार दूसरे को मत कहो. आप ही उपासक उपास्य बनो. मैं अविद्या से (प्रतिबिंबवत्) दूसरा देखता हूं तुम ही सब हो. जल तरंग में सब पानी है नेकी बदी कुछ नहीं. कोई निंदा न करे इसलिये अच्छा बोलना. दातारी करना. हिंदु मुसलमान समान है, द्वैतवादि हैं. सचाई धारण करो. मेरी, तेरी, मैं, तूं, यह भेद निकाल दो इ. इ.

सतनामी, शिवनारायणी, श्रद्धाराम, फलोरी, (जडवादि), वगेरे मत पंजाब में हैं

४९. स्वामी नारायण.

(वि. १८८६) अजुध्याजी से छपैयाग्राम का निवासी एक सरवरिया ब्राह्मण था. जिसने अपना नाम सहजानंद रखा. यह महाराज पहिले ब्रह्मचारी

* पडिताई पाने पडो यह पूर्व का पाप, राम राम समरे बिना रह गयो रीतो आप
वेद पुराण पढे पुनि गीता, राम भजन बिन रह गये रीता
ऐसे उनके उपदेश है

रहे, पीछे सन्यासी के चेले हुए, उस पीछे श्वेत वस्त्र तिलक माला धारण करके कृष्णोपासक हुए.

इनके शिक्षापत्री और वचनामृत यह दो ग्रंथ है. दोनो ग्रंथो से उनके मतव्य का सार यह है: ईश्वर सगुण, सक्रिय, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, नाना प्रकार के अवतार धारण करने वाला है, वही उपास्य है. जीव, अणु, चेतन, रागादि गुण वाला है. ईश्वर, जीनो के कर्म अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और लय करता है. जीव यथा कर्म जन्म पाते हुये योनियो को प्राप्त होते है. ईश्वर की भक्ति से सालोक्य याने अक्षरधाम नाम का लोक (भगवान का धाम) प्राप्त होता है, वहा ईश्वर के दर्शन और पादसेवादि होते हैं. वहा से पुनर्जन्म नहीं होता इस सालोक्य प्राप्ति का नाम मोक्ष है. इस सप्रदाय का नाम उधव सप्रदाय है. श्रुति, गीता, व्याससूत्र और भागवत का अमुक भाग प्रमाण माना जाता है

सहजानन्द के अनुयाइयो ने उनके चमत्कार प्रसिद्ध करके उनको ईश्वर का अवतार ठेराया है गुजरात, काठियावाड देश में इस पथ का विशेष प्रचार है इसका मत निर्वाद है. यह कोई नवीन मत नहीं है किन्तु श्री रामानुज के मत के अनुसार है और पूजा वगेरे वल्लभ सप्रदाय के समान है. साराश उनका रूपातर हो गेया जान पडता है.

द्रव्य घरना में इस संप्रदाय की उत्तम युक्ति है इस संप्रदाय में सहजानंद श्री के संबधी और उनकी औलाद गृहस्थाचार्य होते है और भगवा तथा श्वेत वस्त्रधारी साधु और गृहस्थ उनके चेले भी होते है वक्ष्यमाण चारित्र चद्रिका गत अक १८ भी देखो और विशेष जानना हो तो सत्यार्थ प्रकाश का दसवा समुल्लास देखो.

अन्य सप्रदायो के चाल चलन देख के सहजानंद जी ने दो सुधारे किये है (१) पुरुष और स्त्रियो के मंदिर जुदा जुदा रखे है, एक दूसरे में न जाय (२) द्रव्य की व्यवस्था साधुओं के हाथ में न रहे किंतु गृहस्थो के आधीन रखी है. अन्य संप्रदाय वालो को यह दो बात सीखने योग्य है

शोधक—इस पथ की अप्रमाणिकता और विमूषक मत रामानुज के मत के समान जान लेना चाहिये. *

---

* सुनते है कि 'हारादिग्विजय' इस नाम का ग्रंथ बना है उसमें मतवाद जिस सहजानंदजी ने धर्म की दिग्विजय की, ऐसा इतिहास है यदि यह बात सच हो और सौ ना

५०. ब्रह्मसमाज.

ब्रह्म—इस संप्रदाय के चलाने वाले राजाराममोहनराय बंगाली हुये हैं. यह वि. १८८७ में हुये हैं. ईश्वर और वेद के मानते थे. परंतु इनके पीछे-दूसरे (देवेन्द्रनाथ ठाकुर) हुये. उन्होंने वेद के मानना छोड दिया. आदि ब्रह्मसमाज, साधारण ब्रह्मसमाज यह दो उसके भेद हैं. प्रार्थना समाज भी इसी की शाखा है.

‡ ब्रह्मज्ञान—राजाराममोहनराय सन् १८२८ (वि. १८८९).

ब्रह्मध्यान—देवेन्द्रनाथ. मूर्ति अवतार नही मानते थे, उपनिषद् मानने थे.

ब्रह्मानंद—बाबू केशवचंद्र. जातिभेद नहीं मानते थे और न जनेऊ

सन् १८५८ (वि. १९१५) में समाज में दाखिल हुये.

भारत रहस्य ब्रह्मसमाज सन् १८६७ (वि. १९२४) में हुई. सर्व शास्त्रों का सार लेना

श्लोक संग्रह एक ग्रंथ बनाया. थोडा समय पीछे समाज जुदा पड गई.

सार्धारण ब्रह्मसमाज सन् १८७८ (वि. १९३५) में शिवनाथ शास्त्री और आनंदमोहन......ने स्थापन की. +

ब्रह्मसमाज स्थापन का मुख्य उद्देश एक ईश्वर की भक्ति और प्रजा में जो वहेम, कुरीति रिवाज चल रहे हैं. उनका सुधारा, विद्याप्रचार और प्रजा की उन्नति है. परंतु ख्रिस्ती धर्म के जेसे रूप में हो जाने से यथेच्छा प्रवृत्ति नहीं हुई तो भी इस समाज के स्थान बडे बडे नगरों में हैं, बंगाल देश में विशेष हैं. बडे बडे विद्वान इस सोसाइटी के मेंबर हुये और हैं. हिन्दू, ख्रिस्ती न होने में कुछ निमित्त है.

सौ वर्ष पीछे बोध प्रसिद्धि में आवे तो लोग यही कहेंगे कि इस का लेख क्या सब असत्य होगा? नहीं. हालांकि सहजानंद योग्य साधु पुरुष हुये हैं उन्होंने खंडन मंडन वादविवाद का ग्रहण नहीं किया है, क्योंकि वे वेद शास्त्र के ज्ञाता नही थे, और भरतखंड में बहुत भाग ऐसा है कि वहां के निवासी स्वामी नारायण पंथ का नाम भी नहीं जानते

‡ एक बी ए ब्रह्मसमाज के उपदेशक थे उनसे १८७८ तक की हिस्ट्री जानी गई है

+ एक लिखता है कि बाबू केशवचंद्र ने सन् १८६८ ई में स्थापन की. राजा राममोहनराय देशभक्त ब्रह्मसमाज के पेगंबर १७७४ ई सन् में जन्मा १८३१ में इगलैंड, १८३२ में फ्रांस गये १८३३ ई में मर गये. बाबू केशवचंद्र ब्रह्मसमाज की शाखा के आचार्य सन् १८३८ में जन्मा. बायबल का अभ्यास किया. १८६४ में मद्रास गया. १८६५ में पंजाब गया १८६६ में ब्रह्मसमाज से जुदा हो के साधारण ब्रह्मसमाज कायम किया १८६८ में मुंबई आया. स्वामी दयानंद ने टीका की. १८७० में इगलैंड गया. १८७८ में पीछा आया जाहिर किया कि मनु, मोहम्मद, ईसा वगेरे ने स्वप्न में कहा कि तू पेगंबर है. १८८४ ई. में मर गया.

इसी ब्रह्मसमाज में से एक प्रार्थना समाज निकली है, मूल सिद्धात वेही है, परतु हिन्दू सोसाइटी के प्रचलित वर्णाश्रम के भेद को पालती है. जनेऊ चोटी का त्याग नही किया. इस समाज ने मुंबाई प्रदेश में अच्छा वर्क किया है. अनेक प्रकार के उपयोगी ग्रथो का सस्ते भाव मे प्रचार किया है, जिससे साक्षरो को बडा लाभ मिला और मिल रहा है.

ब्रह्मसमाज का मंतव्य.

(१) ईश्वर १ अद्वितीय, स्वय नित्य व्यापक निराकार, असीम, सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, न्यायकारी, प्रेम स्वरूप–मगल–स्वरूप दयालु, शुद्ध सचिदानद स्वरूप है. तमाम जगत् जीवो का पेदा करने वाला, हर समय जगत् जीव का व्यवस्थापक और जगत् जीव का अधिष्ठानाधार तथा स्थिति रखने वाला है ईश्वर के सिवाय कोई भी वस्तु स्वरूप से अनादि स्वतंत्र नहीं है. ससार की हरेक वस्तु (सूर्य पशु पक्षी आग पानी वगेरे) केवल ईश्वर के ज्ञान का जहूर और नतीजा है और उसी के सहारे ठेरी हुई है.

(२) ईश्वर की सत्ता सब जगह है रूहानी दुनिया (जीव सृष्टि) में भी वोह जीवता पुरुष होके जीव की तमाम जरूरतो को दूर करता है

(३) प्राचीनकाल में जेसे ऋषि, मुनि मुलहिम (ईश्वर मे ज्ञान पाने वाले) होके अपना जीवन धन धन (सफल) करते थे वेसे ही इस जमाने में भी भक्तो और सच्चे सेवको को इल्हाम (ईश्वर उपदेश) के द्वारा वही परमेश्वर हिदायत (विधि निषेध रूप उपदेश) करता है और यह सिलसिला (ऐसा प्रकार) हमेशे रहेगा.

(४) मनुष्य का जीवात्मा शरीर से जुदा है. जीव का इस ससार मे इस शरीर के साथ कुछ समय के वास्ते सबध है परतु यह सबध आरजी (कल्पित जेसा) है. जीव के जुदा होने पर शरीर नाश हो जाता है. मनुष्य का जीव अविनाशी है और भविष्य में हमेशे के लिये अनत उन्नति (तरक्की) करने के योग्य है.

(५) सब मर्द औरत आत्मिक स्वतत्रता और धर्म जीवन सपादन करने का समान अधिकार रखते है.

(६) मनुष्य के जीव का ईश्वर के साथ एकतबई (स्वाभाविक बनाया हुआ) जिंदा सबध है, इसलिये जीवात्मा अपने पेदा करने वाले के गुणो में हमेशे अनत उन्नति करता है उस उन्नति की कोई सीमा नहीं है.

(७) माद्दी पदार्थ याने धातु वनस्पति पशु पक्षी वगेरे की तरह मनुष्य का जीव स्वतंत्रता से अभागिया हो, ऐसा पेदा नहीं किया गया है, किंतु वोह अमुक सीमा

तक स्वतंत्र रखा गया है, इसलिये अपने विचार, उच्चार और आचार का ईश्वर के सामने जवाबदार है.

(८) जीव का मुख्य जीवन ईश्वर उपासना पर है जो आत्मिक होनी चाहिये.

(९) परमात्मा के साथ जुडकर अपने में ईश्वर के स्वभाव को ज़ज़ब (संपादन करना वा लाना) करना, नेक इरादे से लोगों की भलाई और सेवा करके सच्चाई और न्याय तथा शुद्धता कायम करना. आत्मिक उपासना (रूहानी इबादत) है.

(१०) गुनाह (पाप) रुकने के लिये और अपने को कमजोर जानके ईश्वर से मदद मांगना और अपनी उन्नति की इच्छा रखना प्रार्थना है. अनुप्रणित (सदीनता–एकाग्रता) हो के प्रार्थना करना.

(११) ईश्वर से विरोध, उसकी मरजी के विरुद्ध निषिद्ध कामना को मुख्य मानना पाप है.

(१२) मनुष्य का जीव वीर्य से, वा पेदा होने पर गुनहगार नहीं होता किंतु स्वतंत्र है, स्वतंत्र इच्छा से ईश्वर की मरजी के विरुद्ध चल के गुनाह करता है. कोई बहकाने वाला शेतान भी नहीं है.

(१३) ईश्वर कर्म का फल (गुनाह की सजा) जरूर देता है परंतु वोह हमारी बहतरी और भलाई वास्ते है और वोह सजा हमेशे के लिये नहीं होती.

(१४) ईश्वर गुनाह माफ नहीं करता और न हमारे बदले दूसरे को किफारा (बदला) करता है और न किसी पेगंबर आचार्य गुरु की सिफारश पर हमको छोड देता है और न हमारे गुनाह के बदले में हमेशे के लिये नरक देता है किंतु अपने मंगल स्वभाव के अनुसार हमको अंत में गुनाह से मुक्त करके हमेशे का जीवन और सुख बखशता है.

(१५) गुनाह करने पर अंदर में जो प्रत्यवाय होता है यह गुनाह की सजा है.

(१६) गुनाह की सजा जीव के साथ साथ होती है. भविष्य में कोई कयामत का दिन (पुण्यपाप का हिसाब होके बदला मिलने का दिन) किंवा भविष्य में नरक मिलेगा, ऐसा नहीं है.

(१७) कोई बहिश्त (स्वर्ग) वा दोजख (नरक) स्थान नहीं है किंतु जीवकी शुद्ध अशुद्ध इन दो स्थिति का नाम ही बहिश्त दोजख है.

(१८) गुनाह होने पर अंदर ही अंदर दुःख और अजाब विषय होना दोजख है और पापों से मुक्त होके ईश्वर के गुणों में उन्नति पाके आनन्द संपादन होना वहिश्त है.

(१९) तीर्थ वा हज्ज करने, तप्तमुद्रा (छाप) लेने, जल प्रवाह सेवने, पंचधूनी तपने, उपवास करने, गुफाओं में वन में एकांत में रहने, आसन लगाने, और पेगंबर वा देवता की सिफार्श पर भरोसा रखने से मुक्ति (निजात) नहीं मिलती. किंतु अपने जीवन के हर काम में ईश्वर की इच्छा तलाश करके लोगें की आत्मा और शरीर की भलाई तथा सेवा करने से मुक्ति मिलती है.

(२०) जीवत्व का अभाव, जीव ईश्वर एक होना इसका नाम मुक्ति नहीं है किंवा शरीर से जुदा होने पीछे किसी ऐसी स्थिति में रहना कि जिसमें जीव दुःख सुख वा आराम तकलीफ नहीं पाता, ऐसी स्थिति का नाम मोक्ष नहीं है; किंतु हरेक पाप त्याग के तन मन की वासना स्वाधीन करके अपनी मरजी को ईश्वर की मरजी (इच्छा) के साथ साथ एक कर के उसकी महिमा (बुजरगी–महत्व) कायम रखने का नाम मुक्ति है. पापत्याग के सच्चे दिल से तोबा कर लेना ही गुनाह के लिये बदला (किफारा) है. और मंगल भाव याने भलाई और पवित्रता में ईश्वर की मरजी के साथ एक हो जाना ही सच्ची मुक्ति है.

(२१) किसी मनुष्य वा मनुष्य की किताब पर ईमान (निश्चय) लाने से या उसके पठन श्रवण से मुक्ति नहीं होती. यद्यपि वे थोडेक (किसी कदर) सहायक हो सकते हैं परंतु मुक्ति का एक पूर्ण जरीया (साधन आसरा) केवल एक परमात्मा ही है उस पर भरोसा होना चाहिये.

(२२) यह सृष्टि अजाब (दुःख–पाप) स्थान नहीं है और न मनुष्य किसी पाप कर्म के फल भोगने वास्ते आया है, किंतु यह जगत जीव के शिक्षण के लिये एक प्राथमिक शाला है. मनुष्य का जीव एक खास समय तक शरीर के साथ रह के काफी और जरूरी शिक्षण संपादन करने पीछे परलोक याने दूसरी दुनिया में रहने योग्य बनता है.

(२३) ईश्वरीय पुस्तक कोई नहीं है. मनुष्य ने ईश्वर से ज्ञान पाके अपनी योग्यता के अनुसार जिन सिद्ध (सिदाकतें-सचाई) को अपनी आत्मिक चक्षु से देख पहेछान के (अनुभव करके) अपनी वाणी और शब्दों (पद) में कलम से लिखा है वे पवित्र पुस्तक कहाती हैं; इसलिये उनकी सच्ची बातें सत्कार करने योग्य हैं:

परंतु कोई पुस्तक भी भूल (भ्रांति) रहित नहीं और कोई मनुष्य भी गलती से खाली नहीं है. इसलिये वे हमारी मुक्ति का पूर्ण और एक सान (जरीया) नहीं हैं, ऐसी (सीधी सचाई) ही ईश्वरीय वाक्य है.

(२४) ईश्वर के सिवाय किसी दूसरे को खुदा मान के पूजना ठीक नहीं है.

(२५) सब मनुष्य परस्पर में बहिन भाई हैं और ईश्वर सब का बाप है. केवल कुल वा वीर्य की बिना पर किसी को मान सत्कार देना वा हल्की निगाह से देखना पाप है.

"ब्राह्म धर्म के असूल" जो रिफाह आम स्टीम प्रेस लाहोर में छपे और मिंबर साधारण ब्रह्मसमाज ने विवेचन किया. ब्राह्म संवत् ७२ वि. सं. १९५९ ई. सन् १९०२. उसमें से उतारा गया.

ब्रह्मसमाज के एक बी. ए. श्री उपदेशक से पूछा गया तो उत्तर मिला:—

१. ईश्वर ने सृष्टि अभाव से बनाई वा किसी भाव रूप में से बनी वा बनाई, इस विषय में अभी तक मतभेद है.

२. जीव चेतन प्रकृति में से तो नहीं बना है, परंतु यह मालूम नहीं कि किस में से बना.

३. जीव में ईश्वर का ज्ञान है.

४. जीव को पहिलेपहल शरीर में क्यों भेजा उसका कारण अभी तक अज्ञात है वा ईश्वर की इच्छा.

५. पुनर्जन्म का अभी तक निर्णय नहीं है.

इन सवालों का उत्तर उनके ग्रंथ में से नहीं मिला इसलिये पूछ के लिखना पडा है.

शोधक.

(१) वक्ष्यमाण ईसराइली मत के अनुसार इसका अपवाद है; क्योंकि ईश्वर ने अपनी इच्छा से अभाव में से जीव जगत बनाया है. पुनर्जन्म नहीं है. पशु पक्षिओं में मनुष्य जेसा जवाबदार जीव नहीं है; ऐसा माना है.

(२) आश्चर्य यह है कि इसके मेंबर विद्वान हैं तो भी अभाव मे भाव रूप उत्पत्ति, ससीम सादि वस्तु की अनंत उन्नति और कारण विना ईश्वरकृति मानते हैं. सृष्टि नियम विरुद्ध वा व्याप्ति रहित बात है.

(३) ईश्वर की तरफ से इलहाम मानना और फेर उसके कथन पर विश्वास न होना वदतो व्याघात है अथवा लोक पालसी है.

(४) दुःखी सुखी स्थान में जीव का कैसे संबंध वा जन्म हुवा, बालक क्यों मर गया, इसकी व्यवस्था इस मंतव्य में नहीं होती.

(५) ईश्वर ने जीव जैसा बनाया, जैसी योग्यता दी वैसा ही करेगा. फेर स्वतंत्रता क्या? उन्नति क्या?

(६) सादि अनंत नहीं हो सकता, उसकी व्याप्ति नहीं मिलती इसलिये अनंत उन्नति वा जीव नित्य नहीं माना जा सकता क्योंकि सादि है.

(७) जीव एकदम बनाये और किस प्रकार नियम से जन्म देता है, और हमेशे बनाता रहता है वा बनाये हुये ही को जन्म देता है, इसका खुलासा नही हो सकता. (ब्रह्म नहीं कर सकते).

(८) शरीर त्याग पीछे नई दुनिया में यदि मेटर द्वारा उन्नति करेगा तो यही पुनर्जन्म और यदि मेटर विना करेगा तो उसका सबूत नहीं मिलता, कल्पना मात्र है.

(९) पशु पक्षिओं का कर्ता भोक्ता जीवन मानना यह कल्पना नहीं तो क्या? दृष्टि विरुद्ध दोष है.

(१०) विशेष समीक्षा सत्यार्थप्रकाश में प्रसिद्ध है.

विभूषक मत.

ब्रह्मसमाज में विद्वान प्रतिष्ठित योग्य पुरुष शामिल हैं, आर्यावर्त के हानीकारक वहम दूर करने और साम्यभाव फेलाने तथा ईश्वरीय प्रेम दरसाने के लिये उत्तम संस्था है. यदि अपने पक्षों का हठ न करके दूसरे पक्षों से टोलरेशन करके देशहित में प्रवृत्त हो तो अच्छा काम बना सकती है.

इसके मंतव्य में जिसकी भावना हो वोह यदि पूर्वोक्त मतक समझ के पंच दशांग पूर्वक वर्ते तो उसकी कोई हानी नहीं है. त. द. भ. १ विभूषक मत का अंक ७ और ३९ विचारो.

---

५१. संत मत.

संत एक पारिभाषिक, रौढिक पद है, जिसको साधु का पर्याय माना जाता है अर्थात् जो साधन युक्त हो, जिसकी रेणीकरणी उत्तम हो, जितेंद्रिय हो और उत्तम

गुण स्वभाव वाला हो, फिर चाहे वोह भक्ति मार्ग वाला हो वा योगी हो वा ब्रह्म ज्ञानी हो, और कोई भी जाति वाला हो.

बहुत करके तमाम संतों का मत अभिन्ननिमित्तोपादानवाद होता है. कोई नामरूप को मिथ्या कह देता है. वस्तुतः वे निरंजन निराकार और उसकी शक्ति, इससे इतर कोई तत्त्व नहीं मानते.

इस मंडल में हठयोगी भी हुये हैं और क्रियायोगी भी हुये हैं कोई सहेजयोगी भी हुये हैं. परंतु कोई न कोई प्रकार के योग मार्ग के बिना कोई नहीं हुवा है.

कहते हैं कि इसके प्रवर्तक आदिनाथ योगी हुये. मत्स्येंद्र, गोरक्ष, जालंधर, भर्तृहरि, गोपीचंद, शाबर, आनंद, भैरव, सिद्धबुद्ध, निरंजन, कपालि, वगैरे इसी संस्था वाले हुये थे, और समीप काल में तुलसी, कबीर, नानक, दादू, चरणदास, राधास्वामी, मुईनुद्दिन, रवीदास, वगैरे हुये हैं

यह मंडल तप (क्रियासाधन), धारणा, ध्यान और संयम पीछे कुछ दर्शन करते हैं. ऋद्धिसिद्धि (कश्फ करामात) के विश्वासी होते हैं; क्योंकि उनकी मानसिक शक्ति बढ जाती है इसलिये सर्व साधारण से विशेष उपयोग का अनुभव करते हैं

ब्रह्म आत्मा के स्वरूप को अनाम, अवाच्य, चेतन, निर्गुण, निरंजन और निराकार मानते हैं, यह उन सब का एक अनुभव है. और वही आपही जगत रूप (त्रपुटिरूप) होता है, आपही उपासक उपास्य, उंच नीचक, कर्ता भोक्ता, जड चेतन, रक्षक भक्षक, ज्ञाता ज्ञेय, बंध मुक्तरूप होता है. यह उन सबका सिद्धांत है इनमें से कोई तो जलतरंगवत होते रहना, कोई अपनी इच्छा से नाना रूप होना कोई खेल-लीला रूप करना मानता है. परंतु सृष्टि जीवों के कर्मवश रची या अभाव में से भाव रूप की अथवा अपने आप याने स्वभावतः सृष्टि होती है, ऐसा वे नहीं मानते. जीव शिव एक स्वरूप है ऐसा मानते हैं. कोई कोई भक्ति को प्रिय समझते है, कोई कोई योग को ठीक कहते हैं और कोई ज्ञानमार्ग को पसंद करता है. उनकी क्रिया, दर्शन और प्रकार में मतभेद होता है. जैसे कि आगे बाचोगे

जब के साधक चक्कर वा हठ, वा पूर्व वा पच्छम वा शब्द बहिंगम अथवा अन्य प्रकार के साधन के द्वारा सुरत (जीववृत्ति) को ले जाता है तो ब्रह्मरंध्र में पहुंचने पूर्व और पीछे भी उसको अंदर में नाना प्रकार के नाम रूप के दर्शन होते हैं. जैसे कि अनहद चक्र के साधने से अनहद (नाडी की गति जन्य शब्द) सुनना

और उसमें प्रकाश तथा नाना प्रकार की जगत का दर्शन होना. खेचरी मुद्रा से मगज के रसका स्वाद लेना कुंडली के जागने पर प्राण सुखमना (उभयछिद्र) से जाना भ्रकुटी चक्र की साधना मे अनेक रंग और पीछे स्वच्छ प्रकाश जान पडना. सहस्रदल (ब्रह्मरंध्र) की साधना से असीम प्रकाश जान पडना और दिन रात की जेसी जगत का मालूम पडना, सिद्धों के दर्शन होना, मन को जानना, मन शुद्ध साफ हो जाने से एस्टरल लाइट और हिरण्यगर्भ द्वारा कुछ विशेष बातें (सिद्धि) जान पडना. इस प्रकार विचित्राकार, विचित्रशब्द, विचित्रमूर्ति मालूम होते हैं. परंतु जो जेसा एक साधक को जान पडा सो वेसा ही दूसरे को जान पडे, ऐसा नहीं होता किंतु वेसा और उससे अन्यथा भी जान पडता है. और हिंदू संतको जो जेसा जान पडे वोह वेसा मुसलमान वा ख्रिस्ति संत को और जो जेसा मुसलमान साधक को जान पडे वोह वेसा अन्य को नहीं जान पडता. ऐसा व्यक्ति और धर्मानुयायी प्रति भेद होता है. यथा हिंदु को रामकृष्ण, शंकर, देवी, व्यास, भैरव, वगेरे सिद्धों के और मंदिरों के वा इष्टों के दर्शन होंगे, वेसा मुसलमान ख्रिस्ति को नहीं. मुसलमान संत को उसके माने हुये मुसलमीन महात्मा ओलिया के और मक्का मदीने करबला वगेरे के दर्शन होंगे, वेसे ख्रिस्ति हिंदु को नहीं. ख्रिस्ति संत को प्रेटो, रसूल वगेरे के और येरोशिलियन के दर्शन होंगे, वेसे मुसलमान हिंदु को नहीं. ऐसे ही अन्य के वास्ते जान लेना चाहिये. इसी प्रकार किसी को ब्रह्मरंध्र का खयाल भावना होने याने वहां सुरता जाने के पीछे खिडकी-छिद्र पीछे सतलोक, पीछे निरंजन ज्योति जान पडेगी, दूसरे को दूसरा प्रकार ज्ञात होके शून्य समाधि हो जायगी. यह सब भिन्नता उन उनके ग्रंथगत अवलोकन दर्शन से जान सकते हैं. हमको सब योगी संतों के ग्रंथ नहीं मिले. वरने अनेकों के भेद जनाते. इसलिये जिनका कुछ मिला उनका सार आगे जनावेंगे. उनके दर्शन में भेद होने से उनकी कपोल कल्पना है ऐसा सर्वथा नहीं कह सकते, किंतु उनको जनाया सो ही लिखा वा होना चाहिये. परंतु यहां रहस्य है. वोह यह है कि जिसको जेसे देखे, सुने फोटो वगेरे के संस्कार (इम्प्रेशन) भावना होती है उसी के अनुसार एकाग्रता प्रसंग में वे अभ्यासवश अज्ञात वा ज्ञातरूप में फुरते हैं और उनके अनुसार सूक्ष्म शेषा (हिरण्यगर्भ) में वेसे नाम रूप (आकार) बन के जान पडते हैं. जेसे कि स्वप्न में होते हैं. स्वप्न से इतना अंतर है कि वहां निद्रा दोष है. यहां निद्रा दोष नहीं है किंतु जेसे उदासीन अवस्था में अनिच्छित अनेक प्रकार की छवी सामने आती हैं वेसे वहां भी अनिच्छित, आकृति

उनके सामने होती हैं. और कभी कोई आकार (आकृति) हिरण्यगर्भ वा एस्टरल लाइट में हो रहा हो या घूमता हो तो वोह भी जान पडता है. जैसे अज्ञात-पृष्टगत के पदार्थ का आकार ईथर में बनता है वोह प्रतिबिंब रूप से कान द्वारा जाना जाता है, वैसे ही विधेय (मिस्मेरजर का सबजेक्ट) मन साफ होने से ईथरगत आकारों को जान लेता है, वैसे ही वह साधक शुद्ध अंतःकरण होने से हिरण्यगर्भगत कोई फोटो यदि हों तो उनको भी देख लेता है, और जैसे फोनोग्राफ की कोई सुई इधर उधर हो जावे तो वाक्य अन्यथा जान पडते हैं, ऐसे ही यदि संस्कारी चित्त (वा स्मृति के सेंटर के रूप) में गड़बड़ हो जावे तो इधर उधर के संस्कार मिलके अदृष्ट-अश्रुत नवीन रूप हिरण्यगर्भ में बन के दीख पड़ता है.

इस प्रकार नाना रंग, नाना आकृति, सिद्ध, दुष्ट, नगर, तारागण, बिजली की झिलमिल ज्योति, शरीर, आकाश वगैरे रूप सृष्टि और सतूलोक वगैरे जान पडने हैं. साधक को मगज, संस्कार, संस्कारी चित्त, हिरण्यगर्भ और एस्टरल लाइट तथा उनकी योग्यता का ज्ञान न होनेसे वोह उस दर्शनको सत्य मान लेता है और उसी भावना से उसी रूप में वर्णन करता है, और संभव है कि महात्म्य वृद्धि अर्थ कुछ मिर्ची मसाला लगाता हो. (आगे बांचोगे). पदार्थविद्या को न जानने वाले श्रद्धालु भक्त उस बयान को वैसा ही जान के उधर चलने की इच्छा करते हैं और अभ्यास करे तो यथा संस्कार उनको भी जान पडेगा * और अपने को सर्वज्ञ मानने लगेगा.

संत मत का प्रमाण, अपने गुरु का विश्वास है. जैसा वोह बताता है वैसा वोह श्रद्धा पूर्वक करता है और ऐसा करने पर जो जो जाना जाय उसको वोह सत्य ही मानता है. बहुत कर के उनकी श्रद्धा, उनका विश्वास किसी अन्य व्यक्ति वा किसी ग्रंथ पर नहीं होता; किंतु कोई कोई तो वेद शास्त्रों को हलकी दृष्टि से वर्णन करते हैं याने निंदा भी कर डालते हैं, और उनके गुरु ने जो तरकीब बताई हो उसको छिपाते हैं. बहुत काल तक शिष्य सेवा भक्ति करे और उसे श्रद्धावंत जानें तब थोडा थोडा बताते हैं. ऐसा क्यों? उक्त कारण.

---

* जिस किसी को शंकर सिद्धांत याने विवर्तवाद का वा विलक्षण जगत के विलक्षण स्वरूप को जानने की इच्छा हो तो संतो के समान साधन करके उक्त सृष्टि का अनुभव लेना चाहिये, तो उसको विवर्तवाद और विलक्षणवाद का रहस्य अनुभव में आ जायगा. साधक जो देखता है उसको माया का कार्य (नामरूप) मानके व्यापक दृष्टा चेतन के वे विवर्त जान पडेंगे. परंतु शब्दमात्र से उसका अनुभव नहीं हो सकता.

हम जो इस विषयको यहां लिखते हैं उसका कारण यह है कि सर्व साधारण मंडल में से बहुतेरे इस नकली विषय में भंजाये हुये हैं. * इसके वांचने से उनकी आंखें खुलें, अंध विश्वास में न फंसें; वस्तुतः यह विषय फिलोसोफी प्रकरणके योग्य नहीं है, किंतु मै पाठक का व्यर्थ काल लेने का अपराधी हूं. अतः क्षमा मांगता हूं.

जब तक इस संतदर्शन के दो तीन दाखले न देवें वहां तक उपरोक्त भेद (भावना संस्कारजन्य दर्शन) का भान न हो, इसलिये उदाहरण देते हैं ताकि अंध श्रद्धालुओं का नमूना आपको ज्ञात हो. उसके बांचने पीछे पुनः प्रस्तुत प्रसंग (संत मत की यह अनुभूमिका) वांचना चाहिये. ‡

५२. घट रामायण (संतदर्शन)

यह ग्रंथ सने १८९९ ई. में मु. लखनऊ. मुनशी गंगाप्रसाद वर्मा व बिरादरान प्रेस में छपा है. की. १॥)

इस ग्रंथ में कर्ता ने अपना नाम तुलसीदास बताया है. सवैया छंद बद्ध है. उनमें तुलसी, इस नाम की छाप है. पृ. ४२९ में लिखता है कि सं. १६१६ में यह घट रामायण मैंने बनाई. लोक में इसका प्रचार न हुआ किंतु इस पर झगडे हुये तब "जग विरुद्ध देखा जब जानी सात कांड रामाण बखानी" (पृ. ४३८) सं. सोले सौ इकतीसा (१६३१) राम चरित्र कीन पद ऐसा. घट रामायण गुप्त करावा. इत्यादि. (पृ. ४७४) सं. सोले सौ असी (१६८०) नदी बर्ण की तीर. सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तजा शरीर.

---

* ज्वालामुखी से उत्तर की तरफ १२ कोष पर एक सन्यासी, एक ब्रह्मचारी रहते थे (सुना गया कि यहां ३० वर्ष से योगाभ्यास करते हैं) योगी थे, वे दिव्य मूर्ति शांत स्वरूप थे इससे मिलना हुवा बात चीत चली तो जान पडा कि हृदय भाग में अंगुष्टमात्र अंडाकार दो पहेर के सूर्य के प्रकाश जैसी ससीम रोशनी का बिंब जान पडता है उसको वे ब्रह्म का स्वरूप मान बैठे थे. पीछे उनको उपनिषदों की श्रुतियें सुनाई अर्थात् ब्रह्म हृदय नहीं, साकार नहीं रंग रूप रहित है. इत्यादि की साक्षी दी तब उनको आगे बढने की जिज्ञासा हुई और समझने लगे; अब अन्यों की तो बात ही क्या करना.

‡ ग्रंथ का दूसरा तीसरा अध्याय बांचने पीछे तमाम संत मत बांचोगे और सृष्टि नियम को आगे रखोगे तो आपको ज्यादा समझ में आवेगा. और संप्रदायीओं की बुद्धि को पहिचान सकोगे. सनो की अज्ञात रूप से जो कल्पना वा भ्रम भाग सो भी जान लोगे.

"ज्ञान और गमा. जेसे खेंचो वेसे समा"

ज्ञान और हथिरा विषय जेसे तानो वेसे तुम्हारे मन पसंद पडेगा (कुशल कटाक्ष).

इस ग्रंथ में पृ. १४३।१४७।१६२।२९।।३४६ वगैरे में ब्रह्मा, विष्णु, राम, कृष्ण, वेद, पुराण की निंदा की है. उनको अज्ञ और नारकी कहा है. पृ. १४७ १८६ में गीता, भागवत, ६ शास्त्र और स्मृतिओं का खंडन तथा दोष दरसाया है. पृ. १६० से १६७ तक ज्योतिष, व्रत, मूर्ति, तीर्थ, गंगा, राम नाम, पुण्य, श्राद्ध, तृपण और भागवत का खंडन किया है. पृ. २२ में कबीर की और पृ. १८१ में तुलसी ज्ञानी की साक्षी दी है. पृ. १८७ में व्यास का खंडन है. पृ. २६२ में राम नाम और २६७ में वालमीक का खंडन है. पृ. २९३ में मूर्ति का अति खंडन है. पृ. ३०० में वेद को असत्य वक्ता बताया है. ३१६ में जनेऊ कंठी का खंडन किया है ३७९।३८२ में 'पढे गुणे कछु हाथ न आया' 'संत अंत वेदन नहीं पाया' इ. पृ १९४ में संत की महिमा और पृ १९० मे योग संबंधी प्रश्नोत्तर हैं. इस ग्रंथ में काशी विषे अनेक पंडित मत पंथ वालों के साथ शास्त्रार्थ हुआ उसका वर्णन किया है. मुसलमान काजी मीरतकी के साथ शास्त्रार्थ हुआ उसमें मुसलमानी मत और कुरान का खंडन किया है. इस ग्रंथ के सवैये अपूर्ण पिंगल शास्त्र के विरुद्ध और अनियमित है. तुलसीकृत रामायण वाली जैसी भाषा, छंद बद्ध और रसिक नहीं है.

उपर के तमाम वृतांत से जान पडता है कि तुलसीकृत राम महात्म्य वाली रामायण के कर्ता जो कविइंदु तुलसीदास गुसांई हैं. उसकी बनाई हुई यह घट रामायण नहीं है. † तथापि सत मत में इस ग्रंथ की महिमा है और कितनेक को उसमें अंध देखा, इसलिये उसका विषय और उसका अपवाद यहां लिखना पडा है.

घट रामायण कर्ता की सृष्टि. (पृ. ३९ वगैरे).

परब्रह्म से आकाश, उसके साथ वायु (८९ प्रकार), दोनो से अग्नि, उसमे पानी (३६ प्रकार का), पानी से पृथ्वी, पानी से सृष्टि. उसमें चेतन समाया.

अनाम पुरुष उसकी लहेर माया—सत नाम. सत लोक में साहेब उसका सत नाम है और यह चौथा पद है. इस सत नाम ने इच्छा की. उससे निर्गुण पेदा हुआ. वेद इसको ब्रह्म कहता है. माया ब्रह्म मिले, उससे राम (मन) पेदा हुआ. ३ गुण २५ प्रकृति और इंद्रिय ९ यह सब मिल के सगुण ईश हुआ. मन निराकार था सो आकार वाला हुआ. उसमें ज्योति मिली. ३ गुण का विस्तार हुआ.

† घटरामायण की मेर कबीर पंथ से मिलती है, इसलिये शायद किसी कबीर पंथ के भक्त ने रचा हो, ऐसा अनुमान कर सकते हैं आगे राम जाने.

ब्रह्मा, विष्णु और शिव पेदा हुये. उसमें से अवतार हुये, उसीसे ऋषि मुनि योगी ब्रह्मवित् जन्मे और वेद का व्यवहार चला.

सत् साहेब का अगमपुर. उसकी इच्छा मे उसके निरंजन पुत्र पेदा हुआ. उसने सृष्टि रची. उसमे ज्योति अंश सत्साहेब का आया था. दोनें मिलके वैराट बनाया. निरंजन ज्योति का ग्रास हुआ तब पुरुष ने शाप दिया. "लाख जीव नित्य पाप करें" निरंजन काल होगा जगत् करेगा. उस व्यापक निरंजन ने जगत् बनाया. यह निरंजन सत्लोक (चौथे पद) में नही है. +++ इस ज्योति निरंजन से ब्रह्मा, विष्णु, महेश हुये. गायत्री हुई. माता याने ज्योति ने गायत्री के शाप दिया वह केतकी हो गई और ब्रह्मा प्रपंची हो गया. इसलिये ब्रह्मा की संतान पापी हो गई, उसने राम कृष्ण की भक्ति बताई. इ. निंदा.

अलख ज्योति १. सत नाम (सत लोक निवासी) २. कमल तेज शून्य (परमात्मा), वहां से आत्मा हुवा. उससे आकाश, आकाश से ४ तत्त्व. उससे वैराट. तद्गत् आत्मा में १० इंद्रिय फांसी उनसे कर्म, कर्म संबंध, आशा, आशा से पुनर्जन्म.

सत् पुरुष, उसका सुत निरंजन (आत्मा—ब्रह्म—मन) उससे पवन उससे पानी. उसमें मन बंधा.

(१) हंस, शून्य के पार मान सरोवर में रहता है, उससे अव्वल सत् नाम में रहता था. हंस नाम से पेदा हुआ नाम में समाता है, हंस मे सत पेदा होता है— ऐसे १० बातों का कोष्टक—

न.	नाम वस्तु.	उसका निवास.	उसका पूर्व में निवास.	वोह किससे पेदा हुवा.	किस में लय होगा.	उससे कैान पेदा हुवा
१	हंस	मानसरोवर	सत्	नाम	नाम	सत्
२	शून्य	महाशून्य	नाम	महाशून्य	महाशून्य	ओंकार
३	शब्द	हृदय	शून्य	नाम	अक्षर	,,
४	कमल	ब्रह्मांड	..	महाशून्य	महाशून्य	वैराट
५	जीव	शरीर	शिव	शिव	शिव	पवन
६	निरंजन(काल)	सुषमणा	ओंकार	निरंजन	निरंजन	ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वेद
७	मन	आकाश	ज्योति	,,	ज्योति	३ गुण जगत् वेद १० अवतार
८	काल	क्लेश	शून्य	नाम	नाम	आवागमन
९	वायु	आकाश	निराकार	काल	निराकार	अग्नि
१०	प्राण	निरंतर	निरंजन	अवगत	अवगत	चेतन
११	वैराट	ब्रह्म	पारब्रह्म	नाम	अनाम	लहेर
१२	अनाम से लहेर. लहेर से नाम, नाम से ब्रह्म, ब्रह्म मे निरंजन, निरंजन से मन पेदा हुवा. मन मे सब पेदा होता है.					

घट रामायण के कर्ता की रीति (दर्शन, पृ. ७९ से).

तुलसी निरख देख निज नेना. सतगुरु अनाम कमल में धाम. श्याम कुंज लीलागरी † तिल जितना है उसको कोई जानता है. बार बार मन वहां लगावे, वहां से जुदा न हो. सुरती (मनोवृति वा जीव वा जीव वृत्ति) आकाश में रहे तिल की खिडकी में निवास करे. वहां—गिगन द्वार में एक तारा जान पडता है और अनहद नाद सुना जाता है. अनहद सुनना परंतु उसे गुणना नहीं. इस रीति से सुरत ठेर जायगी वहां अमृत चूता है उसको पी के चित्त तृप्त हो जाता है सुरती साधसंग ठेराना तब स्थिर होगा याने सुरती और मन साथ होना चाहिये. (सुरती· याने अंतःकरण की अशब्द अकृत्रिम केवलावस्था या जीव वृत्ति) सुरती ठेरी तो द्वार पकडेगी. तब मन अपंग हो जायगा. गिगन में बिजली चिमकेगी उजाला होगा. जेसे जेसे सुरती द्वार में जायगी वेसे वेसे रोशनी ज्यादा होगी. श्वेतश्याम सुरत, खेल में समायगी. कूपसे पानी टपकेगा. उस अमी पीने से मन तृप्त होगा. वहां पांच प्रकार के तत्त्व जान पडेंगे. काला, लाल श्वेत, पीला, अंगार. यह पांच तत्त्व जान पडेंगे तल्ली, ताल, तरंग, मोहन मुरली, ऐसे नाद होंगे जो इस नाद में सो गया तो साधन भृष्ट हो जायगा, आगे न बढेगा. खिडकी से तिलभर सुरत गई तब मन उसको देख के टकरावेगा. फेर जब प्रकाश घट के अंदर आवेगा तब तत्त्व और ज्योति नजर आवेगी. जेसे मंदर के कँवाड खोल के देखो तो दीपक जान पडता है वेसी रोशनी ज्ञात होगी. वह ज्योति विस्तार वाली होगी. फिर अंदर में चंद्र रोशनी वाली होगी. मनको पसंद होगी. फिर चंद्र मालूम होगा. फिर चांदनी जान पडेगी. उसमें सुरती ठेर जायगी. यहां ब्रह्मा की सेर होगी—भूमि, तारा, आकाश वगेरे मालूम होंगे. तब ७ द्वीप, नौ खंड, समुद्र, पहाड़, गंगा वगेरे आकाश, तदगत चार खान जीव, चराचर, सब ब्रह्मांड जान पडेगा. कितने दिनो तक ऐसा ही जान पडेगा. फिर इन बिना अधर होगा अर्थात सुरत दूसरा परदा फोड के आगे जायगी. शब्द सिंधु में समा जायगी. अगम द्वार की खिड़की के पास आवेगी. वहां सनातन पुरुष जान पडेगा. वहां जाने पीछे रूम रूम में ब्रह्मांड मालूम होगा. सब ब्रह्मांड पिंड में जान पडेगा. वहां सतगुर पदम में है उसको सत लोक कहते हैं. वह श्वेत वर्ण है. वहां सुरत ठेरेगी. वहां से आगे तीसरा परदा तोड़ के आगे चलेगी. वहां न पिंड है न ब्रह्मांड है और कोई स्थान नहीं है. वहां जा के तृप्ति हो जायगी.

† भृकुटी का भाग-चक्र दोनो चक्षुओं का बिचला भाग बिंदु.

यह अनिर्वचनीय (अकथ्य) स्थान है. वहां अनामी में सुरती ठेरना चहिये. निदान कमल फूल में धमे के सतगुरू की शर्ण हुये.

(पृ. ४३९) न नीति अनीतं न जन्मं न मरणं. वगैरे लिखा है

(४३) चरणदास.

रणजीतसिंह बिन मुरलीधर भार्गव शर्मा **डहेरा** जिले अलवर राज का निवासी सं १६९१ (ई. १६३४) में प्रसिद्ध हुआ. शाहजहां बादशाह के समय १२ वर्ष की उम्र में दिल्ली आया. वे लिखते हैं कि मुझे अकस्मात व्यासपुत्र श्री शुकदेवजी ने दर्शन दिये [२] और उपदेश करके मुझे अपना शिष्य किया. शाहजहां ने [१] उनके चमत्कार की परीक्षा पाई [३] आदर सत्कार किया जागीर दी इनके ग्रंथ अमरलोक, धर्म जिहाज, अष्टांग योग, ज्ञानस्वरोदय, भक्तिपदार्थ, व्रज ज्ञानसागर हिंदी छंदो में प्रसिद्ध हैं. संवत् १७८१ में शरीर छूटा. (भक्तिसागर लखनऊ मु. नवलकिशोर प्रेस में सने १९०४ में छपा है. उसकी भूमिका में ऐसा लिखा है).

चरणदास जी भक्तिसागर पृष्ठ ३४९ में लिखते हैं "दिल्ली को अर्ज चरणदास हृदय लर्ज शाहनादर को बरज अर्ज मेरी सुन लीजे" अर्थात् चरनदास नादरशाह दुर्रानी के समय हुये है. नादरशाह संवत १७९६ (ई. १७३९) में दिल्ली लूटने आया, मोहम्मदशाह बादशाह संवत १७७६ से १८०५ तक रहा है. इसलिये भूमिका लिखित उक्त हिस्ट्री मान्य नहीं. +

अनहद शब्द का क्रम उनके स्वरोदय पृ. ११० में यूं है १. भंवर. २. घूं घूं. ३. शंख. ४. घंट. ५. ताल. ६. मुरली. ७. भेरी. ८. और अष्टांगयोग पृ. ५६ में यूं है– १. चिड़िया. २. चीं चीं दोवार. ३. घंटा. ४. शंख. ५. वीणा ६. ताल ७. मुरली. ८. हंमनाद उपनिषद् में ऐसा ही है. और दूसरे संत और प्रकार भी कहते हैं. उनके लेख का अंतर और अन्यों के लेख का अंतर क्या परिणाम बताता है सो शोधक को स्वयं विचार लेना चाहिये.

---

१. ३ परीक्षा नादरशाह ने की है अर्थात् मांस भेजा सो लड्डू शीरनी बन गये, ऐसी दंतकथा है सं. १७८१ में मर गये थे तो नादरशाह की चर्चा कैसे लिखने.

२ क्या यह कथन ठीक है? या कोई रमता राम महात्मा मिला था,

+ २०० वर्ष के इतिहास में भी इतनी गड़बड़. अर्थात् आर्य प्रजा अब अद्यावध इधर उधर नहीं देखती उसके इतिहास पर कैसे विश्वास हो.

चरणदासजी का मंतव्य

अमरलोक–तीन गुण रहित ज्योतिरूप. वहा मे अनावृत्ति दिव्य शरीर की प्राप्ति हो. नित्य १६ वर्ष की उमर रहे अजर अमर रहे. वहा वृक्ष पात फूल हैं. यह धाम अनादि है. वहा सूर्य चंद्र नहीं. वहा आदि पुरुष का श्वेत स्वरूप है. तीस खम्भे का मकान है उसमें सिंहासन पर श्वेत चेतन रूप विराजमान है. हीरा, मोती, वेल बूटे है. (मूल ग्रंथ देखोगे तो जान लोगे कि यह वर्णन रूपालंकार वाला नहीं है किन्तु घट रामायण कर्ता समान साधन करने गये तो वहा जो देखा सो लिखा है)

धर्मजिहाज–जीव यथा कर्म फल भोगने वास्ते संसार मे आते हैं. भक्ति योग से ज्योति में ज्योति मिल जाती है. इसको सायुज्य मुक्ति कहते है. प्रलय में जीव के कर्म साथ में होते हैं. काल, आकाश, जीव, जीव के कर्म और माया प्रलय में रहते है. करणी क्या? ब्रह्म की इच्छा सो ही करणी ईश्वर रूप धराले धरणी.

अष्टांग योग–योग साधक को ऋद्धि सिद्धि और कामना त्याज्य हैं. अपान वायु ज्यू ज्यू चक्रो के पास आवेगी त्यू त्यू चक्र उघे होते जायगे. अनाहद चक्र (हृदय चक्र) में जब वायु आवे तब १० अनाहद शब्द सुने जायगे. ब्रह्म लोक की बातें भी सुनने लगेगा. जीव ब्रह्म हो जायगा (पीछे प्राण अपान समान मिला के आगे जाय. उसके लिए प्राणायाम की विधि लिखी है फिर तत्त्वो में प्राण लीन करके धारण का प्रकार लिखा है) ब्रह्मरध्र श्याम रग वहा देवता ब्रह्म है वहा धारण होने से मुक्ति हो जाती है. प्राण कुंभक में जो ९६ मात्रा ठेरे तो धारणा सिद्ध. इससे दुगन से ध्यान सिद्ध.

(जीव) हता आदि परमात्मा बिच उठ लगा विकार. मिति समाधि निर्मल भये लहे रूप ततसार. ३२१.

भक्ति समाधि=बुद्धि–सुरत, ध्याता ध्यान. धेय रहित हो जाना.

योग समाधि=ध्यान शून्य में, आपा ध्यान में, सुरत नाद और क्रिया रहित हो जाना

ज्ञान समाधि=एक, दो, मैं, तू, यह, वोह भावना रहित हो जाना.

योग संदेहसागर–उन्होने जो ८४ वायु, २१ लोक ३ शून्य और चौथी शून्य देखी उनका बयान है

ज्ञान स्वरोदय – ओ से शरीर, सोहं से मन पेदा हुवा. निरक्षर से श्वास हुये. पूरे योगी को काल नहीं होता याने अमर हो जाता है

ब्रह्मज्ञान सागर–देह नहीं त ब्रह्म है अविनाशी निर्वाण.+देह कर्म सब जाण. चेतन ज्यो का त्यों सदा, सदा अकर्ता होय; काहू से उपज्यो नहीं वामे भयो न कोय. आप भुलानो आपमें बंध्यो आप से आप; चरणादास ब्रह्म तुही है तू ही पुरुष अलेख. नो नाथ चोरासी सिद्ध जो चरणदास थिर ना रहे; माया काया जानिये जीव ब्रह्म है मीत. काया छूट मूरत मिटे तू परमातम नित्य; दृश्य जगत मृगजलवत है. चिनवन से सखी और खीजो तो मिट जाय; नजर आती है परंतु है नहीं. आप ब्रह्म माया भयो जूं जल पाला होय; जल समान तू ब्रह्म है माया लहेर समान. कहीं भीखारी और कहीं दाता; आप ही जल आप ही बुद बुदा. आप इस अस्नान सेव्य आप ही सेवक; जगत स्वप्नवत् है. निज स्वभाव जग होत है मिट मिट फिर फिर होय; बंध नहीं मुक्त है नहीं पाप पुण्य भी नाहिं. ब्रह्म ज्ञान बिन मुक्त न होई; तू ही एक अनेक भयो अपनी इच्छाधार.

हंसनाद–हृदय कमल में सोहं ध्यावे; इस इच्छा में सुरत लगावे. हृदय कमल में जावे तब स्वप्न आवे ध्यान से छेद के अंदर जावे; वहां से आगे तुर्या. (पृ. २० से २६).

योग शिखा–हृदय में ज्योतिमय मंडल उसमें दीपक सम है लो. उस ज्योति को ब्रह्म स्वरूप जानो. (पृ. २८) निर्गुण से सगुण भयो धरी पशु की देह. योट अन्यथा कर्ता है–चाहे गुंगे वेद पढावे; नभके माहि सेन उपजावे. ऐसे हरि आप विस्तारा. निराकार या साकार नहीं, सक्रिय अक्रिय नहीं. गुप्त या प्रकट नहीं. यही निर्गुन यही सगुन और उभय से न्यारा. आप ही द्रष्टा आप ही दृश्य. प्रेम बराबर योग ना, प्रेम बराबर ज्ञान. प्रेमभक्ति बिन साधना सब है थोथा ध्यान. (आगे राम मंत्र जप की और साधन की विधि लिखी है). पिता माता ने हरि मार्ग को बिसाया. धन, स्त्री, पुत्र में सार बताया; इसलिये दुःख में फंसते हैं. *

हंसा भजो

* [illegible]

उपर के लेखों से जान पडता है कि चरणदासजी भक्त ज्ञानी, योगी ज्ञानी थे. उनका मत भक्तिनिष्ठा में अभिन्ननिमित्तोपादान कारण और ज्ञान निष्ठा में "ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या जीवो ब्रह्मैवनापरः" ऐसा होना चाहिये.

(४७) राधास्वामी मत.

वि. सं १८७९ में यह पंथ श्री शिवदयालसिंह खत्री ने चलाया था जो कि सं. १९३५ में मर गये * उनकी गद्दी पर राय सालगराम (कायस्थ) बेठे. उनका भी शरीर छूट गया.

राजयोग वा हठयोग वा क्रिया योग करने से हृदय, भ्रकुटी. वा ब्रह्मरंध्र में जो प्रकाश (ज्योति) जान पडता है उस ज्योति और अनाहद शब्द के यह कायल थे. गुरु भक्ति को वह मुख्य मानते थे. इस पंथ में अन्य कोई शास्त्रीय वा फिलोसोफिकल सिद्धांत नहीं है. वेद वगेरे तमाम ग्रंथों की तथा गत महात्माओं (राम, कृष्ण, ईसा, मोहम्मद, वगेरे) की निंदा करना उनको प्रिय है. संत मत (अगम ज्योति सुरत शब्द) को ही मुख्यता कहते हैं. इस पंथ का प्रचार नाम मात्र है. आगरे की तरफ उसके अनुयायी हैं. इसका मंतव्य "राधास्वामी मत दर्पण" में से संक्षेप में लिखते हैं. यह ग्रंथ हिंदुस्थान स्टीमप्रेस लाहोर में उर्दू भाषा में आर्य संवत १९७२९४९००० में छपा है. इसका कर्ता डाक्टर गुरुदत्त साहेब है.

अवतरण (राधास्वामी मतदर्पण).

(सार बचन पेज ८) खुदा और परमेश्वर दोनों के पेदा करने वाले संत हैं. सत की गति को वे नहीं जानते. (४२४) त्यागो कृष्ण लबाड. यही हाल तुम राम विचारो. बडे बडे अवतार, ऋषि, ईश्वर, परमेश्वर, ओलिया, पेगंबर अपने अपने समय में माया के चक्र मे आ गये और अपने पद को भूल के धोखा खा गये. जेसे कि नारद, व्यास, श्रृंगि ऋषि, पराशर, ब्रह्मा और महादेव वगेरे. ब्रह्मा को जब कबीर ने समझाया और ब्रह्मा को जिज्ञासा हुई कि संत पुरुष को शोधूं परंतु काल ने बहका दिया. ब्रह्मादि देवता राम कृष्णादि का अवतार का दरजा संतों से नीचा है. संतों के बचन जो वेद से मिलाते हैं वे बडे नादान है. संतों की महिमा आप वेद का कर्ता नहीं जानता–फिर वेद क्या जाने. जन्म मरण से बचाने वाले और

* उनकी स्त्री का नाम नारायण देवी था उसका नाम राधा रखा और अपना नाम स्वामी रखा इस प्रकार राधास्वामी पंथ का नाम हुआ. (रा. पे १८).

नित्यानंद बखशने वाले और निज धाम मे पहुंचाने वाले संत ही होते हैं. ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, अवतार, देवता, पीर, पेगबर और ओलिया आप ही निगुरे हैं. याने उनको संत गुरु नहीं मिले. पांचों शास्त्रों का दोष तो वेदांत ने निकाला और वेदांत को दोष अब संत गुरु निकालते हैं.

(पेज २८) संपूर्ण के स्वामी का नाम राधास्वामी है. + जो परम धाम, सत् लोक और अलख अगम के पार है उसका भी यही नाम है. और जो अभ्यासी परमात्मा, पारब्रह्म परमेश्वर सतपुरुष और राधा स्वामी तक पहुंचा वह भी इसी नाम से पुकारा जाता है. ‡ इसमें और सब के स्वामी में कोई अंतर नहीं है

(राधास्वामी सतसंदेश प्र. २) राधा नाम आदि सुरत अर्थात् आदि धुन का है जो आद शब्द से प्रगट हुई. और स्वामी नाम सबके स्वामी याने आद शब्द का है. अथवा राधा (धुन) उस चेतन धार का नाम है जो अनामी पुरुष स्वामी से आरंभ में प्रकट हुई और उसी को आद (आदि) सुरत कहते हैं और स्वामी उस सबके स्वामी का नाम है जो अकाय, अपार, अनंत, अगाध और अनाम है. आदि धुन (धारा) अथवा आदि सुरत कुल रचना की करता (माता) है और स्वामी (आदि शब्द) सब रचना का पिता है. जब वह धारा शब्द (स्वामी) में समा जावे तब दोनों एक हो गये. (राधा का अर्थ यहां व्याकरणानुसार नहीं है किंतु इच्छित है. पेज ३२). हे राधा तुम गति अति भारी, हे स्वामी तुम धाम अपारी. राधा स्वामी दोउ. मोहन गोद बेठारी. (शिवदयालकृत आरती पे. ३३०).

(राधास्वामी मत संदेस पेज ९) व्यापक स्वामी का माया अवच्छिन्न भाग सुरत याने जीव है इस पर तीन पट हैं. समुद्र लहेर समान शब्द और उसकी ध्वनि समान राधास्वामी और सुरत एक हैं (जीव ब्रह्म एक है) सुरत का मुख्य स्थान चक्षु की दोनों कीकी हैं, इसी स्थान से तमाम शरीर में फेली है शब्द समुद्र वा सूर्य और सुरत लहेर वा किरण. शब्द से जुदा हो के बंध में लिपटा गई. संतरूपी लहेर बंध से छुड़ा के उसे मोक्ष दिलाती है.

+ पुष्टीमार्ग नहीं किंतु वल्लभी संप्रदाय कहती है कि राधा आद्यशक्ति और विष्णु (ब्रह्म). महाप्रलय में उभय का मिश्रित गोला था. उसको राधा कृष्ण कहते हैं (माया ब्रह्म, शक्ति शिव, प्रकृति पुरुष इन्हीं का नाम है) उनको जुदा जुदा नहीं बता सकते

‡ "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"

(रा. पे. ३६) दूसरी धार निरंजन (ब्रह्मांड के नीचे के देश में भी व्यापक है) निकली. उसका नाम मन है * जिस में फुरना खयाल उठे सो मन है तीसरी धार माया से निकली और वह ब्रह्मांड के नीचे के देश में है. इस स्थूल से शरीर इंद्रियें बनी हैं (३७)

माया अर्थात उस गुबार का नाम है जो शब्द देश के नीचे चेतन पर आवरण है, नीचे की तरफ वह आवरण स्थूल होता गया है (३७).

(राधास्वामी मत संदेस. पेज १३) राधास्वामी सब सृष्टि की रचना करता है वो ही सबका आधमंडार है. जो धारा पहिले निकली वोह उतर कर थोडे फासले पर ठेरी. उसने मंडल बांध के रचना करी; उस स्थान का नाम अगम लोक है. और उस धारा का नाम अगम पुरुष अर्थात् राधास्वामी के तखत का स्थान है. इस अगम लोक से एक धारा उतरी, उसने थोडे फासले पर मंडल बांध के रचना करी इसका नाम अलख लोक है और उस धारा का नाम अलख पुरुष है. अलख पुरुष से भी एक धारा नीचे उतरी उसने मंडल बांध के रचना करी उसका नाम सत लोक है धारा का नाम सत पुरुष है. यहां तक रूहानी सृष्टि है, और राधास्वामी उक्त सब लोक में व्यापक है. इन लोकों में काल, क्लेश, दुःख, जन्म, मरण नहीं है इन लोकों का श्वेत प्रकाश है. यहां के निवासी हंस कहाते हैं.

सतलोक के नीचे एक लोक रचा गया जिसको राधास्वामी का द्वार कहते हैं. इसके नीचे मोटा मेदान महाशून्य है वोह दयाल देश (राधास्वामी) और ब्रह्म वा माया के बीच में है. फेर इस (महा शून्य) के नीचे तीन स्थान, निरंजन और ज्योति ने रचे जो ब्रह्मांड की सीमा में हैं. नीचे के स्थान को सहस्त्रदल कंवल कहते हैं. यहां निरंजन और जोत का स्वरूप प्रकट है. दुनिया के सब मतों का सिद्धांत पद है. इसके उपर के लोक का बयान किसी किताब में नहीं है, फकत योगेश्वर ज्ञानी ब्रह्मांड की चोटी याने हंसदल के उपर दे मुकाम तक गये हैं परंतु वहां का भेद उन्होंने गुप्त रखा. इशारे में कुछ कहा है, परंतु ब्रह्मांड के परे कोई नहीं था. याने संत सतगुरु जो सत लोक से आये और रचना के भेद से आप ही वाकिफ थे, इनके सिवाय परे का भेद किसीने न जाना. सहस्त्रदल कंवलसे ३ धार सत, रज, तम वा ब्रह्मा, विष्णु, महादेव पेदा हुये उन धारों ने नीचे के देश की रचना करी जिसको पिंड

---

* ज्ञान समाज ग्रंथ के आरंभ में कबीर भी मन को अनादि निरंजन देव मानता है और घटरामायण भी ऐसे ही कहती है अतः यह मन उनमें से ही निकला है. ऐसा अनुमान होता है.

कहते है, जिसमे ६ चक्र हैं. इस रचना में देव, मनुष्य, पशु और चारों खान, की रचना शामिल है. ‡ (प्रलय की चर्चा नदारद है). §

(५८) नशा वर्जित, मिताहार, विहारशयन, विषयानासक्ति, राधास्वामी का मन में लय, अहिंसा, विश्वास, सत्संग, मन स्वाधीन. यह साधन.

(९३) तन सेवा–गुरु की सेवा याने पाद सेवन, पंखा करना, चक्की पीसना, पानी भरना, झाडू देना, हाथ धुलाना, स्नान कराना, हुक्का भरना, रसोई कर के खिलाना, पीकदानी में पीक करावे फिर सब पीक आप पी जावे!! इ. धन मन से सेवा करे, उसका प्रकार राधास्वामी की समाध की यात्रा और पूजा.

(६१) प्राणायाम विना योग की विधि. साधक अंधेरी कोठडी में बेठे मुख पर कपडा डाल लेवे. दोनों आंखों के बीच में जो मुकाम है जिसका नाम सहस्रदल-कंवल है और जिसका मालिक ज्योति स्वरूप है उसका ध्यान करे. वहां दीपक की रोशनी नजर आवेगी वहां शिवदयालसिंह के फोटो का खयाल बांधे और राधास्वामी इसका नाम का रटन करे. जब इस मुकाम की सेर हो जावे उस पीछे त्रिकुटी वगेरे का ध्यान करे. अंत में राधास्वामी के मुकाम पर पहोंचा जाता है.

(सार वचन छंद पेज ३९२)–राधा स्वामी याने दयालजी की सेर

संतों का आंतरीय दर्शन कहता हूं. जब तुम्हारी निगाह दिमाग में अटक कर आसमान को देखेगी और जीव ऊपर को चढेगा. तो तुम आकाश में सहस्रदल देखोगे. इसको देख के खुश होगे और त्रिलोकी नाथ (राधा स्वामी) के दर्शन करोगे उस आकाश पर सुई के नाके जितना छिद्र देखोगे उसमें अपने जीव को प्रवेश कराओ. आगे बांका टेढा और नीचा ऊंचा मार्ग होगा. इस नाल को पार करके दूसरा आसमान त्रिकुटी लक्ष योजन लम्बा चौड़ा है उसमे मेला और अनेक तमाशे देखोगे. हजारों सूर्य चंद्र की रोशनी से अधिक रोशनी है. आठों पहेर अनेक प्रकार के मनोहर शब्द होते हैं वहां आनंद होता है कितने दिन के पीछे चढते चढते

---

‡ घटरामायण, कबीर, दादु का अवतरण यह मत है ऐसा जान पडता है थीओसोफी की भी इसी प्रकार की अन्य रूप में कल्पना है. घटरामायण मे अगम लोक का वर्णन है.

§ शरीर को ब्रह्मांड मानके कल्पित रूपालङ्कार बयान किया हो, ऐसा भान पडता है कबीर–शब्द में सुरत ऐसे बसे जेसे जल म्हेनारे शब्द भेद जाने नही मूरख पचहारे

दादू-सुरत शब्द शब्द में सुरत, अगम अगोचर धामी. शून्य गगन धरण नही तारा अल्ला रब नहीं रामी क्या कहु कहने की बात नहीं जाने संत सुजानी. वेद न भेद वेश नहीं जात!! इत्यादि

किरोड जोजन ऊपर चढके तीसरा परदा पोड के शून्य मे (लाहूत में) पहुचे. वहां अनेक जीव निवास करते है, रोशनी त्रिकुटी से १२ गुनी है, अमृत का कुंड है जिसमे मानसरोवर कहते है, बाग देखते है, अपछरा नाच रही हैं, मेवा मिठाई गोटे, किनारी, सोना, चादी, जवाहरात है, तालावो में मछलिया है, और अनत शीश महेल है यहा के जीवो को हंस कहते हैं. फिर गुरुओ की आज्ञा से आगे चला. चलते चलते पाच किरोड पिचतर जोजन ऊचे गये, हाहूत का नाका तोडा इसका थान लगा तो उलट कर ऊपर मेरे निशाने की तरफ चला महा शून्य का मैदान आया. यहा ४ स्थान गुप्त है बहुत से जीव केद देखे जो सत इस मार्ग से जाते है वो उन में मे अमुक जीवो को बखशा के सचे खुदा पास बुलवा लेते है यहां से आगे हूतलहूत (भवर गुफा) मे पहुंचे वहा हिंडोलने मे अनेक जीव झूल्ने थे. वहा से आगे चढे तो अनेक प्रकार की सुगंधी आने लगी और बसरियो की ध्वनि सुनाई दी. इस मैदान से पार पहुचे तो बाजो द्वारा सत् सत हक हक की आवाज आने लगी. जीव मस्त हुआ जा रहा है. आगे नहरें सुन्हेरी चादी की और पानी मीठा देखा. अनेक बडे बडे बाग देखे किरोड जोजन से उंचा झाड देखा. फूल फलो के बदले सूर्य चद्र लगे हुये है उन पर जीव किलोल कर रहा है यह सेर देखती हुई रूह (जीव) सतलोक में पहुंची सत् पुरुष का दर्शन हुवा. किरोडों सूर्य चाद से ज्यादा उसका एक एक रूम रोशन है. उसके आख, नाक, कान, मुख, हाथ, पाव का बयान नही हो सकता. रोशनी का पुज है. सात लोक त्रिलोकी से एक पद्मगुण ज्यादा है. शुद्ध जीव याने हस वहा हंसने है. गाजा बाजा सुन रहे है. यहा मे आगे अलख लोक मे गया अलख पुरुष का दर्शन किया. इसके एक रूप मे अरब खरब सूर्य का उजाला है यह लोक एक सख योजन ऊंचा चौडा है. वहा से आगे चलके अगम लोक पाया यहा अगम पुरुष की काया किरोड सख जोजन की है यह लोक महासख वा लींग का है. यहा के हस और उनका विलास विचित्र है इसमे आगे चल के राधा स्वामी याने अनामी पुरुष का दीदार किया. वोह अनत है, संतो का निज स्थान है, उसको पाके सत चुप हो जाते हैं अतः मैं भी चुप होता हूं. उपरोक्त मुकाम पेगंबर, व्यास और वशिष्ट को ज्ञात न हुये, इसलिए हिंदू मुसल्मान इसको निश्चय नहीं मान सकने †

---

† घटरामायण की सेर में थाेडा मिर्ची मसाला है परतु राधास्वामी की सेर का मिर्ची मसाला तो अद्भुत है माप तोल कर के लिखा है हिंदू मुसल्मानो के स्वर्ग नरक और बरजख

(सार वचन संदेस) पूर्ण परम पुरुप जीवों के दुःख और भ्रम टालने के लिये संत सतगुरु रूप धारण करके प्रकट हुये हैं, जीवों को चाहिये कि उन चरण में प्रीति करें. *

(रा. ७१) संसार में जितने मत चल रहे हैं वे संतों की पहिली, दूसरी मंजल तक समाप्त हो जाते हैं (७२) सुरत शब्द के मार्ग पर जाने वाले को विष्णु, शिव, ब्रह्मा, शक्ति, कृष्ण, राम, ब्रह्म, पारब्रह्म, जैनियों का निरवान (मोक्ष शिला) और ईसाइयों का ईश्वरीय स्थान रूहलकूदस, मुसलमानों का आलिमे मलकूत, जबरूत, और लाहूत शून्य के नीचे रास्ते में पडेंगे. ‡

(रा. ७६) दादू, नानक, कबीर, पलटु इन्हों को समय के गुरू का खोज यथार्थ नहीं है. पिछले सत को दोडे हैं. (७७) अनेक जन्म गुरू की भक्ति करे तो चौथे जन्म में निज धाम प्राप्त हो.

(रा. ८३) वेद, पुराण, शास्त्र और स्मृति इन सब का उंधा मार्ग है उन्होंने ब्रह्मादि देव और १० अवतार का जाल बांधा है. सब जगत् भूला है. कोई संत जानता है. कबीर साहेब, तुलसी साहेब ने राधा स्वामी का मत चलाया. (८९) ६ शास्त्र और ४ वेदों का संतों ने निषेध किया है. (८६) विद्या को छोड के संत वाली करणी करो.

(रा. ९१) परचा लेने योग्य भक्त हो तो परचा मिले, वर्तमान में ऐसे भक्त नही है.

(रा. ९९) त्रिलोकी नाथ ने यह नियम कर दिया है कि जो सतगुरू द्वारा मुझ से मिलेगा उससे मैं मिलूंगा (रा ९६) कर्मवादि और ज्ञानी लोक संतों के बचनों को कमी न मानेंगे (संत सिवाय सब विद्वान महात्मा और ग्रंथों की निंदा) इस कलि में संत गुरू की शरण, साध सग, नाम स्मरण. इन तीन से जीव का उद्धार होगा बाकी सब झगडे है.

से आगे चले हैं खेर. पाठक को घट रा. को और च. की सेर से इस सेर में अंतर जनाया होगा। अशअंध श्रद्धा वालो के मन लेने की घटत अच्छी है; क्योंकि परोक्ष कल्पना भावना में ही मानव मंडल अंजाता आया है.

* आप ही अवतार बन वेठे.

‡ स्वामी नारायण का अक्षर धाम राधास्वामी के लोक से आगे होगा, क्योंकि उसकी चर्चा इस सेर में कहीं नहीं की है. अर्थात् यह सेर अपूर्ण है, ऐसा स्वामी नारायण मत वाले कह सकेंगे.

(रा. ९८) संत से कोई कहाता है कि हम तिनका तोड दें तुम जोड दो (उ.) ब्रह्म से तोडा हुआ तिनका जोडा वो तो हम भी जोड देंगे. (रा ९९) (स.) गुरु की पहिचान बताओ तो हम पूजें (उ) जिस मालिक (ईश्वर ब्रह्म) की पूजा करते हो उसकी पहिचान बताओ. जो मालिक की पहिचान है वही गुरु की पहिचान है.

(रा. १००) जिसका आदि हो उसका अंत हो, ऐसा मानना जरूरी नहीं है, क्योंकि संतों ने ऐसी रचना भी रची है कि जिसका आदि है परंतु अंत नहीं है.

(रा. १०२) हिंदू मुसलमानों में जो अंधे हैं उनके लिये तीर्थ, व्रत, मंदिर, मसजिदों की पूजा है. जिन की आंखें हैं उनके वास्ते गुरु की पूजा है.

(रा. १०५) हजारों ब्रह्मा, हजारों गोरख, हजारों नाथ और पेगम्बर तृष्णा की अग्नि में जल रहे हैं; क्योंकि उनको सत गुरु नहीं मिले.

(रा. १०७) जीव ब्रह्म दोनों भाई हैं. परंतु ब्रह्म को कामदारी मिली है जीव उसके हुक्म में रहते हैं इतना अंतर है.

(रा. ११३) राम ब्रह्म को व्यापक मानने से जीव का काम नहीं बन सकता; क्योंकि व्यापक, चोर, विषयी वगेरे को कुछ नहीं कहता. परंतु संत गुरु के मानने से चोरी वगेरे दोष नष्ट हो जाते हैं और शिष्य निज धाम को पा लेता है. (रा. ११४) करामात (सिद्धि) दिखाने से जो प्रीति-भाव हो उसको संत विश्वास पात्र नहीं मानते (११६) गुरु के करतूत पर तर्क न करना चाहिये.

(रा. १२३) जो पांच तत्त्व हैं उनका मूल कारण सुरत है और सुरत का मूल कारण शब्द (मुख्य) है. सुरत को शब्द तत्त्व में मिलाने से इष्ट पूरा हो जाता है.

(रा. १२४) माता, पिता, स्त्री, सुत और संसारी जीवों का संग कुसंग है. ‡ इति.

---

‡ राधास्वामी मत प्रचारक का इस प्रकार का लेख और उपदेश जान पडता है. (१) उससे इतर सब की निंदा, सब में दोष. (२) विद्या, विद्वानों की निंदा (३) गुरु की देसे रूप में महिमा और वर्णन के उनके गुरुपन चले. इस स्वार्थबाजी से अन्य बात नहीं उनके रंग ढंग का, उनकी चेष्टा उपदेश का, उनके मुख्य तत्त्व कल्पना का और आचार विचार का अनुवाद राधास्वामी मत दर्पण में भली प्रकार से किया है. इसलिये यहां नहीं लिखते. हिंदू प्रजा के अज्ञान को धन्यवाद है कि स्पष्ट बनावट में भी फस जाती है. क्या माता पिता के संग को कुसंग बताने वाले कृतघ्नी नहीं?

स्वीडनबोर्ग-खिस्ती मंडल में एक महात्मा हुये हैं, उनके स्वर्ग नरक का सेर का ग्रंथ है, उसका सार आगे खिस्ती धर्म के प्रसंग में बांचोगे. तब आपको ज्ञात हो जायगा कि संस्कारों की महिमा और विद्वानों की महिमा विचित्र है. ऐसा ही संत मत है.

मेडम मेरी कोरेली-इसने निद्रा पीछे स्वप्न में जो सेर की उसका नाम मात्र बयान स्वीडनबोर्ग के वृतांत के पीछे आगे बांचोगे, उसका संबंध भी संत मत से रखती है.

मुहम्मद पेगम्बर साहेब की म्याराज, इंजील के पोलिस रसूल वगेरे स्वर्गादि का कथन दर्शन क्या है. उसका समवेश इसी थीयरी में हो सकता है. मुसलमानों में भी किसी किसी दरवेश (संत-फकीर) को मजाहदे, मशाहदे मराकबे में ऐसा दर्शन हुआ है उसका समावेश भी इसी थीयरी में हो जाता है.

आदि नाथ जालंधरादि के ग्रंथ नहीं मिलने से उनके संबंध में हम कुछ नहीं कह सकते.

संत मत का अपवाद.

जो संत मत गत हर एक बात का अपवाद और उसकी सायंस लिखें तो दस बीस फारम हो जायं, इसलिये संक्षेप में लिखते हैं; क्योंकि यह विषय जैसा गंभीर कहते वा मानते हैं वेसा नहीं है. जिसने संस्कार, चित्त, (मनस्) मगज, मगज के मेंटर, प्रतिबिंब, ईथर, हिरण्यगर्भ और मेस्मेरेझम की कुछ भी परीक्षा को होगी उसको इसका अपवाद तुर्त समझ में आ सकता है.

(१) संत मत का सेच्छा अभिन्ननिमित्तोपादान कारण और जीव ब्रह्म की एकता यह सिद्धांत है-इसका अपवाद ऊपर आ चुका है और शुद्धाद्वैतानुसार जान लेना चाहिये. (विशेष अ. २ व ३ में). और उनमें से कोई जगत् को मिथ्या कह देता है. जगत को अगम पुरुष वा उसकी शक्ति का परिणाम नहीं मानता, इसका अपवाद भी ऊपर आ चुका है और आगे त. द अ. ३ में बांचोगे.

(२) उसके सृष्टि उत्पत्ति के क्रम की जो कल्पना है वह शब्द मात्र है. कारण कि एक के अनेक रूप (शब्द, सुरत, पृथ्वी वगेरे, धारा विरुद्ध पदार्थ) नहीं हो सकते और अगम पुरुष का अंश अज्ञानी दुःखी, माया के फंद में फंसे, ऐसा नहीं हो सकता, और अगम पुरुष से इतर दूसरी वस्तु वे नहीं मानते, इसलिये उनकी सृष्टि उत्पत्ति का प्रकार और सृष्टि का अनंतत्व वा लय प्रकार समीचीन नहीं है. एवं उनके माने हुये बंध मोक्ष और मोक्ष के साधन बाबत्ते भी जान लेना चाहिये.

(३) वे जो अपनी सेर का बयान करके उसे सत्य सृष्टि मानते हैं वोह ऊपर कहे अनुसार संस्कारादि का कार्य है, प्रतीतमात्र है, वस्तुतः कुछ नहीं है. यदि वह सृष्टि होती तो यहां का कभी कोई न कोई पदार्थ इस सृष्टि में लाते और यहां का वहां ले जाते परंतु ऐसा किसी के साथ न हुआ. यदि श्रीकृष्ण महाराज का वैराट स्वरूप अनुवृत्ति मात्र न होता और सत्य होता तो उस रणभूमि में कैसे समाता. अर्जुन के हृदय मात्र में था, स्वप्न जैसा था इसलिये समाया. एवं जिस सेर वक्ता का मिरची मसाला न हो वह ऊपर कहे में अनुसार है. संत उसे सच्चा मानते हैं तो अविद्या वा भ्रम कहना पडेगा; क्योंकि वह व्याप्ति से सिद्ध नहीं होता. जो वह सच्चा होता तो सब सेर करने वालों को समान दृश्य होता. उनके बयान अनुसार सबको जान पड़ता, परंतु दर्शन में हरएक का भेद है अतः यथा संस्कार प्रतीत मात्र है.

(४) वे जो अपने साधनों से सिद्धि और चमत्कार मानते हैं सो कथन भी परीक्षा किये बिना वा पबलिक के काम में आने बिना मानना व्यर्थ है. आज तक ऐसा संत नहीं निकला, कि जो अमर हो वा सर्वज्ञ हुआ हो वा लोक मंडल के दुःख का निवर्तक हुआ हो. १००० वर्ष से प्रजा घातक गो वध हो रहा है उसको किसी ने अटकाया हो, और जिनकी मान्यता में भेद न हो और यदि किसी विरल व्यक्ति को बहुत श्रम से मानसिक शक्ति कुछ इस प्रकार की विशेष हुई कि जो आम (सर्व) न कर सकें तथा अपने वास्ते ही कुछ लाभकारी हो, इस प्रकार का चमत्कार सर्व मान्य नहीं हो सकता. प्रत्युत अज्ञान मंडल अंध श्रद्धा वाले उसमें भेजा के हानी के भोग हो पडते हैं, इसलिये श्रद्धेय नहीं. चमत्कार तो रेल, तार, घडीयाल, फोनोग्राफ वगैरे का है जो सबको लाभकारी हैं.

(५) जो संत मत में मिरची मसाला है वोह पाठक वृंद स्वयं जान सकते हैं उनके खंडन वा अपवाद जनाने की आवश्यकता नहीं है. जो देखना हो तो, प्रसिद्ध राधा स्वामी मत दर्पन में और भ. प. ग्रंथ में देख लीजिये और भी घट रामायण के बांचन से जान सकेंगे कि उनके मिरची मसाले में कितना असत् वा स्वार्थ वा तो अज्ञान भरा हुआ है.

(६) जो रसिया माता पिता के संग को भी कुसंग बतावे ऐसे कृतघ्नी से पूछना चाहिये कि जो वे कुछ न सिखाते तो आप पशु जैसे पराधीन दुःखी

हो के दुःखमय जीवन गालते वा नहीं? वाहरे संत मत का अज्ञान, स्वार्थ और कृतघ्नता! शोक है ऐसों को संत मानने वालों पर!

(७) परमात्मा में विकार होना, अपना स्वरूप भूलना, माया रूप हो जाना वा माया वश होना, उसके अंश जीव का बंध मुक्त होना, इस प्रकार के मत कपोल कल्पना नहीं तो क्या? अ. ३ में वांचोगे.

(८) जिस संत मत के रसियाने बडे बडे ऋषि, मुनि, दरवेशों की तथा लोक उपयोगी ग्रंथों की असभ्य शब्दों में निंदा की है और वोह सत्य भी नहीं है. इससे उनके आपस्वार्थीपने का आवेश, उनकी विद्या, उनके गुणों का माप हो जाता है और जिस स्वरूप में गुरुपना, संत की महिमा और संत की महिमा और संत की सेवा का प्रकार बयान किया है उस प्रकार के विचारने से वे कितने बडे आपस्वार्थी हैं और उनको माननेवाली आर्य प्रजा अंध श्रद्धा में किस माप में फंसी हुई है सो जाहिर हो जाता है.

(९) संत मत के उक्त दोनों रसिया (घट रामायण का कर्ता और राधास्वामी श्री) का तमाम बयान त्याज्य है ऐसा हमारा कटाक्ष नहीं है किंतु उनके जिस मिरची मसाले से रोग होने वाला है वह त्याज्य है ऐसा आशय है जो उसका पृथक्करण न हो सके तो जैसे १० सेर आटे में १ तोला भी संखिया मिल गया हो उस आटे की जैसी व्यवस्था होती है वैसी व्यवस्था कर्तव्य है. *

(१०) मुसलमान दरवेश फिरके (चिशिति, कादरी वगेरे) में मुरशद की तवजह (मेस्मेरेजम) द्वारा मूल वस्तु को पाले मजजूब (मस्त देवाना) हो जाना वा स्तब्ध हो जाना मानते हैं उस में से वस्तुभान के संबंध में हम कुछ नहीं कह सकते; क्योंकि उसका सबूत नहीं मिलता. मजजूबों से आगे परंपरा (फैज) नहीं चलती और बाकी की दो बातें देखते हैं याने उनके मगज में फेरफार हो जाता है. परंतु वे अथवा दूसरे तरीके से मराकबा, मशाहदा, मराकब (साधन दर्शन, समाधि) करते हैं उनको जो जो नजर आता है उसको पूर्व कहे हुए समान जान लेना चाहिये. और जैसे हिंदुओं के सिद्ध योगी कहलाते हैं

---

* जिन कहलाने सतों ने वेद, शास्त्र स्मृति और पुराण का अभ्यास न किया हो, इतना ही नहीं किंतु व्याकरण भी न जाना हो, वे यदि वेदादि वा बायबल कुरानादि की निंदा करें, सो उन्मत्तता नहीं तो क्या? उनका वोह कथन कैसे माप्र हो! नहीं हो.

ऐसे उन में ओलिया, कुतन, अवदाल, वगैरे माने जाते हैं, उनके वास्ते भी पूर्ववत जान लेना चाहिये. और जेसे सनो में अभिन्ननिमित्तोपादान भावना है वैसे उनमें 'वजूदिया' होते हैं वे इस दृश्य (जीव जगत) को अल्लाह (ब्रह्म) का ही परिणाम मानते हैं उन का जिक्र आगे आवेगा

विभूपक मत.

यदि दंभ, प्रतिष्ठा की इच्छा, मिथ्या अभिमान, सिद्धि का प्रचार और लोक लुभावक प्रकार छोड के विवेक सीख के जो संत मार्ग (पूर्व मार्ग–शब्द मार्ग–ज्योति दर्शन–चक्र साधना) अनुसार साधना करे और पंचदशाग के विरुद्ध न वर्ते तो यह मार्ग ईश्वरोपासना, अंतःकरण शुद्धि और आत्मानुभव प्राप्ति का साधन है, इसलिये सर्वथा निषेधनीय नहीं है.

मसाला विनाका सूखा प्रयोजकी देद चांवल.

मेथमेटिक (जामटरी, एलजबरा वगेरे) और न्याय फिलोसोफी इन दो नाम की मगज की बेमारी जन्म में साथ आइ थी इतिहास जानने और शोध खोज करनेका * स्वभाव शक्ति उपरात सध्या प्राणायाम और राममत्र की प्रेक्टिस आठ वर्षकी उम्र से चली. वैराग्य की भी सख्त नींव बेवक्त (१४ वर्षकी उम्र में) पड गई थी साधुओं का सग और वैसे ग्रंथो का पठन पाठन भी नसीब में मिला था ऐसे निरोधो का समूह उसमें प्रस्तुत विषय (सत चाल) का २० साल से ३२ के साल तक का दर्शन नीचे अनुसार है. हकीकत बहुत है, यादिमात्र लिखना बस है. †

(१) चद्र तरफ गरदन झुका के हृदय में सुरता (चित्त की अशब्द स्वच्छ वृत्ति) लगाई तो थोडे काल पीछे नीलवत् अंडे रूपकी गेंद मालूम होने लगी, उसमें एक छिद्र जान पडा, उसमें रोशनी चमकने लगी याने रोशन तारा जान पडा उसमें सुरता गई. खिडकी में से गये हो ऐसा जान पडा. अदर में साधारण प्रकाश जान हुवा.

---

* जादु, मत्र, तत्र (इद्रजाल तिल्स्म) ज्योतिष रमल जफर, केरल, कयाफा (सामुद्रिक और अंगोसे मनुष्य की परीक्षा) कीमीया, स्वरोदय, मेस्मेरज्म वगैरे में उतरा और यथा बुद्धि शक्ति उनका नतीजा निकाला जैसे रूप में लोकविषे सा पता है वा इन विद्याओं में जैसी दत कथा–गपसप चलती है वैसा उनका रूप न मिला किंतु कुछ और ही प्रकार जान पडा. जिसके बयान करने की यहां अपेक्षा नहीं, यहां तो प्रकृति की चर्चा है

† यदि वक्ष्यमाण मेरे दर्शन को तद् रूप में न लिखें और असलियत छिपा के संप्रदायी रूप में बना के लिखें और कुछ नतीजा निकालने की कामना हो तो कुछ विलक्षण–आश्चर्य जनक रूप जान पडे परंतु मेरा उद्देश वैसा नहीं है, इसलिये यथा दर्शन सक्षेप में लिखा है.

पीछे जैसे आग मे सुवर्ण का ताव होता है वा जेष्ट मास के दोपहेर का जेसा सूर्य होता है वेसा रोशनी का बिंब जान पडा सुरता चोधाने लगी, यह बिंब पीपल के पत्ते वा अडे के आकार वाला था, इसका पृष्ट नहीं दीखती थी. उसकी रोशनी विस्तार वाली थी, किरण रहित निर्धूम ज्योति थी, उसके दर्शन से मन ठेरता था, आनद होता था, वहा से निकलने को मन नहीं चाहता था, इसमे अवस्था शरीर तक का भान नहीं होता था थोडे दिन पीछे कमी कमी नाना प्रकार की सुन्दर आकृतियें जान पडी. पीछे धनुषधारी रूपवंत श्रीराम, मनोहर मुरलीधर श्रीकृष्ण, सुन्दर स्वरूप विभुती वाले जटाधारी श्री शकर, खूबसूरत अबादेवी, कमल स्थित लक्ष्मी, विना पूंछ का हनुमान, और भैरव के कभी जुदा जुदा कमी सर्व जुत्थ के एकस्थ दर्शन होने लगे. इनकी पीठ नहीं दीखती थी इनकी छाया नहीं थी सुरता छूने जावे तो वे आगे आगे जाते थे. उनका स्पर्श नहीं होता था वे कमी कमी मुसकराते तो मैं यह कहता था कि जब तक आप मुख से न बोलो वा आपका उपयोग न कर सकूं वहा तक मै आपको अवतार, देव वा सिद्ध नही मान सकता सभव है कि जो गुरुवर्य के वक्ष्यमाण वाक्य न होते तो वे (मेरा चितमय ईथर) बोलने भी लग जाते. परतु ऐसा कभी न हुवा जब आकार और सस्कार रहित केवल प्रकाश होता था, तब पूर्ववत् आनद होता था मैं देखता हू ऐसा भाव होता था. मन एकाग्र हो जाता था इस प्रकार जब जब मन एकाग्र होता तब तब दिन वा रात को आप ही आप उक्त उभयावस्था हो जाया करती थी

२—एक वार रात को आखें बद जागता हुवा पडा था, उसी रोशनी के होने पीछे ऐसा जान पडा कि पैरो पर एक छोटासा पहाड आके ठेरा है, सिंह चढी हुई अबा खूबसूरत देवी पेट पर से होके सिंह से उतर के मेरी सुरता के सामने चुप हो के बेठ गई. आसपास बदसूरत भूतप्रेत नाच रहे है यह देख के मुझे कुछ आश्चर्य, कुछ भय पैदा हुवा, इतने में एक बदर आया, दाहनी तरफ बदन में अगली से छेदने लगा (मैंने जेसे सस्कार वश देवी भूत माने वेसे इसको हनुमान मान लिया). मैंने उसे कहा कि यह क्या भ्रम वा आफत है, वोह बोला कि मत डर, दूर हो जायगी. इसके पीछे वे पहाड, भूत, प्रेत, सिंह, देवी अदृष्ट हो गये और बदर भी चला गया. पीछे तुरत एक मनोहर व्यक्ति आई, मुझे दिलासा दिया और बोली कि चल तुझको रासमडल दिखावें. सुरता उसके साथ हो चली. शरदऋतु है. पूर्णमासी के चद्र की रोशनी उज्जल मनोहर है. चौडे मेदान में ले जाके मुझ को खडा कर दिया. आप

जरा दूर चला गया, देखता क्या हूं कि आसरे २४ मर्द औरत रास के प्रकार मे नाच रहे हैं, मनोहर नाना प्रकार की आवाजें आ रही हैं, वे बाजों के स्वर ताल सहित थीं. थोडी देर के पीछे वही मनोहर पुरुष (जिसको संस्कार वश मैंने कृष्ण मान लिया था), आया और कहा कि तुम्हारे स्थान पर चले जाओ. सुरता वहां से चली आई और शरीर के साथ मिल गई. मैं दंग था.

३–उन्मनी मुद्रा करते हुये ध्यान के बिना जुदा जुदा प्रकार के बाजों की आवाज सुनाई देती थी. और मनपसंद होने मे मन ठेर जाता था. कमी कभी बिजली की जैसी झिलमिल ज्योति मालूम होती थी. और जब गरजना जेमा शब्द होता था तब मन स्थित होके शांत स्थिर हो जाता था.

४–उन्मनी मुद्रा द्वारा भ्रकुटी की बिंदु में सुरता साधने लगी तो प्रथम नीले, पीले, लाल वगेरे रंग, उसके पीछे उनकी लहरें, उस पीछे समूहात्मक गोला जान पडा (ईथर की स्थिति). उस पीछे श्वेत चंद्र का गोला देखा. उस पीछे एक दीपक जेसी रोशन लो (शिखा) जान पडी, यह लो निर्धूम थी. यह जिधर जिधर जाती सुरता उसके पीछे पीछे चलती; परंतु उसका स्पर्श नही कर सकती थी. जब यह लो नाबूद हो जाती तब उठ जाता. होते होते वोह लो उपरको मगज (उम्म दिमाग) की तरफ जाने लगी. वहां जाके गुप्त हो जाने लगी. फेर उसके गुम होने पर असीम प्रकाश मालूम होने लगा. यह प्रकाश सूर्य विना का था अनेक सूर्यों के विना उनका प्रकाश एकत्र करलें ऐसा था. इसकी कोई सीमा वा क्रिया नहो थी. सुरता इसमे घूमने लगी, इसका पार न पाया. सुरता का में कोई स्थान विशेष वा समय विशेष नही पाता था, परंतु संस्कार वश ऐसा मान लिया गया कि ब्रह्मरंध्र में सुरता आई है और इस महाकाश में यह चमत्कार है.

इस स्थिति में कभी महा आकाश (अर्धशून्य), कभी उसमे जन्म भूमिका मांगोपांग नगर, कभी दूसरे उत्तम शोभित नगर एवं मकान, बाग, उम्दा उम्दा सांप, और पशु पक्षी नजर आते थे. कभी सम्य दिव्य मनुष्य जेमे शरीर नजर आते थे. वे मिलके आपस में बातें कर रहे है सो मैं सुन रहा हूं और कभी मुझ को कुछ सुना रहे है. जेमे जाग्रत के व्यवहार में दिवस को देखते है वेसा जान पडता था. परंतु उन दृश्य वस्तुओं की छाया नहीं जान पडती थी. न उनकी पीठ मालूम होती थी. और जो सुरता (मैं) स्पर्श करने जावे तो वे स्पर्श में नहीं आते थे. दूर दूर जाते थे. वे देव वा मनुष्य एक दूसरे की पीठ नहीं देख सकते थे और न मैं देख

सकता था (प्रतिबिंब मात्र थे) कभी याने मजकुर रोशनी न जान पडे तब उसी हालत मे रात है चंद्रमा और तारागण है, ऐसा जान पडता था मैं राशियो के नक्षत्रो की निरिक्षा करता था कभी जैसे पानी में खडे होके वा आडे होके तेरते है वेसे उडता अर्थात् जैसा स्थूल शरीर है वेसा मानो स्थूल शरीर का बीबा होय नहीं ऐसे सूक्ष्म शरीर में प्राण को भरके अपनी इच्छा अनुसार उडता था उस समय यह भी विचार हो जाता था कि जो स्थूल शरीर को हल्का करके उसमें प्राण भरे जावें तो उडने की सभावना है जब उडता था तो बहुत लोग तमाशा देखते और चकित होते थे.

ऐसे होते होते ऐसा हुआ कि प्रकाश वगेरे कुछ भी न रहा फक्त आकाश-शून्य हो गया और फिर वोह आकाश वा शून्य भी न जान पडा. चुप हो गया मुझे नहीं मालूम कि मै कहा लय हो गया थोडी देर के पीछे सुरता होश मे (आपे-मे) आई और एक कोई श्वेत रूप का उज्वल महान पुरुष दिव्य मूर्ति देखने मे आया, उसको देखके में आनन्दित हुवा फिर वहा से चल दिया फिर कभी वही असीम रोशनी जान पडी इस प्रकार कितनी ही मुद्दत तक होता रहा.

उक्त चारों साधन होने पर सूक्ष्म दृष्टि (मानसिक दुनिया) की सेर हुई उस सेर में (१) पूर्व (याने सन्मुख) दिशा के सिवाय दूसरी दिशा का भान न हुआ. (२) देश (आकाश—दूर समीप वा माप) और काल (छोटा बडा साल सवत् वगेरे) का ज्ञान नहीं हुआ किंतु शब्दमात्र होता वा तो स्थित का फेरफार होता तब शब्दमात्र होता (३) कभी मित्र के घर में जाता और वहा की वस्तु निरखता जो मानसिक होती थी और दृश्य ससार की जैसी थी (४) देवो के वस्त्र मनुष्यो के जेसे परतु प्रकाशमान थे और स्पर्श मे नहीं आते थे. इत्यादि अनेक अद्भुतता देखता था.

एक दफे ऐसा हुआ कि विचारसागर पढते पढते आख बद हो गई, चुप हो गया और सेल्फमेस्मेरिज हो गया अर्थात् विचारसागर के दोनो वेही पृष्ट (जो खुले पडे सो गया था) नजर आये और मैंने बाचे. आखे खुल्ने पर देखा तो जो मैने पढे थे वेही पृष्ट (पूर्ववत्) खुले हुये है

एक वार दोपहर को मकान में पडा हुआ आखें बद थी मजकूर रोशनी में उस मकान के तमाम पदार्थ जान पडते थे, इस समय वोह रोशनी पीलास पर थी. बाहिर से जाग्रत वाला आदमी आया वोह भी जान पडा वोह दो पुस्तक उठाके ले गया, सो भी जान पडा उठने के पीछे यह बात सही जान पडी. (यह स्थिति भी

सेल्फमेस्मरेझम की थी याने चित की सफाई उसमें वाहिर के फोटो लिलाट वा चक्षु द्वारा अंदर गये सो जान पडे ऐसा निश्चय हुआ.)

कभी ऐसा भी हो जाता था कि कोई आदमी आके बेटा उस वक्त जो वृत्ति अंतरमुख होने पर मजकूर रोशनी दिखाई पडी तो उस समय जो फुरना होती थी वोह परीक्षा अर्थ में कहता. आने वाला आदमी अपने मन के संकल्प यही थे ऐसा कहता. ऐसा सं. १९४६ तक रहा. परंतु कितनी बार यह परीक्षा गलत (व्यभिचारी) निकली इसलिये अकस्मात जान के इस प्रकार को कल्पना मात्र जाना गया.

कभी इसी रोशनी में ज्ञात मुरदों की सूरत जान पडती थी और वे कुछ कहते सो मैं सुनता. परंतु मैं इस स्थिति को स्वप्न जैसी मानता था.

साधन काल में इच्छा यह थी कि जो सत् हो और मेरे योग्य उत्तमोत्तम हो वह मुझको मालूम हो जाय; ऐसी भावना रहती थी. एक दफे आंखें बंद किये हुए पडा हुआ था. मजकूर रोशनी में सुरता आई, प्रस्तुत भावना फुरी. मुझे कोई (संस्कारी चित्त) जवाब देता है कि यहां जो अशब्द असीम द्रष्टा है वही सत् है, वही सर्वोत्तम है. ऐसा होने पर सुरता की रंगत पलट गई, कुछ और ही हालत हो गई, आनन्द शांति पाता हुआ उठा. और आज तक के पूर्व के जितने दर्शन और शंका थी उन सबका अर्थात् सेकडों शंकाओ का अपने वास्ते समाधान कर सका. †

मेरे पूज्य गुरु श्री ने यह उपदेश कर दिया था कि साधक को अनेक प्रकार के चमत्कार जान पडते हैं, उनको संस्कार भावना मात्र जानना, सच्चा न मानना, उन में मन न देना, वे यथा संस्कार सूक्ष्म किरणों की याने माया की आकृति है और तमाम (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध,) स्वप्नसृष्टि समान मायावी प्रतीति मात्र हैं, इसलिये इष्ट नहीं है ऐसा जानना, जो उन तमाशों में लगा तो दूसरे निरक्षरों के समान वहेम में पड़ जायगा, सत् हाथ न लगेगा. इस कारण से पूर्वोक्त दर्शनों को तमाशे और अनुवृत्ति मानता था. और परीक्षा करने पर वैसे ही जान पडे.

(९) उक्त रोशनी विना की अनुवृत्ति—जैसे बालकों पर कभी कभी कुदरती अनुवृत्ति हो जाती है अर्थात इष्ट जगह पर सोना, और सोया हुआ पैरों से चलके अनिष्ट जगह जाना, मार्ग में पेशाब करना, नित्य नियमानुसार दूध पीके सो जाना, और सबेर में उठने समय खाने और दूध वास्ते तकरार करना.. इसको कुदरती

† तुर्या अवस्था इससे आगे है, उसका बयान नहीं हो सकता. और न प्रसंग है.

अनुवृत्ति कहते हैं. ऐसी आश्चर्यजनक एक अनुवृत्ति हो गई थी. वोह यह है कि वैसाख महीने में दिन को १ बजे जा रहा था, देखता हूं कि एक हवेली की देवार के सहारे आगे पुरुष पीछे रूपवंत स्त्री बाल खुले हुए ऐसे प्रकार में नजर पडे कि उनका नीचे का आधा अंग सांप के मुख में है और वे दोनों, सांप पूंछडी के बल खडे हुये, उस देवार के सहारे आगे पीछे जा रहे हैं खडा होके देखा. वे मकान का कूना मुडने तक दीख पडे उस पीछे नजर न आये. अंदाजे से कहता हूं कि १९ सेकण्ड तक में ऐसा देखाव हुआ होगा. मुझे उस समय विद्या बुद्धि नहीं थी. उस पीछे कालांतर में पिता वगेरे से कहा तो किसी ने वहम किसी ने अन्य उत्तर दिया, परंतु सतोषकारक उत्तर न मिला. तेजस् विद्या (मेस्मेरेझम) विद्या सीखने और प्रयोग करने के पीछे जवाब मिल गया अर्थात वे काली नाग नाथन लीला की छबी (आधा बदन मनुष्य का सांप में ऐसी तसवीरें) की अनुवृत्ति हुई थी.

४२ वर्ष की उमर की बात होगी कि सब तरफ के कंवाड बंद आदमी न आ सके ऐसे कमरे में (जो कि जंगल विषे बाग में था) रात के १० बजे खाट पर लेटा हुआ था. अकस्मात आराम कुरसी पर बैठे हुये एक पारसी साहेब जान पडे. आंखें अर्ध बंद करके आधी मिनिट तक विचारता रहा कि यह कहां से आया और कौन है. अंत में उससे पूछने लगा तो वोह सूर्त नजर न आई यह भी अनुवृत्ति थी.

ऐसी और भी आश्चर्यजनक अनुवृत्ति हुई है. स्वप्न में स्वप्न को स्वप्न है, ऐसा जान लिया है तो भी वही स्वप्नदृष्टि सामने देखता रहा. कारण ? माया दर्शन का शौक और संस्कार. कहने का यह है जब खुली आंखें ऐसी अनुवृत्ति होती हैं तो आंख बंद हुये संस्कारानुसार कुछ जान पडे या अनुवृत्ति हो तो उस में क्या आश्चर्य ?

मगरूर दर्शन की सायंस जानने का शौक था. एक निषेप पर तेजस् विद्या निध दृष्टि हो जाने पर पास करके उसकी आंखें खुलाई तो जान पडा कि उसकी आंखों के अंदर तरफ का नीला गदला बादलिया भाग बाहिर की तरफ आ गया है और बाहिर का (काली धोली पुतली) अंदर की तरफ चला गया था. (यह स्थिति विषेय के पुत्र २३ वर्ष की उम्रवाले को दिखाई थी) फेर उसकी आंखें बंद कराई और खुलासा पूछा. उसने यह भी कहा कि जिसको शोर्ट साइट हो उसको अंदर का मकान या अन्य आकृति नहीं जान पडती.

एक दफे जालंधर के स्टेशन पर स्टेशन मास्टर के मकान पर रात के ९ बजे तीन चार साक्षर बैठे हुये थे. संत मत वाले प्रकाश दर्शन की महिमा हो रही थी. मैंने कहा कि वोह प्रकाश तो दो नस दाबने से भी जान पडता है, उनमें से एक ने परीक्षा मांगी. मैंने प्रयोग किया तो उसको भ्रकुटी में प्रकाश का गोला मालूम होने लगा फेर नस छोड दी. उसने आंखें खोली, आश्चर्य में आया और सदगुरु शब्द कहके लंबा पडा; क्योंकि उसने तो उस प्रकाश को ज्योतिस्वरूप ब्रह्म मान लिया था. मैंने उसको कहा कि यह बिजली का प्रकाश है ब्रह्म के रंगरूप नहीं होता, वोह किसी का दृश्य नहीं है और यह गोला तो रंगरूपवाला दृश्य है; परंतु मेरे कथन को उसने दूसरे रूप में मान लिया याने दूसरों से छिपाने के लिये ऐसा कहते हैं ऐसा निश्चय कर लिया. अंत में में स्वयं ही पछताके चुप हो गया.

मेरा विधेय विश्व दृष्टि में आया, उसको आकाश की तरफ भेजा, उसको मार्ग में सर्प नजर आया, आगे चलके उम्दा बाग देखा, वहां किसी दिव्य मनुष्य से बातें करने लगा. फिर पीछा बुला लिया. (यह हिरण्यगर्भ में उडते फोटो थे ऐसा में मानता हूं). उसी ने हृदय (हार्ट) यंत्र का नकशा करके बताया, वोह मुरदा चीरने पर ठीक जान पडा.

विधायक से उसकी अभ्यसित भाषा के अजान गूढ भाषा वाले ग्रंथ के अर्थ कराये और कितनेक गुप्त चित्र जानने मे आये.

मेस्मरेज्म द्वारा और भी अनेक परीक्षा की गई. प्रसिद्ध मानसिक योग ग्रंथ का पूर्वार्द्ध बांचो. उत्तरार्द्ध में उसकी सायंस लिखी गई है जो कि अभी अप्रसिद्ध है.

दर्शन संबंध में एम.बी.बी.एस. और एल,एम, एडसों से बात चीत हुई तो उनके कहने का भावार्थ यह है कि ब्रेमेटर के भाग गत अनेक सेंटर (इम्प्रेशन लेने, स्मृति–मेमेरी होने वगेरे के) हैं उनका अस्वाभाविक कार्य होगा. (इस उत्तर से मुझको सतोप नहीं हुवा).

चीरते हुये मुरदों के भाग देखे और डाक्टरों से शोध किया तो जान पडा कि (१) बरडे की हड्डी पर नसों के गुच्छे (सेंटर) हैं जिन को चक्र कहते हैं. उन में न कोई देवस्थान है. न कोई अक्षर हैं. दो चक्र अदभद.हैं, नाभी के सामने पीठ की तरफ "लंबर सेंटर" * है. जो गुदा, मूत्र और काम इन तीनों का

* बकमारु टूटना.

समूह पुंज है. वहां कामा, जेसा मेल है सो सर्प जेसा है उस पर झिल्ली होती है (इसका नाम कुंडली है). दूसरा मेडुलीरी सेंटर (जंकशन वा पुल) है. यह कंठनके सामने पीछे को गरदन में होता है. यह हार्ट फेफडा, लोही की नाली, खूराक निगलना, खांसी आना, इनके पुंज का सेंटर है. जब प्राणापान दोनों एक करके रोकते हैं तो फेफडे भर जाने से दोनों सेंटर को अस्वाभाविक हरकत होना भी कहते हैं. (२) 'लोही' हड्डी, श्रोत्र के अंदर द्रव्य पदार्थ, साधन से खून ज्यादे होना, श्रवण का सेंटर इत्यादि की गति से अनेक आवाज होती हैं. और वे कान से सुनी जाती हैं. (३) हृदय में जो प्रकाश है वोह लोही की अति गति होने से विजली का होगा. (४) मगज में जो प्रकाश होता हो उसका कारण मैं नहीं कह सकता क्योंकि अभी बहुत से सेंटर अज्ञात हैं. संभव है कि अज्ञात सेंटरों द्वारा विजली का प्रकाश हो, ऐसा डाक्टर ने कहा. (५) प्राण नाभी से नही उठते. फेफडों में ही रहते हैं. यदि नल ओजरी साफ हों और अभ्यास हो तो अपान वायु कंठ तक आ सकती है वहां प्राण के साथ मिलके दोनों फेफसे में जब खूब भरे तो उनका रूपांतर होके बांयी तरफ में भराके मगज में जाता है. उस पहले रोकने से नं. २ (मे. सें.) पर दाब आवे तो नं. २ में आवाज § होना संभव है. (६) ब्रेमेटर के अंदर मुख्य बिचले भाग में एक गोली निकलती है. इसके साथ कुल शरीर के तंतुओं का संबंध है, इसमें पोल होती है (ब्रह्मरंध्र–भंवर गुफा–सहस्र दल कमल). जिसे मन वा सुरता कहते हो उस काम का भी एक सेंटर है. ई. डाक्टर द्वारा जाना गया. प्राणायामवादी जेसे कहते हैं वेसा मार्ग वहां नहीं जान पडता. तथापि डाक्टर का कहना है कि अभी पूर्ण ज्ञान न होने से विशेष हम नही कहते. मैं नहीं कह सकता कि ऊपर वाली हकीकत यथावत् है वा नहीं.

खेचरी मुद्रा साधे हुवे एक अतीत दूसरा गृहस्थ देखा. अतीत ने जब जिह्वा कंठ के छिद्र में ऊपर को चढाई सो आंखों से देखी थोडी देर पीछे उसने उतार ली. वोह कहता है कि खेचरी का जेसा वर्णन महातम ग्रंथों में पढा और महात्माओं से सुना वेसा कुछ नहीं पाया. जिह्वा पर रस (मगज का श्लेष्प) आता है वोह जरा स्वादिष्ट जान पडता है. थोडी देर पीछे प्राण अमुनने लगने हैं तब उतार लेता हूं. इस अभ्यास में भूख पूर्ववत् लगती है. और कोई नवीनता नहीं देखी.

§ मेदरंद फूटना. औ. की आवाज होना.

अब पूर्व प्रसंग पर आते हैं. दयालु करुणालु पाठक? उपर जो कुछ मेरका वर्णन किया है उसका मूल (वा उसकी सांयंस) में अभी तक वही मानता हूं कि जो उपर कह आया हूं. यह सब संस्कार, भावना और हिरण्यगर्भ का प्रभाव है, कोई उपयोगी वस्तु नहीं; किंतु एक प्रकार का देवानापन वा अनुवृत्ति कह देवें तो भी अतिशयोक्ति नही है.

क्योंकि मुझे स्वप्नसृष्टि में कभी कभी मुसलमानी पीरान पीर के दर्शन हुये. लार्ड कर्जनश्री को अपने मकान में आये हुये देखा. अपने शरीर की पीठ में गोली लगी उसका जखम भी अपनी सुरता से देखा. अपने शरीर का सिर कट के दूर पडा सो सिर भी देखा और अपने शरीर का दाह भी देखा, यह सब स्वप्न में देखा. परंतु मेर प्रसंग में मुझको कभी भी कहीं भी योरोपीयन वा मुसलमीन व्यक्ति के और उनके माने हुये स्वर्ग नरक के दर्शन न हुये, जो कुछ देखा तो हिंदु प्रजा के ग्रंथ दर्शन श्रवण का वा उससे मिलता हुवा वृतांत देखा और उन दृष्ट व्यक्ति (मकान, झाड, मनुष्य सिद्ध-देवादि) की छाया और पीठ न जान पडी और स्वप्नवत् भी स्पर्श न हुई. इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे यथा संस्कार सूक्ष्म हिरण्यगर्भ (ईथर-माया-स्वप्न जैसे-प्रतिबिंब जैसे) के कार्य थे और कुछ न था. ऐसी सृष्टि के दर्शन को जो सत्य, सिद्धि रूप मानते हैं वे सत्य पर नहीं, ऐसी मेरी मान्यता है. (आगे वल्लाह आलम).

प्रयोजक के डेढ चांवल का अपवाद उपर आ चुका है.

विभूषक मत (संत मत की महिमा).

जो सच्चे योग्य संत हैं, स्वार्थ दंभ जिनमें नहीं है वे बेशक सदाचारी, नम्र होते हैं निस्पृही होते हैं, क्योंकि उनका सुरत शास्त्र इन गुणों के बिना उपयोग में नहीं आता. माना कि पदार्थ विज्ञान न होने से वे अपने दर्शन को सत्य मान के कहते हों, जोकि वैसा नहीं है, तथापि वे उत्तम पुरुष होते हैं, अतः इस पंथ की करणी ग्राह्य है. जो बनावटी, दंभी, स्वार्थी होते हैं वे इस प्रसंग के विषय नहीं हैं.

---

५२. प्रचूर्ण.

तैलंगस्वामी (जन्म शा. १५२९=वि. १६७४ मरण शाके १८०९=वि. १९४४ उमर २८० वर्ष की.)

इनका मूल नाम शिवराम था. एक संन्यासी योगी से दिक्षा ली. योग विद्या सीखी. तैलंगस्वामी नाम रखा. 'भारत के संत पुरुषो' इस गुजराती ग्रंथ में उनकी सिद्धि के अनेक चमत्कार लिखे हैं. आर्य समाज के स्थापक स्वामी श्री दयानंदजी के नाम इन्होंने पत्र लिखा. मेडम ब्लावाटस्की और करनल ओलकाट ने मुंबई में थीयोसोफिकल सोसाइटी स्थापी. उस सभा में यह अपने योग के चमत्कार दिखाते थे. मेडम के सब इंद्रजाल बताते थे. थोडे दिन पीछे मेडम कुलम ने मेडम ब. की साथ बहिन बनके रही, पीछे उसने मद्रास में उसके गुप्त घर का भेद खुला कर दिया.

शाके १८०५ में काशी विषे पंचगंगा के बीच में एक शिवलिंग की स्थापना की. अपने आश्रम में तैलंगेश्वर नाम का शिवलिंग स्थापा. इस आश्रम में स्वामीजी की मूर्ति भी है. शाके १८०९ पोष सुदी ११ को योगासन करके शरीर छोड़ दिया. यह तैलिंगी हिंदू थे. इनका बनाया हुआ 'महावाक्य रत्नावली' नाम का संस्कृत ग्रंथ है.

यहां आयुष्य की दृष्टि से उनका नाम लिखा है. इनका जीवन २७० वर्ष का हुवा वा नहीं, यह सवाल है.

हमने ऊपर जितना संप्रदाय अंश लिखा है वोह भी ज्यादा है क्योंकि संप्रदाय का वर्णन इस ग्रंथ का विषय नहीं है. किंतु आर्य प्रजा की स्थिति का भान हो इसलिये कुछ लिखा गया है.

कदाचित सबका लिखने बैठें तो ५ वर्ष और दूसरा ग्रंथ चाहिये; क्योंकि हिन्दुस्तान की मरदुम शुमारी (वस्ती पत्रक) सने १८९१ इ. (सं. १९४८) में हुई तब फकत पंजाब में इच्छा पंथी, आप पंथी, आपो आप पंथी वगेरे ९०० * (नौ सौ) फिरके (पंथ-संप्रदाय—मत) गिने गये. तो फिर तमाम हिंदुस्तान की तो

* यह सब उपरोक्त भारतीय दर्शन से बाहिर नहीं किंतु उनका समावेश भारतीय दर्शन में हो जाता है अर्थात् उसकी शाखा उपशाखा रूप है, और किसी किसी का समावेश किरानी, कुरानो सूफी मत में हो जाता है. हा, उनके उपसिद्धांत का भाग भिन्न हो, यह स्वाभाविक है.

कितनेक संप्रदाय पथ ऐसे हैं कि जो आर्यावर्त के तमाम भागो में है. यथा स्मार्त संप्रदाय, वैष्णव, शैव, शाक्त. (उपर कहे है)

ढेढ धर्म—यह लोक अपना धर्म गारूडय ऋषि से प्राचीन काल से चला आता बताते है (मु. शा.) कोई यक्ष देव से अपना आरंभ कहता है इस मंडल में विभूति लगाने वाले साधु होते है. चमारो को मांगने वाले चमारवे ब्राह्मण भी होते है. वाहरे पेट धर्म वाह!!

बात ही बया करना. इतना ही नहीं किंतु प्रति साल बढते जाते हैं, इसलिये अभी ते सबके वर्णन करने से उपेक्षा है.

इतना जरूर जना देते हैं कि हिंदू प्रजा में से जो जडवादी (चार्वाक और देव समाजी) और ब्रह्म समाजी हैं उनसे इतर तमाम हिंदू मंडल जीव का यथा कर्म पुनर्जन्म होना मानता है.

एक तरफ उक्त पंथों की अंधाधुंधी, दूसरी तरफ अपुनर्जन्मवादी मुसलमानी और खिस्ती धर्म का प्रचार, जिस करके आर्य प्रजा, मुसलमान और खिस्ती भी होती चली आ रही थी; ऐसे समय में पुनः गत त्रिवाद (पुनर्जन्मवाद त्रिवाद) की प्रवृति होने का समय आया.

---

५४. स्वामी दयानंदजी (आवृत्ति त्रिवाद).

स्वामी दयानंदजी महाराज काठियावाड देश में एक अमूल्य रत्न पेदा हुये थे. कहते हैं कि मोरवी के राज्य में टंकारा वा उसके पास के किसी गांव में औदिच्य

जंगली धर्म—मानव सृष्टि के आरंभ से श्यामा (भील वगेरे) प्रजा में चल रहा है जैसा कि उपर जनाया है.

आसुरी धर्म— डाकु चोर वगेरे नीच धंधे वालों में होता है (मु. शा.) उनके सिद्धांत मंतव्य लिखना ठीक नहीं समझा. कितनेक ऐसे पंथ हैं कि हिंद के अमुक भाग में ही हैं. यथा:—

महाराज पंथ—शभा पन्ना के किसी राज कुमार क्षत्री ने चलाया. सत साहेब और राज साहेब उसको मान्य हैं और ज्योति दर्शन के भगत होने से उसको सत मत में गिनते हैं (मु. शा.) यह पंथ उसी जिले में है अन्य थपे नहीं.

प्रणामी (महाराज पंथ—खेजडा पंथी) यह पंथ हिंदु मुसल्मानी मत से मिश्रित है. काठियावाड से इतर भाग में नहीं है.। प्राणनाथ कायस्थ सं. १६७५ में जन्मा उसने यह मत चलाया था.

श्रेयसाधक वर्ग यह स्मार्त धर्मगत वेदांत मानने वालों छोटी सी संप्रदाय काठिया-वाड गुजरात देश से इतर भाग में नहीं है.

चरणदासी—यह स्मार्त संप्रदाय का एक छोटा सा टुकडा अलवर के और यू. पी. से इतर भाग में नहीं है.

निकलंकी—सं. १९१४ में रेवाडी नारनोल दिल्ली की तरफ एक हेदराज नाम का ब्राह्मण हुआ है, उसने मेस्मेरिझम की सिद्धि के बल से नई संप्रदाय चलाई. उसके संप्रदायी उसको निकलंक का अवतार मानते हैं. हेदराज, मनुष्य पर मेस्मेरिज करके नचा देता था, ऐसा कहने में आता है. इसके संप्रदायी वैष्णव कहलाते हैं. इनकी नारदी भक्ति है. पुराणों को मानते हैं, कमा के खाते हैं, भीख मांगने का निषेध करते हैं, दिन दिन इस संप्रदाय की वस्ती होती जाती है. यह हीरावाटी से अन्य भाग में नहीं है

ब्राह्मण के यहां उनका जन्म सं. १८८४ वि. में हुवा था. * यह महात्मा १२ वर्ष की उम्र के पूर्व अपने घर से छिप के भाग गये थे. अनेक देश अनेक साधु मंडल में घूमे. विद्याभ्यास और योगाभ्यास करते रहे. अंत में मथुरा में व्रजानंदजी दंडी स्वामी के शिष्य हुये उनसे अंग सहित वेद विद्या का अभ्यास किया. जीवन पर्यंत इनकी रैणी करणी ऐसी निर्दोष थी कि उस पर कोई प्रतिपक्षी दोष—वा कलंक न लगा सका नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे—गृहस्थाश्रमी न हुये थे, इतनी ही नावाकफी मान सकते हैं.

श्री शंकराचार्य के काल मे तो बौद्ध, जैन और कापालिकादिकों का ही जोर था; परंतु इस दंडी के काल में तो बडा ही विचित्र समय सब का दृष्टिगोचर था: एक तरफ मुसलमानी और खिस्ती धर्म का बल, दूसरी तरफ वेद मंडल में भी नाना धर्म मत पंथ का प्रचार; वर्तमान काल ऐसा विचित्र कि सत्य के पैर भी टिकने मुश्किल; ऐसे काल में भी उन्होंने धर्म अंधेर दिखा दिया और मुक्ति लुब्ध मंडल को मुक्ति से पीछा आना (आवृत्ति) दरसाके—सिद्ध कर के धार्मिक प्रजा को धार्मिक पुरुषार्थ में तथा देशहित करने याने देश को धर्मात्मा होने के लिये उपदेश किया, और जीवन परार्थ है ऐसा सिखा दिया. इनका शरीर सं. १९४० वि. में अजमेर में छूट गया.

इनका मंतव्य आवृत्ति त्रिवाद था. जीव, प्रकृति और ईश्वर यह तीनों अनादि अनत, इसको त्रिवाद कहते हैं. जीव मोक्ष पाके वहां से पीछा आके संसार में जन्म को पाता है इसको आवृत्ति कहते हैं. यह मंतव्य स्वामी दयानंदजी का है. इस मत को वे वेदोक्त बताते थे, न कि उनके—अपने घर का.

चाकु कर्सटिये-इस पथ की बातें सुनी है इनके संप्रदाय का गुरु नहीं अपने आप चोटी काट लेते हैं दाढी मूछ मुडवाते हैं. कोई कोई इनमें विद्वान होते है, उमदा साफ वस्त्र पहनते हैं कलंदरो के समान कटु वचन बोल के भी भोजनादि माग लेते हैं विशेषतः एकांत में रहते हैं लोकों के साथ विशेष संबंध नहीं रखते "खुद खुदा" ऐसा मानते हैं (अहं ब्रह्मवत्) आजाद (स्वतंत्र) होते हैं. गिणती में २०० के करीब होंगे. विशेष भाग पंजाब की तरफ है. रमते भी रहते हैं

तद्वत् अन्य अनेक हैं. यथा रमोदासी, गरीबदासी, गेदाभी, फकीरीमत कहीं कहीं है. संत मत के अंतरगत् हैं.

भारत मध्ये छोटे छोटे पंथ संप्रदायों का ठिकाना नहीं अनेक हैं.

* एक जैन प्रतिपक्षी ने उसको कापडी का पुत्र बता के अश्लील शब्दों के साथ हंसी उडाई. वस्तुतः जैनी के लेख का सबूत नहीं मिलता.

वेद धर्म प्रवृत्ति के उद्देश से सं. १९२९ वि में उन्होंने मुंबई विषे आर्य समाज नाम की सोसाइटी कायम की, उसके २८ नियम रखे थे. पीछे सं. १९३२ वि. में पंजाब देश गत लाहोर विषे १० नियम स्थापन करके आर्य समाज कायम की. उन २८ नियमों का इन १० में समावेश हो जाता है. यह आर्य समाज वर्तमान में प्रजा के हितकारी धार्मिक काम कर रही है.

यह (दंडी *) सन्यासी महात्मा अपने समय के मार्टिन लूथर से भी विशेष महत्व वाले हुये हैं-क्योंकि धर्म संस्था के सुधारक कहलाये हैं. अथवा यूं कहो कि स्वामी श्री शंकराचार्य के पीछे यही धर्म प्रभावशाली हुये हैं. अंगोपांग सहित वेद के ज्ञाता, महान् विद्वान, जितेंद्रिय, सदाचारी और भव्य पुरुष हुये. वेद धर्म का प्रचार, हिंदी प्रजा का उद्धार और उपयोगी निर्णय होके सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग, यह उनका उद्देश था.

वेद शास्त्र का प्रमाण देके ईश्वर अवतार-मूर्ति पूजा-श्राद्ध-तीर्थ से मोक्ष और वीर्य पर जाति इनका खंडन कर बताना इसी का काम था. इस देशहितैषी लंगोटिये ने आर्यावर्त के तमाम प्रचलित धर्म-मत-पंथों का अंधेर लोक के समक्ष कर दिया, सब को संभाल के चलना पडे, ऐसी चुटकी भर गया-याने सब धर्म-पंथ वालों को जगा के चला गया.

वेद के अर्थ लुप्त पर्याय थे, अन्य प्रकार के अर्थ प्रसिद्ध थे, उससे नवीन प्रजा की वेदों में अरुची-अश्रद्धा थी, यह दोनों बातें दंडी के किये हुये ऋ. यजु. के भाष्य ने दूर कर दी, उसके भाष्य बांचने से नवीन युवकों को भी वेद में श्रद्धा होने लग गई. दंडी ने वेद का इस कदर तो प्रकाश प्रदर्शित कर दिया कि अष्टाध्यायी निरुक्तादि अंग बांचने वाले विद्वानों का यह निश्चय हो गया कि यदि पक्षपात रहित हो के तमाम मनुष्य मंडल समान हकदार हैं ऐसी साम्यभाव दृष्टि रख के वेद के अर्थ हो जायं तो वेद की सचाई का प्रकाश हो जायगा, तथा सर्व को उपयोगी हो पडने से वेद धर्म सारभौम्य हो सकेगा; क्योंकि सब को हितकारी और सृष्टि नियमानुकूल और सृष्टि नियम अविरुद्ध उसमें उपदेश है.

इसके सिद्धांत के खंडन में बहुत ग्रंथ हुये हैं यथा दयानंद मुख चपेटिका इत्यादि. परंतु ऐसे और रीफारमरों पर स्पष्ट रूप में नहीं तो व्याज स्तुति रूप में

* आरम में दंड रखता था पीछे दंड को छोड दिया.

जाति दोप लगाये गये हैं वैसे इस पर जाति दोष किसी ने नहीं लगाया है. (विशेष इनके जीवन चरित्र में).

आज ९०० वर्ष हुये कि हिंदू मुसलमान हो जाते थे और १९० वर्ष हुये कि हिंदू ईसाई हो जाते थे, परंतु हिंदू लोग किसी मुसलमान को वा इसाई को हिंदू नही बना सकते थे, इससे हिंदू कौम को बड़ा धक्का था. आर्य समाज ने शुद्धि की रीति निकाली अर्थात शास्त्रोक्त प्रायश्चित कराके मुसलमान ख्रिस्तियों को हिंदू धर्म में लेने लग गये. और अब यह बात तमाम आर्य प्रजा को पसंद पडने लगी है. सच मुच स्वामी श्रीदयानंद जी के धर्म प्रचार पीछे हिंदू बहुत कम मु. वा ख्रि. होते हैं. और मुसलमान ख्रिस्ती हिंदू होने लग गये.

धर्म सुधार, वेद प्रचार में तथा प्रजा के हित के लिये आर्य समाज जो जितना वर्क कर रही है वोह और उतना अन्य हिंदू धर्म संप्रदाय नहीं करती तो भी जाग्रती सब में हुई है.

आर्य समाज में महात्मा और कलचर्ड यह दो पार्टी सं. १९९२ में हो गई हैं. (विशेष भ प. पेज ४२६ देखो).

दंडी मत.

आर्य समाज स्थापक स्वामी दयानंदजी का मंतव्य. *

(१) ईश्वर–ब्रह्म–परमात्मा=सच्चिदानंदादि लक्षण युक्त है. जिसके गुण कर्म और स्वभाव पवित्र हैं. जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्व व्यापक, नित्य अनंत, सर्व शक्तिमान, दयालु, सर्व सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता, न्यायकारी, जीवों को यथा कर्म फलदाता है. वही परमेश्वर है. वही उपास्य है. अन्य नहीं.

(२) चारों वेद (विद्या धर्म युक्त और ईश्वर प्रणित–संहिता मंत्र भाग) निर्भ्रांत स्वतः (स्वयं) प्रमाण रूप हैं जिनके प्रमाण होने में अन्य ग्रंथ की अपेक्षा नहीं.

(३) चारों वेदों के ब्राह्मण छः अंग, छः उपांग, चार उपवेद और ११२७ वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियो के बनाये हुये ग्रंथ हैं वे परतः प्रमाण हैं अर्थात उनके वेदानुकूल वचन प्रमाण हैं, वेद विरुद्ध प्रमाण नहीं.

---

* इस मंतव्य का नाम दंडी मत वा त्रिशद आवृत्ति है. दंडी मत यह पद संन्यासी को सुशोभित है, ऐसा जान के प्रचार है, उनकी रीति से तो वेद मत कहते हैं.

(४) जो पक्षपात रहित न्यायाचरण सत्यभाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा याने वेदों से अविरुद्ध है सो धर्म, इससे विरुद्ध अधर्म.

(५) जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुण युक्त अल्पज्ञ नित्य है सो जीव.

(६) जीव और ईश्वर यह स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक भाव और साधर्म्य मे अभिन्न हैं.

(७) ईश्वर, जीव और प्रकृति (जगत का उपादानकारण) अनादि अनंत अर्थात् नित्य हैं. नित्यों के गुण कर्म स्वभाव भी नित्य हैं.

(८) संयोग वियोग और तदजन्य द्रव्य गुण कर्म यह प्रवाह मे अनादि हैं; क्योंकि वियोग के पश्चात नही रहते. संयोग की सामर्थ्य अनादि है.

(९) सृष्टि अर्थात् ज्ञान युक्ति पूर्व नाना रूप वनना.

(१०) ईश्वर के सामर्थ्य (सृष्टि निमित्त गुण कर्म स्वभाव) की सफलता और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि यह सृष्टि का प्रयोजन है.

(११) जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पडे, सो बंध. यह बंध अविद्या (निमित्त) से है.

(१२) मुक्ति अर्थात् सर्व दुखों से छूटके बंधरहित व्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना. नियत समय पर्यंत मुक्ति के आनंद को भोग के पुनः संसार में आना.

(१३) मुक्ति के साधन=ईश्वरोपासना. अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य मे विद्या प्राप्ति, आप्तविद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थादि.

(१४) अर्थ (जो धर्म मे प्राप्त हो) काम (जो धर्म अर्थ से प्राप्त हो).

(१५) *वर्णाश्रम गुण कर्म की योग्यता पर है.*

(१६) देव (विद्वान्) असुर (अविद्वान्) राक्षस (पापी) पिशाच (अनाचारी).

(१७) देव पूजा=विद्वान् मा वाप, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा, धर्मात्मा, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना. इससे विपरीत अदेव पूजा. इनकी मूर्तियें पूज्य और इतर पाषाणादि जड मूर्तियें सदा अपूज्य हैं.

(१८) शिक्षा=जिससे सभ्यता, विद्या, धर्मात्मता और जितेंद्रियता की सिद्धि हो.

(१९) **पुराण**=जो ब्रह्मादि के बनाये हुये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं, वेही पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नारासंशी है. अन्य भागवतादि नहीं.

(२०) तीर्थ=जिससे दुःख सागर से पार उतरे सो. यथा सत्य, विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, शुभकर्म इ. जल स्थलादि तीर्थ नही.

(२१) प्रारब्धादि का जनक होने से पुरुषार्थ बडा है.

(२२) संस्कार=निषेकादि (गर्भाधानादि) श्मशान पर्यंत १६ प्रकार के हैं, वे कर्तव्य हैं. दाह के पश्चात् कुछ भी न करना चाहिये.

(२३) यज्ञ=जिसमें विद्वानों का यथायोग्य सत्कार हो, यथा योग्य पदार्थ विद्या का उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान तथा वायु जल औषधि को पवित्र करने वाला अग्निहोत्रादि.

(२४) आचार्य=जो सांगोपांग वेद विद्या का सिखाने वाला, सदाचरण ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग कराने वाला हो.

(२५) गुरु=माता पिता और सत्यशिक्षक; असत्य छुडाने वाला.

(२५) आप्त=यथार्थ वक्ता, धर्मात्मा, परसुखार्थ यत्नशाली.

(२६) परीक्षा=ईश्वर, उसके गुण कर्म स्वभाव और वेद विद्या १, प्रत्यक्षादि ८ प्रमाण २, सृष्टि क्रम ३, आप्त व्यवहार ४, अपने आत्मा की पवित्रता ५. इन ५ परीक्षा मे सत्यासत्य का निर्णय कर्तव्य है.

(२७) ईश्वर स्वतंत्र है. जीव कर्म करने में **स्वतंत्र** और कर्मफल भोगने में परतंत्र है.

(२८) स्वर्ग=सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति. **नरक**= दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति होना.

(२९) जन्म=जीव का शरीर के साथ संयोग होना. **मरण**=शरीर से वियोग होना. सो वर्तमान, पूर्व और उत्तर तीन प्रकार का है; अर्थात् पूर्वजन्म, उत्तरजन्म और वर्तमानजन्म.

(३०) नियोग=पति के मर जाने इत्यादि प्रसंग में स्त्री वा आपत्तिकाल में पुरुष स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के संबंध से संतानोत्पत्ति करना.

(३१) स्तुति-(गुण कीर्तन श्रवण और ज्ञान) का फल प्रीति आदि. **प्रार्थना**-(सामर्थ्य से उपरांत ईश्वर संबंध से जो विज्ञानादि प्राप्त होने योग्य उनके लिये ईश्वर

से याचना करना) का फल निरभिमानादि होता है. **उपासना**—(ईश्वरवत् अपने गुण कर्म स्वभाव पवित्र करना, हम ईश्वर के व्याप्य होने से उसके समीप वोह व्यापक होने से हमारे समीप है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना) का फल ज्ञान की उन्नति आदि है.

(३२) जो जो गुण ईश्वर में है उनसे युक्त होने से ईश्वर **सगुण** और जो जो गुण नहीं है उनसे पृथक् होने से ईश्वर निर्गुण, ऐसे सगुण निर्गुण की स्तुति प्रार्थना उपासना होती है.

(३३) विशेष देखो सत्यार्थप्रकाश के अंत में उन्होंने स्वयं स्पष्ट किया है. इनके मरने के १० वर्ष पीछे आर्य समाज के दो भाग हो गये. महात्मा पार्टी (घास पार्टी), कल्चर्ड पार्टी (मांस पार्टी). + आर्य समाज का मेंबर अपने को वेदो का अनुयायी मानता है. स्वामी दयानंद का अनुयायी नहीं. उन मेंबरों के विचारो में मत भेद है. कोई वृक्षो मे जीव मानता है, कोई नहीं मानता इत्यादि.

शोधक.

स्वामी दयानंदजी के मंतव्य पर प्रतिपक्षी का आक्षेप उसका सार—

(१) विभु में गति अभाव से विभु ईश्वर में कर्तृत्व का अभाव होता है. (२) जो ईश्वर निरपेक्ष सर्वशक्तिमान होता तो प्रकृति और जीव के कर्म की अपेक्षा न होती. (३) जो सापेक्ष कर्ता है तो सर्वशक्तिमान निरपेक्ष नहीं. (४) जो स्वभाव (आप सफल होने के लिये) वश कर्ता है तो भी निरपेक्ष न ठेरा. (५) जो सक्रिय है तो परिच्छिन्न हुवा. विभु (व्यापक) न होने से सर्वज्ञ सर्वाधार न ठेर सकेगा. आधार न होने से जगत की अव्यवस्था होगी (बौद्ध प्रसग देखो) (६) जो सर्वव्यापी है तो मलीनस्थान मे कैसे होगा. जो निर्लेप तो आकाशवत् जड होगा. जो चेतन तो मलादि से जीव को भी घृणा है, तो उसको कैसे न होगी. (७) एक स्वरूप में दूसरे के स्वरूप का प्रवेश न हो सकने से व्याप्यव्यापक भाव न होगा, क्योंकि यह "जीव" 'परमाणु" सो मैं नहीं ऐसा ज्ञान होने से उभय के स्वरूप की भिन्न २ सिद्धि होती है. सावयव निरवयव, साकार निराकार, स्थूल सूक्ष्म, मूर्त अमूर्त सर्वप्रकार के स्वरूप प्रसग में यह नियम हावी है आकाश परमाणुवत. त. द. अ. २।३८२ पेज ३९८ से ४०६ तक और अ. ४ गत आरण्यक प्रकरण का आरंभ देखो.

(८) जब कि जीव नित्य है तो अणु होगा क्योकि मध्यम हो तो नाशवान् ठेरता है. विभु हो तो कर्ता भोक्ता नही हो सकता. अब जो अणु मानें तो शरीर की क्रिया ज्ञान और चेतन की व्यवस्था नही हो सक्ती. दुःख सुखावस्था अणु की नहीं हो सकती. रागादि अणु के गुण नही हो सकते (न्याय प्रसग त द. अ ३ मे जीव प्रसग देखो) अणु पदार्थ हाथ पाव को अधर खडा नही कर सकता मन मध्यम है उस द्वारा वा शरीर की ततु की रचना द्वारा मानें तो वे जड होने से सनियम कार्य नही कर सक्ते जब कि जीव एकस्थानी है तो दुःख की उसे खबर पहुचती हो, परतु मै दु.खी ऐसा रुदन न होना चाहिये. यदि जीव की ज्ञानादि शक्ति दीप के प्रकाश समान शरीर व्यापक मानें तो वे द्रव्य समूह नाशवान् ठेरेगे, क्योकि सकोच विकास वाले मध्यम है. तथा गुण शक्ति अपने गुणी शक्तिमान से इतर देश मे नहीं जा सकते, यह नियम है यथा गध पृथ्वी से, उष्णता अग्नि से, सस्कार मन वा ग्रेमेटर मे इतर जगह नहीं जाते

(९) जब कि अविद्या नाश हुये शुद्ध को मुक्ति होती है तो मुक्ति मे आवृत्ति में हेतु नही मिल्ता, और यदि वासना (अविद्या—पुण्य पाप रूप अद्दष्ट) हैं तो मुक्ति न होनी चाहिये और फेर भी हो तो वोह सुषुप्ति वा वैभववती अवस्था विशेष है, नहीं कि मुक्ति जो इष्ट नही, क्योकि वोह भी परोक्ष है, तो फेर दृष्ट सुख में ही प्रवृत्ति होगी किया मुक्ति मे पीछा करना अन्याय ठेरेगा. जब मुक्त हुवा तो स्वस्वरूप रहा फेर ससार मे आया तो अत.करणादि के धर्म अपने में मानें, पुनः मुक्त हुवा, पुन' पीछा ससार में आया और परधर्म अपने में मान लिये यह मुक्ति वा भुक्ति! साराश यह मतव्य असमीचीन है

(१०) वेद यदि स्वत' प्रमाण ईश्वर प्रणित है तो अर्थ का विवाद न रहे ऐसी तरकीब ईश्वर द्वारा होनी चाहिये थी, क्योकि उसका प्रकाश जीवो के वास्ते किया है और यु मानें कि जीवो के कर्म ही ऐसे है कि अधेर में पडें, तो सृष्टि के आरभ मे भी उसका प्रकाश नहीं करता साराश अर्थ का विवाद रहने तक उसका उपयोग नहीं हो सकता किसका अर्थ मान्य यह कहना मुश्किल है यदि सृष्टि का नियम अनुकूल और परीक्षापूर्वक उपयोगवाले मान्य तो फेर किसी ने भी तकरार नहीं करती, और ईश्वरीय अर्थ ज्ञान न होने तक परतत्रता मानी गई. इ

(११) नियोग किसी काल में मान्य होगा, वर्तमान में उचित नहीं जान पडता यह स्पष्ट है (प्रतिपक्षीओ ने इस मान्यता का खूब निषेध किया है).

(१२) ईश्वर अवतार, तीर्थ, श्राद्ध तृपण, मूर्तिपूजा, वीर्य पर जाति, पुराण व्यासकृत इत्यादि विषयों का स्वामीजी ने भली भांति सत्यार्थप्रकाश की वेद भूमिका में प्रमाण युक्ति पूर्वक खंडन किया है उसके उत्तर (निषेध) में सनातनी आदियों ने ग्रंथ प्रसिद्ध किया है (तो भी जेसा निषेध है वेसा मंडन नहीं हो सका है) और इस विषय की यहां अपेक्षा भी नहीं है अतः उपरामता

(१३) दयानंद स्वामीकृत सत्यार्थप्रकाश प्रथमावृत्ति (१९२९) और दूसरी आवृत्ति (१९३४) में बहुत अंतर है. यथा पहिली में मांस विधान के कितने पत्र भरे हैं और दूसरी में सर्वथा निषेध है. तद्वत् संस्कार विधि प्रथमावृत्ति में मांस भक्षण में उपनिषद के वाक्य की साक्षी दी है. उसके पीछे की में नहीं है. जीव को आभास कहा है इत्यादि. अनेक भेद हैं, उनके बयान करने का यहां प्रयोजन नहीं है; क्योंकि स्वामीजी उसको रद्द मान गये हैं.

दूसरी सत्यार्थप्रकाश में जीव को अणु माना है * परंतु अब वर्तमान की (चोथी वगेरे) आवृत्तियों में अणु शब्द नही मिलता-परिच्छिन्न शब्द है. ज्ञान यह जीव का गुण है. स. अ. ३ पेज १९२. जीव ज्ञानस्वरूप है. स अ. ३ पेज २४४ सत्यार्थप्रकाश आवृत्ति २ के पेज ३२० में व्यासजी को आप्तविद्वान् और वेदवक्ता कहा है और मुक्तिप्रसंग में व्यास सूत्र पेज २३९ "अनावृत्ति शब्दात्" को ठीक नहीं (वेद विरुद्ध) बताया है. इत्यादि अनेक भेद है, परंतु उनके वर्णन करने का यहां प्रसंग नहीं है अतः नहीं लिखे. तथा भूल और विचारों का परिवर्तन यह दोनों देहधारी मनुष्यमात्र मे होते आये है और हैं तथा होंगे अतः उक्त कथन से उपेक्षा.

हमको इतना मुक्तकठ हो के जरूर कहना पडेगा कि उसके नाडी नाडी में-बाल बाल में वेद, वेद धर्म, आर्य प्रजा की उन्नति, सदाचार और देशहित भरा हुवा था. वोह देशहितैषी था, इसलिये भारत का भूषण-भारत का चेतन मार्तंड था. त्रिवाद पक्ष की उपयोगता त. द. अ. ४ में कही है. धर्म व्यवहार में त्रिवाद जेसा उत्तम अन्य मत वा भावना नहीं है. औरों से थोडे दोषवाला है और ग्राह्य है. दयानंदश्री इस भावना को अपना मत नही कहते, किंतु वेद मंत्रों से सिद्ध कर के वेदोक्त बताते हैं. नीति, युक्ति और आत्मबल, धार्मिक देशहित यह स्पिरिट वे उनके अनुयाइयों में छोड गये हैं.

* आवृत्ति २ पेज ४२४ देखो २४१ से २४५ तक और ५८६ भी मिलाइये आवृत्ति ३ के पेज १९२।१९३।२०२।२१८।२४२ से २४५ तक देखो जीव संबधी हकीकत में विरोध जान पडेगा.

विभूपक मत.

स्वामी दयानंदजी का मत त्रिवाद है, यह मत वर्णाश्रम के व्यवहार और ब्रह्म उपासना होने के लिये अत्युपयोगी है, और ज्ञानप्राप्ति का साधन है. आर्य समाज की संस्था में स्वामी महाराज की स्पिरिट है, इसलिये हिंदी प्रजा में जो वहेम, कुरीतिरिवाज हैं उनके दूर होने का साधन है. तमाम धर्मपंथों के शोधन में लगाने की हथियार हो पडी है, जो उसमें टोलरेशन और साम्यभाव की प्राप्ति हो जाय तो प्रजा के हित करने में सब धर्म संस्था से अग्रेसर हो जाय. ईश्वरवादि भक्त को त्रिवाद की भावना विना छुटकारा नहीं. जो यह भावना न हो तो भक्ति ही नहीं बन सकती. इस सिवाय इस भावना के लाभ अ. १ विभूपक मत पेज २३७ अंक १२ में और अ. ४ पेज में जनाये हैं. इसलिये यदि पूर्वोक्त सप्तक को समझ के पंचदशांग पाले और इस भावना पर कायम रहे तो अच्छा लाभ होता है. मुख्य लक्ष्य पर पहुंच जायगा.

---

५५. देवसमाज.

सं. १९३५ के पीछे पंडित श्री शिवनारायणजीने पंजाब में स्थापन की. 'सृष्टि और जगत् कर्ता ईश्वर, स्वर्ग नरक, परलोक कयामत और न्याय, पूजा उपासना, तीर्थ व्रत, भजन कीर्तन, जप पाठ, योग और समाधि, देवी देवता, मोक्ष निर्वाण, पाप और पुण्य, तत्संबंधी मिथ्या विश्वास" उनकी असलीयत जाहिर करना अपना फर्ज माना है. (देव गुरु भगवान का आविर्भाव में से).

कोई जगत्कर्ता ईश्वर नहीं, शक्ति (प्रकृति नामक शक्ति) अपने आपके हरकत के रूप में जाहिर करती है उसमे तमाम संसार है. न कोई (मादनीयात) से वनस्पति इसमे प्राणी (पशु पक्ष्यादि) क्रमशः होते हैं. आदमी की रूह शरीर को बनाने वाली, कायम रखने वाली और उस पर हाकिम है. रूह (जीवात्मा) क्या? शरीर के गहरे मुरकब (कंपोंड) मे बनी है. बुद्धि, इच्छा, रागद्वेषादि शक्ति हैं इन शक्ति से मुरकब है. कमी रूह कोई स्थिति विशेष में शरीर नाश पीछे भी रहती है. रूह सृष्टि नियम को पालती है इसलिये उन्नति या अवन्नति वा नाश को प्राप्त होती है. रूह के अंदर यदि योग्यता हो और देश, काल, स्थिति योग्य हों तो उन्नति पा सकती है. सृष्टि नियम के विरुद्ध वर्तने से जीव का शनैः शनैः नाश हो जाता है. असत् और

बदी से अरुची और सत्य तथा नेकी में भाव रहना यह उन्नति के चिह्न हैं. (देवसमाज के प्रिंसपल में से).

शरीरवत् जीव अपनी विविध शक्तियों में परिवर्तन लाभ करके बनता बिगडता है. पुनर्जन्म पाना झूठ बात है. ईश्वरीय कोई ग्रंथ नहीं है.

जीवात्मा सच्चिदानंद ब्रह्मरूप है, ईश्वर का अंश रूप वा ईश्वर हुक्म है, ईश्वर रचित वा उसकी संतान है, वोह अविनाशी और अनादि है, वोह सादिअनंत है. कयामत में इन्साफ वास्ते हाजिर होगा, शरीरत्याग पीछे ईश्वर द्वारा कर्मफल भोक्ता है वा स्वर्ग में रहता है वा पृथ्वी में मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि बनता है, यह सब कल्पित विश्वास है.

विश्व के मूल भूत (जड पदार्थ) अपनी शक्ति सहित अनादि अनंत हैं. जैसे शरीर जड पदार्थ (ऑक्सिजनादि) लेके विकसित हुवा है इसी प्रकार उस जीवन शक्ति से विकसित हुवा है कि जो टीन चांदी वगेरे जड पदार्थ में पाई जाती है. यह शक्ति गठिनकारी अवस्था को प्राप्त हो के अनेक प्रकार के उद्भिद् (वनस्पति) पशु मनुष्य आकारों की सृष्टि हुई है.

यह मत पंजाब में है. विशेष प्रवृत्ति नहीं हुई.' इसमें विकासक्रम का स्वीकार है, उच्च जीवन बनाना इसका उद्देश है. इसके ग्रंथ प्रसिद्ध हैं. (नवीन पच्छम का जडवाद है). समीक्षा पूर्वोक्त अचिद्वादवत् और इस मत वास्ते विभूपक का मत भी पूर्वोक्त अचिद्वादवत् जान लेना चाहिये.

परखंड दर्शनसंग्रह.

(भारतवर्ष से इतर खंडवासियों का मत). नं. १ से ८७ तक=याने नं. ५६ से १४२ तक.

इससे पूर्व भारतीय दर्शन कहे. अब आगे तत्त्वदर्शन अध्याय १ सू. ४९२ से ४९९ तक का विवेचन अर्थात् परखंड दर्शन लिखते हैं—

१. चीन * (शल्य देश).

हिस्टोरियन्स हिस्ट्री ऑफ धी वर्ल्ड जिल्द २४ पृ. ६२९ में से—

चीनी लोग सब भूतों की उत्पत्ति दो प्रकार की मानते हैं. (१) निष्क्रिय प्रकृति[1] (मेटर) और (२) क्रियावान् शक्ति[2]. उभय परस्पर की अपेक्षा वाली हैं. एक दूसरे के विना नहीं रहती. मूल शक्ति (यांग वा यंग) के स्वर्ग[2] (Heaven) कहते हैं, यह उत्पादक पुरुष तत्त्व है और मूलप्रकृति (य्न Yn) ग्राहक स्त्री तत्त्व (पृथ्वी) है. उभय का संबंध होता है. मूल शक्ति मूल प्रकृति पर क्रिया करती और स्फुरण देके साकृत करती है. इस संयोग का परिणाम संसार है जो सद्दीभूत (Realbeing) है. मूल शक्ति स्वर्ग (टिएन[3]) में प्रकट होती है, इसलिये वोह उच्च शक्ति मानी जाती है और इसी वास्ते चीनी लोग सूर्य तारों सहित स्वर्ग की पूजा को प्रथम स्थान देते हैं. स्वर्ग जिसका चलन व्यवस्थित है और जिसकी प्रणालिका और सौंदर्य सर्व काल स्थायी है और जो मनुष्य के आत्मा का उसके नैतिक संबंध में आदर्श है—चीनी शास्त्रों का असली देवता है. दूसरे दर्जे में पृथ्वी है कि जिसके ऊपर कुदरत की जिंदगी प्रकट होती है. स्वर्ग यह जिंदगी की विश्वव्यापी शक्ति है और चैतन्य के विना क्रिया करती है. यह इस दुनिया का प्राण है (या आत्मा है) अहंभाव और प्रत्येक व्यक्ति का तारतम्य अकेले मनुष्य के गुण हैं. मनुष्य मूल भूतों

---

* चर्क वैद्यक शास्त्र में चीन ही लिखा है. महाभारत में शल्य देश लिखा है.

१ प्रकृति

२ पुरुष. म ब्रह्म (चिदाकाश).

३ सादर आकाश या म ब्रह्म वा चिदाकाश

की श्रेणियों में तीसरा (यूनिट अर्थात्) पदार्थ वा व्यक्ति है. शुकिंग कहता है कि [२] आकाश, पृथ्वी सब के मा बाप है और सब जीवों में मनुष्य कोही तारतम्य ज्ञान है. (सदसद्विचार करना मनुष्य में ही है) एवं मनुष्य की स्थिति उच्च और नीच के बीच में है; जो कि मध्य बिंदु का वर्तन विश्व के आधार और समतोल के वजन पर होता है. सर्व काल स्थायी व्यवस्था केंद्र में मनुष्य की मजबूती के साथ रहने पर अवलंबित है. जब तक मनुष्य अपनी नैतिक शक्ति से स्वसंपादित पूर्णता को स्थिरता के साथ कायम रखेगा, और उभय (उक्त शक्ति प्रकृति) के साथ नियमोत्पादक सहकरण की तोर पर वस्तुओं की उत्पत्ति स्थिति में अपना कार्य करेगा तब तक सब कुछ उचित समतोल में रहेगा; परंतु जो केंद्र से टला, नैतिक समतोल खो बेठा तो विश्व का समतोल भी बिगड जावेगा और क्रमशून्य शक्तियें सर्व काल स्थायी मेल को तोड डालेंगी. *

मनुष्य का देह प्रकृतिमय है, परंतु उसमें आद्यशक्ति का वजन ज्यादे है और वोह शक्ति स्वज्ञ आत्मा में व्यक्त है; इसलिये मनुष्य सर्वज्ञान, सर्वनीति और सर्वसद्गुण का भंडार रखता है और इसी वास्ते वोह श्रेष्ट है.

कानफ्युशियस (ई. सन् १०० के पूर्व) के मत से मनुष्य स्वभावतः (प्रकृत्या) भला है उसमें सद्विचार, सद्गुण, वा धार्मिकपना है; क्योंकि इनको खुशी से स्वीकारता है. पाप कर्तृत्व मनुष्य की प्रकृति की जड मे दाखिल किया है.

आरंभ काल विषे चीन में यह मत प्रचलित था कि इस सृष्टि का नियंता एक ईश्वर है सो इस मनुष्य का स्रष्टा नहीं, किंतु पापरहित उत्तम पुरुष, सचारण आनंददायक, पुण्य पाप का फल देने वाला है. वोह मनुष्य से भक्ति वा पूजा नहीं मागता. फर्ज अदा करने पर ईश्वर के स्मरण की जरूरत नहीं. परंतु जब कुछ लाभ वा हेतु साधने का इरादा हो तब बलि या प्रार्थना से उसकी आराधना कर्तव्य है. शैतान कोई चीज नहीं है. ‡ सुकृत से तादात्म्य मरने पीछे नहीं मिलता. ईश्वर अर्थात् टीएन (वाचक) शेंगटी (श्रेष्ट नियंता) है. शेटिंग अर्थात् बोलता चालता, खुश होने वाला, लडाई में शामिल होने वाला. परंतु टीएन अर्थात् दुर्भेद उच्च स्थिति में रहने वाला. ऐसा भेद भी माना जाता था.

---

* रोचक वाक्य जान पडता है

‡ आर्य प्रजा के ईरानी, चीनी, मिश्रार (हिंदु) तीन टोले हुये तब की भावना होगी; क्योंकि कुदेव (शेतान) पद ईरानी (पारसी) धर्म का है.

इस एकेश्वर मत पीछे धीरे-धीरे सूर्य, चंद्र, ग्रह तारा वगेरे की पूजा (अनेक देववाद) शामिल हुई. पृथ्वी माता भी देव मानी गई. नदी, पर्वत, वायु, वर्षा, गर्मी, शीत, गर्जना, विजली भी देवता माने गये. + और देवें के बलि प्रजा की तरफ से बादशाह देता था. इसके साथ में पितृ पूजा भी थी और पितरें के कभी कभी बलिदान भी दिया जाता था.

उसके पीछे ताओ इझम याने अद्वैत मत चला. एक आत्मा मूल कारण है और उसी में सब लीन होते हैं.

पीछे बुद्ध धर्म आ के मिला और खिचडी हुई. ई. सन् ६१. बुद्ध धर्म सब जगह ग्यारहवें सेकडे मे जारी हुवा.

चीन में वाकसपोपली और वाकसडाई मशहूर हैं. सार यह—है कि पाप से दुकाल, धरतीकंप वगेरे आफत आती हैं, इसलिये राजा का फर्ज है कि प्रजा नीति से चले, वोह देखे (प्रबंध करे). मृत्यु पीछे पाप पुण्य का फल मिलेगा वा नहीं इस विषय एक शब्द भी नहीं है.

लाओत्से नाम का तत्त्वज्ञानी हुवा उसने द्वैत के ताेड के अद्वैत मत चलाना चाहा परंतु न चला. उसका मत यह था. शून्य में से (उक्त) आकाश पृथ्वी हुये, शून्य के पूर्व एक जीव था. वोह शांत, अमित, अविकारी और सर्वदा कार्यकारी था. वोह जगत् की माता (उपादान) था उसका नाम ताओ. मनुष्य का अस्तित्व पृथ्वी की मूर्ति. पृथ्वी आकाश की, आकाश सद्विचार की और सद्विचार अपनी ही मूर्ति है. यह पुरुष, ध्यानयोग सिखाता था. कामादिरहित हुवा, रागादि का दमन करके शरीर मे तप करता हुवा (इस क्रम से चलता हुवा). मिथ्या संसार मे निकल के जो एक श्रेष्ठ तत्त्व है उसमें मिलना यह अमृतत्व—मोक्ष है. चीनी लोग इस मत के जादू समझते थे. (उक्त हिस्ट्री में से).

+ चीन में अभी भी हरेक विषय के देव और उनकी मूर्ति और उन मूर्तियो की पूजा का प्रचार है. वर्षा न बरसे तब वर्षा के देव की मूर्ति के धूप में रखते हैं, कोथडे लगाते हैं क्यों! हे देव वर्षा बरसाव चीन में सिन्टो धर्म है जोकि सघम में बौद्ध का रूप है (बुद्ध की मूर्ति मंदिर भी हैं) शक्ति प्रसंग में प्राचीन देववाद है और राज्य प्रसग में कानफ्युशिस धर्म (राज्य धर्म) है इसका ज्यादा प्रचार है. (दुनिया की सेर इस ग्रंथ में से)

चीन की आरम्भ वाली भावना द्विवाद, पीछे अद्वैतवाद, पीछे त्रिवाद और देववाद पीछे राष्ट्र (राज्य) वाद और पीछे बौद्ध धर्म हुवा. इससे जान पडता है कि यह भावना वेद से उतरी हाे.

शोधक–विभूषक.

सुनते हैं कि चीन में नाना देवभावना हानिकारक रही और है. वहां की बुद्ध धर्म से जन्य जो लोकनीति है और कानफ्युशियस वाला राज्य धर्म–उत्तम है, प्रजा के हितकारी हैं, इसलिये यह राज प्राचीन काल से स्वतंत्र चला आया है. वहां के मूल सहित विस्तार वाला धर्म और उसका प्रजा पर क्या फल, यह हम नहीं जान सके हैं, इसलिये दूषण भूषण जनाने का हमको अधिकार नहीं है.

---

२. कोर्या, जापान.

इन देशो में नवीन चीनी प्रजा है. चीन अनुसार इनमें होता रहा है. वर्तमान में चीनानुसार तीनों मंतव्य हैं. बुद्ध और कानफ्युशियस का प्रचार है; परंतु खिचडी रूप में और रूपांतर से है. बुद्ध की मूर्ति और मंदिर हैं. जापान में प्राचीन प्रजा का शंटे धर्म है अर्थात् देवों की मूर्ति को मानना. उसको विशेष पूजा नहीं करते. सिर्फ धूप दीप होता है और श्रद्धालु मंदिर में जा के घंटा बजा के चले आते हैं, यदि मंदिर खुला हो तो मूर्ति के दर्शन कर लेते हैं. बस. भूतवाद, पितृवाद चीनियों के समान है. जापान में वर्तमान विषे पद्धति पूर्वक कोई धर्म नहीं है. बौद्ध मत की छाया है. वे कोई योग्य धर्म का प्रचार होना चाहते हैं. वर्तमान में इनकी बौद्ध धर्म वाली नीति और चीनी कानफ्युशियस राज धर्म अच्छा है, ऐसा सुनते हैं और प्रवृत्ति–पोलिटिकल खटपट में यूरोपियन फेशन–रीतरवाज चलाया है सो भी अपना करके चलाया है इसलिये अच्छा कहाता है.

---

३. मिस्र (इजिप्त).

सब खंडों में कोई न कोई प्रकार की प्राचीन प्रजा जान पडी है. यथा आर्यों के आने पहिले हिंद में कालीमन याने भील वगेरे प्रजा थी और भावना में देववाद की कल्पना थी. वेसे ही मिस्र की प्राचीन प्रजा ऑफ्रिकन हबशी हैं, जो कि नग्न भी रहते थे और कितनाक भाग अभी भी वेसा है.

हिमालय के वायवकोन में रहने वाली शिक्षित आर्य प्रजा के टोल्लों का विभाग हुवा उनमें मुख्य ४ थे. ईरानी (पारसी), चीनी, मिस्री और सिंधुपार जाने वाले अर्थात् आर्यन.

वे मिस्रादि देश में जाके बसे. कालांतर में मिस्री टोले में अन्य प्रजा (हिंदी, ईरानी आदि) का मिश्रण हुवा, इसलिये (मिस्र नाम पडा) ऐसा जान पडता है.

ता. चीन सन् १८९२ में लिखा है कि खता में जो टोला आया वोह हिंद में से आके बसा. जी. डब्ल्यु डाक्टर लाइटर साहेब लिखते हैं कि विद्या और हुन्नर हिंद में प्राचीन से हैं. हिंद से मिस्र में गया. हिंद और फारस (ईरान) का समूह यूनान (ग्रीस) में गया और मिस्र से भी आया. यूनान से बडे रूम में गया. रूम और यूनान (तथा हिंद) से अरब में आया. फेर अरब से, रूम से, यूनान से यूरोप ने लिया (सनेन इसलाम ग्रंथ पृ. १० में और दूसरी तारीख में से).

जब बायबलवाले नूह पेगंबर का जन्म भी नहीं था तब मे पहिले मिस्र में राज्य कारोबार और व्यापार धूम से चल रहे थे.

ईश्वरी धर्म और स्वर्ग! इस ग्रंथ में मिस्र का धार्मिक सिद्धांत लिखा है. उसका सार यह है—

प्राचीन काल में वहां के लोग मूर्ति, देव देवी और पशु पक्षी को पूजते थे. ओसिरिस (सूर्य) ऐसिस (चंद्र) यह दो बडे देवता मनाते थे, राज्य के प्रांत प्रांत में जुदी जुदी भावना थी, जिस प्राणी को एक प्रांत में पूजते उसी को दूसरे प्रांत में मार डालते थे. एक प्रांत में कुत्ता पूजा जाता तो दूसरे प्रांत में उसके मांस को अच्छा जान के खाने में आता. गाय को पूजते परंतु बेल का मांस खाते. पूज्य पशुओं की मरण क्रिया करते.

उपाध्याय वर्ग (साक्षर वर्ग) में एक ईश्वरवाद था. उनका मंतव्य यह था कि ईश्वर की शक्तियें मनुष्य के जुदा जुदा कर्म की अधिष्ठाता है. मनुष्य का आत्मा उस सर्वात्मा प्रभु का अंश है. आत्मा अनेक जन्मांतर पीछे परमात्मा में मिल जाता है आत्मा अमर है. जो देह प्राप्त होने का है उसमे वर्तमान का देह कम मूल्य का है. सदगुण में जिंदगी गुजारने से उत्तम जन्म प्राप्त होता है. तीन तत्त्व मिल के इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई है. सर्वात्मा ने जगत् और उसके तमाम भाग के आकार को चेतनता दी. पदार्थ तत्त्व, प्रकृति (अनादि) और गुण (जो अपनी अपूर्णता के कारण से सर्वात्मा के शुभ विचार का सामना करते है) यह तीनों तत्त्व सूर्य, चंद्र और टेफन यह देवता रूप माने गये.

यह प्राचीन मंतव्य था. पीछे यहूदी, खिस्ति और मुसलमानों के प्रसार होने पर मिस्र प्रजा यहूदी, खिस्ति और मुसलमानी सिद्धांत की अनुयायी हो गई.

मूर्ति पूजा जाती रही. काल की गहन गति है—जिस मिस्र ने बौद्ध धर्म के मूर्ति पूजा सिखाई (उस पर से वेदानुयायी आर्य प्रजा ने सीखी) उस देश में मूर्ति पूजा नाश हो गई.

कालेद साहेब लिखते हैं कि प्राचीन मिस्री, यूनानी, रूमी और अंग्रेज आवागमन के मानते थे. ता. (इंग्लस्तान पृ. ११).

एक अंग्रेज लिखते हैं कि मिस्र में दो खुदा मानने वाला टोला भी था. उनमें से एक भलाई का उसकी सृष्टि अच्छी. दूसरा बुराई का उसने खराब सृष्टि रची.

मिस्र देश में आरंभ में जो भावना (एकेश्वरवाद) चली वोह वेद मे उतरी है, ऐसा जान पडता है, क्योंकि ईश्वर भावना वेद से पूर्व किसी प्रजा में भी नहीं थी.

शोधक—विभूपक.

मिस्र के निवासी का अब प्राचीन धर्म नहीं है, तथा प्राचीन धर्म की पूरी थीयरी न मिली और उसका असर प्रजा पर क्या हुवा था उसका इतिहास भी नहीं मिला. इसलिये इस विषय में दूषण भूषण लिखना व्यर्थ है और न हमको अधिकार है, अतः नहीं लिखते, और वर्तमान में ईसराइली मत अनुसार ज्ञातव्य है.

---

४. पारसी मजहब.

पारसी धर्म ईसराइली (यहूदी, खिस्ति, मुसलमानी) मजहब से पहिले का है, यह बात स्पष्ट है; क्योंकि यह मजहब प्राचीन काल में जीव, ईश्वर, प्रकृति तीनों को अनादि अनंत मानता रहा है. बायबल, कुरान में इस मंतव्य का निषेध है और इतिहासों से स्पष्ट है कि मिस्र वगैरे देश में त्रिवाद था जो कि मूसा से पहिले हुये हैं. इ.

पारसी मजहब के मुख्य २ ग्रंथ हिंद में मिलते हैं. अवस्ता और वंदीदाद. उसमें से वंदीदाद विषे कर्मकांड है, जमशेद को खुदा की तरफ से बोध है, और अवस्ता में ईश्वर की स्तुति प्रार्थना है. इसके सिवाय के ग्रंथ वास्ते कहते हैं कि जर्मनी में हैं, यहां (हिंद मे) नहीं हैं. सारांश पारसी मंडल अपने धर्म मंतव्य के सिद्ध करने वा बताने में अशक्त है. तथापि उनके 'फरजाने' वगैरे ग्रंथों से और उनमें परंपरा के मंतव्य से तथा जो अब थियोसोफिस्ट हुये हैं उनकी शोध से तथा जरतोश्ति रहबर, जरतोश्ति मजहब (इंग्रेजी का तरजुमा) और चराग वगैरे रिसाले से कुछ लिख सकते हैं. (विस्तार मूल में है) यहां संक्षेप में—

अवतरण.

(१) जीव शरीर छोड के दूसरे शरीर में जाने वाला है (पेगंबर पहिला सासान आयत १९,७०,७२) पहिले शरीर से किये हुये कर्म के फल में दुःख सुख पाता है. (पंजम सासान).

(२) जीवात्मा (रूह) एक अमिश्रित तत्त्व है. गति में लाने वाला. यही आदमी और मैं, तू का वाच्य है. शरीर से भिन्न वस्तु है. शरीर के बदलता है (दसातीर, फरजाबाद वा खसूर आयत ६७।६८. तहकीक तनासुख पृ. ११).

(३) उत्तम मध्यम कर्म के अनुसार ईश्वर द्वारा दूसरा शरीर और फल मिलता है. जेसा करे वेसा पावे.

(४) सासन पंजम ने पूछा कि बादशाहों के संबंधियों का क्यों रंज होता है? यजदान (ईश्वर) ने उत्तर दिया. पूर्व शरीर से जो बुरे कर्म किये उनका फल है; क्योंकि खुदा न्यायकारी है.

(५) इसी प्रकार पशु पक्षियों के संबंध में पूर्व कर्म का फल कहा है.

(६) जो जानवर किसी के दुःख नहीं देते उनको मत मार; क्योंकि अक़ल कुल (महत) की तरफ से उसकी सजा (कर्मफल) और है. जेसे कि घोडे पर सवारी करना, बेल, ऊंट, खचर, गधे पर बोझ लादना. यह जानवर पूर्वजन्म में आदमियों के बेगार में पकड के बोझ उठवाते थे इसलिये ईश्वर ने यह सजा नियत की है.

(७) पेगंबर कहता है कि मुझे बहेराम फिरश्ते ने कहा कि जीवों की हकीकत सर्वज्ञ ईश्वर जानता है. रूह, एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है. जो पूरे त्यागी (संन्यासी) हैं वे ईश्वर का दर्शन पाते हैं और उससे नीचे दर्जे के लोग आसमानी कमरों में रहते हैं. उनसे नीचे दर्जे के जीव यथाकर्म जन्म पाते रहते हैं रुची के अनुसार चीज का मिलना सुख और मरजी के अनुसार प्राप्त न होना दुःख कहाता है. (न. ४ से सासान पंजम).

(८) रूयात के और अपने स्वरूप के जानना जीवात्मा का मुख्य काम है. यह काम शरीर की शक्तियों का नहीं है. शरीर मरता है, जीवात्मा नहीं मरता. जीव में ज्ञानशक्ति स्वयं है शरीर इंद्रिय तो जानने के साधन है उनका जीवात्मा के साथ अन्य संबंध नहीं है. विशेषतः ईश्वर के साथ (वे ईश्वर को नहीं जान सकते). इसलिये जो जीव आलातर (उच्च) हैं वे जरूर मोक्ष को प्राप्त होते हैं, इससे निचले

जो शरीर संबंध से मेले हो गये वे देवता होते हैं. जो नेकी ज्यादे करते हैं वे निजात (मोक्ष) पाने के लिये दूसरा शरीर पाते हैं, इस चक्कर का नाम **फरहंगसार** है और जो बदी करते हैं वे पशु योनी को पाते हैं इसका नाम **नंगसार है.** (नामे मश्तसासान प्रथम आयत १८, १९ सफरंग दसातीर सं. १२८० हिजरी).

(९) रूह (जीव) अज-अमर हैं और सब जगत नाशवान् है. (हकीम अलाहीजमशेद) (हकीम अलाहीजी अफराम पारसी). कु. आ. पु. पृ. ९२, १०० में नं. १ से ९ तक का विशेष विस्तार है).

आर्य और पारसी.

(१) होमविष्ट की आयत १८ झिंदावस्ता में सोमयज्ञ के विषय में अथर्व वेद की चर्चा है. अंगरा ऋषि का बयान है और कृष्णालु राजा ने अथर्व वेद कि जिसका आरंभ का मंत्र शन्नोदेवी है उसको अपने राज में बंद कर दिया. इस वास्ते होम ने उसको तख्त से उतार दिया (पदभ्रष्ट किया).

हाग साहेब लिखते हैं कि एतरीय ब्राह्मण में कृष्णालु की ऐसी ही चर्चा है.

(२) शोधकों ने लिखा है कि आर्यावर्त्त से आर्य लोग ईरान में आके बसे. (सायंस आफ धी लेंगवेज पृ. २८८).

(३) दारा बादशाह कहता है कि मैं आर्य और आर्यों की संतान मे हूं; क्योंकि उसके पडदादा का नाम एरीयाआत्मीया था. (सायंस आफ धी लेंगवेज पृ. २८०) दारा, सिकंदर से बहुत पहिले हुवा है.

(४) व्यास मुनि और जरतोश्त पेगंबर का ईरान में संवाद हुवा (झिंदावस्ता का अंतिम दसातीर देखो). व्यास के पहिले पराशर, कश्यप, पतंजली आदि सेकडों मुनि हुये हैं.

(५) झींद भाषा, संस्कृत मे एन मिलती है.

(६) पारसी लोग गोरक्षा और कशति (जनेउ) को स्वीकारते हैं.

(७) मुरदे को जलाना मानते हैं (नामे बहशुरान बहशूर फरानावाद आयत १५४).

(८) जो हुक्म मैंने तुमको बताये वे यमदान (खुदा) ने मेरे से पहिले वेद में उतारे हैं इ. (जरतोश्त वाक्य झिंद अवस्ता में).

(९) जरतोश्त और व्यास के संवाद प्रसग में लिखा है 'व्यास ब्राह्मण' हिंद से आवेगा. तुमसे पूछेगा कि ईश्वर सृष्टि किस वास्ते करे और क्यो की. +++

बुद्धि क्यों दी, क्योंकि सर्वशक्तिमान है, ईश्वर निस्पृही अलग तो फेर दूसरों को क्यों पेदा किया. उसको जवाब दे के ईश्वर कर्ता धरता है इ. (झंदावस्ता के अंतिम दसातीर में).

(१०) पारसी लोग ‡ वरुण (जल) अग्नि, सूर्य, इन तीनों को देवता मानके उच्च द्रष्टि से देखते मानते हैं.

(११) अभिन्ननिमित्तोपादान न मानके शक्ति द्वारा अभावजन्य मान लेने की संभावना है.

इन से जान पडता है कि वेद मत से यह धर्म फटा हो और पीछे प्राचीन से चला आ रहा हो. उसका रूपांतर होके वर्तमान रूप में आया हो.

वैदिक धर्म में से पारसी धर्म.

पारसी कौम हिंद में उच्च, सभ्य, धनाढ्य कौम है. इसकी आबादी १। लाख से ज्यादे नहीं है. गतकाल में यूनान, मिसर, और रूम की कौमें इसको नमती थी. मुसलमान मजहब ने इसको तबाह कर दिया. जब नोशेरवां और यजदगर्द की औलाद तबाह हुई और जबरदस्ति से मुसलमान करने लगे तब कितनेक पारसी हिंद में आके बसे.

आर्य टोला जब नाइतफाकी से * फटा तो उनमें से एक पछम (ईरान) की तरफ दूसरा दक्षिण की तरफ (हप्तहिंद–सप्तसिंध–सात दरिया से तर रहने वाला देश–हाल में पंजाब कहा जाता है) आके ठेरा.

पारसी और हिंदू गाय और सूर्य की ताजीम करते हैं. देवताओं के नाम बदले, यथा–असुर=अहुर राक्षस=देव. इंद्र=अहर्मन. इ. इ.

मिस्टर हाग ने पारसियों का उत्सव देखा वे लिखते है कि इनका हवन हिंदुओं के हवन के अनुसार है. अवस्ता में दस्तुर (पुजारी–साधु) को अथर्व, वेदिक भी यही पद है. इष्टि=अष्टि. आहुति=आजूति. होत=जोत. सोम=होम. जनैउ के बदले उनकी कशति रखते हैं और वोह संस्कार से ग्रहण करते हैं, उसके विना पारसी नहीं गिना जाता.

वेद ही ऐसी कुंजी है कि जिससे अवस्ता के अभिप्राय का ताला खोला जाय (प्रोफेसर डरामिसटर संस्कृत का विद्वान). फारसी और संस्कृत भाषा का मेल मरहटी, हिंदी और सस्कृत जेसा ही है.

---

‡ गाय, पृथ्वी और आकाश को भी पवित्र दृष्टि से देखते है.

* हिंदकुश–काकसिस पहाड की तरफ से फटे या तिब्बत के पश्चिमी भाग में से.

वेद और झिंद अवस्ता में आर्य कौम है. अर्थात् पारसी आर्य कौम है. अवस्ता के जो तरजुमे योरोपियनों ने किये वे ठीक न हुये. पीछे हाग साहेब ने किया जिसका तरजुमा मेक्समूलर साहेब ने छापा है वोह विश्वास पात्र गिना जाता है.

पारसियों में यसन,-वस्पराव, वंदिदाद, चंदेशत (हवन-संस्कार विधि) पवित्र पुस्तक मानी जाती हैं. ग्रंथों की गाथाओं से जान पडता है कि जरतोश्ती धर्म यजदान परस्ति (ईश्वरवाद) पर हैं एक अद्वितीय ईश्वर को मानता है. जिसे अहुर्मेजद कहता है. नेक और बद दो असुल हैं. उत्तम विचार, उच्चार और आचार यह इनकी तसलीस (त्रिपुटी) है.

मिस्टर हाग जरतोश्त का समय इसु से १००० पूर्व कहता है (परंतु उससे पूर्व याने विक्रम से २३४० पूर्व सिद्ध होता हैं).

नेकी और बदी के दो देवता नहीं हैं किंतु नेकी (चेतन) बदी (जड) यह दो तत्त्व हैं (जीव अजीव, प्रकाश तम, भलाई बुराई, ब्रह्म माया, पुरुष प्रकृति के भाव में है) धर्म नीति प्रसंग में दैवी, आसुरी संपत्ति में आशय है.

मुरदों को दखमे में रखना, इतना आर्य प्रजा से भेद हैं. परंतु उनके विद्वान जलाना पसंद करते हैं. पारसी धर्म मूर्ति पूजा, देव पूजा, मनुष्य पूजा को नहीं स्वीकारते जैसे कि प्राचीन आर्य में था

वर्तमान पारसी.

वर्तमान में पारसी लोग ऐसा कहते हैं, कि सृष्टि के पूर्व एक ईश्वर ही था, उसने अपनी इच्छा से देव मनुष्यों के जीव ग्रह उपग्रह बनाये. यथेच्छा मनुष्यों के जीव को जन्म दिया. पुनर्जन्म नही होगा. कयामत (महाप्रलय) में यथा कर्म जीवों को स्वर्ग नरक मिलेगा. ईश्वर की भक्ति और नेक कामों से बहिश्त (स्वर्ग–निजात) मिलेगी. बदी के बदले दोजख (नरक) मिलेगा. जरतोश्त पेगंबर को खुदा के यहां से हिदायत मिली. अग्नि, सूर्य, जल, इन तीन देवताओं को मानने की आज्ञा हुई अग्नि को अबूझ रखते हैं. कशति (जनेउ) पहेरते हैं. मुरदों को न गाडते न बालते किंतु अमुक स्थान में रख देते हैं ताके जानवर खावें वा आपही हवा में विभक्त हो जावे.

किसी जमाने में एक नेकी का दूसरा बदी का भी खुदा माना जाता था जिसका आशय दूसरा है (ऐसी दंत कथा है); परंतु वर्तमान के पारसी ऐसा नहीं मानते.

थीयेसोफिस्ट होने पीछे कितनेक पारसी इस मत के प्राचीन बताते हैं. पिछले जरतोश्त के पहिले कई पेगंबर हो चुके हैं. प्राचीन मे उक्त अवतरण के अनुसार (ईश्वर, जीव, प्रकृति अनादि अनंत) मानते थे. इत्यादि बातें मानने लगे हैं. चराग नाम के मासिक रिसाले में इसका विस्तार है इस पर पारसियों में मतभेद पडा है. वडी उम्र वाले तो पुनर्जन्म नहीं मानते. थीयेसोफिस्ट मानते हैं.

इस कौम का ऐशिया के उत्तर पच्छम भाग में राज्य रहा है. मुसलमानी वल बढने पर ईरान को छोडके हिंदुस्थान में आ बसे. जिसको आसरे ११०० वर्ष हुये. अरस्टोटल लिखता है कि जरतोश्त, पलेटो से ६००० वर्ष पूर्व (इसु से ९६०० वर्ष पूर्व) हुवा है. चरित्र चंद्रिका में इसु के पूर्व ६९०० में जन्मा, ऐसा लिखा है. व्यास के साथ शास्त्रार्थ होने मे वि. पू. २४०० के आसरे जान पडता है.

इस धर्म का कुछ विशेष वर्णन मूल में है. यहां नाम मात्र लिखा है, क्योंकि सिलसलेवार नहीं देखा.

शोधक.

ग्रंथ न मिलने से यथावत न ज्ञात होने से प्रतिपक्ष लिखना उचित नहीं और यदि उपरोक्त उभय पक्ष मानते हों तो त्रिवाद संबंध में पूर्वोक्त त्रिवाद अनावृत्ति वत् और अभावजन्य याने अनुपादानवाद संबंध में वक्ष्यमाण इसराइली मत अनुसार यथायोग्य अपवाद कर लेना बस है. और जरतोश्त रहबर (थी. सो. समान), अभिन्न निमित्तोपादान के रूप में वयान करता है, उसका अपवाद वक्ष्यमाण थी. सो. के अपवाद वा शुद्धाद्वैत के अपवाद समान समझ लेना चाहिये.

विभूपक.

पूर्वोक्त त्रिवाद, वा अभिन्न निमित्तोपादानवादवत वा वक्ष्यमाण अभावजवादवत् पंच दशांग पूर्वक वर्तन के समान ज्ञातव्य है. यदि तटस्थ देशहितैषी हिंदू और पारसी भाई कोशिश करें तो दोनों कौम की एक्यता और एक धर्मता हो सकती है.

(नं. ९ से ७९ तक) यूरोपीय दर्शनसंग्रह.

विक्रम से पूर्व ८६८ वर्ष से लेके विक्रम संवत् १९६१ तक. (अंक १ मे ७९ तक).

(१) आगे जो यूरोपके छोटे बडे फिलेसोफरों का मत वा तर्क लिखेंगे वोह "यूरोपीय दर्शन और पश्चिमी तर्क" इन दो ग्रंथो में से यथोचित उतारा गया है.

यूरोपीय दर्शन—यह हिस्ट्री ऑफ फिलोसोफी में से बनाया गया हो ऐसा जान पडता है. इसके प्रयोजक साहित्याचार्य श्री रामअवतार शर्मा एम. ए. प्रोफेसर संस्कृत कॉलिज पटना है. हिंदी भाषा में छपा है.

पश्चिमी तर्क—यह ग्रंथ कर्ता ने मतो को उतार के हिंदी भाषा में लिखा है. पूर्व और उत्तर मंतव्य का अतर भी इसमें दिखाया है. इसके कर्ता दीवानचद एम. ए. प्रोफेसर डी. ए वी. कॉलिज लाहोर है. सवत् १९६८ में छपा है.

उभय ग्रंथ के कर्ताओ का और उनके प्रकाशको का अतःकरण से उपकार मान के उनमें से इस तत्त्वदर्शन ग्रंथ के लिये जितने विषय की जरूरत समझी उतना विषय लिया गया है और इस प्रसग में कही दूसरे ग्रथो में से भी लिया गया है वहा उस ग्रंथ की साक्षी दी गई है. दूसरे मे पहिले (यो. द.) में ज्यादो का मतव्य जनाया है.

(२) यद्यपि उदिष्ट विषय ईश्वरादि (विषय) है तथापि १. हिंदी भाषा वाली आर्य प्रजा का अधिक भाग यूरोप की फिलोसोफी से अनभिज्ञ, २. वे फिलोसोफर शब्द प्रमाण को बीच में नहीं लेते व्याप्ति और उदाहरण उनकी श्रुति है, ३. उनके एक दूसरे का खंडन मडन है सो उनमें ही शोभा पाने के योग्य है. इसलिये कुछ अधिक लिया गया है यहा तक कि पुनरुक्त विचार भी लिखे है.

(३) बारीक द्रष्टि से विचारा जाय तो वि. के २०० वर्ष पूर्व के पीछे जितने चिद्, अचिद्, सशय, वा तरक्वाद वाले फिलोसोफर हुये हैं उनके विचार और आशय, "ईश्वर ने अभाव से जीव जगत बनाया है" इस पर ज्यादे खिंचाये जान पडते है. "ईश्वर जीव अनादि अनंत और सृष्टि प्रवाह से" इसकी छाया तो कोई की लिखावट में आती है. सो भी अस्पष्ट रूप में और अतिम फिलोसोफरो का ज्ञान एक शक्ति (एक वस्तु) वाद पर है (अद्वैतवाद पसद करते हैं).

(४) "हिंदुस्तान कदीम" (प्राचीन भारत) इस नाम का उरदू भाषा में एक ग्रंथ छपा हुवा देखने में आया (शायद इंग्रेजी में से हुवा हो), उसमें हिसटरी, व्याप्ति और वर्तमान विषे विद्यमान जो उदाहरण उनको लेके यह दरसाया है कि प्राचीन काल विषे यूनान (ग्रीस) देश में भी आर्य प्रजा का प्रवेश और राज्य रहा है—इसी कारण से वहा के बहुत से पहाड, नगर, नदी, स्थान. और राजाओं के नाम आर्य

(सस्कृत) भाषा मे है. एवं यूरोप के अन्य नगर और राज्यों के संबंध में जनाया है. सकोचवश नहीं लिखते.

यदि यह बात ठीक हो तो यूं माना जा सकता है कि जिसको यूरोप का आरंभकाल कहते हैं वोह उस काल के हजारो वर्ष पीछे वा मिस्र के काल के पीछे आरंभ होना चाहिये; क्योकि आरंभकाल के पूर्व की जो आर्य फिलेसोफी है उसकी छाया पीथागोरस (नं. ३) सुकरात (नं. १७) और अरस्तु (नं. २०) में पाई जाती है, इसके सिवाय नहीं. या तो इस इतिहास में कुछ अन्य भेद होना चाहिये अस्तु (कुछ भी होगा).

(९) यूरोपीयन दर्शन से २८२९ वर्ष में नीचे अनुसार होना जान पडता है

नं	मतव्य	पहिला काल	मध्यम काल	वर्तमाल काल		कुल
१	जडवादि ...	९	१	३	०	१३
२	चेतनवादि					
	अद्वैतवादि ...	३	१	६	१०	
	द्वैतवादि	११	३	६	२०	
	पुनर्जन्मवादि ३ ईश्वर १ और अभावजन्य सृष्टि	० } १६	८ } १२	० } १८	९ }	४६
	सामान्यत चेतनवादि ...	२	०	५	०	
३	संशयवादि ...	७	अनेक	×	०	१० आसरे
४	तर्कवादि ...	५	०	०		५
५	समहवादि ...	३ अनेक	०	०	०	३ आसरे
६	चेतन अगम्य होने से उपेक्षा	१	०	२	०	३
७	केवल प्रवृत्तिवादि ..	×	२	×	×	२
८	क्षणिकवादि .	०	०	१	०	१
						८३

‡ ग्रीस का आरंभकाल.

(विक्रम पूर्व ५६८ से ४०८ पूर्व तक).

(१) थेलीज (विक्रम पू. ५६८–४९२ यूनानी)=संसार जल नामा द्रव्य से आप ही आप उत्पन्न हुवा है. जीव शक्ति सब में है निर्जीव से भिन्न जीव कोई वस्तु नहीं है. पानी से केसे पेदा हुवा यह नहीं लिखा है.

(२) एनेकस मेंडर (वि. पू ५५५–४९१ यूनानी) संसार एक अनियत अपरिच्छिन्न, अविनाशी, सक्रिय अव्यक्त द्रव्य (प्रकृति) से आप ही आप उत्पन्न हुवा है. पहिले सरदी गरमी का भेद हुवा. फेर पृथ्वी जल वायु अग्नि वगेरे पेदा हुये. जमीन पहिले द्रवरूप थी पीछे खुशक होने पर जीव पेदा हुये. शेष नं. १ समान.

(३) एनेकिस मेनीज (वि. पू. ५३२–४६८) संसार अनादि, असीम वायु नामक मूल द्रव्य से आपही आप हुवा है. उसके घनीभाव शीतलता से पृथ्वी और शैथल्य भाव उष्णता से अग्नि तारा वगेरे बने हैं.

(४) हिप्पो (वि. पू ४३२) का नं. १ अनुसार. **डीयोजेनीज** (वि. पू. ३३२) और इडीयस का नं. २ अनुसार मंतव्य है.

(५) एनेकसा गोरस (वि. पू. ४४४–३७२) अनेक प्रकार के तत्त्व हैं. उनसे जगत बनाने वाला आत्मा है.

तर्क.

तर्क के मुख्य ज्ञाति सवाल. मैं कहां से और क्यों आया हूं, मैं कौन हूं और कहां जाउंगा, मेरा अंत क्या. यह संबंधी जगत क्या? कहां से आया? क्यों आया? इसका कर्ता इसी का अंश वा इससे स्वतंत्र है? जो स्वतंत्र है तो वोह क्या और केसा? वर्तमान जगत संबंधिनी ही हस्ति है वा कोई और हस्ति भी है.

---

‡ ग्रीस में थेलीज (न. १) के पहिले देवी (शक्ति) वाद पसरा हुवा था. उस देवी को मनी, ननने नाम से बोलते थे. यह सब आर्य प्रजा के संबंध से हुवा था वहां से ज्यादे बाबीलान में पसरा और वहां से शक्तिवाद मिसर (इजप्त) में गया (मु शा. पे १४०)

इसके पीछे ऐसा मानने लगे कि पूर्व में परमाणु पुंज था. उससे वायु पेदा हुवा, उससे देवता उत्पन्न हुवा, यह तम से मिला तो उसमे पक्षी पेदा हुये; उस पीछे पृथ्वी, समुद्र स्वर्ग और देवता पेदा हुये. जयुसस वगेरे पुत्रों ने स्वर्ग का राज ले लिया है. (मु शा.)

इसके पीछे थेलिज हुवा है.

जेसे आर्य प्रजा ने इनके संबंध में बुद्धि लगाई है वेसे पश्चिमी तार्किकों ने भी किया है.

यहां इतना जनाना जरूर है कि गणित, भौतिक सायंस, रसायनीय सायंस, मनोविज्ञान, न्याय, आचार और सौंदर्य इन सबकी नींव, उदेश्य, काम का मेदान जुदा जुदा है, और तर्क तथा युक्ति का सब में प्रवेश कराया जाके विरोधों का निरीक्षण किया जा सकता है, इतना गणितादि और तर्कादि में अंतर है. (विशेष प. त में).

मिलिटस ओर इलिया के तार्किक.

पहिला विवादित प्रश्न यह था कि अस्तित्व (सामान्य जाति-हस्ति-बींग) नित्य वा अनित्य? हस्ति स्थिर अनस्थिर उभयता देखते हैं यह क्या भेद है?

किसी ने कहा कि हस्ति स्थिर है, परिवर्तन होना देखना मानना भ्रम है. दूसरे ने कहा कि परिवर्तन का ही स्वरूप है इससे इतर और किसी पदार्थ का स्वरूप नहीं है, हस्ति मानना कल्पनामात्र है तीसरे ने कहा कि उभय में सत्यता का अणु विद्यमान है, किंतु इनमें से कोई पूरी सच्चाई नहीं. पदार्थ हमेशे हस्ति वाले हैं उनके संबंध एक दूसरे से परिणित होते हैं. इस विषय पर बडे बडे विरोध, झगडे, मतभेद, संप्रदाय भेद, खंडन मंडन चले थे.

(६) पेथागोरस-(वि पू. ५२४-४४४ सेम्स द्वीप निवासी), ‡ यह मिस्र बाबलिन और आर्यावर्त्त में फिरा था. इसका मंतव्य जीव ईश्वर और सृष्टि के मूल तत्त्व अनादि हैं. यथा कर्म पुनर्जन्म होता है. देवता की भक्ति, मांस निषेध, भ्रातृभाव, दया प्रेम, गुरु की आज्ञा पालन, यह इसका उद्देश्य था (प्लुटार्क का जीवन देखो). यमनाचार्य इसी का नाम सुना जाता है. प्रतिपक्षीओं ने इसको मार डाला इसके मठ में नारियें भी शामिल की जाती थी. इसके अनुयायी दस दस हजार वर्ष में सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय मानते थे.

(७) जेनोफेनीज-(वि. पू ५२०-४२४ यूनानी) ग्रीस प्रजा देवों में व्यभिचारादि मानती है, देव ऐसे नहीं होने, इसलिये देवता वा ईश्वर एक ही सर्वोत्तम है वोह अनादि अनंत है. सर्व संसार उसीका स्वरूप है (अभिन्ननिमित्तोपादान) वही उपास्य है.

‡ बुद्ध मत से भी इसने तालीम पाई हो. ऐसा पश्चिमी तर्क ग्रंथ से जान पडता है इसके तर्क की नींव गणित पर थी.

(८) पार्मेनिडीज-(वि. पू. ४६४ नं ७ का शिष्य) ईश्वर ही नहीं किंतु वस्तु मात्र एक है. सब संसार सत स्वरूप है सत नित्य, अखंड, पूर्ण, अविकारी, अपरिणामी और ज्ञान स्वरूप है. इंद्रियजन्य ज्ञान भ्रम है वस्तुतः सत् ही है. मनुष्य अपने मन से असत् की स्थिति भी मान लेता है इस प्रकार सत असत् मे जगत बना हुवा है. *

(९) जीनो-(वि पू. ४८९ तर्क वादी) गति और नानात्व भ्रम मूलक हैं क्योंकि विरोध आता है यथा-अनेक मानें तो अत्यंत बडा हुवा और एक एक के विभाग करने से अत्यंत सूक्ष्म होगा; परंतु सूक्ष्म का परिणाम सूक्ष्म ही होना चाहिये, इसलिये अत्यंत सूक्ष्म है संख्या में जितने है उतने ही हैं याने नियत है. दो के वियोग वास्ते तीसरे की, इसके वास्ते चौथे की इत्यादि तथा आकाश को आकाश की अपेक्षा ऐसे अनवस्था होने से अनियतपना आता है. एक परमाणु वा आकाशबिंदु के अनंत भाग होते चले जाते है, इसलिये बाण नही ठेरना चाहिये. और चलते हुये क को ख नहीं पकड सकना चाहिये; परंतु चलने हुये में संयोग, स्थिति और वियोग, ऐसे प्रतिक्षण तीन प्रकार होते हैं, तो उसके अनंत भाग होने से वोह ठेरना ही चाहिये. यह विरोध दोष है इस प्रकार एक सत्तावाद ही ठीक है अन्य भ्रम मूलक है. *

(१०) गोर्जियस (जीनो के समय उसका प्रतिपक्षी) सत्ता भी कोई वस्तु नहीं है. क्योंकि देशकाल विना ज्ञान नहीं हो सकता अतः देश कालातीत कोई वस्तु है वा नहीं, ऐसा ज्ञान होना असंभव है.

(११) मेलिसस् (नं. ९ का समय) संसार काल मे ही नही किंतु देश से भी अनंत है शेष जीनो समान.

(१२) हेरेक्लीटस (वि. पू. ४७९-२१९) जगत का मूल अग्नि-(प्रकृति) है जीवों में प्राण रूप है वोह क्षणिक परिणामी एक वस्तु है. दैववश उससे परस्पर विरुद्ध वस्तु पेदा होती रहती हैं सूर्य की आग संध्या को समुद्र में डूब जाती है. रात को भाप से उत्पन्न होके प्रातः काल सूर्य रूप होके निकलती है (यही जीनो नं ९ का मत था) ऐसे ही संसार अग्नि से निकला है, कालांतर में उसी में प्रवेश करेगा. दैव याने ईश्वर के नियम से अन्य कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है. मूर्ति पूजा, हिंसात्मक यज्ञ त्याज्य है-निंदनीय हैं. वस्तु क्षणिक होने से इंद्रियजन्य ज्ञान यथार्थ को नहीं बता सकता, इसलिये परमार्थ जानने के लिये विवेक की शरण लेना चाहिये

* शांकर वेदांत जैसा मत है.

(१३) एम्पडो क्लीज. (वि पू ४०४) भिन्न २ गुण वाले पृथ्वी, जल, तेज और वायु यह ४ तत्त्व जगत के उपादान हैं. प्रत्येक के टुकडे हो सकते हैं. तत्त्वो के सयोग वियोग के लिये उन तत्त्वो मे और व्यवहारार्थ ससार में स्नेह (प्रेम) और द्रोह यह दो शक्ति हैं पृथ्वी पर आरभ में कुरूप बडे बडे जंतु थे, क्रम से अच्छे से अच्छे उत्पन्न हुये (इसी का नाम उत्क्रांतिवाद) समान से समान का ग्रहण होता है, इसलिये जिस इद्रिय मे जो तत्त्वविशेष, वोह उसी तत्त्व को ग्रहण करती है (वैशेषिकवत) फी. न १ के मतानुसार जीव का पुनर्जन्म होना मानता है. ईश्वर और देवताओं की मान्यता वास्ते उसका मत निश्चित नही कह सकते.

(१४) ल्युकिपस गुरु, डीमोक्रीटस शिष्य (वि. पू. ४०४ परमाणुवादि) अभाव याने शून्य में परमाणु भरे हुये हैं, वे अखड हैं. गुण और गुरुत्व मे समान हैं, उनके आकार में भेद है (जाति मे नहीं), उनमें परस्पर मे आकर्षण होने से ससार पेदा होता है, उनमें गुरुत्व होने के कारण वे अनादिकाल से आकाश में नीचे गिरे जाते हैं, हल्के धीरे, और भारी जल्दी गिरते हैं बद्ध होके नाना वस्तु बन गई. अग्नि के चिकने और एक दूसरे पर पडने से टेढी विरोधी गति होने से अनुकूल गोल परमाणुओं से मनुष्य का जीव बना है, सो शरीर में व्याप्त है. आत्मा के अश श्वास द्वारा बाहिर जाते हैं और उनकी जगह दूसरे बाहिर से श्वास द्वारा अदर आते हैं, इद्रिय और वस्तुओं से कुछ परमाणु निकल के मार्ग मे मिलते हैं, इससे जीवो को वस्तुओं का ज्ञान होता है परमार्थ शोधक विवेकशक्ति भी इद्रियजन्य ही है. इद्रियज ज्ञान से इतर कोई ज्ञान नही है आप ही आप आनद से रहना चाहिये वायु में अदृश्य भूत होते हैं कभी कभी स्वप्न में जान पडते हैं वायु मडल में आत्मा और बुद्धि का एक बडा परिमाण है, हरकोई उसमें से कुछ न कुछ लेता रहता है.

(१५) एनेक्सा गोरस (वि पू ४४४-३७२) ससार का आदि अत अचिन्तनीय है सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और शुद्ध परमात्मा इसका कर्ता है न १३ का चतुर्भूतवाद और न. १४ का परमाणुवाद असमीचीन है वस्तुत सृष्टि के उपादान अनेक प्रकार के बीज हैं सोना चादी वगेरे अनेक तत्त्व हैं. सृष्टि के आरभ में सब वस्तु एकत्र थी, अदृष्ट से परमात्मा ने एक केंद्र में चक्राकार गति पेदा की, इसलिये आसपास के द्रव्य आवर्त में आने लगे. घन नीचे को और हल्के उपर को हुये घन द्रव्य से यह पृथ्वी बनी है (उस पीछे ससार में ईश्वर का हाथ है वा नहीं इसका वर्णन नही किया). इद्रियजन्य ज्ञान विरुद्ध वस्तुओं का होता है. यथा प्रभावाली इद्रिय से तम का ग्रहण होता है.

(१६) प्रोटे गोरस. (वि. पू. ४२४-३९४ तार्किक) नं. १३ नं. १४ का चार तत्त्व और परमाणुवाद कल्पनामात्र है. इंद्रिय वा विवेकज कोई ज्ञान स्थिर नहीं है. प्रत्यक्ष से इतर कोई वस्तु स्थिर नहीं है. एकको जो वस्तु श्वेत वा अच्छी जान पडती है वही दूसरे को पीली वा बुरी जान पडती है. इस प्रकार मनुष्य का ज्ञान भिन्नरूप का है. परमार्थतः एक वस्तु नहीं है, किंतु जिसको जो ज्ञान पडे उसके लिये वही सत्य और परमार्थ है. इसी प्रकार धर्म, आचार आदि विषय में कोई एक बात ठीक नहीं है, *यथा शिक्षण*, रुची और अभ्यास, आचार और व्यवहार इष्ट जान पडता है.

(१७) साक्रटोस. (सुकरात वि.-पू. ४१४-४४३) जीव का पुनर्जन्म सिद्ध है. (टरायल इनडथ ऑफ साक्रटीस पृ. १२७।१९१ तक जिसका तरजुमा चर्च साहेब ने किया था. उसमें उसके शिष्य सीबीआज और समयस को विवाद कर के जीव चेतन का पुनर्जन्म समझाना वर्णन किया है). ज्ञान और धर्म अभिन्न हैं; क्योंकि ज्ञानवान् अधर्म नही करता. प्रकृति विज्ञान से उतना लाभ नहीं है जितना कि आचार विज्ञान से. जिसको जिससे उचित प्रकार का लाभ हो उसको वही संयम सेकर्तव्य है. जरूरत कम, और सहनशीलता होने से जीवन सुख से हो सक्ता है. मनुष्य स्वतंत्र है. न्याय, दया, भक्ति वगेरे उत्तम गुण हैं-सपादनीय हैं. (प्रतिपक्षिओं ने नास्तिकता के आरोप से सत्तावान् द्वारा सुक्रात को विष खिला के मार डाला). *

(१८) प्लेटो. (अफलातून वि. पू. ३७१-२९१ नं. १७ का शिष्य और प्रतिष्ठित नामांकित). वस्तु का वास्तविक स्वरूप प्रत्यक्ष का विषय नहीं, शब्द प्रमाण में मतभेद, और आचार, धर्म, नीति का उच्छेदक होनेसे तर्क अप्रतिष्ठित; इसलिये वास्तविक ज्ञान विवेक से कर्तव्य है. इंद्रियों से बुद्धि पर ओर व्यक्ति से जाति पर पहुंच के सवित (अनुभव-आइडिया) का बोध विवेक है. सामान्य प्रत्ययों (सामान्य जाति) के द्वारा विचार करनेसे मनुष्य संवित पर पहुच सक्ता है सवित और मूर्त्त वस्तु का मिलानेवाला और साथ ग्रहण करनेवाला विश्वात्मा (ईश्वर) है. ईश्वर अमूर्त, व्यापक, चेतनस्वरूप है उसने पृथ्वी वगेरे ४ तत्त्व से सब ब्रह्मांड बनाया।

---

१७ सुकरात के शिष्यों में मतभेद पडा—बुद्धि विषयक १, आचार विषयक २ पीछे इस उत्तर मंडली में भी दो मत पड गये. अतिसुखवाद १ और अतित्यागवाद. (प न. पे. १८०.

* 'पहेचान अपने को जिससे जाना जाता है अपना परमात्मा'' ऐसे ऐसे उसके छूटक वाक्यों से वोह ईश्वर और जीववाद का मक्त था, ऐसा जान पडता है.

है. जो ईश्वर के धर्म वेही जीव के हैं. यथाकर्म लोकांतर में उत्तम और नीच (कीट पतंगादि) योनियें की प्राप्ति और पुनर्जन्म होता है. पूर्वजन्म दृष्ट पदार्थों के कारण वर्तमान में देखते ही उनके मूल प्रत्ययें का आविर्भाव हो जाता है. आत्मा का मुख्य स्वरूप विवेक है. शरीर संबंध से इच्छा और उत्साह यह दो धर्म नवीन उत्पन्न होते हैं. शरीर से मुक्त होके आत्माराम रहना ही मुख्य कर्तव्य है. संसारी पदार्थ चित्तस्वरूप की प्राप्ति में विरोधी नहीं हैं, अतः अनुभव करने योग्य हैं. उत्तमता सर्व धर्मों का मूल है. धर्म हमेशे सुख स्वरूप और अधर्म दुःखमय है. विचार, उत्साह, दमन (संयम) और न्याय यह ४ मुख्य धर्म हैं. दृश्य माया का जाल है. परंतु अस्तित्व नहीं रखता, ऐसा भी नही है किंतु असली की अपूर्ण नकल है. सीखना यह पूर्व ज्ञान का स्मरण मात्र है. *

(१९) **एन्टिस्थनिस.** (वि. पू. ३६९) प्लेटो का हरीफ (प्रतिपक्षी) तमाम बाह्य वस्तु औपाधिक और बाधक हैं, ऐसा जान के स्वतंत्रता संपादन कर्तव्य है. (प्लोटार्क के जीवन चरित्र मे से).

(२०) **अरिस्टाटल.** (अरस्तु वि. पू. ३२८–२६६ प्लेटो का शिष्य नैयायक और सिकंदर बादशाह का उस्ताद–शिक्षक). द्रव्य, परिमाण, गुण, संबंध, देश, काल, अवस्थिति (गति) सत्ता, कार्य, कारिता, कार्यग्राहिता, यह १० पदार्थ हैं. दर्शन का विषय मुख्य सत्ता है. संबंध की अपेक्षा विना शाश्वत कोन वस्तु सब का मूल हैं, इसका विचार दर्शन द्वारा हो सकता है.

प्लेटो के कथन समान सामान्य प्रत्यय वस्तुओं से जुदा नहीं हैं; किंतु उनका आकार है. विशेष और सामान्य साथ रहते हैं, दोनें मिल के सब वस्तु हैं. द्रव्य *आकाररहित और आकार द्रव्यरहित नहीं होता.*

पदार्थ पेदा होने में ४ कारण हैं. (१) समवाय (माटी) (२) असमवायी (इच्छा) (३) निमित्त (कुम्हार दंड चक्र) (४) उद्देश्य (पानी भरना प्रयोजन) मुख्यतः समवाय (उपादान) और निमित्त यह दो कारण हैं. शरीर द्रव्य है, आत्मा आकार है, ईश्वर द्रव्यरहित आकार मात्र है.

---

* राज्य, प्रत्येक, धर्म, आचार, आदर्शसिद्धि, तर्क का परिणाम तत्त्वदर्शी की अपेक्षा, शिक्षा प्रणाली इस विषयो में अफलातून की जो मान्यता है सो पश्चिमी तर्क (पे. ४४ से ५२ तक) में है. उसकी समीक्षा भी पे. ५३ में है

ईश्वर स्वयंभू, कूटस्थ, महानशक्तिवान्, सर्वज्ञ, अकाय, निरीह (निरिच्छा) शुद्ध, सत्चित्त (ज्ञान) स्वरूप है और अचल है, परंतु वस्तुओं में गति पेदा करता है. निमित्त और उद्देश्य कारण है. जगत् के अंदर और बाहिर है. गति ही परिवर्तन और विकार का कारण है गति=देश बदलना. देश परिच्छेदक सीमा—देश, द्रव्य वा शून्य नहीं है. द्रव्यों के बाहिर वा अंदर शून्य नहीं है. एक द्रव्य हट के दूसरा द्रव्य उस स्थान में आ जाता है. वस्तुतः देश परिच्छिन्न है. काल परिवर्तन की संख्या सूचक है, संभाव्य है, इसलिये उसका अंत नहीं है.

प्रकृति के कार्य उद्देश्य पूर्वक होते हैं. निर्जीवों से जीव उत्तम हैं. जीवों में भी वृक्षों में रस ग्रहण और उत्पादन शक्ति है. पशु पक्षिओं में ज्ञानशक्ति भी है जिससे उन्हें सुख दुःख का ज्ञान होता है. प्राणियों वास्ते वृक्षादि बने हैं. प्राणियों में बुद्धि वाला मनुष्य उत्तम है, जिसके उपयोग वास्ते सब संसार है.

विज्ञान आत्मा का रूप है आत्मा कोई जुदा द्रव्य नहीं किंतु शरीर की शक्ति है. परंतु आत्मा में अनुभवाधीन ज्ञान और शुद्ध याने अनुभव के विना केवल ज्ञानस्वरूप, यह २ अंश हैं. पहिला नाशवान और दूसरा अमर है. यह शुद्ध अंश प्रकृति का अंश नहीं है और न शरीराधीन है. (यह एक वा अनेक वा ईश्वर वा अन्य प्रकार का पदार्थ है, यह उसके अनुयायी न बता सके) उसके अमूर्त्त और शुद्धादि लक्षणों से मान पडता है कि वोह ईश्वरस्वरूप एक है.

मनुष्य में अनुभव और विवेक है अतः आचार पाल सकता है, जिससे व्यक्ति अपनी पूर्णता को पहुंचे वोह धर्म. यथा सदाचार. जिससे अपूर्णता हो वोह अधर्म. यथा, दुराचार. अनुभव और विवेक का नष्ट होना अपूर्णता है. अतः शरीर की रक्षा करते हुये विवेक से निश्चित और सुखी रहना मनुष्य के लिये धर्म है. शरीर का क्षय, ईश्वर बनने की इच्छा. किंवा अविवेक से संसार में ही लगे रहना मूर्खता है. दो अंतों के बीच धर्म की स्थिति है. अर्थात् अति सर्वत्र वर्जित है यह धर्म का तत्त्व है. कायरता निरर्थक साहसपना यह दोनों पाप हैं, उत्साह धर्म है. जगत मिथ्या नहीं है. ‡

(२१) साइरोन. वास्तु सत्ता का ज्ञान मनुष्य को नहीं हो सकता. हरएक मनुष्य का ज्ञान जुदा जुदा है. दुर्वासनाओं से जुदा रह के विचारपूर्वक सुख सेवन करना जीवन का उद्देश है.

‡ राज्य प्रत्येकादि (अफलातून की नोट याद करो). विषयों में अरस्तु की जो मान्यता थी सो पश्चिमी तर्क के पे. ५७ से ६५ तक में जनाई है.

(२२) हेजीसियम. दुनिया में सुख से ज्यादे दुःख है. दुःखमय जीवन को छोटने में सुख है, इसलिये (प्रतिकूलता हो तो) सब को आत्मघात कर लेना चाहिये.

(२३) जीनो स्टोइक. (वि पू. २८६–२१४) इसका और इसके अनुयायियों का संवित (ज्ञान) प्लेटो जेसा है.

प्रत्यक्ष ही सब ज्ञान का मूल है. मोम पर जेसे मोहर वेसे आत्मा पर वस्तुओं से असर (इम्प्रेशन) होता है, उससे बाह्य वस्तुओं का ज्ञान होता है. बराबर असर न हो तब संदेह वा भ्रम होता है.

वस्तु एक ही है, वही कभी बाहिर और कभी अंतःकरण के रूप से देख पडती है. आत्मा जुदा वस्तु नहीं है. एक ही की स्थिति शक्ति को शरीर और कार्यशक्ति को आत्मा कहते हैं. वेसे ही संपूर्ण संसार है. संसार एक बडा जीव है, जिसका शरीर यह सब ग्रहादि हैं और आत्मा ईश्वर है. ज्ञान प्रभा बुद्धि कृति (प्रयत्न) नियम वगेरे ईश्वर के रूप हैं.

(२४) जेनों के अनुयायी. नं. १२ (हेरे) के अनुसार अग्नि तत्त्व से उत्पत्ति, स्थिति और लय मानते हैं. ईश्वर जगत में सर्वव्यापक शक्ति है. उसका ज्ञान अनंत है. संसार मे जो दोष जान पडते हैं उनसे भी सब मिल के लाभ ही है. अमूर्त कोई पदार्थ नही है. ईश्वर समुद्र, जीवात्मा उसकी बिंदु है जो प्रलय विषे ईश्वर में मिल जायगा. ईश्वर वा जीव की कल्पना मे कुछ प्रयोजन नहीं है. आचार मुख्य है. निष्कारण धर्म प्रवृत्ति (स्वभाव ही धर्म हो जावे अधर्म की तरफ प्रवृत्ति न हो) जीवन का उद्देश है. विचार, न्याय, संयम, उत्साहादि विशेष धर्मों का मूल एक है. जो एक धर्म दृढ कर ले तो दूसरे सहेज प्राप्त हो सकें. धर्मात्मा पुरुष प्रकृति, भविष्य (होतव्य) वा ईश्वर का न्याय एक समझ के जो कुछ ईश्वर के विचार से हो रहा है उसी को भला मान के निश्चित, शांत, सुखी और स्वतंत्र हो जाता है (रोम में यह मत नामांकित और प्रवृत्तिपात्र हुवा है)

(२५) एपीक्यूरस. (वि.पू २८६–२२०) नं. १४ डीमो के समान मंतव्य है. परमाणु की गति वांकी गोल भी अकस्मात हो जाती है. कितनी वस्तु भी अकस्मात हो जाती हैं; अतः मनुष्य स्वतंत्र है. अकस्मात चाहे जो कर सकता है प्रारब्ध नियत नही है शांत, संतुष्ट जीवन बनाना मुख्य उद्देश है. परमाणु मूर्त हैं, तद्-जन्य संसार सत्य है. परमाणुओं की गति स्वाभाविक होती है. जगत् का कर्ता

कोई ईश्वर वा देव नहीं है. जो कर्ता मानें तो दोष आवेंगे. यथा वोह दुःखी सुखी होगा, मूर्ख क्यों बनाये? इसलिये जगत् स्वभावतः नित्य है, ऐसा सिद्ध होता है. जो देव वा ईश्वर कहीं होंगे तो भी उनका प्राकृत संसार के साथ संबंध नहीं है, अतः उनकी पूजा करने की जरूरत नहीं है.

जो आत्मा अमूर्त होता तो मूर्त शरीर के आघात से उस पर असर नहीं होती. शरीर के साथ उसका उत्पत्ति नाश है, परलोक गमन नहीं होता; इसलिये मरण का भय और स्वर्ग की इच्छा तथा नरक का तिरास करना व्यर्थ है. धर्म का भी सुख ही उद्देश है; इसलिये जितेंद्रिय होके शारीरिक सुख से ज्यादे मानसिक सुख की इच्छा रखनी चाहिये. इसका मत सुखवाद है.

(२६) पीरहो. (वि. पृ. ३०४–३१४ संशयवादि) संसार के मूल आदि का ज्ञान हो सकता है, यह प्रमाणरहित बात है और इनका ज्ञान नहीं हो सकता; ऐसा तार्किकों का कथन विना विचार का है, इसलिये इस विषय में संशययुक्त रहना ठीक है

(२७) कार्नियेडोज. फिलोसोफर यु कहता है कि इंद्रियजन्य ज्ञान परस्पर विरुद्ध और भ्रमकारक हैं, इसलिये सत्य जानने के लिये कोई उपाय नहीं है तो फेर आचार, अनाचार धर्म वा अधर्म क्या? यह निर्णय प्रमाण विना कैसे माना जाय. प्रमाण के प्रमाण वास्ते अनवस्था दोष आता है. इसी प्रकार ईश्वर भी सिद्ध नहीं होता. ईश्वरकृत सृष्टि हो तो सदोष और उपद्रववाली न हो, जो ईश्वर सकाय और सगुण हो तो अनित्य होगा और जो निर्गुण हो तो सृष्टि नहीं कर सकता, स्वरूप ज्ञानादि हीन हो जाता है पीरहो संदेहवाद का प्रवर्त्तक हुवा है. उसके पीछे अन्य भी हुये हैं.

(२८) आर्सेयस्सीलास. कहता है कि सुकरात ने कहा था, कि "मैं कुछ नहीं जानता, यह बात जानता हूं" परंतु मैं इतना भी निसंदेह नहीं जानता. (वाह! संदेहवादि).

(२९) स्टोइकवाद. (पटांबरी) का सार– १. जो कुछ इंद्रियों से जाना जाय सो ही सत्य ज्ञान की नींव है. २. सृष्टि का उपादान कारण निराकार प्रकृति है. परमात्मा इसको आकार देके पदार्थ बनाता है. नियमानुसार रखता है. ३. जीवात्मा प्राकृत है. उसका शरीर के साथ नाश हो जाता है. भले पुरुषों का आत्मा मृत्यु

(शरीर नाश) के पीछे भी कुछ काल तक जीता रहता है. ८. परमात्मा.से इतर कोई आत्मा अमर नही है. प्रलय में परमात्मा ही रहता है, फेर अव्यक्त से सृष्टि बनाता है, एवं अनादि अनत प्रवाह है. ९. एक का मत है कि पूर्व जेसी सृष्टि की उत्तर सृष्टि नकल है. यथा उत्तर मे सुकरात होगा, उसका वध होगा. दूसरा कहता है कि सर्वांश में नकल नही होती ६. आचार- धर्म वास्ते धर्म पालना चाहिये. आत्मा को स्वतंत्र रखे. आसुरीशक्ति और दैवीशक्ति का सग्राम होता है, आसुरी की जय मे आपत्ति और विपयासक्ति धीर बनो और सयम मे रहो. ७. जीवन का उद्देश धर्म पालन है. जो इस उद्देश पूर्ति में अशक्त हो गये हो तो जीवन का अत कर देने के लिये पर्याप्त कारण है. इस सप्रदाय के प्रवर्तक जयनो (न २२) ने १०० वर्षकी उम्र मे प्राण त्याग दिये; क्योकि उसकी अगली पर चोट आ गई थी. केटो ने प्रजातंत्र राज्य के गिर जाने पर आत्म हत्या की. ८. सेनेका का भी यही मत है.

पाच अवस्थाओ मे प्राण त्याग की आज्ञा १. देश सेवा के लिये आवश्यकता हो. २. जीवन मे मदकर्म करने पडेंगे. ३. अति कगालता. ४. असाध्य रोग में ग्रस्त हो. ५. उन्माद (पागल) वा मन की निर्बलता का आरंभ हो. (प त.).

(३०) अतित्यागवादि. (असभ्य, नग्न, दिगबर, पशुवत् जीवन करने वाले. हर प्रकार के विकार नष्ट करना).

इसका सस्थापक एन्टिस्थिनिज् हुवा. त्यागवाद अतित्व मे मुक्त था और यह अतित्व को प्राप्त था.

(३१) संग्रहवादि. (इस पीछे सग्रहवादि अनेक हुये) मतो मे विरोध है. सब अशो में विश्वास न करना अनुचित है विरुद्ध बातों को छोड के सब मतो की अविरुद्ध बातो का सग्रह कर के लोकाचार व्यवहार, लोकपरलोक आदि की व्यवस्था कर्तव्य है. प्लेटो के अनुयायी अरिस्टाटल के अनुगामी और दूसरे प्रसिद्ध फिलोसोफर और विज्ञानवादियो ने सग्रहवाद का अनुसरण किया.

(३२) एनेसिडिमस, सेकस्टस और एम्पिरिकस्. (वि. की पहिली सदी. सशयवादि) जेसे पित्त वाले को सब वस्तु पीत जान पडती हैं, इसी प्रकार यथा इंद्रिय रचना हरेक को जुदा जुदा ससार देख पडता है एक वस्तु (स्त्री आदि) मे किसी को सुख किसी को दुःख होता है. एक पत्थर चक्षु को मनोहर और हाथ को सुखा जान पडता है. नारगी, चिकनी-मिष्ट-लाल-गोल वगेरे धर्म वाली जान पडती है

तो संभव है कि (१) या तो वोह एक धर्म वाली हो और यथाइंद्रिय उसका असर होता हो (२) या तो उसके उतने ही गुण होते हो जैसी कि जान पडती हैं (३) या तो उसके दूसरे गुण हो जिसको इंद्रिय विषय नहीं कर सकती हम शब्दादि पंचगुण का अनुभव करते हैं घी साधारण तो अच्छा परंतु बेमारी में ततला जान पडता है. वस्तु दूर से छोटी और समीप से बडी जान पडती है. जवानी में जो अच्छी लगती है वैसी बुढापे में नहीं लगती. किसी वस्तु के अपने गुण जुदा नही मिलते, द्रष्टा के शरीर या आसपास की वस्तुओं के गुणो से मिले हुये अनुभव में आते हैं एक ही वस्तु का तोल पानी में हल्का और हवा में भारी होता है. बुद्धिमान् को जो चीज जैसी जान पडती है वोही चीज मूर्ख को वैसी नहीं जान पडती. इसी प्रकार देश, आचार, अभ्यास के भेद से जो एक को अच्छा जान पडता है वोही दूसरे को बुरा मालूम होता है. जो एक को धर्म वोही दूसरे के लिये अधर्म है. रोम का लंबा चोगा ग्रीस वालो को बुरा जान पडता है. एक देश की मूर्तिपूजा और हिंसापूर्ण यज्ञ, धर्मसा और दूसरे को अधर्म जैसा जान पडता है इत्यादि कारण से स्पष्ट होता है कि वस्तु का स्वरूप क्या है, यह हम कभी नहीं जान सकते हमको वोह कैसी देख पडती है, इतना ही हम कह सकते हैं.

कारणकार्य भाव भी असिद्ध है एक मूर्त्त पदार्थ मे दो नहीं हो सकते अमूर्त्त से मूर्त्त संसार की असिद्धि है. अमूर्त्त मे मूर्त्त और मूर्त्त से अमूर्त्त की उत्पत्ति नहीं हो सकती, क्योकि उभय का संसर्ग ही नहीं हो सकता कारण मे विरुद्ध कार्य में गुण नहीं होते एक समान से दो समान की और असमान से असमान की उत्पत्ति नही हो सकती कारण पहिले १, या साथ २, या कार्य के पीछे ३। जब तक कारण तब तक कार्य नहीं, कार्य हुवा तो कारण न रहा अतः कारणकार्य भाव असिद्ध १, दूसरे पक्ष में कोन कारण कोन कार्य यह सिद्ध न होगा २, तीसरा पक्ष बकवाद मात्र है ३ जो कारणकार्य का स्वतंत्र उत्पादक तो नित्यकार्य होना चाहिये, परंतु ऐसा नहीं होता. जो दूसरे की अपेक्षा है तो दूसरे का तीसरे की ऐसे अनवस्था चलेगी कारण में जो एक गुण तो एक काल में दो काम नहीं होने चाहियें और जो अनेक तो एक काल में दो कार्य क्यो नहीं होते (इस प्रकार सब मतभेदो में संशय ही रहता है निश्चित नहीं कहा जाता)

(२३) सेक्स जैसे दर्शन वैसे गणित विज्ञान आदि के सिद्धांत भी संशय-ग्रस्त हैं रेखागणित में बिंदुमान्य और आकारहीन भी कहते हैं. रेखा की लंबाई

मानते है, लबाईहीन बिंदु से रेखा बनती है.

(३४) प्लुटार्क. मनुष्य की ज्ञानशक्ति अल्प है. कभी कभी दयालु ईश्वर साक्षात् ज्ञानो का प्रकाश करके अज्ञान से बचा लेता है जो लोग शात रहते है ज्यादा चलबल नही करते उनके उपर यह कृपा होती है.

(३५) पाइलो. (वि. सवत् २६–१०६ यहूदी धर्मी. ईश्वरीय ग्रथ मानने वाला और फिलेसोफर) ईश्वर अनिर्वचनीय, निर्गुण, पूर्ण, सर्वशक्तिमान और सब का आदि कारण है. ईश्वर क्या वस्तु है, यह मनुष्य नही जान सकता ईश्वर की सत्तामात्र जान सक्ता है, इसलिये ईश्वर का नाम येहोवा (सत्ता) है. महत्‌तत्त्व (लोगोस) ईश्वर की पहिली सृष्टि उससे सब देव दानवादि सब ससार क्रमशः हुये. जड प्रकृति दुःख का कारण है. अज्ञान से बध है. ज्ञानी आत्मा मुक्त और शरीर रहित हो जाता है जीवात्मा का पुनर्जन्म है. आत्मा स्वतत्र है. शरीर सबध से बंध है. मुक्ति का साधन ईश्वर में श्रद्धा, जिसको ईश्वर मे विश्वास वोह छूटते छूटते महत्‌तत्त्व से पार होता है तब ईश्वर मिलता है और मुक्ति होती है

(३६) प्लोटिनस (वि. २६०–३२६) और उसके अनुगामी फर्फेरी वगेरे.

ईश्वर निराकार, अकाय, अमन, कृति विकृतिरहित, अद्वितीय, बाह्य वस्तु की सत्ता और अपेक्षा से रहित, शुद्ध, सदासद्‌मे पर और प्रमाण प्रमेयसे जुदा है. अनिर्वचनीय है. ईश्वर के कोई गुण की कल्पना नही की जाती वा उसको कोई सज्ञा नहीं दी जाती. इतना ही कह सकते है कि निर्विकार और अप्रमेय है प्रमेय साकार उसके कार्य, त्रिपुटी यह भेद ससार का है. ज्ञान, इच्छा, सुख, दुःखादि का कारण बाह्य वस्तु है.

समुद्र तरगवत वा सूर्य किरणवत् ईश्वर की यह सृष्टि है सृष्टि क्यो हुई? ईश्वर ने कैवल्य को क्यो त्यागा? और ईश्वर से उसका क्या संबध है? इसका उत्तर नहीं कहा जा सक्ता. सृष्टि ईश्वर की छाया वा प्रतिबिंब समझना चाहिये पहिली सृष्टि महत् (लोगोस वा बुद्धि) उससे आत्मा शरीर वगेरे का आविर्भाव (अवनतिरूप) होता है. इस ससार से आत्मा का सबध कल्पित है, इसलिये जितेंद्रिय होके जीवन करना परमसुख है. चित्तशुद्धि मुक्ति का पहिला उपाय है कैवल्य मुक्ति है अर्थात् ईश्वर का स्वरूप हो जाना. यह अवस्था अपने प्रयत्न से नहीं किंतु परमात्मा की कृपासे प्राप्त होती है प्रत्यक्ष और तर्क से ज्यादा अतर का अनुभव है यह अनुभव वा ध्यान महत् तक पहुचा देता है. उसमे आगे समाधि जहा ज्ञाता ज्ञेय का भेद

नहीं रहता. समप्रज्ञात समाधि होने पर दिव्यज्ञान की ज्योति स्वयं प्रकाशमान् हो जाती है. यह प्लोटिनस का ब्रह्मवाद था.

(३७) आयांम्बिलकस. (वि. ३२६) ३१० देवता अनेक देवदूत अनेक असुर वगेरे मनुष्यों की सहायता अर्थ ससार में है. मिस्रादि देशों का देववाद ठीक है.

(३८) प्रोक्लस. (वि. ४६८–५४१) ईश्वर बुद्धि मे पर अप्रमेय है. सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, लय होती है. ईश्वर मे त्रिगुणात्मक महत् का आविर्भाव होता है. मुक्ति का साधन ईश्वर कृपा है.

मध्यम काल.

(वि. स. ४०९ मे १६५१ तक.

(३९) आगस्टिन (वि. ४०९ से ४८६) सब मे सदेह हो सकता है, परंतु मैं ज्ञाता हूं, इसमें किसी को सदेह नही होता इसमें ४ अश है. सत्ता, जीवन, सवेदन और ज्ञान. यह ज्ञान बाह्यजन्य नही. अविनाशी है; इसलिये इस ज्ञान को ईश्वर से अभिन्न निश्चय किया जा सकता है. अर्थात् आत्मा में विश्वास होने मे ईश्वर में भी विश्वास हो सकता है. जीवात्मा का स्वरूप हम नहीं कह सकते. जीव ईश्वर कृत अमर है.

ईश्वर निर्गुण, निरोपाध, देशकाल से पर अक्रिय और अनिर्वचनीय है. उसे नेति नेति कह के सत्ता मात्र कह सकते है. खिस्तियों के मतानुसार ईश्वर सच्चिदानन्द (तीन) रूप है. उसने अभाव (असत्) से काल और सृष्टि साथ २ बनाये हैं. मनुष्य स्वतत्र नही है, ईश्वर की कृपा के आधीन है. जिसके हृदय में ईश्वर अपनी कृपा से भक्ति का प्रकाश करते है वोह श्रद्धा मे मुक्त होता है. श्रद्धा हीन और नास्तिक जीव, नष्ट हो जाता है. भक्ति और ज्ञान एक रूप है (स.) सृष्टि क्यों बनाई (उ) उसकी इच्छा वोह जाने.

(४०) सकोटस एरिजेना (वि. नवा शतक ९ सैकडा) विवेक (तर्क ज्ञान) और धर्म वा भक्ति एक है. जिस बात का ग्रहण भक्ति से स्वयं होता है उसका प्रमाण ज्ञान से दिया जाता है. विवेकशक्ति ईश्वर ने सब मनुष्यों को दी है, इसलिये अच्छा बुरा पहिचान सकता है चार प्रकार के पदार्थ है १. अकार्य कारण (ईश्वर) २. कार्य कारण (बुद्धि प्राण वगेरे) ३. कार्य अकारण (यथा जुदा जुदा वस्तु) ४. अकार्य अकारण (ईश्वर. क्योकि उसमें सब लोट जाता है) निदान पहिले पीछे ईश्वर ही है. सुखाभाव का नाम दुःख है. ईश्वर विमुख होने से दुःख होता है. ईश्वर के

ज्ञान से बढ कर धर्म नहीं. ईश्वर के ज्ञान से मुक्ति होती है. आत्मा मुक्ति विषे ईश्वर में लय नहीं होता, किंतु ज्ञान लय होके सुखी हो जाता है.

(४१) (पश्चिमी तर्क पे. ९६ में से) पॉरिजिना कहता है कि प्रकृति परमात्मा का विकास है और परमात्मा विश्व का तत्त्व है. वास्तव में एक ही सत्ता है और वोह परमात्मा है. सब दृश्य परमात्मा की सत्ता का प्रकाश है. परमात्मावत् सृष्टि भी अनादि है. जिस प्रकार परमात्मा से तमाम वस्तु उत्पन्न हुई वैसे उसमें लीन हो जाती है. वोह सबको अपने अंदर ले लेता है बल्के यह कहना चाहिये कि वोह अपने आप में लीन हो जाता है.

(४२) सेंट टामस–परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को हम नहीं जान सकते; हां, उसके कार्यों को देखके उसका कुछ अनुमान कर सकते हैं. परमात्मा परिपूर्ण, अनंत, ज्ञान स्वरूप, इंद्रिय रहित, उसको सब अपरोक्ष, सर्वज्ञ, अपने आपका ज्ञाता, कृति वाला प्रेमी है और मनुष्यों को अपने स्वरूप में घडता है. वोह सर्व शक्तिमान है, परस्पर के विरोधी कार्य नहीं करता, सृष्टि कर्ता है. सृष्टि अभाव से भाव रूप की है. परंतु यह बात तर्क से सिद्ध नहीं होती.

(४३) सेंट एन्सेलम. (वि. १०८९–११६६). प्लेटो (१८) के मत समान सामान्य प्रत्यय (जाति) ठीक हैं. गौ में गोत्व, पशु में पशुत्व ऐसे चलते चलते सब मे बडी जो सामान्य सत्ता सो ही ईश्वर है. कारण के विना कार्य नहीं होता. वोह कारण एक ईश्वर है, जो अनेक तो इनका एक कारणत्व ईश्वर सिद्ध हुवा. जो वे कारण स्वयंभू तो उनमें स्वयंभुत्व शक्ति सो ईश्वर. जो वे परस्पर के आधीन तो अन्योऽन्याश्रय दोष आवेगा; इसलिये एक ईश्वर ही जगत् का कारण है. जो ईश्वर असत तो अपूर्ण है, इसलिये ईश्वर की सत्ता अवश्य है.

प्रतिपक्षी. मन में दूध का समुद्र है, ऐसी कल्पना हो जाने से क्या उसकी सत्ता बाह्य है ऐसा मानना क्या उन्माद नहीं है?

(१) वस्तुवाद. (व्यक्तियों में जाति कोई जुदा वस्तु है). (२) नामवाद. (जाति यह व्यक्ति से कोई जुदा वस्तु नहीं) इन दो मतों का बहुत विवाद चला था.

(४४) एबेलर्ड. नामवाद और वस्तुवाद की तकरार में न पडना चाहिये. जाति यह मानसिक स्थिति है. धर्म के बंधन में पडना व्यर्थ है. जो ज्ञानवान् हो उसकी मुक्ति होती है. क्रिस्ति मत के आश्रय विना कल्याण नहीं होता, ऐसा नहीं है.

(४९) ह्युगो नं. ४१ अनुसार तथा आत्मा की ३ शक्ति हैं. (१) यकृत में शारीरिक शक्ति है, जिससे लोही बनता है. (२) हृदय में प्राणशक्ति है जिससे खून की गति होती है. (३) मगज में मानसिक शक्ति है जिससे ज्ञान होता है.

(४६) संशयवादि (अनेक) ईश्वर स्वतंत्र तो सृष्टि का ज्ञान उसको प्रथम न होना चाहिये; क्योंकि निश्चय नहीं है कि सृष्टि होगी वा नहीं जो प्रथम से ज्ञान है तो तद् अनुसार सृष्टि होगी अर्थात् ईश्वर परतंत्र हुवा सृष्टि के पूर्व ईश्वर कहां रहा होगा; क्योंकि सब स्थान (देश) तो सृष्टि में ही है वर्तमान सृष्टि से उत्तम सृष्टि हो सकती है तो वैसी क्यों न बनाई और जो नहीं हो सकती है तो ईश्वर सर्व शक्तिमान नहीं. इसलिये ईश्वरादि विषे संशय ही है

(४७) टौमस एकिनस (वि. १४०२ तक) डौमिनिक संप्रदाय का साधु और अरिस्टाटालीस (नं. २० का अनुयायी). दारिद्यादि अभाव रूप हैं भाव रूप दो पदार्थ हैं. द्रव्य (योग्यता मात्र) और आकार द्रव्य और आकार दोनों मिलके सब बने हैं. ईश्वर पूर्णाकार है, इसलिये वोह एक है (अन्य आकार पूर्ण नहीं है) मनुष्यों में जिस वस्तु की सत्ता रहती है उसका ज्ञान होता है अर्थात् सत्ता और ज्ञान जुदा जुदा हैं. ईश्वर के यहां सत्ता और ज्ञान दोनों एक हैं. जो ईश्वर ने अवतार लेके मनुष्यों में अपना स्वरूप प्रकाशित नहीं किया होता तो मनुष्यों को स्वयं ईश्वर का पता नहीं लगता. आधिभौतिक जीवन का उत्तम रूप मनुष्य शरीर है. जिसके पीछे आध्यात्मिक जीवन चलता है. यह संसार प्राकृति विषयों में उत्तम से उत्तम बना है. ईश्वर की कृति अबदल होती है मनुष्य की इच्छा उत्तमता की तरफ है. इंद्रिये बुरी वस्तु की तरफ खेंचती हैं, इसलिये पाप का आरंभ है. ईश्वर ने जो नियत कर दिया उसके आधीन सब हैं. ईश्वर का कोई कार्य, अज्ञान अविवेक और पक्षपात से नहीं होता.

(४८) एकर्ट (१४ मी सदी). परमात्मा यह, तू, वोह का विषय नहीं, किंतु तमाम पदार्थों में है. केवल परमात्मा के विषय में ही यह कह सकते हैं कि उसकी सत्ता है. परमात्मा में सत्ता और ज्ञान भिन्न नहीं, किंतु एक ही हैं परमात्मा अपने शुद्ध स्वरूप को आप भी नहीं जानता उसका ज्ञान उसके सापेक्ष स्वरूप की सीमा तक है. चाहे उसकी इच्छा हो वा न हो परंतु उसके लिये अपने को प्रकाश करना आवश्यक है. सब पदार्थ परमात्मा के शब्द हैं और बोलने हैं. वस्तु में प्यार होने का कारण यह है कि परमात्मा उसमें है. (प. त.)

(४९) डेसरकोटस (फ्रेंच मतावलंवी) शास्त्र प्रमाण गौण है. तर्क मुख्य है. बुद्धि तर्कानुकुल शास्त्र ठीक है न. ४४ अनुसार ईश्वरेच्छा बुद्धि के आधीन होने से स्वतंत्रता का बाध होता है, इसलिये ठीक नहीं है. जीव की कृति शक्ति जो पराधीन तो पाप पुण्य का भेद असभव है. ईश्वर की इच्छा से सृष्टि हुई है, इसलिये इच्छा शक्ति स्वतंत्र है (बुद्धि आधीन नहीं). इस सृष्टि में जैसी जिसकी इच्छा होती है वैसे कार्य होते है.

(९०) ओकम जो जाति पृथक वस्तु होती तो एक काल विषे अनेक व्यक्तियो में कैसे रहती. अतः पृथक वस्तु नही. धर्म भक्ति यही उद्देश्य है और किसी बात में स्थिरता नही है.

(९१) राजरबेकन (वि १३ वा सैंकडा) उत्प्रेक्षा और कल्पना व्यर्थ है. प्रत्यक्ष और लौकिक उपयोगी विज्ञान मे प्रवृत्ति कर्तव्य है

(९२) ब्रुनो (वि. १६०४-१६५६ इटालियन) सूर्य ग्रह उपग्रह असख्य है दो वस्तु अनंत नहीं हो सकती ससार अनत है उससे ईश्वर जुदा नहीं. माटी घट के समान ईश्वर जगत का उपादान है. सर्व व्यापी सर्व शक्तिमान है. वोह न मूर्त्त है न अमूर्त्त है, अनिर्वचनीय है. न किसी की उत्पत्ति न किसी का नाश होता है. वस्तुओं का अवस्थातर (परिणाम पाना) होना ही उत्पत्ति नाश है बीज से वृक्ष उससे अन्न उससे रस उससे लोही उससे वीर्य उससे गर्भ उससे शरीर, उसने मिट्टी. इससे बीज- इस रीति से परिणाम में रहते हुये भी एक है प्रत्यक्ष शरीराश है. कारण शक्ति आत्मा का अश है ससार शरीर का आत्मा ईश्वर है. हरेक वस्तु में सजीव शक्ति केंद्र है. वे सकोच, विकास ऐसे दो शक्ति वाले होते हैं; विकास से शरीर दृश्य होता है और सकोच शक्ति से केंद्र अपने अमूर्त रूप में रहता हुवा ज्ञानमय जीवन गुजारता है

(९३) कम्पेनेला * (वि १६२४-१६९९ इटालीयन) ज्ञान दो. १ बाह्य प्रत्यक्ष, इसका विषय वास्तव नहीं (उपर कहा गया है कि यथा इंद्रिय ज्ञान होता है) २ अतर ज्ञान (तर्क) इससे ज्ञाता, ज्ञेय, अहं, इद का भेद हो जाता है. ज्ञाता अपनी स्वतंत्रता की सीमा और किन विषयो में बाह्य वस्तु के आधीन है, यह सब आप जानता है परतु मानव का अतर ज्ञान अपूर्ण है ईश्वर का ज्ञान पूर्ण है इसलिये उधर ले जाना ही दर्शन का मुख्य प्रयोजन है. संसार के अस्ति के मूल ३ हैं

* यह स्वतत्र विचार का था, इसलिये रोमन पोप ने इसको २७ साल तक कैद में रखा

शक्ति, ज्ञान और प्रवृत्ति (सत, चित, आनंद) जिसमें से अविर्भाव हो उसमें वेसी शक्ति, जो पैदा करना है उसका ज्ञान (वोध) और उन्नति की प्रवृत्ति में आनन्द यह तीनों निर्जीव सजीव सब ही में अवस्था रूप वर्तमान हैं इसी से सबकी स्थिति है और यही धर्म है. सच्चिदानन्द की तरफ सबकी प्रवृत्ति है. इसी को धर्म कहते हैं

(५४) **फ्रेंसिस बेकन.** (१६१७-१६९९) अरिस्टाटल ने निश्चित व्याप्ति जन्य अनुमान शास्त्र रचा. अनुभव और परीक्षा के द्वारा व्याप्तिग्रह का साधन और उपपादन बेकन का मुख्य उद्देश है.

पुस्तकों की निरीक्षा से, प्राचीनों के अनुकरण से और मन की कल्पना से किसी बात का निर्णय नहीं होता आलस्य से भाग्यमान के संतोष करना, स्वर्ग अमृतादि की कल्पना करके मन को वेलाना इत्यादि वैज्ञानिक और दार्शनिकों के कार्य नही हैं.

मनुष्य की ३ शक्ति हैं. १ स्मृति शक्ति के आधीन इतिहासिक शास्त्र हैं. २ कल्पना के आधीन कविता के विषय. ३. और ज्ञान शक्ति के आधीन दर्शन हैं. जिसके ३ विभाग हैं १. दैवताई विषय, धर्म शास्त्र के अंतरगत हैं. २ वैज्ञानिक विषय. प्रकृति शास्त्र में हैं. ३ और मनोआदि, मनोशास्त्र के विषय है

(१) उपदेशकों पर विश्वास न रख के एक नियम के लिये शनैः शनैः अनेक प्रकार की परीक्षा करके उसकी यथार्थता अयथार्थता का निर्णय करना मनुष्य का पहिला कर्तव्य है. २ परीक्षा की अविषय जो वस्तु हैं उनके पीछे कभी न पडना सृष्टि निष्फल, स्वर्ग नरक की कल्पना करना, देव दूतादि के भरोसे पर रहके अपना उद्योग छोडना, यह मनुष्य के अज्ञान के फल हैं ३ जिन वस्तुओं में स्वतत्र विचार हो सके उन्ही का विचार करना चाहिये

(५५) **हॉब्स** (वि १६४८-१७३५ इंगलैंड) नीति और आचार मुख्य विषय हैं. कार्य से कारण और कारण मे कार्य का ज्ञान (व्याप्ति ज्ञान) दर्शन का मुख्य कार्य है विचार उन वस्तुओं का हो सकता है कि जो सावयव याने मूर्त हैं. जो निरवयव अमूर्त वस्तु (देव, दूत, आत्मा, ईश्वर वगेरे) दर्शन के विषय नहीं. क्योंकि वे विषय नहीं होते, वे भक्तों के लिये छोड दो.

संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं १. अकृत्रिम याने प्राकृत (तर्क शास्त्र और पदार्थ विज्ञान वगेरे के विषय) २. कृत्रिम याने मनुष्याधीन (आचार, और नीति

वगेरे) सवेदन (फीलींग–इम्प्रेशन) से जुदा ज्ञान कोई पदार्थ नहीं है, इंद्रियो में जो परिणाम होता है उसी के अनुभव का नाम सवेदन है स्मृति, संवेदन का तत्व रूप है. सवेदन में न कुछ बाहिर जाता है न कुछ बाहिर से अदर आता है इंद्रिय और परमाणुओं में परिणाम पेदा होता है सो ततुओ द्वारा मगज तक पहोचता है शब्द, रूप, रस वगेरे इंद्रियो के विकार है इंद्रियो में आघात होता है वही आघात प्रभा वगेरे के रूप में जान पडता है प्रभा वगेरे कोई बाह्य वस्तु नहीं. बाह्य मालूम होना भ्रम है. केवल इन इंद्रियो के आघातो का कारण कुछ द्रव्य है. इतना ही कह सक्ते है. केवल मगज के परिणामो को आत्मा कहते है अमूर्त्त आत्मा कोई जुदा वस्तु नहीं है

मनुष्य पशुओं मे काम क्रोधादि, सुखेच्छा, ओर रागद्वेष समान है. केवल श्रेणि का अतर है बुरा भलापन कोई स्वतत्र वस्तु नहीं है, जिसे जो अच्छा लगे सो उसे अच्छा, जिसे जो बुरा लगे सो उसे बुरा जिसकी पूर्ण सामग्री हो जाती है वोह बात जरूर होती है मनुष्यो ने अपनी रक्षा वास्ते राजा, बनाके अपना स्वतत्रपना अर्पण किया है नहीं तो दुर्बल को बलवान नहीं रहने देता

वर्त्तमान काल.

(वि सं १९५२ मे चल रहा है)

(५६) डेकार्ट (वि १६५२–१७०६ प्रा०स) रेखा गणित की स्वतः सिद्ध थोडी बातो से, बडे बडे तत्त्व सिद्ध किये जाते है वेसे मनुष्य के चित्त में ज्ञान के स्पष्ट निर्विवाद अश है उनकी परीक्षा करने ईश्वरादि बडी बडी बातो की व्याप्ति ग्रह के सबध से सिद्धि होती है

शब्द प्रमाण स्वत प्रमाण नहीं प्रत्यक्ष मूलक होने से तर्क ओर अनुभव से प्रत्यक्ष विश्वास योग्य नहीं है सशय तक रह जाना भी उचित नहीं है मुझे संशय है, मैं विचार करता हू इसलिये मैं हू, यह स्वय सिद्ध हो गया अतः स्पष्ट रूप से जो मेरे विचार में हो वा इस प्रतिपाद्य मे जो निकले उसमे इतर का अस्वीकार है मनुष्य को ईश्वर है, ऐसा विश्वास है, इसलिये ईश्वर की सिद्धि है. (श) कल्पना मात्र (उ) ईश्वर अनत, अपरिच्छन्न, पूर्ण ओर स्वतत्र है, अतः अल्प की कल्पना का विषय नहीं (श) अशरफी की कल्पना से अशरफी नहीं आती (उ) ईश्वर पूर्ण है, ऐसा हमारा ज्ञान है, पूर्णता मे सत्ता है.

मूर्त संसार, भ्रमरूप नहीं क्योंकि ईश्वर की कृति है. आत्मा और संसार ईश्वर आधीन हैं. आत्मा के गुण, ज्ञान और चिंतन है और बाह्य वस्तु का गुण विस्तार है. शून्य और परमाणु वगेरे परिणाम हैं, वस्तु नहीं. संसार देश से अनंत केंद्ररहित है और उसकी गति उत्केंद्र और केंद्राधिगामिनी है. विस्तार के कारण वस्तुओं में गति होती है. अणु वगेरे में गति होने की योग्यता नहीं, इसलिये संसार एक यंत्र है; जिसमें पहिले गति ईश्वर ने दी उससे यह चल रहा है. ज्ञाता (आत्मा) और ज्ञेय (मूर्त) का भेद है. आत्मा निराकार, वस्तु साकार है आत्मा का शरीर नहीं है, शरीर नियम के आधीन और आत्मा स्वतंत्र है. आत्मा शरीरव्यापी है. विशेषतः ब्रह्मरंध्र के साथ संबंध रखता है आत्मा की चिंता से प्रथम ब्रह्मरंध्र में गति होती है फेर प्राण द्वारा तमाम शरीर में फेलती है. शरीर के दबने वगेरे से आत्मा को दुःख सुख और आत्मा की चिंता से शरीर की दुर्बलता इत्यादि उत्तरकाल में होती हैं, इतना कालिक सबंध है. बाह्य वस्तु सुख दुःख के हेतु नहीं किंतु दुःख सुख उनके ज्ञान से होते है. (शं.) आत्मा को ज्ञेय और शरीर का ज्ञान कोन से संबंध से होता है? १, ईश्वर और आत्मा का क्या संबंध है? २, ईश्वर सर्वज्ञ और शक्तिमान तो जीवात्मा स्वतंत्र है या नहीं? ३. (उ.) डेकार्ट के अनुगामी ज्यूलिंक १, मेलेब्रांश २ का उत्तर. जब शरीर की असर से आत्मा को दुःख सुख हो वा आत्मा की कृति से जब शरीर हले चले तब आत्मा और शरीर के दरमियान ईश्वर पड के कार्य करता है. शरीर और आत्मा तो सहकारी कारण हैं. इसका नाम अवसरवाद है अब जो दोनों के मत मिला दिये जावें तो ईश्वर ही ज्ञाता कर्ता ठेरता है. जीव, ज्ञाता कर्ता कल्पना मात्र है. जीव, ईश्वर का विशेष रूप है. ईश्वर में सब वस्तुओं का आदर्श है उनको वोह देखता है. बाह्य वस्तुओं से संबंध नहीं है. जब ईश्वर ही ज्ञाता कर्ता तो जीव को जुदा स्वतंत्र मानना भ्रम है. वस्तुतः जीव, ईश्वर की आज्ञा विना कुछ नहीं कर सकता.

(५७) स्पाईनोजा. (वि. १६८८-१७३३ डेकार्ट के विरोध का निवारक यहूदी). द्रव्य=अन्य की अपेक्षा और सहायता विना विचार में आ सके सो. धर्म= जिस कर के द्रव्य स्वस्वरूप में स्थित रहे (द्रव्य का सार सो). प्रकार=किसी द्रव्य का अवस्थांतर हो याने द्रव्य के विना समझ में न आवे.

निरपेक्ष द्रव्य, स्वयंभु अपरिच्छिन्न अद्वितीय ईश्वर है, वोह स्वतंत्र और अपने नियम के आधीन है, यथेच्छाचारी नहीं है, तर्कवादियों की मान्यता समान

ईश्वर में इच्छा ज्ञान नहीं हैं. जीव और प्रकृति यह दोनों एक ही द्रव्य (परमात्मा) के भिन्न रूप हैं, जेसे पटका कारण तंतु, मधुरता श्वेतता का कारण दूध, ऐसे जगत् का कारण ईश्वर है. निदान सृष्टि ईश्वर का विवर्त्त है. ईश्वर उसका उपादान और वास्तु व्यापक सत्ता है. ईश्वर के विस्तार आकार और ज्ञान कल्पना मात्र है. वोह निर्गुण उपाधिरहित है. मनुष्य की बुद्धि में इच्छादि गुणों को प्रकाश करता हुवा कभी परमात्मा रूप और कभी साकार-मूर्त्त रूप जान पडता है, वस्तुतः उसके जुदा जुदा स्वरूप नही हैं. ईश्वर सर्वज्ञ है. उसका ज्ञान अनंत है. परंतु मनुष्य जेसा प्रत्यक्षाधीन वा अहंकारमूलक नहीं है. निदान शुद्ध स्वतः ज्ञानस्वरूप है. जीव शरीर दोनों एक ही के विवर्त्त हैं, इसलिये शरीर का असर जीव पर और जीव की कृति से शरीर का हलन होता है. इस मत को **शरीरात्मक सहपरिवर्त्तिता** कहते हैं. गति और स्थिति यह आकार के (ईश के धर्म के) और बुद्धि वृत्ति यह ज्ञान के रूपांतर हैं. इन चारों से त्रिपुटी रूप ससार है. यह चारों स्वयं अनादि और अनंत हैं. व्यक्तियों में जो उनके विशेषरूप जान पडते हैं वे उनके रूपांतर हैं. (शं.) जब कि द्रव्य नित्य है और अपरिणामी है तो परिवर्तन किस का? इसका उत्तर स्पाईनोजा ने नहीं किया है.

संवेदन शरीर का और प्रत्यक्ष मन का धर्म है. अस्पष्ट प्रत्यक्ष भ्रम का मूल है. जेसे प्रकाश अन्य वस्तु को स्वयं ग्रहण कराता है वेसे ही वास्तविक ज्ञान स्वयं प्रमाण है. ईश्वर को मूर्तिमान किंवा अपने को सब का केंद्र मानना भ्रम है. शुद्ध ज्ञान होने पर ईश्वर का और उसके सब विवर्त्त हैं इस बात का बोध हो जाता है. शुद्ध ज्ञान मे नियत का और ईश्वर के विना कुछ नहीं होता यह तत्त्व जाना जाता है. सृष्टि ऐसी और क्यों बनाई इत्यादि शंका भ्रम दूर हो जाते है. अपना कारण और अपना प्रयोजन वोह स्वय है (स्वय जानता है). इतना शुद्धबोध स्वतंत्र है, बाकी सब ज्ञान प्रकृति के नियमाधीन है; इसलिये यथालाभ शरीर निर्वाह मात्र से संतुष्ट हो के होतव्य होतव्य है ऐसा समझता हुवा ज्ञानी पुरुष हमेशे सुखी रहता है. ईश्वर को सब का आत्मा जान के ज्ञानी को उसमें प्रेम रहता है. ईश्वर को सगुण मान के सकाम आराधना करना सच्चा प्रेम नहीं है.

(शं.) ईश्वर एक द्रव्य उसके दो रूप (शरीर साकार, आत्मा निराकार) मानना तम प्रकाशवत् विरोध है. (उ.) स्पीनोज उत्तर देता है-मूर्त्त पदार्थ में आकार भास मात्र है. वस्तुतः मूर्तयुक्त होना एक शक्ति है. (वर्तमान सायंस भी ऐसा ही मानती है).

(५८) लीब्नीज. * (वि. १७००–१७७२) द्रव्य असंख्य हैं, स्वय कार्य-शक्ति वाले हैं. जेसे गणित में बिंदु ऐसे दर्शन में शक्ति केंद्र हैं इन शक्ति केंद्रों में रुध (देशनिरोध) नहीं है, इसलिये दूसरी वस्तु का असर इन पर नहीं होता. इनमें स्वयं कार्य और ज्ञान वगेरे की शक्ति है. इच्छा ज्ञान इति तमाम शक्ति केंद्रों में स्वाभाविक है, इनमें समान भावना अनादि से है. सब अनादि अनत हैं.

सुषुप्ति में ज्ञान न होने से आत्मा ज्ञानस्वरूप नहीं. गुरुत्व रुंधन होने से शरीर विस्तारमात्र नहीं, इसलिये कार्यशक्ति ही स्थिति का लक्षण है. विस्तार गुरुत्वादि सभी इस कार्यशक्ति का फल है. वोह कार्यशक्ति मनुष्य से अगम्य है. उसके कार्य से उसका अनुमान होता है. उसी शक्ति का कार्य ज्ञान भी है, परतु यह शक्ति नं. ५७ अनुसार एक नहीं है. तमाम चित्त और ससारी पदार्थ स्वतंत्र शक्ति वाले हैं उनके कार्य जुदा जुदा है, इसलिये शक्तिया अनत है. जितने शक्ति केंद्र उतनी शक्तियें समान भावना होने से एक दूसरे अनुसार चलती हैं. इच्छादि होने से आत्मरूप सब केंद्र हैं आत्मा से बाहिर पदार्थ नहीं आत्मशक्ति के कार्यों से बाह्य पदार्थ का भान होता है. मनुष्य की आत्मा को स्पष्ट आत्मज्ञान और दूसरे पदार्थ की आत्मा को वेदना मात्र अस्पष्ट होती है. बाह्य वस्तु का कार्य शक्ति केंद्र में प्रतिबिंबित होता है, इसलिये अपने को देखना यह सब को देखने समान है

सब शक्ति केंद्र समान नहीं हैं, अस्वच्छ में अस्पष्ट प्रतिबिंब पड़ता है. उत्तम की आज्ञा में अधम केंद्र रहते हैं मनुष्य में आत्मा उत्तम केंद्र है, जिसके अनुगामी अनेक केंद्र है. निर्जीवो में शासकशक्ति केंद्र नहीं हैं, सजीवो मे है शारीरिक शक्ति केंद्रों में जेसे कार्य होते है उसी समान आत्म केंद्र में भी होता है ईश्वर ने दोनो को एक बार ऐसे चला दिया है कि समान भाव से चल रहे है, सब मे उत्तम सब से निकृष्ट के दरमियान असंख्य केंद्र है शरीर का धारण बधन नहीं है, क्योंकि आत्मा का आभास मात्र है, पृथक् नहीं है.

शक्ति केंद्रों में हमेशे परिणाम होता रहता है, इसका नाम जीवन. मोत भी परिणाम (अवस्था) विशेष है परिणाम भूतपूर्व दूसरे परिणाम के आधीन हैं, इसलिये नियम विना के कार्य नहीं होते

---

* ईश्वर, असख्य, द्रव्य, जीवात्मा और अनत शक्ति केंद्र स्वतंत्र अनादि अनत हैं, ऐसा मान के व्यवस्था करता है

सन से उत्तम शक्ति केंद्र ईश्वर है सन का कारण सन शक्ति केंद्रो का भी केंद्र है बुद्धि से अगम्य है. कुछ उसका अस्पष्ट आभास बुद्धि मे होता है. यदि उधर प्रवृत्ति की जाय तो ईश्वर तक पहुच हो सकती है. ईश्वर के न्याय नियम से तमाम ससार चल रहा है. ईश्वर स्वतंत्र है, परतु जो नियम न्याय बनाये गये है उसके अनुसार चलता है, वे नियम नहीं बदलते (जर्मनी में इस दर्शन का अधिक प्रचार हुवा) इसका नाम संविद्वाद है.

(५९) लाईबनिट्स. (वि. १७०३–१७७३ जर्मनी) जितनी सृष्टियें होती है उनमें वर्तमान सृष्टि सर्वोत्तम है. यहा दुःख और बुराई नहीं है. जो जान पडती है वोह समग्र के सौन्दर्य को बढाती है.

डेकार्ट ने विस्तार को प्रकृति का गुण कहा यह उसकी भूल है. वोह विस्तृत होने की इच्छा (एक प्रकार की शक्ति) का प्रकाश है. यह शक्ति विशेष आकार ग्रहण करती है. सृष्टि में परमाणुमात्र क्रिया करते है, यह क्रिया शक्ति का प्रकाश है. चेतन्यता विस्तार मे पृथक् है चेतन्यता और शक्ति में विरोध नहीं है.

द्रव्य असंख्य है वे एक ही प्रकार के है. वे द्रव्य चेतन अणु है. प्रत्येक अणु में ज्ञान और शक्ति यह दो गुण है. वे पोले नहीं है. एक अणु दूसरे अणु पर भाव नहीं डाल सकता. यदि एक अणु में परिवर्तनन होता है तो उसके अदर से होता है. यदि उसे ज्ञान होता है तो उसे अपनी आतरीय अवस्थाओं का होता है. प्रत्येक अणु अपने आप में परिपूर्ण ब्रह्माड या देवता है. *

वे अणु परस्पर में मिल सकते है इश्वर उनका समूह है. हरएक अणु जीवित और चैतन्य है. सन सृष्टि जीवन और चैतन्य है जहा समूह में मुख्य अणु नहीं होता वोह समूह निर्जीव कहाता है जेसे माटी और चादी में मुख्य अणु नहीं है वृक्ष, पशु और मनुष्य में मुख्य अणु है, वोह (अमुख्य) दूसरे को विवश नहीं करता कि वोह उसकी आज्ञा में रहें. निकृष्टाणु अपनी प्रकृतिवश मुख्य अणु की आज्ञा में रहते है. वास्तव में चेतन होने से हरएक अणु आत्मा है. मुख्याणु आत्मा है. दूसरे अणु शरीर है. इन मुख्य निकृष्ट से इतर एक अणु का अणु परमात्मा है. तमाम विश्व का प्रबध उसके आधीन है.

---

* यह सर्वाशिष्ट और वामनार्ग[?] मिश्र का ऐसा ही सिद्धात है अणु अणु में ब्रह्माड और ईश्वर, ब्रह्माड प्रति जुदा जुदा

वास्तव में हमको बाह्य जगत का ज्ञान नहीं हो सकता. मेरा आत्मा मेरे शरीर पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं डाल सकता. मुझे भ्रांति से ऐसा भासता है (कि मैं बाह्य जगत् का ज्ञान कर रहा हू, याने ऐसे पदार्थ हैं), किंतु प्रत्येक आत्मिक अणु (मोनाड) अपने आप में बंद हैं और अपनी आंतरीय अवस्था को ही जान सकते हैं. एवं सब अणुओं मे होता है परमात्मा ने आरंभ मे ही ऐसा प्रबंध किया है कि जब एक (शरीर या आत्मा) में परिवर्तन होता है तब उसके मुकाबले में दूसरे में भी योग्य परिवर्तन हो जाता है एक साधारण बात में भी परमात्मा की सहायता मागना यह मेरा सिद्धात नहीं है. वास्तविक बात यह है कि जिस प्रकार तमाम पदार्थों के प्रबंध करने में परमात्मा का दखल है वैसे ही यहा (शरीरात्मा के संबंध में) वोह दखल देता है, परंतु मेरा समाधान बाकी रह जाता है. अर्थात् वोह दखल यह है कि परमात्मा ने अपनी योग्यता से इन दोनो (आत्मा शरीर) को ऐसा पूर्ण विधि-पूर्वक और ठीक बनाया है कि प्रत्येक अपने नियमो के अनुसार काम करता है. उन उभयो में ऐसी एकता है जैसी कि उनके परस्पर के प्रभाव डालने से अथवा परमात्मा के हमेशे हस्तक्षेप करने से हो सकती थी.

न्यूटन और उसके अनुयायीका विचार है कि परमात्मा अपनी घडी (शरीरादि पदार्थ) को कभी कभी कूची लगाता रहे, नहीं तो वोह घडी खडी हो जायगी मेरे सिद्धात के अनुसार शरीर वैसा ही काम करते हैं जैसे कि वे आत्मा के अभाव में वे काम करते हैं. आत्मा वैसे ही काम करते हैं जैसा कि वे प्रकृति के अभावावस्था में करते और दोनो इस प्रकार काम करते हैं जिस प्रकार एकका प्रभाव दूसरे पर पडने की अवस्था में करते ‡ (पश्चिमी तर्क पेज १०६–१०८ तक)

परीक्षात्मक तर्क.

डकार्ट ने आत्मा और प्रकृति यह दो द्रव्य बताये. दोनों के गुणो का विरोध होने से उनका असंबंध कहा मालब्रान्श ने इस संबंध को समझने वास्ते परमात्मा का सहारा लिया, उसको निमित्तकारण माना स्पाईनोजा ने परमात्मा ही एक द्रव्य माना चैतन्यता और विस्तार उसी के गुण होने से विरोधी नहीं, ऐसा कहा. लाइप ने समान अनेक द्रव्य की शिक्षा दी विस्तार की जगह शक्ति को उनका गुण कह के स्पाईनोजा के मत का विरोध दूर किया

‡ गीन्सीज और लाइबनिटस का समान सिद्धांत है, ऐसा ज्ञान पडता है

सवाल यह उठ आया कि बुद्धि क्या? वोह क्या जान सकती है? उसकी शक्ति क्या? ऐसा तर्क उठाने वाला लॉक था

(६०) लॉक. (वि १६८८–१७६० इगलेंड अनुभववाद) आख बद कर के कल्पना से मान लेना * फिलोसोफर का काम नहीं है लीब्नीज वगेरे दर्शनकारो ने "मनुष्य में कितनेक ज्ञान पहिले से ही हैं, परतु उसका बोध नहीं है" ऐसा माना है, यह विरुद्ध बात है जन्म में सब समान है फेर बाह्य वस्तु के अनुभव से और नीति धर्माचारादि के शिक्षण से ज्ञान होता जाता है. प्रत्यक्ष सब का मूल है बाह्य सवेदन मे बाह्य और चिंतन अनुशीलन से अतर प्रत्यक्ष होता है मन में सबध जोडने घटाने की योग्यता है. एक इंद्रिय मे जो प्रत्यय आता है वोह शुद्ध (साधारण) है यथा रूप, रस, गध वगेरे हैं मिश्रण प्रत्यक्ष वृक्षादि है जिसमें रूपादि मिले हुये हैं. मन में रूपादि का जो बोध होता है उसका नाम प्रत्यय. उनके सदर्श बाह्य वस्तु में है ऐसा नहीं है, किंतु उन प्रत्ययो के प्रयोजक जो धर्म बाह्य वस्तु मे है उनका नाम गुण है. साराश प्रत्यय रूपादि चित्त में (चित्त की अवस्था) और गुण बाह्य है गति, आकार और विस्तार वगेरे, बाह्य द्रव्य के स्वकीय गुण है. रूपादि बाह्य द्रव्य के नहीं है रसादि बोध प्रयोजक गुण रसादि से भिन्न कुछ दूसरी प्रकार की उन उन वस्तुओं में वर्तमान है

(१) सवेदन (जिससे रूपादि का अनुभव होता है,) (२) धारण (अनुभव कुछ काल ठेरना), (३) स्मरण (उसका पुनः जीवन याने याद आना), (४) भेद ज्ञान (रूप रसादि का अतर) (५) तारतम्य बोध (रूप रूप, रस रस के अतर और उनके मेल का ज्ञान), (६) प्रत्याहरण वा विवेचन (जाती–सामान्य जाती का बोध होना) यह ६ शक्ति मनुष्य में है प्रत्याहरण मे इतर सब शक्तियें जानवरो में भी है पहिले व्यापार में चित्त बाह्य वस्तु के आधीन है. अन्य में स्वतत्र होता है.

बाह्य वस्तु की परीक्षा से तत्त्वज्ञान का संबंध है अनुभव सापेक्ष है. देश देश, काल काल जोड के देशकाल अनत ऐसा आभास हो जाता है मनुष्य की कृति उसके आधीन है, इसलिये स्वतत्र परतत्र का प्रश्न व्यर्थ है

गुणों के समुदाय स इतर द्रव्य कोई वस्तु नहीं है. वे गुण निराधार स्वयं वर्तमान है, ऐसे ही जाति कोई वस्तु नहीं है समान धर्मो का नाम जाति मान

* न ५८।५९ पर कगाश है

लिया है. वैसे ही विशेषके वास्ते जान लेना चाहिये. ज्ञान=दो प्रत्ययोंके सबंध वा विरोध का अनुभव. कितनीक वस्तु तर्क से निश्चित होती है. हमारे प्रत्यय की प्रयोजक बाह्य वस्तु जरूर हैं, नहीं तो स्वप्न में और इसमें अतर नहीं होता; मन कल्पित लड्डू से तृप्ति हो जाती. बाह्य वस्तु कैसी है इसका निश्चय नहीं हो सकता ऐसे ही आत्मा और ईश्वर का. आत्मा और ईश्वर है, इतना कहना बस है. विशेष परीक्षा प्रत्यक्ष विना असभव है, इसलिये उन प्रत्ययो को छोड के जिनकी परीक्षा और अनुभव हो सके उनके ज्ञान के लिये प्रयत्न करना चाहिये. इसका नाम **अनुभववाद** है इस पक्ष में बाह्य जगत् भ्रांतिरूप नहीं है.

जाति व्यक्ति.

जाति (सामान्य प्रत्यय) और व्यक्ति की हस्ति और उनके परस्पर के सबंध के विषय में प्रश्न, सो पुराना प्रश्न है (उपर कहा है). अफलातून का मत—जाति ही सत्य है परिपूर्ण और अनादि है, व्यक्तिया इसकी असपूर्ण और दोषयुक्त नकलें है, व्यक्तियो से जाति पर है. अरस्तू का मत—वे जाति, व्यक्तिओ के भीतर है, जुदा नहीं है, इसी वास्ते पदार्थ समजाति मे मिलता है; दूसरी में नहीं. उभय का मत जाति स्वातत्र्यवाद है. लॉक का मत—जाति कोई वस्तु ही नहीं है, इसकी हस्ति कल्पना में है. हम अनेक पदार्थों को देख के उनके सामान्य गुणो का ध्यान करते है और सामान्य प्रत्यय बना लेते है. लॉक का मत **सामान्य प्रत्यय तत्त्ववाद** है. **बारक्लि** का मत—जाति की हस्ति हमारी कल्पना में भी नहीं होती जब कल्पना करते है वोह कल्पना व्यक्ति की ही होती है जाति तो एक शब्द घट लिया है जो बहुतसी व्यक्तियो के वास्ते व्यवहार में आता है बारक्लि का सिद्धात **नामवाद** है.

(६१) बारक्लि–बर्कले (नि १७११–१८०९ आयरलैंड. क्लाईन का बडा पादरी. इसाई, नामवादी). बर्कले धार्मिक होने से इसका तर्क धर्म में रंगा हुवा था. उसका आदर्श सशय और नास्तिकता के विरुद्ध था. लॉक के प्रमाणो को स्वीकारता भी है.

इसका सक्षेप में सिद्धात—रूपादि आतर प्रत्यय है और आकार विस्तार तथा गति यह बाह्य प्रत्यय हैं, ऐसा मानना असगत है, इसलिये तमाम ससार आत्मा के कार्य है, सब प्रत्यय आत्मा मे उत्पन्न होते है, उनकी बाह्य स्थिति सर्वथा असभव है सूर्यादि वे आत्मा (जीव) से अधिक शक्तिमान परमात्मा के कार्य है. जीव, परमे-

श्वर और इन दोनें के प्रत्यय-इन तीनों से इतर सब भ्रम है. इसके सिद्धांत को प्रत्यान एनवाद कहते हैं *

विशेष-हम सामान्य प्रत्यय नहीं बना सकते. हमारे तमाम प्रत्यय विशिष्ट होते हैं. यथा रामदत्त मनुष्य, गोल पीली नारंगी. जिसे (जाति) गुणों से परे बताते हैं उसका चिंतवन नहीं होता. मानसिक द्रव्य का ज्ञान प्रत्यक्ष होता है. अनुभव और मेरे अनुभव ऐसा मैं प्रत्यक्ष जानता हूं इसमें अनुमान की अपेक्षा नहीं. प्रकृति की द्रव्यक हस्ति न प्रत्यक्ष है और न अनुमान से सिद्ध होती है. गुणों को आत्मा से बाहिर कल्पना करना आपही धूल उडा के नहीं देखने समान है. स्वतः उपरोक्त मुख्य और गौण गुण हमारे मन की अवस्था हैं. †

बाह्य प्रकृति अभाव-बाह्य गुणों का ज्ञान होता है सो गुण बाहिर नहीं हैं. जिसे हम दुर्गंध जान के हटते हैं उसे गीध सुगंध जानके वहां आता है, एक जिसे हरा देखता है उसे दूसरा (पांडुरोगी) पीत देखता है तीसरे (वर्णांध) को श्वेत जान पडता है, इसी प्रकार एक ही पुरुष भिन्न २ अवस्थाओं में भिन्न २ अनुभव ग्रहण करता है, सब के अनुभव में मतभेद होने से कौनसा निश्चय ठीक है यह सिद्ध नहीं होता; इसलिये विवश होके गौण गुणों को बाह्य नहीं मान सकते. तद्वत् मुख्य गुण हमारे अंदर ही हैं. इस का कारण भी पूर्ववत् है. दूर से पहाडी को साफ और समीप में ऊंची नीची देखते हैं, पत्थर का टुकडा पास से छोटा, साफ और सूक्ष्मयंत्र द्वारा देखने से बडा, खरदरा जान पडता है जो, यह विस्तार बाहिर होता तो समान जान पडता. अनुभव कहता है कि गौण और मुख्य गुण साथ रहते हैं किसी पदार्थ के आकार विस्तारादि गुणों को उसके गंधरंगादि गुणों से पृथक् नहीं कर सकते, अतः वे साथ ही हैं. गौण गुणवत् अंदर में ही हैं. प्रत्येक पदार्थ इन

---

* परमात्मा और जीव का क्या संबंध ? परमात्मा के सूर्यादि प्रत्यय जीवों को कैसे भासते हैं, इत्यादि शंकाओं का समाधान बर्कले के दर्शन में नहीं है. इसलिये इस दर्शन की प्रवृत्ति थोडी हुई (ये. द.)

† यदि जीवात्मा, परमात्मादृत हो तो वो, और उसके प्रत्यय यह दोनो ईश्वर के ही प्रत्यय होंगे, कर्तृत्व भोक्तृत्व की अव्यवस्था रहेगी किंतु ईश्वर कर्ता भोक्ता होगा और जो आत्मा अनादि है तो ईश्वर के सूर्यादि प्रत्यय आत्मा के विषय नहीं हो सकते यह सिद्ध होगा. इ. बर्कले क्षणिक बौद्ध से मिलता है परंतु इसाई धर्म भावना के वश ईश्वर को बीच में ले लेता है; अतः सिद्धांत, सिद्धांत रूप में नहीं आता.

दोनों प्रकार के गुणों का समूह है. सो मेरे मन में ही है. मेरा तन, मेरा घर, देश, भूमि, सूर्य मंडल और उससे परे के तारा मंडल प्राकृत जगत मेरे मन में है. ‡

एक कमरे में एक कुरसी १० आदमी देखते हैं. वहां १० हैं. वे १० उन उनके ज्ञान में है. उनमें से २ पुरुष आंख बंध करें और कुरसी का चिंतवन न करें तो १० में से २ कुरसी नष्ट हो गई. और जो कमरे में दूसरे ५ पुरुष आ जावें तो ५ नई कुरसी उत्पन्न हो जाती हैं § प्राकृत पदार्थ के अस्तित्व का अर्थ यही है कि किसी मन को उसका ज्ञान हो.

बर्कले कहता है कि मेरा इंद्रिय ज्ञान मेरी इच्छा पर निर्भर नहीं है, इसके संबंध में मैं परतंत्र हूं. हा, मै अपनी कल्पना–अपनी इच्छा से मानसिक जगत मे आ सकता हूं. कल्पना प्रसग में मेरा इंद्रिय ज्ञान मुझे मिलता है, यह ज्ञान मुझे बाहिर से मिलता है उसमे निमित्त कारण परमात्मा ही है, स्वतः अनुभव वा बाह्य अचेतन पदार्थ नहीं है. हमारा प्राप्त ज्ञान हमारी कल्पनाओ की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है उसमें नियमबद्धता जान पडती है, इस भेद का कारण यह है कि आत्मा की अपेक्षा परमात्मा विशेष ज्ञान वाला है. वोह अपनी कृपा से इस ज्ञान को व्यवस्था और नियम में रखता है; तो हम भूत को देखके भविष्यत का अनुमान कर सकें. मैं कमरे में गया, मेज देखी, वहा से दूसरी जघे गया, वोह मेज न रही. परंतु मेज का अस्तित्व किसी द्रष्टा (परमात्मा) के ज्ञान में है; जो मेज को जान के उसे अस्तित्व प्रदान करे (करता है). इसी प्रकार अन्य दृश्य पदार्थों वास्ते योज लेना चाहिये.

मेरे आत्मा से इतर अन्य आत्मा (जीव) भी है; क्योंकि मेरी जैसी क्रिया अन्य में देखता हू तमाम इंद्रिय ज्ञान परमात्मा की इच्छा से होता है. दूसरे आत्माओ की हस्तिका अनुमान इंद्रिय ज्ञान से होता है. इसलिये इस ज्ञान में भी परमात्मा का हाथ है तद्वत् शब्द ज्ञान में है

जीवात्मा एक अमिश्रित पदार्थ है उसका नाश नहीं होता. शरीर से उसका सबध आवश्यक नही है. शरीर के नाश होने पर उसका नाश नहीं होता

क्रिया और प्रज्ञात अपने आप में दो सामान्य प्रत्यय है, इसलिये उनका कोई हस्ती नही है. रेखा के भाग की सीमा है उसके अनत भाग नहीं हो सकने.

‡ कूप में पटके और हाथ को अग्नि में जला के देख ले कि बाह्य जगत है या नहीं, एसे कइ उसे कहते थे

§ दो आदमियो को आंखें पट्टीबद्ध ले जावें तो वहां चक्षु उघाडने पर कुरसी नजर न आनी चाहिये, क्योंकि चिंतवन में नही है और ईश्वर सामने कोई ऐसा कारण नहीं मिलता.

हमारा तमाम इंद्रियज्ञान यथार्थ है. बाह्य जगत् वही है जो हमारे ज्ञान में है हम इसे बाह्य जगत् कहते हैं; क्योंकि इसके संबंध में हम परतंत्र (इशाधीन) हैं. जब प्रकृति की कोई स्वतंत्र हस्ती ही नहीं तो जीवात्मा का उसके साथ क्या संबंध? इस बाबत विचार करना व्यर्थ है. *

व्यापक परमात्मा हमारे साथ प्रत्यक्ष संबंध रखता है, हम उसके प्रभाव में हैं. वोह कहीं दूर आकाश में निवास नहीं करता.

वर्कले का सिद्धांत भावप्रधानवाद है. इसकी समालोचना (असमीचीनता) पश्चिमी तर्क पेज १३०।१३२ में की है. वर्कले का एकवाद या त्रिवाद नहीं है किंतु द्विचेतनवाद है (जीव ईश्वरवाद है). *

(६२) ह्यूम. (वि. १७७७–१८३२ स्काटलेंड. मानस परीक्षा की शैली का शोधक) प्रत्यक्ष या अनुभव और चिंतन या स्मृति से इतर कोई ज्ञान नहीं है. स्मृति अनुभवजन्य होती है; इसलिये अनुभव गोचर से इतर दूसरा कुछ भी नहीं आ सकता. बुद्धि अनुभूत के जोड तोड कर सकती है, नवीन नहीं निकाल सकती. यथा परिच्छिन्नों की व्याप्ति से अपरिच्छिन्न ज्ञानादि विशिष्ट ईश्वर की मान्यता है. सादृश्य दर्शन से, एक देश कालस्थ दर्शन से और कार्यकारण भाव संबंध से एक के ज्ञान द्वारा दूसरे का स्मरण हो जाता है.

भारत निवासियों के अनुसार ऍम. नं. ४३ और डे नं. ५६ वगैरे यूरोपीयन दर्शनकारों ने इस कारणकार्य भाव से ईश्वर की सिद्धि का भरोसा रखा है, परंतु यह तर्क भ्रममूलक है; क्योंकि कार्यकारणभाव का बोध स्वाभाविक नहीं, किंतु अन्य संबंधों के ज्ञान समान अनुभवमूलक है. एक गेंद के धक्के से दूसरी गेंद चल पडती है, यह व्याप्ति परीक्षा में है; परंतु उस गेंद में कोई स्वाभाविक शक्ति है जिससे दूसरी गेंद चल पडती है, यह स्वाभाविक ज्ञान भ्रममूलक है. कारणकार्य उभय जुदा वस्तु हैं, उनमें कोई संबंध नहीं और यदि है तो अगम्य है. मनुष्य की इच्छा से हाथ हलता है, परंतु क्यों (कैसे) हलता है यह हम नहीं कह सकते; लकवा हो जाय तब नहीं हलता; इसलिये अनुभव से ज्यादा कोई अपूर्व निश्चय और उक्त अद्भुत शक्ति निमित्त या कारणकार्य भाव मानना भ्रम है.

* बर्कले के मत में अभाव से (अनुपलंभ) यदि मानने में दोष आता है तिसके निवारणार्थ प्रबंध भाव रखा हो, ऐसा भान पडता है.

अग्नि धूम का कारणकार्य भाव संबंध प्रत्यक्ष व्याप्ति से जान पडता है; परंतु ईश्वर कारण है, इस व्याप्ति का अनुभव नहीं है; इसलिये अनुभव अगोचर अप्राकृत घटना वगेरे असिद्ध हैं जो कुछ हमारे अनुभव का विषय (याने शब्दादि गौण प्रत्यय और आकार विस्तार मुख्य प्रत्यय) सो सब हमारे मन की अवस्था (प्रत्यय) हैं. किसी प्रकार इन प्रत्ययों से बाह्य वस्तु की सत्ता (अस्तित्व) का अनुमान हो सकता है, परंतु वे प्रत्ययों के सदृश है वा असदृश है वा अन्य प्रकार के हैं, यह नहीं कहा जा सकता; § क्योंकि अनुभव से इतर प्रमाण नहीं है और अनुभव बाह्य वस्तु के ग्रहण में असमर्थ है.

"लॉक ने कहा था कि हमारे अनुभव उत्पन्न करने के लिये बाह्य जगत् विद्यमान है. वारक्ले ने जगत् की बाह्य हस्ति से इन्कार और आत्मिक द्रव्य की हस्ति का स्वीकार किया था. ह्यूम कहता है कि मनुष्य की आत्मा अपनी अवस्थाओं से पृथक् किसी वस्तु को नहीं जान सकता. जिस प्रकार बाह्य जगत् का तमाम ज्ञान, गुणों का ज्ञान मानते हो उसी प्रकार आंतरीय जगत संबध में भी हमारा सब ज्ञान अवस्थाओं का ज्ञान है. जब मैं कभी अपनी आत्मा को पकडने (जानने) का प्रयत्न करता हूं * तो मेरे हाथ में एक वा दूसरी अवस्था आती है. आत्मा द्रव्य पदार्थ नहीं जान पडता. लॉक ने प्रकृति गौण, गुणरहित, वारक्ले ने मुख्य गुण भी आत्मा के प्रत्यय (अवस्था) कह के तमाम अस्तित्व आत्माओं और उनके भावो तक सीमित कर दिया. ह्यूम ने द्रव्य के अस्तित्व से भी इन्कार कर के तमाम जगत् अवस्थाओं का ही समूह है ऐसा माना इस वाद को शून्यवाद अथवा द्रव्याभाववाद कहते हैं"†

(स.) हमारे ज्ञान में उत्पन्न और चित्र यह दो भाग हैं. उत्पन्न भाग स्पष्ट होते हैं, चित्र उनसे न्यून स्पष्ट होते हैं. उत्पन्न बाह्यों के चित्र हैं. क्या यह मानना ठीक है. (ह्यूम) बुद्धि कुछ उत्तर नहीं देती. (स.) क्या इतना तो हम कह सकते हैं कि बाहिर कुछ है. चाहे हमारे उत्पन्न उस बाहिर की नकल न हों (ह्यूम) बुद्धि इसका भी उत्तर नहीं देती. हमारे उत्पन्न एक अंतिम प्राप्त सामग्री है हमारे चित्र और प्रत्यय किसी न किसी उत्पन्न के चित्र हैं. यदि उत्पन्न का अभाव है तो इनका भी अवश्य अभाव होगा.

---

§ बौद्ध भी केवल आलय विज्ञान और प्रवृत्ति विज्ञान यह दो भाग मानते हैं और बाह्य पदार्थ अनुमान के विषय हैं, ऐसा उनमें से एक पक्ष मानता है.

* यह विचार वा वाक्य वदन वदतोव्याघात दोषवान्य और निरर्थक है.

† बौद्ध भी केवल आलय विज्ञान और प्रवृत्ति विज्ञान ऐसे विज्ञान (आत्मा) की दो धारा मानते हैं

जन्मांध पीले रंग का चित्र नही बना सकता बहेरा सुरीले शब्द का चिंतन नहीं कर सकता जो कुछ हम सीखते हैं वोह अपने उत्पन्न और चित्रों से सीखते हैं. उत्पन्न और चित्रों से आगे हमारे वास्ते सब कुछ घोर अंधकार है.

कार्य का कारण (पूर्वोक्त) द्रव्य वा शक्ति नहीं है. कोई प्रत्यय वा चित्र अपने उत्पन्न के विना नहीं होता (परीक्षा). (१) मोम अग्नि के निकट होने पर पिगलता है, दूर होता है तब उसकी अवस्था में परिवर्तन होता है (२) लोह, चंबुक के निकट होने पर खिंचता है याने चंबुक उसे खेंचता है. यहां चंबुक का. लोहे के निकट आना एक घटना है और लोहे का आकृष्ट होना दूसरी घटना है. (३) उक्त घटनायें क्रमशः होती हैं इतना अंतर है कि पहिली अवस्था प्राकृत दृश्य ‡ और और दूसरी अवस्था अमानसिक और तीसरी अवस्था मे दोनों घटना मानसिक हैं ‡ तमाम कारणकार्य में पूर्व पश्चात् का संबंध है, एक दृश्य दूसरे से पीछे आता है. शक्ति नामाकारण की कोई हस्ती नही है, न हमें शक्ति का कोई ज्ञान हो सकता है (स) जो यूं हो तो भविष्य ऐसा होगा, इस प्रकार का अनुमान न कर सकेंगे. (उ.) हमारे प्रत्येक अनुमान की नींव में यह् विश्वास होता है कि जगत का प्रवाह एक प्रकार से चल रहा है और भविष्यत भूत के समान होगा; परंतु इस नियम की सिद्धि में कोई प्रमाण नहीं मिलता, और न यह नैसर्गिक नियम है, क्योंकि मनुष्य का तमाम ज्ञान अनुभविक ही है.

(ह्यूम) जिस तरह प्रकृति ने * हमको कर्मेंद्रिय का वर्ताव सिखाया, परंतु इसके लिये पट्ठे और नाडियों का ज्ञान देना आवश्यक नही समझा; इसी प्रकार हमारी आत्मा में प्रकृति ने एक सहज बुद्धि पैदा की है जिससे भूतवत् भविष्यत् के वास्ते प्रतिज्ञा कर सकते हैं. भविष्य मे अग्नि मोम को न पिगलायेगी, इत्यादि कल्पना होना संभव है.

कारण कार्य का कोई संबंध नहीं है किंतु वे दो घटनायें है कार्य को कारण की आवश्यकता है ?, यदि क, ख का कारण है तो क, सदा ख का कारण होने से

‡ बौद्धमत में पहिली अवस्था प्रवृत्ति विज्ञान और दूसरी आलय विज्ञान और. अंतिम शून्य, ऐसा है परतु परिवर्तन होने में पूर्व पूर्व की वासना को कारण मानता है. ह्यूम ऐसा नहीं मानता

* प्रकृति को मानके उसको द्रव्य न मानके गौण मुख्य गुणों को उत्तरोत्तर अवस्था मानना हास्यास्पद है मायावाद जैसा भी न रहा.

भविष्यत भूत के समान होगा २, यह उभय नियम अनुभव से सीखते है. और ज्ञानवादी कहता है कि यह मनुष्य की आत्मा में आरंभ से ही होते है. जीव अपने भीतर ही इनका दर्शन करता है बाहिर से इनको ग्रहण नही करता. विकासवादी कहता है कि यह नियम हमारे पूर्वजो ने अनुभव से जाने थे, और अब परंपरा के प्रभाव से यह नियम हमारे स्वभाव के भाग बन गये हैं और नैसर्गिक हैं.

(६३) रीड (वि. १७६६-१८९२ स्काटलैंड. सामान्य बुद्धिवादी और यूहम का प्रतिपक्षी) चित में सशय रहित कितनेक ऐसे विश्वास है कि जिनका किसी दर्शन से निषेध नही हो सकता यथा आत्म स्थिति और बाह्य वस्तु की सत्ता रूपादि विशिष्ट प्रत्यक्ष का विषय और ज्ञाता आत्मा स्वभावसिद्ध जान पडता है प्रत्यक्ष अनुभव को अभ्यास वा सहचारजन्य भ्रम नहीं कह सकते नवीन ज्ञान, इंद्रिय और विषय के सबंध से होता है. ऐसी अवस्था में जो बाह्य विषय में और आत्मा मे विश्वास न रखे वोह दार्शिनक नहीं किंतु उन्मत्त है उचित अनुचित और इन उभय के भेद ग्रहण करने वाली शक्ति भी पारमार्थिक वस्तु है. इसलिये ससार मनोमय है और बाह्य वस्तु नहीं यह मंतव्य भ्रम है

(६४) कौंडियेक (वि १८०६-१८३६ लॉक का अनुगामी शुद्ध प्रत्यक्षवादी) इंद्रियजन्य प्रत्यक्ष ही सब (मानस चिंतन का भी) का मूल है अन्य इंद्रियो के सबध रखे विना केवल घ्राण की परीक्षा करें तो गध का ही अनुभव होगा. आत्मा अनात्मा का नहीं. गध का स्मरण और उसी की इच्छा होगी तथा दुर्गंध के जुदा होने की इच्छा होगी ऐसे अनेक धर्म उद्भव हुये और बुद्धि का आविर्भाव हुवा इम अवधान, तारतम्य, स्मरण, सुख दुःख समूह को आत्मा कहने लग गये † इसी प्रकार अन्य इंद्रियो के सबध में जान सकने हैं. जन्माध की आख दुरुस्त हो जावे तो भी चित्र के घोडे और असली घोडे में भेद उसको नहीं जान पडेगा, क्योंकि वस्तुओं का गहनत्व, कठनत्व, कोमलत्व इत्यादि स्पर्श इंद्रिय का विषय है साराश त्वचा इंद्रिय के विना बाह्य वस्तु का ज्ञान नहीं होता

(६५) काण्ट (वि १७८०-१७८६ जर्मनी) आरभ में थोडा ज्ञान है. तब प्रमाण के विना अनेक कल्पना करते है. यह कल्पना काल १, ज्यादे ज्ञान

---

† राग द्वेष, इच्छा, स्मरण ज्ञान इत्यादि गंध वा इंद्रिय के प्रत्यय नहीं. अर्थात् जीव का भान होता है और फिर जुदा पडता है

६ काण्ट, पहिले लीब्नीज और वुल्फ का अनुसारी हुवा पीछे ह्यूम का काण्ट लिखता है कि ह्यूम के ग्रथ हाथ लगे तब मेरी कल्पना की निद्रा खुली

होने पर कल्पनाओं मे विरोध पाके सशय में पडता है यह सशयकाल २, अत में अपने ज्ञान की परीक्षा याने मेरा ज्ञान कहा तक पहोच सकता है ऐसा भान हो जाता है यह परीक्षाकाळ ३

(न. ९८ ली वि. १७७२ तक कल्पना काल नं ९६ ह्यु. १८३२ सशयावस्था में हुवा अब (काण्ट से) परीक्षा काल का आरभ है).

भूत, वर्तमान, भविप्य तीनो की व्याप्ति न देखी जाय वहा तक निश्चय केसे हो सकता है

ज्ञान अर्थात क्या? ज्ञान में सबध ग्रहण जरूर होता है. सर्वकालिक और सर्वत्रक सबध ग्रहण को वास्तव ज्ञान कहते हैं मूर्त शब्द से साकार पदार्थ का भान हुवा यह वास्तव ज्ञान नहीं आज आकाश मेघ वाला है, गरमी से मूर्त पदार्थ पसरते है, इन से बोध होता हे यह ज्ञान है क्योकि इद्रिय ग्राह्य हैं गरमी कारण मूर्त द्रव्य पसरण कार्य. इन दोनो में कारणकार्य भाव बताना शुद्ध बुद्धि का काम है परतु आख त्वचा के विना यह ज्ञान नहीं होता, इसलिये सब कुछ बुद्धि से ही निकालना चाहते है यह प्रत्ययवादियो का भ्रम है इसलिये जहा ज्ञान होता है वहा कुछ अश बुद्धि का और कुछ अश इद्रियो का होता है. इद्रियो के विषयानुसार बाह्य वस्तु है, ऐसा नहीं है कोई अश इंद्रियजन्य ज्ञान में ऐसा है कि जिसका परिवर्तन ज्ञेय के आधीन होता है ओर कोई ऐसे नही किंतु सब इंद्रियजन्य ज्ञानो के लिये समान ओर चित्त के आधीन है यह देश और काळ है. मन अपने खजाने मे से निकालता है सबको ज्ञान से निकाल दें तो भी यह नहीं जाते. देश काल बाह्य वस्तु नही उनकी बाह्य प्रतीति भ्रम है. देश काल यह दो रगीन चशमे हैं, सब पदार्थ इसमे रगे हुये जान पडते है बाह्य वस्तुओ का निरपेक्ष वास्तव स्वरूप मनुष्य नहीं जान सकता, परतु हमको वे केसे मालूम होते है इतना ही अनुभव म ला सकते है.

इद्रियो से मिले हुये विषय को बुद्धि १२ वर्ग में विभाग करता है वे १२ परिमाण, गुण, सबध और प्रकार ऐसे ४ के ही भेद हैं. सब वर्गो में संबध मुख्य है.

इन वर्गो से ४ नियम निकलते है (१) बुद्धिगोचर परिणामहीन कोई वस्तु नहीं हो सकती. अतः परमाणु नहीं. (२) बुद्धि गोचर निर्गुण नहीं हो सकता अतः शून्य वस्तु नहीं (३) बु. गो कोई वस्तु असंबध नहीं हो सकती, इसलिये दैव

आकस्मिकता वगैरे नहीं. (४) बुद्धिगोचर भी वस्तु देश काल के आधीन हैं इसलिये इंद्रजाल और आश्चर्य कोई वस्तु नहीं. †

ज्ञान का तीसरा सोपान, ईश्वर–संसार और आत्मा का बुद्धि द्वारा कल्पन है. बाह्य इंद्रियों से जो देशकाल का बोध उसी के द्वारा देशकालगोचर सब विषयों को एक कर के बुद्धि उस समुदाय का नाम **संसार** रखती है. स्वयं बुद्धि के जो वर्ग हैं उनको मिला के **आत्मा** शब्द का व्यवहार किया जाता है और कारणता को लेके अंतिम कारण को **ईश्वर** कहते हैं, परंतु संसार, आत्मा और ईश्वर स्वयं क्या हैं इस विषय को बुद्धि कुछ नहीं कह सकती.

बल्फ वगैरे संसार को परिच्छिन्न, नाशवान वा अपरिच्छिन्न अविनाशी, वा संसार परमाणुजन्य वा मिश्रजन्य, संसार कारणों से नियत वा कारण की अपेक्षा विना, वा संसार में वा संसार से बाहिर सृष्टिकर्त्ता है, इत्यादि कहते वा मानते हैं यह उनका कथन मंतव्य उत्तर ध्रुव की अमर बेल जैसा है जिसके लिये कुछ नहीं कह सकते; ऐसे ईश्वरादि विषय हैं, बुद्धि से पर है, जो चाहें सो कल्पना कर सकते हैं.

(१) *संसार अनिर्वचनीय है*–जो संसार देश काल से अपरिच्छिन्न तो अनंत अंश जुड के बना है उसमें अनंत काल लगना चाहिये, परंतु वोह काल तो समाप्त हो गया तो शेष काल को अनंत कैसे कह सकोगे; इसलिये परिच्छिन्न ऐसा मानें तो देश इससे बाहिर हुवा, सो प्रत्यक्ष योग्य नहीं याने अमूर्त है. मूर्त्त अमूर्त्त का संबंध असंभव, अतः संसार परिच्छिन्न वा अपरिच्छिन्न नहीं कह सकते. * संसार परमाणुजन्य मानें तो जो वे मूर्त्त तो विभाज्य हैं जो अमूर्त्त तो उनसे मूर्त्त का आविर्भाव असंभव, अतः परमाणु मूर्त्त, न अमूर्त्त. * संसार मिश्र वस्तुओं से बना हुवा मानें तो अवयवी के अवयव होने चाहियें वे परमाणु हैं इसलिये परमाणु हैं वा नहीं यह नहीं कह सकते.

(२) जो संसार कारण से नियत तो कारणों की अनवस्था. जो आदि कारण तो पूर्व में स्वतंत्र निष्क्रिय. कुछ काल पीछे कार्य किया, ऐसा क्यों. * कार्य की शक्ति पीछे कहां से आ जाती है इसलिये आदि कारण मानना न मानना नहीं बनता. जो स्वतंत्र कारण ईश्वर संसार के अंदर तो आरंभ में होगा. आरंभ क्षणिक है तो उसके

† बुद्धि और उसके अवयव में और संबंध में अव्याप्ति आ जाती है.

* एक देशी निषेध है ईश्वर ने अभाव से की ऐसे सम्भावना यह तर्क है.

पूर्व जो कोई क्षण था तो आरंभ को आरंभ नही कह सकते और जो क्षण नही था तो यह बात असभव. जो सृष्टि से बाहिर है तो देशकाल भी सृष्टि के अन्तरगत हैं वोह देश काल अतीत होता है, इसलिये उसका देश काल से सबंध नही हो सकता और न उससे देश काल अवच्छिन्न सृष्टि हो सकती है.

(३) मै सोचता हूं इसलिये मै हूं (डे न. ५६) परंतु मै क्या? स्वतंत्र द्रव्य वा क्या? मैं सोचने वाला हूं ऐसे क्षणिक विज्ञान हुवा. इसका आश्रय कोई द्रव्य है वा नहीं यह बुद्धि से सिद्ध न हुवा. यहां तक कि विज्ञान को शुद्ध अमूर्त अणु वगेरे नहीं कह सकते.

(४) ईश्वर है, ऐसा प्रत्यय होने से ईश्वर की सिद्धि नहीं होती (एन नं. ४३ डे न ५६ का खंडन). जो कारण कार्य भाव से ईश्वर मानें–क्योंकि न मानें तो अनवस्था चलती है. इसलिये आदि कारण ईश्वर मानें–परंतु स्वयंभु, नित्य, अवक्रिय ईश्वर का कार्य और विकार के साथ केसे सबध हो सकता है. जो विकारी तो ईश्वर अनित्य होगा जो कारण मान भी लेवे तो वोह प्रकृति अव्यक्त जड स्वरूप है वा नो भक्तों का साकार परमेश्वर है. ‡ (शं.) ससार निष्फल नहीं ऐसे सफल का कोई अवश्य कर्ता है और वोह अनंत ज्ञानवान और पूर्ण विद्वान है. (उ.) यह प्रमाण सर्वथा तुच्छ और असंगत है. मनुष्य पृथ्वी के तमाम भाग को नहीं जानता, पृथ्वीगत पदार्थों के स्वभावों का मनुष्य को ज्ञान नहीं तो अप्रमेय विषयों पर तर्क करना फल के क्रमी समान है. द्रव्य अविनाशी है तो उनकी सृष्टि वा सहार ईश्वर केसे कर सकता है. वृक्ष, पर्वत, तारागणादि तमाम जगत स्वभावसिद्ध तर्कहीन देख पडते हैं तो थोडे घट पटादि के दृष्टांत मे उनको कर्ताजन्य केसे माना जावे.

इसलिये संविद्वाद, परमाणुवाद, ईश्वरवाद इत्यादि कल्पना असिद्ध हैं कान्ट का सिद्धांत=बाह्य वस्तु, उसका परमात्मा, आत्मा और इन उभय का सबंध यह सब अनिर्वचनीय है. इन सबंधो से जो स्वप्नवत् आभास होता है वही संसार है. इस ससार का परमार्थ क्या है यह नहीं कह सकते. परतु जिसे हम वस्तु और ससार समझते हैं वोह केवल बौद्ध विज्ञान रूप है. उसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है.

ज्ञान शक्ति से दर्शनकारो ने आत्मा वगेरे का प्रमाण दिया है सो, और नास्तिको का बाह्य वस्तुवाद भी (उपर कहे अनुसार) असगत है. ईश्वर की दृति-शक्ति का विश्वास ज्ञान शक्ति से सिद्ध नहीं होता.

---

‡ अर्थात् जिसे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, विभु–असीम निराकार, स्वतंत्र कहते हैं वेसा न होता प्रकृति जेसा मानना होगा

प्रकृति के नियम अटल है, उनसे उल्टा कोई कार्य नहीं होता परंतु आचार के नियम भलाई वास्ते जरूरी हैं, अटल नहीं है कर्तव्य का उल्लंघन मनुष्य कर सकता है (परंतु अनुचित है) इसलिये मनुष्य स्वतंत्र है. कृति शक्ति से स्वतंत्रता सिद्ध है, ज्ञान शक्ति से नहीं. मनुष्य जेसा करेगा वेसा फल पावेगा.

आत्मा, कृति शक्ति वाला, अप्राकृत, अपरिच्छिन्न, स्वतंत्र और अमर है

विशेष

आत्मिक जीवन के ३ विभाग हैं याने ज्ञान, क्रिया और विकार यह तीनो एक ही आत्मा के प्रकाश है लॉक ने कहा था कि मनुष्य का तमाम ज्ञान अनुभव से पेदा होता है, और अनुभव से पूर्व मनुष्य का आत्मा कोरे कागज के समान था लाइपनिट्स ने कहा था कि आत्मा अपने से बाहर कुछ नहीं जान सकता काण्ट कहता है कि उभय के मंतव्य सत्य और मिथ्या से मिश्रित हैं बुद्धिहीन पुरुष अपने संवेदनो की सहायता से भी कुछ ज्ञान नहीं रखता, अनुभववादी ने इस पर ध्यान नहीं दिया और अन्धा अपने तमाम आत्मिक प्रयत्न से भी नील पीत का वोध प्राप्त नही कर सकता, इस पर ज्ञानवादी ने ध्यान नही दिया बात यह है कि द्रव्य अथवा सामग्री बाहिर से मिलती है. परंतु उसे आकृति देने का कार्य आत्मा आप करता है ज्ञान के प्रत्येक भाग में द्रव्य और आकृति विद्यमान है. इनके संयोग से ज्ञान पेदा होता है परंतु दोनो का स्रोत एक ही है

घोडा वा गर्मी कहू तो यह कोई ज्ञान नहीं परंतु घोडा जुगाली करता है, गर्मी पदार्थों का विस्तार करती है, यह वाक्य ज्ञान है. ज्ञान संयोजक वाक्य है अनुभव की सहायता से मैं यूं कह सकता हू कि अग्नि को विस्तार करते बीसियो बार देखा है परंतु अनुभव यह नहीं बताता कि आग हमेशा ऐसा करती है (करती रहेगी) भविष्यत मेरी दृष्टि से परदे में है, भूत वर्तमान की सहायता से मैं ऐसा नहीं कह सकता कि अग्नि का स्वभाव ही ऐसा है इन नियमो (अग्निदाहक, पमारक इ) का स्रोत अनुभवमूलक ज्ञान नहीं है. यह आत्मा में विद्यमान हैं—आत्मा की बनावट ही ऐसी है कि कोइ इनमें विश्वास किये विना नहीं रह सकता, यह ज्ञान नेसर्गिक है

ज्ञान की प्रतिमा द्रव्य वा अनुभव है यह हमारी प्रत्यक्ष ग्राहकशक्ति प्रस्तुत करती है. बाहिर से आकाररहित द्रव्य मिलता है और प्रत्यक्ष ग्राहकशक्ति उसे

विशेष आकृतियें देती हैं. अनुभव में भी द्रव्य और आकृति का भेद है और आकृतियें हमारे भीतर मे आती हैं.

वे आकृतियें देश और काल हैं. प्रत्येक अनुभव जो हमारे मन में पहुंचता है सो देश काल में दीखता है. मानसिक घटनायें काल में और बाह्य पदार्थ देश में प्रतीत होते हैं. देश और काल हमारे ज्ञान के विषय नहीं परंतु हमारे अनुभवों की सामग्री को अनुभव बनाने के साधन हैं.

यदि देश काल बाहिर नहीं तो बाह्य द्रव्य की स्वतंत्र हस्ती न होगी?

विस्तार बढने और गर्मी में संबंध है और अनुभव का विषय नहीं है, मेरे मन ने अनुभवों के साथ उसे मिला दिया है. संबंध बाहिर नहीं, ज्ञान का विषय नही प्रत्युत ज्ञान होने में साधन है. मन को संबंध नाम की आकृति देता है.

इन नियमों को ज्ञान नियम कहते हैं. अरस्तु ने द्रव्यादि १० नियम बताये थे. (मूल में लिखे हैं) और काण्ट ने १२ कहे हैं. (१) परिमाण ३, गुण ३, संबंध ३ और प्रकारता ३ ऐसे १२ विशिष्ट * वाक्य ज्ञान के नियम हैं, ज्ञान होने में इनकी अपेक्षा है तद्वत् १२ मानसिक नियम हैं. तमाम अनुभव परिमाणादिरहित होते हैं; किंतु उनमें इनका मन लगा लेता है. इसी प्रकार हमारा मन ही अनुभवों

* (क) परिमाणापेक्षा (१) व्यापक=सब मनुष्य दो पैर रखते हैं वा पदार्थ अणु विभु वा मध्यम होगा (२) विशेष=कई हिंदू वकील हैं (३) व्यक्तिरूप=मैं तर्क बढाता हूं

(ख) गुणापेक्षा (१) विधिमुख=पुरुष चैतन्य है. (२) निषेधमुख=पत्थर चैतन्य नहीं है. (३) अवच्छेदक=पत्थर अचैतन्य है.

(ग) संबंधापेक्षा. (१) निरपेक्ष=कल वर्षा हुई थी. (२) अभ्युपगत=यदि वर्षा हुई तो हम दरिया की तरफ जायेंगे. विभाजक=गोपाल त्यागी है वा दंभी है.

(घ) प्रकारता की अपेक्षा. (१) संदिग्ध=सामने आने वाला शायद मेरा भाई है. (२) असंदिग्ध=यह मेरे भाई की पुस्तक नहीं है. (३) स्वयं प्रमाण=त्रिकोण की दो रेखा (वा कुने) अवश्य तीसरे से बडी होती है, ऐसे १२ वाक्य ज्ञान होने में अपेक्षित हैं

अरस्तु=हरकोई पदार्थ की बबत कहते हुये दस विशेषण बताने चाहियें वे दस यह हैं. (१) द्रव्य=देवदत्त मनुष्य (२) गुण=वोह बुद्धिमान है (३) परिमाण=वोह ६ फुट ऊंचा है. (४) संबंध=वोह कर्मचंद का पुत्र है. (५) स्थान=वोह अपने कमरे में (६) समय=वर्तमान में. (७) आसन=खडा है (८) संपत्ति=हाथ में छडी लिये हुये (९) कृति=अपने भाई को मार रहा है (१०) सहना=और गालियें खा रहा है.

तत्त्वदर्शन अध्याय २ में तत्त्व निर्णयार्थ १२९ बाबत लिखी हैं. उनमें इन १२ का समावेश होके अधिक बाबत हैं

को मिला के संदिग्ध वा असंदिग्ध वाक्य बना लेता है. इन सब नियमों में संबंध का नियम प्रधान है; क्योंकि प्रत्येक वाक्य में विषयी तथा विधेय का संबंध होता है. संबंधों में मुख्य संबंध कारण कार्य का है. तमाम सायंस की नींव इस पर है.

यह सत्य है कि विस्तार वा देश आत्मा से इतर कुछ नहीं, परंतु यह तो अनुभवों की आकृति है. इसके सिवाय हमें अनुभवों की सामग्री प्रकृति से प्राप्त होती है. सृष्टि अपने नियमों का प्रभाव हमारी आत्मा पर नहीं डालती, किंतु आत्मा अपने नियमों का प्रभाव सृष्टि पर डालता है सृष्टि में नियम का राज्य है, क्योंकि हम इस राज्य के उत्पादक हैं हमने आकृति बनाई. हमने ही इन अनुभवों में संबंध उत्पन्न कर के ज्ञान बनाया हमारा आत्मा दृश्य जगत में नियमों का राज्य स्थापित करता है. हम दृश्य जगत् के बनाने वाले हैं जीवात्मा विश्व को बनाता है, इसका सृष्टा नहीं है. सामग्री बाहिर से आती है. द्रव्य स्वतंत्र अस्तित्व रखता है जो कि वोह हमारे ज्ञान में प्रवेश नहीं करता. (कान्ट के शिष्यों की दृष्टि में द्रव्य कान्ट का द्रव्य याने प्रकृति) एक व्यर्थ पदार्थ ठेरा है .

हमारा आत्मा एक है और आत्मिक जीवन भी एक ही है भिन्न भिन्न विचारों से उसके जुदा जुदा नाम देते हैं यथा—जब यह आकृतिरहित संवेदन को अनुभवों में परिवर्तित करता है तब हम उसे प्रत्यक्ष ग्राहकशक्ति का नाम देते हैं. *जब यह अनुभवों से वाक्य बनाता है तब इसको मन कहते हैं* * अनुभवों को देख के कल्पना करता है कि प्रकृति इनका कारण है. अपनी अवस्थाओं को देख के आत्मिक द्रव्य को उनका कारण समझता है. सृष्टि की बनावट देख के परमात्मा को इसका *निमित्तकारण खयाल करता है. अपनी बनावट* ‡ के *कारण आत्मा विवश* है कि प्रकृति जीवात्मा और परमात्मा में विश्वास करे. हम इन विश्वासों के बिना रह नहीं सकते, यह हमारी आत्मिक आवश्यकता है जब आत्मा इन प्रत्ययों (प्र. आ. पर.) का *चिंतन करता है तब हम उसे बुद्धि कहते हैं.* §

बुद्धि इन (तीनों) का साक्षात (अपरोक्षज्ञान) नहीं कर सकती, यह पदार्थ अनुभवगम्य नहीं है और हमारे तमाम ज्ञान की नींव अनुभव पर है. इन (तीनों)

* कान्ट के सिद्धांत में चेतनविशिष्ट वा केवल अंतःकरण का जीवात्मा माना है, ऐसा ज्ञात पड़ता है.

‡ आत्मा को बनावटी और अमर कहना विरोध है

§ आत्मा को बुद्धि और अमर वा मन और अमर कहना विरोध है

प्रत्यय की सहायता से हम अपने ज्ञान के व्यवस्थित करते हैं, परंतु हम जान नहीं सकते कि वास्तव में इनकी तात्त्विक हस्ती है या नहीं है; * क्योंकि जो इनकी तात्त्विक हस्ती के वास्ते कहा जाता है वोह संतोषजनक नहीं है.

साराश हमारी बुद्धि प्राकृत तत्त्व को और उसके शुद्धस्वरूप को ज्ञान नहीं सकती. जब बुद्धि दृश्य जगत से परे जाना चाहती है तब परस्पर विरोधो के जाल में फस जाती है उपरोक्त गुण, परिमाण यह दो प्रतिज्ञा विस्तार और विभाग की बाबत है. वास्तविक पदार्थ को भी देश और काल की दृष्टि से देखना, ऐसी कल्पना बुद्धि ने कर ली है, यह अयथार्थ कल्पना ही इसकी ठोकर का कारण है. दृश्यो के संबंध में ही हम इनका वर्णन कर सकते है. प्रकृति को निरवयव वा अनंतावयव सिद्ध कर सकते हैं परंतु वास्तव में यह दोनो प्रतिज्ञा मिथ्या है इसी प्रकार ब्रह्मांड को ससीम वा असीम सिद्ध कर सकते हैं वस्तुतः वोह अपने वास्तविक स्वरूप में न अनंत है और न ससीम है इसकी बाबत देशकाल का वर्णन नहीं हो सकता.

उपरोक्त संबंध और प्रकारता की बाबत संभव है कि दोनो पक्षो की प्रतिज्ञायें यथार्थ हो दृश्य जगत् पर दृष्टि डालें तो कार्यकारण का नियम सर्वगत है, उसमे पर में स्वतंत्र निमित्तकारणो की संभावना है. दृश्य की सब घटना संबंधित है, परंतु उसमे जो पर वोह निरपेक्ष है, जो अपना प्रकाश दृश्य जगत् में करता हो.

निर्पेक्ष ब्रह्म संबंधो से परे है, अतः हमारे ज्ञान में नहीं आ सकता प्रमाणो से सिद्ध करने जावें तो सब में प्रतिवाद है, साराश हमारी बुद्धि परमात्मा की हस्ती को सिद्ध नहीं कर सकती.

अनुभवो में उपरोक्त गुणादि ४ नहीं है, परंतु हमारा आत्मा उनमें डालता है. ‡ सत्पदार्थ मेरे ज्ञान में नहीं आता. मैं उसे देशकाल और ज्ञान के नियम इन शीशो में से देखता हूं, मैं सृष्टि में व्यवस्था देखता हूं और व्यवस्थित सृष्टि को बनाता हू (यहा तक शुद्ध बुद्धि की समीक्षा हुई)

शुद्धबुद्धि की समीक्षा हमें संदेह में डाल देती है. बुद्धि की शक्ति संकुचित है. आत्मिक शक्तियो में बुद्धि नहीं किन्तु कृति प्रधान है. बुद्धि यह नहीं कर

---

* [illegible] अनिर्वचनीय कहना ही [illegible]

‡ [illegible] है, परंतु गुणादि [illegible] अंतःकरण में [illegible] है

सकती कि आत्मा द्रव्य, स्वतंत्र और अमर नहीं, परमात्मा का अस्तित्व नहीं. उसको इन बातों में चुप रहना पडता है और यदि बोलती है तो इतना ही कि "मैं नहीं कह सकती," संभव है कि आत्मा और परमात्मा अमर तत्त्व हों, जीवात्मा स्वतंत्र हो; परंतु कृति § कहती है कि निःसदेह आत्मा और परमात्मा नित्य हैं. मनुष्य की शक्तियों में कृति का पद बुद्धि से ऊंचा है. कृति धर्म और आचार की रक्षा करती है. बुद्धि के उत्पन्न किये हुये सशयों का नाश कर देती है.

जो इष्ट आशा के सहायक वे अच्छे और जो विरुद्ध वे बुरे; परंतु साध्य याने इच्छा उत्तम होना चाहिये. § जब मै अपना कर्तव्य, कर्तव्य समझके करता हूं तो मेरा काम धर्मके अनुसार है, अन्यथा नहीं. किसी अनाथ के रूपमें मोहित हो के वा पुत्र में राग हो के उनकी रक्षा करना लाभदायक और सुंदर कृत हो तथापि आचार शास्त्रकी दृष्टि से उनको अच्छा (वा बुरा) नहीं कह सकते. जो कुछ पवित्र आकाक्षा कहती है सो धर्म है. प्रतिज्ञा भंग, चोरी, व्यभिचार, मिथ्याभाषण अधर्म है.

जीवात्मा की स्वतंत्रता उसको उत्तरदाता बताती है. यदि सर्वथा परतंत्र है तो कर्तव्य अकर्तव्य का विचार भ्रम है और धर्म अधर्म का भेद करना मूर्खता है. जिस स्रोत से यह कर्म निकलते है वोह दृश्य नहीं, वोह सत् और स्वतंत्र है. जो उसकी स्वतंत्रता में सदेह हो तो नैतिक जीवन का अस्तित्व ही नहीं रहता

धर्म और सुख का मेल होना चाहिये. धर्म का परिणाम सुख है. कई बार ऐसा भी देखते हैं कि धर्म का जीवन दुःखी है और अधर्म फूलता फलता है. अल्प आत्मा इस विरोध को दूर नहीं कर सकते, परतु इन से अतिरिक्त एक शक्ति † (ईश्वर) है जो व्यवस्था को स्थापित करेगी, पापी को पाप का दड देगी; क्योंकि परमात्मा न्यायकारी है. जीव ईश्वर अमर ऐसा विश्वास नहीं तो धार्मिक जीवन नहीं हो सकता.

बुद्धि का काम ज्ञान प्राप्त करना है. उसका विषय दृश्य जगत और उसका नियम है. कृति का काम अतिम आदर्श की सिद्धि है, इसका विषय स्वतन्त्रता है.

---

§ किसी काम को भला बुरा कहने के लिये उसके परिणामो की तरफ ध्यान नहीं करना चाहिये (कान्ट और उसके शिष्य) मिल वगैरे कहते हैं कि इच्छामात्र काम में नहीं आती परिणामानुसार अच्छा बुरा कर्म (आचार) कहना चाहिये, यह बडी तकरार है फैसला नीयत (भावना) और परिणाम इन दोनो पर होगा, क्योंकि भावना बदलती भी है (प्रयोजक)

† पूर्वोक्त सशय से विरोध

विवेकिनी शक्ति का विषय सौंदर्य है. सौंदर्य बाह्य पदार्थों में नहीं किंतु हमारी आत्मा में है. जो कुछ मुझे भाता है वोह सुंदर है, यह शक्ति दृश्यों में अभिप्राय देखती है. शुद्धबुद्धि के लिये केवल कारणकार्य का संबंध है. सौंदर्य विवेकिनी शक्ति की दृष्टि में यह विषय एक उद्देश का प्रकाश करते हैं. सत पदार्थों तक पहुंचना कृति का काम है. (प. त.). †

(६६) फिट्च. (वि. १८१८–१८७० जर्मनी. परीक्षावादी और कल्पनावादी) उत्तम ज्ञान (विवेक) आत्मा का स्वरूप और कृति शक्ति वास्तु सत्ता है. विवेक और कृति उभय एक हैं. दृश्य संसार असत् है. सर्वव्यापी सर्वस्वरूपा कृति शक्ति का सूचक और अनुमापक यह तमाम जगत् है. कृतिविवेक सूर्य प्रकाश समान स्वप्रकाश है, इसका कारण दूसरा नही है. बुद्धि जब अहंभाव से अपने के प्रकाश करती है उस समय साथ ही साथ अहंभिन्न विषयों का उपन्यास हो जाता है. साधारण ऐसा जान पडता है कि संसार बाह्य वस्तु है; परंतु सो भ्रम है. वस्तुतः कृति शक्ति अपने को अपने से बांधती है और विषय को जुदा दिखाती है. अहं अनहं का लोप कृति शक्ति कर सकती है, क्योंकि स्वतंत्र है. ज्ञान शक्ति इसी का उपायस्वरूप है, जुदा नहीं, किंतु कृति शक्ति पर पहुंचने का ज़ीना है. परमात्मा कोई जुदी वस्तु नही है एक ही आत्मा अनेक पुरुषों के रूप में कृति शक्ति का पूर्ण प्रकाश कर रहा है.

फीट्च कहता है कि कान्ट के सिद्धांतानुसार अव्यक्त प्रकृति का कोई गुण नहीं, परिमाण नहीं, वोह किसी दृश्य का कारण नहीं किंतु गुणादि ज्ञान के नियम हैं और इस वास्ते वे सत्यपदार्थ के गुण नहीं हो सकते. एवं प्रकृति अभाव के बराबर है. कान्ट ने इसे हमारे सवेदनों का कारण भी कहा है. अर्थात् अपने मुख्य सिद्धांत का विरोध किया है जिसके अनुसार सत्यपदार्थ को कारण वर्णन करना अनुचित शब्द बोलना है. (फीट्च)–मेरा आत्मा जगत् को बनाता ही नहीं, किंतु जगत् का उत्पादक भी है. मेरे आत्मा के विना कुछ है ही नहीं. मेरे आत्मा का तत्त्व कृति है और कृति ही समग्र अस्तित्व है मेरा आत्मा अपने ज्ञान के विषय (ज्ञेय) का

† कान्ट के मन्तव्य की बुनियाद भावना पर है. क्योंकि मुख्य विद्या की पदवी आचारशास्त्र को देता है और कृति की नींव पर विश्वास और धर्म को स्थापित करता है. वोह शुद्धबुद्धि, कृत्यबुद्धि और नियामकबुद्धि की समीक्षा करता है. भावना बुद्धि का विश्वास से ठोकर खा जाता है और उठने देर नहीं लगती, इसलिये कान्ट के द्वैतवाद का खंडन होने लगा (प. त.)

ज्ञाता द्रष्टा होनेसे उसे उत्पन्न करता है और जानता है; क्योंकि यह काम करता है. हमें प्रतीत होता है कि हमारे आत्मा से पृथक् भी कुछ है सो भ्रम है. हमारे आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है कि यह अपने ज्ञान वा विचार में अनात्मा को उत्पन्न करके उसे अपने से पृथक् समझता है. प्रत्येक विचार में अहं और अन्हम (अनह) को स्थापित करता है. उभय का संबध नियत करता है. अहं, अन्हम (अनहम्) का ज्ञान नहीं, प्रत्युत उभय के संबध का नाम है अह अपनी वृद्धि में जो अन्हम (अनहं) उत्पन्न करता है उसमें बहुत से अन्यात्मा भी होते हैं, इसलिये मनुष्य की उन्नति समाजमें ही होती है. + अह अन्हम का द्वैत भासना एक भ्रम है. ज्ञानकी सहायता से हम इस (भ्रम)से मुक्त नहीं हो सकते, किंतु कृति हमे इस भ्रम से मुक्त करती है, अतः कृति शक्ति ही आत्मिक शक्तियो में मुख्य शक्ति है परमात्मा पुरुष रूप नही, वोह धर्म से पृथक कोई द्रव्य नहीं. धर्म और आचार एक ही हैं. जो कर्म करते हुये अपने कर्तव्य का ध्यान करता है वोह आस्तिक है और जो कर्म करते हुये अपने सुख का ध्यान करता है वोह नास्तिक है. फीट्‌चे का अहवाद था

परतु पीछे उसके शिक्षण में ब्रह्मसाक्षात्कारवाद था. वोह परमात्मा को एक पुरुष, चिंतन करता है और कहता है कि धर्म का तत्त्व परमात्मा में लीन हो जाता है †

(६७) शेलिंग. (नि. १८३१–१९१० फीट्‌च का शिष्य) संसार को स्वयंभू आत्मा की स्वाभाविक सृष्टि मानना सदोष है (नं ६६ का खंडन) जो आत्मा के अज्ञान में संसार अद्भुत होता है तो आत्मा अज्ञ याने आत्मा ही नहीं. जिसे अहं-ज्ञान है वही तो आत्मा है आत्मा अनात्मा परस्पर के आधीन है इसलिये उभय स्वयंभू स्वतंत्र नहीं किंतु जो स्वयंभू स्वतंत्र है तो इन उभय से भिन्न है. वहा न अह और न अनह. न आत्मा से अनात्मा (सविद्यादि) और न अनात्मा से आत्मा (नास्तिक) हुवा है. इन उभय का मूल उभय से जुदा है. यह उभय उसकी सांसारिक सृष्टि है. आत्मा अनात्मा को ज्ञान नहीं है ज्ञाता ज्ञेय में विरोध नहीं है. दोनो एक ही से उद्‌भुत हैं (उद्भव होते हैं) प्रकृति आत्मा की ही छाया है. जैसे आत्मा चलता है वैसे प्रकृति चलती है.

\+ एक को जगत् उत्पादक कहना उसमें इच्छा का अभाव बताना और फेर उन्नति पसन्द लेना समीचीन नहीं जान पड़ता

† अद्वैत कह के जगत् की व्यवस्था (धर्म, आचार, व्यवहार) बताना यह शंकराचार्य के ही भाग में आया है

तमाम ससार मे आत्मशक्ति व्याप्त है, निर्जीव कोई वस्तु नही है. जड से वनस्पति, इससे प्राणी का आविर्भाव होता है. मगज उस व्यापक जीव शक्ति का उदाहरण है चुबक, विजली और सवदन यह तीनो शक्ति, जीव शक्ति के स्वरूप विशेष हैं

सवेदन, प्रत्यक्ष और चिंतन यह बुद्धि के कार्य है प्रयत्न अवस्था मे इसी का नाम कृति शक्ति है. उपन्यास, विरोध और समवेश यह बुद्धि के कार्य है (१) देव उपन्यास=पहिले सब देवाधीन थे, आप कुछ नही करते थे, जगलो मे रहते थे (२) विरोधावस्था=कृति शक्ति से देवो को दवाना इस अवस्था का आरभ रोमन लोगो ने किया अभी तक है (३) समावेश=भविष्य में देव और पौरुषय का समावेश होने वाला है. यथेच्छा प्रकृति की गति होगी †

ज्ञान विज्ञान द्वारा ब्रह्म तक पहुचे तो भी अह अनह, ज्ञाता ज्ञेय का भेद रहता है आनदमय कोश में न पहुचे वहा तक मुक्ति नहीं होती प्रकृति में जहा कारीगरी से सुदरता हो उसी के ग्रहण में आनद और ज्ञाता ज्ञेय का भेद हो जाता है

अह (आत्मा) और अनह (अनात्मा) का स्रोत एक ही है इन दोनो की वृद्धि एक ही नियमानुसार होती है प्रत्येक विचार मे प्रतिज्ञा, प्रति प्रतिज्ञा और सयोग यह ३ अग होते है. दृश्य जगत् विचार का ही चिंह है, इसलिये उसमें यह तीनो अग हैं १ में प्रकृति स्थूलता (तम) २ म कृति का प्रकाश (रज) ३ में अव्यक्तत्व आत्मा की अवस्था में भी यह तीनो पद है मनुष्य को सामाजिक उन्नति में भी यह तीनो पद देखे जा सकते है

ज्ञान से कृति का पद उचा है, परतु कृति भी ब्रह्म के साक्षात् कराने में असमर्थ है सौंदर्य बुद्धि, ज्ञान कर्म अवस्था वाले–द्वैत का नाश कर देती है. सौंदर्य, धर्म और विवेक एक ही है तर्क मे हम परमात्मा का चितन कर सकते है. सौंदर्य ब्रह्म का साक्षात्कार कराता है

शैलिंग ने अपने सिद्धातो को कई वार वदला, इसलिये उसको शिक्षा में विरोध है. अपने तर्क की अतिम आवृति म ब्रह्म को पुरुष वताता है ब्रह्म अपने विकार में आकर पुरुषत्व धारण करता है. पदार्थ बनने की चेष्टा की, इस चेष्टा के पूर्व वोह चेतन न था इ (प त)

† आय प्रश्न में तम, रज और सत्व यह ३ क्रम हैं शा ति रा ज अभी आन वाला है

यह फिलेसोफर श्री अंत में बायबल के सगुण त्रिमूर्त्तिरूप ईश्वर के विश्वासी हो गये. (यूरोपीय दर्शन).

(६८) हेगळ. (वि. १८२६–१८८७ जर्मनी) फि नं ६६ से और नं. ६७ अनुसार मानें तो या तो आत्मा अस्वतंत्र या तो आत्मा अनात्मा से भिन्न उदासीन (अनुपयोगी) ठेरता है; इसलिये आत्मा अनात्मा उभय से बाहिर ब्रह्म नहीं है. क्रिया, ज्ञान और जीवन वगेरे जिस शक्ति के रूप विशेष हैं वही शक्ति ब्रह्म है. (इसके मुख्य सिद्धांत का आगे स्पष्टीकरण है)

बुद्धि और प्रकृति की नियामक विवेकशक्ति है, इस विवेक के जो विशेषरूप हैं वेही अंतर और बाह्य पदार्थ हैं मनुष्य के चित्त में जिस क्रम से विवेक के विशेषरूपों का उद्भव होता है वही क्रम सृष्टि के उद्भव का है. जब यूं है तो ब्रह्म सृष्टि वगेरे विषय मनुष्य के अविषय हैं, ऐसा जो कान्ट ने कहा है वोह असंगत है. मनसैव वेदमाप्तव्यं (मन से ही जाना जाता है) यह लोगकथन ठीक है; इसलिये विवेकशक्ति के एक स्वरूप से दूसरा स्वरूप कैसे निकलता है, इसका विचार करना ही दर्शन का काम है. दर्शनकार इस रीति को आंतर तर्क (अध्यारोप) कहते हैं, इसमें सत्ता शास्त्र और मन शास्त्र दोनों एक हो जाते हैं; क्योंकि मानसशक्ति से स्वरूपों का आविर्भाव उसी क्रम से होता है जैसा कि बाह्य वस्तुओं का आविर्भाव है.

सब से पहिले चित्त में सत (कुछ है) का ज्ञान होता है. उसी (सत) के भेद और सब पदार्थ हैं इस सत में द्वैत छिपा हुवा है; क्योंकि अपरिच्छिन्न सत्ता असत के बराबर है * वोह कुछ कैसा है यह ज्ञान जब तक न हो तब तक उस सत में और असत में कुछ भेद नहीं है. अब यह सत्ता सदसद उभयरूप हुई. इस उभय विरोधो का समावेश बाद में होता है अर्थात् संसार में जितने भावरूप पदार्थ हैं वे इस सदसद के रूप हैं, और हो जाते हैं उनका तीसरी वस्तु में समावेश होता जाता है, इस प्रकार अंत में सब का समावेश चित्तस्वरूप स्वतंत्र परब्रह्म में होता है. दर्शनकारों को विरोध (विरुद्ध धर्माश्रय) से नहीं डरना चाहिये; क्योंकि यह संसार विरुद्ध गुणमय है. प्रभा का ज्ञान तम के और तम का ज्ञान प्रभा के आधीन है.

---

* हम नहीं मानते तो क्या वोह असत् हो सका [illegible] परिच्छिन्न सत्ता [illegible] होवें क्या ऐसी व्याप्ति मिलती है? [illegible] सत्ता [illegible] के [illegible] भेद कर सकते हैं न. ६१

सत् असद् मिल के परिच्छिन्न सत्ता होती है यह परिच्छिन्न भाव असख्य और अनत है. व्यक्ति यह वस्तुतः अपरिच्छिन्न का परिच्छिन्नरूप से आविर्भाव है इस प्रकार **सत्ता जो शुद्ध गुण है वोह परिच्छिन्न व्यक्ति मे होकर परिमाणस्वरूप हो गई**

यही परिमाण द्रव्य का मूल है सत् अव्यक्त है द्रव्य उसी का विकसित रूप है द्रव्यो के स्वरूपो में परस्पर सबध है, इसलिये द्वन्द्व रूप मे द्रव्यो का विकास हुवा द्रव्य और दृश्य, शक्ति और प्रकाश, तन्मात्रा और आकार, मूल और गुण, कारण और कार्य यह सब द्रव्य के स्वरूप है. द्रव्य गुण दोनो सहचारी है, वस्तुत एक ही स्वरूप है, वोह निकालें तो यह कुछ और यह निकालें तो वोह कुछ शेष नही रहता. उक्त द्वद्व के समूह का नाम **प्रकृति** (क्रियाशक्ति सृष्टिशक्ति) है इसमें से सब उत्पन्न और इसी मे सब लीन होते है ऐसा प्रवाह है शाति, स्थिरता, कूटस्थता और उदासीनता भ्रम मात्र है निष्क्रिय कोई पदार्थ नहीं है जो सत् है सो सक्रिय है + जो सक्रिय है वोह सत् है, इसलिये ससार से इतर ईश्वर, मानसशक्ति से इतर आत्मा और गुणो से अतिरिक्त द्रव्य नहीं मानना चाहिये धर्म वालो का उदासीन ईश्वर, तारको का आत्मा और विज्ञानवाद (मायस) का द्रव्य सर्वथा भ्रममूलक है कारणकार्य का भेद नहीं है, एक है मत कार्यवाद सिद्धात है ब्रह्म कारणरूप है वा कार्यरूप है, ऐसा विचार करना व्यर्थ है ब्रह्म उभय (कारण कार्य) रूप है एक सत्ता शक्ति सब से पहिले सर्वशक्ति विशिष्ट थी जिसमे अल्प शक्ति विशिष्ट सब ससार हुवा है, यह समझना भ्रम है, क्योकि शक्ति तो एक है †

जिसमें कारण कार्य सब एक है ऐसा समष्टि दो स्वरूपो मे विभक्त है १. अतर समष्टि २. बाह्य समष्टि अतर सृष्टि के कार्य १ जाति का लगाना २. जाति व्यक्ति का एक रूप करके ग्रहण करना, ३ उभय का भेद ग्रहण, ४ बाह्य आकार धारण करना (जैसा नक्शा मन मे कल्पा वैसा मकान बना) इस प्रकार सपूर्ण सृष्टि अतर समष्टि का अवतार है या बाह्य आविर्भाव है.

सामान्य (गो), विशेष (अमुक प्राणी), दोनो की एकता व्यक्ति है अतर प्रत्यय का धर्म है मूर्त्त रूप होना वैसे मूर्त्त वस्तु का धर्म है प्रत्यय रूप मे चित्त में आना यह उभय भेद स्वतंत्र सत्ता मे नहीं रहने याने अपरिच्छिन्न रूप हो जाने है आत्म बोध आत्मारामपना यहा ही मिल जाता है

+ अपरि[illegible] उत्सत्र से विरोध

† [illegible] एक [illegible] विरुद्ध [illegible] यह भ्रम नहा ? [illegible]

जेसे उपर अनुसार सत असत की एकता है वेसे बाह्य समष्टि में आकाश है. सब उसमें हैं, इसलिये वोह सत् है; परंतु उसका कोई गुण नहीं जान पडता, इसलिये उसे शून्य–असत् कहते हैं. यही सदसद् गति का मूल है. इस गति से सूर्य चन्द्रादि का अविर्भाव हुवा. **आकर्षण शक्ति** इस गति का स्वरूप है. इस आकर्षण से संसार परस्पर संबद्ध है. अपरिच्छिन्न द्रव्य से परिच्छिन्न सूर्यादि हुये. गुरुत्वाकर्षण सिवाय तारों विषे परस्पर कोई संबंध नहीं है. गुरुत्व परिमाण के भेद के पीछे द्रव्यों में गुण भेद पेदा होता है. द्रव्यों में परस्पर संयोग, विभाग, स्नेह, विरोधादि होने से **प्रभा** (प्रकाश) * उष्णता (गरमी) विजली शक्ति वगेरे गुण उद्भव होते हैं. आकर्षण से तो बाह्य परिवर्तन होता था अब गुण भेद होने से द्रव्य का अंतरंग परिवर्तन होने लगा. यथा औक्षिजन और हइड्रोजन के संबंध मे सर्वथा जुदा गुण का जल पेदा होता है.

उस अंतर संबंध का दूसरा स्वरूप जीवन शक्ति है. जो संबंध पहिले आकर्षण रूप मे प्रकाशित हुवा था वही रसों में आन के आंतर संमेलन (अंदर मिलना) शक्ति हुवा, वही प्राणियों में प्राणशक्ति है, पृथ्वी शक्ति से वृक्ष अंकुर, उससे अन्न, इसके द्वारा वही सर्वव्यापक शक्ति प्राणियों में आ जाती है. यही प्राण शक्ति छोटे प्राणी के रूप में होके क्रमशः शक्ति कीट, मत्स, सरी, सर्प, जरायुज वगेरे परंपरा से अंत में मनुष्य रूप मे प्रकट होती है. मनुष्य शरीर सब मे उत्तम है. यहां मे **अध्यात्मिक सृष्टि** चलती है.

स्वतंत्रता और ज्ञान मनुष्य के दे। धर्म हैं. पहिले जंगली अवस्था में ज्ञान अपूर्ण और हरेक अपनी स्वतंत्रता चाहते थे. पीछे शनैः शनैः दूसरे की स्वतंत्रता का भी ध्यान आने लगा. सामाजिक जीवन का आरंभ हुवा. काम क्रोधादि का दमन, ज्ञान, नीति, न्याय, चलने लगा. गृहस्थ यह समाज और राज्य के मंगल का मूल है. कुटुंब के जीवन पीछे बडे कुटुंब याने राज्य का आरंभ हुवा है, उसमें सब की भलाई का उद्देश होता है.

परंतु कुटुंब, समाज वा राज्य की उन्नति मे अंतिम उद्देश और पूर्ण शांति नहीं होती. कला, विज्ञान और धर्म से शांति होती है कुटुंबादि उसके साधन हैं. इसलिये कुटुंबादि की रक्षा करते हुये कलादि पुरुषार्थ मे सिद्ध करना चाहिये. उसमे

* इसमे तमकी व्यवस्था नहीं होती.

अपने में आके सौंदर्य, ईश्वर और सत्य (सचिदानंदमय ईश्वर) में मिल के आत्माराम होता है और परम सुखी और स्वतंत्र हो जाता है.

स्वतंत्रता का पहिला जीना (सीढी) कला है. कला के आनन्द के रस को कवि जानते है. इस पीछे धर्म का उद्भव होता है. कला ने (मनोहर काव्य ने) जो सर्व व्यापक ईश्वर की छाया दिखाई थी वोह अब कुछ स्पष्ट भासने लगती है. ईश्वर संसार से उपर, ऐसा भान होने लगता है. बधनो करके ऽ उसको प्राप्त नहीं हो सकते. परंतु धर्म से जल्दी ज्ञान का आविर्भाव होता है. जिसकी छाया, कला और धर्म ने दिखाई थी वोह साक्षात, ज्ञान अवस्था में आ जाता है. ज्ञाता ज्ञेय वगेरे सब भेद नष्ट हो जाते है. और जीव, देव भाव को प्राप्त हो जाता है. इस अवस्था में व्यक्ति समाज और राज सब ही ज्ञानमय देख पडते है ज्ञान ही केवल सब स्वरूप को धारण करता है, ऐसा जान पडता है. सब भेद स्पष्ट हो जाते है परतंत्रता निकल जाती है.

आगे उपरोक्त कला वगेरे का बयान करता है. उसका सार यह है— मूर्त्त द्रव्य को चित्त अनुसार बनानेवाली कला (कारीगरी मंदिर वगेरे) फेर मूर्ति, फेर मूर्ति की छवी फेर उसमे स्वतंत्र ज्ञान न होने से शब्द ब्रह्म याने निराकार नाद बिंदु उससे मनोहर कविता इस प्रकार होने से मूर्त्त अमूर्त्त का भेदभाव नष्ट हो जाता है. मूर्तिपूजा, कला और धर्म के दरमियान है. धर्म का सार साकारवाद है. किसी धर्म में भी द्वैत नहीं जा सकता. आरंभ में ईश्वर देव मुख्य माना गया पीछे ग्रीस में मनुष्य मुख्य माना गया पीछे प्रभावशाली मनुष्य अवतार माने गये. खिस्ती धर्म इसी अवस्था में पडा हुवा है. इन अपूर्ण श्रेणियों से आगे उत्तम ज्ञान है. *

जब हेगल ने अपने तर्क के व्याख्यान जर्मनी में देने शुरू किये तब कई उसे देवता कहते थे, क्योंकि वैसी बुद्धि मनुष्य की नहीं मानते थे. एक लेखक लिखता है कि "उस समय नेपोलीयन और हेगल दो सिंह थे जो एक ही वर्ष में पेदा हुये. हेगल अधिक भयानक और बलवान था" दूसरी तरफ ऐसा मंडल भी था कि जिसकी श्रद्धा उसके तर्क में नहीं थी. शोपनहार हेगल के वास्ते लिखता है कि हेगल अति

---

* हेगल का आंतरीय उद्देश देशोन्नति-सामाजिक प्रवृत्ति है उसको स्पष्ट रूप में वर्णन करता है परमार्थ की पाशनी देता है.

* इतिहास कर्त्ता — युरोप में दर्शन सम्राट हेगल पर पूर्ण और स्वतंत्र विचार का दर्शनकार पहिले न हुवा और न अब होगा. इसके अनुगामी जर्मन और इंगलेंड में हुये और थोडा वगेरे पुरुष दूसरे देशों में है.

साधारण घृणित और मूढ पुरुष था, जिसने अद्वितीय धृष्टता से निकम्मे (युक्तिहीन) विचार मिला के एक नया सप्रदाय खडा किया है. उसके चेलो ने उसकी प्रशसा की है और मूर्खों ने उसका तर्क स्वीकारा है भविष्य में आनेवाले लोग उसके विचारों पर हसेंगे, हमारे पडोसी अब भी हमारे उपर हस रहे हैं. हेगल के विचार बुरे, अयोग्य, निरर्थक और वस्तुतः प्रकृति (जड) की तरफ ले जाने वाले हैं इ." †

हेगल क्या कहता है, यह जानना सहेज नहीं है मरने के पूर्व हेगल ने कहा कि मेरे तर्क को और मुझको मेरे शिष्यो में से एकने समझा है ‡ और उसने भी नहीं समझा है ऐसी दशा में उसे कोई नास्तिक वा आस्तिक समझे उसमें क्या आश्चर्य? प्रत्युत ईसाई और बोद्द भी एक विशेप ईसाई (ख्रिस्ती) सप्रदाय का

फीट्च ने निरपेक्ष (असग) सबद्ध वस्तुओ में एक (अह) माना. शिलंग ने अह अनह से जुदा होना कहा और निरपेक्ष का ज्ञान असभव, यही त्रुटि कान्ट के तर्क में थी. हेगल का मुख्य सिद्धात यह है कि निरपेक्ष तत्त्व अपने प्रकाश में विद्यमान है और सर्वथा हमारे ज्ञान का विषय है (अगम्य नहीं है), क्योंकि वोह स्वयक्रिया और जीवन ही है बाह्यातर का जीवन बुद्धि का प्रकाश है, अतः यह है कि बाह्य जगत में यह बुद्धि अचेतन है और हमारे आत्मा में चेतन है, एक प्रकाश, विकास की एक अवस्था का है. और दूसरा दूसरी का है धातु, मूल और जीव का नाश नहीं होता. मूल, जीवो की उत्पत्ति के पीछे भी रहते हैं. पशु मनुष्य की उत्पत्ति के पीछे भी रहते है

न्याय और तर्क एक ही हैं कान्ट का यह कथन कि ज्ञान नियम, द्रव्य को आकृति देने वाले वा साचे हैं. परतु यह यथार्थ नहीं है वास्तव में यह नियम बुद्धि के अग हैं. इन नियमो के मिलाप से ही ज्ञान बनता है यह प्रत्यय जो जगत को बनाते हैं वे साग तमाम के भागो से मिले हुये हैं उसमें से यदि एक को जुदा करें तो उसका अस्तित्व पूर्ववत न रहेगा जो एक प्रत्यय छे तो व्यापक के + कारण उसमें विरोध जान पडेगा

---

† आत्यक प्रहतिवाद उस मत है अब यह तो नाम मात्र है. मन चेतन की मिट्टी खराब की है

‡ अत में अद्वैत में अवदा हो जाय और धाम निर्भ्रात हो कर प्रकृति का तरफ झुके

+ मैन पीत रग को पीले पदार्थ से कभी जुदा नहीं देखा परतु मैं अपन ध्यान में उसे दूसरे गुणों से पृथक कर सकता हू

निरपेक्ष (ब्रह्म) जब अपना प्रकाश दृश्यजगत में (उसरूप) करता है तब उसकी प्रथमावस्था प्रकृति है जिस में भेद नही होता, उसमें गुरुत्व § होता है और शक्ति (असग की शक्ति) आकर्षण का रूप रखती है. इसका विकास हो तब प्रकृति में भेद होते है. यह परिवर्तन पदार्थों की आतरिय अवस्था को परिवर्तित कर देता है. इस मे उच्चदशा (विकास) वनस्पति की, उससे पशुओ की, उससे उच्च मनुष्यो की है. मनुष्य का शरीर प्रत्ययों के विकास में अतिम पद है. परंतु प्रत्यय इससे आगे बढते है और अपने आपको जीव आत्मा के स्वरूप में प्रकाशित करते है.[1]

जितने जीवात्मा जगत मे है वे सब निरपेक्ष प्रत्यय के नाना रूप है, निरपेक्ष अपनी सिद्धि के लिये इन रूपों को धारण करता है.[2] जीवात्मा निरपेक्ष के जल तरगवत नाना आकार है. वास्तविक अस्तित्व उस निरपेक्ष का ही है. ब्रह्माड का इतिहास उस निरपेक्ष का जीवन चरित्र है, जो वोह आप लिख रहा है. अच्छे बुरे का भेद वास्तव में कोई हस्ती नहीं रखता. जब तक हम भ्रम में है[3] तब तक हम ऐसे मिथ्या विश्वासों में ग्रस्त होते हैं.

प्रत्यय के इस (जीव) भाग में भी अनेक पद हैं (१) विषय भोग (२) दूसरे के हक–अधिकार का स्वीकार विवाह, राज्य वगैरे. विवाह का उद्देश परिवार, समाज राज्य की वृद्धि. अन्यथा विषयभोग. राज्य में भी विकास है. यथा राजासत्ताक, प्रजासत्ताक, उभयसत्ताक

इससे आगे भी विकास चलता है. मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र होना चाहती है और यह स्वतंत्रता ललितकला (सौधनिर्माण, चित्रकारी, सगीत, कविता), धर्म और तर्क से मिल सकती है. ललितकला के सामने हम अपने को भूल जाते है और एक सीमा तक ब्रह्म में लीन हो जाते है धर्म में जीव और ब्रह्म का भेद

§ गुरुत्व वगैरे कहां से आये कैसे हुये? पूर्व में थे तो प्रकाश क्या? समूहात्मक ब्रह्म रूप प्रकृति मानना होगा अभाव से भाव रूप हुये तो व्याप्ति नही मिलती. इससे अच्छी तो यह कल्पना है कि ब्रह्म सर्व शक्तिमान है उसने कोई जगत अभाव में से बनाये अर्थात् हेगल के मत में जो विरुद्ध धर्माश्रय दोष आता है सो नहीं आवेगा एक वस्तु मानके उसके नाना रूप, नाना परिणाम और उसका विकासक्रम मानना यह विचारशीलों को हांसी दिलाता है

१ जड विकासवादियों का जड जन्य जीवात्मा २ ब्रह्म में इतर कहां से आता कहां. स्वसिद्ध अर्थ रूपांतर होना ऐसा मानना क्या पृष्ठ पिष्टपेषण नहीं? ३. यह भ्रम भी असग का प्रत्यय तो फेर भ्रम क्या? शंकराचार्य की कल्पना से मिलने जाता है परंतु नहीं मिल सकता हेगल का मत श्रुति तर्क के सामने नहीं ठेर सकता (आगे बांचेंगे).

रहता है, इन दोनों से तर्क की पदवी उची है. निरपेक्ष विकास (प्रकाश) वाद में अंतिम पद तार्किक बुद्धि का है जो अपने आप को साक्षात जानती है. ४ हेगल का सिद्धांत चिद्वाद कहाता है.

(१९) सोपेन हावर (वि. १८४१-१८८७ जर्मनी. कान्ट और भारतदर्शन का अनुगामी हेगल के मत का दोष दर्शक और विरोधी. कान्ट का प्रशंसक).

संसार स्वतंत्र है, हमारी इच्छा और ज्ञान के आधीन नहीं है. जो हमारी इंद्रिय की दूसरी रचना होती तो संसार दूसरे प्रकार का ज्ञान पडता. तथापि अनुभव रूप द्रव्य संसार ही हमारे आधीन है. इस अनुभव का प्रयोजक पारमार्थिक वस्तु हमारे चित्त के आधीन नहीं है. कान्ट ने इसको ज्ञान का अविषय और कार्य कारण भावादि संबंध से बाह्य माना है, इसलिये उसका मानना न मानना समान है. कान्ट के मत से प्रमाता के सिवाय और कुछ नहीं है, ऐसा माना जायगा. बाह्य वस्तु हैं परंतु वे केसी हैं इतना मात्र हम नहीं कह सकते; परंतु जो विचार किया जाय तो संभव है कि हमारा अनुभव बाह्य वस्तुओं का प्रतिबिंब हो; क्योंकि प्रयोज्य और प्रयोजक (बाह्य वस्तु) सर्वथा विरुद्ध दृश्य हों, यह असंभव है. प्रमाता स्वयं प्रमेय भी है. जेसे अनुभव प्रयोजक अन्य वस्तु हैं वेसे प्रमाता भी एक है. इससे कान्ट के अनुसार जो प्रमाता प्रमेय का भेद था वोह निकल गया सारांश जेसे मैं अपने ज्ञान प्रयोजक अर्थात एक प्रमेय हूं वेसे ही मेरे दूसरे भी प्रमेय होंगे. §

प्रमाता ‡ का पारमार्थिक स्वरूप क्या? यह जाना जाय तो प्रमाता प्रमेय के स्वभाव का निश्चय हो सकेगा डे. नं. ५६. स्पा न. ५७. ली. नं. ५८. व. ६१ और हे. नं ६८ वगेरे संविद्वादि हैं उनके अनुसार ज्ञान यह आत्मा का स्वभाव है, इसलिये लिबनिज, हेगल वगेरे ने सब वस्तुओं में ज्ञान माना है; परंतु यह अनुभव से विरुद्ध है. शरीर में कितने कार्य होते हैं उनका ज्ञान नहीं होता. जड चेतन का भेद प्रसिद्ध है. जड में ज्ञान नहीं होता.

केवल इच्छा सब में है. जड परमाणु दूसरे परमाणु की तरफ प्रवृत्ति करते हैं (यही जगत की गति का कारण है). ज्ञान पूर्वक जो इच्छा उसका भारी बल है.

---

४. उपनिषदों में यह विचार है.

§ वेदांत की छाया.

‡ जीव.

जेसे श्वास रोक के मर जाना, सती होना. विना ज्ञान भी इच्छा होती है, जेसे आंख का उघडना बंद होना उभय में इच्छात्व धर्म समान है. इसी इच्छा से स्वप्न होता है. इच्छा नहीं थकती. शरीर इच्छा का फल है. यथा इच्छा शरीर में परिवर्तन होता है–टक्कर मारने की इच्छा से सींग निकले हैं–श्वास लेने की इच्छा से फेफरे बने हैं–शिकारी जानवरों के चंगुल बनते हैं. इत्यादि उदाहरणों से इच्छा शक्ति (विलपावर) देख पडती है. जहां इच्छा के अनुसार कार्य न हो वहां इच्छा, बुद्धि से काम लेती है. इच्छा जड और जानवरों में भी है–बीज सीधा उंधा डालो, परंतु तरावट चाहने वाले तंतु नीचे को और अग्र भाग रोशनी चाहता है सो उपर को आवेगा. लता आश्रय को ढूंढती है. बुद्धि वाले की इच्छा शक्ति का नियत रूप नहीं है. सिंह हमेशे हिंसक, मृग हमेशे अहिंसक, मनुष्य कहीं हिंसक कहीं अहिंसक–याने इसकी इच्छा शक्ति अनियत है. चंबुक की सुई उत्तर की तरफ रहती है, गरमी से द्रव्य पसरता है, इत्यादि. जेसे जड की प्रवृत्ति वेसे मनुष्य के चित्त की प्रवृत्ति के भी नियम कुछ निकले हैं और निकल सकते हैं.

इसलिये इच्छा सर्वव्यापक है, सबकी स्थिति का मूल है, यह अचेतन शक्ति है, इससे देश कालादि सब वस्तु बनी हैं, यह देश काल से परिच्छिन्न नहीं है, न उनसे संबंध है, यह प्रमेय भी नहीं है. प्लेटो (१८) के मत अनुसार सामान्य प्रत्यय (जाति) देश काल से अपरिच्छिन्न हैं.

इच्छा कृति संसार का मूल है, जहां तक इच्छा (रजोगुण) वहां तक संसार है. जेसे ज्ञान सत्ता शाश्वत है वेसे काम (इच्छा) भी है इसलिये आत्मघात करने वा मरने पर भी संसार नहीं छूटता. अन्य जन्मों में पीडा देगा. तवारीखों में लूटमार असत भरा हुवा है श्रम, नियम, और प्रेम जो कि मानव धर्म हैं वे अहंकारमूलक हैं. करुणा, वात्सल्य (अहिंसा) यह असली धर्म हैं और सब धर्म स्वार्थमूलक हैं. इस संसार में सुख नहीं है न्यून दुःख को सुख मान लेते हैं इसलिये सर्वथा दुःख न हो. इसका उपाय कर्तव्य है ज्ञान द्वारा जब जीवन; और जीवन सुख तुच्छ जान पडते हैं और इच्छा (वासना) आप ही अपने को नष्ट करने लगती है और जीवन सुख तथा जीवन भोग से संन्यास लेती है तब जीव की पवित्रता हुये उद्धार और निर्वाण होता है.

कान्ट ने कहा था कि दृश्य जगत का द्रव्य प्राकृत पदार्थ से आता है और आकृति उसे आत्मा देता है. फीट्च ने आत्मा को सृष्टि का स्रष्टा कहा और कहा था

कि दृश्य जगत के आकृति के साथ द्रव्य भी देता है. शिलंग ने द्रष्टा और अहं के बीच में निरपेक्ष की शिक्षा दी. हेगल ने इन दोनों सिद्धांतों के मिला के यह कहा कि निरपेक्ष और द्रष्टा एक ही है, निरपेक्ष प्रत्यय अपने विकास में तमाम ब्रह्मांड के प्रगट करता है. शोपनहार कहता है कि सृष्टि का उत्पादक नियम द्रष्टा या प्रत्यय मे भी गहेरा है, यह कान्ट का मत है. यह कृति है जिसमें प्रत्येक पदार्थ की चेष्टा या शक्ति मिली हुई हैं. प्रकृति की आकर्षण शक्ति और पुरुषों की इच्छायें इसी के प्रकाश हैं. जड में अन्य रूप मे जीवित अचेतन्य में अन्य रूप मे अपना प्रकाश करती है.

जगत वोह है जे हमें भासता है. किसी द्रष्टाकी आत्मिक शक्ति कुछ भी हो परंतु उसका जगत उन पदार्थों का समूह है कि जे उसके ज्ञान में हैं. तर्क में अहं, अनहं का उत्पादक है. जब हम सत्य का साक्षात् दर्शन करते हैं तब हम के पता लगता है कि इसका तत्त्व ज्ञान नहीं किंतु कृति है.

यह कृति * अपने आप के अनहं बनाती है. प्रथम शरीर अनहं का भाग है और अहं का भी. तन मन की क्रिया एक ही घटना है. शरीर मे बाहिर जे देखता हूं वोह भी चेष्टाओं का अनहं रूप है. जे ऐसा न मानूं तो बाह्य जगत के माया का जाल कहना पडे परंतु यह संमति पागल है.

अनहम् बनने में कृति सबसे प्रथम अजीवित प्रकृति का जड रूप धारण करती है. इस अवस्था में जो कुछ है उसमें गुरुत्व होता है. उसके पीछे की अवस्था भौतिक, रसायणिक, और आंगिक बल है, इसके पीछे मानसिक बल आता है. वृद्धि में प्रत्येक पदार्थ अपने निचले के साथ युद्ध करता है. पशुओं में ज्ञान, सदा कृति के आधीन होता है याने उनका बोध शरीर की रक्षा और वृद्धि के काम में लाया जाता है. मनुष्य, ज्ञान के कृति की सेवा मे मुक्त कर सकता है † वोह ऐसे पदार्थ बनाता है कि जे शरीर की वृद्धि के वास्ते जरूर नहीं इन पदार्थों के ललित कला कहते हैं. इनकी वृद्धि में भी नियम हैं, यथा पहिले सौध पीछे चित्र पीछे कविता पीछे रागादि.

मनुष्य का तमाम जीवन चेष्टा का प्रकाश है. दुःख का मूल जो त्रुटि उसके निवारणार्थ चेष्टा की जाती है. जीवन दुःख से भरा हुवा है. विषयों मे तृप्ति नहीं

---

* निरवयव में परिणाम पाना नहीं बनता अनहं बनने का हेतु नहीं मिलता. स्वभाव मानें तो निरपेक्ष न रहा.

† यह निरपेक्ष मे स्वतंत्र कौन ?

होती. कृति दुःख का मूल है उसे नाश करना चाहिये. ‡ चेष्टा और यत्न करना छोड दे।. जीवन का उद्देश जीवन के बंधन से मुक्त होना है. कृति से कृति का नाश नहीं होता. आदर्श जीवन हिंदू त्यागियों का है, जो कुछ नहीं करते, किंतु सोचने को भी छोड देते हैं. "जब ज्ञान होता है तब जीवन की निष्फलता समझ में आ जाती है."

परंतु शोपनहार ने वा उसके शिष्यों ने हिंदू त्यागीवत् जीवन नहीं किया, हां, आनन्द मे जीवन गालता रहा. शोपन कहता है कि यदि कबर के मुरदे से पूछा जाय कि वे पुनः जीवन चाहते हे तो वे सिर हला देंगे. उपनिषदों से बढ के कोई पाठ लाभदायक और उच्च करने वाला नहीं; उनसे मुझे शांति मिली है.

(७०) हर्बार्ट (वि. १८४२–१८९७) ज्ञान का मूल बाह्य वस्तु का अनुभव है, इसलिये अनुभव विचारदर्शन का काम है. जब इंद्रियों में कुछ संवेदन (लागनी) होती है तब स्वतंत्र सत् (कुछ है) है, ऐसा जरूर ज्ञान होता है. वोह सत् क्या, ऐसा ज्ञान नहीं होता, परंतु उसकी सत्ता का ज्ञान अवश्य होता है: इसलिये सब दृष्यों से सत्ता की सूचना होती है. यह वास्तव सत्ता क्या है? आत्मा है (फि. ६९ देखो) आत्मा अपनी सत्ता आप ही बताती है याने स्वप्रकाश स्वरूप है. फीट्च का उत्तर अंतर ज्ञान मे है और हेरे. नं. १२ ने बाह्य अनुभव मे उत्तर दिया है अर्थात् प्रतिक्षण परिणाम वास्तु है और कुछ पारमार्थिक नहीं है.

सत् पदार्थ अनेक अबदल है संबंध पाने से परिवर्तन होता है. सो संबंध का; न कि सत् का. संबध अनुभव का मूल है संबध से ही एक वस्तु के अनेक गुण जान पडते हैं. पारमार्थिक सत्ता कूटस्थ अपरिणामी है. आत्मा पारमार्थिक सत्ताओं में एक है. रूप रसादि कहीं सादृश्य, कहीं संयोग, कहीं विरोध इत्यादि अनेक सबंध देखते है, इसलिये उनका मूल, एक आत्मा अवश्य मानना पडता है और इन शक्तियों के कार्य का समूह वोह जीवात्मा है. प्रत्यक्ष का विषय कुछ है, यह संशयवादी को भी स्वीकारना पडता है; परंतु वे विषय जैसा हम देखते हैं वैसे नहीं हैं. * (ए. नं. ३२ वगैरे देखो). कान्ट (६९) ने कहा है कि देश काल, कारण कार्य

‡ क्यों नाश करें. क्योंकि वोह भी निरपेक्ष का आदर्श, परिणाम वा कृति है तथा नाश करने वाला कौन? हेगल वाले दोष इसके मत में भी आते है

* क्या जो हम लिखते है और उसे बांचते हैं सो वैसा नहीं है जैसा कि हम देखते बाचते हैं?

भाव यह मानव बुद्धि की सृष्टि है, परंतु एक में विरोधी गुण असभव है. ज्ञाता ज्ञेय भिन्न होने से आत्मा स्वग्राह्य नहीं हो सक्ता. आत्मा क्षणिक है यह नहीं बनता. इन सबमें सत्ता और अभाव एकपना भूतपना, यह विरोध आता है. हेगल (६८) विरोध वस्तुका स्वभाव है, ऐसे मानता है; यह उसका मतव्य ठीक नहीं है सत स्वतन्त्र असग निरपेक्ष है. परिमाण यह आयामरहित देश काल से असबंध, अभाव और परिच्छेद का सर्वथा विरोधी है, गुण उपाधिरहित है. इसलिये अनुभव में सत अनेक हैं और इसी वास्ते सन भेद दृश्य होते हैं पार्मेनिडीज वगैरे सत एक मानते हैं, परतु जो एक होता तो ससार जैसा (सभेद) गोचर है वैसा न जान पडता. कार्य कारण भाव वा समवाय किसी वस्तु का नाम नहीं है, किंतु भेद के स्वरूप हैं. (श.) सत, देश कालातीत. तो अनेक सतो का सबंध कहा होता होगा (उ.) बाह्य देश से इतर बौद्ध प्रदेश मे होता है बाह्य प्रदेश में दो परमाणु एक बिंदु पर नहीं रह सकने (स्वरूपा प्रवेश है) परतु बोद्ध प्रदेश में एक शक्ति केंद्र याने एक सत दूसरे के साथ एक बिंदु पर रह सकता है (आइडियल-कल्पना में स्वरूप प्रवेश है) अनेक सत अनेक बिंदु पर हो तब असबध और जब एक बिंदु पर हो तब संबंध याने एक दूसरे में लिपट जाते हैं आत्मा एक सत है दूसरे से जब संबंध पाता है तब अनुभव होता है (इसके मत में बुद्धि से बाह्य कुछ पदार्थ है, इसलिये मनोविज्ञान और सत्ता शास्त्र-दोनो मिला के दर्शन के तत्त्वो का अनुभव करना चाहिये, ऐसा उसका आशय है)

(७१) बेनेक. (हर्बर्ट) का अनुयायी) मन से ज्यादा-अनुभव से जुदा कोई प्रमाण नहीं है. आत्मा निर्गुण, निर्विकार, अपरिणामी हो तो शून्यवाद होगा संवित, गति, इच्छा और प्रयत्न आत्मा के गुण हैं आत्मा के गुण का विकास और उपचय होता है.

मूल के फिलोसोफर ज्ञाता-अंतःकरण पर ध्यान देते हैं, ज्ञेय से उपेक्षा रखते हैं-प्राकृतिक फिलोसोफर ज्ञेय (बाह्य वस्तु) पर ज्यादे ध्यान देते हैं उस पीछे ज्ञाता का निश्चय हो सके, ऐसा उनका विचार होता है

(७२) कौम्ट. आगस्ट कौम्ट (वि १८९४-१९१३ फ्रांस निरीश्वरवाद प्रेमनीति से परस्पर की उन्नति करना इसका उद्देश है)

(१) पहिले मनुष्य की पौराणिक अवस्था ३ प्रकार की. (क) पाषाणादिक में भी मनुष्य जेसी शक्ति मान के उसकी पूजा करना, उससे सहायता की आशा रखना. (ख) आकाशस्थ दिव्य बहुदेववाद, उनकी पूजा करना, उनसे सहायता की आशा करना (ग) एक देव सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान याने ईश्वर उपास्य और विश्वास योग्य यह पौराणिक अवस्था की उत्तम दशा है.

(२) पीछे दार्शनिक समय (क) अनेक शक्ति मानीं. (ख) फेर एक ज्ञान शक्ति उसके आधीन सब ज्ञेय. (ग) विज्ञान अवस्था. जिसमें स्वतंत्र कारणवाद छोड दिया. संसार किसने कब और केसे बनाया. इत्यादि बातें मनुष्य नहीं जान सकता. पृथ्वी क्यों चलती है. सूर्य से क्यों प्रकाश होता है इत्यादि का उत्तर नहीं मिल सकता, इसलिये इनमे न पडना.

(३) वैज्ञानिक (वर्तमान समय) अनुभव और परीक्षा से माना जाय न कि कल्पना वा कुतर्क से. यथा सूर्य को प्रभा कितनी देर में जमीन पर आती है. अमुक का उपयोग क्या है.

पहिलेपहल पुराण भावना से गणित स्वतंत्र हुवा, पीछे ज्योतिष, फेर पदार्थ विज्ञान, फेर रस शास्त्र, फेर जीव शास्त्र, फेर सामाजिक शास्त्र पुराण और दर्शन के संबंध से स्वतंत्र हुवा. *

मनोविज्ञान स्वतंत्र शास्त्र नहीं है, क्योंकि उसकी परीक्षा मन से नहीं हो सकती. सब से मुख्य सामाजिक शास्त्र है. सामाजिक स्थिति एकदम नहीं बदलती. वात्सल्य और परस्पर की रक्षा से समाज का पूरा उपकार हो सकता है. युद्ध नीच अवस्था है; क्योंकि माइट से राइट को गुलाम बनाना है. विवादावस्था (कोर्ट वकील) मध्यम है जेसे कि वर्तमान में है. उद्योग अवस्था सब से उत्तम है, क्योंकि राइट और कर्तव्य माइट रहता है. मनुष्य कारणादि संयोगों के आधीन है. स्वतंत्र अच्छा वा बुरा नहीं है. (दर्शन ग्रंथ में से).

ज्ञान का मुख्य स्वरूप, संबंध ग्रहण है. संबंध स्थिति और गति के नियमानुसार होता है. परीक्षा और अनुभव से ज्ञान का अन्वेशन संभव है, ध्यान से नहीं. विज्ञानवाद संबंधाधीन है. स्वतंत्र सत्ता प्रमाणरहित है. सब का स्वतंत्र आदिकारण क्या है इसका ज्ञान असंभव है. स्वतंत्र संबंधरहित सत्ता, जिसका प्रमाता इंद्रिय और प्रमेय से संबंध नही है वोह अग्राह्य है—उसे छोड दो. † (इसका कारणवाद और अदृष्टवाद है).

(७३) मिल. (वि. १८६३–१९२९ दर्शन मे ह्यूम नं. ६२ और कौम्ट नं. ७२ का और अपने पिता का तथा धर्म में बेंटहम के उपयोगवाद का अनुगामी).

* यहां तक या इतिहास यूरोप की प्रजा में हुवा, ऐसा जानना चाहिये. आर्य प्रजा में अन्य प्रकार है.

† इतिहास कर्ता—कौम्ट धीरे धीरे विक्षिप्त चित्त होता गया 'अंत अवस्था में चित्त ठिकाने न था. दर्शन ग्रंथ गुजराती में इसके मत का विस्तार है.

अनुभव ज्ञानमूल है. सहजज्ञान कोई वस्तु नहीं. चित्त भी क्षणिक अनेक विज्ञान परंपरा का समूह है. इन अनुभवों के संभव के लिये एक अनिर्वचनीय मूल कुछ मानना चाहिये. कान्ट नं. ६९ ने जो गणित के तत्त्वों में अपूर्व निश्चय शुद्ध किया है सो सर्वथा असंगत है; क्योंकि इन तत्त्वों का ज्ञान ही अनुभवाधीन है. जेसे आग में हाथ पडने से जलने का ज्ञान. वेसे १+२=३ यह ज्ञान है. तमाम ब्रह्मांड के व्याप्ति ज्ञान की आवश्यक्ता नहीं है.

वैज्ञानिक परीक्षा का मुख्योपाय व्याप्तिग्रह (अनुमान प्रमाण) है. एक विशेष ज्ञान से दूसरा विशेष ज्ञान होना व्याप्ति का लक्षण है व्याप्ति का मूल कार्यकारण भाव की सर्वव्यापकता में विश्वास. यह विश्वास भी अनुभवमूलक है. यथा अग्नि संबंध से हाथ जलना. कारणकार्य भाव की परीक्षाके ४ प्रकार हैं. (न्यायदर्शन जेसा. अन्वय, व्यतिरेक, अन्वय व्यतिरेक, पूर्ववत्–शेषवत्–परिशेष–सामान्यतोदृष्ट).

जिस कार्य से तमाम जीवों को सुख मिले वोह करना मनुष्य का कर्तव्य है जिससे ज्यादे सुख मिले उसके वास्ते थोडे सुखप्रद कार्यों को छोडना सर्वदा धर्म नहीं है. *शरीर से मन का और मन से भी विषय सुख से शांति सुख उत्तम है.* (इसके मंतव्य में प्रतिपक्षियों ने बहुत शंका उठाई है).

(७४) डार्विन. (वि. १८६९–१९३८ इंग्लेंड विकासवादी). प्राणी इतने उत्पन्न होते हैं कि जो उपद्रव न हों तो रहने को जगह न मिले. इस प्रतिद्वंद्व में वोही रह सकते हैं कि जो दूसरे देश मे जावें या जिनमें दूसरे मे प्राण बचाने की सुविधा हो. यह विरोध प्रकृति का नियम है, इसलिये यथा अवस्था (परिस्थिति) अपने स्वभाव का जो प्राणी परिवर्तन कर सकता है वोह जीवेगा और संतान की वृद्धि करेगा; दूसरे नष्ट होंगे. निरीक्षण और अनुनान कहा. अब परीक्षा सुनो. (१) भेडवाले अपने मतलब के जानवर रखते और संतान पेदा कराते हैं. दूसरोंको जुदा कर देते हैं. (२) *गत नष्ट पशु पक्षी की जाति से वर्तमान जातियों से सादृश्य-*भाव है, गत से उत्तमता अधिक है. (३) सब जानवरों में सादृश्यभाव है, जिससे अनुमान कर सकते हैं कि पूर्व में कोई छोटे जानवर की जाति जमीन पर थी जिसके सूक्ष्म अंडे, बचे या बीज जल वायु वगेरे के प्रवाह मे तमाम पृथ्वी पर फेले, जिनमे विकासक्रमवश वर्तमान जाति निकली है. (४) गर्भावस्था में सब जानवर समान होते हैं उनमें अपूर्ण इंद्रिय वालों का विकास नहीं होता.

यह हमारी उक्त कल्पना तब ही सिद्धांत हो सकती है-कि इसके विरुद्ध वैज्ञानिक परीक्षा न मिले.

विकास कल्पना में आफत–चुनने के योग्य और वृद्धि के योग्य जो व्यक्ति उन व्यक्तियों में पहिलेपहल भेद कहां से आया. जानवरों की जाति भेद का मूल बतलाती हुई विकास कल्पना जब अंतिम व्यक्तिभेद पर पहुंचती है तो सर्वथा अड जाती है. कुछ नहीं कह सकती.

अवस्था भेद से तथा इंद्रियों के और शक्तियों के उपयोग और अनुपयोग से व्यक्तियों में प्रथम भेद पेदा होता हैं. सर्दी गर्मी की अवस्था मे भी.

जैसे छोटे से बडे जानवर हुये, वैसे वडे की उत्पत्तिक्रम से अंत में मनुष्य पेदा हुये. पशु मनुष्य की बनावट की समानता विकासक्रम से बाहिर नहीं है. इसलिये मछलियों से कछुवे वगेरे का और बंदरों से मनुष्य का आविर्भाव मानने में आश्चर्य नही है. § स्मृति, सौंदर्य, ज्ञान और परस्पर की रक्षा यह पशु मनुष्य में समान हैं. विवेक भी पशुओ मे वर्तमान है. सारांश क्रमी से लेके मनुष्य तक विकासक्रम निर्विवाद है. (शं) जो नित्य प्रतिद्वंदता स्वभावतः है तो रक्षा, उपकार, ईमान, विश्वास कहां से आये. (उ) अपनी वा अपनी जाति की रक्षा वास्ते व्यक्ति में यह गुण पाये जाते हैं. शुद्ध स्वार्थ की अपेक्षारहित कोई गुण नही है.

ईश्वर के विषय में मनुष्य की बुद्धि नही पहुंच सकती; इसलिये उससे उपेक्षा कर्तव्य है. ‡

(७९) हर्बर्ट स्पेंसर. (वि. १८७६–१९६१ इंगलेंड. विकास सिद्धांत का व्याख्याता और स्वयं शिक्षित हुवा).

स्पेन्सर के इंग्रेजी कोटेशन के तरजुमे से उसका मुख्य सिद्धांत जान पडता है.

---

§ मनुष्य बंदर का पौत्र है उभय की बिचली जाति का पता नहीं लगा है कर्मवाद सभल जा! समष्टि कर्म का बोल बोल! नहीं तो कर्म भीयरी उडो

‡ बाइसिकल प्रथम काष्ट की अब रबर की शीघ्रगामी; प्रथम घडियाल कटोरा वाले पानी को अब जेब घडी इस प्रकार का विकासक्रम है. इसका विस्तार जड विकासवाद में कर आये हैं. इस प्रकार स्वाभाविक विकासवाद मानना और पेर यह कहना कि उसके कर्ता तक हमारी बुद्धि नहीं पहुंचती, इसका अर्थ क्या? विकासवाद स्वाभाविक नहीं इसी प्रकार समष्टि विकास स्वाभाविक मानना और ईश्वर को मान के उससे उपेक्षा करना, इसका अर्थ क्या? विकास क्रम स्वाभाविक नहीं किंतु उसमें किसी योग्य शक्ति का हाथ होना चाहिये.

(१) मेटर, यह हमेशा जो अज्ञेय शक्ति उसके कोई रूप (स्वरूप आकार) का सूचक चिह्न है.

(२) वदतोव्याघात दोष विना इस सूचक चिह्न को हम सत्य जैसा † नहीं मान सकेंगे.

(३) गति रूप मे तमाम पदार्थों की क्रिया का प्रतिनिधित्व (वा दर्शन) मात्र तिनका दर्शनमात्र है. नहीं कि उनका ज्ञान.

(४) जो अगम्य शक्ति को गतितरीके से आविर्भाव (प्रकट होना) मानें तो निरर्थक (अर्थशून्य) भूल मे आ पडेंगे (नोनसेंस जेसी भूल होगी).

(५) प्रकृति ओर उसकी गति, यह दोनो उस शक्ति के सूचक चिह्न है

(६) मन भी अगम्य है उसके उपादान को हम नही जान सकते

(७) मन का सादा रूप जो अपन जानते हैं, उससे उसके उपादान का विचार करते हैं तो वोह सादा रूप भी किसी पदार्थ का सूचक चिन्ह है. उस पदार्थ का विचार हम नही कर सकते.

(८) उक्त सूचक चिन्हो को इद या ततरूप मे कह सकें या नहीं, इस प्रश्न के सिवाय और कुछ नहीं * इसका फेसला शायद हो

(९) इसलिये जो हमेशा इद्रिय मन से मालूम पडता है उस अनुसार व्यवस्था करते हैं. (देखो फस्त प्रेन्सपाल और उनका जीवन)

(स्पेन्सर श्री जीव को शरीर से भिन्न वा जाव का यथाक्रम पुनर्जन्म नहीं मानते है) +

सब मत का मूल प्रत्यक्ष है, इसलिये सब म कुछ न कुछ सत्य होता है, इसलिये सामान्य (सत) अश का सग्रह कर्तव्य है. धर्म ओर विज्ञान के विरोध का भी विचार करना चाहिये. जिस मूल से यह विरोध निकला वोह वास्तव है धर्म वादियो में सृष्टिवाद वगेरे में विरोध है न नास्तिको समान स्वभावसिद्ध, न वेदा

---

† अज्ञेय शक्ति ब्रह्म मटर-माया वोह सत्य जेसी नहीं पदार्थ की क्रिया दर्शनमात्र है अगम्य शक्ति अक्रिय है प्रकृति (माया) और उसके परिणाम (गति) यह आधष्ठान की सिद्ध करते है (वेदांत जेसा मत जान पडता है)

* अनिर्वचनीय

+ जो यह महाशय मन का पुनर्जन्म मान लेता तो साफ वेदांती कहा जाता पर वेदांती है हेगल जो अधिष्ठान भाव स्वीकारता तो शुद्ध वेदांती होता

तियो समान कल्पित मान सकते है, और न द्वैतवादी भक्तो समान ससार को बाह्य शक्तिकृत समझ सकते हैं; क्योंकि सब में दोष आता है. परतु सब वादो में एक समान नहीं है याने सब ससार का मूल कुछ रहस्य अप्रमेय समझने है, जिसका बयान बात कर सकते.

प्रोटागोरस. न. ११ (वि. पू. ४२४) से कान्ट न. ६९ (वि स. १७८१) तक यह बात स्थिर हुई है कि यह अप्रमेय सर्वव्यापी, जिसका प्रकाश सब दृश्य में छिपा हुवा है और ज्ञान गोचर नहीं हो सकता, याने मनुष्य का ज्ञान वहा तक नहीं पहुंच सकता. इसमें दो प्रमाण है. (१) वर्तमान अतिम सायंस (वैज्ञानिक शास्त्र) के प्रत्ययों की दुर्बोध्यता की व्याप्ति से इसका स्थापन हो सकता है. (२) बुद्धि के स्वभावसे ज्ञान व्यापार की परीक्षा के जरिये अनुमान से उसका उपपादन हो सकता है.

देश, काल, द्रव्य, गति, शक्ति, चित्त, आत्मा, परमात्मा वगेरे प्रत्यय है, जिनका मूल और स्वभाव दुर्बोध्य और **अनिर्वचनीय है.** विशेष प्रत्ययो को ले जाते ले जाते अत में परा सत्ता पर कायम होना पडता है. ज्ञान, सबध ग्रहण रूप है, इसलिये जिसका भेद, परिच्छेद और सादृश्यत्व नही वोह बुद्धिगोचर नहीं हो सकता. ईश्वर का स्वरूप क्या है सो नहीं जाना जाता, परतु उसकी सत्ता मानी जाती है (यह हर्बर्ट स्पेन्सर का खास मत है). अप्रमेय एक शक्ति है. उस शक्ति के प्रमेय **विवर्त्त है.** इन प्रमेयो मे आत्मा और अनात्मा का भेद इत्यादि दर्शन के विषय है. देश, काल, द्रव्य, गति और शक्ति (जो कि मूल का मूल है, जिस पर सब आधार है, जिसकी वासनात्मक अनुभव से और सब ज्ञान होते है). यह सब भी दर्शन के विषय है

शक्ति की सर्वकालिक सत्ता ही मूल परमार्थ है, जिससे सब (द्रव्य, गति, शक्ति, सबध, गति का अविरोध, गति का प्रवाह इत्यादि) निकलते हैं.

द्रव्य का विभाग हमेशे बदलता रहता है ससार का हरएक अवयव और समस्त ससार भी हमेशा विकास (इवोल्यूशन) और संकोच (इनवोल्यूशन) इन दोनो व्यापारो में लगा हुवा है विकासावस्था में द्रव्य का संधो भाव और सकोच अवस्था में शिथलीभाव होना है, यह दर्शन ने **नगीन** कायम किया है

जीवन=आतर सबधो की बाह्य सबधो के साथ अविच्छिन्न मिलावट है. **मन** स्वय क्या तत्त्व है, यह विज्ञान नहीं कह सकता. इसकी प्रकाशमान अवस्थाओ की परीक्षा विज्ञानाधीन है. सवेदन और सवेदनो में सबंधो से चित्त बना है. इन्हीं

संवेदनो के स्मरण, परस्पर संबंध और संगति भाव से तमाम संवित ज्ञान बना है प्रतिफलन, स्वाभाविक क्रिया, स्मरण और विवेक यह चित्त व्यापार में क्रम है.

जो संवित के रूप व्यक्तियो में स्वाभाविक और सहज है वे भी जाति में किसी न किसी समय में प्राप्त हुये थे * और पीछे नाडी जाल में यम के पिता माता से पुत्रों के शरीर में आये हैं. बाह्य शरीर के द्वारा नाडी पर आघात होता है. नाडियों का धर्म ज्ञान है.

चित्त और शरीर दोनो ही अप्रमेय के रूपान्तर हैं. सवित के एक ही भाग और विभाग का प्रवाह रूप चित्त है, यही परमार्थ है. ‡

सविद्वाद के पारमार्थिक सत्तासूचक सदवाद उत्तम है, और इस मत का नाम रूपांतरित सद्वाद हैं.

चित्त, शरीर मोत से पृथक् वस्तु है, चित्त प्राण या शरीर से जुदा आत्मा मरने पीछे कहा रहता है, वोह जीविनो को दुःख सुख देता है, ऐसा प्राचीनो का विश्वास हुवा. इससे मत्र तंत्र, देव, पितृ, भूत, वृक्ष, मूर्तिपूजा रूप धर्म निकले. जीवो के भय से दड और मृत्यु के भय से धर्म निकला

युद्ध और वैश्य (उद्योग) वृत्ति सब से प्राचीन सामाजिक वृत्ति है. युद्ध में परतत्रता और वैश्य वृत्ति में स्वतंत्रता होती है. धर्मोन्नति का मुख्योद्देश, शुद्ध अप्रमेय का भजन है, परतु ईश्वर, देव, पितृ वगेरे की भावना को छोड के.

जिन आचरण को भला वा बुरा कह सकते है वेही आचार शास्त्र के विषय है. उद्देश के अनुरूप व्यापार का नाम आचार है. जिससे ज्यादे सुख वोह उत्तम और जो सुख कम तो वोह बुरा है तन मन और समाज के नियमो के आधीन आचार की परीक्षा है.

स्वार्थ और परार्थ दोनो जुदा होने से अनर्थकारक. दोनो शामिल रहने से आचार की उन्नति होगी सब में प्रथम स्वार्थयुक्त कलह. पीछे स्वार्थ पराधीन देख के मनुष्य प्रेम वाले जीवन को पसद करता है सामाजिक आचारो में न्याय और उपकार मुख्य है. प्रतिकार का भय, सामाजिक अपवाद, राज्य दड और दैव दंड वगेरे का भय परार्थ न्याय में सहकारी है और स्वार्थ न्याय स्वतत्रता की इच्छा से होता है. हरएक व्यक्ति दूसरे की स्वतंत्रता की बाधक न होके यथेच्छा कर सकती है.

---

* सस्कारी वा ज्ञान वाले का नहीं परतु सस्कार-ज्ञान (इम्प्रेशन) का पूर्व उत्तर जन्म का प्रवाह

‡ चिद्‌धर्मी का भाग

समाज में विरोध हो तब राज्य और राज्य शास्त्र की अपेक्षा होती है. प्रजा में परस्पर अंतर के भेद को बचाना और प्रजा की बाह्यशत्रु से रक्षा करना यह राज्य का मुख्य कार्य है. (यू. द. से). अब आगे दूसरे ग्रथ से विशेष लिखते है—

हर्बर्ट स्पेन्सर—मार्गोपदेशिका.

(प्र. क. शे. रणछोडदास भवानभाई सं १९१२ वरोडा लुहाणा मित्र स्टीम प्रिन्टींग प्रेस में छपी)

यह ग्रथ इंग्रेजी मे मे गुजराती हुवा है इसमे ह. स. का जीवन चरित्र भी है. उसमें से हर्बर्ट स्पेन्सर के आशय के क्रोटेशन नीचे अनुसार है. §

प्रत्यक्ष प्रमाण ऐसा है कि जिसके सबंध मे बुद्धि, विशेष विचार नहीं कर सकती और इस प्रमाण के स्वीकारे विना छुटकारा नहीं होता (पेज ९३).

ज्ञेय—बुद्धि गोचर जगत. अज्ञेय—बुद्धि से अगम्य ऐसी एक शक्ति है (पेज ९९) अव्यवस्थित ज्ञान सो सामान्य ज्ञान. अपूर्ण व्यवस्थित ज्ञान सो शास्त्रिय ज्ञान. सपूर्ण व्यवस्थित ज्ञान सो तात्त्विक ज्ञान (पेज ९६).

एक अज्ञेय शक्ति, और दूसरा उस अज्ञेय में ज्ञेय विरोधाविरोध का अस्तित्व और इस अस्तित्व होने के कारण द्रष्टि और द्रश्य, विषयी और विषय का भेद है. ज्ञाता और ज्ञेय, आत्मा और अनात्मा का भेद है. यह भेद सब को मानना ही पडता है. इस पर से भौतिकशास्त्र का सशोधन आगे बढता है (पे ९६)

देश, काल, प्रकृति, गति, शक्ति, प्रकृति का अविनाशित्व, और शक्ति का सतत प्रवाह रहना, इनकी मीमासा करते हुये अत मे शक्ति अखंड है ऐसा जनाया है वोह शक्ति अज्ञेय—विचार से पर है. न्यूनाधिक नहीं होती. इस शक्ति में से प्रकृति और गतिरूप में जगत के तमाम कार्य उद्भव ‡ होते है. यह

§ प्र क शे र भाई की प्रस्तावना — शकराचार्य द्रश्य जगत को हस्ती नही मानते ह स्पें श्री इस जगत के मूलकारण का सत्य मानते है. और उसके द्रश्यो को क्षण क्षण में परिवर्तन पाने वाले होने से उनको असत्य मानते है तिस—मूल—को अज्ञेय मानते हैं द्रश्य चलित होने से असत्य है तथापि इंद्रियो के सानिध्य होने से ज्ञेय भी है. स्पे को इस सिद्धात से उसे वस्तु स्वात यवादी और शकराचार्य को भाव प्राधा यवादी कह सकते हैं जो स्पेन्सर श्री का उक्त मत हो तो वदतो व्याघात (अज्ञेय ज्ञेय) और असभव (एक अनेक रूप) दोष आता है. शुद्धाद्वैत को याद करो (प्रयोजक)

‡ आकाश म मे परमाणु, वा कनक से कुडल, जल से बरफ, बीज से वृक्ष, वृक्ष से फल, शरीर से नख, शरीर से रोम का कैसे उद्भव ? इसका स्पष्टीकरण नही, क्योंकि मूल वस्तु एक मान के उसका नानात्व मानना दुषित सिद्धांत हो जाता है

शक्ति उडा दें तो चेतन का अस्तित्व नष्ट हो जावे. यह सत्य अपने अनुभव का मूल होने से मनुष्यानुभवित शास्त्र का भी मूल होना चाहिये † इस अंतिम के पृथक्करण से यहा (वर्तमान) तक आ पहोचे है यहा से आगे **संयोगीकरण दर्शन** का एक अग तार्किकरूप में पूरा होता है (पे ९७).

दिखाव में जुदी जुदी शक्तियें जुदी जान पडती हैं, परतु स्वभाव में एक ही हे. एक जात की शक्ति का उतनी ही दूसरी प्रकार की शक्ति में रुपातर हो सकता हे. गति सर्वत्र आदोलनरूप हैं दाखला:-उष्ण शक्ति का विद्युत शक्ति में और विद्युत का उष्मा में रुपातर होता हे. उष्मा शक्ति का स्वरूप एक प्रकार का आदोलन हे. इसी प्रकार विद्युत का, प्रकाश का और ध्वनि का. तमाम शक्तियें भी जुदी जुदी जात (प्रकार) का आदोलन § ही हे. हमको जगत में जुदी जुदी शक्तियें और कार्य मालूम होते हे, परतु जिस में से यह शक्तियें (वा कार्य) उत्पन्न होते हे वोह मूल भंडोल (खजाना) अखंड रहता है कम ज्यादा नहीं होता. उपरकी दोनो बातें सर्व प्रसग (रसायण, भौतिक, मानसिक) मे लगती हैं (९७।९८).

तमाम विश्व में प्रकृति और गति का फेरफार-रूपातर क्षण क्षण में होता रहता है. जो बनाव (नामरूप-फोर्म) अपन देखते हे उनका इतिहास उनके अखड अज्ञेयतत्व में से प्रादुर्भूत होने पीछे से पीछे उसमें लय[१] होने तक समाप्त होता है अर्थात् प्रकृति और गति क्रमशः कम ज्यादा और सयोग वियोग[२] रूप में होते रहते हे. इसलिये विश्व में दो विरोधी[३] (परस्पर में विरोधी) क्रिया होती रहती हे कभी प्रकृति का बल ज्यादा और गति का कम होता हे. कभी इसमे उलटा होता हे. इस कारण जगत की उत्पत्ति लय होता रहता हे.[४] इस प्रकार निरिंद्रिय वा सेंद्रिय,

---

† ब्र सि गत उत्ता फिलोसोफी में इसका बयान किया है

§ समुद्र तरगवत् उथला पथली आलात के चक्र के मूल समानगति वा हिलचल? सर्व पक्ष में मूल अज्ञेय शक्ति मात्रत्व समूह पुज सिद्ध होगी एक रूप नहीं

१ लय अर्थात् क्या? घटमाटीवत् तरग जलवत् वा परमाणु आकाशवत् रज्जु सर्पवत् सब पक्ष में दोष आता है.

२ गति में वा गति का वा गतिवान का वा गतिप्रकृति का सयोग वियोग नहीं होता है

३ एक तत्व की दो विरोधी क्रिया नहीं हो सकती

४ लय पीछे प्रकृति वा क्रिया की उत्पत्तिक्रम अज्ञेय की इच्छा से वा स्वभावत? उभय पक्ष में दोष आते हैं

जड वा चेतन, मानसिक वा सामाजिक वगेरे फेरफार, उपरोक्त दोनें क्रिया के सबब से होता रहता है. इसीसे उत्क्रांति का नियम हाथ पडता है (पेज ५८).

प्रकृति का धीरे धीरे एकत्र होना[४] और गति का छूटा पडना, इसका नाम **उत्क्रांति** याने पहिले नियमानुसार प्रत्येक व्यवित का सादे समस्वभाव में से मिश्र और मिश्र स्वभाव में से रूपांतर होना सो. इस नियम अनुसार व्यक्ति में खास अंग, उपांग पेदा हो जाते हैं. दूसरे नियम अनुसार अनेक अंग वाली व्यक्ति का एक अंग दूसरे अंग पर ज्यादा आधार रखने वाला होता है. पहिला नियम विकास का मूल है दूसरे नियम के आधीन[५] परतंत्रता ज्यादे होती है. इन दोनें नियम से विकास की मीमांसा हो जाती है (पेज ५९).

उपरोक्त दोनें नियम के अनुसार सम में से विषम और विषम का पारतंत्र्य अर्थात् भेद में अभेद और अभेद मे भेद * खडा हो जाता है. अभेद में भेद वा भेद में अभेद, बहुत दफे ऐसी प्रकार के होते हे कि जिस करके उत्क्रांति के बदले **अवक्रांति** भी होती है. जेमे कि राज्य में बखेडा हो तब अभेद मे भेद होता है, उससे राज्य की व्यवस्था बिगडती है (यह अवक्रांति). और जो इस भेद से व्यक्ति की वृद्धि मे हानी न हो तो वोह भेद उत्क्रातिगामी है, ऐमा कहा जायगा. इसी प्रकार मस्तुत प्रसग मे है अर्थात् अनेक अगों का उत्पन्न होना ही बस नही है किंतु वृद्धि पाये हुये अंगों का असल व्यक्ति के साथ स्वर बंध होना चाहिये. घर्षण उत्पन्न न होने हुये व्यक्ति का सरल जीवन होना चाहिये. इसलिये उत्क्रांति की अंतिम व्याख्या यह होती है कि एक अनिश्चित अरूप सादे सम अंग में से धीरे धीरे एक पीछे एक भेद वृद्धिगत होते हुये अग उपांग तथा कार्य के निश्चित रूप सहित मिश्र और विषम स्वभाव उत्पन्न हो, इसका नाम **उत्क्रांति** कहाता है (पे.६०).

५. स्पेनसर श्री वेदांत, साख्य, शुद्धाद्वैत से नहीं मिलते; क्योंकि जीव को शरीर से भिन्न और उसका पुनर्जन्म नहीं मानते और अज्ञेय को इच्छा से अज्ञेय प्रकृति वा गति रूप परिणाम को पाया हो ऐसा नहीं मानने से अभिन्ननिमित्तोपादान पक्ष मे भी नहीं मिलते, विलक्षणवाद में भी नहीं मिलते; क्योंकि पुनर्जन्म नही मानते और ब्रह्म चेतन को एक रस सम अपरिणामी नहीं बताते; किंतु उसमें आंदोलन होना कहते हैं

* एक मूल स्वरूप में भेद होना असंभव, एक मे भेद। भेदउभय रूप होना अशक्य. आरंभ में भेद उत्पन्न होने का उपादान और निमित्त नहीं बताया; अतः मूल वस्तु (अज्ञेय शक्ति) स्वगत भेदवाली (सावयव) माननी पडेगी. स्पेनसरश्री एक ही के नाना रूप-फॉर्म परिणाम मानते हों, ऐसा जान पडता है.

शक्ति (अज्ञेय शक्ति) के अखंडितपने में से ऐसा अनुमान होता है कि कोई भी सादा समस्वभाव वाला पदार्थ तद्दन अस्थिर अवस्था में होता है, उस पर हर कोई वस्तु असर कर सक्ती है, ‡ इसलिये उसमें फेरफार होता जाता है और सम विषम अवयव पेदा होते हैं (६१).

उत्क्रांति का चलन (सिलसला) हमेशे सीधी लकीर में नहीं चलता और उत्क्रांति अनंत काल तक नहीं चलती. अर्थात् उत्क्रांति सांत होती है. इधर उधर बांकी टेढी उंची नीची ऐसे रूप में अर्थात् समुद्र के तरंगों समान होती है. सुधारा याने उत्क्रांति पद अपेक्षित है. जेसे चढती पीछे पडती होती है वेसे उत्क्रांति पीछे अवक्रांति (वा प्रलय) अवश्य होती है. ऐसे ही समाजादि प्रसंगों में भी ज्ञातव्य है. (६२).

जहां उत्क्रांति वहां उसके अनुकूल साधनों का प्राबल्य होता है. तद्वत् अवक्रांति के प्रसंगों में ज्ञातव्य है. उत्क्रांति (मच्छर का जन्म) पीछे अवक्रांति (मच्छर का मरण) और अवक्रांति पीछे उत्क्रांति (रूपांतर होना) आती है. ऐसे प्रवाह है. (६३).

बसती की वृद्धि से सुधारा (उत्क्रांति) होती है (६६). नहीं कि अवक्रांति.

नीचे के (आरंभ के) प्राणी से मनुष्य के मगज की निरीक्षा करने पर प्रेरणा कहां तक पूरी होती है और बुद्धि कहां से आरंभ होती है, यह नहीं कहा जा सक्ता § ज्ञान रज्जु (तंतु) को बाह्य जगत का आघात होने पर प्रत्याघात होने से जो परिणाम आता है उसे चेतन कहते हैं. जुदा जुदा प्रत्याघात से भावना, प्रेरणा, स्मरण शक्ति, तर्क, इच्छा, भय, क्रोध वगेरे पेदा होते हैं. इंद्रिय वैज्ञानिक कहां पूरा होता है और मानसिक कार्य कहां से शुरू होता है उसकी हद निश्चय नहीं की जा सक्ती. (६८).

अमुक व्यक्ति आज जो ज्ञान रखती है, वोह अपने एक जीवन के एकत्र किये हुये अनुभव का ही परिणाम नहीं है किंतु व्यक्तियों के बारमे में उतरे हुये

‡ मूल अगम्य एक शक्ति, तो उसके अवयव पर माने अपना अपने पर असर होना मानना यह कैसी फिलोसोफी !

§ मूलो नास्ति कुतो शाखा, जेसा कथन है मानो यदि बुद्धि में किसी अगम्य शक्ति का हाथ हो तो स्वाभाविक विकासवाद कहा रहा!

संस्कारों का भी § परिणाम है. अतः अनुभव में दोनों (पूर्व और अपना) प्रकार हैं (७०).

प्रकृति और शक्ति यह अज्ञेय तत्त्व के चिन्ह रूप * होने से और इसमें अपनेको परस्पर विरोधी विचार होने से, स्पेन्सर चारवाक नहीं है तद्वत अध्यात्मवादी भी नहीं है. तो भी लोक में जिसे प्रकृति कहते हैं उसको शक्ति गिनना वा जिसे शक्ति कहते हैं उसे प्रकृति नाम देना, इन दोनों में से पहला कथन ज्यादे सतर्क है. ‡ (ग्रंथकर्ता).

व्यक्त शरीर के एक विशेष भाग में अर्थात् ज्ञान रज्जु में भावना और चेतन रहता है (७७) तमाम समष्टि की एकभावना नहीं हो सकती. सामाजिक हित के वास्ते व्यक्ति नहीं है किंतु व्यक्ति के सुख के वास्ते समाज है (७८). जगत में अभी (वर्तमानकाल) समाज का प्रबंध (बंधारण) अर्ध क्षात्र जेसा है (८३).

जेसे मानव की एक शक्ति भी ईश्वर दत्त वा अनुभवातीत नहीं स्वीकार सकते, वेसे ही धार्मिक भावना भी अनुभवातीत वा ईश्वर दत्त नहीं मान सकते. किंतु कुदरती अमुक विकास क्रमानुसार, धर्म भावना की उत्पत्ति हुई है (११२) †

(७६) ग्रीन. (वि. १८९२–१९३८ इंगलेंड. अनुभववाद + का विरोधी). ज्ञान का संभव तब हो सकता है कि जब संबंधग्राही का आत्मा संवित हो, इसलिये आत्मज्ञ प्रमाता अवश्य है. यह समस्त बाह्य संसार संबंधमय है, इसलिये उन संबंधों का ग्राहक भी आत्म तत्त्व है. इस वास्ते आत्म ज्ञानवान स्वप्रमितिक (स्वयं प्रमाण)

---

§ रज वीर्य के क्रमीगत केसे संस्कार हो सकते हैं. जब कि नवीन प्रोटोपलाज़म बनता हो तो वोह संस्कार लेके बना, यह सिद्ध होना मुश्किल है.

* पशुशृंगवत्, मंदिर की ध्वजावत, नभ को नीलतावत्, गुणी गुणवत्, धूम अग्निवत् वा अन्य रूप अर्थात् चिन्ह का अर्थ क्या? जो मानोगे उसीमें पूर्वोक्त दोष आयेंगे.

† यदि इसय अज्ञेय तत्त्व का परिणाम मानते हो तो स्पेनसर श्री प्रकृतिवादी के भाई गिने जायँगे; क्योंकि चेतनत्व की उत्पत्ति मानते है अर्थात् अज्ञेय तत्त्व चेतन नहीं किंतु परिणामी होने से समूहात्मक (सावयव) और जड रूप है. ऐसा (सांख्य की प्रकृति जैसा) परिणाम माना है तथा जीव को शरीर से भिन्न वस्तु नहीं मानते और यदि अज्ञेय तत्व को चेतन मानते हों तो चारवाक नही कहे जा सकते.

‡ स्पेनसर श्री के मंतव्य का खंडन भी हो चुका है. इनके पक्ष में भी श्री हेगल समान अनेक दोष आते है. त द. के वांचने से जान सकोगे.

+ लॉक नं. ६० स्वे. न ७५ तक अनुभववाद चला.

हैं. यह सब संसार ईश्वरमय है. आत्मा अनात्मा का कोई भेद नहीं है. शरीर से निर्पित इस ईश्वर के अंश को जीव कहते हैं. पुरुषों के रूप से (जीवरूप) ईश्वर संसार में प्रकाशित होता है. पुरुषों का जीवन समाज में ही संभव है, इसलिये सामाजिक जीवन मनुष्य की पूर्णता का साधन है. इस वास्ते आचार ऐसा होना चाहिये कि जिसमें किसी की हानी न हो, किंतु सब की भलाई हो.

(७७) फेकर. (वि. १८५७–१९४३ जर्मनी) शरीर आत्मावत जगत और ईश्वर का संबंध है. तमाम प्रकृति ईश्वर का शरीर है वृक्ष वगैरे सात्मिक और सजीव हैं. मृत और निर्जीव से जीव नहीं पेदा होता. फूल को अपनी गंध से क्या आनंद न होता होगा? वृक्ष वगैरे के जीव मनुष्य के जीव से कम और नक्षत्र ग्रहों का आत्मा उत्तम दर्जे का है. सब आत्माओं का ऐक्य चित्त स्वरूप परमात्मा में होता है. परमात्मा के ज्ञान से जडवाद की जंत्री से निकल सकते हैं. रूप, रस, शब्दादि जीव वा चित्त में भासमात्र नहीं हैं, यह पारमार्थिक ईश्वर ज्ञान के अवयव हैं. पृथ्वी समान अन्य लोकों में जीवन है. एक से एक उत्तम लोक है. तम अर्थात् अज्ञान वा दुःख के विना उद्योग और ज्ञान की तरफ प्रवृत्ति नहीं होती. दार्शनिक, शुद्ध विश्वास पर आधार रखता है, जिसका मूल इतिहास, धर्म और आचार यह तीन हैं. तन मन के संबंध में विज्ञानवाद (सायंम) ठीक है. वेवर ने बताया है कि बाह्य इंद्रिय उत्तेजन के संबंध की कमी ज्यादती के अनुसार (बराबर) संवेदन के बल में कमी ज्यादती होती है.

परंतु आत्मा और शरीर नित्य युक्त हैं. न अशरीर आत्मा रहता है (पूर्व उत्तर जन्म) और न आत्मा के विना शरीर. यह बाह्य संसार केवल ईश्वरीय महाविज्ञान स्वरूप है. जो सब व्यक्ति निष्ट ज्ञानों को घेर कर वर्तमान है.

(७८) लॉज. (वि. १८६३–१९३७ जर्मनी) सब दर्शन का विषय परमार्थ वा सत है. यह सत क्या जो वस्तु हैं, जो जानी जाती हैं, जो संबंध हैं और जो नियम अबाधित हैं, यह सब पारमार्थिक हैं. जिसको मनुष्य सत् कहता है कि अमुक वस्तु है वोह न तो स्वयं स्वतंत्र स्थित है और न शुद्ध संबंध है. पारमार्थिक वस्तु स्वभाव, कोई स्थिर गुण नहीं है; परंतु यह अनेक गुण, संतान की नियामिका शक्ति-रूप हैं. जलभाप, जलद्रव, जलघन–इन सब में जल अनुगत है. यह अवस्था भेद कार्य विनिमय है. जो तमाम वस्तु दूसरे की अपेक्षारहित होती नो किंवा जो वस्तु

में परस्पर विषे तारतम्य की संभावना न होती तो कार्य का भेद न होता.' यह सब मुश्किलें (सत कार्यवाद—असत् कार्यवाद) जब दूर हों कि यह मान लिया जावे अर्थात् **एक व्यापक अपरिच्छिन्न अन्य निरपेक्ष वस्तु अपने ही परिमाणों को अवस्थांतर में दिखाता है.**

अब परीक्षा से यह मालूम होता है कि चित्त शक्ति ही ऐसी शक्ति है कि एक को भी अनेक अवस्थाओं में प्राप्त होती है. अतः जो बाह्य वस्तु हैं तो वे भी सात्मक हैं.

स्वतंत्र अनन्य शेष अनन्यार्ध सत्ता को परमार्थ कहते हैं. सब वस्तु विनिमय हैं, केवल चित्तशक्ति वास्तु है. वस्तुतः बुद्धि में ही दो का संबंध है. बाह्य देश काल आदि संबंध केवल कल्पित है. रूप रसादि के प्रतिबिंब नहीं हैं. वस्तु व्यापार के फल हैं.

चित्त शक्ति (आत्मा) का अनेक वस्तुओं को एक करने का जो एक व्यापार है वोह हजार जड शक्तियों से भी नहीं हो सकता. देश काल द्रव्यादि चित्त शक्ति की कल्पना है. तद्वत् उनका संबंध. इसी आदि शक्ति या प्रथम द्रव्य के क्षणस्वरूप वा अंशस्वरूप सांसारिक पदार्थ हैं सो शक्ति अविनाशी है. *

(७९.) **हार्टमान.** (वि. १८९६ जर्मनी. सायंस की रीति से दर्शन का उपपादन यह इसका उद्देश है, नं. ७७ नं. ७८ का अनुगामी और सो. नं. ६९ अनुसार संसार को दुःखमय मानने वाला).

मूर्त्त द्रव्य अणु शक्तियों का परंपरा रूप है. इन परमाणु शक्तियों में कृति शक्ति उद्देश ज्ञानरहित है; इसलिये द्रव्य मात्र प्रत्यय और कृति स्वरूप हैं. चित्त और चेत्य का भेद पारमार्थिक नहीं है. इसी प्रकार शरीर की स्थिति स्वाभाविक और अचेतन है. सब अवयवों का कुछ उद्देश है, जिनका ज्ञान उनको नहीं है पहिला प्रत्यक्ष स्पष्ट ज्ञानरहित होता है. सुख दुःख का मूल अज्ञान नहीं है, किंतु अज्ञान पूर्वक उनका उद्भव होता है. यहां तक कि किसी नाडी और ब्रेन के कोन से अंश को उत्तेजन से क्या व्यापार और कैसी चित्तवृत्ति होती है, यह मनुष्य नहीं जानता तो भी स्वभावतः यह व्यापार होते हैं; परंतु स्वभावत्व अचेतन हैं. चेतन शक्ति का

* लॉज के लेख अलंकारी होने से विरोधी जान पड़ते हैं. यथा कहीं एक चित्त शक्ति और कहीं अनेक लिख देता है. फिलोसोफी में अलंकारी भाषा वा वाक्य चातुरी भ्रम पैदा होने के निमित्त हो जाते हैं.

कार्य निषेध, परीक्षा, नियमन, परिमाण, तुलन, योजन, वर्गीकरण, व्याप्तिग्रह और अनुमान वगैरे हैं. चेतन शक्ति से नवीन सृष्टि नहीं हो सकती. सृष्टि अचेतन के आधीन है. चेतन अचेतन के व्यापार का उद्देश भी नहीं है. यह केवल चेतन के उद्देश का उपाय रूप है.

संसार में सुख की अपेक्षा दुःख ज्यादे है, इसलिये संसार चेतन का कार्य नहीं. मूल तत्व की क्रिया (रज) और ज्ञान (सत्व) शक्ति जुदा होके काम करती हैं तो भी ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति का नियमन करती है; इसलिये विकासवाद और दुःखवाद दोनों हैं. ईश्वर में पुनः संसार मिल जायगा और मुक्ति जब होगी कि रज याने क्रियाशक्ति नष्ट होगी. प्रथम संसारी १, फेर परलोक के सुख की आशा करता है २, पुनः परलोक असंभव जान के इसी पृथ्वी पर भविष्य (पुनर्जन्म) में सुख और उन्नति की आशा करता है ३. इसमें पहिली नास्तिकों की, दूसरी आस्तिकों की, तीसरी विकासवादियों की अवस्था है, परंतु यह सब सुख मृगतृष्णिका समान भ्रम हैं. वैराग्य से इसका नाश होता है. केवल काम (रज-इच्छा-वासना) रूप दुःख का नाश करके शांति हो सकती है. जितनी ज्यादे श्रद्धा उतना ही ज्यादे दुःख और आसक्ति. ईश्वर की तरफ होके मुक्ति के जतन करने में वास्तु शांति सुख है. तथापि इस अवस्था प्राप्ति तक दुःख के भय से कर्म नहीं छोडने चाहियें.

वर्तमान दशा—यूरोप में दर्शन की दशा अच्छी है. उपयोग की तरफ ज्यादे दृष्टि है, इसलिये कल्पना प्रधान दर्शन की समाप्ति है. सामान्य विशेष दर्शन के इतिहास लिखें गये हैं. इति.

शोधक (अपवाद-समीक्षा).

चाहिये था कि पूर्व प्रकारवत् उक्त यूरोपीय मंतव्यों में जो दोष वा असमीचीनता हो सो दरसाई जाय, परंतु नीचे लिखे हुये कारणों से वैसा करना उचित नहीं समझा—

(१) बहुतों का ऐसा लेख है कि उसमें उद्दिष्ट (ईश्वरादि) विषय का मंडन वा खंडन पूर्ण नहीं है. या तो वक्ता ने ही नहीं लिखा या तो तरजुमा करने वाले ने तरजुमा पुरा नहीं किया, तो फेर क्या लिखा जावे. + (२) इंग्रेजी से हिंदी में

+ उपर बर्कले के लेख का स्मरण कीजिये. जीव अनादि अनंत वा सादि सांत, वनस्पति, पशु, पक्षी में है वा नहीं, उसके जन्म का कारण, पुनर्जन्म है वा नहीं, जीव का अंतिम परिणाम क्या इत्यादि का खुलासा किसी किसी के लेख में है सो भी अपूर्ण है और विशेष लेखों में उसका बयान है ही नहीं

तरजुमे हुये हैं उनमें कहीं कहीं अंतर भी है उससे शक हो जाता है. (३) वक्ताओं के मूल लेख मैंने नहीं पढे हैं मैंने जो लिखा है वोह फारसी, उर्दू, हिंदी, गुजराती ग्रंथों में से लिखा है. (४) पूर्व वाले मंतव्य में उत्तर वाले ने असमीचीनता दिखाई भी है. (५) पूर्वोक्त तमाम फिलोसोफरों के असमीचीन अंश का अपवाद इस ग्रंथ के चारों अध्याय में कहीं न कहीं अवश्य मिलेगा और आरोप भी कोई न कोई रूप में होगा; इसलिये यहां अपवाद की जरूरत नही समझी (६) दूसरा नियमाध्याय सब की निरीक्षा करने योग्य है, अतः पाठक–शोधक आप ही परिणाम निकाल सकता है, क्योंकि त. द. अ. में जितने विकल्पों का अध्यारोप अपवाद किया है उनसे इतर इस दर्शन में विकल्प नहीं हैं. तथाहि त. द अ २ में जितने विल्कप–मत–भावना का निरीक्षण किया है उनसे इतर इस दर्शन में नहीं है.

विभूषक.

उपरोक्त शोधक वाले कारण होने से हरएक का भूषण भी नहीं लिख सकते. तथाहि त. द. अ. १ विभूषक मत में और इस दर्शनसंग्रह में जितने मत, जितनी भावनाओं के भूषण जनाये हैं उन मत उन भावनाओं से इतर यूरोपीयन दर्शन में मत वा भावना नहीं है; इसलिये इसकी जिस भावना का भूषण देखना हो वोह उक्त अ. १ और दर्शनसंग्रह में देख लेना चाहिये; अतः यहां नही लिखते.

---

८०. * द्विभूत मत. (जडवाद की शाखा).

सृष्टि होने के पूर्व एक गोला था. वोह प्रकाशमय था यह अग्नि का गोला अखंडित प्रकाशता रहता है, उसमें से सब तरफ अग्नि बाहिर जाती रहती है. इस गोले का जहां प्रकाश न पहुंचे वहां हवा का जुत्था था. ऐसे अग्नि वायु यह दो तत्त्व अनादि अनंत हैं. आकाश तत्त्व नहीं; किंतु खाली जगह का नाम है सो असीम अनंत है. जल यह वायु के तत्त्वों में से बना है. पवन तत्त्व (ईथर) में अनेक जात हैं यथा ओक्षजन, कारबोनिक वगैरे हैं. ओ. हवा प्राणियों का जीवन रखती है और कार. हवा जीवन का नाश करती है. प्रथम में वायु के ६४ पीछे ७२ हाल में ९० तत्त्व शोधे गये हैं. पृथ्वी की उत्पत्ति अग्नि में से हुई है.

---

* यह मत यूरोप के फिलोसोफरो का ही है, इसलिये यहां लिखा है उनका इस विषय में मतभेद है इसलिये निश्चित नहीं है.

अग्नि का प्रकाशमान गोला जो सूर्य उसमें से किरणवत् अग्नि निकलती रही, जहां प्रकाश नहीं ऐसी जगह याने हवा के जुत्थे में पहुंच के ठंडी होती रही. अग्नि अपनी गर्मी बाहिर फेंकती है, परंतु उसे पीछे आकर्षण नहीं कर सकती; इसलिये गई हुई गर्मी का ठंडी जगह में जुत्थ होने लगा. वायु मिश्रित ठंडी होने होने जुत्थ हो गया सो यह पृथ्वी है. यह काम बहुत मुद्दत में हुवा है. इसी प्रकार अनेक ग्रह (गोले बने हैं).

जब प्रवाही पृथ्वी ठंडी हो के नक्कर हुई तब गर्मी तत्त्व और वायु के तत्त्वों के मिश्रण से उसमें वनस्पति पेदा हो गई. वनस्पति में उपरोक्त फेरफार होने पर पृथ्वी के पड (तह) योजाय गये. इस योजित पडों मे क्रमशः प्राणियों की उत्पत्ति होने लग गई. यह क्रम लंबी मुद्दत चलता रहा, पीछे उक्त क्रम के संयोग मे उनमें से मनुष्य आकृति वाले शरीर बन गये. (विकासवाद याद कीजिये).

कोई ऐसा मानता है कि लंबे काल जाने पर सूर्य की गर्मी कम होके सूर्य के स्वरूप में अंधकार होगा और सूर्य का उक्त व्यवहार बंद पड जायगा.

उपग्रह चंद्रादि, ग्रहों में से (पृथ्वी शनि वगेरे में से) बने हैं

कोई ऐसा मानता है कि पृथ्वी के रजकण बाहिर आकाश में जा रहे हैं, इसलिये इसका वजन कम होता जाता है; क्योंकि गति के कारण पृथ्वी में घर्षण होता रहने से परमाणु बाहिर दूर देश में जाते हैं.

वर्तमान मे ऐसा माना जाता है कि अग्नि मे वजन न होने से अग्नि तत्त्व नहीं है, इसलिये उक्त (अग्नि से पृथ्वी हुई) क्रम समीचीन नहीं है.

सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व क्या स्थिति थी, यह बात मनुष्य नही जान सकता. तथा सृष्टि किस प्रकार, किस नियम और किस क्रम से बनी तथा पृथ्वी हुये पीछे वनस्पति, प्राणी और मनुष्य केसे कहां किस क्रम से बने, यह कोई नहीं जान सकता क्योंकि मनुष्य से पूर्व की बात है.

जेसे एक सूर्य की बात कही, वेसे ब्रह्मांड में अनंत सूर्य है और उनके मंडल की सृष्टि है. सब सूर्य मंडल किसी एक महान् सूर्य में से निकले हैं. मानो अन्य सूर्य उसके ग्रह और सूर्य से उत्पन्न पृथ्वी वगेरे उपग्रह और पृथ्वी से चंद्रादि बने या प्रत्युपग्रह हैं. जिस दिन महान् सूर्य विभक्त हो जायगा तब क्रमशः प्रलय होने का आरंभ होगा और आकर्षण का क्रम भंग होके सब मिल के पुनः पूर्ववत् गोला बन जायगा, और फेर आपस की अथडाअथडी से गर्मी प्रकाश उत्पन्न होके पूर्व कहे

अनुसार क्रम चलेगा. इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय का अनादि अनंत प्रवाह है. जगतकर्ता कोई ईश्वर वा कर्ता भोक्ता कोई जीव चेतन नही है, किंतु जिसे चेतन कहते है वोह तत्त्वों के रसायणीय संयोग का परिणाम वा अवस्था है, ऐसा एक मत है.

शोधक.

अपवाद—महान् सूर्य परिच्छिन्न होने से उसको अधिष्ठान की अपेक्षा है और चेतनत्व भिन्न तत्त्व है, यह प्रयोगिक थीयरी से जाना जा सकता है. शेष अचिद्वाद के अपवाद में और जड विकासवाद के अपवाद मे इसका अपवाद है तथा ब्र. सि. में आकर्षणवाद का अपवाद है. अतः यहा विशेष नहीं लिखते.

विभूषक मत—पूर्वोक्त जडवाद अचिदवादवत् जान लेना चाहिये.

(८१।८२।८३) इसराइली मजहब (धर्म).

(याहूदी, ख्रिस्ति और मुसल्मान).

(१) बायबल और कुरान के माने हुये याकूब पेगंबर का नाम **ईसराइल** है. उसके १२ बेटे हुये. याहूदी, ख्रिस्ति और मुसलमानी धर्म उनमें है याने तीनों धर्मवाले बनीइसराइल (इसराइल की औलाद) कहाते हैं. (अबराम और उसके १२ पुत्र. तोरेत बाब १७ आ. २१).

(२) याकूब के पहिले भी नूह, शीस, आदम वगेरे पेगंबर हुये हैं. सृष्टि की याने आदम की उत्पत्ति से नीचे अनुसार समय बताते हैं—

(१) आदम से नूह तक २२४२ वर्ष (२) आदमसे अब्राहीम तक ३३२३ वर्ष. (३) आदम से मूसा पेगंबर तक ३८६८ (४) आदम से सिकंदर तक ५२८१. (५) आदम से ईसामसीह तक ५५८४ और आदम से नबी मुहमद तक ६२१६ वर्ष. सारांश विक्रम सवत् ६७० में नबी मुहमद हुये हैं, इस बायबल लिखित हिसाब से सृष्टि उत्पत्ति के आसरे ७६०० वर्ष होते है. इस **६२१६** वर्ष में अनेक पेगंबर हुये है उनमें २४ बडे कहाते हैं. (यथा आदम, जाफर दानियाल, नूह, लूत, याकूब, अब्राहीम, मूसा, दाउद, सुलेमान, ईसुमसीह, नबी मुहमद) जिनकी किताबें मानी जाती हैं वे ४ हैं. मूसा (तोरेत ५ बुक). दाउद (जबूर) ईसा (इंजील ५ बुक). मुहमद (कुरान) इनमें जो लिखा है वोह इलहाम है, ऐसा कहते हैं. इसके सिवाय सुलेमान वगेरे नबी की किताबें और रसूल वगेरे के पत्रों को मानते हैं.

सर्वशक्तिमान, सक्रिय और साकार है (आकार धरने वाला है). सृष्टि पूर्व वही था, उससे पहिले उससे इतर कुछ भी नहीं था. उसने अपनी शक्ति से अभाव (नेस्ती) मे भाव (हस्ती) रूप सृष्टि (भोक्ता जीव, भोग्य सूर्यादि, पशु पक्षी वगेरे सब) ६ दिन में बनाई, सातवें दिन आराम लिया. जीवों को यथेच्छा जन्म देता है. (जीव अर्थात जीवन का श्वांस जो ईश्वर ने फूंका). महाप्रलय जब करेगा तब पृथ्वी आकाश, तारा वगेरे नाश होंगे, और जीवों का हिसाब होगा और उनके कर्मो के अनुसार हमेशे के लिये स्वर्ग नरक दिया जायगा. मुक्ति याने स्वर्ग प्राप्ति का साधन ईश्वर की कृपा और उस पर विश्वास है. जीव का एक जन्म से इतर पुनर्जन्म नहीं होता. ईश्वर ने जीवों को बुद्धि दी ताकि भला बुरा समझें और नबी (दूतों) वा फिरश्तों † द्वारा मार्ग दरसाया. § उपरोक्त मंतव्य नीचे के अवतरण से जान सकते हैं.

अवतरण.

(तोरेत पुराना अहदनामा ‡). +

(१) (मूसा को पहेली किताब) पहले खुदा (ईश्वर) ने आसमान और जमीन बनाये. जमीन सूनी थी. और गहराव पर अंधेरा था और खुदा की रूह (आत्मा) पानी पर हलती थी (बाब-पर्व १ अयात १।२). खुदा ने कहा उजाला हो और हो गया. उजाले को अंधेरे से जुदा किया. उजाले को दिन कहा और अंधेरे को रात कहा; सो शाम और सुबह पहिला दिन हुवा (१।३।४।५). खुदा ने कहा कि *पानिओं के बीच फिजा (अंतरिक्ष) हो, पानियों को जुदा करे. तब पानियों का विभाग* हो गया. खुदा ने फिजा को आसमान कहा सो श्याम और सुबह दूसरा दिन हुवा. (१।६।७). खुदा ने कहा कि आसमान के नीचे पानी एक जगे जमा हों कि खुशकी देख पडे. सो ऐसा ही हो गया. एकत्र हुये पानी को समुद्र और सूकी को जमीन कहा. खुदा ने कहा कि जमीन,—घास वनस्पति को जो बीज रखतो हैं और मेवा वाले वृक्षों को जो अपने अपनी जिन्स (जात) के अनुसार फलते और जो बीज रखते हैं,—उनको उगावे और ऐसा ही हो गया, सो श्याम और सुबह तीसरा दिन हुवा.

† देव अर्थात् फिरश्ते.

§ जिस प्रकार की रूह (जीव-आत्मा) मनुष्यो में है वैसे पशु पक्षी में नहीं है. तथा फिरश्तो के शरीर पृथ्वी जल तत्वो के नहीं है. मनुष्यों के शरीर में पृथ्वी वगेरे चार तत्व है और मनुष्य कर्ता भोक्ता है. यह देव मनुष्य और पशु पक्षी में अंतर है.

‡ मूसा नबी इसका प्रवर्तक है इसलिये इस ग्रंथ को कलिमआद दर्शन भी कह सकते है.

+ पंजाब बायबल सोसाइटी अनारकली लाहोर सन. १९०३ ई. में से.

(१।१० से १३ तक). खुदा ने कहा कि अंतरिक्ष में सितारे बने वे दिन रात में विभाग करें, समय सूचक हों. अंतरिक्ष और जमीन पर रोशनी दें; सो ऐसा ही हो गया. उनमे दो (सूर्य, चन्द्र) बडे नूर बनाये. सो श्याम सुबह चोथा दिन हुवा (१।१४ से १९ तक). खुदा ने कहा कि पानियों में से रेंगने वाले जानवर (जंतु) बहुत हों, पक्षी अंतरिक्ष मे उडें; वे पेदा हो गये. खुदा ने उनको बरकत दी और कहा कि फलो और वृद्धि को पाओ. सो श्याम और सुबह पांचवा दिन हुवा (१।२० से २३ तक). खुदा ने जमीन को कहा कि जानवरो को उनकी जिन्स के मुवाफिक चोपाये, कीडे, मकोडे और जंगली जानवर' उनकी जात के मुवाफिक पेदा करे. और ऐसा ही हो गया (१।२४।२५). पीछे खुदा ने कहा कि हम आदमी को अपनी सूरत पर अपना जेसा बनावें तो वे सब जानवरों पर सरदारी करें; और खुदाने आदमी को अपनी सूरत पर पेदा किया, नर नारी उनको पेदा किया और उनको बरकत (आशीर्वाद) दी कि फलो, बढो, जमीन आवाद करो (१।२६ से २८ तक); और खुदा ने कहा कि वनस्पति, वृक्ष, फल तुम्हारे खाने वास्ते देता हूं, सब जानवरों को जिन मे जीने का प्राण है उनके लिये सब वनस्पति देता हूं और ऐसा ही हो गया. सो श्याम और सुबह छटा दिन हुवा (१।२९ से ३१ तक).

(२) खुदाने सातवें दिन अपने करने वाले काम को पूरा किया. इस दिन को पवित्र ठेराया. खुदाने नबातात के लिये अभी पानी न बरसाया था और आदमी नहीं था कि खेती करे. खुदा ने जमीन की खाकसे आदमी को बनाया और उसको नाक में जीवने का प्राण फूंका सो आदम जीती जान हो गया. उसे अपने बनाये हुये अदन के बाग में रखा. इस बाग के विचले भागमें जीवन का पेड और बुरा भला पहेछान कराने का पेड उगाया था. अदन में से ४ नदी (फीसू, जीहूं, दजला, फिरात) निकली (बाब २ आयत ८ से १४ तक) खुदाने आदम को कहा कि' बाग को निगहबानी कर. नेक बद जनाने वाले पेड का फल नही खाना (२।१६ से १७) खुदा ने हरेक प्रकार के पशु पक्षी बना के आदम पास भेजे, उसने उनके जुदा जुदा नाम रक्खे. खुदा ने आदम पर गहेरी नींद भेजी कि वोह सो गया और खुदा ने उसकी पसलियों में से १ पसली निकाली और उसके बदले गोश्त भर दिया. उस पसली से एक स्त्री (हवा) बनाके आदम के पास लाया और कहा कि यह तेरी नारी है; क्योंकि नर से निकाली है इसलिये पुरुष अपने मा बाप को छोडेगा और अपनी जोरू (स्त्री) से मिला रहेगा. यह नर नारी दोनो नंगे थे और शरमाते न थे (२।१८ से २५).

(३) खुदा के बनाये हुये होशियार साप के (शैतान के) बहकाने से नारी ने और नारी के कहने से आदम ने वोह (नेक बद जनाने वाला) फल खा लिया कि जिसके खाने से खुदा ने बर्जा था. फल खाने से दोनो की आखें खुल गई. अपने को नगा जान के इजीर के पतो की लुगीया बनाई (३।१ से ७ तक).

(४) खुदा ठंडे वक्त में बाग में फिरता था उस खुदा की आवाज नर नारी ने सुनी. पूछने से खुदा ने जाना कि साप के बहकाने से नारी ने और नारी के कहने से नर ने फल खाया है तब खुदा ने साप को शाप दिया (पेट के बल चलना, खाक खाना, मनुष्य का वैरी होना, इ) और नारी को शाप दिया (गर्भ की पीडा होना, नर के तावे रहना) और आदम से कहा कि तेरे सबब से पृथ्वी धिक्कारणीय हुई दुःखी रहेगा इ आदम ने अपनी स्त्री का नाम हवा रखा. खुदा ने नर नारी के वास्ते चमडे की कुडती बना के उन्हें पहना दी (३।८ से २१ तक). खुदा ने कहा कि देखो, आदमी नेक बद के जानने में हम में से एक की तरह हो गया न हो कि जीवन के पेड मे से लेके खावे और अमर हो जावे, इसलिये खुदा ने नर नारी को अदन से बाहिर कर दिया, ताकि खेती करे और अदन गत जीवन के पेड की रखवाली करने वास्ते नगी तलवार वाले करोबी (फिरश्ते) नियत कर दिये (३।२२ से २४ तक).

(५) आदम अपनी स्त्री के साथ सोया हवा गर्भवती हुई उसके कायन पुत्र पेदा हुवा, फेर दूसरा हाबल पुत्र हुवा. कायन ने हाबल को मार डाला (बाब. ४ आयत १ से ८ तक). तीसरा सीत * पुत्र हुवा सीत के भी पुत्र हुवा. (४।२६).

(६) जिस दिन खुदा ने आदम को पेदा किया, खुदा की सुरत पर उसे बनाया (बा. ५ आ १). सीत के पेदा होने पीछे आदम ८०० वर्ष जीता रहा. (सीत के पेदा होने पर १३० वर्ष का था). उससे वेटे और वेटिया पेदा हुये. सीत से वेटे वेटिया पेदा हुये इ (५।२ से ३२ तक–नूह तक की नस्ल)

(७) जब जमीन पर ज्यादे बस्ती होने लगी, और उनसे वेटिया पेदा होने लगीं तो खुदा के बेटो ने ‡ यथा रुचि उनको अपनी स्त्रियें बना लीं इन दिनो में जमीन पर जब्बार (दानव–राक्षस जेसे) थे. उक्त पुत्र पुत्रियो से बलवान् सतान

---

* इसका नाम सीस भी बोला है

‡ यहाँ दूसरी नस्ल के आदमी होंगे

पैदा हुई. आदमी की बदी (दुष्टता) देख के आदमी पैदा करने से ईश्वर पछताया दिलगीर हुवा (६।१ से ७ तक).

(८) खुदा की तरफ से नूह के समय तूफान होना, सब वनस्पति, पशु, पक्षी मर जाना, नूह और अमुक व्यक्ति, पशु, पक्षी वगैरे किश्ती में रहे उनका बचना इत्यादि की कथा ७ वें बाब. में है. §

(९) नूह ने वेदी बना के ईश्वर की भेट के लिये पशु पक्षी होमे. प. ८।२०।२१. ईश्वर ने नूह को, उसके पुत्रों को आशीष दिया और कहा कि "हरएक जीता चलता जंतु तुम्हारे भोजन के लिये होगा" (मनुष्य से इतर सब प्राणी मनुष्य के भोग्य के लिये बनाये) मैंने हरी तरकारी समान सब वस्तु तुम को दी. केवल मांस उसके जीव अर्थात् लोही समेत नहीं खाना. प. ९।२, ३, ४. तमाम पृथ्वी पर एक बोली और एक भाषा थी. † प. ११।१,४. ईश्वर ने अब्राहीम से कहा कि हरएक पुरुष का खतना + (गुह्यांग की चमडी काटना) किया जाय. प. १७।९ से १४ तक. अब्राहीम से बातें कर के ईश्वर उपर को चला गया. प. १७।२२. सवेर तक एक उससे कुश्ती करता रहा, याकूब बोला कि आशीर्वाद तक जाने न दूंगा. तब उसने (कुश्ती करने वाले ईश्वर) कहा कि अब तेरा नाम इसराइल ! (जीतने वाला) होगा. तो. उत्पत्ति. प. ३२।२४ से ३२ तक. (ईश्वर साक्रिय साकार). मुर्दे को गाड़ना. ता. २३।६.

(१०) ईश्वर ने आधी रात को मिस्र के तमाम पहिलौठों को मार डाला (प. १२।२९।३०). (ईश्वर यथेच्छा अन्यथा कर्ता). मैं सर्वशक्तिमान हूं. मेरे

से वैर रखनेवालों की चोथी पीढी तक को दंड दूंगा. * तौ. या. प. २०।५. ६ दिन तक परिश्रम कर सातवें दिन विश्राम ले. सातवा दिन तेरे ईश्वर का विश्राम का दिन है. ते. या. प. २०।८ से ११ तक.

(११) सुन्नत से संस्कार पाये हुये यहूदियों के वास्ते ईश्वर की दस मुख आज्ञा इस अनुसार है—मेरे विना किसी देव को न मानना. मूर्ति न बनाना न पूजना, मूर्ति के नमना नही. जो मुझे धिक्कारेगा उसकी तीसरी चोथी पेढी पर मैं कोप करूंगा जो मेरे भक्त हैं मेरी आज्ञा पालेंगे. उनकी हजारों पेढी तक मैं दया करूंगा. विना कारण प्रभु का नाम न लेना. जो लेगा तो तुझे निर्दोष न माना जायगा. आबाद दिवस (शनी) को पवित्र मान के पालना. तू उस दिन कुछ काम मत कर. तू तेरे मा बाप का सन्मान करना कि तेरी उम्र बढे. तू किसी की हत्या न करना तू व्यभिचार न करना. तू चोरी न करना. तू तेरे पडोसी के मुकाबले झूठी गवाही न देना. तेरे पडोसी के घर की, स्त्री की, उसके दास दासी की और उसके बेल गधे की तृष्णा नहीं रखना. १०. यात्रा बाब. २० आयत २ से १७ तक.

(१२) मूसा नबी के जन्म का वृतात (खरुज—मूसा की दूसरी किताब, बाब. २ आ. १०). मूसा का मरना (इस्तसना—मूसा की पांचमी किताब बा. ३४ आ. ५।६. खुदा का स्वरूप अग्नि के शोले जेसा. मूसा ने देखा (खरुज बा. २४ आ. १७।१८). हजकील ने देखा. (हजकील की किताब बा. ८ आ. १ से ४ तक). मूसा के माजजे—लकडी का साप हो जाना (ख. बा ४ आ. ५) खुदा ने फिरऊन का मन सख्त कर दिया (ख ११।१०). आकाश में से रोटी उतरी (ख. १६।१६). गुलाम बनाने की रीति (ख. २१) मूर्ति तोडने की आज्ञा (ख ३४।१३). सूर्य, चाद और बुत के पूजने वाले (मूर्तिपूजक) को सगसार करना (इस्तसना बा १७ आ ४।५). § गाय बेल के बध और बलीदान की आज्ञा (अहबार—मूसा की तीसरी किताब बा १ आ ४). § भविष्यवक्ता, ज्योतिष, फाल, डाकन. रम्माल, जादूगर, देव इनका निषेध (इस्तसना बा. १८). शत्रु की स्त्री हलाल (इस्तसना बा. २१ आ. ११।१४) § बाप के विरोधी पुत्र को सगसार करना (इस्तसना बा. २१ आ. २०।२१). सूर्य और चाद गति करते हैं (यशू बा. १० आ. १२।१३). सूर्य फिरता है जमीन स्थिर रहती है वाज बा. १ आ. १ से ६ तक). क्या यह, किताब अलियासर में नहीं लिखा है.

---

* सर्व सम्प्रदाय से विरुद्ध.

§ सर्व समत सप्रद के प्रतिकूल

(यशू बा. १० आ. १३) † खुदा और शेतान का विवाद (अयूब बा. १ आ. ६ से १२ तक और बा २ आ. २ से ६ तक) पशु वधका निषेध (वाज बा. ९ आं. ९). मुर्दों की हड्डियों के अंदर रूह डालूंगा वे जीयेंगी, नसें और गोस्त चढाऊंगा, चमडा मढूंगा. पीछे ऐसाही हो गया. उनमें रूह आई और वे जी उठीं.' पावों पर खडी हुई. एक बडा लश्कर हो गया. यह सब अहेल इसराइल थे इ. हजकीईल बा. ३७ आ १ से १४ तक). ‡

* इंजील.

(१) तब वोह (ईश्वर) हरएक मनुष्य को उसके कार्य के अनुसार फल देगा. इंजील मति. प. १६।२७. योहन वाक्य प्र. ५।१४ आ. १३ सब मृतकों को ईश्वर के आगे खडे देखा, और पुस्तक खोले गये और दूसरा जीवन (कर्म) का पुस्तक खोला गया और पुस्तकों में लिखी हुई बातोंसे मृतकोंका विचार उनके कर्मों अनुसार किया गया. योहन प्र. + प. २० आ ११।१३. नवीन सृष्टि (प्रलय हुये हिसाब का दिन) में जब मनुष्य का पुत्र (ईसु) अपने ऐश्वर्य के सिंहासन पर बेठेगा, तब तुम भी जो मेरा पीछा लिये हो बाहर सिंहासनों पर बेठके इसराइल के १२ कुलों का न्याय करोगे. जिस किसी ने मेरे नाम के लिये घरों, भाइयों, बहिनों, पिता, माता, स्त्री वा लडकों को वा भूमि को त्यागा है § सो सौ गुणा पावेगा, और अनंत जीवन (नित्य स्वर्ग) का अधिकारी होगा. इं. मति प. १९।२८, २९. उन दिनों क्लेश के पीछे तुरत सूर्य अंधेरा हो जायगा और चांद ज्योति न देगा, आकाश से तारे गिर पडेंगे, और आकाश की सेना डिग जायगी. इं म.'प. २४।२९. आकाश और पृथ्वी टल जायंगे, परंतु मेरी बात कभी न टलेगी. इं.म.प.२४।३५. मेरे पास से उस अनंत आग (नित्य रहनेवाला नरक) में जाओ जो शैतान और उसके दूतों के लिये तैयार की गई है. इं म. प. २५।४१. अब कोई श्राप न

† बायबल के पहिले की कोई बुक.

‡ पुनर्जन्म का भाव ले सकते है

* ईसुमसीह के स्वरूप का बोधक होने तथा इसमें ईसु का बोध होने से इसको 'इहमसाह दर्शन' यह नाम रख सकते है

\+ युहन्ना के पत्र और मकाशफे में से

§ संप्रदाय के अनुकूल नहीं है.

होगा. ईश्वर और मेम्ने (ईसु) का सिंहासन उसमें होगा, और उसके दास उसकी सेवा करेंगे और ईश्वरका मुंह देखेंगे ++ वहां रात न होगी, सूर्य दीपक न होगा; क्योंकि परमेश्वर उन्हें ज्योति देगा. वे सदा सर्वदा राज्य करेंगे (नित्य स्वर्ग). यो. प्र. प. २२ आ. ३, ४, ५. (महाप्रलय के दिन हिसाब, यथाकर्म नित्य नरक वा स्वर्ग. स्वर्ग नरक से इतर अन्य सृष्टि का अभाव).

(२) यदि तुमको राई जितना विश्वास हो तो जो तुम इस पर्वत को कहोगे कि यहां से वहां चला जा तो चला जायगा और कोई काम तुम से असाध्य नहीं होगा. ई. म. प १७।२०. ईश्वर पर विश्वास करो और मुझ पर विश्वास करो +++ यशू ने उससे कहा कि मैं ही मार्ग सत्य और जीवन हूं. विना मेरे द्वारा से कोई पिता के पास नहीं पहुंचता है. जो तुम मुझे जानते तो मेरे पिता को भी जानते. यो. प. १४ आ. १ से ८ तक. ईसु ने कहा कि तू मुझे उत्तम क्यों कहता है. कोई उत्तम नहीं है, परंतु ईश्वर. लू. प. १८ आ. १९.

(३) जो अद्वैत सत्य ईश्वर है. यो. प. १७ आ. ३.

(४) वोह सांप शैतान कहाता है जो तमाम संसार को भ्रमाने वाला है. यो. प्र. प. १२ आ ९. प. २० आ. ४।३. उसको यह दिया गया कि पवित्र लोगों से युद्ध करे और उन पर जय करे, और हरएक कुल, भाषा और देश पर उसको अधिकार दिया गया. यो. प्र. प. १३ आ. ५, ६, ७. योहन के प्रकाशित वाक्य में स्वर्ग का वर्णन है. *

(५) यशू (ईसामसीह–ईसु, ख्रिस्ति) ने विपतस्मा लिया और ईसु ने खुदा की रूह (रुहल्कुदस) को कबूतर के समान उतरते और अपने उपर आते हुये देखा, और आसमान से यह आवाज आई कि यह मेरा प्यारा बेटा है जिससे मैं प्रसन्न हूं. (मति बा. ३ आ. १६, १७). शैतान द्वारा ईसु की परीक्षा. (मति बा. ४ आ. १ से ११ तक). मैं (ईसु) तेरेत वा नबियों की किताबों को रद्द करने नहीं आया हूं किंतु उन्हें पूरा करने के लिये आया हूं. मति ५ आ. १७।१८).

(६) अपने भाई से मिलाप रख (म. ५।२५). जो कोई तेरे दाहिने गाल पर तमाचा मारे तो दूसरा भी उसकी तरफ फेर दे (आ. ३९). शत्रु के साथ भी प्यार रख, सताने वाले के लिये भी दुआ मांग (आ. ४३।४४)

* (५) तेरेत इस्तसनाह २५।५ ६. २८।७,१० में नियोग की रीति उचित मानी है. तथा लूका २०।२८ में भी है. यथा होशिये योरोक.

(७) बद रूहो ने कहा कि हमें सूवरो के झुंड में भेज दे, उनसे उस (ईसु) ने कहा कि जाओ. वे निकल के सूवरो के शरीर मे चली गई (मति बा. ८ आ ३२). * मै कुर्बानी (वध) नहीं किंतु रहम पसद करता हू (मति बा. ९ आ. १३).

(८) यह न समझो कि मै (ईसु) जमीन पर सुलह कराने आया हूं, किंतु तलवार चलवाने आया हूं; ‡ क्योकि मैं इसलिये आया हू कि आदमी को उसके बाप से और बेटी को उसकी माता से और बहू को उसकी सासू से जुदा करदूं, ‡ और आदमी के शत्रु उसके घर ही के लोग होगे. ‡ जो कोई मा बाप बेटे वा बेटी को मुझसे ज्यादा प्यारा रखता है वोह मेरे लायक (योग्य) नही (मति बा १० आ ३४ से ३८ तक) † जो कोई रूहअलकुद्स के (ईसु) विरुद्ध कहेगा वोह माफ न किया जायगा (मति १२ आ. ३२) आदम के बेटे (ईसु) का फेर (ससार मे) आना होगा (मति २४।२७ लूका १७।३०) उस दिन (महाप्रलय) को कोई नहीं जानता, परतु ईश्वर (मति २४।३६). शूली पर ईसु ने कहा "एली एली लमाशबक्तनी" अर्थात ऐ मेरे खुदा २ तूने मुझे क्यो छोड दिया ++ ईसु बडे जोर से चिल्लाया और जान दी § (मति ४६।४९) ईसु कब्र में से जी उठा (मरकस बा १६।५ से ८ तक). जब ईसु तालीम (उपदेश) देने लगा तब वोह तीस एक वर्ष का था (लूका ३।२३).

(९) योहन्ना की इजील में से लिखते हैं—पहिले (कलाम) शब्द था और कलाम खुदा के साथ था, और कलाम खुदा (शब्द ब्रह्म) था, यही आरभ में खुदा के साथ था; तमाम चीजें उसके वसीले से पेदा हुई है उसमें जिंदगी (जीवन–चेतनत्व) थी और वोह जिंदगी आदमी का नूर था (यो. बा. १ आ १ से ९ तक, इसलिये शरीयत तो मूसा की मारफत दी गई है, परतु फज्ल और सचाई + ईसुमसीह की मारफत पहुची है (यो १।१७) ईसु अनपढ है उसे इल्म कहा से आ गया? ईसु बोला कि मेरी तालीम मेरी नहीं किंतु जिसने मुझे भेजा है उसकी है (यो. बा. ७।१५।१६)

---

* भूतसिद्धि और पुनर्जन्म का भाव

‡ सर्वसम्मत के अनुकूल नहीं

† शायद धर्मार्थ वा ईश्वरार्थ वा वैराग्यार्थ भाव हो वा क्या ?

§ धर्मार्थ कुर्बानी हुई वा क्या ?

\+ इंजीलों में विरोधी लेख भी हैं यथा मति में तो पतरस के पूछने पर ईसु का पहिचानना और स्वकरण लिखा है और योहन्ना में (ब. १८।१९ में) ईसु ने अपने को स्पष्ट बताया तब पहरा ऐसा लिखा है इत्यादि यहां इसकी चर्चा का प्रसंग नहीं है

ईसु ने कहा कि दुनिया का नूर मैं हूं, जो मेरी पेरवी (आज्ञा) करेगा वोह अंधेरे में न चलेगा (यो बा ९ आ १३). मैं (ईसु), बाप (खुदा) में हूं और बाप मुझमें है, यह बातें जो मैं तुम से कहता हूं सो अपनी तरफ से नहीं कहता, परंतु बाप मुझ में रह के अपना काम करता है (यो. बा. १४।१०।११) (तसलीस-त्रिपुटि).

(१०) ईसु आसमान पर गया हुवा फेर आवेगा (रसुल एमाल बा १,११).

(११) पोलिस रसुल के १३ पत्र हैं उनमें से— खुदा जिस पर चाहता है, रहम करता है और जिसे चाहता है उसे सख्त कर देता है (रुमींयुं बा ९ आ. १८) यही अच्छा है कि मांस न खावे, दारू न पीवे और तेरा भाई ठोकर खावे वैसे काम मत कर (रुमीयुं बा. १४ आ २३ पेज २८९)

जहान के शुरू में जैसा लिखा है वैसा ही हुवा है (पोलिस बा ७ आ ८). खुदा (जीव को) यथेच्छा शरीर देता है (पोलिस बा. १५।३८ पेज २९१). हम मुसा की तरह नहीं हैं कि जिसने अपने मुख पर पडदा डाला, ताकि बनी इसराइल इस मिटने वाली चीज के अंजाम को न देख सकें; परंतु उनके खयालात मैले हो गये; क्योंकि आज तक पुराने अहदनामे (तोरेत) पढने के समय उनके दिलों पर वही पडदा पडा रहता है और वोह पडदा मसीह में उठ जाता है (रसूल बा ३।१२ से १६ तक पेज ३१९) शरीयत को ईमान से कुछ वास्ता नहीं है (रसूल पत्र ३ बा. ३ आ. १२ पेज ३३१) जो तुम खुतना कराओगे तो तुमको मसीह से कुछ फायदा न होगा (रसूल पत्र ३ बा. ५ आ २ पेज ३३४). तुम जो शरीयत के वसीले से रास्तबाज ठेरना चाहते हो तो मसीह (ईसु) से जुदा हो गये और फज्ल (कृपा) से बेनसीब हो गये (रसूल पत्र ३ बा. ३ आ. ५ पेज ३३४). मुक्ति तुम्हारी तरफ से नहीं, किंतु ईश्वर दत्त है, और न कर्म से है ताकि कोई घमंड (फखर) करे (पोलिस पत्र ४ बा ३ आ ८।१० पेज ३४७).

(१२) क्योंकि वोह (ईसु) मूसा से इस कदर ज्यादे इज्जत के लायक समझा गया जिस कदर घर का बनाने वाला घर से ज्यादे इज्जतदार होता है. (इबरानीयुं बा ३ आ ३ पेज ३८५).

ईसाई धर्म बुद्ध धर्म में से.

(डाक्टर बेन्सन, डाक्टर सडील).

रिसाला मिस्टर आर सीननायक की पुस्तक में से तरजुमा. बाबु मनवल्लभ किशोर मुतरज्जुम.

बुद्ध के मरने पीछे (ई पूर्व ४७७ वर्ष) ५०० साधु राजगढ (मगध देश) में

एकत्र हुये, ताकि बुद्ध के वाक्य एकत्र करें. बुद्ध के १०० वर्ष पीछे (ई पूर्व १७७) एक संमत होने की गरज से दूसरी सभा हुई तीसरी सभा बुद्ध के २३५ वर्ष पीछे (ई पूर्व २४२) पटने में राजा अशोक के समय हुई, जिसमें बुद्ध के कथन की टीका (विवेचन) हुई. राजा अशोक ने इतने बादशाहों से उनके राज्य में बुद्ध धर्म के प्रचार की रजा मांगी. (१) सेरिया का राजा इनटोख. (२) मकदूनिया का राजा अमिटगांस. (३) सेरीन का राजा मेगस (४) अपरस का राजा अलग्जेंडर. यह बात अशोक के लेखों से पाई जाती है इसकी अनेक प्रशस्तियों में धर्म के व्यवहार के उत्तमोत्तम उपदेश है.

मसीह के लोहू गोश्त से मुक्ति मिलना, ऐसी ऐसी दो तीन बातों से इतर कोई बात मसीह के शिक्षण में न मिलेगी कि जो बौद्धों से न मिलती हो *

मसीह का अज्ञान जीवन जिसको मिस्टर नेटोविच की शोध ने तिब्बत के पुस्तकालय में से निकाला है, उससे सिद्ध होता है कि मसीह बौद्ध धर्म का शिष्य था *

बुद्ध (बुद्धिमान) यह सिद्धार्थ की पदवी है और सिद्धार्थ गोतम सूर्यवंशी था. मसीह यह ईसु की पदवी है और ईसु इब्राहीम वंशी था.

१—बुद्ध के जन्मपूर्व उसकी माता को स्वप्न में आना. मसीह की माता को जन्मपूर्व फिरश्ने का आके कहना.

२—बुद्ध जन्मा तो रोशनी हुई, गूंगे बहरे बातें करने लगे इ. (कल्याण धर्म बाब ४), मसीह के जन्म होने पर भी ऐसा ही हुवा था. मती की इंजील बाब ४।१६।१९)

३—विद्वान बुद्धिमान उनको ताजीम देने गये. कल्या. बाब. ४ और मती की इंजील बाब. आ. १।२।११.

४—बच्चों का नाम रखना. क. ब. ४ आ. २२. मति की इंजील बा. १।२१।२९.

---

* आगे नं १ से ३० तक बुद्ध और मसीह की स्थिति और उपदेश में जो समानता दिखाई है, वोह देहिगमात्र है. मूल ग्रंथ में कल्याणधर्म और इंजीलों के वाक्य लिख लिख के समानता बताई है यहां तो सामग्री के अभाव से अनुक्रमणिकामात्र लिखी है मूल ग्रंथ उर्दू में मेरे पास है

मसीह (ईसु) यहूदी धर्म को मनाता था. उसका उपदेश, उसका वर्तन, उसका दिखाव बुद्ध धर्म से मिलता है वोह तिब्बत में भी रहा है यहां बुद्ध धर्म से शिक्षण मिला हो, ऐसा अनुमान होता है.

५-दीपमार्ग ने बुद्ध के लिये और यूहन ने मसीह के लिये रास्ता तैयार किया. बुद्धेजिम इन टरांसलेशन पृ. २ मिस्टर वारन कृत.

६-बुद्ध और मसीह का विपतस्मा पाना.

७-बुद्ध और ईसू ने जंगल में उपवास किये. क. बा. १०. मति की इंजील बा. ४ आ. ११२.

८-दोनें को शैतान (मार) ने बहकाया और वे धोके में न आये. क. बा. १०७ आ. १११०. मति की इंजील ब. ४ आ. ३-१०.

९-फिरश्ते-देवता ने दोनें की सेवा की. क. मति ब. ४ आ. ११.

१०-स्त्रीयों ने दोनें की प्रशंसा की. क. लुका की इंजील.

११-बुद्ध और मसीह की तालीम-शिक्षण. क. बा. १२ आ. २०. मति बा. ५ आ. ३-११ (समान उपदेश है).

१२-दोनें ने पहाड पर उपदेश किये. क. बा. २१. मति बा. ५.

१३-बुद्ध और मसीह ने कहा हमारे वचन पलट ने वाले नहीं हैं. क. बा. ७ आ. १७।१८. मति बा. २४।३५ लुका २१।३३.

१४-जो अंदर जाता है वोह नापाक नहीं करता. क. बा. १६ आ ७।८ मति बा. १५ आ. ११।१९।२०.

१५-अपने दुश्मनों के भी प्यार करो. क. बा. ५८ आ. ३५।३८. मति बा. ५ आ. ४४।४६।४८.

१६-ओ थके हुयों! तुम मेरे पास आवो. ५ क. ब ५४ आ. ६।७ मति बा. ११ आ. २८-३०.

१७-मैं मार्ग हूं मैं सचाई हूं. इ. इ क. ५४ आ. ९-१०. यूहना. १.

१८-तुम नमक हो. क. बा. ६१ आ. ३. मति बा. ५ आ. १३.

१९-दान की बडाई. क. बा. ५६ आ. ६।७ मरकस आ. १२ आ. ४३।४४.

२०-मैं दुनिया की रोशनी हूं. क ब. ७९ आ. २।३. यूहना की इंजील बा. ८ आ. १२.

२१-जिना की दृष्टि मत कर. क. मति. बा. ५ आ ७।२८.

२२-जो तेरी दाहनी आंख ठोकर खाने का सबब है तो उसे निकाल डाल. क. मति बा. ५ आ. २९.

२३–परोपकार करना मुबारक है. क. २६ आ ३।४।८. एमाल बा. २०. आ. ३५.

२४–बुद्ध और मसीह के काम तदंतरगत —

(क) शिष्यों को बुलाना. क. ब. १८ आ. ११ मति ४ आ. १८।१९.

(ख) शिष्यों को उपदेश देना. क. बा. ४७ आ. १–४ मति. १० आ. १६।१७.

(ग) शिष्यों को उपदेशार्थ बाहिर भेजना. क. लुका बा. १० आ. ३।८।१७.

(घ) शिष्यो! सचाई का अनादर न करो इ. क. बा. १७ आ. ७।९ यूहना बा. १५ आ. १२।१३.

(ङ) शिष्यों का निश्चय, विश्वास बुद्ध और मसीह पर. क. बा. १४९ आ. ३१२. मति बा. १६ आ. १६।१७.

(च) बुद्ध का आनंद, और मसीह का यूहना, प्यारे शिष्य थे.

२५–दृष्टांत और कहानी कहके दोनों का उपदेश. तदंतरगत.

(क) काश्तकार–क बा. ७७. मरकस की इंजील बा. ४ आ. ३ से २० तक मति बा. १३ आ. ३ से १८ तक. (ख) अंधे गुरु. क ५९ आ. ७. मति बा. १५ आ. १४ बा. १५ आ. १४. (ग) खोया हुवा पुत्र. क. पृष्ट १६ आ. ११९. लूका बा. १६ आ. ११।२०. (घ) कूवे पर स्त्रीयें. क. बा. ७१ आ. १। ४. यूहना बा. ४ आ. ६।१०. (ङ) विवाह का उत्सव. क. बा. ८१ आ. १। ८. यूहना बा. २ आ. १।११. मसीह ने करामात दिखाई. बुद्ध ने पति पत्नी का धर्म बताया. (च) राई का दाना. क. बा. ७८ मति बा. १७ आ. २०. (छ) रात के समय मिलने वाले क. बा. ५२ यूहना बा. ३ आ १।११ (ज) पानी पर चलना. क मति बा. १४.

२६–अंतिम भोजन–क. बा. ९९. मति बा. २६.

२७–बुद्ध और मसीह ने अपनी मौत की खबर दी. क. बा. ९७ मति बा २६ आ १।२.

२८–शिष्यों में शोक होना क. बा ९७ मति बा २६ आ. ३१।७६.

२९–बुद्ध का निर्वाण होना मसीह का सूली पर चढना. क. बा. ४७ मति बा. २७ आ ५०।५२

३०–कौंसल–बुद्ध और मसीह के मरने पीछे सभा हुई. क था ४८. एमाल वा. १ आ. १२।१७.

३१–बुद्ध और मसीह के उपदेश और स्थिति–वर्तन बहुत ऐसे हैं कि परस्पर में मिलते हैं. यहां तो नमूना मात्र दरसाया है. बुद्ध, इसुसे ६०० वर्ष पूर्व में हुवा है इसलिये इसु ने बुद्ध की तालीम ली है, यही कहना होगा. दोनों में यह बडा अंतर है कि बुद्ध कहता है सचाई शोध के संपादन करो तो तुम भी बुद्ध हो जाओगे. मसीह कहता है कि मसीह के द्वारा मुक्ति होगी. (बुद्ध, बाप ब्रह्म को अमुक के वास्ते गुप्त रखता है. ईसु उसे प्रसिद्ध कहता है).

३२–मेक्स मूलर कहता है. बुद्ध और मसीह का बहुत बातें मिलती हैं. सारांश–जो ली गई हैं तो इसाईयों ने बुद्ध धर्म से ली हैं. इ.

मिस्टर नोटोविच (रूसी) मसीह का अप्रसिद्ध जीवन पृ. १८७।५०. में स्पष्ट यह परिणाम निकलता है कि ईसाई मजहब दूसरे का लिया हुवा तरीका है. जिसका फकृत नाम बदल के दिखाने में आया है. बहुत समानता से हमको विवश कहना पडता है, कि इसाई मजहब बुद्ध धर्म का बचा है.

३३–मिस्टर ग्रेवज * (वर्ल्ड्स सिक्स्टीन सेवीयर्स (Saviours) पृ २३५)– महाराजा अशोक ने बुद्ध धर्म प्रचारार्थ उपदेशक भेजे. उनके स्थान बने. यूरोप में बुद्ध धर्म के बहुत स्थानों का पता लगा है मिस्टर जे. डरेपर (अटलकचूलडालपमंट * येरोप बुक १ पृष्ट. १७).

३४–ईसाई, गाथा–किस्से–कहानी–रीतरिवाज–और नीति धर्म की बुनियाद विशेषतः बुद्ध मजहब पर है. डाकटर बेनसन, डाक्टर सडील, डाक्टर लेले, सिद्ध करते हैं कि ईसाई मजहब बुद्ध मजहब से निकला है. रमेशचंद्र तवारीख हिंद पृष्ट ३२९.

३५–प्रोफेसर एच. सी. वारन; और प्रोफेसर टी आर. टयूट पी एच डी. की भी संमति लगभग नं. ३४ जैसी है.

बुद्ध का अवतरण मसीही धर्म यह एक इतिहासिक बात है इसमे मसीह की न्यूनता–ऐसा भाव न लेना चाहिये; क्योंकि जन्म से सीखा हुवा कोई नहीं होता. बुद्ध ने भी पूर्वजों से सीखा था. रचना में नवीनता की है. बुद्ध ने जो उपदेश किया

* उर्दू में इंग्रेजी भाषा के सही नाम नहीं पढे जाते. पाठक श्री क्षमा करे

सो उसके पूर्व के मूल ग्रंथों मे भी पाते हैं अलबत्ते उसने उसको यथा देश, काल नवीन रचना में रंगा है.

ईसाई भाई, ईसाई धर्म, बुद्ध का अवतरण, ऐसा कभी भी न मानेंगे, और ऐसा ही होना चाहिये; क्योंकि यदि इसु मसीह, बुद्ध का नाम ले के कहता तो उसका प्रचार ही न होता ‡. इसके सिवाय बायबल के गत अयस्तक और वाज नाम की बुक में अच्छी २ शिक्षा हैं उसमें से भी इसु ने सीखा हो. यह स्वाभाविक है उस शिक्षण को अन्य रंगत में रचा हो. (अ ४ में संग्रहवाद विषय में वर्णन है) अतः ईसु ने बौद्ध धर्म से ही सीखा, ऐसे हठ बनाने की अपेक्षा रखना उचित नहीं है,

जापान ने हुनर कला यूरोप और अमरीका से सीखी है और अब अपनी बना ली है, सो दोसो वर्ष पीछे वे यूरोप वा अमेरिका से ली, ऐसा न कहें तो स्वाभाविक है.

निदान कुछ भी हो परंतु यूरोप के अन्य धर्मो से इसु श्री का उपदेश उत्तम है, ऐसा तो कहना ही पडेगा.

भारतीय शिष्य ईसा.

Mr. N. NotoVitch (नोटोविच) की इंग्रेजी पुस्तक से मास्टर हरद्वारीसिंह अध्यापक महाविद्यालय ने तरजुमा किया. दर्शन प्रेस ज्वालापुर में सं. १९७१ में छपा. पेज ४८ है. अध्याय १० हैं.

वायबल भी ईसा को वाल्यावस्था तथा मृत्यु के पूर्व के दो वर्ष का वृतात बतला के मध्य अवस्था के वृतांत पर कोई प्रकाश नहीं डालती. रैनन जैसा ईसा के जीवनचरित्र का लेखक भी कानों पर हाथ रखता है. इन वर्षों में ईसा भारत वर्ष में रहा है. रूसी यात्री मिस्टर नोटोविच ने तिब्बत में बौधो की पुस्तक से ईसा के इन वर्षों के चरित्र को अनुवाद कर के फ्रेंच भाषा मे प्रकाशित किया था. पश्चात मिस्टर गांधो ने उसका इंग्रेजी मे तरजुमा किया. हरिद्वारिसिंह ने हिंदी में अनुवाद किया है.

नोटोविच भूमिका में लिखता कि सं. १८७७ ई. पीछे द्वीप काफ फारिस और हिंद की सेर की. वहा से कश्मीर और लदाख पहोंचा. लामा की वातचीत से

‡ जैन, के वाक्यो मे पुनर्जन्म भी पाया जाता है

ज्ञात हुवा कि लासा के पुस्तकालय में ईसा और पाश्चात्य जातियों के इतिहासवाली पुस्तकें हैं. वहां मे मैं इस मठ में गया. लामासे मैंने कहा कि लिखित पुस्तकों में से ईसा का जीवन चरित्र है, सो बात-हकीकत मुझको सुनाई जावे. मुझको सुनाई गई. मुझे इन बातों के विश्वासनीय होने में संदेह नहीं था; इसलिये इसे यूरोप में प्रकाशित करने का इरादा था. ++ छपाने से मुझको रोका +++ परंतु पीछे छपवाया. इस पर अंगुली उठाने पूर्व विद्वानों का कमीशन भेज के तहकीकात करा लेवें. ताके ज्ञात हो जावे कि वोह हकीकत बौद्धों की पुस्तकों में लिखी हुई भी हैं.

ग्रंथ.

अध्याय--१ ईसा जेसे महापुरुष और न्यायशील को सता कर मार डाला, यह इसराईली देश में महापाप हुवा है. अंक १ मे ९. इसराईली व्यापारियों का बयान इसके संबंध में क्या है सो सुनो. ९.

अध्याय-२ इसराईलों पर ईश्वर का कोप हुवा. उनको मिसर (इजीप्त) के राजा फिरऊन का दास होना पडा. फिरऊन ने उनको अनेक प्रकार के दुःख दिये. १।६ फिरऊन का छोटा बेटा मूसा उसको इसराइलियों ने विद्या पढाई, उसने उनकी तकलीफ जानी, ईश्वर पर विश्वास दिलाया फिरऊन से कहा तो क्रोधित हुवा ज्यादे तकलीफ देने लगा ७।१२. कुछ मुदत पीछे मिसर देश पर मरीकी आफत आई. मूसा ने बाप मे कहा कि यह इसराईल कोम के ईश्वर का कोप है. उसने मूसा को मिसर देश से जुदा रहने को हुक्म दिया मूसा उनको लेके बाहिर चला गया-मिसर देश छोड दिया १३।१६ मूसा ने कोम के वास्ते नियम बना दिये और ईश्वर पर विश्वास दिलाया १७. मूसा मर गया. इसराईल कोम बलवान हो गई और यह लोक देश के धनी (राजा) हो गये १८

अध्याय-३ सेकडों वर्ष पीछे वोह कोम मूसा के नियमों को और परमात्मा को भूल गई, भोग विलास में लग गई. विदेशी मूर्तिपूजक-हमदेशवाले चढ आये. इनको तावे किया. मंदिर तोड डाले, निराकार ईश्वर को पूजने मे रोका, अपने देव पुजाये हलके वर्ग को समुद्र पार किया, बच्चों को मार डाला. इसराइलियों ने फेर ईश्वर से दया मांगी १।१२.

अध्याय-४ अब वोह समय आया कि कृपालु परमात्मा ने अपना अवतार मनुष्य की योनी में लेना चाहा, ताके मनुष्य के लिये परमात्मा और मोक्ष की प्राप्ति के

लिये साधन हो १९४. थोडे दिन पीछे इसराइलियों के देश में एक निर्धन मा'बाप के एक पुत्र पेदा हुवा. सो शरीरको निरर्थक और परमात्माको महान कहने लगा ९।८ उसका नाम ईसा रखा. यह बाल्य अवस्था से ही क्षमा (तौबा) द्वारा पाप से छुटकारा होने का उपदेश करता था और एक परमात्मा का उपदेश करता था ९. जब उसकी उमर १३ वर्ष की हुई ते विवाह करने लगे.

अध्याय–५ ईसा १४. साल की उमर में सिधु नदी से पूर्व देश (हिंद) में आया आर्यों की साथ रहने लगा. पंजाब, राजपूताने में फिरा जैन लोक उसको अपने यहां रखने लगे, परंतु उनको गुमराह (ईश्वर विमुख) जान के जगननाथ की तरफ चला गया. ब्राह्मणों ने उसका आदर किया १।३. उसको अर्थ सहित वेद पढाया. झाडा फूंकी करना, भूत प्रेत निकालना और वेद शास्त्र पढाना सिखाया. ४. ईसा, जगन्नाथ, राजगढ, बनारस और दूसरे तीर्थों मे ६ वर्ष तक रहा. वैश्य और शूद्रों के साथ ज्यादे प्यार करता था उनको वेद शास्त्रों का उपदेश करता था ५. इसलिये ब्राह्मण उससे नाराज हुये. ईसा ने उनके देव पूजा करने का उपदेश न माना ६. ईसा वेद पुराण को अपौरुषेय नही मानता था. उपदेश में कहता था कि इससे पहिले धर्म पुस्तक मिल चुका है. १२. ईसा का त्रिमूर्ति (ब्रह्मा विष्णु महेश) पर विश्वास नहीं था, ईश्वर का अवतार होना नही मानता था ईश्वर को जगत कर्ता अनादि अनंत कहता था. उसने इच्छा की और सृष्टि हो गई, पानी से सूका भाग जुदा किया, † मनुष्य योनी मे ईश्वर ने आप प्रवेश किया, * ईश्वर एक रस (समचेतन) है, उसने थल जल और प्राणी और तमाम जगत को मनुष्य के आधीन किया, † मनुष्य पर ईश्वर का कोप होने वाला है; क्योंकि ईश्वरीय स्थान–मंदिरों में कुरीत कर रखी हैं + + + ब्राह्मण और क्षत्रीय यह शूद्र हो जायंगे, शूद्रों के साथ परमात्मा होगा, क्योंकि बदला मिलने के दिन † शूद्र और वैश्य को अपनी अज्ञानता के कारण क्षमा किये जावेंगे; इत्यादि उपदेश करता था १४ से २९. मूर्ति पूजा का निषेध करता था वेदों का पढना छोड दो; क्योंकि उनमें सचाई पर छुरी फिराई गई है; पडोसी का अपमान मत करों, गरीब, निर्बलों की सहायता करो; किसी की हानी मत करों; दुसरे की चीज का लालच न करो; इत्यादि उपदेश शूद्रों को करता था २७

अ–६ ब्राह्मणों ने उसको मार डालने का इरादा किया, उसे ढूंढने लगे. ईसा को खबर मिल गई; वोह रातों रात जगन्नाथपुरी मे निकल गौतम के शिष्यों

---

† तौरेत का कियन

* यह आर्य उपनिषदों की शिक्षा है

के पहाडी इलाके में (शाक्य मुनि के जन्मस्थान में) जा बसा, उनके साथ रहने लगा यहां के लेग परमात्मा के मानते थे १।२. पाली भाषा का विद्वान बना ६ वर्ष के पीछे बुद्ध के खास धर्म प्रचारक शास्त्र सीख के योग्यता प्राप्त की. ४. इस समय नेपाल और हिमालय की पहाडी छोड के ईसा राजपूताने में आ गया, मनुष्य में पूर्ण बनने की योग्यता है, ऐसा उपदेश देके पश्चिम की तरफ चला गया ९.

ईश्वर एक ही है. जगत के रचने में उसने अपने में किसी के शामिल न किया हो, ऐसा नहीं है, और न उसने अपने इरादे के किसी पर प्रगट किया है. १०. परमात्मा मनुष्यों की मृत्यु के पश्चात् उनका न्याय करेगा, किसी के भी पशु योनी में न डालेगा. मूर्ति के सामने पशुवध अधर्म है; क्योंकि दुनिया के तमाम पशु और दूसरी वस्तुओं के मनुष्य के लिये पेदा की हैं. १२. मूर्ति और मूर्ति पूजकें की निंदा. १६.

अध्याय ८ — और जब वोह फारिस (ईरान) देश में गया, ते पुजारियों ने उसके उपदेश सुनने से मना किया और उसके पकड के बडे पुजारी, पास लाये. १।२. पुजारी और ईसा के प्रश्नोत्तर (सूर्य पूजा का निषेध. नेको बदी के दो आत्मा-ऐसे ईश्वर का निषेध कयामत का प्रतिपादन. देवता पूजा का निषेध). ईसा के जंगल में छोड दिया १ से २४.

अध्याय ९ — ईसा अपनी २९ वर्ष की उमर में इसराईलियों के देश में पहोंच गया. मूर्ति पूजकों से इसराइली तंग थे ईसा ने उनको ईश्वर पर विश्वास दिलाया + + + ईश्वर की इच्छा कृत्रिम मंदिरों से नहीं थी, किंतु दिल के मदिरों से थी यही सच्चा मंदिर है + + + इत्यादि उपदेश दिया १ से १३. परमात्मा ने तुम (मनुष्यों की रूह के) अपनी सूरत पर बेगुनह-पवित्रात्मा नेक मन वाला पेदा किया है बनाने में मंदा हो ऐसा भाव नहीं है, किंतु इसके प्यार और न्याय का घर बनाया जावे, यह भाव है. १४ स्वतंत्रता से रहो, निष्काम कर्म किया करो, तो मोक्ष के पा लोगे १५।१७.

अध्याय १० — लोगें ने जेरोशिलम के बडे अध्यक्ष प्लातूस को खबर दी. ईसा, न्यायाधीश के सामने खडा किया. उसका मुकदमा हुवा. वहां उसका उपदेश हुवा + + + ईसा ने कहा कि राज्यद्रोह वाला मेरा उपदेश नहीं है, मैं इसराइली हू, मैं लडकपन में ही अपने बाप के घर से निकल गया था, विजातीयों में जा

बसा था. भाइयों के अनेक दुःख सुनके आया हूं. संतोष और धीरज दिलाता हूं मूसा के नियम समझाने वास्ते प्रयत्न किया है. १ से २१.

अध्याय ११–ह्रातूस को रूम देश के मूर्तिपूजक ने अध्यक्ष नियत किया था उस पास जाके कहा गया कि ईसा इसराइली है, राज्य विरोधी नहीं है अध्यक्ष ने डीटिक्टीव नियत किये. इधर ईसा करामात (सिद्धि), भविष्य कथन–ज्योतिष और रमल का निषेध करता था. ईश्वर पर विश्वास रखोगे तो अवश्य सहायता होगी, ऐसे संतोष धीरज दिलाता था. प्रार्थना के समय बचे होके प्रार्थना करो, ऐसा उपदेश करता था. १ से १९ तक

अध्याय १२–माता और स्त्रियें की महिमा और उनकी इज्जत का उपदेश

अध्याय १३–ह्रातूस, ईसा के धार्मिक सपवाले उपदेश से डरा और उस पर राज्यद्रोह की तोहमत दिलवाई पकडा. अंधेरी कोठडी में रख के तकलीफें दी ईसा बहुत निर्बल हो गया. फेर अध्यक्ष ने सभा करके ईसा को फांसी देने का हुक्म दिया. सभासद नाराज होके चले गये, क्योंकि अध्यक्ष का जुलम था. १ से २९.

अध्याय १४–ईसा को फांसी पर लटकाया. सूर्य अस्त होने पर ईसा का दम निकला ईसा की लाश उसके मा बाप को दी उन्होंने फांसी के पास ही गाड दिया लोगों का ठठ वहां रोने पीटने आने लगा. अध्यक्ष ने मन में भय लाके छुपी रीति से लाश निकलवा के कहीं दूसरी जगह गडवा दी. कब्र का मुंह खुला देख के लोगों में अफवाह फैल गई कि परमात्मा ने गण (फिरश्ते) भेज के लाश उठवा ली है अध्यक्ष ने ऐसा सुन के हुक्म दिया कि जो ईसा का नाम लेगा वा उसके लिये प्रार्थना करेगा उसको गुलामी और मौत का दंड दिया जायगा तब ईसा के बहुत से शिष्य इसराइलियों के देश को छोड के बाहिर जाके उपदेश करने लगे. १ से ११ तक. ग्रंथ समाप्त लिखने योग्य सार सार लिखा है.

अनुवादक.

ईसाई मंडल पहिले बर्तूलमा वगैरे १४ इंजील को प्रमाण मानते थे, अब केवल ४ ही इंजील प्रमाण मानते हैं उपरोक्त बौद्धों के कथन को इंजीलों के कथन से अधिक विश्वासनीय क्यों न समझें?

प्रयोजक.

उपरोक्त ग्रंथ से हम हमने जितना उचित समझा उतना वृत्तांत सार रूप लिया है, मूल हिंदी ग्रंथ जिसको देखना हो उपर के पते से मगवालें. कि. ?? आना है.

ईसामसीह कोई योग्य महात्मा पुरुष हुवा है. प्रतिपक्षी उसके संबंध में अन्यथा भी कह डालते हैं. जेसे कि ईसु कोई हुवा ही नहीं, ईसाइयों ने कल्पित बनाया है, ऐसा एक इंग्रेजी ग्रंथ में छापा है; परंतु यह बात पाये विना की जान पडती है ईसामसीह जेसा उपकारी पुरुष का २० वा ३० वर्ष का चरित्र न मिले और उसके आरंभ तथा अंत का मिले, यह आश्चर्य है; इसलिये उसका २० वा ३० वर्ष तक विदेश में रहना स्पष्ट होता है. **भविष्य पुराण** सन् **१८९६** ई. में **वेंकटेश्वर प्रेस मुंबई** में छपा है उसमें तिब्बत देश में शालिवाहन राजा और ईसु का संवाद होना लिखा है.

बौद्धों का उपरोक्त लेख कहां तक ठीक है, यह कहना मुश्किल है; क्योंकि (१) मुसाफिरों से सुना सुनाया है, (२) इसराइली से इतर मुसाफिरों को ईसा इस नाम से यह वृतांत केसे, कब और किस को ज्ञात हुवा उसका पता नहीं, (३) जो किसी इसराइली को ज्ञात हुवा था तो इसराइली देश में इस रूप में नहीं तो दूसरे रूप में (ईसा ने वेद शास्त्र को शोध के भी तेरेत को उनसे पहेला ईश्वरीय प्रमाणिक पुस्तक माना इ) जाहिर करते, ४. हिंदी ब्राह्मणों ने उसके रंग, उसकी भाषा और उसके उच्चारण से उसको अनार्य वा अब्राह्मण जाना ही होगा तो अनाने को वेद शास्त्र केसे पढाया होगा, ५. वेद शास्त्र का पढा हुवा (क) पुनर्जन्म की चर्चा न करे (ख) उस समय अहं ब्रह्म, जगत मिथ्या, इस सिद्धांत की जगह २ चर्चा थी उसका जिकर या विधिनिषेध न करे (ग) संस्कृत विचित्र भाषा की चर्चा न करे (घ) कयामत के दिन को मान ले वा उसकी चर्चा न करे इत्यादि का न होना कठिन है; परंतु उक्त इतिहास में इनकी हुहा नहीं है तेरेत और इंजील जेसा उपदेश है, उस समय वेद का कौनसा भाष्य प्रचलित था कि जिससे वेद में मूर्ति पूजा, पशुवध जान लिया, और वेद सचाई पर नहीं ऐसा मान लिया; किंतु जो ईसा आया होगा तो सुनी सुनाई बातों पर विश्वास खैंच लिया होगा, इसके सिवाय कोई पुरावा नहीं मिलता. **यजुर्वेद** अध्याय ४० में परमात्मा के जेसे लक्षण लिखे हैं (सपर्यगा वगेरे) वेसे उत्तम लक्षण किसी ग्रथ में भी नहीं हैं. ईसा परमात्मा का भक्त था यदि वेद पढा हुवा होता तो उनका अवश्य वर्णन करता वेद सचाई पर नहीं, ऐसा कभी नहीं कहता; परंतु वेद उपनिषद उसने नहीं पढे होंगे, ऐसा मान सकते हैं

आश्चर्य है कि हिंद में रहके वेद शास्त्र पढ के उपदेश करे, फेर भी उसका वर्णन, (जरा भी वृतांत) हिंद में न मिले. अबुलफजल और फेजी ने कपट से

सम्स्कृत पढी और कर्म कांड से इतर सब ग्रंथ (महाभारत, रामायण, गीता, स्मृति, ६ शास्त्र, ५२ उपनिषद वगेरे) फारसी में हो गये साराश छुप न सके

उपर की हकीकत से इतना निश्चय होता है कि ईसा श्री भारतवर्ष में आया होगा और फिरा होगा, बोद्ध मंडल में रहके बोध पाया होगा, क्योंकि उसका उपदेश (एक ईश्वरवाद से इतर नैतिक वा व्यावहारिक उपदेश) बुद्ध से मिलता है

साराश उपरोक्त तमाम इतिहास ठीक ठीक ही है, यह कहना मुश्किल है अब यदि उसको सत्य ही मानें तो ईसु ईश्वर का अवतार, कुंवारी से पेदा हुवा, मरने पीछे जी उठा, ऐसा मानना बेबुनियाद होगा और जो इसको किसी इसराईली की पोलीसी याने बोद्धो पास लिखाना मानें, तो ऐसा भी नहीं मान सकते, कारण के इस इतिहास में इसु का मरके जीना नहीं माना है.

खेर कुछ भी होगा हमारा आशय इसके सार लिखने में इतना ही है कि ईसु मसीह ने आर्यों (बौद्ध वगेरे) से भी तालीम पाई थी, और वोह स्वतंत्र उपदेशक हुवा है, दया, साम्यभाव, क्षमा, ईश्वर पर विश्वास, दुराचार त्याग.

ऐसे उत्तम उसके उपदेश थे, ऐसा अन्य धर्म वाले भी मानते हैं, यह बात पाठक के ध्यान में रहे. मैं ईसमसीह को बुद्ध समान मान द्रष्टि से देखता हूं क्योंकि वोह आर्य प्रजा से शिक्षित इतना ही नहीं किंतु महात्मा–साधु पुरुष था और निष्काम परोपकारी था.

एक आश्चर्य है, वोह यह है कि हिंदू लोग मुसल्मानी धर्म को नहीं मानते, उसे उच्च दृष्टि से नहीं देखते, तो भी उनमें जो पीर हुये और अच्छे दरवेश (साधु) है उनको आदर दृष्टि से मानते है, यह बात प्रसिद्ध है, परंतु ईसाई धर्म का हिंद में प्रवेश हुये लगभग ३०० वर्ष हुये हैं और १२५ वर्ष से तो अधिकाधिक है, तथापि हिंदु लोग मुसल्मानो के पीर दरवेशो समान उनके बिशप वा पादरियो को पूज्य दृष्टि से नहीं देखते–नहीं मानते, इसका कारण क्या होगा? मेरी समझ में यह आता है कि यदि पादरी लोग धर्म में पोलिसी न करते और ईसा समान साधु रूप जीवन होता तो हिंदु लोग उनको अवश्य मान दृष्टि से देखने लग जाते, क्योंकि हिंदु धर्म का पाया रेणी करणी पर है, मंतव्यमात्र पर नहीं है जो कोई राम इत्यादि को अवतार न माने, वेद को न माने और उसकी रेणी करणी उत्तम हो तो हिंदुप्रजा उसको नमेगी. (यथा बुद्धदेव को नमी). इस रीति के वर्तन को उसका अज्ञान कहो.

उसकी कमजोरी कहो–कुछ भी कहो उसकी ऐसी भावना है. ऐसी भावना दूसरे धर्मों में नहीं देखने.

यहूदी और क्रिश्चियन मत का अंतर.

(ख) उपर (क) में जो लिखा है वोह उभय संमत है, परंतु इसके सिवाय बहुतसा मतभेद है. (१) यहूदी मंलड मूसा पेगंबर को और जिसमें ईश्वरीय उपदेश है ऐसे उसकी तोरेत किताब को मानते हैं; इंजील को ईश्वरीय पुस्तक नहीं मानते, और ईसामसीह को खुदा का बेटा वा ईश्वर का पेगंबर (दूत) है, ऐसा नहीं स्वीकारते. खुतना कराते हैं. येरोशलिम स्थान को स्वीकारते हैं.. तोरेत में भविष्य में ईसा मसीह होने के वाक्य हैं ऐसा नहीं मानते. जीव को मुक्ति मूसा की कही हुई शरीयत पर चलने से और ईश्वर पर विश्वास रखने से मिलती है, ऐसा कहते हैं.

(२) ईसाइ संसार तोरेत जबूर पुस्तक को **पुराना अहदनामा** और इंजील को **नया अहदनामा** कहके इन दोनों को **बायबल** कहते हैं और दोनों को इल्हामी (ईश्वरीय उपदेश) पुस्तक मानते हैं तथा मूसा, दाऊद वगेरे को नबी मानते हैं और इसुमसीह को, कुंवारी मरयम को पवित्रात्मा का गर्भ. इ. म. प. १।१८।२. होने से खुदा का पुत्र और अवतार भी मानने हैं. इतना ही नही किंतु त्रिपुटी (तसलीम) अर्थात् बेटा बाप (खुदा) और रूहलकुरस (पवित्रात्मा) तीनों को एक मानते हैं. (योहन १।२). खुतना नहीं स्वीकारते. येरोशलिम को खुदा का मंदिर मानते हैं. और तोरेत में पशुयज्ञ (बलिदान) बहोत लिखा है उससे किनारा करते हैं. बिपतस्मा क्रिया करने से ईसाई होना स्वीकारते हैं. इसुमसीह पर विश्वास लाये विना मुक्ति (स्वर्ग प्राप्ति) नहीं होती ऐसा मानते हैं. याने शरीयत से मुक्ति नहीं होती किंतु कृपा से होना मानते हैं.

फिर्के: (शाखा).

बायबल संसार में बडे बडे ७ फिर्के (शाखा) हैं. (१) **एबुनिया**–पहिले सेंकडे में हुवा. ईसामसीह योसेफ खाती का पुत्र था. आदमी था. तोरेत सब के वास्ते है. पोलिस रसूल (ईसु का मुख्य शिष्य) के विरुद्ध थे. दाउद सुलेमान वगेरे नबीयों से नफरत और इंजीलों में मति की इंजील का स्वीकार, अन्य का नहीं. ऐसी उनकी भावना थी. (२) **मारश्यूनी**–इनका विश्वास था कि दो खुदा हैं (१) नेकी का (२) बदी का (पुराने अहदनामे वाला) जिसने ईसुमसीह को भेजा वही खुदा

जगत्कर्ता नहीं है. लूका की इंजील को मानते थे और पोलिस रसुल के नामों में से १० नाम स्वीकारते थे. (३) मानोकनेर–तोरेत देनेवाला सच्चा खुदा नहीं. नया अहदनामा मान्य है, परंतु उसमें इलहाक (सेलभेल) भी मानता था. इत्यादि (४) रोमन केथोलिक–ईसाई धर्म के तमाम फिर्कों में से यह फिर्का अब भी बडा है (६ भाग ज्यादे हैं). बायबल में अन्य नो दस किताबें इलहामी स्वीकार के अक्सर उनको मानता है. ईसुमसीह को सिजदा करना और मरयम की मूर्तिपूजा को भी कबूल करता है. * (५) यूनीटोरीयन–ईश्वर अद्वितीय (लाशरीक–अनपेक्ष) है. गुनाह के सजा देने वा पाप माफ करने का अधिकार उससे इतर किसी को नहीं है. नेक कर्म का फल स्वर्ग और बुरे का फल नरक है. प्रोटस्टंट और रोमन केथोलिक वगेरे फिर्के अच्छे नहीं हैं, ऐसी भावना वाला है. § (६) पोटक्कीन–यह १०० सदी में शाखा हुई. (७) मलक्कानिया–यह लोग मरयम को खुदा के एकत्व में मिलाते हैं. (८) प्रोटस्टंट–इस फिर्के का मूल मार्टन लूथर साहेब है. लूथर ने इंजील की बहुतसी सुधारना की. हम मूसा और तोरेत को कबूल नहीं करेंगे. तोरेत के १० हुक्मों को ईसाइयों से कुछ संबंध नहीं, उनको खारिज करना चाहिये. इ. इस फिर्के की भावना है. ‡ (कुलीयात आर्य मुसाफिर पेज २४८ जिसमें अन्य शोधक लेखकों की साक्षी देके सविस्तार लिखा है) यद्यपि परस्पर में मतभेद और लडाई भी हैं, तथापि क्रिश्चियन नेशन से इतर धर्म नेशनवाला जो मुकाबला करें तो सब एक होके मुकाबला करते हैं, यह उनमें प्रशंसनीय खूबी है. उसी (कु. आ.) ग्रंथ में तोरेत ग्रंथ का संशोधन, इंजीलों का संशोधन और इन ग्रंथों विषे उन लोगों के मत क्या हैं. † इत्यादि लिखा है तथा उन ग्रंथों के विरोधभाव दिखाये हैं; तथा ईसामसीह कोन था, ईश्वर का पुत्र वा येसोफ का. मसीह की करामातें, बायबल का ईश्वर, रोमन केथोलिक और प्रोटस्टंटो की खूनी लडाई, त्रिटी (तसलीस) क्या? ईसाई मजहब की आंतरीय दशा इत्यादि विषय सविस्तृत लिखे हैं. वे यहां लिखने की जरूरत नहीं है.

---

* जेनी, याहूदी और पुराणी तथा रोमन की और समाजी तथा प्रोट्स्टंट की प्रकृति (स्वभाव-धर्मभाव) समान है, ऐसा किसी ने स्लाक बनाया है

§ युतक्कीन था ?

‡ सुनते हैं कि इन शाखा के ५२ उपभेद हैं.

† कब बनी, किसने बनाई, कैसे बनी, किस भाषा में बनी अब मूल स्वरूप में है वा नहीं उनमें ईश्वरीय उपदेश है वा अन्य का इत्यादि.

यूं भी मानते हैं कि योहना की पुस्तक के शब्दार्थ और हैं और भावार्थ और हैं सो खुलता जाता है.

सुनते हैं कि एक फिर्का तसलीस का भावार्थ वेदांत समान (जीव ब्रह्म की एकता) मानता है.

इमेन्युअल स्वेडनबर्ग.

इस महात्मा—संत का जन्मस्थान स्टोकहोम स्वीडन, जन्म तिथि २९ जनवरी सन् १६८८ ई. मरण तिथि २९ मार्च स. १७७२ ई. ख्रिस्ति धर्म में इनकी एक शाखा है. इनका संक्षेप में मंतव्य—

(१) ईश्वर तत्त्वतः निराकार, परंतु भक्तों के वास्ते साकार और दृश्य. (२) सृष्टि का मूल मेटर (उपादान) नहीं है. (३) जीव सादि परंतु जीवन से अनत. (४) जीव और प्रकृति यह दोनें ईश्वर ने अभाव से नही किंतु अपने स्वभाव से बनाये. (५) ईश्वर जगत् जीव का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है, जीव यह ईश्वर का अंश परंतु अभिन्न है. (६) जीव का मोक्ष अर्थात् ईश्वर का सामीप्य. (७) मोक्ष के साधन उत्तम कर्म, उत्तम कर्म के विना ज्ञान और उपासना सर्व मिथ्या. (८) मोक्ष अर्थात आत्यंतिक दुःख निवृत्ति. (९) जीव का पुनर्जन्म है परंतु सो ब्रह्म के जन्म के अर्थ में. उत्तरोत्तर जन्म नहीं. नीच कर्म करनेवाले हमेशे के लिये उस कर्म के जैसे नीच नरक में ही रहता है. (१०) शरीर छोडना पडे उस पीछे मनुष्य अपने स्वभाव को नहीं बदल सकता. (११) अनेक सृष्टि हुई और अनेक होंगी. (१२) ईश्वर सृष्टि का कर्ता है. (१३) तोरेत और इंजील के सिवाय १६ यहूदी पेगंबरों के तथा लेव्र को ईश्वरीय पुस्तक मान्य हैं. (१४) ईसु-मसीह का शरीर ईश्वर कृत था. +

स्वर्ग और नरक.

(कर्ता ईमेन्युअल स्वीडनबोर्ग. इंग्लिश द्वारा गुजराती में तरजुमा करनेवाला मणीशंकर रत्नजी भट्ट स. १८९९ ई). *

+ यह मंतव्य ख्रिस्ति धर्म पालनेवाले एक मित्र से मिला है रास्त दोग वर गर्दन रावी अव्वल (कहां तक ठीक सो वोह जाने)

* उभय का उपकार मानता हूं आगे जो कोटेशन दिये हैं वोह थोडे और सार रूप में दिये हैं ग्रंथ २१४ पेज का है उसमें अंक ६०३ हैं जिसको विस्तारपूर्वक देखना हो वोह भावनगर (काठियावाड) में बी ए मणीशंकर भट्ट द्वारा संपादन कर सकता है.

प्रस्ताव. स्वर्ग वा नरक मे कोन कहने को आया है, इत्यादि विचारों से व्यक्ति बचे इसलिये १३ वर्ष हुये कि देवों के साथ मनुष्यवत् समागम करने की मुझे आज्ञा मिली है तथा स्वर्ग नरक की वस्तु देख के अनुभव कर के जाहिर करने की. ताकि अज्ञानी जाने और अश्रद्धा नष्ट हो. अं. १ पेज १ (कर्ता).

स्वर्ग में वस्तुओं की सत्ता ईझेकिएल (अं. ४० से ४८) ने देखी, **डेनियल** ने देखी, (पृ. ७ से १२), **जोन** ने देखी ‡ (प्रकरण १ से अंत तक). इ. यह सब स्वर्ग में गये और शरीर की आंखों से नहीं किंतु जीव की आंख से स्वर्ग की वस्तु देखीं; परंतु जब स्वामी की इच्छा हो तब स्वर्ग उघडाता है. १७१.

स्वामी (ईसुमसीह) **स्वर्ग का ईश्वर है.** स्वर्ग में उसने सिखाया है कि वोह (ईसु) पिता के साथ एक है, या पिता उसमें है और वोह पिता (ईश्वर–गॉड) में है. जो उसको देखता है वोह ईश्वर को देखता है. पवित्र वस्तु उसमें से निकलती है. अंक २.

सब देव मिल के स्वर्ग कहाता है. हित और सत्य स्वामी में से है. अंक ७. तमाम वस्तु उसमें से सत्ता पाती हैं ९. जो जीव दुनिया में हित और सत्य अपने में से मानता है, वोह स्वर्ग में नहीं लिया जाता. १०.

स्वामी तरफ स्नेह और पडोसी * तरफ दया, यह स्वर्ग में स्वामी का ऐश्वर्य है. स्वर्ग में सब स्नेह और दया के रूप है. उनका सौंदर्य अवाच्य है. १६।१७.

स्वर्ग में हरकोई समाज वा हरकोई देव एक दूसरे जेसे नहीं हैं, किंतु उनमें सामान्य विशेष भेद होते हैं. सामान्यतः उसमे दो २ राज्य (स्नेही और ज्ञानी). २०. और विशेषतः ३ स्वर्ग (बाह्य, मध्य, आंतर). वे मनुष्य के अंग (पेर, धड और मस्तक) समानं संबंधी हैं. २९.

आंतर का स्वर्ग अपने अंदर में है, यहां वहां नहीं है. ३३. उपर के स्वर्ग में से कोई नीचे नही उतर सकता. ३९.

स्वामी को माने, चाहे और देख सके, इतना मनुष्य के अंतर को स्वामी उत्कृष्ट कर देता है, इसलिये मनुष्य अमर भी है. इस योजना की देवों को भी खबर नहीं है. ३९.

---

‡ इसके वाक्यों से पुनर्जन्म भी टपकता है

* स्वधर्म (ईसाई धर्म) माननेवाला.

स्वर्ग में **असंख्य मंडल** होते हैं. स्नेह, हित और ज्ञान के भेद से उनमें दर्जे (चढने उतरते भेद) होते हैं. ४१।४२. स्वामी, देवों के मंडल की योजना करता है और उनको प्रेरता है. ४५. वहां स्नेह आस्था के सिवाय दूसरे प्रकार का संबंध (सगा, दोस्त) नहीं होता. मैंने कितनोंक को ऐसा देखा कि मानो कि उनको बालपन से ही पहिचानता होऊं नहीं. ४६. ज्ञानवान् देव दूसरे देवों के गुण उसकी मुख मुद्रा से जान लेते हैं. ४८. बडे मंडल में करोडों, छोटे में हजारों और अति छोटे में १०० देव होते हैं. वे जुदा मकान और जुदा कुटुंब में छूटे छूटे रहते हैं. ५०.

कोई बार एक देव मंडल एक देव जैसा जान पडता है, यह मैंने स्वामी की रजा से देखा. जब स्वामी देवों में आके दर्शन देता है तब वोह एक प्रकार से देव के रूप में देखा जाता है, इसलिये स्वामी को भी देव कहते हैं. ५२. स्वर्ग आसपास नहीं, परंतु देव अपने अंदर में देखते हैं. *याने स्वर्ग में जाना यह देवों में बडना है.* ५४. मंडल जिस हित में होय उस गुण के अनुसार, स्वामी अपने को मंडल में प्रकट करता है ५५. जहां जहां स्वामी को माना जाय और चाह है, वहां वहां स्वर्ग है. ५६.

तमाम स्वर्ग समूह को निरीखें तो एक मनुष्य को मिलता जान पडता है. इस रहस्य को दुनिया नहीं जानती, परंतु स्वर्ग में ज्ञात है. ५९ से ६४ तक.

मनुष्य की आकृति परत्वे बडे से बडे रूप में ईश्वरी–मानसिक मनुष्य हैं. मनुष्य जैसे **अवयव और** भाग हैं, मनुष्यों के अवयवों के जो नाम वेही वहां नाम हैं. **देव जानते हैं कि किस** अवयव में कोनसा मंडल रहता है. देव कहते हैं कि एक मंडल मस्तक वा उसके किसी प्रदेश में है. दूसरा छाती में तीसरा नितंब में है इ. सर्व उपरी याने तीसरा स्वर्ग मस्तक गर्दन तक के रूप में है. दूसरा छाती से नितंब तक, तीसरा पेर की अंगुलियों तक. ६५.

स्वर्ग में प्रत्येक मंडल एक मनुष्य के जैसा है, और वैसे रूप में है. मैंने देखा कि कितनेक कपटी जीव देवों का रूप धारण करके स्वर्ग में घुम गये, पीछे उनको निकाला और पीछे उस मंडल ने मनुष्य जेसा स्पष्टरूप कर लिया. ६९. स्वर्ग में कितने भी असंख्य नवीन देव दाखिल हों, परंतु वोह नहीं भराता; किंतु आते रहें तो पूर्ण होता रहता है. ७१.

हरएक देव पूर्ण मनुष्य रूप में है. *मैंने हजारों बार ऐसा देखा है कि देव* मनुष्य रूप वा मनुष्य हैं क्योंकि मैंने मनुष्यों समान उनके साथ बातचीत करी है.

मैने उनको कहा है कि क्रिश्चियन संसार इन बातोंको मन के विचार करने वाले तत्त्व मानती है. देव बोले कि यह बात हम जानते हैं. साक्षरोंमें ऐसाही मानते हैं. धर्म शिक्षक भी हकीकत नहीं जानते. ++ जो आस्था और हृदयमें सरल हैं वे स्वर्गीय मनुष्य तरीके विचार करते हैं. ७४. स्थूल इंद्रियें कुदरती दुनिया में हैं, परंतु जीव मानसिक दुनिया में है जब स्वामी की इच्छा होवे कि मनुष्य, मानसिक पदार्थ (स्वर्गादि) देखे तब इस अनुसार एक क्षण में हो जाता है. ७६.

तमाम स्वर्ग और उसका हरएक अंग मनुष्य को मिलता आता है; क्योंकि स्वामी के ईश्वरी मानुष में से स्वर्ग का प्रभव है. देवों को अदृश्य ऐश्वर्य की खबर नहीं होती, परंतु मानुष रूप में दृश्य ऐश्वर्य का अनुभव है; क्योंकि वे कहते हैं कि स्वामी अकेला मनुष्य (अन्य मनुष्य जेसा) है. ८०.

स्वर्ग की तमाम वस्तु मनुष्य की तमाम वस्तु जेसी–सम रूप हैं. ८७. तमाम कुदरती दुनिया मानसिक दुनिया के सम रूप है. सूर्य का ताप और उससे जो प्रकाशित यह तमाम सो कुदरती दुनिया है; परंतु मानसिक दुनिया स्वर्ग है. ८९. मन, बुद्धि और इच्छा संबंधी मानसिक दुनिया है. जो बाह्य, शरीर, इंद्रिय और कर्म संबंधी है वोह उसकी कुदरती दुनिया है, इसलिये जो कुदरती दुनिया में जो मानसिक दुनिया में से सत्ता मिलती है सो सम रूप कहाती है. ९०. अंदर के विचारों वगेरे के अनुसार मुखमुद्रा में, वाणी में और हावभाव में जो होते हैं वे समरूप कहाते है. ९१. इसी प्रकार उपर कहे हुये जो स्वर्ग के मंडल अमुक अंग (मस्तकादि) में कहे हैं, वे मनुष्य के उसी अवयव के सम रूप हैं. ९४. उपरोक्त स्नेही राज्य हृदय के और ज्ञानी राज्य फेफसा के सम रूप है. स्नेही राज्य स्वर्ग में इच्छास्थानी और ज्ञानी राज्य स्वर्ग में बुद्धिस्थानी है. ++ ९५ (इस प्रकार शरीर के छाती वगेरे अवयवों के साथ रूपक बनाया है). कितनेक ऐसे देखे कि जिनका चेहरा सुंदर और जीव कुरूप काला और राक्षसी था. कितनेक ऐसे देखे कि वे बाहिर से सुंदर नहीं थे परंतु उनका जीव सुंदर और दैवी था. ९९.

स्वर्ग और पृथ्वी की तमाम वस्तुओं का सम रूप है (प्राणी, वनस्पति, खनिज, सूर्य, चंद्र वगेरे पदार्थों की स्वर्ग के पदार्थों साथ रूपालंकार से सम रूपता दरसाई है). अंक १०३ से ११४ तक.

वगीचे के झाड फ़ूल फल समान स्वर्ग में मैने देखे, और जिनके साथ में था उनके साथ बातचीत कर के उनके मूल और गुण का ज्ञान सीखा. १०९. एक

बगीचा सामान्यतः बुद्धि और ज्ञान के संबंध में स्वर्ग के सम रूप है, इसलिये शब्द में स्वर्ग को ईश्वर का बागीचा कहा जाता है. ११०. जो वस्तु ईश्वरी क्रमानुसार हैं वे स्वर्ग की सम रूप हैं; क्योंकि उनका संबंध हित और सत्य के साथ है और जो वस्तु नरक के सम रूप हैं उनका संबंध अहित और असत्य के साथ है. ११३. मुझको स्वर्ग में से ऐसा कहा गया है कि मनुष्य के भूमंडल में जो सब से प्राचीन मनुष्य थे, जो स्नेही थे वे आप ही समरूपों के विचार करते थे ++ उस समय का नाम सुवर्ण (स्नेही हित) युग था. उनके पीछे जो आये वे स्वयं नहीं परंतु सम रूपों का शास्त्र में से विचार करते थे और उस समय का नाम रजत (ज्ञानी हित) युग था. उसके पीछे ऐसे आये जो सम रूपों को कुदरती हित में मानते, वोह ताम्र युग (कुदरती हित) था. उस पीछे जो आये तब सम रूपों का शास्त्र गुम हो गया. यह हित विना का कठोर युग है. ११९.

स्वर्ग में सूर्य–स्वर्ग का सूर्य स्वामी है. स्वर्ग का प्रकाश ईश्वरी सत्य है और ताप ईश्वरी हित है. सत्य और हित स्वामी में से निकलते हैं. ११७ स्वर्ग में स्वामी सचमुच सूर्य जैसा मैंने प्रत्यक्ष देखा. स्वर्गों से उपर ऊंचे दिखाई देता है. दाहिनी आंख में सूर्य जैसा और बाई आंख में चंद्र जैसा जान पडता है. ११८.

वोह दुनिया के दो पहर के सूर्य से बहुत ज्यादे प्रकाश वाला है, ऐसा रात दिन में मैंने बहुत बार देखा है. १२६. स्वर्ग का प्रकाश मानसिक है, दुनिया का जैसा कुदरती नहीं है. १२७. स्नेही राज्य में प्रकाश ज्वल्यमान (सूर्य जैसा) और ज्ञानी राज्य में सफेद (चंद्र जैसा) हैं देव दोनों स्वामी में से लेते हैं. १२८. स्वर्ग में स्वामी ईश्वरी सत्य है, सो स्वर्ग का प्रकाश है १२९.

उपरोक्त ईश्वरी सत्य को ज्ञान और समझन भी कहते हैं. १३१. ईश्वरी हित ताप है. ईश्वरी सत्य और ईश्वरी हित दोनों एक ही हैं–ऐसे संयुक्त रहते हैं. १३१. दोनों को मनुष्य के समान बुद्धि और इच्छा होती है. १३६.

जोन में कहा है कि आरंभ में शब्द था शब्द ईश्वर के साथ था और शब्द ईश्वर था. सब वस्तु उससे बनी थीं. कोई वस्तु उसके विना नहीं बनी थी. उसमें जीवन था ++ शब्द का अर्थ स्वामी (ईसु) है. शब्द ही प्रकाश कहाता है. स्वर्ग में ईश्वरी सत्य सर्वशक्तिमान् है. स्वर्ग, पृथ्वी और जो कुछ उसके अंदर है वे सब उससे बने हैं जो वस्तु इच्छा में हैं उनका संबंध हित के साथ और जो बुद्धि में हैं

उनका संबंध सत्य के साथ होता है. १३९. स्वामी सूर्यवत् ईश्वरी स्नेह–ईश्वरी हित है. १४०.

स्वर्ग में ४ दिशा हैं. सूर्य–स्वामी जहां दिखाय वोह पूर्व, उसके (स्वामी के) सामने को पश्चिम, उसके दाहिने की दक्षिण, उसके बाईं तरफ की उत्तर दिशा है. १४१. देव किसी तरफ भी जायं पूर्व उनके सामने होता है. १४३. स्वर्ग में यह भी एक चमत्कार है कि वहां किसी को भी किसी की पीठ पीछे रहने और किसी के मस्तक की पीठ देखने का अधिकार नहीं है. १४४. स्वर्ग में सूर्य और चंद्र का अंतर ३० अंश का है. १४६. नरकनिवासी स्वामी (सूर्य–चंद्र) से विमुख अंधकार को देखते हैं. १५१.

स्वर्ग के देवों की स्थितिओं–(स्नेह, आस्था, ज्ञान, बुद्धि) में फेरफार होता रहता है. १५४. देवों में मनुष्य समान स्वत्व (अहंपना) होता है, सो फेरफार स्वामी नहीं करता, वोह तो स्नेह और ज्ञानरूप में बहता रहता है; परंतु हम अपने को चाहते हैं, यह हमको स्वामी से दूर ले जाता है. १५८.

स्वर्ग में समय–स्वर्ग में वस्तुओं को स्थिति और गति है, तथापि देवों को अवकाश (आकाश) और वक्त (काल) को कल्पना वा ज्ञान नहीं होता; क्योंकि वहां वर्ष वा दिवस नहीं होते परंतु स्थिति के फेरफार होते हैं. १६२।१६३.

दुनिया का सूर्य पृथ्वी के आसपास फिरता है. स्वर्ग के सूर्य की स्थिति बदलती है, परंतु फिरता नहीं है. १६४. स्वामी देवों को हमेशे मनुष्य के साथ जोडता है. १६९.

स्वर्ग में प्रदर्शन–देवों की मनुष्य जेसी इंद्रियें होती हैं. स्वर्ग का प्रकाश और वस्तु स्पष्ट होते हैं. १७०.

स्वर्ग और दुनिया की वस्तु बराबर मिलती जान पडती है मैंने जब उनको देखा तो मानो दुनिया के एक राजा के महल में था, ऐसा जान पडता था. १७४. स्वर्ग में जो सत् नहीं ऐसे दिखाव भी होते हैं. १७५. जो देव बुद्धि में अनेक बागीचे, सुंदर झाड, फूल और फिरदोस देखने में आते हैं फूल एकत्र करके माला गूंथनेवाले होते हैं.+ १७६.

देवों के वस्त्र–देवों की बुद्धि अनुसार देवों के वस्त्र होते हैं. उनके वस्त्र प्रकाशमान और श्वेत. सबके जेसे और धोले (सफेद). १८०. दीखते हैं ऐसा नहीं, किंतु सचमुच वस्त्र होते हैं और स्पर्श होते हैं. सब के वस्त्र समान नहीं होते. १८२.

देवों के घर और मंदिर–घर यथा स्थिति अनेक होते हैं इस संबंध में देवो के साथ मैंने बातचीत करी ++ उनके घरो में मैं रहा. इस समय मैं जाग्रत स्थिति में था और अतरदृष्टि उघडी हुई थी यह घर दुनिया के जेसे हाथ के बने हुये नही होते, किंतु देवो में जितना और जेसा हित तथा सत्य, उस अनुसार स्वामी की तरफ से बखशीश में मिलते हैं. देवो के पास जो वस्तु होती हैं वे सब स्वामी की तरफ से बखशीश मिली हुई होती हैं, और जिस वस्तु की उनको जरूरत हो, वोह उसकी तरफ से मिलती है १७७ से १९० तक.

स्वर्ग मे अवकाश–(देश–आकाश)–स्वामी ने स्वर्ग में और विश्व की अनेक पृथ्वीयो में मुझको फेराया है, तब मेरा शरीर तो एक ही जगह–भूमि पर–था देवो में अनर (देश) नहीं इसलिये वहा आकाश नहीं, परतु स्थितिओ का फेरफार होता है. यही स्वर्गों में भिन्नपना है और यही स्वर्ग, नरक का जुदापना है १९३ मानसिक दुनिया में यथेच्छा समक्ष विचार में देखता है. स्वर्ग में आकाश है–सत् है, तो भी देवो की कल्पना में वोह नहीं उतरता १९५. दूर, पास, मील, मेदान वगेरे यह सब स्थिति के संबंध की वस्तु शब्द में समझी जाती है ++ १९७ दुनिया के अनुसार वहा आकाश माप में आता हो, ऐसा नही है १९८.

स्वर्ग निर्माण (नियत)–मनुष्य की उत्पत्ति स्वर्ग और दुनिया की प्रतिमा (रूप) अनुसार है उसका अतर स्वर्ग की प्रतिमा और उसका बाह्य दुनिया की प्रतिमा के अनुसार है, परतु मनुष्य ने इच्छाकृत पाप और उससे जो बुद्धि में असत्य होते हैं उनसे अपने आतरीय स्वर्ग के रूप का नाश किया है ओर उसके बन्ले नरक के रूप दाखिल किये (बनाये) हैं, इसलिये जन्म से ही उसका आतर बध हो जाता है २०२ जिस प्रकार से आंख की दृष्टि दूर वस्तु तक जाती है, वेसे ही आतर दृष्टि याने बुद्धि दृष्टि मानसिक दुनिया में अपने को विस्तार में लाती है, उसका अनुभव मनुष्य को नहीं होता २०३ स्वर्ग का तमाम रूप नहीं समझा जा सकता–अगम्य है २१२

स्वर्ग मे शासन–स्वामी मे स्नेही राज्य का शासन नीति + है. जो स्नेह के हित में से किया जाय वोह नीति है. २१४ स्वामी के ज्ञानी राज्य का शासन न्याय है ज्ञानी हित में होता है, हित तत्त्वतः सत्य होता है, सत्य न्याय होता है. २१५ इतर का हित करना यह सेवा है ऐसे पुरुष स्वामी में से मान और यश को पाने

हैं. २१८. अंकुश रखने वास्ते नरक में भी शासन है, सो शासन अपनी इच्छा में से प्रभव के। पाता है. जो वैर, क्रूरता वगेरे करता है, उन पर शासक रखे हैं. २२०.

स्वर्ग में ईश्वरीपूजा–स्वर्ग में पृथ्वी के अनुसार सिद्धांत, उपदेश और देव मंदिर हैं. यह समान हैं (जुदा जुदा प्रकार के सिद्धांत वगेरे नहीं है.) २२१ मंदिरों में मैं गया, सिद्धांत और उपदेश सुने. वहां उपदेशक आंतर प्रकाश में होते हैं, ज्ञानी राज्य में देवालय पत्थर के बने हुये होते हैं, स्नेही राज्य में लकडे के होते हैं; क्योंकि पत्थर सत्य का और लकडा हित का समरूप है स्नेही राज्य में उनके। परमेश्वर का घर कहते हैं. २२३. तमाम स्वर्गीय सिद्धांत का तत्त्व यह है कि **स्वामी के ईश्वरी मानुष को कबूल करना** (मानना). २२७.

स्वर्ग के देवों की शक्ति–स्वर्ग में जो कोई वस्तु प्रतिरोध करे वा दूर करने योग्य हो तो देव उसके। इच्छामात्र वा नजर से दूर फेंक देते हैं; यह मैंने देखा है. "उसने तमाम सेना का नाश किया" इत्यादि किताब में भी बांचते हैं. ++ २२९. स्वामी की तरफ से जो ईश्वरी सत्य पसरता है उसमें सब शक्ति हैं, और देवों में स्वामी की तरफ से जितनी मिलें उतनी शक्ति हैं. २३२. हितजन्य सत्यों में सब शक्ति हैं, पापजन्य असत्यों में कोई शक्ति नहीं होती. २३३.

देवों की भाषा–देव, दुनिया के मनुष्य समान बातचीत करते हैं. कहीं मित्रवत् और कहीं अजाने समान उनके साथ बातचीत हुई हैं. २३४. देवों की भाषा मानुष भाषा के अनुसार स्पष्ट शब्दों की बनी हुई है, कारण कि देवों के मुद, जिह्वा और कान हैं, उनके। मानसिक वातावर्ण भी है. वे श्वास लेते हैं, मनुष्यवत् बोलते हैं. २३५. तमाम स्वर्ग में एक भाषा है, वोह सिखाने में नहीं आती, किंतु प्रत्येक देव के अंदर रोपित होती है वोह उसके स्नेह और विचार में से पसरती है. २३६. देवों ने यत्न भी किया परंतु वे मनुष्य की भाषा का एक भी शब्द नहीं बोल सकते. मनुष्य की प्राथमिक भाषा दैवी भाषा से मिलती थी. हिब्रु भाषा कितनेक विशेषों में देव भाषा से मिलती आती है. २३७. देवों की बातचीत सुंदर और सुखद होती है. २३८

स्वर्ग में लीपी–स्वामी ने शब्द के वास्ते व्यवस्था की है. शब्द ईश्वरी सत्य है, और वोह स्वामी के उतारे हुये हैं और वोह यथाक्रम स्वर्ग में बढ़ते हैं. देव उसके। बांचते हैं, उपदेश करते हैं. स्वर्ग और पृथ्वी में शब्द (ध्वनि) समान हैं, परंतु स्वर्ग में उसके मानसिक अर्थ हैं. २५०. स्वर्ग में लिखान देवों के विचारों में

से स्वाभाविक कहते हैं. २६२. संख्या (अंक) भी शब्दवत् पदार्थों की बोधक होती हैं, ऐसा मैंने देखा. २६३. जिनको स्वर्ग के स्वभाव की खबर नहीं है वे उनकी भाषा और लिपी मानने को अशक्त हैं. २६४.

देवों का ज्ञान—अवरणीय है. २६९. तीसरे स्वर्गवाले देव आस्था रखना यह बात नहीं समझते. वे कहते हैं कि "मैं अनुभवता हूं, देखता हूं कि यूं और ऐसा है" हां, पहिले स्वर्गवाले सत्य संबंधी विचार करते है और पीछे निर्णित को आस्था का विषय बताते हैं. २७०. स्वामी का ईश्वरी ज्ञान अनंत है. २७३.

देवों की सरलता-संसारी बालकों की सरलता (आर्जव) बाह्यवत् अंतर रूप नहीं है. २७७. ज्ञान की सरलता सची सरलता है. हित को चाहना, इच्छना और करना यह स्वामी को चाहना है, और सत्य को चाहना यह पडोसी को चाहना है, ऐसा देव समझते हैं और संतोषी होते हैं. २७८. सरलता स्वामी की तरफ से प्रेरित होती है. २८०.

स्वर्ग में शांति—स्वर्ग में शांति मैंने भोगी है; इसलिये वर्णन कर सकता हूं. मनुष्य के शब्द उसे यथावत् वर्णन करने के पात्र नहीं हैं, परंतु मुकाबला करें तो उस जेसी है वेसी; या जो परमेश्वर में संतुष्ट हैं, वे जो मानसिक विश्राम भोगते हैं उसके संबंध में है. २८४.

स्वर्ग का मनुष्य जाति के साथ संयोग—सब हित परमेश्वर में से है, और पाप अब पतित में से है. जो देवालय के सिद्धांत, सत्कर्म और धर्म को स्वीकारता और उस अनुसार वर्तता है, उसको स्वर्ग के साथ संयोग होता है और पापी जीवों को नरक के साथ. २९१. पापी अपने पापों से छूटके पुनारुपित नहीं हो सकता. २९३. जो पुनारुपित और पुनर्जनित होने के पात्र हैं उनके साथ सरल ज्ञानवान् जीवों को स्वामी जोडता है. जो उसके पात्र नहीं, उनके साथ अच्छे जीवों को जोडता है. २९९. देवों ने मुझ से कहा कि दुनिया में सब हित ईश्वर की तरफ से हैं, ऐसी आस्था का अभाव है वा कथनमात्र है. विशेषतः देवालय (मंदिरों) में ३०२.

मनुष्य का शब्द द्वारा स्वर्ग के साथ संयोग—मनुष्य ऐसी रीति से उत्पन्न किया गया है कि स्वामी के साथ उसका संबंध और संयोग दोनों हैं; परंतु देवों के साथ सहवास मात्र है. ३०४. मनुष्य अपने और दुनिया के स्नेह होने से उसका स्वर्ग साथ का संबंध टूटा, इसलिये स्वामी ने स्वर्ग के आधार तरीके उसकी जगह शब्द की योजना की. ३०९. जब समरूप और प्रदर्शन शास्त्र का लोप हुवा तब

शब्द लिखने में आया. जिसमें सब स्फोटन, और वाक्यार्थ में अर्थ समरूप. जब कि मनुष्य अक्षरार्थ–बाह्यार्थ समझता है, तब देव उसका आंतर–मानसिक अर्थ अनुसार ग्रहण करते हैं. ३०६ किस प्रकार शब्द द्वारा मनुष्य स्वर्ग के साथ जुडाता है उन शब्दों के थोडेक वाक्य यह हैं — "मैं (जोन) ने पवित्र नगर जेरुसेलम परमेश्वर में से स्वर्ग में होके नीचे आता देखा–नगर चोरस था. देव ने नापा तो १९०० माइल था + + " यहां स्वामी से प्रकाशित जेरुसेलम इत्यादि भावार्थ है + + ३०७. जिनके पास शब्द नहीं और देवालय से बाहिर हैं वे भी शब्द द्वारा स्वर्ग के साथ जुडाते हैं; क्योंकि स्वामी का देवालय सर्वत्र है. सार यह है कि जो ईश्वरी सत्ता को कबूल करते हैं और दया में जीते हैं वे स्वर्ग के पात्र हैं. ३०८.

स्वर्ग और नरक मनुष्य जाति में से हैं–यह बात क्रिश्चियन संसार नहीं मानती; क्योंकि उसमें ऐसा माना गया है कि अनेक देव सृष्टि के आरंभ में पैदा किये गये. शेतान एक देव था जो बलवाखोर होने से उसके आश्रित (आदम) के साथ उसको स्वर्ग से निकाला गया, इसलिये मुझको ऐसा कहने को इच्छते हैं कि स्वर्ग और नरक दोनों मनुष्य जाति में से हैं. देव मनुष्य ही हुये हैं. सब अवपतित नरक में शेतान कहाते हैं ३११ मेरे जीव के अंतर (परदे) स्वामी द्वारा उघडे हैं. जिनको शरीर के जीवन में किसी वक्त जाना हो, ऐसों के साथ उनके मरने पीछे बातचीत करने का मुझको अवसर मिला उनमें से कितनोंक के साथ बहुत दिन रहा हूं इस प्रकार एक लाख से ज्यादे के साथ बातचीत हुई है तिन में से बहुत से स्वर्गवासी और बहुत से नारकी थे वे पहिले के मुवाफिक देहधारी हैं और जीते हैं एक दुनिया में से दूसरी दुनिया में गये, इतना ही है; क्योंकि उनके तन, इंद्रिय, बुद्धि, इच्छा और विचार पूर्ववत् हैं ३१२

ईसु शरीरसहित उठा पिता में से उसको जो आत्मा मिला सो ऐश्वर्य आप था ३१६.

देवालय से बाहिर की प्रजा–(ख्रिस्ति धर्म से इतर प्रजा) साधारण मत है (ख्रिस्ति संसार में) कि जो देवालय से बाहिर (जेरुसलम को न मानने वाले) हैं, मूर्तिपूजक या विजातिय कहाते हैं वे न तिरेंगे (स्वर्ग वा मुक्ति न पावेंगे); क्योंकि उनके पास शब्द नहीं है (तोरेत–इंजील नहीं मानते), इसलिये उनको स्वामी (ईसु) संबंधी अज्ञान है (ईसु पर विश्वास रखने वाले को वोह ईसु तारेगा यह अज्ञान है) परंतु यह निश्चित है कि वे भी तिरेंगे; क्यों कि स्वामी की दया सर्वत्र है. और

खिस्तिओं के मुवाफिक मनुष्य रूप मे जन्मते है, उनको स्वामी संबंधी जो अज्ञान है उसमें उनका दोष नहीं है ३१८. एक ईश्वरी सत्ता कबूल करना और उस अनुसार वर्तना यह मनुष्य के अंदर ही स्वर्ग है. अतः कोई भी हो जिनके अंदर यह स्वर्ग है वोह मरने पीछे स्वर्ग में जाते हैं ११९.

स्वर्ग में बालक– कितनेक ऐसा मानते हैं कि जो बालक खिस्ति धर्म में जन्मते हैं उनको स्वर्ग मिलता है, उससे इतर को नहीं; परंतु एसा नहीं है किंतु किसी धर्म में वा धार्मिक मा बाप के वा पापी मा बाप के जन्मा हो; जब वोह मर जाता है तब स्वामी से स्वीकारित होता है और स्वर्ग में शिक्षण पाता है. ईश्वरी क्रमानुसार हित और सत्य सीखता है. फेर यथा बुद्धि और यथा ज्ञान देव पदवी को प्राप्त होता है. क्योंकि बालक निर्दोष था, अतः उसको नरक नहीं हो सकता कारण कि मनुष्य स्वर्ग के वास्ते है ३२९. बालक मरा कि तुरत स्वर्ग में ले जाया जाता है और कोमल देवीओं को सोंप दिया जाता है. उभय में माता संतान जेसा स्नेह हो जाता है ३३२. वे स्वर्ग में जन्मे हैं और हित और सत्य की विद्या मे मानसिक जन्म सिवाय अन्य जन्म को नहीं जानते ३४९

स्वर्ग में ज्ञानी और अल्पज्ञानी– जिसने सत्य और हित को अपने वास्ते चाहा वे स्वर्गीय हैं. उनमें से जिसने ज्यादा चाहा वे ज्ञानी जिसने थोड़ा चाहा वे अल्पज्ञानी ++ ३५०.

स्वर्ग में धनवान और गरीब– जो आस्था और स्नेह दया में जीता है उसके लिये स्वर्ग है; फेर वोह श्रीमंत हो वा गरीब हो ३५७।३६०.

स्वर्ग में लग्न– स्त्री पुरुष इन दो के मन का संयोग लग्न है. बुद्धि और इच्छा यह दो भाग मिला हुआ मन है. पति बुद्धि, स्त्री इच्छा. इन दोनों का संयोग कि जो मानसिक है सो शरीर के उतरते तत्त्वों में उतरता है तब वोह स्नेह रूप में ज्ञान होता है और इसको लग्नस्नेह कहते है ३६७. पुरुष बुद्धिमान होके उसमें से विचारने के लिये और स्त्री इच्छावती हो के उसमें से विचारने के लिये जन्मे है. सत्य और आस्था बुद्धि के है, हित और स्नेह इच्छा के है ३६८. सत्य और हित का संयोग. लग्न स्नेह है, यही बुद्धि और इच्छा का संयोग है ३७१

स्वर्ग में देवों का उद्योग– कोई देव बालको की संभाल करता है. कोई उनको तालीम देता है इ. ३९१.

जीता है. ४३३. मरने समय निद्रा और जाग्रत की दरमियानी स्थिति में लाया जाता है. हे, हूं—इस सिवाय कुछ नहीं जानता. इंद्रियें होती हैं. ४४०.

मरे हुये मनुष्य का पुनरुत्थान और अमरत्व— स्थूल देह से जुदा हुवा. पीछे दूसरी दुनिया में लाया जाता है ४४९. हृदय श्वास का चालन बंध होना और पुनरुत्थान हो जाना, यह अकेले स्वामी द्वारा होता है. ४४७.

मृत्यु पीछे मनुष्य— शरीर त्याग ने पीछे मनुष्य रूप में रहता है. ऐसों के साथ मैंने वातचीत करी हैं ४५६.

शरीर सिवाय कुछ नहीं छोड जाता— मरते समय स्थूल शरीर छोड जाता है. उससे इतर कुछ नहीं छोडता. स्मृति, विचार, अनुराग, इंद्रियें यह सब जीव के साथ होती हैं. मुझको यह अनुभव बहुतबार हुवा है.

मृत्यु पीछे मनुष्य की क्रमशः तीन स्थिति— बाह्य, आंतर, और शिक्षण यह तीन हैं. उनका बयान. अच्छे जीवों के साथ किये हुये पाप साथ नहीं आते. इस विषे ऐसा जानने में आया कि वे सत्य से विरोधी के संबंध में कोई उद्देश के वास्ते होते हैं, पापी हृदय में से नहीं होते; परंतु जो पाप, माता पिता के वारसे में से मिले हैं उनमें से होते हैं. अंतर से बाह्य स्थिति मे आवे तब उनमें फंसता है. ४९१ से ५११. जो नरक मे जाने योग्य हैं वे शिक्षण नहीं पा सकते. स्वर्ग में जाने योग्य हैं वे शिक्षण पाते हैं, यह तीसरी स्थिति है ५१२. स्वर्ग मे जाने योग्य हो तब सन के जेसे सफेद वस्त्र पहना के स्वर्ग में ले जाते हैं. चोकीवाले देवों को सोपने में आते हैं, पीछे दूसरे देव ले जाते हैं, मंडलो में फिराते हैं. पीछे स्वामी द्वारा उसके योग्य मंडल में दाखिल किया जाता है. ५१९

स्वर्ग प्राप्ति के साधन कठिन नहीं हैं—संसार त्याग, उपरति, मानसिक चिंतवन, ईश्वर, उद्धार और अमर जीवन संबंधी धार्मिक निदिध्यास, प्रार्थना वा धर्म पुस्तक का पठन पाठन—यह स्वर्ग प्राप्ति के साधन बताते हैं. परंतु सत्य जुदा ही है, ऐसा मेरे अनुभव में और देवों के संभाषण से सिद्ध हुवा है. त्याग और मानसिक जीवन शोकातुर जीवन (और टेव) प्राप्त करता है; वोह स्वर्ग का आनंद नहीं ले सकता; इसलिये चाहिये कि दुन्यवी फर्जों का अदा करना, उससे मानसिक जीवन ग्रहण होता है. उससे स्वर्ग के वास्ते तैयार हो सकता है. ५२८.

नरक—स्वामी नरकों का शासन करता है. नरक, स्वर्ग के समान मंडलों

में विभक्त हैं. ९४१. सब भय से शासित होते हैं, और शिक्षा यथा पाप नरम वा सख्त होती हैं. ९४३.

स्वामी नरक में नहीं डालता परंतु पापी जीव अपने आप को नरक में डालता है. ईश्वर स्वयं हित, स्नेह और दया रूप है; इसलिये अहितादि नही कर सकता,—उसके स्वभाव से विरुद्ध है. ९४९. पापी अपने पाप करने में स्वयं कारण है, स्वामी नहीं; क्योंकि स्वामी में से तो हित होता है, इस वास्ते जो पाप में है वोह नारकी होता है. वहां स्वामी का संबध राजा न्यायाधीश वा कायदे जेसा है. ९५०.

स्वस्नेह और संसार स्नेह, यह नरक के हेतु जो पाप उनके जनक हैं. अन्तर को चहेरे, शरीर वाणी और हावभाव से बाहिर में जान लिया जाता है. तिरस्कार दृष्टि, अपमान में धमकी देना, द्वेष, वैर, हिंसा, निर्दयता, खुशामद-पसंदि—अभिमान यह मनुष्य को नरक में डालते हैं. स्वामी तरफ का स्नेह और पडोसी का स्नेह स्वर्ग में सर्वोपरी है. स्वर्ग बनाता है. ९५४. स्वर्गीय स्नेह उपयोग वास्ते अपने लिये चाहने में है. अर्थात् स्वधर्म, स्वदेश, स्वमंडल, स्वदेशबंधु, इनके हित के वास्ते जो काम करता है उसके चाहने में; कारण कि यह स्वामी का और अपने पडोसी का स्नेह है; क्योकि सब उपयोग और सत्कर्म ईश्वर में से है, और जिसको चाह (प्यार) है वोह पडोसी है + + ९५७.

नरकों का प्रदर्शन उनके प्रदेश और उनकी अनेकता अंक ९८३ में है. स्वर्ग नरक के बीच का समस्थान का वर्णन अंक ९८९ में है.

उक्त समस्थान द्वारा मोक्ष—क्योकि यहा हित अहित, सत्य असत्य इत्यादि का विवेक हो जाता है + + उससे मोक्ष हो जाती है. मोक्ष प्रत्येक मनुष्य को स्वामी की तरफ से मिलती है, और कभी भी पीछे लेने में नहीं आती. इस वास्ते मोक्ष अपना नहीं परंतु स्वामी की तरफ से है. अंक ९९७ से ६०३ तक. ग्रंथ पेज १३२ तक इति.

अपवाद–(शोधक).

स्वीडनबोर्ग के उक्त लेख में जो परस्पर में विरोध है और जो अश कल्पना मात्र है उसकी निरीक्षा आज १९, १६ वर्ष पहिले हुई थी, यहा उसका सार सार लिखते हैं उसे उक्त अंको का विषय याद मे रख के योज लेना चाहिये —

ख्रिस्ति धर्म मे जीव–आत्मा को ईश्वर कृत माना है. अतः जेसा बनाया, जेसी उसमें योग्यता रखी, जेसे उसको साधन दिये वेसे जीव (मनुष्य) वर्तता है,

इसलिये जीव जवाबदार नहीं ठेरता, उसे स्वर्ग नरक मिलने का पात्र नहीं मान सकते. जो ऐसा मानें कि बना के नेकबद का ज्ञान दिया, तो जन्माने के पीछे क्यों नहीं याद में रहने दिया. जो कहो कि रसूल और शब्द द्वारा बोध दिया तो उस अनुसार वर्तन क्यों नहीं किया? क्योंकि योग्यता तो दत्त थी. कुकर्मी, मूर्ख, बायबल न मानने वाले, पुनर्जन्म मानने वाले वा अनीश्वरवादी नास्तिकों के यहां क्यों जन्म दिया? किसी को सुवर्ण युग में किसी को कठोर युग (अं. १.१९) में क्यों जन्म दिया? बालक को जन्म देके बाल्यावस्था में मार डाला ऐसा व्यर्थ काम क्यों किया? जेसे बालक को स्वर्ग में ले गये वेसे दूसरों को क्यों न ले जाया जाय? माता पिता के पाप का भोग संतान को मिलें (४९१) * ऐसे नियामक को अन्यायी वा अज्ञ क्यों न कहा जाय? हमको पेदा क्यों किया? क्यों दुःख में डाला? इत्यादि अनेक सवाल हैं, उनका उत्तर नहीं बनता; इसलिये जीव पूर्व में था उसके पूर्व के कर्मानुसार जन्म देना मानें तो पूर्व जन्म सिद्ध होने से ईसाई मत का विश्वास भंग होता है. और जो सब सवालों का यह उत्तर दें कि ईश्वर सर्वशक्तिमान स्वतंत्र है, उसकी इच्छा में आया वेसा किया है तो ईश्वर अन्यायी–विषय दृष्टि वाला ठेरता है, परंतु ईश्वर ऐसा नहीं होना चाहिये; किंतु अपने किये हुयों को स्वर्ग ही देवे ऐसा होना चाहिये; परंतु नरक मिलना भी माना है; इसलिये ऐसा मानें कि आद्य में आदम–हवा बना दिये, पीछे बीज वृक्ष, वृक्ष बीज, इस प्रकार मनुष्य सृष्टि चली है, वे यथा कर्म फल भोगते हैं, तो भी वही सवाल आ खडा होगा कि जेसा बीज बनाया और सामग्री दी वेसे वृक्ष और बीज हुये हैं, अतः जवाबदार नहीं. जो ऐसा मानें कि हमको ईश्वर और उसकी शक्ति के भेद का ज्ञान नहीं है, तो फेर अनुपादान उसने पेदा किया वगेरे कल्पना क्यों मानते हो? नहीं मान सकते. जो कहो कि जितना उसने ज्ञान दिया उतना कहते हैं तो दूसरे उपादानजन्य सृष्टि और पूर्व जन्म बोधक शब्द ईश्वर दत्त मानते हैं वोह भी मानना चाहिये. पशु पक्षी को भी ज्ञान, दुःख सुख होता है और बुरे भले कर्म उनसे बनते हैं तो उनको स्वर्ग नरक क्यों न मिले? ईसाई मत से इसका उत्तर नहीं हो सकता. सारांश उपरोक्त बातों का विचार करें तो उक्त स्वर्ग–नरक मानना कल्पना मात्र है ऐसा ठेरता है. क्योंकि उसके रचने का मूल पाया ही नहीं जान पडता.

* चांदी-आतशक-शीतला अर्दा वगेरे रोग मिलना पाप के हेतु काम क्रोधादि गुणो का उतरना.

स्वर्ग मे पीठ का अदर्शन (अं १८१) और बालक देवी को सोपना (३३३), यह विरोध है, क्योकि उनके पालन पोषण मे पीठ का दर्शन, स्पर्शन अवश्य होगा. स्वर्ग मे सब कुछ कहा परंतु खान पान की चर्चा नही. यदि खान पान मानसिक तो शौचादि भी मानसिक क्यो न माना जाय? दुर्गंधादि भी मानसिक माननी होगी तो ऐसा हो तो स्वर्ग भी एक प्रकार की सुधरी हुई दुनिया, परंतु बंधनकारक हुई.

विचली दुनिया मे अच्छे को सत्य हित का, बुरे मे अहित, असत्य का संयोग कराना (४२९) अन्याय नहीं तो क्या? उनकी जबाबदारी उन पर रखना चाहिये था. परंतु जो आरंभ मे ही यथेच्छा बना के जन्म देवे तो यहा अन्याय करे इसमे क्या आश्चर्य मानना?.

मनुष्य की उत्पत्ति स्वर्ग नरक की प्रतिमा जेसी क्यो की? जन्म से ही अंतर क्यो बंध किया (२०२)? इसका उत्तर ईश्वर का अन्याय वा तो पूर्व जन्म के कर्म का फल, यह हो सकता है. सो दोनो उत्तर ईसाई मत के विरुद्ध है.

इसु क्रिस्ति के ईश्वरी मानुप को स्वीकारना (२०७). इसमे प्रमाण क्या? इसु के पूर्व के सब मनुष्य क्या नरक मे ही गये? ऐसा नही मान सक्ते. जो वोह ईश्वरी सत्य था तो प्रतिपक्षियो द्वारा इसु को सूली नसीब न होती.

हिब्रु भाषा तो संस्कृत से तीसरी पीढी मे है, ऐसा सिद्ध हुवा है (१३७) इससे जान पडता है कि स्वीडनबर्ग का स्वर्ग ३००० वर्ष से उपर का नहीं है.

ईश्वर को न मानने वाले ग्रीस के सब फिलोसोफर क्या नरक में गये होगे ३१९). जो ऐसा हो तो ईश्वर खुशामदपसंद और अन्यायी ठेरेगा.

स्वर्ग में भी हित और सत्य की तथा उनके सीखने की जरूरत है तो फेर वोह भी दुनिया जेसी वस्ती ठेरी. जबके स्वर्ग मे देवो के छोटे बडे दरजे हैं तो वोह स्वर्ग क्या? परंतु बात यह है कि जीव के पूर्वोत्तर जन्म न मानने से ऐसी ऐसी दूषित कल्पना करनी पडती है

जब कि सत्य समझने और पाप नाश करने की शक्ति दी गई (४२९), तो फेर वे नरक के पात्र केसे रह सकते हैं? नहीं फेर भी नरक में जाते है तो इसका यह अर्थ ठेरा कि शक्ति देने में वैषम्य भाव वा तो पूर्व जन्म का भोग. परंतु दोनो अर्थ ईसाई सिद्धांत से विरुद्ध है

अब मोक्ष वा स्वर्ग प्राप्ति और नरकवास के संबंध में विचार करे—यदि मोक्ष वा स्वर्ग नरक से अनावृत्ति है (५९७) तो जब तक जीवो का अंत आने से

सृष्टि व्यर्थ हो जायगी; क्योंकि अनंतत्व का अभाव है (त. द. अ. २. सू. १८७ और अ. ३ सू. २४० याद करो). सादि कर्म का फल अनंत नहीं हो सकता. जो उत्पन्न हुवा वोह नाश होगा, इस नियम वश जीव नाशवान होने से स्वर्ग वा नरक नित्य प्राप्त होना नहीं बनता. कितना बडा अन्याय है कि जीवों को स्वर्ग प्राप्ति करने वास्ते पुनः साधन (जन्मादि) नहीं मिलते और अपने बनाये हुये होने से जीव जवाबदार नहीं तो भी ऐसे अनपराधियों को नित्य के लिये नरक देता है!!

बात यह है कि जब सृष्टि ७००० वर्ष से पूर्व की नहीं, और ईश्वरीय ज्ञान अनंत, अनुपादान सृष्टि, यथेच्छा जीवों को जन्म और स्वर्ग नरक देना मानें तो फेर अनेक अयुक्त कल्पना ही करनी पडेंगी. अस्तु. यहां तक तो सिद्धांत पक्ष में बातचीत हुई. अब आगे —

स्वीडनबोर्ग महात्मा.

सिद्धांत कैसा भी हो परंतु हम स्वीडनबोर्ग श्री की प्रशंसा किये विना नहीं रह सकते; क्योंकि उनका यह ग्रंथ, जो खिस्ति संसार में साधारण मंडल है उसको ईसाई धर्म में आस्था कायम रखने और ईसाई धर्म के प्रसार करने में उत्तम शस्त्र है १, जो परधर्मी भी इस ग्रंथ को विचार पूर्वक पढेगा तो उसको प्रयोजक की रचना और कल्पना की लिज्जत अवश्य प्राप्त होगी २, स्वीडनबोर्ग श्री महानुभाव, शुद्ध हृदय, विश्वासी भक्त महात्मा और विद्वान है तथा ईसाई धर्म को मन से चाहता है, यह बातें उसकी कल्पना, रचना और योजना से टपकती हैं.

प्रार्थ.

स्वर्ग नरक ग्रंथों में जो विषय है वोह फिलोसोफी का विषय नहीं है परंतु धर्म संप्रदाय का विषय है, जिसका संबंध दर्शनसंग्रह से है और जीव संबंधी यह विषय दूसरी संप्रदायों में भी चर्चा है. यथा आर्य मंडल के उपनिषद, नासकेत पुराण में कहा गया है तथा थीयोसोफी (एनी बीसांत कृत पुरानी प्रज्ञा) मंडल में तो इस स्वर्ग नरक ग्रंथ से भी उमदा प्रकार से चर्चा है; जिसमें टेबल कुरसी भी मिलती हैं और इस स्वर्ग से आगे निर्वाण याने मोक्ष में जाना बताया है. एतदृष्टि यह विषय यहां दाखिल किया है. पाठक मुझ को क्षमा करेंगे.

मनुष्य जो देखता, सुनता, बांचता, जैसे फोटो देखता, जैसे विचार मन में घडता, जैसी भावना–वासना रखता है और जैसा स्वप्न में देखता है उसी अनु-

सार विषय उसको साधन प्रसंग में जान पडते हैं. यथा जब अंतर त्राटक करे या षट्चक्र की साधना करे वा मन को निरुद्ध संस्कार की अवस्था में लावे तब दृष्ट श्रुतादि के अनुसार—यथा संस्कार ईश्वर में नाना पदार्थ बनके देखने में आते हैं और उन संस्कारों के इधर उधर जुड जाने से नवीन प्रकार भी देखने में आता है, यहां तक कि जागते हुये ही अंदर में स्वप्न सृष्टि समान शब्दादि पंच विषय और नाना रूप की नवीन दुनिया जान पडती है (संतमत में यह प्रकार बांच चुके हो)

स्वर्ग नरक ग्रंथ, ईसाई धर्म की निष्ठा कायम रहने वा इस धर्म के प्रचार वास्ते कल्पना, नावल, रूपालंकार, या संतमत में जेसे सूक्ष्म सृष्टि (मानसिक सृष्टि) की सेर (यात्रा) लिखी है वेसा दर्शन है वा क्या? इस निर्णय करने में यहां प्रयोजन नहीं है, किंतु इतना जरूर कहेंगे कि संप्रदाय वालों को अपनी संप्रदाय दृढ कराने वा उसके प्रचार करने वास्ते ऐसे मनोहर रूप में स्वर्ग नरक बताने चाहिये, ताकि संप्रदाय की उन्नति हो, अथवा तो ऐसी कल्पना—रचना वा मान्यता से किनारा करना उचित है ताकि कोई संशय वा अपश्रद्धा का प्रास न हो.

इस ग्रंथ में जीव रचित, स्वामी (ईसु) स्वर्ग का राजा, हित—सत्य—और प्रमाण तथा मोक्ष—यह सब ईसु की तरफ से, बायबल का शब्द और स्वर्ग नरक की बातें—छोड के प्रयोजक प्रशंसा करने योग्य है, क्योंकि कुछ भी हो इस ग्रंथ में से इतनी बातें प्राप्त हैं—

"ईश्वर में आस्था, मनुष्य प्रेम, कर्तव्य हित, * ज्ञान प्राप्त करना, धैर्य रखना, सरल भाव से रहना, बुद्धि विद्या की वृद्धि करना, सौम्य हृदय होना, नम्र (नरम) भाव होना, पडोसी † को अपने से ज्यादा जानना, पापरहित होना, अपने कुदरती धर्म अदा करते रहना, तिरस्कार न करना, सत्यनाम धनकी न देना, द्वेष न करना, विलास न रखना, हिंसा न करना, निर्दय और क्रूर न होना, गुस्सेखोर प्रमादी न होना, अभिमान न रखना, और इसपर ‡ —आदत इत्यादि की

* [illegible]

† [illegible]

‡ [illegible]

उन्नति करना" इतना उपदेश इस ग्रंथ में से ग्राह्य है. इतना ग्रहण करने वाला हर कोई धर्म मत पंथ वा जाति वा देश का हो वोह मोक्ष होने के साधनों का पात्र हो सकता है और उत्तम पुरुष हो जाता है. समग्रहवाद अ. ४ में यह सब बातें लिख आये हैं.

रोमान्स ऑफ दी टू वर्ल्डज.

(दो दुनिया का वृतांत).

यह ग्रंथ इंग्रेजी भाषा में है. मडम मेरीकोरेली (इंगलेंड देश गत लंदन निवासी) का बनाया हुवा है. इसमें से कुछ सुना सो लिखता हूं, * जो सार सुना उसका संबंध संत मत से संबंध रखता है, इसलिये इस विषय को संत मत में लगा लेना चाहिये.

यह मडम संशयात्मक और बीमार रहती थी. शोध करती फ्रांस के फिलोसोफर 'हिलिओवास' के पास गई, उसने उसको नींद दिलाई. उस निद्रा में उसने जो देखा उसका सार—

१–स्थूल शरीर यहां पडा है. सूक्ष्म शरीर से सेर करने चली.

२–गुरु के गृह में गई. वहा २०० वर्ष की उम्र है, वहा के शरीर मनुष्य जैसे हैं, परंतु उनको रोग नहीं होता, वृद्धावस्था नहीं होती. कमल के फूल समान मोत होती है, उनका परमेश्वर में पूरा विश्वास होता है.

३–शुक्र के ग्रह में गई, वहां के मनुष्यो का रंग क्रमजी है, वहा का राजा विद्वान है, जो विद्वान हो वोही वहां का राजा बनाया जाता है, शरीर मनुष्य जैसे हैं.

४–चद्रमा के प्रदेश में गई, वहां भी मनुष्यों की वस्ती देखी.

५–सूर्यलोक में गई, तेजस्वी लोग वहा रहते हैं.

६–एव अन्य ग्रह उपग्रह का वयान किया है.

७–उत्पत्ति नाश (मोत) सब जगह पाई और परिवर्तन का नियम सब जगह देखा.

८–इलेक्ट्रिक थीयरी इसने निश्चय बताया है अर्थात् जेसे बिजली से तार जुडे हुये रहते हैं वेसे हरएक के मन बिजली शक्ति से जुडे हुये हैं.

---

* जो कि यह लेख आदि से अंत तक मैं न सुन सका; इसलिये इस विषय में कुछ नहीं लिख सकता. मेस्मेरेज करने पीछे त्रिषदृष्टि होती है, वेसा कुछ होना चाहिये. मानसिक योग में इस अवस्था का वर्णन है.

९-पुनर्जन्म होता है, यथावासना शरीर मिलता है.

जब यह नीद से उठी तो इसको जो वेमारी थी, जिसके वास्ते अनेकों के इलाज कराये, परंतु वोह वेमारी न गई सो वेमारी जाती रही. तंदुरुस्त हो गई. फेर उसने ग्रंथ रचा और वृतांत लिखा. यह मडम वर्तमान में ही हुई है.

इस्लामी धर्म.

इसराईली धर्म में ईसामसीह के पीछे नबीमुहम्मद साहेब हुये हैं. उन्होंने तोरेत इंजील से पाके सुधारा किया है अर्थात् मुसलमानी धर्म के स्थापक **नबीमुहम्मद** (रसूलाल्लाह) साहेब हुये हैं. यह अरब देश में हुये हैं. इनका पिता अग्नि, सूर्यपूजक अबदुल्लाह गरीब हालत में था. संगतराशी करता था. मुहमद श्री ने एक स्त्री की मदद पाके सौदागरी की और तोरेत, वगेरे सुने, और देशों में फिरे. फिर नबी हुये याने ईश्वर की तरफ से उपदेश (वहही—कुरान की आयत) आने लगा, जबराईल फिरश्ता लाता था, ऐसे उनके अनुयायी मानते हैं. यह पहिले मक्के में रहते थे और अद्वितीय ईश्वर (वहदहू ला शरीक अल्लाह) है ऐसा उपदेश करते. मूर्ति, अग्नि, सूर्य आदि की पूजा का निषेध करते थे. अंत में लोगों ने सताया तब मक्का छोड मदीने चले गये. तब वि. सं. ६७९ था और काबा छोडने की तारीख से नबीमुहम्मद का चंद्र संवत् चला जो कि वि. १९६०=१३११ हिजरी के. उमर, उसमान, अबुबकर, और अली यह उनके ४ यार थे, जिनकी मदद से उन्होंने अपना मत प्रचार किया. *

ईसाइयों ने उनकी लाइफ प्रसिद्ध की है उसमें उनके कृतों की और उनके जातकी बडी निंदा की है. खेर कुछ भी होगा; परंतु इसमें शक नहीं कि अरब जैसे जंगली देश में एक ईश्वरवाद चलाना सहेज न था; परंतु उन्होंने उनकी प्रकृति जानी थी और इसलिये वैसे ही स्वर्गादि बताये; तथा मेरे मत में बल से हुये तो भी मेरा

---

* मूसा वास्ते कलीमुल्लाह (ईश्वर से बात करने वाला). इब्राहीम वास्ते खलीलाल्लाह (ईश्वर का प्यारा दोस्त) ईसा वास्ते (रुहअल्लाह ईश्वर की आत्मा). मोहम्मद वास्ते रसूलअल्लाह (ईश्वर का दूत) ऐसे ४ कलाम हैं. जो इनके एक एक के पूर्व "लाइल्लाह इल्लिल्लाह" लगा दिया जावे तो ४ कलमे बन जाते हैं यथा— लाइल्लाह इल्लिल्लाह, मोहमदु्रसूलअल्लाह यह एक कलमा हुवा इसका भावार्थ— नहीं है कोई मालिक साहेब-परंतु अल्लाह (परमेश्वर), और अल्लाह का दूत मोहम्मद.

उपदेश सतान में स्वयं प्रवृत्त होगा, ऐसा जान लिया. सारांश उस समय के उस देशनिवासियों के लिये तो भारी और उत्तम काम किया है, ऐसा माना जाता है. नवी मुहम्मद को कारकिर्दगी वांचने से उसकी योग्यता जान ली जा सकती है. वे कोनसी तारीख को मरे यह निश्चय नहीं किंतु अमुक महीने के १२ दिन में मरे ऐसे १२ वफात मानते हैं. +

मुसलमानों का (मोहमदनों का) मंतव्य.

याहूदी और क्रिश्चियन (ईसाई) लोगों का जो मुख्य मंतव्य ‡ (सिद्धात) उपर क. पारेग्राफ में लिखा है "अर्थात् ईश्वर ने अपनी शक्ति से अभाव में से भाव रूप जीव (रूह) और जगत् (आसमान, जमीन, सितारे, वनस्पति, पशु, पक्षी, मनुष्य, फिरश्ते, दोजख, नरक वगेरे) बनाये, कयामत (महाप्रलय) को जीवो के कर्मो का

+ नवी मुहम्मद का सक्षेप मे वृतात.

• मुहम्मद बाप का नाम अब्दुलमतालब कहिया. जन्म वि स. ६२७ (५७० ई) स ६८९ में मर गया. इसके मा बाप गरीब. दूसरे (हलीमा) ने इसको पाला. सोदागरी में जाने लगा अपढ था. स्मृति शक्ति ज्यादे अनेक धर्म सीखे २८ वर्ष की उम्र में ४० वर्ष की स्त्री खतीजा के साथ निकाह किया कासिम, इब्राहीम दो पुत्र हुये, वे बालक ही मर गये. स. ६६८ (६११ ई.) ४१ वर्ष की उम्र में गुफा में गया. आके खतीजा को कहा कि खुदा की तरफ से जबराईल समाचार लाता है. जेद वगेरे अनुयायी हुये. खतीजा ने मूर्तिपूजा छोड दी अली, अबूबकर को अपने मत में लिया. अबूबकर ने दूसरो को अनुयायी बनाया एव ३ वर्ष में २४ मददगार किये उनको पदवी दी. पीछे प्रसिद्धि में पडा. अली का बाप और खतीजा मर गये. मुहम्मद भाग के तायफे नगर में गया. पीछे मक्के आया. फेर जेरुशेलम गया. पेगबरी का दावा किया मुहम्मद के मारने वास्ते कुरेशियो ने इनाम निकाला तो १६ जुलाई ६२२ (वि ६८३) में मदीने भाग गया तलवार ली जिहाद (धर्मार्थ मरना मारना) का उपदेश करने लगा अनेक बार लडाई हुई लूट का माल बाट देने से लुटेरे बहुत साथी हो गये. राजों पर (ईरान, रूम वगेरे पर) फरमान भेजे, उन्होने न माना. हि. ८ में हसनीसरिया जय किया. यह और उमर दोनो नबी के दोस्त हो गये. १० हजार फोज लेके गये कुरेशी हारे-ताबे हो गये काबे की मूर्ति तोडी इस्लामी धर्म चला. नबी को कुरेशी ने जहर दिया. खबर पडी. इलाज हुवा, परतु माथे का दर्द हो गया, और ई ६३२ में मर गया नबी रहेणा में सादा हसमुखा, मितातु निश्चय में दृढ, तुर्ततर्की, मनोहर बोलनेवाला, अपनी मति का आग्रही था स्वनिश्चयानुसार उपदेश दिया. याहूदी और खिस्ति धर्म में से शिक्षा पाई थी मुहम्मद के हरीफ ३ पेगबर थे, उनमें से १ सीजाज स्त्री थी. अबूबकर, उसमान क्रमश खलीफे हुये. उसमान को अबूबकर के पुत्र ने मार डाला. अली गादी बेठा. यहा से शिया सुन्नी भेद पड गया. च. च पेज ६०४.

‡ उपसिद्धातो में अंतर है, यथा—कुरान ईश्वरीय पुस्तक है या नहीं, नबी मुहम्मद ईश्वर का रसूल है या नहीं, सूवर खाना विध या निषेध ? इ में मतभेद है.

हिसाब होके यथाकर्म हमेशे के लिये वहिश्त (स्वर्ग) और दोजख (नरक) मिलेगा" सोही मुसलमान ससार का है. सो नीचे के अवतरण से जानोगे. यह अवतरण सत्यार्थप्रकाश मे है उससे और 'कुल्लियात आर्य मुसाफर' मे है उससे उतारा है और कुरान ग्रथ से मिलाया है तथा जो कुरान उसके तरजमे सहित उर्दू मे अन्सारी प्रेस, दिल्ली में सन् १९१३ हिजरी मे छप के प्रसिद्ध हुई है उसमे से उतारा है, उसके पेज (पृष्ट-सफे) टाक दिये हैं. यह तरजुमा मोलवी हाफिज़ नजीरअहमदखा साहेब ने किया है. कुरान की आयतोंके नीचे नीचे लिखा है और हाशियो में अपनी तरफ से लिखा है.

अवतरण (कुरान शरीफ) *

(१) ईश्वर अद्वितीय है अर्थात् वहदहु लाशरीक (सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदरहित) है, शुद्ध, पवित्र न उससे कोई पेदा हुवा, न वोह किसी से पेदा हुवा, न कोई उस जेसा है, वोह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् है, सक्रिय, साकार और व्यापक है, दयालु, कृपालु, पाप क्षमा करने वाला, कदरदान, राजिक (विश्वभर), हकीम (हिकमत वाला), गनी (वेनियाज), शहीद (सक्षी), कहार (गालिब–गजब करने वाला), जगत्कर्ता, हर्ता, शिक्षा देने वाला, न्यायकारी और सगुण है वही उपास्य है, उससे इतर की उपासना करना शिर्क (वडा गुनाह) है. कुरान मंजल ५ सिपारे २१ सूरत ३२, आयत ४।५।७।९।११. मं. २ सि. ९ सू. ७ आ. १४८. मं. १ सि. १ सु. २ आ. १०७. म. १ सि. १ आ. ३।४।५. म. ७ सि. ३० सूरेइखलास. पेज ६।८।१०।१८।३७।४२।४९।५३।७६।७७।९७।१९२।२३९।२५२।२९८। ४०८।९०१.

(२) जिसने (खुदा ने) केवल अदम (नेस्ती-अभाव) से आसमान और जमीन (जगत) बना निकाले (सूरत फातर पेज ६९४).

(३) ईश्वरको कुछ करना नहीं पडता, वोह कहता है कि होजा, और (वही) हो जाता है. म. १ सि. १ सू. २ आ. १०९ म. १ सि. ३ सू ३ आ. ३९।४६. (यथा भूमि, आकाश, अग्नि का गोला सूर्य, चन्द्र वगेरे के लिये कहा कि हो जा और हो गये, ऐसे लोक परलोक बनाये गये). पेज २७।८६।१९७।५१९।४३२।४९१ ९१९।९८४ इ.

* कुरान में ईश्वरीय वाक्य माने जाने से उसका नाम "कलामअल्लाहदर्शन" कह सकते हैं

(४) ईश्वर ने जमीन आसमान (जगत) ६ दिन में बनाये (सातवें दिन) आराम लिया. उपर अर्श (अलोक) के-जा विराजा. § सात आसमान, सूर्य, चंद्र बनाये. पृथ्वी हलती थी, उस पर पहाडों की मेखें ठोंकी. † मं. ३ सि. ११ सू. १० आ. ३. मं. २ सि. ८ सू. ७।९३।९४. मं. ७ सि. २९ सू. ७१ आ. १४।१५।१६. मं. ४ सि. १७ सू. २१ आ. ३०. पेज २९०।३३१।४२८।५१९।५८३।७६३। ८९९. आसमान जमीन को ६ दिन में पैदा किया उस समय उसका तख्त पानी पर था. (सू. हूद पेज ३९३).

(५) ईश्वर ने सब प्राणी (जानवर, पशु, पक्षी, हेवानात और नबातात वनस्पति) बनाये. मं. ४ सि. १८ सू. २४ आ. ४०।५१. पेज ४२६ सू. १६.

(६) तुम्हारी (ए जीवो तुम्हारी) रूहों को उत्पन्न किया. फेर सूरत (आकृति) बनाई. मं. २ सि. ८ सू. ७ आ. १०।११. उसको ठीक करूं और उसमें अपनी (ईश्वर की) रूह फूंक दूं. गिरो सिजदे वास्ते. मं. ३ सि. १४ सू. १९ आ. २९ से ४६ तक. फेर पुष्ट किया उसको (मिट्टी से बनाये हुये आदम के पुतले को) और उसमें अपनी (ईश्वरी) रूह (आत्मा) से फूंका. मं. ५ सि. २१ सू. ३२ आ. ४ से ११ तक. "कूलअलरूह मिन अमर रब्बी" अर्थात् मुहम्मद कह के रूह (जीवात्मा) ईश्वर का एक हुक्म है. मं. ४ सि. १५ सू. बनीइसराइल. पेज ४२०।४६३।७३२. आदम से हव्वा बनाई, उन दोनों से मनुष्य सृष्टि चली (सू. अलनसा पेज १२१. हम आदम से पहिले ‡ जिन्नात को आग से पेदा कर चुके थे. सू. अलहजर पेज ४१९.

(७) खुदा ने फिरश्तों को कहा कि आदम को सिजदा (दंडवत) करो, उन्होंने किया; परंतु शेतान * ने नहीं किया तो उसे लानत देके शेतान को बहिश्त से निकाल दिया. वोह बंदों को बहकाता है. इ. मं. २ सि. ८ सू. ७ आ. १० से १७ तक. पेज २४१।४२०।७३३. आदम को कहा कि उस वृक्ष का फल न खाना, परंतु उसने शेतान के बहकाने से खा लिया, इसलिये आदम को बहिश्त से निकाल दिया. वोह पृथ्वी पर + आया. मं. १ सि. १ सू. २ आ. ३३।३४।३५. पेज ९.

---

§ ईश्वर सक्रिय परिच्छिन्न है.

† उस देश काल की स्थिति और विद्या बुद्धि का नमूना

‡ फिरश्ते ईश्वर ने बनाये.

* कोई लंका में (माराजलनवुवत) और कोई अदन में उतरना कहता है

+ यह सब से पहिले सर्वोत्तम अजाजील नाम का फिरश्ता (देवता) था.

८) खुदा विना प्रयोजन के (वेफायदे—निकम्मे खेल तमाशे) काम नहीं करता. तुमको (जगत् को) निकम्मा पेदा नहीं किया है. सू. अलमोमनून पेज ५९८. दुनिया को इस गरज से बनाया कि तुमको आजमावें कि तुम में से किस के काम (कर्म) उत्तम हैं सू. हूद. पेज ३९१. हमने जिन, इन्सान को इस गरज से पेदा किया है कि वे हमारी इबादत (भक्ति) करें (सू. अलतोर पेज ८३७).

(९) जो ईश्वर की शिक्षा पर है वे मुक्ति (छुटकारा) पावेंगे. मं. १ सि. १ सू. २ आ. १ से ६ तक. क्षमा मांगने वाले के और ज्यादा उत्तम कर्म करने वालों के पाप क्षमा होंगे. मं. १ सि. १ सू. २ आ. ९४. जिसको चाहता है ईश्वर अपनी दया से खास कर लेता है. आ. ९७. जो बडे बडे गुनाह (पाप कर्म) से बचोगे तो छोटे गुनाह माफ कर दिये जावेंगे. सू. अलनासाय पेज १३०. परंतु शिर्क § बडा गुनाह है सो माफ न होगा. (सू. अलनिसाय पेज १३९).

(१०) अल्लाह और उसके रसूल (मुहम्मद) पर ‡ ईमान लाओ. मं. १ सि. ४, सू. ३ आ. १५९. अल्लाह, फिरश्ते, किताब (कुरान) और रसूल को जो न माने वोह गुमराह है. ‡ मं. १ सि. ५ सू. ४ आ. १३४।१३९. पेज ८३, १९८।८१९।८६७.

(११) ईश्वर स्वतंत्र है अन्यथा कर्ता अर्थात् जो चाहे सो करता है (निरपेक्ष है). मं. १ सि. ३ सू. २ आ. २३९. जिसको चाहे क्षमा (पाप माफ) करेगा, जिसको चाहे दंड देगा, क्योंकि वोह सर्वशक्तिमान् है मं. १ सि. ३ सू. २ आ. २६६. सू. ३ आ. २१ से २७ तक. मं २ सि ६ सू. ५ आ. १६।१८. इत्यादि में अनेक स्वतंत्रता कही है. पेज ६५।७५।१०४।१४९।१७९.

(११ क.) जीव सर्वथा परतंत्र—ईश्वर ने उनके मन पर, कान पर छाप लगा दी है और आंखों पर परदा. (इसलिये वे ईमान न लावेंगे) मं. १ सि. १ सू. २ आ. १ से ६ तक. (पेज ४). ईश्वर पापी को मार्ग नही दिखाता. जिसको चाहे नीति देता है. मं. १ सि. ३ सू २ आ. २४०।२९१. जिसको ईश्वर गुमराह करे (सच्चा मार्ग भुला दे) उसको कदापि मार्ग न मिलेगा. मं. १ सि. ५ सू. ४ आ ८०, ८७. खुदा जिसको चाहे गुमराह करे और जिसको चाहे मार्ग दिखावे. मं. ३ सि. १३ सू. १३ आ. २७. पेज ३३।१६०।२१०।२९९।२७९।४०३।४०४,

§ ईश्वर के काम में दूसरे को शामिल करना, ईश्वर से इतर को पूजना या मानना है.

‡ सर्व समदवाद से प्रतिकूल.

४०७।४४२. हमने (खुदा ने) ही उनके दिलों पर परदा डाल दिया ताकि हक (सच्ची) बात को न समझ सकें, न सुन सकें. सू. अलकह्फ पेज ४७९. पेगंबर तुमने उस आदमी पर नजर की कि जिसने अपनी ख्वाहिश नफसानी को (विषयों की कामना को) अपना उपास्य (इष्ट) बना रखा है, और उसे इल्म (विद्या) होते हुये भी अल्लाह ने उसको गुमराह कर दिया है' और उसके कानों पर और उसके दिल पर अल्लाह ने मोहर लगा दी है और उसकी आंखों पर हमने (खुदा ने) परदा डाल दिया है, तो खुदा के गुमराह किये पीछे उस (भुलाये हुये) को कोन हिदायत दे (मार्ग सुझावे). मं. ६ सि. २५ सू ४५. पेज ८०१।८७९. जिनको तकदीर में लिखे हुये में से उनका रिज़क (खानपानादि) पहुंचेगा. जो खुदा ने तकदीर में लिख दिया सो नहीं बदलता. अजल (आरंभ) में हमने माना है कि दोजख को हम भर कर रहेंगे. जो जमीन पर वा आदमी पर (दुःख सुखादि वा कर्म) नाजिल—होने वाला है सो उनके पेदा करने से पहिले 'लोह-महफूज़' में लिख रखे हैं. सु. एराफ पेज २४१।२६३. सू. तोबे. पेज ३१० सू. अनकबूत पेज ६४१ सू. हदीद पेज ८६३. किसी की उम्र कम या ज्यादा नहीं की जाती है, परंतु यह सब किताब (लोहमहफूज़) में लिखा हुवा है. सू. फातर पेज ६९६. लोगों के एमाल रजिस्टर में (कर्मपत्र मे) समय समय पर लिखे जाते रहते हैं. फिरश्ते उन पर नियत हैं. सू. तफ़ेफ. पेज ९३८।९३९.

(१२) उस दिन (महाप्रलय—कयामत) को सब के कर्मों का हिसाब होगा. उस दिन से डरो, कि जब किसी की सिफारश न मानी जायगी. मं. १ सि. १ सू. २ आ. ४६. तुम में कर्मों में अच्छा कोन है +++ कह, मरने के पीछे उठाये जाओगे. मं. ३ सि. ११ सू. ११ आ. ७. कयामत के दिन कर्मपत्र निकाला जायगा. मं ४ सि. १५ सू. १७ आ. ७।१३।१६. पेज ११।२९।४५११४११.

(१३) अल्लाह जरा भी अन्याय (जुल्म—नावाजिब) नहीं करता. म. १ सि. ५ सू. ४ आ ३७. कर्मानुसार फल दिया जावेगा. मं. ७ सि. ३० सू. १८ आ. २६, २४।३८. पेज २३८।३४०।३४११४५११४६११७४६. कयामत के दिन किसी की सिफारश काम में न आवेगी परंतु जिसको खुदा (रहमान—दयालु) इजाजत दे (उसकी). सू. तुहा पेज ५११. कयामत के दिन जिनके उत्तम कर्मों का पलडा भारी होगा तो यही लोग इष्ट को प्राप्त होगे, और जिनके उत्तम कर्मों का पल्डा हल्का होगा तो वे लोग हैं कि जिन्होंने अपने को बर्बाद किया. (नेक बद का खाता कर के

बाकी निकलेगी उस अनुसार फल मिलेगा) सू. अलमोमनून २३ पेज ५९७. खुदा के सिवाय जिनको (बुत वगेरे को) यह लोग पुकारते हैं वे तो सिफारश करने का अधिकार नही रखते. हां, जो जानबूझ के हक (कल्मे तोहीद) के कायल हैं वे या खुदा जिसको आज्ञा दे, पसंद फरमावे वे सू. नज्म पेज ८४२.

(१४) वे * हमेशे के लिये बहिश्त (स्वर्ग–वैकुंठ) में निवास करने वाले हैं. मं. १ सि. १ सू २ आ. ७९. जो अल्लाह की और रसूल की आज्ञा भंग करेगा वोह हमेशे रहने वाली आग (दोजख–नरक) में हमेशे के लिये डाला जायगा और हमेशे दुःख में खराब होता रहेगा. मं. १ सि. ४ सू ४ आ. १०।१४. बहिश्त हमेशे रहेगी. मं. ६ सि. २३ सु ३८ आ ४३. पेज १०।१८।६६।७।९।७२०, ७९९. जब तक आसमान जमीन हैं तब तक वे दोजख में रहेंगे. सू. हूद पेज ३७२. आसमान और जमीन को और उन पर जो चीजें हैं उनको किसी मसलहत (उचित जान के) ही से और एक खास समय के लिये पेदा किया है (सृष्टि सादिसांत). सू. अहकाफ पेज ८०२. जितनी मखलूकात (ईश्वर ने जो कुछ पेदा किया सो) सब नाश हो जाने वाली हैं और केवल रब (पेदा करने वाला) की ही जात बाकी रहेगी. (सू. रहमान पेज ८९०). कयामत का १ दिन मनुष्य के १००० दिन की बराबर होगा. सू. सिजदा पेज ६६३. कयामत का एक दिन ५० हजार साल जितना होगा. सू. नूह पे. ९१०. कयामत कब आवेगी यह खुदा को ही मालूम है. सू. एराफ पे. २७७.

(१५) (कयामत) पृथ्वी हलाई जावेगी, आसमान कागज के समान लपेटेंगे. मं. ४ सि. १३ सू. २१. पहाड उडाये जायंगे टुकडे टुकडे. मं. ७ सि. २७ सू. ५६ आ. ४।५।६. जब सूर्य लपेटा जावे, तारे गदले हो जावें, पहाड चलाये जावें और आसमान की खाल † उतारी जावे. मं ७ सि. ३० सू. ८१ आ. १ से ३ तक और ११. तमाम पृथ्वी मुट्ठी में और आसमान लिपटे हुये दाहिने हाथ में होंगे. मं. ६ सि. २४ सू. ३९ आ. ५४।६८।७०. पेज ७४६।८३७।९०५

* खुदा रसूल और कुरान को मानने वाले, दीन के वास्ते लडने वाले खुदा के मार्ग में तन मन, और धन का अर्पण करने वाले, नेक काम करने वाले और मुशरिक, मुनकिर, मुनाफक, मुलहद, काफर और उपरोक्त के जो विरुद्ध वह दोजख में जायंगे (यह सर्व संग्रहवाद के प्रतिकूल है।)

नं १४ में बहिश्त अनंत, खुदा से इतर सब सांत इत्यादि विरोध है

† उस देश, काल, स्थिति और विद्या बुद्धि का नमूना.

(११) वहिश्त (वैकुंठ) में पवित्र नहरें, मेवे (खजूर वगेरे) खूबसूरत शुद्ध स्त्रियें, आभूषण (कंगन, मोती वगेरे वाले भूषण) वाली अप्सरा, उत्तम बाग, शुद्ध शराब खूबसूरत भूषणयुक्त लडके, दूध और शहद की नहरें, जरी के गद्दी तकिये, वगेरे वगेरे हैं, वे वहश्तियों के मिलेंगे. यही बडा प्रयोजन (जीव का श्रेय) है.

मं.	सि.	सू.	आ.	मं.	सि.	सू.	आ.	पेज
१	१	२	२४	६	२६	४७	४।१३।१५	७।७९।३१९।३३२।५७७
१	४	४	१३।१४	७	२९	७६	१९।२१	५३५।७१५।७३०।७९०।७९६
४	१५	१८	३०	७	२७	५५	....	८१२।८३८।८३९।८५२।८९३
								८५४।८५५।९२४।९३०।९३९

जितना जमीन आसमान है उतना वहिश्त का माप है. सू. हदीद पेज ८६३.

(१७) (एक जन्म से इतर पुनर्जन्म नहीं है अर्थात) ईश्वर पहिली वार करता है उत्पत्ति. फेर दूसरी वार (कयामत में खडे होंगे) करेगा. उठके फिर उसकी तरफ फिर जाओगे (खुदा की तरफ लोटोगे) मं. ९ सि. २१ सू. ३० आ. १०।११. पेज १९८।३३९. जब तुम सिर से पेर तक रेजे रेजे (छिन्नभिन्न) हो जाओगे तब एक बार जरूर तुमको नये जन्म में आना होगा. सू. सब्वा ३४ पेज ६८४. (कयामत के दिन जी के ईश्वर के सामने होना). जब हुक्म की हद से बाहिर वढ गये तब हमने (ईश्वर ने) हुक्म दिया कि जलीलख्वार बंदर बन जाओ, और वे बंदर बन गये. § सू. एराफ पेज २७३. काफरों का यह आश्चर्यजनक कथन है कि जब हम मिट्टी हो जावेंगे, तो फेर क्या हमको नये जन्म में आना है (नहीं आवेंगे.) ‡ यह लोग दोजखी हैं. सू. इत्ल. पेज ३९७. खुदा जिससे चाहता है पुत्र देता है वा पुत्री देता है वा औलाद नहीं देता पेज ७८१.

(१८) कुरान का सार–एक ईश्वर के सिवाय किसी दूसरे की इबादत न करो (मत पूजो) किये हुये गुनाहों को ईश्वर पास से माफी मांगो, आयदे के लिये उसके हजूर तोवा करो. जो उसकी आज्ञा से मुख मोडोगे तो कयामत में बडा अजाब (दुःख) होगा. * सू. इब्राहीम पेज ४०८.

---

§ रूह को दूसरा शरीर मिलना.

‡ कयामत मे न उठेंगे

* संतोष, ईश्वर का धन्यवाद (याने सबुर शुकर). कुरान की सूरत 'फातेहा' और सूरत 'इखलास' यह कुरान का लुब्बे लुबाब (सार) कहा जाता है.

(१९) सूर्य (आग का गोला) और चांद गति में हैं. सू. यासीन. पेज ७०७. सूर्य, चांद और बुत (मूर्ति) पूजने का निषेध. पेज ७६८।८४२. लात, उज्जा और मनात तीनों बुतों में कुछ भी शक्ति नही है. पेज ८९२.

(२०) बनी इसराइल के जुदा जुदा १२ कुटुंब हमने (खुदा ने बनाये. सू. एराफ पेज २७१.

(२१) फिरओन को हमने (खुदा ने) डुबा दिया (सजा दी). पेज १२।२९२. जिन्होंने हमारी आयतों (कुरान) को झूठा कहा उनको गर्क किया (डुबा दिया) नूह का तूफान. पेज ३४१ एक ईमानदार (शायदजलेब) को शहीद कर डाला (मार डाला) तो खुदा की तरफ से उसको हुक्म हुवा कि बहिश्त में जा दाखिल हो. सू. यासीन पेज ७०५।७०६. कयामत के पहिले भी फल. †

(२२) ए पेगंबर हम कोई आयत मंसूख (रद्द) कर दें या तुम्हारे जहन में से उतार दें तो उससे अच्छी या वेसी ही दूसरी उतार भी देते हैं. सू. बकर, राद, नहल. पेज २५।४०६।४४३. खुदा का कायदा टलता वा बदलता नहीं है. सू. फातरा पेज ७०२. +

(२३) जिधर मुख करो उधर ही अल्लाह का सामना है. सू. बकर. पेज २७. ईश्वर तुम्हारी शहरग (नस) से भी ज्यादा तुम्हारे समीप है (सब के चित्त में रहा हुवा है) मं. ६ सि. २६ सू. ५० पेज ८७९. ईश्वर व्यापक है.

विशेष.

(२४) कुरान ईश्वरीय पुस्तक (इलिहाम) ऐ पेगंबर! कुरान में की आयत पक्की (सविस्तृत) हैं वे ही असल किताब हैं और बाजी आयतें मुबहम (जिनके अर्थों में कितने ही पहेलु—आशय निकल सकते हैं) अल्लाह के सिवाय उनका मतलब—आशय कोई नहीं जानता. मं. १ सि. ३ सू. ३ पेज ७७. वही (कुरान की आयत) जबराइल लेके आता है. सू. ११ पेज ४४३. हमने (खुदा ने) तुम (मुहम्मद) पर (कुरान) थोडा थोडा (टुकडे टुकडे) उतारा है, इस मसलहत से कि तुम मोहलत

---

† एक दुनियावी और दूसरा दीनी (परलोक-कयामत) यह दो दिन माने तो भी कयामत पहिले बहिश्त मिलना तो कुरान के नियम के विरुद्ध है.

+ पेगंबरवाद के प्रतिकूल है.

२४—कोई भी ईश्वरीय पुस्तक हो सकता है वा नहीं. और यदि हो तो उसके लक्षण क्या है, न. ६ अ. १ सू. ११७ से ११९ तक देखो.

(फुर्सत) के साथ लोगें का सुनाओ. सू. बनी इसराइल पेज ४६७. और इसलिये कि तुमको वक्त वक्त पर धीरज—तसल्ली देते रहें. सू. फुरकान § पेज ५८०. सू. दहेर पेज ९२९. कुरान लेलतुलकद्र (अमुक रात का नाम है †) को उतारी है. मं. ७ सि. २० सू. ९७ आ. १।२।४ पेज ७९२. यह कुरान वोह किताब है कि जिसके (कलाम इलाही—ईश्वरीय वाक्य होने में) कुछ भी शक नहीं है. सू बकर पेज ३. जो (किताब) तुम पर उतरी और जो तुम (मोहम्मद) से पहिले उतरीं, उन पर ईमान लाते. पेज ३. यह फरमान तहरीरी (लिखा हुवा कुरान) खुदा की हजूर से सादिर होता है (उतरता है). सू. अहकाफ पेज ८०२. और जो हमने अपने बंदे (मुहम्मद) पर कुरान उतारा है. यदि तुमको इसमें सदेह हो तो और यह समझते हो कि यह किताब खुदा की नहीं बल्कि आदमी की बनाई हुई है और अपने दावे में सच्चे हो तो, इस जेसी एक सूरत (तुम भी) बना लाओ. मं. १ सि. १ सू. २ पे. ६।७. *

(२९) **मोहम्मद खुदा का रसूल (दूत) है.** ऐ मोहम्मद! हमने तुमको अपना रसूल करके भेजा है. सू. बकर पेज २८. मरीयम के बेटे ईसा ने बनी इस-

---

§ कुरान का ही नाम फुरकान (याने सच झूठ का अंतर) है. कु पे. २७५

† कितनोक का अनुमान है कि वोह रात ता. २७ मी रमजान की है एकदम एक रात को उतरी है, उस पीछे उसमें से टुकडे टुकडे उतारी है, ऐसा मानने में आता है, परतु जो ऐसा होता तो मुहम्मद साहेब के समय जो लडाई वगेरे वाके हुये, उनका वर्णन ७ पुग तक कयामत समान भविष्यत प्रत्यय से होता. परतु कुरान में ऐसा नहीं है किंतु नबी साहेब के घर में जब जब तकरार हुई, उसके लिये भी तब तब ही की आयत है, अत टुकडे टुकडे आयतें बनना मानना पडेगा

* फेजी फेयाजी ने अकबर बादशाह को नबी बनाने वास्ते अरबी में एक बेनुक्त कुरान बनाई थी, जिसको ईश्वर की तरफ से आना जाहिर किया था, परतु बिस्मिल्लाह' बदलना फेजी भूल गया था इस पर विवाद हुये थे. कहते हैं कि उसके वाक्य इस कुरान से ज्यादा अद्भुत थे. उस विवाद के समय के दो छंद याद हैं.

(फेजी) शुक्र सद शुक्र के खेरुलबशर पेदा शुद याने दरदीन नबी जलव. गर पेदा शुद. १. (प्रतिपक्षी). हेफ सद हेफ के शरुल बशरे पेदा शुद. याने दरदीन नबी रखनः गर पेदा शुद २

भावार्थः— ईश्वर का धन्यवाद कि मनुष्य का हितकारी पेदा हुवा अर्थात् नबी के दीन में प्रकाश करने वाला पेदा हुवा. १. शोक शोक कि शरारती मनुष्य पेदा हुवा अर्थात नबी के दीन में छिद्र करने वाला पेदा हुवा. २ अकबर और मुहम्मद रसूल की तारीफ में श्रुति अर्थात् अल्लोपनिषद भी बनाया गया था, जो कि प्रसिद्ध है. बनावट जाहिर हो गई.

राइल से कहा कि 'मैं तुम्हारी तरफ खुदा का भेजा हुवा आया हू पहिले उतरी हुई तोरेत की मैं तसदीक करता हू और एक और (दूसरे पेगबर की तुमको खुशखबरी सुनाता हू, जो मेरे पीछे आयेंगे और उनका नाम होगा अहमद * (दूसरा नाम मुहम्मद)." सू. सफे ६१ पेज ८८१. नबी रसूल (मुहम्मद) उम्मी (अनपढ) थे सू एराफ. पेज २७० नबी मुहम्मद ने जबराइल फिरश्ने (रुहलकुदस) को सदरतुलमुतहा के पास रूबरू–प्रत्यक्ष देखा. सू. नज्म पेज ८४१ मुहम्मद रसूल खात्मुल नबी है ‡ सू अहजाब पेज ६७६ जिसने रसूल (मुहम्मद) का हुक्म माना उसने अल्लाह का ही हुक्म माना. सू नसाय पेज १४३

(२६) एक दूसरे का माल हज्म नही करना चाहिये, जो हज्म करेगा उसको क्यामत में दोजख होगी. पेज ८४।१३० गुप्तदान करना उत्तम है पेज ७१ जो तुझको लाभ मिले तो समझ कि, खुदा की तरफ से है और जो तुमको हानि पहुचे वोह समझ कि, तेरे मन (नफ्स) की तरफ से है. पेज १४२ दूसरो के साथ प्रकट वा गुप्त रीति से भलाई करो, और तुम बुराई मत करो पेज १६१. खुदा के सिवाय दूसरे की इबादत मत करो और माता पिता की सर्व प्रकार से सेवा करो. द्रव्य को व्यर्थ मत उडाओ (पेज ८९२।८९३). झूठ से बचो. इ.

(२७) मुरदार लोहू और गोश्त सूवर का तथा जिस पर अल्लाह का नाम न पुकारा गया हो सो, हराम (त्याज्य) है. म १ सि २ सू २ आ १७४ से १७९ तक. म २ सि ६ सू ९ आ ३. पेज ३९।४०।१६९।२३४।४४६. वोह गाय हलाल करो जो बूढी न हो और बछिया (बालक) न हो जवान हो, पीले रग की और दाग विना की हो सू बकर पेज १५।१६ शराब, जुवा, बुतपूजा और पासे (चोपड वा रमल) का काम निषेध है सू मायदा पेज १९४. मवेशी, चोपाये खास दिनो मे उनकी कुरबानी करने पर खुदा का नाम लो. उस गोश्त में से तुम खाओ और गरीब को भी खिलाओ. सू. हज पेज ५३६. असल दीन तो यह है कि बुतो की (पूजा और) गदगी से बचते रहो. सू. हज पेज ५३६. हम (खुदा) ने जानवरो को इसलिये तुम्हारे वश में कर दिया है कि ताकि तुम हमारा शुक्र करो. खुदा तक न तो उनका गोश्त और न तो उनका खून पहुचता है सू हज पेज ५३७.

* बायबल सधार इस लेख से इकार करती है यान मुहम्मद को पगबर नहीं मानती
‡ यहूदी मूसा को इसाई, ईसुमसीह का अंतिम नबी मानते है

(२८) बहिश्त और नरक (दोजख) के बीच में एराफ है ++ एराफ वाले जिन्नत में नहीं गये, परंतु वे जिन्नत (स्वर्ग) में जाने की उम्मेद रखते हैं. सू. एराफ पेज २४८. लोगों के मरने के समय खुदा उनकी रूहों को जीव को) अपने पास बुला लेता है ‡ और जो लोग मरे नहीं हैं उनकी रूहें भी उनके सोने के समय खुदा के यहां बुला ला जाती हैं. † फेर वापिस (पीछा) भेज देता है. सू. जुमर. पेज ७४२.

(२९) यहूद ने ईसा से मकर किया और अल्लाह ने उनसे मकर (दाव) किया. (अर्थात् ईसा की सूरत जेसा सूली पर चढाया गया और ईसा को आसमान पर ले लिया). सू. अमरां. पेज ८८ सू. नसाय. पेज ११३. खुदा के मकर (दाव) से तो वेही निडर होते हैं कि जो बरबाद होने वाले हैं. सू. एराफ पे. २५९. हमारा केद (मकर—दाव) बेशक बडा पक्का है. पे. २७१ सू. कलम पे. ९०३. खुदा सब मकर (दाव) करने वालों से बेहतर दाव करने वाला है. सू. अनफाल पेज २८७. मुनाफिक खुदा को धोखा (दगा) देते हैं, हालां कि वस्तुतः खुदा उनको ही धोखा दे रहा है. सू. नसाय पेज १५९. शरीर आदमी और जिन्नों को (पेगंबरों का सबुर आजमाने के लिये) हरेक नबी का दुश्मन बना दिया था कि धोखा देने की गरज से कान में एक चिकनी चुपडी बातें फूंकता रहता था सू. इनाम पेज २२१. और जो खुदा चाहता तो यह शिर्क (कुफर) न करते. सू. इनाम पे. २२४. फेर हम (खुदा) उनके बीच में फूट (ना इतफाकी) डाल देंगे. * सू. यूनस पेज ३३७. खुदा के हुकम के विना किसी शखस (मनुष्य) के इखतियार में नहीं है कि (खुदा रसूल पर) ईमान ले आये. सू. यूनस पे. ३५०. हम काफरों के मन मे शरारत (लुचाई) डाल देते हैं. * सू. अलहजर. पेज ४१८.

(३०) नमाज, रोजे, खुतनां, जकात, हज्ज, तवाफ, निकाह, यतीम, अमानत, वगेरे की शरीयत. पेज १२।४३।१२१।१३४।१७३।११४।१७२।६४१ वगेरे.

---

‡ कयामत तक बरजख में रहेंगी, ऐसा माना जाता है; परतु मनुष्यो के शरीर में रूहें (भूत) आना और कब्र पर फातहा देना और उनको पहुचना भी मानते हैं.

† सुषुप्ति में खुदा में लय हो जाना.

* संभवबाद के प्रतिकूल.

(३१) आसमान को जमीन पर गिरने से थामे हुये है. पेज ९४७. कयामत के दिन बुत परस्तों की मूर्ति बोलेंगी कि बेशक यह लोक वही हैं जिनको हमने बहकाया सू. कसम पेज १२८.

(३२) जमीन, आसमान, जीव जगत हम (खुदा) ने बनाये है, १ कुरान हमने उतारा है २ रसूल (मुहम्मद) हमने भेजा ३ कयामत जरूर होगी उस रोज सजा जजा होगी ४ §. इनके सबूत देने वास्ते खुदा ने जुदी जुदी जघे जुदा जुदा की कसमें (सोगंद–शपथ) खाना लिखा है. (यथा अपनी, कुरान की, नूरकी, लोहमहफूज की, बेतलमामूर की, आसमान की, सितारों की, बंदे की, कलम की, चांद की, रात की, हवा की, फिरश्तो की, शफक की, घोडे की कसम खाई है. इ. पे. १३९।४२०।७२४।८४१।९०९।९३१।९९४ वगेरे वगेरे. *

(३३) जो अल्लाह का और उसके फिरश्ते और रसूलों का दुशमन हो तो खुदा भी ऐसे काफरों का दुशमन है. † सू. बकर पे. २३. दीन में कुछ जबरदस्ती का काम नहीं है. सू बकर पेज ६९. मुसलमानों को चाहिये कि मुसलमानो को छोड के काफरों को अपना दोस्त न बनावें † और जो ऐसा करेगा तो उससे और खुदा से कुछ सरोकार (सबंध) नहीं परंतु (इस तदबीर–पालसी से) किसी तरह उनकी शरारत से बचना चाहो तो (खेर). अलअमरां. पे. ८२. लडाई में खुदा फिरश्ते भेज के मदद करेगा मदद वास्ते फिरश्ते भेजे. पेज १०३।२८२।३०३। ३०७ दुश्मनों का भय हो तो जिहाद (धर्म के वास्ते जो लडाई सो) के समय नमाज छोड दो. क्योंकि वे तुम को न पढने देंगे सू. नसाय. पेज १४९. मुसलमानो! यहूदी और नसारा को दोस्त मत बनाओ. † सू. मायदा. पे. १८४. मुसलमानों तुम्हारे दोस्त तो अल्लाह, अल्लाह का रसूल और नमाज जकात करने वाले मुसलमान. सू. मायदा. पेज १८५।१८६.

जिहाद याने दीन अल्लाह (इसलामी धर्म) के फैलाने वास्ते, काफर धर्म द्वेषी को मारने वास्ते, लडाई, लुटमार (जिहाद) की आज्ञा. † मं. १ सी. २ सू. २ अ.

§ कयामत होगी उस दिन हिसाब होगा यह मसला, इंजील में से और खुतना, तोरेत में से कुरान में आया है

* हाशिये लिखने वाले ने कसम खाने की वजह भी लिखी है याने कुदरत का दिखाव. तथापि ईश्वर के लिये जेब नहीं देता. अपने से ज्यादे बडे पवित्र की भी कसम खाना उसको शोभित नहीं जान पडती; क्योंकि उसको निरपेक्ष, स्वतंत्र, सर्व शक्तिमान और सर्वज्ञ माना है

† सर्व समझदार में प्रतिकूल है.

१७७ से १७९ तक. मं २ सी. ९ सू. ८ आ. १. मं. २ सी. १० सू. ८. इस विषय का जघे जघे २२ जघे उपदेश है.

(३४) मूसा के पुस्तक और माजजा (करामात याने लकडी का सांप बन जाना बगेरे) हमने दिये. मं. १ सि. १ सू. २ आ. ५।६१. पेज २१०. मूसा के तूर पर ईश्वर के दीदार न हुये, गश खाके गिर गया. पेज २६६. मूसा आग पास गया ते उसके आवाज आई कि मुबारिक है वोह जात (स्वरूप) के जे इस आग में जलवेफरमा है (है) (मूसा के दीदार हुये) पेज ६०३.

(३५) नूह पेगंबर की उमर १९० वर्ष की थी.

(३६) इसामसीह वास्ते रूहलकुदस (जबराइल फिरस्ते) से उनकी ताईद की पेज २०. कयामत होने के नजदीक, इसुमसीह आसमान पर दूसरी वार दुनिया में आवेगा. पेज १६३. जे मरयम के बेटे ईसा के खुदा मानते हैं और जे तसलीस (खुदा, ईसा और रूहलकुदस इन तीनों में खुदाई याने इनमें से हरेक खुदा है) के मानते हैं, वे बेशक काफिर हे गये. पेज १७३।१९०. मरयम का बेटा इसामसीह ते खुदा का रसूल (नबी) था. पेज १९१ (मरयम पर जब शक हुवा) तब बच्चा (इसु) बोल उठा कि मैं ईश्वर का बंदा हूं, उसने मुझके किताब दी और मुझके पेगंबर बनाया वगेरे. * पेज ४९०. हमने (खुदाने) मरयम में अपनी रूह फूंक दी-पति के विना गर्भ रह गया पे ५२७

(३७) कुरान में बायबल में पेगबरें के जे किस्से कहानी और लडाइयें का वृतांत लिखे हैं, वे दे दे चार चार जगह लिखे हैं और कुछ नवीन भी हैं. यथा जेद जनेब बगेरे के (पे ५७९) हैं. और नबी साहेब के साथ जे बदर वगेरे की लडाइयें हुईं उनका जिकर है.

(३८) कयामत पास आलगी चांद्रशक (टुकडे) हे गया. मं. ७ सी. २७ सू ५४ आ. १ पेज ८४५. ‡

---

* ईजील में जे वृतांत इसुमसीह के जन्म मरण का लिखा है उसमें कुरान लिखित वृतांत में अंतर है.

‡ मोलवीशाह अबदुलकादर लिखते हैं. काफरों ने रसूल से निशानी मांगी ते कहा देखो आसमान की तरफ. उस समय चांद के दे टुकडे हे गये, १ पूर्व में गया दूसरा पश्चम में, पीछे वे जुड गये. दूसरे ऐसा कहते हैं कि कयामत के दिन चांद के दे टुकडे होंगे. जे लिखा है, बात यह है कि मूसा इसा के समान नबीमुहम्मद के कोई माजजा (करामात) नहीं मिला था. इसलिये यह कल्पना और विवाद है.

(द) मुसलमानी ईमान ६=ईश्वर एक है (वहदहुलाशरीक) उसका रसूल बरहक है कुरान कलामल्लाह (ईश्वरीय पुस्तक) है फिरश्तों की हस्ती, कयामत का होना, उस दिन इनसाफ होना. इन बातों पर जिसका इमान (निश्चय) है उसका नाम मुसल्मीन (मुसल्मान) है

दीन ४=नमाज, रोजा (उपवास), जकात (सखावत) और हज्ज करना. यह चार वाले वोह दीनदार है

मुसलमानों का याहूदी और क्रिश्चियन मत से भेद.

(१) याहूदी और खिस्ति नबी मुहम्मद को नबी होना और कुरान को ईश्वरीय पुस्तक नहीं मानते; परंतु मुसलमान मइल मूसा, ईसा को पेगंबर होना और तोरेत इंजील को ईश्वरीय पुस्तक मानते हैं; परंतु वे असल पुस्तक न रही बदली गई हैं, ऐसा कहते हैं.

(२) ईसाई, नबी साहेब और कुरान की बडी निंदा करते हैं.

(३) मोहम्मद साहेब भी पहिले येरोशलीम को. खुदा का मंदिर मान के उसकी तरफ मुख कर के नमाज पढते थे. पीछे काबा नियत किया.

(४) मुसलमान लोग खुतना मानते हैं; परंतु तोरेत जितनी शरीयत (कर्मकांड) और पशुहोम ज्यादा नही मानते. यहूदी खिस्ति को सब जानवर स्वीकार, परंतु मुसलमान सुवर वगेरे को नही स्वीकारते.

(५) मु. काबा की तरफ मुख कर के नमाज में सिजदा करना (ईश्वर को नमना) मानते हैं. या. खि. नही, और कब्रों मे भाव तथा मुर्दे गाडना तीनों मानते हैं.

(६) मुसलमान संसार, ईसुमसीह पर विश्वास रखने से निजात नहीं मानती; किंतु खुदा रसूल (नबी मुहम्मद) पर ईमान लाने से मानती है.

(७) ईसाई कहते हैं कि ईसुमसीह के पीछे कोई पेगबर नहीं होगा, कयामत होने पूर्व ईसामसीह आसमान से उतरेगा. मुसलमान कहते है कि नबी मुहम्मद खातमुल नबी (अंतिम पेगंबर) है इस पीछे कोई नबी न होगा और कयामत के होने पूर्व मुहम्मद की सूरत जेसा इमाममहदी पेदा होगा इ

(८) कुरान मे बायबल (तोरेत इंजील) से ज्यादा नवीन बात नहीं है. हां, शरीयत मे न्यूनता की है. सहल कर दी है, और जेसे तोरेत में मूसा की इंजील में ईसु की हिस्ट्री है वेसे कुरान में मुहम्मद साहब की हिस्ट्री ज्यादा लिखी है.

मुसलमानी ६ मजहब ७२ फिर्के.

इसलाम ससार में ६ बडे मजहब (गिरोह) है और इन हरएक मे अनेक भेद ऐसे ७२ भेद हैं (१) राफजी (शिया), (२) खारजिया, (३) जबरिया, (४) कदरिया, (५) झोयया और (६) मरजिया यह ६ उनके नाम है (गयास) इमाम-मोहमद गिजाली ६ मजहब के नाम यू कहते हैं—तशबीह, तातील, जबर, कदर, अफज, नसब. इन ७२ के सिवाय दूसरे देशो में असुवीय, अलिअलिहान, साढकिया फिर्के है इन सब का जुदा जुदा बयान देखना हो तो कुल्लियात आर्य मुसाफिर के पृष्ट ३८१ से ३८५ तक देखो. यहा तो भावना भेद मात्र लिख देना बस है. उनकी सज्ञा और देश कालादि लिखने की अपेक्षा नही है.

(१) कोई फिर्का अली को ४ यारो मे से अवल नवर, कोई अली नबी था, कोई अली खुदा का अवतार और कोई इमामअली की औलाद से होना, मानता है दूसरा अली की निंदा कहता है, क्योकि अली अपने को खुदा कहता था. हसन-हुसेन, रसूल की औलाद नही. (इनमें बडी तकरारें हैं). कोई भविष्य में नबी होना, कोई बनी हाशिम के विना नमाज नही और कोई हाथ बाध के नमाज नहीं, ऐसा मानता है.

(२) कोई (तनासखीया) जीव के कर्मानुमार पुनर्जन्म मानता है. कोई कयामत और उस दिन हिसाब किताब, कोई गेब (परोक्ष) पर ईमान रखना झूठा ईमान है, कोई सृष्टि पर खुदा का हुक्म नहीं है, कोई भविष्य कथन झूठ है और कोई कर्मों का फल नहीं होता, ऐसा मानता है.

(३) कोई नेकी बदी खुदा की तरफ से है, कोई जीव कर्म में परतत्र है, कोई जीव में ईश्वरदत्त शक्ति नहीं, जीव कर्म करने में स्वतत्र है, कोई ईमान सिवाय अन्य विधि (कर्त्तव्य) नहीं कोई विचार (विवेक) यह ईश्वरोपासना से ज्यादा दर्जा रखता है, कोई किस्मत (ईश्वर नियत भाग्य) नहीं है और कोई जीव कर्मो का जवाबदार नहीं है, ऐसा मानता है.

(४) विधि मान्य परतु सुन्नत नही, कोई नेकी खुदा की तरफ से और बुराई अहरमन (दूसरे खुदा) से कोई शेतान कोई शरीर नहीं है, कोई कर्मफल नहीं, कोई सृष्टि का नाश नहीं होगा, कोई तोबा करने से गुनाह माफ नहीं होते और कोई खुदा भी एक वस्तु (चीज=द्रव्य) है, ऐसा मानता है

(५) कोई कब्र मे दुःख होना, जमदूतों का आना और बहिश्त की हौज कौसर होना नही मानता. कोई जगत्कर्ता ईश्वर नहीं, कोई खुदा का एक जगह (ससीम) रहना, कोई तौरेत, इंजील और कुरान बनाये हुये हैं ईश्वरीय पुस्तक नहीं, कोई नबी मोहम्मद खुदा का रसूल नहीं था, कोई बहिश्त और दोजख भी नाश होंगी, कोई सृष्टि अनादि अनंत है महाप्रलय नही और कोई कुरान ईश्वरीय पुस्तक नहीं, ऐसा मानता है.

(६) कोई भय और आशा पैगंबर अपनी तरफ से कहता है, ईश्वर को उसके साथ संबंध नही, ईश्वर न बुरा दंड देता है न अपने में आशा बताता है, ऐसा मानता है. को "लाइलाह इल्लिलाह" यह कलमा पढा के पाप दूर हुवा, कोई ईश्वरोपासना और पाप का फल नहो है, कोई ईमान अर्थात् विद्या, कोई ईमान अर्थात् अमल (कर्तव्य करना), कोई अनुमान को गलत (अप्रमाण), और कोई आदम को ईश्वर ने अपनी सूरत पर बनाया है, ऐसा मानता है.

(७) कोई ईश्वर को साकार वस्तु मानता है, कोई 'मुहम्मद' को और चमत्कार बताने वाले 'मसीलमा' इन दोनों को पेगंबर मानता है. इ.

(८) इसके सिवाय करामिया, दहरिया (जडवादि चारवाक जेसे) हालिया वगैरे ७ फिरके दूसरे हैं

(९) इसके सिवाय प्रसिद्ध सूफी फिरका है. यह लोक स्वतत्र होते हैं. हाफिज, शम्सतबरेज, मंसूर, सरमस्त, फरीदुद्दीनअत्तार, बूअलीशाह, इत्यादि इसमें प्रसिद्ध हुये हैं यह कुरान को स्वतः प्रमाण नहीं भी मानते और जो नाममात्र मानते हैं वे उसके अर्थ दूसरे प्रकार के करते हैं. यह जीव ब्रह्म को एक मानते हैं अनलहक (मैं ब्रह्म—मैं सत) यह उनका वाक्य है कर्म उपासना को गौण और ज्ञान को मुख्य मानते हैं इसमें बहुत करके दर्वेश (साधु) होते हैं, गृहस्थ कम. दर्वेश भी छिपे हुये होते हैं क्योकि अहं ब्रह्मवादिओं को शरीयत वाले मुसलमानो ने मार डाला है. इसमें भी वेदातियो समान दो मत हैं वजूद (यह सर्व ब्रह्म का स्वरूप है) (अभिन्ननिमित्तोपादान) शहूद (ब्रह्म द्रष्टा साक्षी है, यह दृश्य मृगजल वा स्वप्नवत् देखने मात्र है). सबुर (संतोष धैर्य) और शुक्र (धन्यवाद) यह दो उनके विशेष मान्य हैं. ✱

● दर्शन में आगे आवेगा

(१०) हिंदुस्तान में जो वोहरे हैं, वे मेमन (इमामशाही) है. वे और खोजा पंथ (इसमाईली शीया) है सो इन सब का उपर के ६ में उतर भाव है. खोजा पंथ की हिस्टरी गुजराती मे है हिंदु मत का भी इसमे मेल है. श्री अली को अवतार मानते है. वोहरे और खोजे, शीया की शाखा मे है. मेमन सुन्नी और राफ़जी (शिया) दोनों प्रकार के होते है

(११) उपर के फिरको में कितनेक ऐसे है कि जो हिंद में नहीं है ग्वना वगैरे देशो में है.

(१२) उपर कहे हुये से इतर मुख्य सुन्नी (हनफी) रहते है जो मुहम्मद साहेब को नबी और उमर वगैरे को ४ यार मानते है. ताजियो को और कबर परस्ती को निषेध मानते है. इनमे भी चिशतिया, कादरिया वगैरे भेद है जो अंत में सूफी मत मे मिलते है.

(१३) केसानिया, तनासखिया, हाशमीया, गलात के सब फिरके, कामलीया, तर्सीया, इजामीया, कातीया, मंसूर्या, हमीरया, और यातनीया, इतने फिरके पूर्वोत्तर जन्म (पुनर्जन्म) को मानते है. (इनका विस्तार कु आ. मु. पेज १२४ में लिखा है). ‡

(१४) मोलवी रूमी, शेखनिजामी. शम्श तबरेज (६८१ सने हीजरी) शेष फरीदुद्दीन अत्तार, मोलवी जलालुद्दीनरूमी, कितने सूफी, यह सब मुसलमान थे और पुनर्जन्म को मानते थे (इनकी हकीकत, इनके वाक्य कु. आ. मु. पेज १२५। १२६ में लिखे है).

(१५) उपर जो मत भेद जनाया है वोह नाम मात्र है; क्योंकि इमाम वगैरे के अन्य भेद बहुत है जिसके कारण आपस मे युद्ध हो के ग्वून हुये है तथापि इसलामी ससार में यह खूबी है कि जब दूसरी नेशन के साथ मुक़ाबला पडे तो वे सब एक हो के मुकाबला करते है तथाहि इनका ऐतेकाद (निश्चय की द्रढता) अन्य सब धर्मवालो से द्रढ होता है (यथा हिंदु ससार मे न नेशन अभिमान है, न नेशन का सप है और न सम्प्रदायाभिमान है और न द्रढ निश्चय इसमे मुसलमान ससार में स्वधर्म की द्रढना—निश्चय बळवान है).

(१६) कुलियात आर्य मुसाफिर (पृ. २६४ से ५०० तक) में कुरान ग्रथ का सशोधन, कब बनी, किसने बनाई, उसमें फेरफार है वा नहीं वोह ईश्वरीय ग्रथ

‡ हनफी (सुन्नी) मालिकी (राफ़जी), शाफी, और हामलि इन चारोंमे नमाज की रीत भात में भी अतर है. यह चार बडे मजहब थे जिसके उपरोक्त ६ हो गये.

हे वा क्या, इस विषय मे उन लेगो की मान्यता क्या है, कुरान की तमाम सूरतो का सार इत्यादि बातें सविस्तार लिखी हैं तथा नबी मोहम्मद साहेब रसूल थे वा नहीं किंवा कौन थे, उनका मत कैसे चला इत्यादि बातें दरसायी हैं. मुसल्मानी धर्म की आतरिय स्थिति ओर मत भेद का विस्तार लिखा है *

खोजा कौम का इतिहास.

कर्ता जाफर भाई रहमतुल्लाह बी. ए. बेरस्टर ग्रेट्लॉ, मुबई साज वर्तमान प्रेस स. १९०९ ई

खिस्ति और मुसलमानी धर्म की जितनी शाखा उपशाखा लिखी हैं उन सबका इतिहास हम नहीं जानते और यदि किसी का कुछ जानते हे तो वर्णन करने की अपेक्षा नहीं है

तथापि स्वधर्म प्रचारार्थ क्या क्या पोलीसी वा प्रपच करने पडते हैं इस बात के जानने वास्ते सक्षेप में इसमाईली फिरका का वृतात जनाते हैं.

हिंद के असली वतनी—कोड (मध्य हिंदुस्तान मे), भील (रांजपूताना मे) सतल (बंगाल मे), तोडा (दक्षण में), चमार (दक्षण मे) हे बाकी बाहिर से आके बसे हैं

---

* नोट—: जितना तत्त्वदर्शन में चाहिये उससे ज्यादा विषय भी कई मत सम्प्रदाय का लिया हे उसमे कारण था यहा भी तोरेत, ईंजील और कुरान का विशेष विषय लिया है उसमे कारण है. (१) उनके मतव्यो का मेल ओर भेद स्पष्ट हो जाय, क्योंकि वे एक इसराइल की कोम ओर मतवाले अपने के मानते हैं. (२) उस समय अर्थात् बायबल के समय मिसर वगेरे देशवासियो की और कुरान के समय अरब देश निवासियों की केसी बुद्धि, कैसे आचार विचार थे सो पाठक स्वय जान ले. (३) नबी मुहम्मद साहेब ने अपने चार यारो के साथ लेके किस पोलिसी से अरब जैसे देश मे अद्वैत का झडा लगाया है यह जान लें अर्थात् अरब देश वहशी-गवार-जगली-खूनी-जाहिल-कनीयाखोर था, वहा गोतम, कणाद, पीथागोरस वा अरस्तु वगेरे का उपदेश काम मे न आता जैसा कि नबी साहेब के तरीके, पोलीसी, काम में आये. याने ऐसा न होता तो उस देश में अद्वितीय ईश्वरवाद नहीं पसरता बुतपरस्ति, आतिशपरस्ति, सूर्यपरस्ति उस देश मे से न जाती. उस देश के योग्य इस प्रकार की कुरान ही इल्हामी किताब मनाया जाना लाभकारी हुवा हे, जैसा कि उसका असर वर्तमान मे देख रहे हो मुहम्मद साहेब

९० वर्ष पूर्व खोजा लोक विद्या शब्द से भी नावाकिफ थे. पेज ७ ४०० वर्ष उपर पीर सदुरद्दीन ने हिंदु में से मुसलमान किये वे खोजे कहाये. इनकी भाषा कच्छी, पोशाक रीत भात हिंदुओं की जैसी है. ९. खोजे ब्राह्मण, छत्रीय वा लुहानों में से नहीं हैं; किंतु वैश्य-भाटिया-लुहानों में से हैं. शीया हैं. (इमाम) इसमाईली हैं. ८।१९.

पीर सदुरद्दीन ने १० अवतार कबुल रखे. ब्रह्मा (उत्पादक शक्ति), विष्णु (व्यापक शक्ति), शिव (क्रूर का शिक्षक शक्ति), मच्छ (तूफान मे रक्षक) इत्यादि रूप में १० अवतार मानें; परंतु नकळंक (कळंक दूर करने की शक्ति) यह अवतार हो गया और वोह इसलाम (मुसल्मानी धर्म) है. उसके मोहम्मद और अली यह दे। खंभ (आधार) हैं. २७ से ३२. मोहम्मद का जन्म २९ अगस्त स. ५७० ई. में हुवा और मरण सने ६३२ मदीने में हुवा. ७० वर्ष की उमर मे नबी कहाये थे ३७।२९.

मुहम्मद, अबुबकर, उमर, उसमान और गनी यह ४ खलीफे क्रमश २८ वर्ष में हो गये. अली को स. ६६० इ. विषे मसजिद में मार डाला. उसमान खलीफे ने प्रचूर्ण आयतें एकत्र की. जो विश्वास के योग्य थी मो रखी, बाकी सब जला डाली. इस पर लोक बहुत नाराज हुये. १०३।१२९. अली के पीछे हसन

को जब सुनकर, मुनाफक और काफरों ने बहुत सताया तब उन्हों ने जिहाद की पोलिसी इखतियार की. अब आप समझ सकते है कि नबी साहेब पर जो एतराज की निगाह रखते हैं वोह कहां तक ठीक है यदि देश, काल, स्थिति और परिस्थिति के इतिहास पर नजर डालें तो ऐसी दृष्टि न रहे जैसे कि पूर्व में थी. (४) जिस प्रकार कुरान के वास्ते कहा गया वैसे ही तौरेत इंजोल के जमाने मे वहां की प्रजा वास्ते कह सकते हैं; क्योकि उस जमाने में साक्षर भी यह कहते थे कि सूर्य नित्य दरिया में डूबता है और नया बनके उदय होता है.

इसलिये हमारा यह खयाल है कि यदि तौरेत इंजोल वा कुरान के कोई दूसरे गुह्य अर्थ न हों वा कोई अलंकारी कटाक्ष न हो किंतु जैसा वर्तमान में तरजुमे चल रहे हैं वैसे ही अर्थ हों तो हम ऐसा कह सकेंगे कि उस समय के मिसर वगेरे देश में और अरबस्तान में ऐसी प्रकार की किताबें और ऐसे कहवाते नबीयों-उपदेशकों की आवश्यकता होनी चाहिये. हां, यह जरूर नहीं है कि उनको अन्य देश, काल, स्थिति में अर्थात् सर्व देश काल में आगे किया जाय वा हटधर्मी स्वीकार करें. जेसा कि हरेक मत धर्म पंथवालों में देखते हैं.

वगेरे ९ इमाम हुये. उनमें अली से छठा जाफर सादक था. भेद यहां से पडा अर्थात् जाफर के पुत्र मूसा कासम को इमाम मानने वाले शिया अशनासरी कहलाये वे मूसा कासम से मुहम्मद महदी तक ६ इमाम एवं १२ इमाम को मानते हैं. महदी हि: २९९ में गुफा में चला गया, कयामत के दिन जीता बाहिर आवेगा.

जाफर के पुत्र इसमाइल और उसके पुत्र मुहम्मद के अनुयायी इसमाइली कहाये. इसमाइल से अब्दुल्ला महदी तक ६ इमाम हुये हैं उनको मानते हैं. मूसा-कासम वगेरे को नहीं मानते. यह महदी दूसरा है. महदी पीछे निजार (पीढी नं २०), खलीलअल्लाह (नं. ४९). आगाहसन अलीशाह (स १८१८ ई) नस्ल में नं. ४६. यह ईरान से भाग के बिलोचिस्तान सिंध में आया . नं. ४७ आगाअलीशाह और नं. ४८ विद्यमान आगा सुल्तान मोहम्मदशाह (उम्र ४७ वर्ष). ६ सब प्रकार से योग्य पुरुष है.

उक्त इसमाइल स. हि. १२८ (७६० ई.). २११. इमामहसन जकरिया ने म. १००१ ई. में नूर-सतागर को हिंद में भेजा. इसी को पीर सतगुर नूर कहते हैं. असल में स. ११८० ई. भीमसोळंखी (राजा सिद्धपुरपाटन) के समय आया था. कितनेक लुहाना वगेरे को विटलाया (मुसलमान किया). स. १४९८ ई. में पीर शम्श काश्मीर में आया. उसने वहां और मुलतान में भी विटलाये (यह खोजे नहीं कहाते). स. १४३० ई. में पीर सदुरद्दीन हिंद में आया. सिंध में रहा. हिंदू धर्म सीखा. अपना नाम सहदेव जोतिषी * रख लिया और धर्म सिखाने लगा. बहुत हिंदू विटलाये. कोटडा में खाना (जमात घर) कायम किया. कच्छ काठियावाड में वृद्धि होने लगी. २१९.

सदुरद्दीन शीया इमामी इसमाइली था. सुन्नी मुसलमान का कलमा "लाइल्लाह इल्लिल्लाह, मुहम्मदर्रसूलाल्लाह" और शीया का कलमा 'लाइल्लाह इल्लिल्लाह, अलीउनवली अल्लाह". राफजी (शिया) लोग अली को मोहम्मद जितना मान देते हैं. सुन्नी और शिया के पंचतन में मतभेद है. २२३. शिया मजहब का ईरान मथक है. अली, फातमा को अमर मानते हैं. काबे के समान करबला को मानते हैं. हाथ खोल के ३ वार नमाज पढते हैं. २२६.

---

६ ग्रंथ लेखन समय (१९१२).

* सदी १६०० में मद्रास में पादरी ने जनेऊ रख के पाच वा ईसु वेद बता के हजारों हिंदुओं को विटाला. तद्वत् सहदेव जोशी ने किया. हिंदू मार ही खाते आये हैं.

शीया इमामी=उपरोक्त नं. ७ वाला इमाम इसमाइल. कयामत होगी तब अली आवेगा. वहां तक इमामत अली की औलाद में रहेगी. २२९.

शीया जब हज को जावें तब हाथ बांध के पांच वक्त नमाज पढते हैं. अबाबकर वगैरे ४ यारों की कब्र पर फातहा पढते हैं. ऐसे करने का नाम तकिया है.[1]

इसमाइली खासियत—जब दूसरे को स्वधर्म में लाना हो तब उसके धर्म को सचा, ऐसा समझा के धीरे धीरे अपने धर्म का बोध कर के फेलावा करना, अपने धर्म का विचार छिपाना, दूसरे के धर्म का भाग अपना कर के कबूल रखना.[2] २३०.

स. ११०० ई. के लगभग हसन सभा (ईरानी शीया का एक जवान था) ने केरा में इसमाइली धर्म की तालीम ली. फेर ईरान में आया. अलबुर्ज पहाड उस पर आलमुत का अजीतगढ सं. १०९० में स्वाधीन कर लिया. यहां ३९ वर्ष रहा, ९० वर्ष की उम्र में मर गया. इसने ३९ वर्ष में इसमाइली फिर्के के और उसके अनुयाइयों के जितने प्रतिपक्षी थे उनको मार डालने का हुक्म किया.[3] बहुत मरवा डाले. हसन का बाप इसमाइली नही था. निजार के वंश में से गिना जाता था. चार पीढी पीछे चीनी जंगेसखां (चंगेजखां) का पोता हलाकुखां अलमुतगढ आया और गढ का नाश किया, और गढ में जितने थे सब को मार डाला. इसमाइली अरुज—जहाजलाली समाप्त हो गई. २३१.

स. १९०१ ई. में खोजों में भेद पड गये. कितनेक अपने को शीया अशनासरी कहने लगे. उनकी मस्जिद, कब्रस्तान जुदा पड गये. २४२. खोजों में छटी (जन्म

१—तकिये को चाल पर ध्यान दिया. अर्थात् मन में नहीं मानते और करते है क्यो? अपना बचाव कर के दूसरों का भेदभाव ले लेना.

२ – कितनी बडी आत्मा विरुद्ध पोलिसी

३—हसन सभा की गुजराती में एक चोपडी है. उसमें उसके दावे धावे और अंत में नाश होना लिखा है सार—

(१) गढ के अंदर बहिश्त बनाई थी (कुरान में लिखी हुई सामग्री से भी ज्यादा). (२) इसके जासूस हरएक जगह रहते थे. गुप्त रह के काम करते (३) बहिश्त का जिज्ञासु आता तो उसको अमुक खूबी में रख के आंख बंद करा के ले जाते दिखाते; उसका मन चले ही ऐसा बनाव था. वोह वहां रहने की जिज्ञासा करता कि उसको स्वामी पास लाते. स्वामी कहता कि नित्य रहना हो तो अमुक काम (फलाने को मार आओ इ) कर के आओ. वोह दगाफरेब छल कपट द्वारा या कोई भी प्रकार से वोह काम कर के आता. इस प्रकार विद्वान प्रतिष्ठित अनेक प्रतिपक्षियो को मरवा डाला. पीछे हलाकुखां ने युक्ति प्रयुक्ति कर के उसके जाल को तोडा.

खोजो के खाना के भजन और गुप्त क्रिया सुनते हैं, सो भी तहकीकात में लेने योग्य है.

के छटे दिन) को हिंदुओं के समान कलम, दवात, चोपडी, छुरी, हार, चोमुखी दीवा रखते हैं. २४२.

बाबी बहाई.

इस (१९) सदी में ईरान देश विषे मुसलमानी धर्म की एक शाखा निकली है, जिसको बाबी बहाई संप्रदाय कहते हैं. यह संप्रदाय सुधारक बहाउल्ला ने निकाली थी. जिसको इसके बदले फांसी लेनी पडी थी; परंतु अभी तक उसका बेटा अब्दुलबहा उसे चला रहा है. यह संप्रदाय सुधारक सभा है. मुसलमानों को नापसंद है, तथापि पब्लिक उसको पसंद करती है. ईश्वर का कोई पेगंबर न हुवा और न है; ईश्वर ने कभी अवस्ता द्वारा संदेशा भेजा हो, ऐसा भी नहीं हुवा और न है; और न ईश्वर अपनी तरफ से किसी धर्म की स्थापना करता है; ऐसा यह संप्रदाय मानती है. इस संप्रदाय के १२ नियम यह हैं—

(१) सब जाति और सब धर्म को मिलाना—एक करना. (२) लडाई न करना, पंचायत से फेसला कर लेना. (३) उद्यम करना. (४) भीख मांगने को अटकाना (भिक्षावृत्ति का प्रतिबंध). (५) पुरोहित का जुदा व्यवसाय न होना चाहिये. (६) एक पुरुष एक ही स्त्री करे. (७) पुत्र पुत्री को समान तालीम देना. (८) वैराग्य करके एकांत निवास करने की मना है. (९) स्त्री पुरुष दोनों को समान मानना. (१०) सब जाति के वास्ते एक भाषा बनाना. (११) जुवा और नशा वर्जित तथा पशु वध न करना, और दास दासी करने वा दास दासीरूप में रखने का निषेध है. यथाशक्ति कमाई में से परोपकार वास्ते दान करना. (आर्यप्रकाश २४ सितंबर स. १९१६ ई. में से).

अमेरीकन इस सभा की बहुत प्रशंसा करते हैं. ईरान यह मुसलमानी शिया संप्रदाय का मथक—राजधानी है. वहां ऐसी सभा स्थापन करना बहादुरी का काम है. सचमुच यह काम प्रशंसनीय है और त द. अ. ४ के संग्रहवाद में लेने जेसा है. समय है कि मुसलानों में भी ऐसे विचार के लोग होने लगे.

शोधक.

(याहूदी, क्रिश्चियन और मोहम्मदन के मंतव्य का निरीक्षण).

अब आगे उपरोक्त अवतरण में जिन बातों का धर्म फिलसफी के साथ संबंध नहीं है उनकी सिद्धि वा असिद्धि में न पड के तथा जिन विषयों की असिद्धि

(अपवाद) वा सिद्धि दिखा चुके हैं उनको छोड के जितना अंश (जो विषय) विचारणीय है उसका अपवाद वा विवेचन करते हैं—

(१) ईश्वर को यदि उपादान (मेटर—प्रकृति—तत्त्व) की अपेक्षा हो तो, जीवों के कर्मानुसार करना पडे तो, बुद्धि के अनुसार करना पडे तो, और स्वभाववश वा देवताधीन करना पडे तो, वा परवश रचना की खटपट में उतरना पडे तो ईश्वर परतंत्र ठेरता है. शिर्क हो जाता है. यह विचार ठीक तो है; परंतु आगे जाके यथाकर्म दंड देगा, नबीयों को बीच में लिया, उनको निबाहा, फिरश्तों द्वारा काम लिया यह भी तो परतंत्रता ठेरी; और मनुष्य भी देखता है, ईश्वर भी वस्तु देखता है, तथा नबीयों पर विश्वास ईमान, यह भी तो शिर्क हो गया. माना कि यह ईश्वर ने अपनी इच्छा से किया है अतः परतंत्र नहीं, तथापि दूसरे धर्म वाले उसकी इच्छा के तावे नहीं होते और इसराइली धर्म (या क्रि. मु. तीनों धर्म) से विरोध रखते हैं वहां एक के पक्ष में उतरना, दूसरे को हानि करना यह क्या. साराश ईश्वर की इच्छामात्र से होता तो विरोध न होता, इसलिये निरपेक्ष मानना मुश्किल है.

(२) यह सृष्टि तो सात हजार वर्ष से बताते हैं तो क्या इसके पूर्व ईश्वर निष्फल था? निष्फलत्व का अभाव है. सृष्टि का आरंभ तो उसकी पूर्व क्षण मानना ही होगा. कहा, हो जा और हो गया, यह किसने सुना और उस अनुसार वोह जड कैसे हो गया? जब कहा कि हो जा तो अमुक प्रकार का हो, ऐसा ईश्वर के ध्यान में था वा नहीं? यदि था तो उसकी हस्ती पूर्व मे ठेरी; क्योंकि ईश्वर के विचार में अन्यथा न हो, और यदि नहीं था तो हो जा कहना ही नहीं बनता तथा जो हुवा वैसा होना ही नहीं बनता.

(३) अभाव से भावरूप पदार्थ होना असंभव और ऐसी कोई व्याप्ति नहीं मिलती. यदि ईश्वर की शक्ति से कहो तो जो शक्ति द्रव्य तो ईश्वर से इतर दूसरा पदार्थ ठेरा, जो शक्ति गुण तो उससे सूर्य जीवादि पदार्थ नहीं बन सकते. यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान् इसलिये अभाव से भाव, तो क्या वोह अपना जैसा दूसरा ईश्वर बना सकता है, वा अपना अभाव कर सकता है? पाप कर्म कर सकता है? अपने देश से किसी को बाहिर निकाल के रख सकता है? इ. यहां नहीं उत्तर मिलता है क्योकि अन्यथा दोष आते हैं. तद्वत् अभाव से भाव भी नहीं हो सकता. ईश्वर अपने आपको जानता है तो द्रष्टा दृश्य (नाजर मंजूर) से भिन्न ऐसे दो विभाग होने से सावयव ठेरता है और जो नहीं जानता तो सर्वज्ञ नहीं ठेरता. तद्वत् जो 'मैं इतना

हू; ऐसा जानता है तो ससीम ठेरता है। और जो नहीं जानता वा अनत हू ऐसा जानता है तो सर्वज्ञ नही. इस प्रकार सर्वज्ञत्व भी नहीं बनता जो उसको हमारा ज्ञान पहिले था तो हमारी पूर्व में सिद्धि और यदि नहीं था तो हमारी और जगत् की उत्पत्ति ही नहीं बनती. यदि जीवों का भविष्य जानता है तो उसका ज्ञान अन्यथा न होने से जीव परतत्र हुवा याने कर्म का उत्तरदाता नहीं ठेरता.

(४) जेसे जीव बनाये, उनको जेसी बुद्धि दी, जेसी सामग्री (शरीर, माता, पिता, देश, काल, इद्रियादि) और योग्यता दी, वेसे चलता है, इसलिये जवाबदार नहीं तो फेर उसको दुःख वा नरक क्यो? इतना ही नहीं किंतु ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और बदगी तीनो मानते है उसकी और उसको ईश्वर वा दूत पर विश्वास रखने की अपेक्षा नहीं, क्योकि बीज तो ईश्वरदत्त है और जेसा उसने जीव का भविष्य नियत किया वेसा ही होने वाला है

(शा.) बुद्धि दी. और नेक बद मार्ग सुझाया है अतः जवाबदार. (उ.) ऐसी बुद्धि और सामग्री देता कि उपदेश के विरुद्ध न चलता. ईश्वर की आज्ञा भग करने में समर्थ और शेतान के निवारण मे असमर्थ न होता अतः जवाबदार नहीं, वा तो ईश्वर ही की ऐसी इच्छा होगी कि जीव खराब भी काम करे, इसलिये जवाबदार नही

(५) अमुक मजहब वाले (मूर्तिपूजक वा जिन्होने नबी का स्वप्न भी नहीं ऐसी प्रजा, वा याहूदी वा किरानी वा कुरानी वा देहरिया नास्तिक) के घर क्यो पेदा किया? किसी को अगहीन (अधा वगेरे), किसी का रोगी, किसी को रक, किसी को साग—तन्दुरुस्त, राजा, क्यो बनाया? किसने कहा था हमको ऐसा बनाना. किसी को गर्म, किसी को ठडे देश में क्यो पेदा किया? बालक को क्यो मार डालता है? उत्तर मे कुछ अपेक्षा आती है. अन्यथा ऐसा भेद न हो (शा.) ईश्वर की मरजी उसका भेद हम नहीं जानते. (उ.) उसने यह भेद दूसरो का बताया है. याने पूर्व के कर्मफल.

(६) दुःखमय संसार क्यो बनाई, इसमे उत्तम क्यो न बनाई, शेतान क्यो बनाया, उसको केद में क्यो न रखा? उत्तर में या तो ईश्वर शक्तिमान् नहीं या तो जगत्कर्ता नहीं वा तो अन्य अपेक्षा है, ऐसा निकलता है. निरपराधी बालक को जन्म देके बालकावस्था में ही उठा लिया, यह व्यर्थ काम नहीं तो क्या? ईश्वर व्यर्थ काम नहीं करता.

(७) यदि व्यापक है तो मलिन ससार में कैसे रहता होगा? मनुष्य, पशु, पक्षी उसके अग पर मलीनता करे वा उसके सामने निर्लज्ज व्यवहार करें, यह शिर्क क्योंकर पसंद पडता होगा? उत्तर में या तो ईश्वर सर्वव्यापक, हाजिर, नाजिर नहीं वा तो ईश्वर नहीं वा तो जगत् से बाहिर कहीं होगा, यह आता है; परतु जगत् से बाहिर हो तो जगत् नहीं बना सकता याने ईश्वर जगत् का कर्ता न होगा.

(८) प्रजा को सुख मिले ऐसा क्यो नहीं करता, धर्म के लिये खून क्यों होने दिये? उत्तर में या तो दयालु, सर्वशक्तिमान् नहीं या तो ईश्वर नही वा तो अन्य अपेक्षा है.

(९) बालक मरे तो उसको स्वर्ग वा नरक मिलना अन्याय है, क्योंकि कर्म नहीं है. मरने पीछे महाप्रलय तक जीव जेरतनवीन निकम्मे पडे रहेंगे, यह अन्याय नहीं तो क्या? क्योकि आरभ के और प्रलय के समीप के जीव समान गिने गये. यदि मरने पीछे भूत पलीतादि रूप कर्म करना मानें तो पुनर्जन्म का स्वीकार हो जायगा, और कब्र में से उठना न माना जायगा, और जीव बने तन से जन्म देने तक निकम्मे पडे रहें, यह क्या न्याय है? क्या मुमकिन है? भुतो का बंदरो के शरीर में प्रवेश होना एक प्रकार का अन्य शरीर की प्राप्ति (पुनर्जन्म–तनासुख) है. (बायबल कुरान में ऐसा होना लिखा है) *

(१०) आदम की पसली में से हवा (नारी) बनाई, क्या आदम समान जुदा नहीं बना सकता था? ६ दिवस में सृष्टि बना सका क्या यही सर्वशक्तिमान्पना? क्या साकार (परिच्छिन्न–आकाश में रहनेवाला) ईश्वर सर्वज्ञ हो सकता है? क्या इच्छा संकल्प करनेवाला निरवयव हो सकता है?

(११) यदि कर्मानुसार फल मिलता है तो ईश्वर से इतर दूसरो पर विश्वास रखना व्यर्थ नहीं तो क्या? क्या याहूदी वा ईसाई वा मोहम्मदन ही मुक्तिपात्र होंगे अन्य नहीं? इन तीनो में से उन उनकी मान्यता अनुसार दूसरा मुक्तिपात्र नहीं. यह कथन क्या अयुक्ति परिणाम नहीं लाता? जब कि आदमी को ईश्वर ने अपनी सूरत पर बनाया और अपना दम फूका वा आज्ञा डाली तो अपवित्र ःदुखी

* फिरश्ते से शेतान का साप बनना शरीर बदल है हनूक यान एलियाह का कई बार जन्म हुवा (१) तोरेत उत्पत्ति ५।२३।२४ ईसु पूर्व ३३१७ (२) सलातीन १ बाब १७ आ १ इसु पूर्व ९१०. (३) सलातीन २ बाब २।११ ईसु पूर्व ८९६ (४) योहनी (योहना बिन जकरिया के) के पेदा हुवा मला की किताब ४।५ इसु पूर्व ३१७ वर्ष (५) ईसु ने योहना के हाथ से बिप्तसमा पाया

मुनकरो को हमने कहा कि बदर हो जाओ और हो गये (कु सु बकर सु एराफ) दोजख में दूसरा शरीर दिया जावेगा (खातुलनसाय)

क्यो है? बुरी दशा से मरने के समय दूत, 'हे ईश्वर! मुझे क्यो छोड दिया' ऐसे रक्षा मागने पर भी ईश्वर न बचा सके तो वे ईश्वर के दूत वा क्या?

(१२) जब कि सर्वशक्तिमान् है तो क्या दूत के विना जीवो का मन नही फेर सकता? वा दूतो का आज्ञा न मानने वाले को शिक्षा देके दुरस्त नहीं कर सकता? क्यामत पर बदला मिलना क्या एक कल्पनामात्र नही? वा बनावट नहीं! इसलिये क्या दूत की अपेक्षा है.

(१३) यदि पशु पक्ष्यादि मनुष्य के वास्ते दत्त है तो उनका बलिदान ईश्वर अर्थ होना अनुचित है, क्योकि उसके दत्त है, और यदि दत्त नही तो राग, द्वेष, ईच्छा, ज्ञान, दुःख, सुख, संस्कार उनमें भी है अर्थात् मनुष्य जैसे जीव है और न्यून दर्जे के है, इसलिये उनके बध का मनुष्य को अधिकार नहीं

(१४) सो दो सो वर्ष की उम्र में जो कर्म किये उन (सादिसात) कर्मो का फल हमेशे के लिये नरक वा स्वर्ग यह अन्याय वा असभव नही?

(१५) जीव सर्जकृत यथेच्छा, उसका नसीब नियत यथेच्छा, उसको जन्म सामग्री साधन और योग्यता यथेच्छा, ईश्वर चाहे सो करे याने मन फेर दे, वा नेकी पर चलने दे वा न चलने दे, पापी को स्वर्ग धर्मात्मा को नरक दे दे, तथा बहकाने वाला शैतान कर दिया, मरने पीछे क्यामत तक पडा रखे, इतना होते हुये जीव को हमेशे के लिये नरक वा स्वर्ग देगा. इस प्रकार का अन्यायी सिद्धात मानना हमारी भूल नहीं तो क्या?

(१६) पुनर्जन्म (पूर्वोत्तर जन्म) मानने से उक्त दोषो की निवृत्ति हो जाती है और न्यायी, निस्पृही और व्यवस्थापक होने से सापेक्षता वाला दोष भी नहीं आता पुनर्जन्मसिद्धि में इलहाम (ईश्वरीय उपदेश) की अपेक्षा हो ऐसा नहीं है, किंतु कानून कुदरत, व्याप्ति और परीक्षा से सिद्धि हो जाती है

(१७) स्वर्ग में भोग माना है इससे सिद्ध होता है कि जीव को दूसरा शरीर मिलेगा, यह एक प्रकार का पुनर्जन्म है.

(१८) विना हेतु (गर्ज) के कोई कार्य नहीं होता. ईश्वर से इतर कुछ भी नहीं था इसलिये सृष्टि बनाने म अन्य हेतु नहीं है. इससे जान पडता है कि ईश्वर को कुछ अपेक्षा थी तब बनाई होगी, (परतु ईश्वर की जात तो निरपेक्ष मानी जाती है) नहीं तो सजाजजा के देने के झगडे में क्यो पडे अपनी बदगी करने वास्ते बनाना मानें तो ईश्वर अभिमानी ठेरा अपने बनाये हुये की बदगी ही क्या. तथा

जीवों की परीक्षा अर्थ मानें तो अपने बनाये हुये की और सर्वज्ञ की परीक्षा करना ही नही बनता.

नित्य वारंवार ईश्वर की स्तुति प्रार्थना करना नहीं बनता; क्योंकि ईश्वर बधिर नहीं है, खुशामदपसंद नहीं है; किंतु अंतर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् है. किसी ने मुझसे कहा था कि जो श्रेष्ट हैं उनकी स्तुति उनके मुख पर करना उनको गाली देने समान होता है, इसलिये मैं ईश्वर की स्तुति नहीं करता, मैं ईश्वर को व्यापारी नहीं मानता; किंतु मैं तो अपने गुण कर्म सुधारने के लिये उसके गुण गाता हूं, नहीं कि अन्य दृष्टि से.

(१९) जब मनुष्य मंडल पापी हो जाय तो (१) ईश्वर आप जन्म लेता है (२) वा पवित्र रूह भेजता है (३) वा नबी (दूत) द्वारा आज्ञा भेजता है, ऐसा मानें तो (१) वे जिसके यहां जन्मे वोह भी पापी था तो फेर वोह कैसे निष्पाप रहेगा. (२) जेसे पूर्व में अमैथुनी सृष्टि की वेसे अमैथुनी पुरुष नहीं भेज सकता था वा वैसा स्वयं रूप नहीं धर सकता था, क्योंकि सर्वशक्तिमान् है; परंतु बात यह है कि अनोखी भावना दर्शाने विना, दृढाये विना पंथ का टट्टू नहीं चलता, इसलिये धर्म पंथवाले ऐसी ऐसी कल्पना कर के प्रचार करते हैं.

ईश्वर की फूंक वा हुक्म वा उसका अंश मनुष्य देह में वोह भेजे और वोह अपवित्र-पापी-दुःखी हो, यह कितना शोचनीय है, या तो वोह ईश्वर की फूक वगेरे रूप नहीं, या तो यह मंतव्य कल्पना मात्र है.

क्या एक जीव सब के पाप लेके आसमान पर जा सकता है, कभी नहीं अर्थात् एक जीव सब के पाप अपने उपर नहीं ले सकता. तद्वत् ईश्वर किसी की सिफारश से किसी पापी के पाप कर्मफल दिये विना माफ कर देगा? ऐसा नहीं हो सकता; परंतु ऐसी भावना में वा उपदेशक रोचक थीयरी मे मान जाते हैं; वस्तुतः ऐसा नहीं है.

(२०) फ्रांस में १०० में से ७६ भाग आदमी बायबल की तालीम से जुदा होके लामजहब हो गये. (मि. गलेडस्टन कृत सदियों का मजबूत चट्टान पेज २१. मर्दुमशुमारी स. १८८१ ई. का हवाला). जेसे साक्षर मंडल पुराणों पर से दृष्टि उठाते जाते हैं वेसे वहां हुवा होगा.

(२१) आदमी करके पछताना, और शेतान ने तथा आदम ने खुदा को आज्ञा न मानी, क्या इसी का नाम सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमानत्व? मूसा पेगंबर की जिह्वा लंगडाती थी उसको दुरुस्त न किया, परंतु मानजे दिये, बातें कीं.

(२२) प्रोशिया के वास्ते गलक साहेब लिखते हैं कि वहां वर्षों से बायवल का मजहब नहीं रहा. माजजे (करामातें) के कहानी मान के हंसते हैं. (कु. आ. मू. पृ. १४०).

(२३) बायवल और कुरान में खुदा ने कस्में खाई हैं, क्या ऐसा खुदा हो सकता है?

(२४) ईश्वर ने अमुक का मन सख्त कर दिया, अमुक के मनों पर मोहर कर दी, ऐसा कर के उनको नरक देना अन्याय नहीं तो क्या?

(२५) किस्से कहानीवाला तोरेत, इंजील और कुरान ईश्वरीय पुस्तक वा ईश्वरदत्त का उपदेश मान सकते हैं वा नहीं, इसके संबंध में त. द. अ १ सूत्र २१४ से २७७ तक वांचिये.

(२६) उक्त तीनों मजहब में जीव का खास स्वरूप (जड–चेतन–अणु–विभु वा मध्यम) नहीं कहा है; किंतु उसका ज्ञान न मिलने से ईश्वर की फूंक (वा आज्ञा) इतना शब्द लिख के रह गये हैं; इसलिये उस विषे ज्यादा कहने की अपेक्षा नहीं है.

इसराइल मत संबंधी विभूषक मत.

याहूदी, खिस्ति वा कुरानी मत में दृढ भावना वाला यदि उपरोक्त सतक पूर्वक पंचदशांग पाले तो उसी धर्म में रह के उसका ईश्वर उपासना द्वारा कल्याण हो सकता है, उसको कोई हानि हो ऐसा नहीं जान पडता. त. द. अ. १ विभूषक मत नं ७ पृष्ट २२६ देखो और प्रस्तावना में जो पंचदशांग लिखे हैं उनको याद में लो. यदि बाह्यांतर में पंचदशांग न पाले तो वर्तमानवत् दुर्दशा रहेगी. सुख चेन न होगा.

सूफी मत. *

मुसलमानों में एक सूफी (अद्वैतवादी) फिर्का है. उसमें भी दो हैं. (१) वजूद याने सर्व ब्रह्म ही है. तमाम नाम रूप जगत जलतरंग समान ईश्वर का ही स्वरूप है. सब उसके गुण (सिफात) हैं. (२) शहूद याने दृश्य ब्रह्मरूप नहीं परंतु ब्रह्म सब में और सब ब्रह्म में है.

---

* "गुलज़ार वहदत" छपाया हाजी मुहम्मद नजुमुद्दीन साहेब सबीरा. (ध्याने मुहम्मद सुलेमान साहेब) कृत. यह मोलवी मुहम्मद रमज़ान साहेब मुनशनशी के पिता हैं. यह किताब रज़ुवी छापेखाने दिल्ली में स. १३२५ हिजरी में छपी है उसमें मे छेके लिया है. इसका कर्ता चिश्ती निज़ामिया खानदान में से है. नबी मुहम्मद साहेबसे गुरु वंश में अपने को नं. ३५ में बताते है. यह ग्रंथ कबीरे मतन की फारसी शरह की टीका है

वजूद मत का सार यह है. ईश्वर से इतर कुछ भी नहीं. उसको इच्छा (शौक) हुवा कि मैं अनेकरूप से जाना जाऊं. तव उसके ७ मरतवे माने जाते हैं.

(१) अहदीयत (अव्यवहार्य. निरीह मूलवीज. प्रपंच उपशम.) जेसे कुम्हार चुप है. (२) वहदत (सगुणरूप) अपने गुण जाहिर करने का शौक इच्छा. जेसे कुम्हार के मन में कुछ वनाने का खयाल. इस मरतवे (अवस्था) को इजमाल और हकीकत महुम्मदी और तैयुन अव्वल भी कहते हैं. (३) वाहदीयत. जेसे कुम्हार अमुक प्रकार का आकार वनाऊं ऐसा खयाल करे. वेसे ईश्वर का आकारी खयाल. इस मरतबे को सुरइलमीया, अयानसानीया और तफसील भी कहते हैं. (४) आलम अरवाह. उसने नाना प्रकार के फिरश्ते (देवता) रूप धरे. (स्थूल सूक्ष्म शरीररहित). (५) आलम मिसाल. रूहें (जीवात्मा) वनाई (रूह रूप हुवा) जिनके सूक्ष्म शरीर था और तेज रूप थे स्थूल शरीर नही. (६) आलम इजसाम. खयाल के अनुसार आसमान, सूर्य, तारादि और धातु, वनस्पति और प्राणी वनाये (याने ईश्वर में से हुये) इसको अयानखार्जा (वाह्यसृष्टि) कहते हैं. (७) इन्सान कामिल. यह मरतवा पहिले से जुदा नहीं और जाहिर में जुदा है. याने मनुष्य एक प्रकार से ब्रह्म और एक प्रकार से वंदा (उपासक) है. इस प्रकार ७ रूप होते हैं. इस उतार को नजूल और इससे उल्टे को अरूज वोलते हैं अर्थात समुद्र में से पानी निकल के अनेक नदी, चश्मे, तालाव, कुवे हुये फेर वे सव समुद्र में मिल के समुद्ररूप हो जाते हैं.

दूसरा प्रकार. दूसरा क्रम यह है. अल्लाह (ब्रह्म शुद्ध चेतन) उसमे अकल कुल (समष्टि महतत्तत्त्व) उससे नफस कुल (समष्टि अहंकार), उससे तवीयत कुल (समष्टि ११ इंद्रियगण) उससे जोहरहिया. उससे शिक्लकुल (समष्टि आकार) उससे जिस्मकुल (समष्टि मूलतत्त्व) उससे अर्श (आकाश) उससे कुर्सी एवं राशी वाला आकाश—मंजल वाला आकाश—शनी, गुरु, मंगल, सूर्य, शुक्र, वुध, चंद्र. इस पीछे आग—पानी—माटी—हवा—खानिज—वनस्पति—प्राणी (हेवानात), देवता, जिन, मनुष्य, इन्सान कामिल ब्रह्मवित्—ब्रह्म स्वरूप).

उपर कहे अनुसार खयाल में नजूल (उत्पत्ति) रूप फेर सव खाक, खाक पानी से ऐसे अरूज का फिकर (खयालबंदी) करे इस प्रकार आपरूप से उत्पत्ति लय का चिंतन करे (अहंग्रह उपासना) तो ब्रह्ममय ब्रह्मरूप हो जाता है. वीज से वृक्ष, वृक्ष से वीजरूप हो जाता है.

नकशबंदीया फिर्का शहूद को मानता है, वजूद को नही. वहदत शहूद अर्थात् यह सब ब्रह्मरूप है, ऐसा भाव वस्तुतः नहीं है किंतु जेसे मजनू को सब जगह लेला देख पडती थी असल में वोह लेला नहीं थी. इसी तरह यह दृश्य उत्पन्न जगत और है, परंतु इश्क और मस्ती के कारण से हर वस्तु में ब्रह्म की झांकी होती है; इसलिये वजूद कहते हैं. वजूद वाले 'अवतरण में' कुरान हदीस के जो वाक्य लिखे हैं उनको दलील में देते हैं और कहते हैं कि वीज (उपादान) के विना वृक्ष नहीं होता याने नेस्ती (अभाव) से हस्त (भाव) रूप नही होता. अब जो जगत का मूल दूसरा मानें तो शिर्क (द्वैत) हो जाता है; इसलिये सब ब्रह्म हैं और शहूद वाले यह कहते हैं कि अल्लाह अखंड, निरवयव, शुद्ध, सतचित्त, आनंदस्वरूप, (एनहक, एनइल्म, एनसइर) है, उसका रूप यह दृश्य जगत नहीं हो सकता. इ

सृष्टि उत्पत्ति काल में जो कुछ करना था सो ईश्वर कर चुका, फेर सृष्टिकार्य में नहीं लगता ऐसा किसी का मत है. आलिम यह कहते हैं कि हर चीज क्षण क्षण में नवीन होती है, इसलिये ईश्वर का हाथ भी हर समय है. उसकी जमाली (विष्णु गुण) सिफत और जीता रखती है ओर जलाली (रुद्र गुण) सिफत नाश करती रहती है. जीव का तनासुख (पुनर्जन्म) नहीं होता; कयामत को फल मिलेगा. व्यवहार दृष्टि में सृष्टि उत्पन्न की गई है. अतः नेकी वदी कुफर इस्लाम है. वस्तुतः (हकीकतन) ऐसा नहीं है; किंतु यह आप खुदा का स्वरूप है उसने आप भी नानारूप धरे हैं. कर्ता भोक्ता, ज्ञानी अज्ञानी, उपासक उपास्य, नेक बद रूप में आप जाहिर हुवा है. जो हकीकतवाले हैं वे काफिर, मोमन सब को समदृष्टि से देखते हैं.

ब्रह्मज्ञान बताने वाले गुरु के ९ लक्षण. मुमुक्षु शिष्य के २९ लक्षण (पृ. २७).

शरीयत (कुरान के अनुसार कर्मकांड), इबादत (ईश्वरोपासना कांड) * इन दो का प्रथम ग्रहण है; क्योंकि कुछ भी हो. रब रब (ईश्वर) ही औरबंदा बंदा ही है. इसकी सिद्धि पीछे तरीकत (विवेकादि ४ साधन) फेर हकीकत (श्रवणादि) फेर मारफत (ब्रह्मज्ञान) फेर नेती नेती शेष (बका), ऐसा इस विद्या का क्रम है.

पहिले गुरु में पीछे रसूल मे तदाकारता पीछे ब्रह्म में तदाकारता होती है, ऐसा मानते हैं.

---

* इबादत (दुआ, वजीफा, नुफल, कुरान का पाट). अद्वैत ब्रह्मज्ञान का साधन (१) चहंथ याने ईश्वर कृपा (२) या शमादि तप मजाहदा, मशाहदा, जिकर, फिकर, मराकबा (पृ २१२ से २६० तक).

सिद्ध ब्रह्मवित्तों के १२ दर्जे हैं अकताब (१२) गौस, इमाम, अवताद (४) अवदाल, (७) अखियार, अवरार, नकवा, नजवा, मुकर्रबां, मफरदान (१०० से ११० तक).

मारफत का भेद जिसने पाया वोह कह नहीं सकता. वाणी और अक्ल का वहां गुजर नहीं होता.

सृष्टि कब, कैसे पेदा की और अब फेर भविष्य में कैसे करेगा, यह भेद नहीं जाना जाता.

अवतरण.

वही वही कोई और न दूजा+, कहीं मुहम्मद होके आया+, आप ही आपको सीस निवावे+, कहीं ब्रह्मन शंख बजाया, आप ही अपना हरजस गाय. कहीं नज-मुद्दीहोके आया+, कहीं लोग हुवा कही लुगाई, कहीं मोमिन कहीं काफिर हुवा+, कहीं रात कहीं दिन हो आया, जेसे जल को वर्फ बनाई+, ज्यूं हवाब दरिया से उठे, आखिर उसका उसमें मिटे. यह तमसील हमारी तुम्हारी, यही है मोत और यही जिवारी. (नजम पृ. १).

चखुशगुफ्त वहलोल फरखुंदेः फाल; कि मन अज खुदा पेशबूदम दो साल+ मन आं वक्त करदम खुदा रासिजूद. के जाते सिफाते खुदाहमनबूद (वहलोल वोस्तां). आं अनलहक नेस्त अजगेरे खुदा; गेरहक खुदाकीस्त तागोयदअना. (मो. रूमी). गर बसुरत मन ज आदम जादः अम; मनव मानी जद जद उफ्तादः अम (मो. रूमी). दरवेश हुअल्लाह शहनशाह हुअल्लाह; ख्वाही तो अनल्लाह बिगोख्वाह हुअल्लाह (मो. निजामी). माचुने एमो निदा दर मा ज ओस्त (मो. रूमी) पस हुमानस्त जलवः साज जहूर; कि इबारत ज नकश मा व शुमास्त (मतन). ऊंचः अज़ दरिया व दरिया मेरवद; अज़ हुमांजा कामदांजा मेरवद. सूरतज बेसूरते आमद वरूं; बाजशुद काना अलेहः राजऊन (मो रूमी). जंग हफ्ताद दो * मिल्लत हमः रा उजर विनः; चूं नदीदन्द हकीकत रह अफसानः जदंद (हाफिज). बखुदा गेरखुदा दरदोजहां चीजे नेस्त (मो. जामी). कुमबइजनीव कुमबइजनल्लाह. यह दोनों यार के कलाम हैं (फरीद).

अद्वैत सिद्धि-(१) इनमातु कुरान जिधर मुंह फेरे उधर जात अल्लाह की है. (२) हुवलाव्वल (कु.) वही पहिले, अंत में और दृष्ट तथा अदृष्ट. (३) वकुलशेमुहीत

* हाफिज के समय (७०० सदी हिजरी याने आज से ६०० वर्ष पहिले) मुसलमानों में ७२ फिर्के हो चुके थे.

(कु.) खुदा हर वस्तु में है (सब उसकी शक्क हैं). (४) व फीनफस्कम (कु.) में तुम्हारी जातों में आया हूं. (५) व नहन अक्रबल (कु.) में तुम से नजदीक हूं. (६) कुल अनमा अनाबशर मिसलकम (कु.) कह में भी आदमी हूं तुहारा जेसा.

(१) इनल्लाह (हदीस) अल्लाह बोलता है उम्र की जिह्वा पर. (२) लातसबू (हदीस) जमाने के गाली मत दे; क्योंकि वोह खुद खुदा है. अल्लाह दहर है. (३) लायकोल (ह.) नहीं कहता है अल्लाह परंतु अल्लाह अर्थात अपना नाम आप लेता है. (४) अनाअहमद बिलामीम (ह.) मकार विना का मैं अहमद याने अहद (अद्वैतरूप) हूं. (५) अनानसमी (ह.) जमीन में मेरा नाम मुहम्मद, आसमान में अहमद और अर्श पर अहद (अद्वेत रूप) है. (६) हालिया इनल्लाह (हदीस कुदसी) ऐ बंदे! में बेमार हुवा. तूने नहीं पूछा. (७) या मुहम्मद अखरज (ह. कु.) ऐ मुहम्मद! मेरे गुणों के साथ जाहिर हो तो जिसने देखा तुझके उसने मुझके देखा. (८) मनरानी फकद (ह.) जिसने मुझके (मुहम्मद के) देखा उसने खुदा के देखा. (९) खलक अल्लाह आदम अला सूर्त ही (ह.) अल्लाह ने आदम के बनाया अपनी सूरत पर. उसमें अपनी जात (स्वरूप) गुण और कर्म प्रसिद्ध किये. (१०) फकदा अर्फन फसही (ह.) जिसने पहिचाना अपने के उसने पहिचाना रब्ब के. (११) लाइल्लाह इल्लिल्लाह (क.) अल्लाह के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है. § (१२) अलखलक काल कंतकंजन मखफीयन (ह. कु.) दाउद पेगंबर के उत्तर में खुदा कहता है कि मैं छपा हुवा खजाना था. मुझे शौक (इच्छा) हुवा कि मैं जाना जाऊं अर्थात दृश्य रूप हो जाऊं. पस दृश्य बनाया. (१३) लायतजल्ली हक की सूरत मरतीन (हदीस) अल्लाह दूसरी बार एक सूरत में नही तजल्ली (प्रसिद्धि) करता. (हरदम में जुदी जुदी सूरत–आकार धरता है) कुरान की तफसीर हुसेनी देखो. अद्वैतवाद के दाखले बहुत मिलेंगे.

शोधक.

ब्रह्म ही जगत रूप हुवा है, इसकी व्याप्ति नहीं मिलती. वोह जब कि शुद्ध स्वरूप और एक है तो आप ही उपासक उपास्य, नीच उंच, पवित्र अपवित्र, तम

---

§ तो फेर दृश्य क्या? एक यह मानता है कि दृश्य (त्रिपुटी) खुदा का ही स्वरूप है जेसे दरिया और लहेर याने अपनी इच्छा से नाना रूप धरता है. दूसरा यूं मानता है कि दृश्य मृगजल (सुराब) वत् है. तीसरा यूं कहता है कि ईश्वरकृत है उसमें ईश्वर है; परंतु इस पक्ष में दृश्य दूसरी वस्तु होने से शिर्क होता है और अभाव से भावरूप नहीं होता, इसलिये तीसरा मत अमान्य है.

प्रकाश, रात दिन, पुनर्जन्मधारी न धारी, स्वर्ग नरक, कुरान वेद का कर्ता इत्यादि विरोधी धर्म गुणवाला नहीं हो सकता, असंभव है नाना रूप होने का सतोपकारक हेतु नहीं मिलता. जो स्वरूप से अमिश्रित एक वस्तु हो उसके नाना रूप नहीं हो सकते, किंतु सावयव-नाना से ही नाना बनते हैं. शिर्क (द्वैत) के भय से अद्वैत कहना (ब्रह्म को नीच मलीन बंध कहना) कथन मात्र है. ब्रह्मवित् भी ऐसा नहीं जान सके कि यह जगत् मेरी इच्छा से हुई है. ब्रह्मवित् ब्रह्मस्वरूप यह नहीं कह सके वा जान सके कि मैं ही नाना रूप हुवा हूं. निदान वहदत वजूद एक भावना मात्र है; क्योंकि "माअर्फना का हक मारफत का" जेसा जानना चाहिये वेसा नहीं जानते, ऐसे सब कहते आये हैं. अद्वैत सिद्धि में जो कुरान हदीस के वाक्य कहे हैं वे भी साफ और सयुक्त नहीं हैं, अर्थों में तकरार है. कुनफेकुन से और लमयलद लमयूलद से विरुद्ध है. अलस्त रब्बकम, कालुवला से विरुद्ध है. पेगंबर साहेब और चार यारों ने जो जिहाद (कतलुल काफरीन-धर्मार्थ खून) जाहरी किया और मंसूर शूली पर चढाया गया, इससे सचाई के साथ वहदत वजूद साबित नहीं होती. व्यवहार और हकीकत में उसके विरुद्ध मानना यह कल्पना मात्र है. (विशेष शुद्धाद्वैत से जानो) जब वहदत वजूद है तो पुनर्जन्म मानने से क्यों इन्कार है, याने ऐसा भी क्यों न हो? पेगंबरों और गुरु मानने की आवश्यकता नहीं रही. इ.

विभूपक.

यदि कोई व्यक्ति का भाव यह सब ब्रह्म याने अभिन्ननिमित्तोपादान ऐसा हो और बाह्यांतर में पूर्वोक्त सप्तक पूर्वक पंचदशाग पालता हो तो उसको कोई हानी होती हो ऐसा नहीं जान पडता, किंतु जीवन सुखी होता है और जीवनमुक्त हुवा विचरता है और ऐसी भावना वाली तदनुसार वर्तने वाली व्यक्ति किरोडों में से विरल होती है, इसलिये वोह व्यवहार की बाधक भी नहीं होती. सारांश यह भावना भी बुरी नहीं है. यहां त. द अ. १ गत विभूपक मत नं. ८ पेज २३७ और प्रस्तावना में सप्तक और पंचदशांग लिखे हैं वे बांचो.

और यदि ब्रह्म इतर यह सब दृश्य मृगतृष्णावत् है, ऐसी भावना हो (त. द. अ. १ विभूपक मत नं. ११ पेज २३७ देखो) और बाह्यांतर समान हो तथा पूर्वोक्त पंचदशांग पाले तो उस व्यक्ति की कोई हानी होती हो ऐसा नहीं जान पडता; किंतु जीवन सुख से होता है और ऐसी भावना वाली तथा त. द. अनुसार चलने वाली व्यक्ति किरोडों में से १ होती है, इसलिये व्यवहार की बाधक भी नहीं

होती; अतः अमुक के अधिकार में निषेधनीय नहीं है. उक्त वेदांतदर्शन गत जो- सार नवेडा है सो वांचो.

८४. अमेरिका (पाताल देश).

प्राचीन काल में (इसुखिस्ति के पूर्व और अमेरीका शोधक कोलंबस के पूर्व) आर्य प्रजा (हिंद निवासी) और चीनी प्रजा का अमेरिका देश के साथ (अमेरिकन प्रजा के साथ) संबंध था. आर्य और चीनी लोक उस देश में व्यापार के वास्ते जाते थे. अमेरीका, गत मेक्सीको के राज्य में संस्कृत और चीनी भाषा में खुदी हुई प्रशस्ति निकली हैं (दुनिया की सेर पृष्ट १०१) और अर्जुन ने वहां जाके नागवंसी राजा की कन्या के साथ विवाह किया उससे विवर्भान वीर पुत्र पैदा हुवा. तथा व्यास जी अपने पुत्र शुक के साथ वहां गये थे, वहां से शुक को हरी देश (यूरोप देश) में हो के चीन देश में हो के मथिला पुरी के राजा जनक पास जाने का उपदेश किया. शुक जी उसी मार्ग से राजा जनक पास आये (महाभारत).

अमेरीका विषे पूर्व में दो प्रकार की प्रजा कहाती थी. प्राचीन अमेरीकन, जिसको जंगली प्रजा कहते हैं और अब नष्ट होने पर आ गई है. दूसरी मेक्सीको प्रजा जिसमें ज्यादे भाग आर्य प्रजा (इंडियन) का है. यह लोक सांप और महादेव की मूर्ति पूजते हैं. ईश्वरवादि हैं. ग्रह, हनुमान, सीता, राम, सूर्य और इकी देवी को भी मानते हैं. पुरुष धोती बांधते हैं और स्त्रियें लहंगा पहनती हैं. इनकी नीति, इनका व्यवहार आर्य प्रजा के जेसे हैं. हर्बर्ट स्पेन्सर साहेब, इस प्रजा के नीति व्यवहार की वहुत प्रशंसा करते हैं (उनका बनाया हुवा नीति सिद्धांत देखो. गुजराती में तरजुमा हुवा है). वर्तमान विषे इस प्रजा का थीयरकल कोई धर्म नहीं जान पडता; किंतु प्राचीन भावना के रूप में है. इस प्रजा का वहां स्वतंत्र राज्य है. **दुनिया की सेर** और **प्राचीन हिंदुस्तान** इन दोनें ग्रंथों में इन प्रजा का विस्तार पूर्वक वर्णन है.

उसी देश में तीसरी नवीन प्रजा है. यह यूरोप निवासी प्रजा है. जब (१९ सदी) कोलंबस को अमेरीका ज्ञात हुवा; तिस पीछे वहां जाके आवाद हुई हैं. इस प्रजा का भी पद्धति पूर्वक कोई धर्म नहीं है. विशेष भाग खिस्ति धर्म वाले (रोमन केथोलिक) हैं; परंतु उनमें यूनीटीरीयन खयाल के ज्यादे हैं.

इस तीस वर्ष में आर्यावर्त्त से स्वामी विवेकानदजी महाराज (एम. ए.) वहां गये; उन्होंने वहां वेदांतमत (तत्त्वमसि) का प्रकाश किया. उस पीछे उनके शिष्य ने वहां अवतार, मूर्ति पुजा का प्रचार किया. वीरचंद गेनी भी उस देश में गये इन्होंने वहां जैन धर्म का प्रकाश किया. आर्य समाजियों ने वहां जाके आर्य समाज स्थापी. और थीओसोफिस्टों ने वहां थिओसोफी का प्रचार किया है. परंतु यह सब प्रचार वहां छूटक (जुनवी) हैं

अमेरीकनों का प्रवृत्ति मार्ग (धधा—व्यापर—हुनर—केमिस्तरी—सायंस—कला—सचे. खेती वगेरे) से इतर अभी तक कोई खास धर्म वा पंथ वा मत वा फिलोसोफी नहीं है (यात्रीयों से). इसलिये धर्म मत संबंधी दूषण भूषण कहने का अवसर नहीं है. सुनने है कि मेस्मेरिज्म विद्या और भूत प्रेत के प्रयोग होने का वहां प्रचार होने लगा है.

८५. थीओसोफी.

(१) थीओसोफीकल सोसाइटी सन् १८७५ मास नवंबर में 'युनाइटेड स्टेटस' के न्युयोर्क शहेर (अमेरीका) में स्थापन हुई. (पु. * २८३) और आर्यावर्त में सन् १८७८ पीछे (वि. १९३५ पीछे) कायम हुई. देवता गुप्त महागुरुओ की प्रेरणा द्वारा मेडम ब्लेवेस्ट्की ने कायम की. (पु. * १७८). थीओस (देवता) सोफीआ (ज्ञान) कल (वाली) सोसाइटी (सभा—मंडल) अर्थात् देवताओं के (वा आत्मा के) ज्ञान संबंध वाली सभा यह अर्थ है. तत्त्व जिज्ञासु मंडल, अध्यात्म मंडल, तत्त्व ज्ञान शोधक मंडल इत्यादि संज्ञा से भी कहाता है.

(२) इस सभा के ३ नियम हे (पु. २८३) १. देश, वेश, जाति, धर्म, वर्ण वगेरे कोई भी भेद को न लेके भ्रातृभाव प्रेरना. २. प्राचीन आर्य शास्त्र और अन्य धर्म शास्त्र विद्या और दर्शन के अभ्यास को पुष्टि देना. ३. अभी तक विश्व के जो नियम अगम्य रहे हुये हैं उनकी तथा अध्यात्मिक रहस्य की शोध करना और यथा विधि उसका प्रभाव करना.

(३) आर्यावर्त में आर्य समाज स्थापक स्वामी दयानंदजी के साथ कर्नल आलकॅाट ने पत्र व्यवहार किया, उस सिलसले से आई. इस सोसाइटी के लीडर और आर्य समाज के लीडर का विचार न मिलने से मद्रास जिले में जुदा कायम हुई.

* न ७ वांचो

(४) बहुधा सब सभा के मोरल नियम तो ऐसे ही होते हैं कि जो पबलिक को पसंद पडें, परंतु आंतरिय चाल ढाल कुछ और भी होती है. जाहिर में यूं माना जाता है कि इस सोसाइटी का अपना मत कोई नहीं है, उसके मेंबर हरेक धर्म मत के हैं वे कुछ भी मानें उसके जवाबदार स्वयं हैं; परंतु इस सभा की अंतरंग सोसाइटी में जब ही दाखिल किये जायंगे कि गुप्त ज्ञान के नियम कबूल करें "सीक्रेट डॅाक्ट्रिन" मुख्य शास्त्र माना जाता है.

(५) म. ब्लेवेस्टकी रूशियन थी. धर्म मत पंथ की शोधिका हुई है. सुनते हैं कि उसकी चक्षु में तेजस तत्त्व का प्रभाव ज्यादे था. जो कि रीलीजीयन फिलोसोफी की शोधक थी और उसके ग्रंथ सी. डा. से जान सकते हैं कि उसने बडा श्रम लिया है, इसलिये वोह बेमार रहती और कमजोर थी. स. १८९१ ई. में शरीर पड गया. सर हेनरी एस ऑलकाट अमेरीकन थे. सीधे साधे धर्मास्था वाले पुरुष हुये हैं. थी. सो. के प्रेसीडंट रहे हैं. बौद्ध मत के अनुयायी थे. पांच सात वर्ष हुये कि उनका शरीर पड गया. तीसरा लीडर वर्तमान में पंडिता ऐनी बीसांत हैं जो इंगलैंड देश की है. पहले रोमन केथोलिक धर्म पीछे प्रोटस्टेंट धर्म में हुई. फेर जडवाद की छाया (मि. ब्रेडलो के मंतव्य) में आई फेर ब्ले. की चेली हुई अब थीओसोफिस्ट है. इसकी खूबी प्रख्यात है. जिस इंग्रेजी खां ने इसका भाषण सुना होगा उसको उसके मनोहर वक्तृत्व शक्ति की प्रशंसा करनी ही पडी होगी. यह उत्साही, साहसी और बुद्धिमान पंडिता है. यथा प्रसंग यथा देश का रूपक बना लेना यह इस निपुण में खूबी है. (विशेष इसके जीवन चरित्र में है). पंजाब देश में इसको बीबी बसंती और गुजरात में इसे आनाबाई नाम से पुकारते हैं.

(६) मे. ब्ले और उसकी शिष्या आनाबाई का एक ही सिद्धांत है, ऐसा उनके लेख से जान पडता है. थी. ओ. का मुख्य शास्त्र सी. डा. है. इस ग्रंथ में से कुछ भाग और सार "गुप्त ज्ञान सहिता" गुजराती भाषा में एक थी. सो. ने प्रसिद्ध किया है.

(७) यहां लीडरों का मंतव्य लिखेंगे. जिन ग्रथों में से क्वोटेशन वा आशय लिया गया है उनके नाम और संकेत यह हैं. (गुप्त ज्ञान सहिता. मे. ब्ले. कृत). गु. (पुराणी प्रज्ञा. आनाबाई कृत). मु. (मुमुक्षु मार्ग). अव (अवतार). हिं. (हिंदु धर्म) यह तीनों आनाबाई के व्याख्यान छपे हैं. सप्त. (सेवन प्रेन्स्पाल. आनाबाई कृत). इन ग्रथों के क्वोटेशनो का विस्तार विवेचन और टीका "थीओसोफी तंत्र"

ग्रंथ में है. यहां तो सार सार लिखा है. तथा इन ग्रंथो सिवाय के कोटेशन जहां लिये हैं वहां उनका नाम लिख दिया गया है. उक्त सब ग्रंथ गुजराती भाषा में तरजुमा किये गये हैं. जो वोह तरजुमा ठीक है तो नीचे के कोटेशन और आशय भी ठीक हैं, ऐसा मानना चाहिये.

(८) यहां ईश्वरादि ८ विषय से कुछ अधिक लिखा जायगा उसके २ कारण हैं १. इस सोसाइटी के मंतव्य से अभी तक बहुत अज्ञान है. २. इसके मेंबर इसको और अपने को हिंदु धर्म वा आर्य धर्म से मिलना बताते हैं, परंतु हिंदी सनातन धर्म से जुदा प्रकार है. (करनल ऑलकाट भी जुदा प्रकार बताता है (आगे वांचोगे), तथापि अपने को सनातन धर्मी वा अपना सनातन धर्म है ऐसा नाम बताते हैं. हमारी शोधानुसार यह नवीन पुराणी मत (पंथ) है. यथा विकासवाद यूरोप से अवतारवाद तथा देववाद प्राचीनों से लिया है कौन कौनसा विषय कहां से और क्यों लेके नवीन रूप बनाया है, इसकी तफसील "थीयोसोफी तंत्र" पृ. ११८ से १२१ तक में लिखा गया है.

(९) इस सोसाइटी का काशी में सेंटरल हिंदु कॉलेज ‡ है. और इसकी शाखा आर्यावर्त्त में भी अनेक जगह हैं. तथा अमेरीका, इंगलेंड वगेरे खंडों में भी हैं. परंतु जब से इसकी चाल ढाल खुलने लगी है तब से इसकी प्रवृत्ति कम पड गई है. यहां तक कि प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ और पंडितो ने उससे किनारा किया और कर रहे हैं. कुछ भी हो परंतु हमतो दोनो पंडिता की महनत, होशियारी, चालाकी और धर्मतंत्र चलाने की तथा धर्म भावना में छौंक दिला के नवीन रूप धारण कराने की तारीफ अवश्य करेंगे.

(क) मेडम ब्लेवेट्स्की का मंतव्य.

(१) ब्रह्म प्रकृति पुरुष रूप है (गु. आ. ने. पेज २२). यह सब एक ही तत्त्व के आकार हैं (२२). उस मूल तत्त्व में हमेशे गति होती रहती है (२३). ईश्वर एक व्यक्ति नहीं किंतु ध्यान चोहान (ऋषि प्रजापति का समूह है) वा ध्यान चोहानों का समष्टि चैतन्य का नाम ईश्वर है. (२३।१७९). ईश्वर अवतार वा ईश्वर मनुष्य जैसा नहीं है (४९) इस मन में से अनेक रूप निकले हैं उसी में लय होते हैं. इस

‡ वर्तमान (१९१५ ई.) में इसके मंबर नहीं रहा है और आनाबाई भी [illegible] वालों में थाने हिंद के स्वतन्त्र लिखने की [illegible] में जुटा है [illegible]. [illegible] [illegible] [illegible].

तत्त्व में से प्रथम ईश्वर वा मनु प्रकट होके दूसरे ईश्वर वा मनु पेदा करते हैं (७२). ईश्वर की मूर्ति नहीं (४९).

(२) वेद के रचने वालें ने वेद में अपने मन का उभार (आशय–जोश) नहीं दरसाया है (१६०). वेदोक्त कर्म मार्ग की अगत्यता कम कर के ज्ञान मार्ग का उपदेश श्री कृष्ण ने किया, सो काम बुद्धदेव और श्री शंकर ने पूरा किया (१४५). वैदिक कर्म करने से मोक्ष नही मिलता; परंतु स्वर्ग का अनुभव मिल सकता है. (१४६).

(३) उपनिषद् १५० से उपर होते हैं, परंतु खरे उपनिषद १३० हैं. वेद का गुप्त मर्म इनमें है (४५) उसको बुद्ध ने सरल रूप मे जाहिर किया. उपनिषद वेद सहिता और ब्राह्मणों से तीन गुणे ज्यादे थे; परंतु ब्राह्मणों ने काटा फांसी कर के छोटे रूप में कर डाले, गुह्य रहस्य निकाल डाला. और उसकी गुप्त कूंची (आशय) दिक्षितों (जिनको थीओसोफी गुप्त महात्मा कहती है) के हाथ में रह गई (४६).

(४) जब षड दर्शन जाहिर हुये तब उन सबका एकीकरण यह सातवां शास्त्र (गुप्त ज्ञान सहिता) गुप्त रखने मे आया था. (४५)

(५) पृथ्वी पर जो सुधारक जन्मते हैं वे ईश्वर याने ७ ध्यान चौहानों में से एक का अवतार होता है (१८५) श्रीकृष्ण और कपिल ध्यान चौहान का, राम वगेरे सूर्य देवताओं का अवतार था. (७७।१८४।१८५). ईश्वर यह ब्रह्म की प्रकाशित किरण है वोही महान बुद्ध है (१७७). शंकर यह प्रच्छन्न बौद्ध है; क्योंकि अद्वैत मत और बौद्ध धर्म का निकट संबंध है (१४५). बुद्ध और शंकर एक ही के अवतार थे. उसी ने इ. १३ सदी में तिब्बत में अवतार लेके लांबों में व्यवस्था करी (१७३). बुद्ध यह कपिल का अवतार था (१४४). मत्स अवतार याने मत्स वगेरे का काल, कूर्म याने पेट से चलने वाले सर्पादि का काल, वाराह याने आंचल वाले प्राणियों का काल और नरसिंह याने मनुष्यों का काल (१४४).

(६) दैत्य अपने जेसे कद की मूर्ति बना के पूजने लगे.यह मूर्ति पूजा का आरंभ (१२७) गुप्त ज्ञान एक रीति से. मूर्तिपूजा और मनुष्य रूपी ईश्वर के रद करता है (४९). ध्यानी बुद्धों के वैदिक महा वाक्य (तत्त्वमसी) लगता है (१७८) कृष्ण गोपी का रासमंडल याने सूर्य और उसके आस पास फिरने वाले ग्रह, राशी, और नक्षत्र यह भाव है (१५९). श्रुति में जो अनेक देवता और ऋषि लिखे हैं उनका अर्थ ध्यानचौहान है (१६२).

(७) गुप्त ज्ञान कहता है कि हरेक जीव परमात्मा का अंश है. उसे ब्रह्मा के एक दिन (महा कल्प) में सब योनियों में जन्म लेना पडता है. हल्के मनस से उंचे मनस तक और धातु वनस्पति से ले के ध्यान् चौहानों तक न चढे वहां तक स्वतंत्र नहीं होता (२४०). जीव (ब्रह्म की) ७ किरणों में से एक किरण (प्रतिबिंब). प्रतिबिंब अज्ञान रहित नही है और परमात्मा रूप भी नहीं है (१७७). जीव याने आत्मा बुद्धि (३४). जीव याने आत्मा–बुद्धि–मनस (४०). जीव अज अमर है १९३). मनस भी आत्मा और बुद्धि समान अमर हो जाता है (३३): ब्रह्म अद्वितीय, व्यापक, अनंत, निरंश, अखंड है (३४).

(८) मनुष्य का जीवन पहिले कल्प में धातु (खणिज), वनस्पति (मूल) और प्राणि (तिर्यक, पशु पक्षी) ओं में घूमता चलता है. दूसरे तीसरे कल्प में मनुष्य स्वरूप होता है. धात्वादि का अनुभव संपादन करके अंत में मनुष्य रूप धारण करके मोक्ष होता है. प्रकृति के बंध से छूट जाता है. (यह विकास क्रम है) (३४०).

(९) प्रलय होने पर सब जीव मोक्ष (निर्वाण) होते हैं. परमात्मा में जीवका लीन हो जाना मोक्ष (४१।२२१). मुक्त का कारण शरीर अदृष्ट लुप्त हो- जाता है (२२७).

(१०) इ. सन १८९७,९८ में कुदरत के सब भेद प्रसिद्ध करने में आवेंगे और यूरोप का जडवाद मर जायगा. (२३७).

(११) तन, सत्ता, पदवी, द्रव्य, बुद्धि और तमाम दूसरी वस्तु की वृद्धि की भूख मार डालना चाहिये (१९७). वाम मार्ग की निंदा करी है. (२१) ख्रिस्ति धर्म और उसके अनुयायीयों का तिरस्कार (चिठी कर्नल अलकॉट ता. १८ फरवरी स. १८७८. थीओसोफी तंत्र पृष्ट १२७).

(१२) मे. ब्ले. के चमत्कार, उसके अनुयायी बयान करते हैं.

शोधक.

मे. 'ब्लेवेट्स्की' के मंतव्य का विशेष अपवाद थियोसोफी तंत्र में अद्वैतादर्श में लिखा गया है. शुद्धाद्वैत वाली समीक्षा से हो जाता है. मे. ऐनी बीसांत का जो अपवाद (समीक्षा) है वोह भी इसके साथ सबंध रखता है. इसलिये यहां संक्षेप में लिखते हैं. मे. ब्ले. नाना ईश्वर (जगतकर्ता अनेक देवता) मानती है वेद को स्वतः प्रमाण ईश्वर कृत नहीं मानती. मनुष्य का जीव कर्म वश पशु पक्षी में पुनर्जन्म नहीं पाता, ऐसा कहती है तथा वनस्पति पशु पक्षी में मनस को नहीं मानती परंतु हिंदू

धर्म इससे उलटा मानता है; अतः मेडम का मंतव्य हिंदू धर्मानुकूल नही है. यह स्पष्ट है. उपर के अंक २, ३, ४, और ९ वाला लेख एक प्रकार की पोलसी है जो कि हिंदुओं को लुभा के दूसरी तरफ झुका ने वाली जान पडती है; क्योंकि हिंदुओं के कमजोर निश्चय का उसको भान था.

मे. ब्ले. के लेख में विरोध है. यथा—ब्रह्म को व्यापक, निरंश और शुद्ध कह के उसको सक्रिय, जीव उसका सक्रिय अंश और जन्मधारी कहती है तथा जीव को कही ब्रह्म का अंश, कहीं ब्रह्म की किरण (प्रतिबिंब), कही आत्मा बुद्धि, कहीं आत्मा बुद्धि मनस, कहीं ब्रह्म से इतर वस्तु नहीं है, कही बुद्धि मनस अमर हैं ऐसा माना है

अनेक सक्रिय (याने आत्मा—बुद्धि—मनस) ब्रह्म (व्यापक) रूप नहीं हो सकते; क्योंकि वे दो है जीव और ब्रह्म के ज्ञान (सर्वज्ञता अल्पज्ञता) में अंतर है. निरंश ब्रह्म में न्यूनाधिकता नही हो सकती. यदि बंध जीव मोक्ष पाके ब्रह्म मे जाके मिला तो वॉलयुम ज्यादे होगा अर्थात् ब्रह्म न्यूनाधिक होना मानना पडेगा साराश उसकी रीति से सावयव समूह का नाम ब्रह्म, ऐसा मानना पडता है.

नं. १० वाला भविष्य नहीं मिला, कल्पनामात्र ठेरा; क्योंकि प्रत्युत जडवाद का विशेष प्रचार है (सायंस देखो). हिंदी प्रजा आगे ही पडती में आ गई है.अब उक्त नं. ११ वाला उपदेश देशहितानुकूल है या अहित करता है, यह बात पाठक परीक्षक स्वयं विचार सकते है.

"धी थीओसोफी केज़ इटस हिस्ट्री" (थीओसोफी की शोध और इतिहास). यह ग्रंथ मद्रास की क्रिश्चियन सोसाइटी की तरफ से स. १८९४ ई. में बाहिर पडा है, उसमे मेडम का जीवन चरित्र बता के उसके चमत्कारो की पोल दिखाई है, वोह देखना चाहिये सब स्वमत प्रचार की चाल है.

(शं.) "गुप्तज्ञान सहिता गुजराती" में खोटा तरजुमा हो तो **(उ.)** एक ही विषय अनेक जगह उसी रूप में है सब जगह भूल नही मान सकते, और यदि मानो तो थी. को तमाम ग्रंथ (इंग्रेजी मे इतर अन्य) विश्वासपात्र न होंगे इत्यादि. (विशेष थीयोसोफी तंत्र में)

(ख) कर्नेल ऑलकाट और उनका भाषण.

(१) मैं भारतवर्ष को फिलोसोफी, साहित्य, धर्म और विद्या वगेरे सीखने आया हूं. (२) थी सो. ईश्वरीय माया को ही मुख्य आगम मानती है (सृष्टि नियम

को शास्त्र मानती है. (३) थी. सो. का निर्णय हमारे आर्य विचार से और वर्तमान काल के विद्वानों के विचार से जुदा है. (४) भारत संतान अंधपन के वश पशु समान है. (५) ऐसी नास्तिकता केवल वेदविहित धर्म का पुनः प्रचार करने से दूर होगी, और उसका जीर्ण उद्धार होना अवश्य है. (६) भारतवर्ष को प्रथम वेद के तात्पर्य समझने की जरूरत ही है, इसलिये उसे अभी दूसरी हरकोई विद्या सीखने जरूरत नहीं है. (७) भारत की कला कौशल्यता वेद पर ही आधार रखती है. (८) मेरे को इस पुण्य भूमि में बसना और मरना है. (९) हे ईश्वर ऐसा उत्कृष्ट दिन कब आवेगा कि पूर्ववत् उच्च पदवी को भारत भूमि प्राप्त होगी. तू अकेला ही उस दिन आने का, यह प्रसिद्ध है. (चरित्र चंद्रिका ग्रंथ के पृ. ६२९ मे छपा है). कर्नल साहेब जब हिंद में आये तब उन्होंने मुंबई, लाहोर, अमृतसर, काशी और प्रयागराज में यह भाषण दिया था.

इन्होंने अपने को अंत में बौद्ध मतावलंबी जाहिर किया था; इसलिये उनका मंतव्य यहां लिखना व्यर्थ जाना; क्योंकि बौद्ध मत उपर आ चुका है.

(ग) मेडम ब्लेवेटस्की की शिष्या-अनुयायी,

मिसीज़ एनी बीसांत श्री का मंतव्य—

(१) मेरे गुरु की आज्ञा इस यज्ञ (ज्ञान यज्ञ) संबंध में ऐसी है कि तू जा और सचा यज्ञ क्या और किस प्रकार में है, यह लोगों को समझा; क्योंकि उसके जाने विना उनकी उन्नति न होगी और न मोक्ष मार्ग मिलेगा. इ. (तत्त्वविचार दर्शक गुजराती चोपनिया पृ. ८ शके १८२९ अं. २). अन्य प्रसंग में-मेरी अपूर्णता पर लक्ष नहीं रखना. उपदेश के मर्म-सार पर लक्ष् रखना (हिंदु धर्म पेज १३४).

(२) ब्रह्म अनंत, असीम (अव. २०) सक्रिय (सनातन बुक १ पेज १). सब तत्त्व और जगत् उसका रूपांतर है (याने ब्रह्म परिणामी है) (सप्त. ४३). ब्रह्म, सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा करते ही अखंड एकता का त्याग कर के उसमें से अनेकता करना सो अनेकता स्वतंत्र इच्छा से ही लीला रूप ही. इसका नाम आरंभक यज्ञ है. (पृ. २३८).

(३) ईश्वर का स्वरूप मर्यादित होने योग्य है, नहीं तो अपन उसको नहीं जान सकते. (ध. १८३). ईश्वर भासमान होते ही माया ही माया से आवृत्त होता है. (हिं. १७). ईश्वर ने जो जीव पेदा किये वे संपूर्ण न थे. (हिं. २६). मनुष्य की व्यवस्था का कार्य ईश्वर को भी दुर्घट है. (अव. ९९।६०). इस सूर्य मंडल का

केंद्रस्थान त्रिमूर्तिरूप ईश्वर है, ऐसे अनेक सूर्य मंडल प्रति जुदा जुदा हैं, उससे पर महान् ईश्वर सो केंद्रस्थानी है, इससे परे भी दूसरा. इस प्रकार श्रेष्टतर श्रेष्ट श्रेणी चलती है (अव. ४२). पूर्व के संस्कार वाली प्रकृति सर्वत्र पसरी हुई है, उसमें से कितनाक भाग लेके हरएक ईश्वर सृष्टि के उपयोग में लेता है. (अव. ९७). ईश्वर एक व्यक्ति नहीं किंतु ध्यान चोहान का समूह. याने ईश्वर अनेक हैं. (गु. २३।४९६.).

(४) देवता और ईश्वर जुदा जुदा हैं (सनातन वुक २,७,१९). देवता ईश्वर के कारभारी (स. २।३।१९). मनुष्य देह और पृथ्वी वगैरे जुदा जुदा देवताओं ने बनाये है, उसका निर्वाह भी वेही करते हैं (मु. ३०). जीवें के कर्मो की व्यवस्था भी वेही करते हैं (१३१).

(५) श्रुति–वेद ज्ञानी लोगें के द्वारा मिला है उनके देवता याने ध्यान चोहानें से मिला. देवता ईश्वर के कारभारी हैं (सनातन धर्म २।३।१९). ईश्वरोक्त शास्त्र प्रमाण माना जाता है; परंतु आचार मे उस पर दृष्टि नहीं रहती; क्योंकि उसमें बहुत त्रुटि जान पडती है (हिं. १०२). ६ शास्त्रों में से १ भी दर्शन संपूर्ण रहस्य नहीं बताता (हि. १४८). भौतिक शास्त्र (दर्शन) दृश्यानुविद्ध (बाह्य स्वरूप का अवलोकन करता) है और गुप्त विद्या (थीओसीफी का गुप्त ज्ञान) शब्दानुवद्ध (वस्तु के आंतर स्वरूप का अवलोकन करता) है (हि. १७२). तिन्होंने (गुप्त महात्मा–देवता) अपने शिष्य मे. ब्लेवेस्टकी के रहस्यवाद (सिक्रेट डोक्ट्रीन) ग्रंथ द्वारा विश्व का कुछ ज्ञान दिया है, इसके विचारने से नया नया ज्ञान मिलता जाता है (पृ. २७०). बीसवीं सदी में विद्वान् जानने लगेंगे कि गुप्त मत (थीओसोफी मत) नवीन नहीं है, रज का गज नहीं किया गया है; किंतु गुप्त मत की आकृति कर के बताने में आया है. उस (गुप्त ज्ञान) का बोध वेद से पहिले का है: यह भविष्य कथन ढोंग नहीं है. *(यह मेडम ब्लेवेस्टकी कृत सीक्रेट डॉक्ट्रीन पृ. २१ में है, जिसकी साक्षी एनी बीसांत* ने अपने व्याख्यान में दी है. मूल इंग्रेजी सांख्य योग पृ. ७४ में है).

(६) ईश्वर (लॅगोस) का अवतरण अवतार. पृथ्वी में आके कोई जीव में प्रवेश करता है. ईश्वर के प्रार्थना किये विना अवतार नहीं होता (अव. ११।१२। ६७). जब जब जरूरत हो तब तब अवतार होता है (अव. ७). उस पीछे जीव, ईश्वरभाव के प्राप्त होता है. सर्वज्ञ होता है ++ ऐसा जीव ईश्वर की विभूति रूप से प्रगट हो सकता है (अव. १२।१३). मेरे में, तुम्हारे में और ईश्वर में आत्मा एक है, सो अविकारी और नित्य है (अव. १९). ७ देवताओं में से १ इस सूर्य मंडल

का अधिष्ठाता है ऐसे ही हरएक सप्तक का जुदा जुदा है. महाविष्णु देवता सूर्य में है (अव. ९३।९४।९९). कितनेक अवतार विष्णु में से ग्रहों के देवता द्वारा होता है, परंतु कृष्ण तो महाविष्णु से ही आता है (अव. ९४।९९). मत्स्यादि अवतार विष्णु का नहीं (अव. ९४). जो अवतार होता है वोह ईश्वर की त्रिमूर्ति में से ही होता है (अव. ३४). हिंदुओं की त्रिमूर्ति वा खिस्तियों की ट्रिनीटी का एक ही अर्थ है (अव. ३४). इसुमसीह महाविष्णु का ही अवतार था जो मनुष्य रूप में उतरा, उसने जगत् के उद्धार वास्ते जन्म लिया (अव. पेज ३९). अपनी जाति में से जो मनुष्य सब से पहिले उच्च होके ईश्वरत्व को प्राप्त हुवा और जिसको संपूर्ण ज्ञान हुवा सो यह बुद्धदेव (अव. १०९). बुद्ध हिंद के वास्ते नहीं था (अव. १०६). शंकराचार्य महादेव का अंश (आवेश) अवतार था साक्षात नहीं. ऐसे उपदेशक पेगंबर, ब्राह्मण हुये हैं (अव. २७।२९).

(७) सृष्टि उत्पत्ति पूर्व एक अद्वितीय सत् था, उसमें से सब विश्व हुवा है. (मु. २). यह सृष्टि ईश्वर के अंश रूप होके ईश्वरत्व प्राप्ति वास्ते पेदा हुई है (हि. ९०). अर्पण होना आत्मा का स्वभाव है (पु. २३९). निर्गुण अवस्था में से सगुण होने वास्ते अव्यक्त में से व्यक्त दशा में आने के लिये ब्रह्म को स्वार्पण करना पडता है (पु. २४०). अपने अंश उपजाने का यह कारण है कि उसका हरएक अंश अपने जेसे शक्तिमान् हों +++ (पु. २३९). यह विकास (उत्तरोत्तर उन्नति) ईश्वरीय इच्छा के अनुकूल है (हिं. १०३). इस विश्वोत्पत्ति का हेतु यह है कि ऐसे जीव उपज आवें कि जो ईश्वर स्वरूप हों (मु. ८). सारांश परमात्मा का अंश होने से आत्मा में ईश्वर के ही धर्म गुण शक्ति हैं और वे तिरोहित हैं (पु. १३४) वे बाह्य पदार्थों के संसर्ग से आविर्भूत होके संपूर्णता को प्राप्त होने पर आत्मा ईश्वर स्वरूप हो जाय, यह सृष्टि उत्पत्ति का हेतु है, और ऐसा विकास क्रमानुसार होता है (पु. १३४).

(८) एक अगम्य अनादि और अनंत सत्. इसमें से ईश्वर (शब्द ब्रह्म) का उद्भव. एक में से द्वैत का और द्वैत में से त्रिपुटी का उद्भव. त्रिपुटी में से सृष्टि के व्यवस्थापक देवताओं (ध्यान चोहानों) का उद्भव. मनुष्य यह ईश्वर का प्रतिबिंब-वासनाबद्ध होने से पुनर्जन्म. ब्रह्मज्ञान और यज्ञ से तिरोहित जो आत्मबल सो आविर्भूत होने पर मोक्ष (मु. ६). यह श्री आनाबाई का कथन का सार है. सत् और मूल तत्त्व सो आत्मा, बाकी के सब उसके रूपांतर हैं (सप्त. ४३). ब्रह्म असीम है; तो भी प्रसंग आने पर परिधि (सीमा) धारण कर सकता है (अव. १३).

सृष्टि उत्पन्न होने पहिले जेसे होने की है वेसी का संकल्प परमात्मा की कल्पना में होता है (पु. २१). नं. २ का पृ. २३८ वाला वाक्य बांचो. ब्रह्म आप ही अपने स्फुर्ण से मर्यादित होके अनेक रूप धारण करता है (पु. २३८). अवर्णीय अगम्य में से पहिलेपहल ईश्वर-प्रत्यगात्मा-शब्द ब्रह्म- प्रजापति स्फुरे हैं (उत्पन्न होने हैं) वोह आप व्यक्त होता है. अपने आसपास सीमा बांध के उस मर्यादित क्षेत्र में ही (अंग में) सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय करता है. तमाम द्रव्य उसी में से हैं, तमाम शक्ति उसी की प्रवृत्ति. वोह ईश्वर त्रिपुटी रूप भासता है. (१) एक स्वरूप प्रजापति. सत्ता मात्र का उद्भव इसी में से होता है. (२) दूसरा स्वरूप प्रकृति पुरुष जिसमें से तमाम सृष्टि उत्पन्न होगी यही नाम रूप (३) तीसरा रूप महतब्रह्म. इसमें वस्तु मात्र कल्पना रूप से रही हुई होती हैं इसमें से अनेक देवता (पूर्व सृष्टि में उन्नति पाये हुये जीव) उद्भव होते हैं. सब के सस्कार पूर्व की सृष्टि में से आये हुये होते हैं. यह संस्कार पूर्व सृष्टि के प्रलय समय नवीन सृष्टि के बीज रूप में अंतरभूत होते हैं (पु. २३।२४). परमात्मा में स्फुर्ण होते ही सृष्टि का उदय काल का आरंभ होता है (पु. २७०). पूर्व के परिपाक हुये जीव उसकी इच्छा अनुसार सृष्टि के कार्य में लगते हैं. हरएक देवता सृष्टि के एक एक प्रकार की व्यवस्था करता है (पु. २७१).

पहिला स्फुर्ण ७ प्रकार का हुवा (पु. २७१). उपरोक्त देवताओं में लिपि का देव जीवों के कर्म की व्यवस्था करता. दूसरे देवराजा, कर्मानुसार योजनाकर्ता (पु. २७१). देवता उपजे कि प्रकृति की साम्यावस्था का भंग होके पदार्थ का पृथक्करण होता है. हरएक ग्रह के उपजाने वाले देवता अपने ग्रह की सृष्टि वास्ते जितना चाहिये उतना पदार्थ लेके अपनी सामर्थ्य से पेदा करता है. सब परमाणु समान परंतु संयोग जुदा जुदा प्रकार के होते हैं. हरएक परमाणु पर ७ आवरण होते हैं (पु. २७२). सात स्फुर्ण में से जो स्थूल सो दृश्य सूर्य की मूर्ति. ऐसे ही अन्य सूर्य (पु. २६९). भू वगेरे ७ लोक पीछे १ सूर्य और ७ ग्रह (सप्तक) सहित सूर्यमंडल पेदा होता है. प्रत्येक ग्रह को छः छः गोलक और हरएक ग्रह का सप्तक होता है (पु. २२). पीछे जीव कोटी प्रत्येक गोलक पर अनुक्रम से आते हैं. उसमें ७ सृष्टि की मुख्य ७ योनि (तात्त्विक भूत की ३ खनिज, वनस्पति, पशु और मनुष्य) जपजती हैं. जीव इनमें उत्तरोत्तर विकास पाता हुवा अंत में अपने महान् गुरुओं पास पहुंचता है, और प्राप्त लाभ दूसरे मनुष्यों को देके ऋणमुक्त होने योग्य हो जाता है (पु. २२).

परमाणु मात्र जीव चेतन है. निर्जीव कोई वस्तु नहीं (पु. १४८). जीव वगेरे ईश्वर की संकल्प शक्ति से उद्भव होते हैं (हिं. ४०). ग्रह वगेरे उत्पन्न हुये कि ईश्वर का दूसरा स्फुर्ण हुवा. इससे दूसरी शक्ति (जीव) प्रकटी. यह आत्मा—बुद्धि इसको जीव कहते हैं (पु. १०). आत्मा—बुद्धिरूप आपही ईश्वर (पु. ३९). क्रिया मात्र का मूल जीव है (पु. १४८). जब जीव मनसलोक (स्वर्ग) में आता है तब वहां के परमाणु साथ संबंध होता है (पु. १९११९२). इस सहवास (क्रिया) की असर वहां के जीव पर होती है उससे क्रिया होती है, उससे उपाधि के परमाणु चलायमान होके अमुक रूप पकडते हैं (पु. १४८). (सारांश कर्म विना शरीर संबंध होता है).

पहिले जीवन समूह (आत्मा—बुद्धि) ७ प्रकार के होते हैं उनमें से उपजीव पेदा हो जाते हैं और तात्विक सत्व योनी धारण करते हैं. ज्यूं ज्यूं एक जीव दूसरी योनी में जाते हैं त्यूं त्यूं खाली जगह लेने को दूसरे नवीन जीव आते हैं (पु. १९११९२).

पीछे उक्त (स्वर्ग—अरूपलोकवाले) जीव भुवलोक के स्थूल के संबंध में आके भूलोक के वायु के रूप में आता है, यह खनिज वर्ग के सूक्ष्म वायु के रूप हैं. इस रूप के नमूने पर देवता स्थूल परमाणुओं का पड चढाते हैं (पु. १९३). अंत में उससे वनस्पति वर्ग उत्पन्न होता है और देवगण वनस्पति के जीवों पर स्थूल पड चढाते हैं (पु. १९३) वनस्पति योनी में अहंभाव, स्मृति, अगमचेती शक्ति और स्पर्श ज्ञान का बीज हो जाता है (पु. १९९). भूलोक में आने तक उस जीव को दरमियानी लोक (अरूप मनसलोक, रूप मनसलोक, भुवर्लोक—कामलोक—भूलोक) के पदार्थों का आवरण हुवा है (पु. १९९). वर्षा की असर से वनस्पति के जीव को अनुकूल प्रतिकूल का भेद जानने में आता है. यही ज्ञानमात्र का मूल है (पु. १९९).

उस पीछे वोह जीव प्राणी (पशु, पक्षी, तिर्यक) में उतरता है. अहंभाव सूक्ष्म स्थूल द्वारा स्फुरने लगता है. भेद वृत्ति भी खिलती है (पु. १९६). अहंभाव संपूर्ण दृढ हुवा कि फेर वोह एक ही देह (कुत्ता, गाय, बकरी वगेरे) धारण करता है. उससे कामतत्त्व दृढ होता है. शरीर त्यागने के पीछे यह वासना देह कामलोक (प्रेतलोक, भुवर्लोक का एक भाग) भूलोक में आता जाता रहता है (पु. १९७). यहां जीव में कामतत्त्व ज्यादे हुवा. लिंग शरीर (छाया शरीर) बदलता रहता है, इस वास्ते उसको नहीं गिना. जीव के विकास का पूर्वार्द्ध समाप्त हुवा.

उस तैयार हुये प्राणी जीव (काम देह) उसमें देही याने शुद्ध मनसतत्त्व ब्रह्म का तीसरा स्फुर्ण आके बसता है (१९७) वोह मनस बुद्धिलोक में होके आता है,

इसलिये बुद्धि द्रव्य का आवरण उस पर होता है. वहां से मनसलोक में आता है तब प्राणी देह में मानसिक परमाणु स्फुरते हैं. उसका और इस देही का संबंध होने पर अरूप प्रदेश में कारण देह पैदा होता है (पु. १९८). पीछे वोह मनस कारण देहसहित उपरोक्त कामतत्त्व में जुडाता है. अब आत्मा–बुद्धि और मनस इस त्रिपुटी रूप की जीव संज्ञा हुई. कारण देह, कामतत्त्व, कामलोक के छूटे तत्त्व और अशुद्ध मनस (मनसलोक के नीचले लोक के तत्त्व) यह भी शामिल हैं.

शुद्ध मनस ब्रह्म का अंश है. अपनी भूमिका पर सर्वज्ञ है (सप्त. ३८). अमर है (सप्त. ३९). मन शक्ति और समझन शक्ति से भिन्न तत्त्व है (सप्त. २२). कारण देह को वेदांत में आनंदमय कोश कहते हैं (पु. ९०२). सब अनुभव का कारण देह में संस्कार रूप से संग्रह रहता है (पु. १०३।१०४). आत्मा, बुद्धि, मनस तीनों एक रूप हो जाते हैं, इसका और कारण देह का याने जीव का देह (कामतत्त्व) के साथ संबंध देवता द्वारा होना है (१९८). जब प्रस्तुत जीव (त्रिपुटी–कारण देह–कामतत्त्व) जन्मकाल आता है तब ब्रह्मा के पुत्र (सृष्टि आरंभ के अमुक देवता) अपना अंश जीव में प्रेरते हैं. अब जीवात्मा का बीज रूप गया. "कितनेक मानस पुत्र आप ही इस देह में उतरते हैं जो कि धर्मगुरु शिक्षक होते हैं (इन देवता वाले मनुष्य शरीर में आत्मा, बुद्धि, मनस और कारण देह इतने तत्त्व डवल डवल होते हैं)" (पु १९८।१९९।१७२ सप्त. १९।९१).

जब वोह जीव (पांच तत्त्व वाला) मनुष्य देह पाने योग्य होता है, तब उसको स्वाभाविक वा विकास क्रमानुसार जो योग्यता प्राप्त हुई है उसके अनुसार देवता द्वारा लिंग शरीर (सूक्ष्म वायु का छाया शरीर) मिलता है और उस सहित गर्भ में आता है. उस लिंग शरीर के नमूने पर स्थूल शरीर बंधाता है (पु. ३१।१९३।१९७ वगैरे). अब उसको स्वतत्र सत्ता प्राप्त हुई. यहां तक योनियों का भोग, कर्म का फल नहीं था (पु. १९१). यह पहिला देह मिलना भी जीव के हाथ में नहीं था (पु. ३३).

पुनर्जन्म वास्ते उसके योग्य स्थूल की तैयारी देवता द्वारा होती है (पु. १९७).

अब पशु पक्षी से जुदा प्रकार से कुदरत में से सीखता है. शरीर छोडने पीछे मनसलोक में जा के संस्कारों को पचा के फेर भुवर्लोक में होके भूलोक में आके मनुष्य देह को पाता है. जब मनसलोक में जाता है तब लिंग, और काम शरीर साथ नहीं जाते, उन उनके लोक में रह जाते हैं, त्रिपुटी और कारण देह जाता है. जब पीछा आता है तब उसके कर्मअनुसार नवीन सूक्ष्म देह और मानसिक देह मिलती है (पु. १९९). इस प्रकार आवागमन होने चढती (उच्च) योनि संपादन करता है (हिं. ८१).

मनुष्य में तो ईश्वर ने अपनी मूर्ति पेदा की है, इसलिये नीच योनी (वनस्पति, पशु, पक्षी, राक्षस में नहीं जाता (अव. ६१).

इस प्रकार उन्नति (विकास) पाते हुये चोथी भूमिका (ज्ञान की चोथी भूमिका) प्राप्त होने पर अपने सत्य स्वरूप को समझता है–चिदरूप हो जाता है. पुनर्जन्म नहीं पाता. सब उपाधि छूट जाती हैं. देह त्यागने पीछे जीव (आ. बु. म.) सीधा निर्वाण लोक में जाता है (पु. १८०।१८१).

मनुष्य के मरने पीछे जीव से जुदा पडा हुवा लिंग शरीर कभी प्रेतरूप भासता है, पीछे नाश हो जाता है (पु. ८१). कभी कामलोक में गया हुवा जीव भूलोक में प्रेतरूप में देख पडता है, शरीर में प्रवेश करता है. पीछे कामलोक में कामतत्त्व छोड के स्वर्ग में जाता है. कभी यह कामतत्त्व भूलोक मे आके प्रेतरूप भासता है और शरीर में प्रवेश कर के दुःख का निमित्त हो जाता है. कामना संतुष्ट हुये अंत में नाश हो जाता है (स. ३०). कभी जीव स्वर्ग में न जाते देवों की प्रेरणा द्वारा कामलोक से ही पीछा होके पुनर्जन्म पाता है (पु. ९१). कभी कभी योगी अपने छाया शरीर से दूसरे शरीर पेदा करके उपयोग लेता है. अंत मे जीव का मोक्ष होता है.

(९) **मूर्ति पूजा** इसलिये करना चाहिये कि प्रतिष्ठा करने समय प्रतिष्ठा कराने वालों की विजली मूर्ति में आती है वोह पूजकों को मिले. (हिंद की उन्नति का मार्ग ४३).

(१०) मुसलमान पुनर्जन्म नहीं मानते (पु. १९०). बहुत दुष्टता वढे तब मनुष्य योनी में भी पशु जीव का जन्म होता है (पृ. २१४). ऐसी पशु वृत्ति बहुत ही नीच हो तो मरने के पीछे त्रिपुटी विना का सूक्ष्म देहे (काम रूप देहे) वेसी वृत्ति वाले कोई पशु के सूक्ष्म देह साथ जुडाता है. (पु. २१४) (सप्त. ३०।३१।३२). अमुक काम तत्त्व (जीव से छूटा पडा हुवा) सृष्टि में भ्रमण करता है. मनुष्य रूप में जन्म लेता भी है, परंतु पशु जेसा; सिंहादि से ज्यादे हानिकारक; कभी भूत प्रेत रूप से जान पडता है (स्वप्न ३०।३१).

(११) **आत्मा** परमात्मा एक स्वरूप हैं. आत्मा एक ही है नाना नहीं (पु. १२९।१३१). प्रकृति पुरुष को सत्ता स्फुर्ति देने वाली शक्ति सो आत्मा. रूप को सत्ता स्फुर्ति देने वाली शक्ति सो आत्मा–बुद्धि और मनुष्य की सत्ता स्फुर्ति रूप में जो शक्ति सो आत्मा–बुद्धि–मनस् कहाती है (पु. १३१). परमात्मा का

अंश आत्मा है. इसलिये उसके सब धर्म–गुण–शक्ति इसमें हैं; परंतु तिरोहित है, वे उद्भव हों तब परमात्मा हो जाता है (पु. १०२।१०३). परमात्मा सच्चिदानंद स्वरूप है (पु. १३४). बुद्धि–मनस का लय आत्मा में हो जाता है (पु. १४३).

ईश्वर और मनुष्य का अस्तित्व एक ही है (प्रोबलेम ऑफ लाइफ पेज ७४). सब की गति का आधार ईश्वर की इच्छा पर है (अव. ६१). कर्म क्रिया मात्र अंत में तो ईश्वर की ही प्रवृत्ति है (अव. १४८). मनुष्य का आत्मा परमात्मा का अंश होने से वैसे ही ज्ञान और शुद्धता से भरपूर है (सप्त. ४० पु. १०७). हे प्रभु! आपकी आज्ञा पालने के लिये देह धारण किया है (पु. २४१).

(१२) शुद्ध चेतन आत्मा रूप जो ब्रह्म का अभेद अंश है सो मनुष्य के अंदर नहीं है (सप्तक ४३). जीव आत्मा बुद्धि रूप है (सप्तक ४१). आत्मा यह परमात्मा का एक आभास–किरण–प्रतिबिंब है (पु. १०३). ईश्वर और उसका चिदाभास जीव रूप में व्यक्त होता है उसमें बहुत भेद है (हिं. ४८). जीवात्मा, परमात्मा के तीनों रूपों की छाया है (पु. १२४). परमात्मा की आत्मा रूपी किरण बुद्धि के परमाणु के आवरण होने से परमात्मा से भिन्न होती हैं (पु. १३७). मनुष्य यह ईश्वर का प्रतिबिंब (पु. ६।१३३). जीव, आ. बु. म. यह त्रिपुटी परमात्मा स्वरूप है. आत्मा परमात्मा दोनों एक स्वरूप हैं, क्योंकि आत्मा का अंश है. (पु. १३१) परमात्मा से उत्पन्न हुवा जो आकाश सो अनंत (असीम) है (पु. २६९)

(१३) अपने से उच्च की सेवा करना सो धर्म (पु. २०९). जिस भूमिका पर होवे उस स्थिति में जो स्वभाव सो धर्म. (हिं. १३). पंचमहा यज्ञों में से ऋषि यज्ञ (अग्निहोत्र) नहीं रखा (पु. ३० से ३७ तक). ईश्वरादि को माने न माने परंतु जो आचार भ्रष्ट हो तो उसको हिंदू नहीं माना जाता (हिं. १४३).

(१४) चीर हरण लीला अमर्यादा की शिक्षा थी (अव. १३९). अश्वत्थामा मरा, यह कृष्ण का कथन मायावी नाटक था (अव. १४८) भविष्य जानने के लिये ७ वर्ष की उमर में रास लीला की. योग बल से अनेक मूर्ति धरी (अव. १३७).

(१५) ईश्वर ही सब का नियंता है, योग्य मार्ग में चलाता है (हि. १०३). ईश्वर दुष्ट दुराचारी में भी है तो भी उसको उस मार्ग जाने देता है (हिं ९८). ईश्वर से विमुख असुर राक्षस जो कुछ करता है वोह भी ईश्वर की इच्छा अनुसार है (अव. ९१). सृष्टि में अन्याय नहीं है (पु. १९०). पाप एक सापेक्ष भावना है.

और वोह भी ईश्वर की इच्छा से अस्तित्व में है. (अव. ७२). इस सृष्टि में बुरा कुछ है ही नही (अव. ६६).

वैद्यक शोधार्थ पशु की चीर फाड करने वाला नरक में जाता है (पु. ७२। ९०). कृष्ण अवतार होने का हेतु? क्षत्रियों को शिक्षा और परदेशियों के वास्ते मार्ग उघाडना (अव. १४९). +++

(१६) ब्राह्म धर्म का स्वर्ग, पारसियों की बहिश्त, बुद्ध का देवखाण (सुखावती) और ख्रिस्तिओं का हेवन यह एक ही हैं (पु. १११). इन लोक में जीव को स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती. देवलोक में वस्तु का सत्य स्वरूप नहीं जाना जाता. वहां मोहजालमी है (पु. १११।११२). वहां जाके जीव अपना नवीन स्वर्ग कल्पना से बना लेता है. (पु. ११९). परमात्मा तहां उसको इष्ट रूप में मिलता है (पु. १२२). सामान्य रीति से स्वर्ग में १५०० वर्ष रहता है पीछे जन्म लेना पडता है (सप्त. २८ गु. ८८).

सब बंधनों से छूटना मोक्ष. विकास क्रम से पार होने वाले, निर्वाण लोक (आत्म लोक) में रहते हैं (पु. १३७). जो जीव शिव रूप हो जाता है उसके हृदय के विकार नाश हो जाते हैं (मु. ६१). मनवंतर के पीछे (मुक्ति से) पुनरावर्तन (जन्म) होता ही है. (मु. ७२). मुक्तात्मा मे भी जो पर ध्यान चौहान वगेरे वर्ग उनके क्रम हैं (पु. २९३). परमात्मा में लीन हुवा परमात्मा स्वरूप हुवा फेर परोपकारार्थ भूमि पर आता है. दूसरे शिष्यों को सिखा के ऋण मुक्त होता है. (मु. २६८). मुक्ति दशा से आगे अगम्य (पु. २६७). जीव और आत्मा जुदा जुदा है. जीव का परमात्मा में लय होना मोक्ष (मु. २२६).

(१७) इसुमसीह ने सब जगत् के पाप अपने पर खेंच लिये (तत्व विचार दर्शक वर्ष २ पृ. ८ श्री आनाबाई का वाक्य). ख्रिस्ति धर्म ऐसा ज्ञानोदधि है कि उसमें से छोटा बालक और राक्षस भी तिर सकता है (पु. १). यह त्रिपुटी (आ. बु. म.) की संपुटी सब गुप्त विद्या जानने वाले योगियों का तेजोमय स्वरूप याने जिसको क्राइस्ट (इसुमसीह) कहते हैं सो है (सप्त. ४१). इसुमसीह महा विष्णु का अवतार था (अव ३९). अवतारी पुरुष सर्वज्ञ होते हैं. इसलिये उनका कथन सत्य ही होता है (मु. ९९). हरेक जरूरी खास बातों में थीओसोफी ख्रिस्ति धर्म के साथ मिलती है (ऐनीबीसांट का उत्तर. सान वर्तमान पेपर ता. ९ अगष्ट सने १९०४).

नवीमुहम्मद, इसुमसीह जेसा नहीं देख पडता. किंतु मुसलमान लोक पुनर्जन्म नहीं मानते यह उनकी भूल है. (पु. १९०). सृष्टि के तमाम लोक (भू, भुवरादि ओतप्रोत हैं पु. ३७). तिरोभूत शक्तिओ का आविर्भूत होना उन्नति और वोह जिस क्रम से हो वोह उन्नति क्रम. (पु. २७).

काम लोक में देवस्थान, शाला, आश्रम वगेरे होते हैं (पु. ७८, ७९) आज से ५००० वर्ष उपर भी संन्यासी का डोल मात्र ही था. (पु. १९९).

(१८) भुः (स्थूल भवन), भुवः (काम लोक), स्वः (अरूप स्वर्ग लोक. रूप लोक), मह (बुद्धि लोक), जनः (निर्वाण—आत्मलोक), तपः (परिनिर्वाण लोक), सत (महा निर्वाण लोक). इन में सत, तप लोक में क्या होता है सो, मुक्ति पीछे क्या होता है सो, और अव्यक्त ब्रह्म व्यक्त ब्रह्म किस प्रकार होता है सो हम नहीं जानते (पु. २९।२१७। हिं. १४९). ब्रह्म में विद्या अविद्या अव्यक्त रूप से रहे हुये है ऐसा उपनिषद् में है, इसका भावार्थ क्या है यह हम नहीं जानते. (हिं. १९२).

पूर्वजन्म की स्मृति हो सक्ती है. तमाम पृथ्वी का इतिहास भी जान सकते हैं. (पु. १६८). पृथ्वी नामा गोलक में पहिले २ मनवंतर में क्या क्रम चला था इसकी खबर मनुष्य को नहीं है. (पु. २७९). मनस लोक का भान मनुष्य को नहीं होता. दूसरे के आधार पर कहा जाता है (पु. ८१).

(१९) अभ्यास विना बुद्धिमान प्रमाण नहीं मांगते. जिसको विषय का ज्ञान नहीं उसको अनुमानिक प्रमाण भी सिद्ध नहीं हो सकता. जिसको आत्मा और मनस जानने की शक्ति है उसे प्रमाण की जरूरत नहीं, जिसको नहीं किंवा कम है उसको प्रमाण मिल नहीं सकता. इंद्रिय अपूर्ण हैं इसलिये मानसिक शक्ति की आवश्यकता है. (सत्र. ९२ से ९४ तक).

कोई भी प्राणी या पदार्थ का स्वरूप अपन नहीं जान सक्ते (पु. ११३). जो सिद्धांत सर्वत्र मान्य, सब काल में माना गया हो और सब ने स्वीकारा हो सो सत्य ही होना चाहिये (अव. १). कार्य मात्र को कारण होता है (पु. २०१). अकस्मात (विना कारण) कुछ नहीं होता (२०३). कार्य कारण का नियम और सृष्टि नियम अखंड हैं. सूक्ष्म सृष्टिओं (मत तपादि लोको) में भी सृष्टि नियम अखंड हैं (पु. २०१ से २०७ तक).

शोधक.

(क) थीओसोफी पंथ के दूषण भूषण तो बहुत हैं. अद्वैतादर्श, थीओसोफी तंत्र, थीओसोफी की शोध, मि. एनीबीसांत कोन और क्यों आई इत्यादि ग्रंथों में प्रसिद्ध हैं. यहां तो संक्षेप में नाम मात्र जनावेंगे—

(ख) जेसे मोरल नियम हैं वेसा वर्तन देखने में नहीं आता. मसला (क) भ्रातृभाव से उल्टी कृति § (ख. ग) विद्या अविद्या के रहस्य के। उपनिषदों के अनुभवी पंडित जानते हैं जिसका नं. १८ में अपने को अज्ञान बताया है. जो दूसरे तीसरे नियमानुसार वर्तन होता तो जाहिर हो जाता और ब्रह्म को निष्कलंक, निष्क्रिय जान लेते; परंतु नियम दिखाने के भी होते हैं. अभी तक इस सोसाइटी की तरफ से ऐसी नवीन बात जाहिर में नहीं आई है कि जो सिद्ध हो और प्रचलित धर्म मत पंथ वालों से अज्ञात हो. * इन सब बातों के उदाहरण थीओसोफी तंत्र पृ १०० से ११८ तक में है.

(ग) स्वामी दयानंद और कर्नल तथा मे. ब्ले के दरमियान में जो कार्यवाही चली और हुई उसमें जो जो चालढाल की और हिंद में आके आर्य समाज की शाखा होने और इंग्रेजी नाम बदलने का कह के जुदा पडे, इत्यादि तमाम हकीकत थीओसोफी तंत्र ग्रंथ में (पृ. १२९ से १७७ तक में) है. उसी ग्रंथ में थी. सो. का बहुरूपीपना (१७८–१८७), मिसस बीसांत और खिस्ति धर्म, तथा थीओसोफी खिस्ति धर्म से मिलती है (१८९–१९६), और स्वामी आत्मानंद † के एनीबीसांत से ९ सवाल और उनका उत्तर न मिलना (१८ से २४), इत्यादि जनाया है.

(घ) सन् १९०१ ई. में राबर्ड डी. नोबीली ने रोम से आके मद्रास में हिंदू उपदेशक का वेश (जनेऊ वगेरे) धर के हजारों हिंदुओं को खिस्ति बनाया. बहुत मुद्दत पीछे पोल खुली (१९७). यह भी जनाया है.

---

§ (ख) इसी साल (१९१२,१३) में एक केस हुवा है एक थीयोसोफिस्ट हिंदूगृहस्थ के दे। पुत्र तालीम के वास्ते विलायत में रखे थे. उनमें से एक को अवतार ठेराया. इसी चाल ढाल देख के उस हिंदू गृहस्थ ने पुत्र न मिलने पर कोर्ट में फरयाद की, हाईकोर्ट ने वापिस दिलाने का फेसला किया. फेर उपर की कोर्ट में लडके बालिग होने से उनके स्वतंत्र ठेराने से प्रतिवादी को लाभ मिला. यदि नियम का पालन होता तो ऐसा रूप न आता.

* तंत्र और पुराण ग्रंथ देखो. तथा वाचस्पति का विचार देखो. अणु अणु प्रति अनेक सृष्टि और रचना बताई हैं.

† प्रयोजक

(ङ) थीओसोफी वा उसके लीडर हिंदू वा आर्य धर्म के अनुकूल या अनुयायी नही हैं यह बात, थी. सो. के नियम १ (वर्णाश्रम भेद विना), कर्नल साहेब के व्याख्यान अंक ३, ब्ले. वाले नं. २ से ८ तक, और श्री आनाबाईवाले नं. ५ (वेद शास्त्रकी हीनता), ६ (इसु विष्णुका अवतार), ८ (मूर्ति) तथा १३।१४।१५, १६ और १७ (इसुमसीह) और १९ (प्रमाण प्रसंग) से स्पष्ट हो जाती है. विशेष विवेचन थी. सो. की तंत्र पेज २५ से ८४ तक मे है.

(च) हमारा विश्वास—यदि थीओसोफीकल सोसाइटी अपना मत न बांध के पंचदशांग पूर्वक वा सग्रहवाद (त. द. अ. ४) अनुसार कार्यवाही करती तो बहुत अच्छी लाभकारी धर्म द्वेषनाशक परिणाम निकालती, परंतु ऐसा न हो सका. खेर.

अब आगे श्रीएनीबीसांत के मंतव्य का विवेक दिखाते हैं—

(१) निर्बल विचारवाले हिंदुओ के गुरु बनने की पोलिसी नहीं तो क्या? हां, आरभ में ऐसा विचार नहीं होगा, ऐसा कह सकेंगे.

(२) असीम विभु को सक्रिय कहना, एक स्वरूप के नाना रूप बताना सृष्टि नियम के विरुद्ध है; ऐसी व्याप्ति नहीं मिलती; अतः कल्पनामात्र है. ब्रह्म को नाना रूप होने की इच्छा होने मे कोई हेतु नहीं मिलता. पूर्व सृष्टि के सस्कार हेतु मानें तो एकत्वभाव नष्ट हुवा अर्थात् हमेशे से सावयव ठेरेगा. आकाश को उत्पन्न मान के असीम कहना (अ. १२ याद करो) यह कहा की फिलोसोफी? (क्या गुप्त महात्माओ की!).

(३,४) ईश्वर-ब्रह्म को शक्तिमान् मान के माया से आवृत्त मानना तथा मनुष्य की व्यवस्था करने में असमर्थ कहना, व्याघात नहीं तो क्या? हां, अनेक ईश्वर याने देवता कहना बनता है. जो ऐसा मानें तो उन अपूर्णका व्यवस्थापक माना है, यह बात ठीक नहीं रहेगी.

(५) वेद को गुप्त मत से उत्तर मे मानना * सीक्रेट डाक्टरन को गुप्त महात्माओ का उपदेश कहना और फेर हिंदू धर्मी अपने को दरसाना, विरोधी बात है. बनावट नहीं तो क्या! वेद से पहिले धर्मबोध का सबूत अभी तक नहीं मिला है. सीक्रेट डाक्टरन में तो वेद की और उसके ज्ञान की चर्चा है, परतु वेद में त. द. गत

---

* सांख्य योग-कर्म योगगत पे. ७१ मे "थाआसोफी (गुप्त मत) का बोध-ज्ञान वेद से पहिले का है" यह क्वेश्चन उठा है.

लिखित ज्ञान की चर्चा नहीं है; इसलिये गुप्त ज्ञान का बोध उससे पहिले मानना कल्पनामात्र जान पडता है

(६) ईश्वर याने देवताओं का जन्म वा अवतार होना बनता है, क्योंकि वे भी जीव थे और बडी कोटी में आये हैं, परंतु किष्कलंक, निष्क्रिय, व्यापक ब्रह्म का अवतार नहीं हो सकता. हरएक सूर्यमंडल में देवता अधिष्ठाता हैं, उनका अवतार होता है, इसका सबूत क्या? आज तक नहीं मिला; अतः कल्पनामात्र है. इसुमसीह महाविष्णु का अवतार था, इसमें प्रमाण क्या? कल्पना. नबीमुहम्मद को ध्यान चोहान फर्स्ट नंबर का अवतार क्यों न माना जाय? जो कहो कि योग्यता और चारित्र पर आधार है, तो युक्ति और प्रमाण से वोह बात भी असिद्ध है. उसकी अपूर्णता इंजील से सिद्ध है. शूली पर दुर्दशा हुई, यह विष्णु जैसे देवता की नहीं हो सकती यह स्पष्ट है. ऐसेही अन्योंके वास्ते घटित रीतिसे विवेक कर लेना चाहिये.

(७) ब्रह्म को एक, अव्यक्त, अखंड मान के उसके जुदा जुदा सक्रिय अंश मानना, व्यक्त होना, फेर उन अंशों का ब्रह्मरूप होना, यह कैसी हास्यजनक फिलोसोफी है. विचारशील स्वयं जान लेंगे. जब कि ब्रह्म के अंशों में गुण, धर्म और शक्ति समान हैं, परंतु अंशों में तिरोहित हैं, तो क्या वे उद्भव होने पर अनेक ब्रह्म हो जायंगे? यदि हो जायंगे तो अनेक ब्रह्म अपनी अपनी सृष्टि करेंगे, उससे अव्यवस्था होगी. कहीं आकाश के अंश और उनमें गति हो सकती है? हां, गुप्त मत में. जब कि विकासक्रम माना तो मानस पुत्रों (देवों) का उपदेश, मनस का भेजना कल्पना नहीं तो क्या;? क्योंकि विकासक्रम का भंग होता है, और जो ब्रह्म की दया मानें तो अन्य दया क्यों नहीं करता. सब अनुभव दे दे, ताकि जन्म में न भटकना पडे.

(८) एक के अनेक विरोधी रूप बनते हैं, ऐसी सिद्ध व्याप्ति नहीं मिलती; इसलिये सृष्टि नियम के विरुद्ध है. एक दो और दो एक, और असीम ससीम, ससीम असीम मानना कल्पनामात्र है; परंतु बात यह है कि थीओसोफी के लीडर जिसे ब्रह्म तत्त्व सत कहते हैं वोह समूहात्मक सावयव पदार्थ होगा, ऐसा मानना पडता है (शुद्धाद्वैत वाला अपवाद याद कीजिये). (शं.) ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है; अतः ऐसा हो सकता है. मनुष्य उसकी योग्यता को नहीं जान सकता. (उ.) क्या अपना जैसा दूसरा वा अभाव से भावरूप बना सकता है! नहीं. ऐसे ही प्रस्तुत प्रसंग वास्ते समझ लेना चाहिये अर्थात् एक अनेक और असीम ससीम नहीं हो

सकता (त द अ २ गत निरवयव) (स. १७४ से), परिमाण (सू. १९९ से ११८ तक) और अभेद (सू. १९८ से यह ३ अधिकरण तथा अ. ३ पेज ६९४ से ६९८ तक वाचो). ऐसी सृष्टि रचू यह संस्कारी इच्छा ही पूर्व सृष्टि होना बताता है. एक ही असीम वस्तु अपनी अमुक सीमा (प्रदेश) में गति करे वा परिणाम पावे यह असभव है; क्योंकि जो होगे तो (परिणाम) सब प्रदेश मे होगे, एक तरफ ही गति होगी, विरुद्ध देश में नहीं होगी, यह स्पष्ट है, इसलिये ब्रह्म के एक देश में उसके नाना रूप मानना कल्पनामात्र है. यदि है तो वोह एक नहीं किंतु जडवाद-प्रकृतिवाद के समान सावयव मध्यम होना चाहिये. उपादान जैसा उपादेय होता है. (अ २ सू. ३०२); इसलिये ब्रह्म का ही यह सब रूपांतर है अर्थात प्रकृति ज्ञेय, भोग्य और ज्ञाता भोक्ता उसी के रूप हैं, ऐसा नहीं मान सकते, क्योंकि ज्ञाता ज्ञेय, द्रष्टा दृश्य, भोक्ता भोग्य स्वरूप से जुदा जुदा होते हैं, (त. द. २ सू ३७५) ऐसी प्रसिद्ध व्याप्ति है. दोनो एक ऐसी व्याप्ति नहीं देखते. ब्रह्म ही नीच उच्च, सुगंध दुर्गंध, तम प्रकाशादि विरुद्ध धर्म वाला द्वंद्व रूप हो, ऐसा सिद्ध नहीं होता. (त. द. २ सू ३४०) और यदि हठ से है ऐसा मानें तो परपक्ष भी स्वीकार लेना पडेगा, क्योंकि द्वैतवाद, अभाववाद भी उसी की तरफ से है और थीं. सो. का निषेध भी उसी की तरफ से है. सार क्या आया! व्यर्थ बकवाद.

सृष्टि आरंभ काल में पूर्व के देवता साथ उत्पन्न होते हैं, इसमे स्पष्ट हुवा कि ब्रह्म कभी भी स्वस्वरूप में नहीं होता, किंतु बोद्धों के क्षणिक परिणाम समान रहता है अर्थात पूर्व पूर्व से अनेक रूपवाला सावयव है. किंवा जिसको ब्रह्म कहते हैं वोह ब्रह्म उनका अधिष्ठान उनसे जुदा है, जिसे थीओसोफी नहीं जानती (न. १८ याद करो).

जब कि ब्रह्म संस्कारी है तो पूर्व संस्कार (पूर्व दृष्ट वा पूर्व वासना) अनुसार (तदवस्त) सृष्टि रचता है याने आप रूपांतर नहीं होता, क्योंकि उसके साथ पूर्व के देवता उत्पन्न होते हैं देवता (ध्यान चौहान, लीपिका, व्यवस्थापक, महद कर्ता) का सबूत नहीं मिलता, इसलिये कल्पना मात्र है. परमाणु मात्र याने सब चेतन हैं, तो जड की आपत्ति कहां से हुई. जो कल्पना मानें तो चेतन भाव भी कल्पित ठरता है, और जो अपेक्षित मानें तो जड चेतन उभय प्रकार के पदार्थ ठरते हैं. किंवा जडादिकों के समूहात्मक प्रकृति (परमाणु पुंज) समान ब्रह्म ठरेगा.

आत्मा-बुद्धि समूह का नाम जीव याने मध्यम कंपोंड हुवा; और वे ईश्वर रूप हैं इसलिये ब्रह्म भी मध्यम हुवा. जीवों के जव कर्म विना शरीर संवंध (परस्पर की गति से) हुवा ते वे भोग के पात्र नहीं हो सक्ते और न जवावदार. विकास क्रम ईश्वर की इच्छा के आधीन है, इसलिये वनस्पति, पशु पक्षी, तिर्यक वगेरे क्रम भोगने में जीव लाचार है. अनपराधियों के दुःख हो यह अन्याय नहीं ते क्या? ईश्वर की ते विकासक्रम की इच्छा हुई उसमें उसका क्या विगडा. दुःखी ते हुये अनपराधी जीव! यदि दुःख सुख भोग नही और ज्ञान का क्रम नहीं ते फेर विकास अविकास की ही सिद्धि नहीं होगी; क्योंकि विकास की कल्पना ते इन्हीं हेतु से की जाती है.

मनस भी ईश्वर का स्फुरण है याने त्रिपुटी (आ. बु. म) ईश्वर का स्वरूप है. फेर इस (जीव) के कर्म विना छाया शरीर, कारण शरीर, मनुष्य योनी मिलना दुःख सुख पाना यह अन्याय वा स्वार्थी वालकों का खेल नहीं ते क्या? (प्र) उन्नति वास्ते है (उ.) उन्नति किसको? ईश्वर अंश की उन्नति कहना भंगेडीओं की जेसी वात है. जव अवनति नहीं ते उन्नति क्या? जव तव ब्रह्म के अंश उन्नति में पूर्ण हो जायंगे; क्योंकि ब्रह्म जितना है उतना है, ते उसके पीछे सृष्टि न होगी. अनेक ब्रह्म याने ब्रह्म और उसके असंख्य अंश निकम्मे रहेंगे. (त. द. पेज १९४ से १९८ तक और १९८ से १९९ तक देखो'; परंतु निष्फलत्व का अभाव है; इसलिये ब्रह्मांश और उनका विकास क्रम मानना कल्पना मात्र है. अवतारी मानस पुत्रों में डवल डवल त्रिपुटी एक अपूर्ण दूसरी पूर्ण ऐसा मानना व्याप्ति विरुद्ध है. आत्मा बुद्धि और मनस विना का काम तत्त्व प्रेत होके ईच्छा पूर्वक चेष्टा करे, दूसरों के दुःख दे, यह सिद्ध नहीं होता; क्योंकि जीव त्रिपुटी की योग्यता उसमें नहीं होती. और यदि है ते पशु पक्षी वाले भुत रूप क्यों न हों? परंतु ऐसी व्याप्ति नही मिलती. सुनते हैं कि शरीर में आया प्रेत वोलता है, यह योग्यता काम तत्त्व में नहीं होती.

(११) आत्मा एक मानके शरीर प्रति जुदा जुदा आवागमन मानना असिद्ध है. घटाकाशवत उपाधि में ही गति वन सक्ती है जव आत्मा नाम का अंश शक्तिमान हुवा और ब्रह्म वना तव या ते अनेक ब्रह्म हुये और जो ब्रह्म में मिला ते ब्रह्म में वॉल्युम (भाग) वडने से ब्रह्म न्यूनाधिक हुवा अर्थात् सावयव ठेरा. जीव जवावदार नहीं ठेरता; क्योंकि सब क्रिया ब्रह्म की तरफ से मानते हैं और विकास क्रम के आधीन है; इसलिये यह थीयरी हानिकारक होने से त्याज्य ठेरती है.

(१२) कहीं मनुष्य का जीव ब्रह्म से भिन्न, कहीं ब्रह्म का आभास, कहीं प्रतिबिंब, कहीं किरण, कहीं उसका अंश, कही उसका रूप, कहीं कुछ ऐसे विरोधी टोड विनाका कथन है; इसलिये निर्णयार्थ समय गुमाना व्यर्थ है. यदि घटाकाशवत अंश का आशय होता तो भिन्न वा आभासादि रूप नहीं कहते तथा दुःखी सुखी होने, क्रिया करने और विकास में आने का आरोप नहीं होता; परंतु ऐसा नहीं है. अर्थात् ब्रह्म को सावयव मानते हैं.

(१३) धर्म के लक्षण स्वमत प्रचारार्थ कल्पे हैं. वस्तुतः और हैं. त. द. अ. ४ गत मनु-उपदेश देखो.

(१४) चीर हरणादि के अर्थ हिंदुओं को लुभाने वास्ते हैं; क्योंकि महा पुरुष ऐसी अमर्यादित शिक्षा नहीं देते. दोनें (गुरु शिष्या) के अर्थ में मत भेद है याने रासमंडल के जो अर्थ किये हैं वे कल्पना मात्र हैं, ऐसा स्पष्ट हो जाता है.

(१५) जो नं. १५ के अनुसार भावना हो तो नीति अनीति की मर्यादा का भंग होता है. देशोन्नति में हानीकारक है, इसलिये यह मंतव्य अग्राह्य है; क्योंकि आपही पशुवध को पाप माना है.

(१६) हरेक मत धर्म पंथ के स्वर्ग वगेरे के लक्षण में अंतर है, इसलिये नं. १६ वाला लेख केवल रोचक रूप है, नहीं कि यथार्थ, ऐसा मानना पडता है. जब मुक्त दशा से आगे का अज्ञान है तो सृष्टि उत्पत्ति काल में ब्रह्म को जो क्रिया वगेरे और मुक्तों का जन्म होता है, यह केसे कहा जा सकता है. बात यह है कि कल्पना सो कल्पना ही.

(१७) जब कि नं. १५ अनुसार ससार में बुराई-पाप नहीं तो नं १७ अनुसार इसामसीह ने किस के पाप खेंचे? विकास क्रम कहां भाग गया? जब कि इसुमसीह त्रिपुटी रूप है और त्रिपुटी (जीव) ही बुरा भला करती है तो अब किसने किस के पाप खेंचे? सारांश मूल विना की कल्पना है.

जब कि इसुमसीह महाविष्णु का अवतार सर्वज्ञ और कृष्ण भी उसी विष्णु का अवतार सर्वज्ञ तो इन दोनें के मत में अंतर क्यों? एक पुनर्जन्म मानता है; उपादान और निमित्त भिन्न मानता है. दूसरा पुनर्जन्म नहीं मानता और अभाव से सृष्टि मानता है. तथाहि श्री आनाबाई ने खिस्ति धर्म क्यों छोडा? परंतु ऐसा जान पडता है कि खिचडी में मिल के अपना गुप्त इष्ट सिद्ध कर लेना, इसलिये यथा प्रसंग ऐसे ऐसे शब्द देना ठीक है. पूर्वा पर कौन देखता है. बेशक हिंदुओं की

अंधश्रद्धा में यह चाल काम करती है. तमाम लोक ओतप्रोत मानना यह केसी फिलोसोफी? (त. द. अ. २ सु. ३८२ बांचो).

(१८) दूसरे अनुभवी महात्माओं के जो विषय ज्ञात हैं उनसे अपने के अज्ञान बताना और फेर गुप्त महात्माओं की प्रेरणा कहना यह क्या? अव्यक्त ब्रह्म केसे व्यक्त होता वा करता है, यह न जानना और फेर वेसा है, ऐसा दावा करना और उस असीम के सक्रिय सांश बताना यह क्या? मन की कल्पना मात्र सिद्धांत है पृथ्वी के दो मनवंतर न जानना परंतु दूसरे गोलों के गोलकों की उत्पत्ति और कामरूपादि लोकों की बातें बताना यह क्या परिणाम निकालता है?

(१९) जिनका साध्य कल्पना मात्र है वा प्रमाणशून्य है वे ऐसे (नं. १९ वाले) बहाने बताते हैं. नं १९ अनुसार हरकोई अपने मत वास्ते कह सकता है. यथा—ईश्वर ने अभाव से भावरूप पेदा किया, गुप्त मत केवल कल्पना मात्र है, इन प्रसंगों में भी नं. १९ के अनुसार कह सकते हैं; अतः गुप्त मत अलीक है ऐसा जान पडता है जब किसी पदार्थ का स्वरूप नहीं जान सकते तो ब्रह्म, जीवादि सबंधी मत इत्थं भाव से केसे माना गया? याने विश्वासपात्र नहीं.

जो सिद्धांत सब ने स्वीकारा सो सत्य होना चाहिये इसमें सब याने कोन? बौद्धों में ४, मुसलमानों में ७२, खिस्तिओं में ७, हिंदू संसार में मुख्य ९ मत हैं, इसलिये सबने स्वीकारा, यह पद ही व्यर्थ होता है. नाना ईश्वर कोई नहीं मानता. एकेश्वरवादी संख्या में ज्यादा हैं. इसलिये लेखक का मत उसके लेख से अलीक हो जाता है.

जब कि सृष्टि नियम स्थूल सूक्ष्म सृष्टि में लगते हैं, अखंड हैं तो उनके अनुसार मानना चाहिये; परंतु गुप्तज्ञान या गुप्तमत उसके अनुकूल नहीं है. जिज्ञासु के बोधार्थ कितनेक सृष्टि नियम टांकते हैं —

१. अनुपयोगी वस्तु नहीं है (सर्वथा मुक्त होने पीछे भी उपयोग में आना चाहिये। २. तत्व वस्तु का स्वरूप नहीं बदलता. उसमें विकार नहीं होता उसका परिणाम (रूपांतर) नहीं होता. ३. एक अनेक और दो एक कभी भी नहीं होते. ४. असीम विभु में गति और वजन नहीं होता उसमें स्फुरण क्रिया और उसका परिणाम नहीं होता. ५. एक वस्तु की एक काल में दो तरफ गति नहीं होती. ६. नाना से ही अनेक रूप होते हैं. ७. कार्य के उपादान कारण और निमित्त कारण जुदा जुदा होते हैं. ८. उपादान जेसा उपादेय होता है. ९. अभाव मे भावरूप

वस्तु नहीं होती १० एक तत्त्वरूप का अपने में अपना संयोग नहीं होता क्योंकि संयोग दो का ही होता है ११. अपने अपना उपयोग नहीं हो; क्योंकि दूसरे के संबंध से ही उपयोग की व्याप्ति है. १२. द्रष्टा और द्रश्य, ज्ञाता और ज्ञेय, भोक्ता और भोग्य यह स्वरूप से जुदा जुदा होते हैं. १३ बिंब और प्रतिबिंब स्वरूपतः जुदा जुदा हैं १४ गति, देश के विना नही होती १५ हर कोई वस्तु तीन परिमाण में से एक प्रकार की होगी याने अणु, महत्, मध्यम (अ. २ सू. १९९ देखो) १६ मध्यम जन्य, सावयव, परिणामी (बदलने वाला) होता है अर्थात् कंपोंड, कोहीज़न वा मिकश्चर होता है १७. सख्या से कोई भी अनंत नहीं क्योंकि जितने है उतने हैं. १८. अन हुई वस्तु प्रतीत नही होती इन नियमों को विचारें तो गुप्त विद्या का मंतव्य अलीक ठेरता है इन नियमों का विवेचन त. द. अ २ में है

विशेष परीक्षा अद्वैतादर्श और थोओसोफी तंत्र में है. शुद्धाद्वैत अनुसार भी यहां लगा सकते हैं

अपनी इच्छा से आप ही अनेक रूप होना शुद्धाद्वैत मत इच्छा से अभाव में से भावरूप करना इसराइली मत. प्रकृति पुरुष के संबंध से भोग्य प्रकृति के नाना रूप होना द्वैतमत. प्रकृति, ईश्वर और जीव यह तीनों अनादि अनंत यह त्रिवाद मत. ब्रह्म में माया करके अनेक नाम रूप भासना केवलाद्वैत मत. और पूर्व पूर्व सस्कार (वासना–इच्छा) से अपना ही अनेक रूप होना नित्य गति में रहना यह बौद्ध मत है. अब थीओसोफी के लीडर किस मत में है यह शोधक स्वयं विचार ले और पूर्व परीक्षावत परीक्षा कर ले

सृष्टि की उत्पत्ति और महाप्रलय दोनों पंडिता मानती है अब यदि वोह प्रलय सब जीव मुक्त हो जायंगे तब होगी, ऐसा मानें तो जब तब भविष्य में सृष्टि बंद हो जायगी; क्योंकि ब्रह्म जितना हैं उतना है, उसके सब अंश मोक्ष–सर्वज्ञ होने पीछे सृष्टि उत्पत्ति का हेतु न रहा और यदि कितने जीव मोक्ष होने बाकी हैं तब भी प्रलय होती है, ऐसा मानें तो उपर जो सृष्टि क्रम (नवीन जीव होना) लिखा है वोह असिद्ध रहेगा और ब्रह्म कभी भी शुद्ध न होगा; किंतु उसके अंश विकारी ही रहेंगे. इत्यादि प्रकार से उक्त मंतव्य समीचीन नहीं जान पडता. और जो उत्पत्ति, लय, त्रिपुटी व्यवहार सब कुछ ब्रह्म स्वरूप और ब्रह्म की लीला मात्र

(वाल्कों का खेल वा तमाशा) मानें तो थी. सो. का मंतव्य भी वेसा ही मानना पडेगा; इसलिये विश्वास पात्र, उपयोगी और मान्य नहीं हो सक्ता.

विभूपक मत.

जो किसी व्यक्ति को थिओसोफी मत की भावना (ब्रह्मवाद) इष्ट हो वोह व्यक्ति यदि उसके मोरल मुख्य तीनों नियम (नं २) को और उपरोक्त सत्तक पूर्वक पंचदशांग को पाले तो उसकी कोई हानी नहीं जान पडती किंतु वोह प्रजा को लाभकारी हो पडेगी, कारण कि इस सोसाइटी के अंग वाले को संग्रहवाद (अ. ४) की अपेक्षा होती है यदि ऐसी व्यक्ति अपने मंतव्य—अपनी भावना का आग्रह न करके सग्रह सभा करे तो लाभकारी हो; क्योंकि इस सोसाइटी के मेंबर में सग्रहवाद पसंद करने और सग्रह सभा कराने—की लियाकत पेदा हो जाती है; क्योंकि यहां कुछ टोलरेशन की भी तालीम मिलती है.

८६. आफ्रिका.

आफ्रिका बहुत बडा देश है, परंतु उजड है. किनारों पर वस्ती है. उसमें विशेष भाग मुसल्मानी धर्म और खिस्ति धर्म वालों का है आफ्रिकन याने हब्शी शीदी अंदर की तरफ रहते है, उनका खास कोई धर्म नही है. प्राचीन देव भावना मात्र है नग्न रहते हैं, वाह्य प्रजा (मुसलमान खिस्ति) का जिनके साथ सबंध हुवा है वे सुधरने लगे हैं और उनमें कोई कोई उनकी धर्म भावना मानने लगे हैं. अतः प्रस्तुत प्रसग के विषय नहीं हैं. दुनिया की सेर में इस प्रजा का बयान है उसीमें उनके राजा का वर्णन है.

गुप्त भेद (सिक्रेट).

यद्यपि योगी, वामी, और फ्रिमेशन किसी हेतुवश अपनी क्रिया और सकेतों को गुप्त रखते हैं. तथापि जो वे दूसरे को कहना, बताना या दिखाना चाहें तो कह सकते, बता सक्ते और दिखा सक्ते हैं; अतः गुप्त नहीं. उनसे विशेष कुदरती भेद है, उनमें से कितनेक तो ऐसे है कि मनुष्य नहीं जान सक्ता यथा—शक्ति का स्वरूप, और कितनेक ऐसे हैं कि जाने जाते हैं और नहीं कहे जाते, यथा—विषय रस का स्वरूप, परंतु अद्‌भुत गुप्त भेद ब्रह्म विद्या का है; क्योंकि उसका

अनुभव हुये भी उसका खास स्वरूप—खास भेद, खास उपयोग और खास प्रकार कहना चाहें तो भी नहीं कहे जा सकते * उपनिषदकर्ता ऋषि, मुनि और अन्य ब्रह्मवित् कहते कहते थक गये—कहा न गया. लक्ष्यार्थ—लक्ष्यालक्ष्य, ऐसे पद ही कहे हैं. निदान उसका स्वरूप उसके अधिकारी के सिवाय कोई नहीं जान सकता और जाने पीछे भी चाहे तो भी नहीं कहा जा सकता. इसी सबब से मतभेद हो गये; क्योंकि जैसे को जैसा जान पडता है.

अपवाद—इस लेख वा मंतव्य का खंडन सहेज है जो स्पष्ट है—हरकोई कर सकता है.

विभूषक—परंतु यह विषय सत्य और अनुभवसिद्ध है, अधिकारी को शांति सुख मिलने में अपूर्व और ज्ञानकांड में अंतिम—रोच है. इसके भूषण उ. द. अ. ४ में कहे गये हैं और अवर्णनीय हैं.

८७. फ्रिमेशन.

फ्रिमेशन यह एक भ्रातृभाव पैदा करनेवाली सोसाइटी प्रसिद्ध है. इसके मेंबर बहुधा श्रीमंतों में से होते हैं. इसके मेंबर एक दूसरे की आज्ञा में भाग लेते हैं. हमने इस सोसाइटी के संबंध में जो सुना, पढ़ा, उसका सार यह है. इसका मूल यूरोप है. एक मित्र ने इतिहास की रू से ऐसा भी कहा कि "इसका मूल श्रीकृष्ण महाराज से चलाया था; परंतु हिंद में यह ख्याल न रहा. यूरोप में इसका बीज चला गया उसके बाद अब यूरोप में है. यूरोप से हिंदुस्थान में आया हुआ है." किसीक ने यह कहा कि "यह कोई धर्म मजहब नहीं है, किंतु दोस्ती—मेल करने की एक संस्था है, इसमें स्त्री और राज्यविरोधी को मेंबर नहीं करते और जो मेंबर किये जाते

* [illegible]

है वोह सभा की संमति के विना नहीं किये जाते. मेंबर करने के कायदे है, और इसमें ७ डिग्री है, यथा अधिकार दर्जे बदर्जे मिलती है, सभा होने के समय दूसरा कोई उसमें प्रवेश नहीं होने पाता, एक ऐसा प्रकार है कि उसका मेंबर इस सोसाइटी का अमुक भेद नहीं कह सकता." इस संस्था के १ राजा, १ जज, १ डाक्टर और १ छट्ठी डिग्री की चाद पाया हुवा एक मद्रासी भाई और कितनेक साधारण गृहस्थ मेंबरों से वृतात पूछा गया ते उनका यह कहना है कि "प्रतिज्ञावश भेद नहीं कह सकते और अजाने फ्रिमेशन के जानने की जो परिपाटी वा संकेत है सो भी नहीं कह सकते. तुम जो मेंबर होगे ते तुम भी ऐसा ही करोगे. मेंबर हुये विना उसका भेद नहीं जान सकते. इस सोसाइटी के सबध में जो दत कथा चल रही है वे सत्य नहीं है. इसमें हरकोई धर्म का मेंबर हो सकता है. इस सोसाइटी मे जातिबधन नही है, एक दूसरे की आफत में एक दूसरा मेंबर यथाशक्ति भाग लेता है और सभ्यो का सग प्राप्त होता है. इस सोसाइटी संबधी अनेक ग्रथ इग्रेजी मे है. इसकी फी ज्यादे रुपये की है. अमुक नियमानुसार सभा शामिल हुवा करती है.

उर्दू में एक रिसाला छपा था उसमें इनके ७ कमरो का बयान किया था. उसमें भूत, मुर्दे और वृद्धा स्त्री वगेरे का वर्णन था और इसके मेंबर को भूत का भय रहता है, इसलिये भेद नहीं कह सकता, ऐसा लिखा था और यह भी कहा जाता है कि इसके मुख्य मास्टर को खबर हो जाती है उससे मेंबर को भय रहने से भेद नहीं कह सकता. इत्यादि पाये विना की गप्पें चलती है. काठियावाड, गुजरात में इस सभा के मकान का नाम भूतखाना बोलते है. इस सभा के सभ्य वारंवार यही कहते है कि जो दत कथा चल रही है वोह अज्ञान मडल की कल्पना है और असत्य है. इस सभा में कोई प्रकार का दोष नहीं है. भ्रातृभाव का उपाय है. प्रतिज्ञावश भेद नहीं कहते. इतनी ही विलक्षणता है.

वर्तमान (सन् १९१४।१६।१७ इ.) में जो यूरोप में केसरी जग (घोर युद्ध) हो रहा है यूरोप के लगभग तमाम राज्य लड रहे है उसमें किरोडो जान की ख्वारी हो रही है, यूरोप की प्रजा की महान् शोकनीय हानी हो पडी है, इस युद्ध पर विचार करें ते फ्रिमेशन के भ्रातृभाव, इस सिद्धात पर शक लेने को अवसर मिलता है.

जो कि यह किसी धर्म–मत–पथ का मडल नहीं है, इसलिये इसकी विशेष चर्चा करने से उपेक्षा करते है

८८. प्रकीर्ण नोंध.

काळ और ग्रंथ विचार.

इसराइली संसार (याहुदी–खिस्ति–मुहम्मदन) अन्य प्रजा के निश्चय और मान्यता से भिन्न सृष्टि उत्पत्ति का काल ७००० सात हजार वर्ष से ज्यादा नही मानती और इतिहास ४००० चार हजार वर्ष पहिले का नहीं मिलना कहती है; क्योंकि नूह के तूफान में सब प्राणी–सृष्टि का नाश हो जाना मानती है; इसलिये अन्य प्राचीन प्रजा (आर्यावर्त–चीन–मिस्रादि प्रजा) के शोधे हुये और प्रचलित काल इतिहास को थोडा दरसाने की कोशिश करती है, उससे धर्म और फिलोसोफी के स्वरूप और शैली में फर्क पडने की संभावना है और ग्रंथों के लेख में विवाद तथा संशय हो पडता है (जेसे कि पुराण प्रसग में होता है); इसलिये फिलोसोफी वा तत्त्व विद्या के साथ उसका संबंध होने से इस प्रसंग को संक्षेप में लिखते हैं—

वर्तमान में वेद, जियालोजी (भूस्तर विद्या) ज्योतिष, प्रचलित संवत्, ग्रथों की भाषा रचना, वंश का इतिहास और संप्रदाय यह ९ साधन काल परीक्षा के हैं. जो कि सब विषय (पृथ्वी कब बनी, उसमें वनस्पति, पशु, पक्षी कब बने, पहिलेपहल मनुष्य कब, कहां, एक देश में वा अनेक देश में और केसे (मैथुनी अमैथुनी, जरायुज अंडज, स्वेदज वा उद्भिज) पेदा हुये–यह सब बताना मनुष्य की शक्ति से बाहिर हो गया है; क्योंकि भूकंप, जलप्रलय और हिमप्रलयादि कारणों को लेके सम्यक् इतिहास संपादन नहीं हो सकता; तथापि बुद्धि को बलिहारी–यथाशक्ति अमुक व्याप्ति द्वारा किसी विषय का कुछ अनुमान बता सकती है, यही बुद्धि के चोचले हैं.

(१) वेद प्रकाश.

दुनिया में सब से प्राचीन वेद ग्रथ है, यह सब शोधकों ने मान लिया है, मनुष्य सृष्टि में इससे पहिले का कोई ग्रंथ नहीं है. उसके "शतंते अयुतं." अथर्व म. ८ अनु. १ मं. २१ में सृष्टि की उत्पत्ति से लेके प्रलय के आरंभ तक काल ४ अर्बुद ३२ बत्तीस किरोड वर्ष लिखा है. ऋषि, मुनि, ज्योतिषियों ने उसकी जांच करके विभाग किये (सूर्यसिद्धांत देखो). १ दिन=सूर्य उदय से उदय तक. ऐसे ३६५¼ दिन=१ सौर्य वर्ष ऐसे १७२८००० वर्ष सतयुग (कृतयुग §) १२९६००० त्रेता ८६४००० वर्ष द्वापर और ४३२००० कलियुग. कुल चारों युग ४३२०००० (तेतालीस लाख बीस हजार वर्ष) इसी को एक चतुर्युगी वा महायुग कहते हैं.

§ सतयुगादि नाम रखने का हेतु है

ऐसे ७१ चतुर्युगी=१ मनवंतर. ऐसे १४ मनवंतर या ९९४ महायुग. हरएक मनवंतर का संधिकाल वोह महायुग के बराबर होता है. यह सब जोडें तो ४ अर्ब बत्तीस किरोड वर्ष होते हैं. इस मीजान के काल को एक कल्प, वा सहस्र महायुग वा ब्रह्मा का एक दिन कहते हैं. उसमें से आज कलियुग के ५००० वर्ष बीतने पर याने सं. १९५१ विक्रम तक ६ मनवंतर गये; सातवें मनवंतर के २८ मी चतुर्युगी के ३ युग जाके जो चोथा कलियुग जा रहा है इनके गत वर्ष जोडें तो एक अर्बुद, छानवे किरोड, आठ लाख तरेपन हजार गत वर्ष हुये हैं याने सृष्टि उत्पत्ति हुये १९६०८५३ हजार वर्ष हुये हैं, बाकी शेष हैं.

चंद्र सूर्य की गति का हिसाब मेल में आ जावे ऐसे ऐसे प्रकार में युग के साल को संज्ञा है. प्रत्येक युग में चांद्र वर्ष, चांद्र मास, न्यूनाधिक मास, तिथि, न्यूनाधिक तिथि, इन सब का सूर्य साल के साथ मेल खा जाय, ऐसी रीति से हिसाब कर के युग के अंक किये हैं. इसी वास्ते जब किसी चंद्र साल मास की तिथि का बार निकालें तो महायुग गत सूर्य चंद्र के मासादि जोड के हिसाब करते हुये ठीक बार निकल आता है. यह बार उत्तर दक्षिण की समानांतर रेखा पर (लंका के समीप) मिलता है. इस रीति को अहर्गण बोलते हैं; ‡ इसलिये उक्त गणित का सबूत (प्रमाण–परिमाण) है. दूसरे नित्यकर्म के संकल्प में गणना की परिपाटी है और पचांग की रीति जब से चली तब से यह वहीवट है, यह उपप्रमाण है. ग्रहों की आदि गति से दिनों के नाम (याने बार) उनकी होरा पर रखे गये हैं.

(२) अन्य प्रकार.

४०००—लिपसी एस. कहता है कि मिस्र का बारवां कुल समाप्त हुये ४ हजार वर्ष हुये, चार हजार वर्ष पहिले सदाचारी उम्दा विद्वान् थे (ता. चीन फारसी). *

४५२९—ईसा के २६२९ पूर्व चीन में रेशमी कारखाना था. (ता. चीन एकसुस साहेब पादरी). ईसा से ३८०० वर्ष पहिले सीन की बादशाहत थी. (ता. यूनान). मिस्र के पाचवें कुल की बुत (मुर्ति) ५००० वर्ष की हैं (मि. पलटस).

‡ सवत् से भी निकालते हैं वोह उसकी ही जेटसे है.

* विषय का विस्तार और नाम. कर्ता. वक्ता. पृष्ट वगेरे कुल्लियात आर्य मुसाफिर पृष्ट ३,४,५ में है, (प्रो हेक्सली की पंक्ति तक)

मिस्र के मीनारे ई. पू. ३३५० वर्ष के हैं.(प्राकटर नालज). मनीस के मीनारे ई. पू. ४१०० वर्ष के हैं (सीक्रेट डाक्टरन).

६०००— छः हजार वर्ष मे कोई तूफान (नूह का तूफान) नहीं हुवा है. (कालशन साहेब जियालोजिस्ट). मिस्र का पहिला मीनारा ७८०० वर्ष का है (सीक्रेट डाक्टरन).

10000—10 हजार वर्ष पहिले गर्मी में सूर्य समीप और जाडे में दूर रहता था (मि. अनिस्टमेड ज्योतिषी). १२००० वर्ष से अटना के जंगल पर कोई तूफान (नूह का तूफान) नही हुवा (सर चार्लस). मिस्र में दस हजार वर्ष पहिले तस्वीर और पत्थर काटने का काम उम्दा होता था (प्लेटो हकीम जो इसुमसीह के ४२७ वर्ष पहिले हुवा है). नोही के पीछे के १५ राजों के समय को १८००० साल हुये. (ता. चीन). मिस्र मे प्रजासत्ताक राज्य २२ हजार वर्ष हुये के स्थापित हुवा था (नाट ऐंड गल्डन साहेब की हिस्ट्री).

३००००—जियालोजी और ज्योतिष से ३०००० से पहिले की सृष्टि है (ज्योतिषी रिसाले थी. सो.).

१५००००—डेढ लाख वर्ष का कुतबा काल्डिया में मोजूद है (ता. वदीय).

१५८०००—न्यू आयर्लेंड की तरफ का डेल्टा कम से कम १ लाख ५८ हजार वर्ष पहिले का है. वहां हड्डी निकली हैं, जिससे जाना जाता है कि यहां ५७००० वर्ष पहिले आदमी रहते थे.

२४००००—स्कॉटलेंड के पुराने बर्फ स्थान में आदमी की हड्डी मिलती हैं, उनका स्पष्ट काल दो लाख चालीस हजार वर्ष है. (प्रोफेसर डरीपर साहेब जियालोजीस्ट).

४० लाख—जमीन की चट्टान बनने के लिये ही ४० लाख वर्ष चाहियें.

१० किरोड—जमीन ठंडी होके वनस्पति उगने लगी इसको १ किरोड वर्ष हुये होंगे. (पोपुलर एस्टरानोमि) प्रोफेसर हलनार २ किरोड वर्ष और प्रोफेसर कराल साहेब ७ किरोड वर्ष और सर वलीयम टाम्स साहेब १० किरोड वर्ष करार देते हैं (यह सब जियालोजिस्ट हैं).

३० किरोड—वनस्पति बनती रही उस समय से आदमियों तक के पेदा होने तक तीस किरोड वर्ष होने चाहियें (डा. सी.).

३५ किरोड—जमीन को २ हजार डिग्री की गर्मी से २०० डिग्री तक पहुंचने के लिये ३५ किरोड साल गुजरे होंगे (प्रो. लेचाफ साहेब).

१० क्रिरोड—यूरोप में वनस्पति उगने के आरंभ का समय १० क्रिरोड वर्ष होगा (प्रो. रीड साहेब).

एक अरब—जब से वनस्पति उगनी शुरू हुई उससे आज तक १ क्रिरोड वर्ष गुजरे होंगे (प्रोफेसर हेकसली सुप्रसिद्ध जियालेजिस्ट).

(३) प्रचलित संवत्.

नंबर	नाम सन् (संवत्) कब से चला	सं. १९५७ वि. में कितना
१	आर्य संवत् सृष्टि उत्पत्ति से १ अरब ९६ क्रिरोड ८ लाख ५३ हजार.	१९६०८५३०००
२	चीनी-चीन के पहिले बादशाह से	९६००८२४००
३	खताई-खता के पहिले बसाने वाले से	८८८४०२७६
४	पारसी-ईरान के १ ले बादशाह से	१८९८७०
५	काल्डीया-पहिले बडे से †	१५१९००
६	मिसरी-नीम बादशाह से	२७५५४
७	इबरानी-आदम (या सृष्टि की) उत्पत्ति से	५९०१
८	कली-कलयुग के आरंभ से	५०००
९	युधष्ठ्री-युधिष्टर राजा की गद्दी से कलि ६६३	४३३७
१०	नूह-नूह पेगंबर से	५०००
११	इब्राहीमी-अब्राहीम से	३८२१
१२	स्पार्टा-स्पार्टा नया बसा तब से	३६०४
१३	मूसवी-मूसा * पेगंबर से था ३४७१	३४७३
१४	दाउदी-दाउद पेगंबर से	२९३९
१५	यूनानी-ओलंपीया के अखाडे से	२६७६
१६	रूमी-रूमनगर बसा तब से	२६५३
१७	नाबूनासी-बाबुल के पहिले बादशाह से	२६४७
१८	बुद्ध-बुद्ध के ५० वें वर्ष से	२४०७
१९	सिकंदरी-सिकंदर बादशाह से	२२५४
२०	विक्रम-विक्रम की राजगद्दी से	१९५७
२१	ईसवी-ईसा के जन्म के ४ वर्ष पीछे से	१९००
२२	शालिवाहन-शालिवाहन (शाका) राजा से	१८२२
२३	हिजरी-नबी मुहम्मद मक्के से मदीने गये तब से	१३१८ *

† काल्डीया (बाबुल) वालों ने सिकंदर बादशाह को डेढ लाख वर्ष की पुरानी प्रशस्ति (कुतबा) दिखाया था.

* इनके सिवाय फकत आर्यावर्त में ही परशुराम वगैरे के बीस संवत् चले हैं. हमने 'तकवीम गणेश' इस नाम की चोपडी में इनका वर्णन किया है. तहां सृष्टि, कलि, विक्रम, ईसवी, शके, चोदी, गुप्तवल्लभी, हिजरी, बंगाल, ताम्बीर, विलायती, अमली, फसली, पूर्वी, दक्षणी, सुर, हर्ष, मगी, कोलम (परशुराम भार्गव), नैपाल, सह, लक्ष्मण, इलाही, राज (शिवाजी), बुद्ध, जैन, शंकर, पारसी, नानक, दयानंद इनका वर्णन और इनका मेल है.

विक्रम के पूर्व (लगभग)

नं.	विषय	विक्रम से पूर्व
१	मनुस्मृति	सतयुग
२	उपनिषद्	सतयुग द्वापर त्रेता की संधि मे भी
३	ऋषभदेव	सतयुग
४	कपिलदेव	"
५	श्रीरामचंद्र	द्वापर त्रेता की संधि मे
६	गौतम मुनि	"
७	कणाद मुनि	"
८	पतंजलि	द्वापर
९	पराशर सूत्र	२४५०
१०	व्यास मुनि	२३८० वा २३६०
११	जैमिनि	"
१२	श्रीकृष्णजी	"
१३	पाणिनि	

विक्रम के पूर्व (लगभग)

नं.	विषय	विक्रम से पूर्व
१४	जन्मेजय	२३४३
१५	जरतोश्त पेगंबर (व्यास काल)	२३५०
१६	बादशाह नेनुस की राणी की हिंद पर चढाई	२०००
१७	सटार्स बादशाह मिस्र की हिंद पर चढाई	१३०८
१८	रोमक सिद्धांत लिखा गया	६५२
१९	दारा की लडाई	५००
२०	बुद्ध का जन्म	५००
२१	नंदराम कुल का आरंभ	४७५
२१	(क) महावीर स्वामी	४७०
२२	सिकंदर बादशाह की चढाई	२७५
२३	चंद्रगुप्त राजा	२६८
२४	महाराज अशोक	२६३
२५	पहिला शंकराचार्य	२२३
२६	भर्तृहरी राजा	५०

विक्रम के पीछे

नं.	नाम	संवत् विक्रम
१	विक्रम गद्दी बैठा	१
२	दूसरा शंकराचार्य *	२०

* जो गद्दी पर बैठे सो ही शंकराचार्य कहाता है; परन्तु यहां जो प्रसिद्धि में धर्म कार्य करनेवाले प्रतिष्ठित हुये हैं उनके नाम लिखे हैं ऐसा जानना चाहिये

विक्रम के पीछे

नं.	नाम	संवत् विक्रम
३	ईसामसीह जन्मा	५२
४	शालिवाहन ने शक चलाया	१३५
५	वल्लभी राज्य का आरंभ	२०१
६	तीसरा शंकराचार्य	४५७

कदाचित अंकों में अशुद्धि हुई हो तो सुधार लेना; क्योंकि ऐतिहासिक बात है

नं.	नाम	वि. सं.	नं.	नाम	वि. सं.
७	आर्य भट्ट	६००	२५	दादू दयाल	१६०० १६५९
८	राजा भोज (पहिला)	६४१			
९	वल्लभी राज समाप्त	६६१	२६	गोस्वामी तुलसीदास	१६१६ १६८०
१०	चौथा शंकराचार्य	६८२			
११	नौशेरवां बादशाह बुगदाद	६८८	२७	लाल बाबा	१६४९
१२	पांचवां शंकराचार्य	६४७	२८	गुरु गोविंदसिंह	१७२३ १७६५
१३	शटकोप, मुनिवाहन	७००			
१४	छटा शंकराचार्य	८४५	२९	औरंगजेब आलमगीर	१७१५ १७६४
१५	सोसलीकों का राज	९८८			
१६	रामानुज आचार्य कोई कहता है	१०१० १९८४ १२००	३०	महाराज शिवाजी	१६८४ १७३७
			३१	महाराज रणजीतसिंह	१८३७
१७	महमूद गजनवी	१०५६	३२	राजा राममोहनराय ब्रह्म समाज स्थापक	१८८७
१८	भास्कराचार्य	११००			
१९	पृथ्वीराज चौहान दिल्लीपति	११९१ १२५०	३३	रामचरण रामस्नेही	१८७५
२०	रामानंद स्वामी वैरागियों के गुरु	आसरे १५००	३४	सहजानंद स्वामी नारायण	१८३७ १८८६
२१	कबीर	१५०५	३५	ब्रह्मचारी बाबा	१९००
२२	गुरु नानक	१५२२ १५४९	३६	शिवदयाल खत्री राधा स्वामी मत प्रचारक	१८७५ १२३५ में मरा
२३	चेतन (गोरांग) बंगाली	१५४० १५९०			
२४	वल्लभाचार्य	१५३५ १५९७	३७	स्वामी दयानंद आर्य समाज स्थापक समाज स्थापी १२३२	१८८४ १९४०

विठलनाथ. विष्णु स्वामी जेसा जड चेतन का मिश्रण, इनका मत है. १८. सहजानंद स्वामी नारायण. जन्म नाम हरिकृष्ण वा घनश्याम-बिनधर्मदेव सरवेया ब्राह्मण सामवेदी. माता भगतिदेवी. सं १८३७ में जन्म. सं. १८५६ में भुज में आया. सं १८५८ में रामानंद की गादी पर बेठा. सं. १८७४ में अहमदावाद में सं. १८७९ में भुज में मंदिर बंधाया सं. १८८१ में लार्ड राइट रेवरंड हेवटु ख्रिस्ति धर्म गुरु (विशप) मिलने आया. सं. १८८२ में अपनी गादी अपने भाइयों को दी–उनको आचार्य बनाया. जूनागढ सं. १८८४ में गढडा सं. १८८५ में गोपीनाथ का मंदिर किया. सं. १८८६ में गढडा में मर गया. १९. लिंगायत बसव बिन महादेवभट्ट. सि. बागेवाडी. जिला बीजापुर (बिहार) शाका ११ में जन्म हुवा. जंगम संप्रदाय चलाई. बीरशैव नाम रखा वर्णाश्रम की मर्यादा त्याग. करनाटक देश में यह मत है. २०. सूरदासजी सं. १५९७ (१५४० इ.) में हुये. सूरसागर बनाया. अंधे थे. २१. माघ कवि सं. ११३२ (१०७५ इ.) में. बाण कवि सं. ७८६ में हुवा. कादंबरी रची. २३. गंगालहरी का कर्ता पंडित जगन्नाथराय कवि अकबर बादशाह के समय हुवा. बादशाह की लेंगी वा लवंगी पुत्री के साथ विवाह किया.

(२४) कालीदास कवि ३ हुये हैं. १. राजा विक्रम के समय जिसके हवाले बानभट्ट अपने ग्रंथों में देता है. २. राजा भोज (१०४०–११०० वि.) के समय हुवा. तैलिंगी ब्राह्मण था. ३. वडनगर का नागर ब्राह्मण वि. १७१७ ध्रुव आख्यान कर्ता. २५. जयदेव कवि § गीत गोविंद का कर्ता. यह गीत गोविंद राजा विक्रम की सभा में गाया जाता था. कालीदास के पहिले हुवा है. २६. तुकाराम महाराज–वि. १६६५ में जन्म हुवा. शिवाजी महाराज के समय. २७. विक्रमाजीत–उज्जैन का राजा. रोम देश का राजा अगस्ट सीज़र इसका मित्र था. २८. शालिवाहन विक्रम को जय किया. पैठण में राजधानी की. वि और शके में १३५ का अंतर है. २९. सिद्धांत कौमुदि का कर्ता भट्टोजी दीक्षित. सं. १६३९ में जन्मा ३०. दीन दर्वेश शिघ्रकवि पाटण. ३१. शारंगधर वैद्य सं. १३९१ में. ३२ पुंडरीक यु. सं. १७२४. विद्या रत्नाकर जैनी के साथ शास्त्रार्थ किया. राजा अशोक (बिन चंद्रगुप्त) का भाप वारीसार राजा था. राजा अशोक

§ इसी जयदेव का भाई बोबदेव हुवा है, जिसको श्री भागवत का कर्ता लिखते हैं. उसके शेक सत्यार्थप्रकाश में लिखे है. शंकराचार्य के पीछे हुवा है.

वि. पूर्व २१३ वर्ष मे हुवा है. इस १७२४ के हिसाब से वि. पू. १९१ होते है इतना अंतर है.

३३. उन्मत्त भैरव-कापालि शूद्र. उज्जैन निवासी. स ४९८० कलि में. ३४. बीरबल कवि सं. ११९२ मे मर गया. ३५. मानभाव मत इस मत का प्रवर्त्तक कृष्णभट ज्योतिषि हुवा जिसको आज १९५१ में ६७५ वर्ष हुये. वराड जिले में ज्यादा है. ५ मठ बनाये. ३६. प्रणामी पथ-(खेजडा पंथ-मेराज पथ) देवीचंद कायस्थ वि. स. १६३८ में जन्म स. १७१२ में मर गया. प्राणनाथ कायस्थ स. १६७५ में जन्म जामनगर में. स. १७५१ मे मरा. इसने यह पथ चलाया. कलश नाम का ग्रंथ बनाया. आलमगीर के जुलम अटकाने वास्ते कहलाया कि ईसा और इमाम महदी आगये (मै) चमत्कार बताये. यह पंथ वैष्णव और इसलाम मिश्रित है. तुलसी की माला रखते है. ११ वर्ष ५२ दिन तक के श्रीकृष्ण को मानते है. नाक पर से तिलक करते है, बीच में रोली की बिंदु करते है.

३७. हेमचंद्र आचार्य-जैनी. मोढ वैश्य. स. ११४५ में जन्म स. १२२९ में मरण (अमर कोश किया). ३८. लोलिंबराज पंडित. सि. जुन्नर. स. ११८७ में देवी की उपासना की. बादशाह की लडकी के साथ विवाह किया. उसका नाम रत्न रखा. वैद्यजीवन ग्रंथ बनाया. ३९. नबी मुहम्मद बिन अब्दुलमतालब. जन्म स. ६२७. (५७० द.) और मरण वि. ६८९ में. ४०. राजा भोज धारानगरी वि ग्यारवीं सदी में हुवा. इ. १०४० तक गदी पर रहा. सोमेश्वर ने उसका राज ले लिया ४१. नरसो महता बिन वत्सराज. इ. १५०० में था. ४२. राजा राममोहनराय. स. १७७४ इ. में जन्म १८३२ में मर गया १८२६ में ब्रह्म समाज स्थापी. बाबू केशवचंद्र स. १८३८ मे जन्म १८८४ में मरा ४३. स्वामी दयानंद १८८४ वि. में जन्म स. १९३९ वि. में मरण हुवा. *

(५) अवतरण हिंद का संक्षिप्त इतिहास आवृत्ति ३ प्रकरण ९,
पेज १२४ से १२६ तक में से.

(१) हिंद में मुसलमानी राज्य वि. स. १०५८ मे १८१४ तक (ई १००१ से १८५७ तक).

---

* इस चरित्र चंद्रिका में गितनोक का सालांक अशुद्ध जान पडता है. यथा श्री रामानुज और तुलसीदासजी का. आनंदकिशोर लाहोर निवासी ने गुरु गोविंदसिंहजी प्रसिद्ध किया उसमें गु गो का जन्म १७ पोष वि स १७२१ (आलमगीर के समय) हुवा (पेज ८३) और शरीर त्याग कार्तिक संवत् १७६५ है.

(२) गजनी वंश (तुर्की) वि. सं. १०५८ से १२४३ तक.

गोरी वंश (अफगान) वि. १२५०–१२६३.

गुलाम वंश (तुर्की) वि. १२६३–१३४७

खिलजी वंश (तुर्की) १३४७–१३७७ तक.

तुगलक कुल (पंजाबी–तुर्की) वि. १३७७ से १४७१ तक.

सैयद वंश वि. १४७१ से १५०७ तक.

लोधी वंश (अफगान) वि. १५०७ से १५८३ तक.

तैमूर वंश (मुगल) १५८३ से १९१४ तक.

(३) तदंतरगत कितनेक के नाम और विक्रम संवत.

महमूद गजनवी	१०५८.	शाहजहां	१६८५–१७१५.
शाहबुद्दीन गोरी	१२३८–१२६३.	आरंगजेब	१७१४–१७६४.
अल्लउद्दीन खिलजी	१३५२–१३७२.	नादरशाह दुर्रानी ईरानी	१७९५–१७९६.
तिमर लिंग	१४५५.	मोहम्मद शाह	१७७६–१८०५.
बाबर	१५८३–१५८७.	बहादुरशाह अंतिम बादशाह	१९१९ में मरा.
महान अकबर	१६१३–१६६२.		
जहांगीर	१६६२–१६८४.	अहमदशाह दुर्रानी	१८०५–१८१६.

युधिष्टर संवत् इसु के ११७९ वर्ष पूर्व (बेंटली ज्योतिषि. करनल टाड), इसा के १४५० वर्ष पूर्व (अनिर्वेल एलफनस्टन साहेब), इसु से १२०० पहिले (डा. हंटर साहेब), कली के ६५३ वर्ष पीछे महाभारत हुवा (राजतरंगनी), अकबर बादशाह ने सवतों का संशोधन कराया उसमें ४९९० (आईन अकबरी सं. १६५२), सुरत में शंकराचार्यों की तकरार पर तांबापत्र निकला उसमें २६६३ सं. युधिष्टर लिखा था यह पत्र इसु के ४३७ पहिले लिखा गया. सिकंदर के ११० वर्ष पहिले का है. इससे १९५०=५००० आसरे=४३३७ युधिष्टर के. युधिष्टर के राज्य में सप्तऋषि मघा में थे. (वृहत सहिता) इसमे भी १९५०=४३३७ यु. वर्तमान के ज्योतिषी सप्तऋषि मघा में सुनके चकित होने हैं. हां, कली और युधिष्टर का समय एक, इसलिये लिखने या गणना में भूल हो जाती है.

बुद्ध संवत्–गोतमबुद्ध इसुसे ६२२ वर्ष पूर्व में जन्मा. (मुसबाह तवारीख). इसु के ५५० वर्ष पहिले हुवा (ता. हिंदुस्तान). बुद्ध शाके मे ७०१ पूर्व (वि ५६६ पू.) जन्मा ८० वर्ष की उमर में मर गया (ता. मुसबाह).

विक्रम संवत्–सोमनाथ के पत्थर में सं. १३२० लिखा है सो ६२२ हीजरी के बराबर है (करनल टाड). विक्रम इसुसे ५६ वर्ष पहिले हुवा (ता. आलम) (एलफनसटन साहब ता. हिंद). *

वि. संवत विक्रम के ६०० वर्ष पीछे किसी ने यूं ही जारी किया. राजा भोज ही विक्रम था. संवत् ५४१ वर्ष पहिले लिखना शुरू कर दिया. (अनेक और मि. रूमेश्वर चंद्रदत्त). तिर्थंकर के मरने से ४७० वर्ष पीछे उज्जैन में रा. विक्रमादित्य राज करते थे. (विक्रम चरित्र श्री देवकृत). इ. पू. ५७ वर्ष में सं. विक्रम चला (प्रो. ग्रफथ साहेब भूमिका रामायण) (लेथरज साहेब ता. हिंद) (अनिर्वेछ डबल्यु हंटर साहेब). कली सं ३०६८ में राजा विक्रम के समय (सं. ६७) यह ग्रंथ बनाया (कालीदास कवि जीवत्रह्माभरण). राजा रवरमा ने सुदर्शन तालाब पर प्रशस्ति लगाई उसमे वि. सं. ७३ है. राजकोट के अजायब घर में यह प्रशस्ति है. विक्रम ने रूम के बादशाह आगोस्टस के नाम पत्र लिखा. यूनानी में था. आगोस्टस इ. पू. २७ में था. (ता. सेरुलमुतकद्मीन). रूद्रसेन सं. वि. १२७ में (प्रशस्ति तालाब रणगांव राजकोट काठियावाड) राजा रूद्रसेन सं. १३२. द्वारिका पुस्तक शाला के पास पत्थर की शिला पर खुदा है. वि. २६१ की प्रशस्ति बकोडी गाम जामनगर काठियावाड. उक्त सब राजकोट सरकारी लाइब्रेरी में है. देख लो. प्रशस्ति राज दस्तालदेव बिन राजा अमलदेव कंवरी सं. वि. १२३ (दिल्ली की लाठ पर खुदा हुवा है. (सर वलीयम जोन्स वर्कस जुल्द ९ स. १८०७ ई. में इसकी नकल है). कु. आ. मु. पृष्ट १९ में इसकी नकल है. विक्रम तथा शालवाहन के समय का, संवत् का और राजाओं का जिसमें वर्णन है सो "गुर्जरदेश भोपावली संस्कृत," जैनी ने बनाई, उसमें वि. १३६ में शाका लिखा है. भला जो शालवाहन के पीछे चला होता तो गणित के बडे बडे ग्रंथों में कैसे प्रवेश कराया जाता, इसको कोई नहीं विचारता. अंधाधुंधी शोध चल रही है.

(६) ग्रंथ.

मनुस्मृति–इसु के ५०० पूर्व मनु ने बनाई (डा. हंटर). ई. पू. ९०० में बनाई (योरोपीयनों का मत एशीया जिल्द २) (एल्फनस्टन साहेब).

महाभारत ग्रंथ मसीह से १२०० पूर्व (डा. हंटर साहेब). महाभारत में मनु ब्राह्मण वेद की साक्षी और महिमा है. अतः पहिला मेरा साबित हुवा. मनुस्मृति में

* विक्रम भी ३ हुवे है. उनमें भ्रामाणित चरेडा है.

वेद, उपनिषिद से इतर की साक्षी नही है अतः अन्यों से पूर्व का है. सातवें मनु के आरंभ में होना लिखा है और सतयुग के १० हजार वर्ष पर समाप्त होना कहा है. (अव्दानांदशर्क) इस रीति से एक किरोड बीस वर्ष से ज्यादा होते है. मूसा के १० हुकम मनु की नकल जान पडते हैं. मनुस्मृति कभी यूनान और मिसर देश में भी चलती थी (मनुस्मृति इंग्रेजी की भूमिका).

सूर्य सिद्धांत—ई. पू. ५०० में हुवा (ता. हिंदुस्थान) (एशिया जिल्द ९,२) २७ नक्षत्रों के विभाग इ. पू. १४४२ में कर लिया गया था (ता. हिंद बंटली साहेब पादरी व एशिया जुल्द २). इ. पू. ३००० की शोध आर्यों की किताबों में अब भी है (कलसबेनी और बेली साहेब ता. हिंदुस्तान). आर्यों के पतरे (पंचांग) की रीति इ. पू. १४०० वर्ष में थी (एशिया जिल्द ७, ८). दशमलब्ध गणित की मूल आर्य प्रजा है. हिसाब में यूनानियों से बढ कर है (ता. हिंदुस्तान). बीज गणित (ऐलजबरा) अरब से पहिले हिंद में था (ता. हिंदुस्तान). सातवें मनु की अठाइसवीं चतुर्युगी के सतयुग गुजर ने पीछे बनाया है (कल्पादः सिद्धांत शिरोमणि). इस रीति से सूर्य सिद्धांत को बने हुये २१६४९९० वर्ष हुये.

महाभारत—ई. १४०० वर्ष पूर्व (एल्फनस्टन साहेब) (ता. हिंदुस्तान). ई. से १२०० वर्ष पूर्व (डा. हंटर साहेब). भारत के ८८०० आठ हजार आठ सौ श्लोक हैं (अष्टौ श्लो० पर्व १ अ. १ व्यास वाक्य).

रामायण—वाल्मीकी रामायण में ७ कांड है. भूमिका में ६ कांड लिखे है. उत्तर कांड भार्गव ऋषि ने पीछे से बनाया. वाल्मीक नारद का संवाद ऐसे रामायण में लिखा है. (बाबू हरिश्चंद्र) त्रेता द्वापर की संधि में रामचंद्र महाराज हुये हैं (महाभारत प. १ अ. २ श १)

रामायण और रामचंद्रजी ई पू. ९५० वर्ष (पादरी बंटली). रामचंद्रजी ई. पू. ११०० वर्ष (कर्नल टाड साहेब). रामचंद्रजी ई पू. १३०० (मि. ग्रौस का तरजुमा) (हलफर्ड साहेब). रामायण ई. पू. २०२९ वर्ष (सर वलियम जोन्स).

परंतु उपर की रीति से संधिकाल के हिसाब से रामायण और रामचंद्रजी का काल ८ लाख ६८ हजार से उपर होता है.

राज तरंगिणी (काश्मीर का इतिहास) यह ग्रंथ हिंद के ऐतिहासिक ग्रंथों में से उत्तम और उपयोगी माना जाता है. एक दीवान के पुत्र कल्हण ने उसका पहिला खंड वि. सं. १२०५ में लिखा. दूसरा खंड जीवनराम पंडित ने वि. सं. १४६९ में बनाया. उसका तीसरा खंड श्रीवर पंडित ने वि. १५३४ में बनाया है.

इसमें महाभारत कलि संवत के ६५३ वर्ष पीछे अर्थात वि. पू. २३९१ वर्ष (ई. पू. २४४८ वर्ष) पूर्व होना लिखा है, यह उपर कहा है.

वेद काल—३००० वर्ष पूर्व का (बुद्धदेव ने अपने सूत्रों में वेद की चर्चा की है). ४००० वर्ष. झंदावस्ता पारसियों की धर्म पुस्तक में होम पुष्ट बाब में अथर्व वेद की और अंगिरा ऋषि की चर्चा है. करसनानु ने अपने राज्य में अथर्व बंद कर दिया (होम पुष्ट आयत १८). ५००० वर्ष. व्यास ने उस पर दर्शन रचा है. वाल्मीकी रामायण में वेदों को ईश्वरीय पुस्तक माना है. रामायण का समय ८ लाख वर्ष है. (बाल कांड सर्ग १९ श्लो. २). मनु की रामायण में चर्चा है (किष्किंधा कांड सर्ग ६२). मनु में वेद इतर किसी ग्रंथ का नाम नहीं, वेद मनु से पहिले हैं. सूर्य सिद्धांत में वेद का नाम है, अन्य का नहीं. इससे वेद का काल और मनुस्मृति तथा सूर्य सिद्धांत का काल जान सकते हैं.

स्वामी शंकराचार्य—शंकराचार्य, कुमारल भट्ट का चेला. (डा. हंटर साहेब) ई. पू. २०० वर्ष. ई. स. १००० में. ई. स. ८०० में (विलसन, कालबरुक, ता. हिंद, राममोहनराय, प्रो. जयनारायण ई.). ई. स. ११०० में (मि. आर. सी. दत्त).

बौद्ध धर्म हिंद में ई. १२०० तक रहा परंतु दरअसल ई. के २०० वर्ष पहिले मौर्य खानदान पर जवाल (पडती) आने पर कम पड गया और ब्राह्मण धर्म फेला. (ता. हिंद) यही शंकराचार्य का साम्य है. शंकर की पुस्तक में मुसल्मानों का नाम तक नहीं है, इसलिये १००० वर्ष पहिले हुये. सिकंदर जब हिंद में आया तब शंकराचार्य नाम का साधु पूरजोश से उपदेश कर रहा था (पारसियों की धर्म पुस्तक). युधिष्टर प्रसंग में सुरत के तांबा पत्र का प्रसंग देखो जिससे ई. पू. ४२३ वर्ष. (अमेरीकन मिशन नूर अफशां). शंकराचार्य कलि २१५७ में जन्मे, २१८८ में मरे (ऋषि वीरा० शंकर शिष्य). अनेक शंकराचार्य हुये हैं इसलिये परदेशी भूल खा जाते हैं. वस्तुतः पहिला शंकराचार्य वि. के २२३ वर्ष पहिले हुवा है. दूसरे का चेला भर्तृहरि हुवा. वि. ५७. शंकराचार्य बुद्ध के मरने पीछे हुवा. (ए. बी. सी. नट साहेब) इसमे २२१९ वर्ष होते हैं

(७) ग्रंथ शैली.

ग्रंथों की शैली और भाषा से यद्यपि काल का निर्णय नहीं होता तथापि यह पूर्व, यह पीछे ऐसा भान हो सकता है. यथा उपनिषदों की और सूत्रों की रचना से, ललित अललित छंद भाषा से भान होता है.

आर्यप्रजा के ग्रंथों के पांच काल मान सकते हैं ? मंत्र काल, २ ब्राह्मण काल, ३ उपनिषद् काल, ४ सूत्र काल, ५ धर्मशास्त्र काल. इस प्रकार यूरोप की क्रिश्चियन संसार ने पांच काल नियत किये हैं. यह एक पीछे हुये हैं. यह बात इनकी रचना और भाषा से जानी जाती है. महाभारत से गीता की छंद रचना उत्तम होने से गीता उसमे पीछे बनी है. रामायण की काव्यरचना सुंदर होने से वोह बहुत पीछे का ग्रंथ है. इस प्रकार ग्रंथ और वक्ता के कालका अनुमान कर सकते हैं, परंतु इस अनुमान में भूल भी हो जाती है.

एक हिंदू बालक इंगलेंड में जाके तमाम उम्र इंग्रेजी सीखे तो भी जो उसका टोन वा लालित्य है वोह यथावत् और सर्वथा नहीं आवेगा. हां, जब दो तीन पीढी हो जायं तब वोह उच्चार, लालित्य पदों की व्युत्पत्ति वा रौढिकरूप तथा पदों का टोंन आ सकेगा. प्रोफेसर मोक्षमूलर ने संस्कृत का खूब अभ्यास किया, भट्ट पदवी पाई और वेद, उपनिषद् तथा सूत्रों प्रति लेख लिखे, अंत में यह हुवा कि वे भूल भरे अर्थ निकले. वेद की शब्द संज्ञा इंग्रेजी में है जो गुरुदत्त एम. ए. ने बनाई है उसका गुजराती में तरजुमा प्रसिद्ध हुवा है उसमें यूरोपियनों के अर्थ का आंदोलन दरसाया है.

यदि ब्राह्मण से कुछ निर्णय करें तो मनुस्मृति की उसमें साक्षी है, इसलिये धर्मशास्त्र का काल वहां जा घुसेगा; क्योंकि मनुस्मृति धर्मशास्त्र ही है. जो उपनिषद पद लेवें तो ११२७ हैं. शंकराचार्य ने भी वज्रसूची उपनिषद् बनाया है और उसके पीछे दूसरों ने भी बनाये हैं. अकबर के समय अल्लोपनिषद् भी बना है अर्थात् यह काल और कर्ता प्राचीन, किंवा पहिले उपनिषदों के काल और कर्ता नवीन ठेरेंगे. बृहदारण्यक, छांदोग्य यह दोनों एक समय के नहीं हैं किंतु उनके अंदर जो इतिहास है वोह स्पष्ट जना देता है कि ६६ पीढी में जितना समय लगे उतने काल में वे बने हैं और उसके पीछे भी उमेरा (अधिक बढाना) हुवा है. वे खास एक व्यक्ति के बनाये हुये नहीं हैं; क्योंकि उनमें ६६ पीढी के नाम हैं और वसुदेव देवकी आदि के भी नाम हैं माना कि वे कोई और होंगे श्रीकृष्ण का बाप वा माता नहीं; तथापि जुदा जुदा काल का मिश्रण तो है एक काल में और एक का किया हुवा न होने से उनका श्रुति नाम है नृसिंहतापनी, रामतापनी, हंसोपनिषद् वगेरे नवीन हैं और भाषा मिलाओ तो उन समान है श्वेताश्वतर छंदों में बना है वोह आठ उपनिषद से पीछे का है कठ और श्वेता. को मिलाओगे तो भाषा की रचना और

लालित्य समान जान पडेगा. (अलबत्ते वेद की रंगत वा शैली किसी से नहीं मिलती) हालांकि श्वेताश्वतर उपनिषद् कठ से बहुत पीछे बना है

जिसमें तत्त्व विद्या वा फिलेसोफी है; उसमें जान पूछ के न करें वहां तक उसमें काव्य, शृंगार, रस वा अलंकार वाली रंगत कभी भी नहीं आवेगी और कविता में कवित्व (अलंकार रस) डाल के फिलेसोफी लिखें तो नहीं बनेगा. इसी प्रकार गणित, केमिस्ट्री और वैद्यकादि विषय वास्ते जान लेना चाहिये अर्थात् उन ग्रंथों की भाषा, रचना और पद्धति में अंतर ही पडेगा; इसलिये उपनिषद जिसमें पाजीटीव * फिलेसोफी है उसका मेल रामायणादि से और रामायणादि का मेल उपनिषद् से नहीं हो सकता

नवीन सांख्य सूत्र बुद्ध पीछे का है. वेदांत उससे २००० वर्ष पहिले का है और न्याय वैशेषिक रामचंद्र के समय का है. अब इन के काल का एक पड बनाना कैसे हो सकता है. वे सूत्र पद्धति में समान हैं; परंतु उनकी रचना रंगत में बडा अंतर है तथा गृह्य सूत्र (कात्यायन-अपस्तंब) जो रचे गये हैं वे प्राचीन सांख्य, कणाद और गौतम से पीछे के हैं और भक्ति सूत्र (नारद, शांडिल्य) नवीन काल में हुये हैं. उनका एक पड बना के काल और पूर्व उत्तर का निर्णय भूल में डाले यह स्पष्ट है.

मनु से लेके याज्ञवल्क्य स्मृति और निर्णयसिंधवादि सर्व धर्मशास्त्र कहाते हैं; गीता का भी धर्मशास्त्र में अंतर्भाव है, इसलिये धर्मशास्त्रपड भी नहीं बन सकता.

रामायण, महाभारत प्रसंग विषे उपर कहा है अर्थात विषय प्रति भी भाषा का अंतर होता है. तोरत और जबूर की भाषा मिलावें. इंजील जो कि बहुत पीछे बनी है उसमे जबूर की भाषा रसिक है उत्तम है. और तोरेत की उसमे सुकी है (नवीन नवीन बनाना दूसरी बात है क्योंकि वोट स्वाभाविक नहीं है. यथा बायबल बहुत ही सरल इंग्रेजी में है ऐसा कहा जाता है).

मागधी भाषा और पिशाच भाषा में शब्दालंकार सुशोभित नहीं बनता. इंग्रेजी, अरबी, फारसी, संस्कृत, व्रज भाषा के गद्य, पद्य अलंकार रस मिलाओ और उसका परिणाम निकालो तो बडा भेद होगा इस प्रकार भाषा भेद से भी काल का निश्चित नियम नहीं हो सकता.

एक ही भाषा में कालक्रम से भेद होता है यथा-वेद और वेद से इतर ग्रंथ की भाषा में है-सूत्र ग्रंथों की भाषा में है-धर्म शास्त्र के ग्रंथों की भाषा में है धर्म

---

* [illegible]

सिंधु निर्णय सिंधु पीछे (१०० वर्ष से) और भागवत् पहिले बनी है, यह सब धर्म ग्रंथ माने जाते हैं. परंतु भागवत की उत्तम ललित रचना है; धर्म० निर्णय० की वेसी नहीं है

संक्षेप में उपर माने हुये पड मे ग्रंथ काल, प्रयोजक काल वा उनके आगे पीछे का निश्चय, नहीं जाना सकता अर्थात फिक्स रूप (यूं ही) में नहीं माना जा सकता. और फेर उनका अनुमान, के जो संस्कृत को ठीक ठीक नहीं जानते. यही कारण है उनके शोध में अंतर (मत भेद) पडने का. जेसा कि शंकराचार्य कुमारलभट्ट का चेला महाभारत पहिले, मनुस्मृति पीछे. महाभारत पहिले, गीताजी पीछे. और उनमें से ही दूसरा शोधक इसको रद करके अन्य कहता है जेसा कि उपर जनाया गया है. इ.

(८) वंश.

वंशावली पर ध्यान दें तो आर्यावर्त में ठीक ठीक इतिहास नहीं मिलता है. जो मिलता है उसमें विरोध आता है. यथा—उदयपुर के महाराणा के और शिवाजी सितारा के वंश अनुसार विचारें तो भागवत, हरीवंश, टाड, राज्यप्रशस्ती वगेरे ग्रंथों में पीढी के अंक में चार पांच का भेद पडता है; इसलिये बडे मे बडा अंक लें तो नीचे अनुसार है—

१ ब्रह्मा से लेके इक्ष्वाकु तक ७
२ इक्ष्वाकु से रामचंद्र तक ५८
३ ,, बृहदबल (महाभारत) तक ८८
४ ,, सुमित्र तक ११९
५ ,, कनकसेन तक §* १२८
६ ,, बापारावल † तक १४५
७ बापा से स्मृसि रावल, (पृथ्वीराज का शाला) तक १८
८—बापा से महाराणा लक्षमण तक १० (अलाउद्दीन और पदमनी का समय)
९—बापा से लेके उदयसिंह तक ४१ (अकबर का समय)
१०—बापा से विद्यमान महाराणा फतेसिंह जी तक (सं. १९५६ वि). ६१
११—इक्षवाकु मे लेके फतेसिंहजी तक १४४+६१=२०५ और ब्रह्मा मे लेके २१२ अंक हैं

अब वेद मनुस्मृति के लेखानुसार सर्व साधारण की उम्र १०० वर्ष की और सर्व में प्रवृत्त ब्रह्मचर्य २५ वर्ष का गिन के हिसाब करें तो प्रति पीढी २५ वर्ष

* अजुध्या का राज्य छूटा

† चितोडगढ में स्वराज्य स्थापक.

आवेंगे. * यह सरासरी है. पस ३१२ × २५=५३०० वर्ष. और यदि हरेक के १०० वर्ष गिनें तो २१२०० होते हैं. परंतु यह पीढी और यह सरासरी हिसाब ठीक नहीं है सो दिखाते हैं.

(१) बृहद् बल से बापा तक ५७ (१४५–८८=५७) बापा से फतेसिंहजी तक ६१=११८ × २५=२८५० इतने वर्ष महाभारत को होते हैं. परंतु यह तो बुद्धदेव का समय आ लगता है. महाभारत को तो ४३४० वर्ष आसरे हुये.

(२) बापा से स्मृसितक १८ × २५=४५० अर्थात् स्मृसि से ४५० वर्ष पूर्व में हुवा. स्मृसि सं. १२५० (पृथुराज के साथ लडाई में मरा) में हुवा है, इसलिये बापा सं. ८०० में हुवा परंतु बापा से फतेसिंह जी तक ६१ अंक हैं, अतः ६१×२५=१५२५ वर्ष अर्थात् बापा वि. सं. ४०० में हुवा. कितना वडा अंतर! इसलिये वंसावली पर वा उस पर उमर की गणना के अंक पर विश्वास नहीं आ सकता.

बायबल संसार आदम उत्पत्ति याने सृष्टि की उत्पत्ति ७००० सात हजार साल से ज्यादा नहीं मानती और नूह का तूफान ५००० पांच हजार वर्ष पर हुवा तब सब जगत् की वस्ती डूब गई वे ही बाकी रहे कि जो नूह के साथ किस्ती में थे; इसलिये पांच हजार वर्ष पूर्व का इतिहास मिलना नहीं स्वीकारती जो मानें तो बायबल ईश्वरीय वा प्रमाण पुस्तक न ठेरे. इसलिये सब बातों में उनकी यही कोशिश रहती है यथा (वंश) पीढी प्रति १८ वर्ष लगाके समय नियत कर लेना, क्षेपक बताना. इत्यादि रूप लेती हैं; परंतु मिस्र के मीनारे, यूनान के इतिहास, और भूस्तर विद्या ने उनकी मोन्यता को नीचा बता दिया है.

लूका की इंजील बाब ३ में इसामसीह से लेके आदम तक ७६ पीढी बताई हैं आदम से इसामसीह तक ५००० वर्ष होते हैं यदि सरेरास के हिसाब से दर पीढी १८ वर्ष गिनें तो ईसा से आदम तक १३६८ वर्ष होते हैं, याने सृष्टि की उत्पत्ति हुये १३६८ वर्ष हुये भला यह कौन मानेगा जो दरपीढी ४० गिनें तो ३०४० और सरेरास ५० गिनें तो ३८०० और १०० गिनें तो ७६०० वर्ष होने

* क १०० वर्ष का मरा तब उसका पुत्र स. ७५ का पौत्र ५० का प्रपौत्र २५ का और सहपौत्र का जन्म था. यह १०० वर्ष की उमर पाके मरा याने बाप पीछे २५ वर्ष गद्दी पर रहा है. कोई साठ स ठ वर्ष राज्य करता है तो कोई १० वर्ष भी नहीं करने पाता. कभी १ दिन में ७ राजा हो गये जैसे कि चित्तोडगढ में अलाउद्दीन के साथ लडाई हुई तो तीन दिन में ७ राजा गद्दी पर बैठे अर्थात् बैठते गये और लडाई में मरते गये.

हैं; परंतु उपर कहे अनुसार नसल की सरासरी मान्य नहीं हो सकती और जो मानें तो बायबल की सृष्टि उत्पत्ति (७०००) वर्ष उसी की रीति से गलत ठेरेंगे. *

(९) लेखन पद्धति काल.

वेदिक काल में लिखना नहीं जानते थे. ४ काल हैं. छंद (ऋचा रची) मंत्र (यज्ञ मंत्र प्रसिद्ध हुये), ब्राह्मण (वेद मंत्रों की टीका) सूत्र (उन पर कात्यायनादि सूत्र). बायबल प्रसिद्धि के समय लिखने का रिवाज था (मोक्षमूलर साहेब).

व्यास भारत बनाने लगे तब गणेश ब्राह्मण लिखता जाता था (आदि पर्व अ. १ देखो). महाभारत में लखधातु का प्रयोग है. जहां लिखने वाला और गवाह मर गये हों (कात्यायन). अष्टाध्यायी में भवादि परस्मैपद, तुदादि परस्मै पद गत. "रद विलेखने. लिख अक्षर विन्यासे" धातु पाठ हैं. पतंजलि ने इसका विस्तार किया हैं. कालडीया (बाबुल) वालों ने सिकंदर बादशाह को १॥ डेढ लाख वर्ष की पुरानी प्रशस्ति दिखाई थी. बलात्कार मे लिखाया हो तो (मनु अ. ८ श. १६८). न जानने वालों से पुस्तकों को रखने वाला अच्छा है (म. अ. १२ श. १०३) विना लिखे पुस्तक कहां से.

छः महीने पूर्व की बात याद नहीं रहती; अतः ब्रह्मा ने वर्कों पर लिखने की रीति बताई (बृहस्पति) जो पढता सुनता लिखता है. (रामायण यु स. १३० श. १२०). लिखित पत्र भी प्रमाण हैं (याज्ञवल्क्य). बुद्धदेव ने चंदन की लेखनी से लिखा (ललित विस्तार). वेदों में लिखने की आज्ञा है (लेक्चर, शामजी कृष्ण वर्मा बेरस्टर और संस्कृत का प्रोफेसर जो लंदन में दिया).

वर्क = पत्ते और कागज. (कोश गयास. करीम).

प्राचीन काल में मिस्रियों ने दरख्त के पत्तों से कागज बनाया. नाम पापर. अरबी में गोमी. बरदी. जब मिस्र के दूसरे बादशाह ने पत्र की जावक बंद की तो एशिया के परगमोस नगर में चमडे का पत्र बना. नाम परगमोस. इंग्रेजी में पारचंट. इसवी पहिली सदी में प्रचार था. हीरोदेश ने अपने समय चमडे के कागजों का जिक्र किया है, यह इ. के १०० वर्ष पूर्व हुवा है. (तहजीब).

* गतकाल में धार्मिक इतिहास कर्ताओं ने एक एक की उमर पांच पांच हजार वर्ष की, एक एक हजार वर्ष की, पांच पांच सो और तीन तीन सो वर्ष की भी बताई है. परतु ३०० से ज्यादे उमर किसी की हुई हो, ऐसा संतोषकारक सबूत नहीं मिलता. साधारण तो १०० वर्ष की उमर हुई हैं और मानी गई हैं.

पुराने यूनानी मिस्री दरख्त की छाल पर लिखते थे. मिस्र के मीनारो पर प्रशस्ति लिखी हुई है जो इ के चार पाच हजार वर्ष पहिले के है (कोशो में से शब्द निकाल के सशोधन है) (कुलियात आर्य मुसाफिर पृष्ट २३).

आर्यावर्त में ताड, भोजपत्र, परण, पत्र, वर्ग, लास, पछाल, पर, ताम्रपत्र, शिला, चर्म, कपास वगेरे पर लिखा जाता था

साल, सन, अलसी, रेशम, सूत, चीथरो से पत्र (कागज) हिंद में प्राचीन काल से बनते आये है. सस्कृत कोशो में लेखनी है.

उपरोक्त काल प्रसग में जो लिखा है वोह विशेपतः कुलियात आर्य मुसाफिर के पृष्ट १ से २६ तक में से लिया है. उसमें विशेष वर्णन है साक्षिओं का पूरा पता है. हमने तो अनुक्रमणिका मात्र लिखा है.

(१०) इसराइली इतिहास.

तोरेत (वि. पू १९९० आसरे) जबूर (वि. पू ९८५ आसरे इंजील (वि. ९७ पीछे) कुरान (वि. ६७९ के लगभग).

तोरेत, इंजील और कुरान में इतिहास है. जबूर में भक्तिभाव है. तोरेत में मूसा द्वारा खुदा के वचन कहना, इंजील में बाप बेटे के वचन, मति, योहन वगेरे कहते है, कुरान मे नबी मोहम्मद खुदा के वचन कहता है, ऐसी परिभाषा है.

ईश्वरीय वाक्य मे इतिहास और पर की साक्षी नहीं हो सक्ने. कुरान में बायबल वाले इतिहास है. कुछ कर्मकाड का भेद है.

उनके अनुयायी मडल मे ही उन ग्रंथो विषे मतभेद है. एक तोरेत को इबरानी जुबान मे होना, दूसरा बदलना, तीसरा मूसा के पीछे लिखी जाना कहता है. ऐसे ही इंजीलो मे मतभेद है कुरान को कोई हजरत उमर कृत बताता है, कोई एक रात में उतरना कोई यथासमय आयत उतरना कहता है. कोई कहता है कि आयत कुदसी कुरान में नहीं लिखी गई है, इत्यादि मतभेद है (हम इस विषय को लिखना नहीं चाहते. जिनको इस विषय का खोज जानना हो वोह कुलियात आर्य मुसाफिर उर्दू बाच ले)

(११) १८ पुराण

वर्तमान मे बहुधा पुराण मतानुसार सम्प्रदायें है वे जैसे जैसे प्रमाण भी माने जाते है. उनके नाम यह है—१ मत्स्य, २ कूर्म ३ वाराह, ४ वामन, ५ ब्रह्माड,

६ ब्रह्मवैवर्त्त, ७ विष्णु, ८ शिव, ९ लिंग, १० मारकंडेय, ११ पद्म, १२ नारद, १३ अग्नि, १४ ब्रह्म, १५ स्कंध, १६ भविष्य, १७ गरुड, १८ भागवत. (कोई देवीभागवत के पुराण है और विष्णु भागवत पुराण नहीं ऐसा, कोई देवी भागवत पुराण नहीं है विष्णु भागवत पुराण है ऐसा मानते हैं. एक दूसरे के उपपुराण कह डालते हैं).

इसके सिवाय आदि पुराण, गणेश पुराण, सौर्य पुराण, वायु वगेरे २० उपपुराण कहाते हैं, जिनकी चर्चा का यह प्रसंग नहीं है.

पुराण=जिसमें सृष्टि उत्पत्ति वगेरे का वर्णन हो. उक्त १८ पुराण व्यासभगवान के बनाये हुये हैं, ऐसा पौराणिक मानते हैं. व्यास अनेक हुये हैं. कोन से कोन से व्यास के कोन से कोन से किये हुये हैं यह बताना मुश्किल है; परंतु पौराणिक उस व्यास के बनाये हुये कहते हैं कि जिसने वेदांतदर्शन बनाया है, जो महाभारत के समय था, जिसे सत्यवती का पुत्र मानते हैं वा बादर का पुत्र बादरायण कहते हैं, जिसने महाभारत बनाई, जिसका पुत्र शुकदेव हुवा है, जिसे ४३५० वर्ष हुये हैं (वा ५०००). नवीन शोधक यूं कहते हैं कि पुराण उस व्यास के बनाये हुये नहीं किंतु पीछे से किसी ने व्यास के नाम से रचे हैं—उसका सबूत यह है—

(१) सब पुराणों में बुद्धदेव को ईश्वर का अवतार माना है. बुद्ध को २६०० वर्ष हुये, वि. पू. ६१४ में हुवा है. व्यास वि. पू. २३०० वा ३००० पर हुवा है. **(श.) भविष्य प्रत्यय हैं. (उ.)** शिव पुराण पूर्वार्द्ध खं. ५ अध्याय ३ से ९ तक में जो रीतभांत जनाई है वोह जैन के पूज्यों से मिलती है. इसलिये जैन धर्म के पीछे के होने चाहियें.

(२) रामानुज श्री जिसने शंख चक्रादि की छाप लेना चलाया वोह वि. सं. १२०० के पीछे हुवा है, उसका निषेध लिंग पुराण में (शंखे चक्रे ++ स सर्व धर्म विहिष) है जिसके शरीर पर शंखादि तपा कर छाप लगी हो वोह जीवते ही मुर्दा है, सब धर्म से बाहिर कर देने योग्य है. (इसलिये रामानुज के पीछे हुवा).

(३) अग्नि पुराण में छाप लेने की विधि बताई है, जिसकी साक्षी पूर्णप्रज्ञ चक्रांति ने दी है. यह विरोध. अतः व्यास कृत नहीं.

(४) तुजक जहांगीरी में जहांगीर बादशाह ने लिखा है कि मेरे बाप के समय अमेरिका से एक पादरी आलू, तंबाकू और गोभी यह तीन वस्तु लाया था. (संस्कृत निघंटु में इनका नाम नहीं. सब इतिहासकर्ता अमेरिका मे आना मानते हैं); परंतु ब्रह्मांड पुराण में (प्राप्त कलि ++ तमाखं ++ नरका) और पद्म पुराण में (धूम्र पान)

तंबाकू पीने का निषेध किया है. जहांगीर का बाप अकबर बादशाह वि. सं. १६१३–१६६२ में हुवा है अतः उभय पुराण व्यास कृत नहीं.

(५) बौद्ध धर्म के निषेधक शंकराचार्य, शंकर का अवतार कहाते हैं. पद्म पुराण में पार्वतीजी के जवाब में महादेवजी कहते हैं (मायावाद). हे देवी! कलि मे मैंने ब्राह्मण का रूप धारण करके जिसमे बौद्ध के छिपे हुये सिद्धांत हैं ऐसा झूठा शास्त्र--मायावाद मैंने रचा है, ऐसा लिखा है; इसलिये शंकराचार्य के पीछे बना हैं वा क्षेपक भाग मिला है.

(६) जगन्नाथ का मंदिर वि. स. १२३१ में उडीसे के राजा अनंगभीम ने बनाया था, इससे पूर्व नहीं था और मंदिर में भी संवत लिखा है. इस मंदिर का महात्म स्कंध पुराण में है अतः यह पुराण १२११ पीछे बना वा क्षेपक भाग मिला.

(७) युधिष्टर राजा के पीछे राजा परीक्षत हुवा, उसने ६० वर्ष राज्य किया, अंतकाल मे शुकदेवजी ने भागवत सुनाया. महाभारत शांति पर्व के अध्याय ३३२। ३३३ से जान पडता है कि भीष्मपिताजी युधिष्ठिर से कहते है कि शुकदेवजी का वियोग हुवा, तब व्यासजी को शोक हुवा सारांश ९६ वर्ष पीछे कहां से परीक्षत पास आये जो शरीर अमर मान के आना मानें तो व्यासजी के शोक निवारणार्थ क्यो न आये. *

(८) नारदजी व्याकुल हुये, सनकादिको को मिले कहा कि काशी, सोमनाथ, रामेश्वरादि के मंदिरो को मलेच्छो (मुसलमान–यवन) ने गिरा के स्वाधीन किये इ. पद्मपुराण, उत्तर खंड गत भागवत महात्म अध्याय १ श्लोक २८ से वर्णन चला है. मंदिर महमूद गजनवी (स. १०१४), अलाउद्दीन और औरंगजेब ने तोडे हैं अतः यह पुराण १०१४ पीछे बना वा क्षेपक भाग मिला.

---

* (अ) व्यास के पुत्र २ शुकदेव हुये (१) अमर कथा सुन के जो तोता व्यासजी के जन्मा और वन में चला गया (२) अप्सरा तोती से जन्मा इसको राजा जनक पास भेजा, पीछे इसका विवाह हुवा दो पुत्र जन्मे, इसी को भागवत सिखाई (देवी भागवत स्कंध १ अ १५ से १९ तक देखो) इन २ म से एक ने परीक्षत को भागवत सुनाई (उ) पहिला तो व्यास के शोक प्रसंग में भी न आया, भागवत भी नही सीखी, वन में रहा, इसलिये उसका परीक्षत पास आना बने नहीं दूसरा गृहस्थ हुवा है और भागवत में विरक्त ने सुनाई, ऐसा है अतः विरोध आने से आपकी कल्पना मान्य नहीं अप्सरा तोती बनी, व्यास तोता बना उभय ने संसर्ग किया, उससे शुक का मनुष्यदेह उत्पन्न हुवा तथा पहिला शुक शरीर से अमर है इत्यादि असंभव और कल्पित कथाओं ने पुराण की अच्छी बातों को भी संशय में डाल दिया है

(९) पुराणों में ब्रह्मादि देव ऋषियो की कोई न कोई रूप से व्याज स्तुति रूपमें निंदा की है (ब्रह्मा पुत्री, कृष्ण गोपी कुब्जा, महादेव ऋषि पत्नी, विष्णु वृंदा, इंद्र गौतम, सूर्य कुंति, चंद्र गुरु पत्नि तारा, वायु अन्नी, वरुण उर्वशी, बृहस्पति अन्था, विश्वामित्र उर्वशी, पाराशर मच्छोदरी, द्रौपदी पंचपति, वामन छल, बलदेव शराब, राम ने वाली को धोके से मारा, ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मा को रूपवंत जान के दोडे. इत्यादि की कथा याद करो. परंतु बुद्धदेव पर कोई कलंक नहीं लिखा; इसलिये पुराण व्यास कृत नहीं. पीछे हुये हो, ऐसा जान पडता है.

(१०) व्यासकृत वेदांतदर्शन मे पुराण के लेख विरुद्ध है.

(११) देवी भागवत में एक राजा और म्लेच्छ (मुसलमानी) वैश्या की कथा है. (कु. आ. मु १८७ से १८८ तक).

(१२) भविष्य पुराण में सालवाहन और इसामसीह का सवाद तिब्बत में होना लिखा है. राजा भोज, कालीदास और मोहम्मद का सवाद कहा है. औरंगजेब, शिवाजी, गुरु गोविंदसिंह की भविष्य प्रत्यय से कथा लिखी है, परंतु इंग्लिश राज्य का आगमन नही लिखा है, याने यहा भविष्य ज्ञान गुम हो गया. अतः यह स. १७०० के पीछे बना है, वा उसमे क्षेपक भाग मिला है

(१३) भागवत मे अयोध्या के राजा सुमित्र तक की चर्चा है. बृहदवल (कौरवो का साथी महाभारत में था) मे सुमित्र तक १२९ वा १३१ पीढी लिखी है, परंतु उसके पाचवें वा दसवें राजा कनकसेन से अयोध्या का राज नष्ट हुवा वोह बडी बात नहीं लिखी है, इसलिये भागवत महाभारत के १३१ पीढी (३२०० वा २३०० वर्ष) पीछे हुवा होगा.

(१४) भागवत मे और शिव पुराण मे जिन (जैन) की सज्ञा है.

(१५) सजीवनी ग्रंथ मे राजा भोज के दाखले मे लिखा है कि मारकंडेय और ब्रह्मवैवर्त व्यासजी के नाम से बनाये उसको शिक्षा दी गई (सत्यार्थप्रकाश में से).

(१६) शिव पुराणादि मे सूतजी ने जो व्यास से सुना वोह कहा है, ऐसे लिखा है याने व्यास के वाक्य नही किंतु अन्यो के (सूत, शुकादि के) है. इत्यादि अन्य में है.

(१७) विष्णु, शिव, शाक्त पुराण मे एक दूसरे देव की हीनता जाहिर की है ऐसे विरोधी ग्रंथ व्यास जैसे नहीं बना सकते.

(१८) महाभारत में "अष्टादश पुराण सत्यवती के पुत्र व्यासजी के बनाये हुये हैं" ऐसा लिखा है. उपरकी हिस्ट्री से यह क्षेपक वाक्य ही, पुराण व्यासकृत नहीं, ऐसा साबित कर बताता है.

(१९) इत्यादि के लेके वे व्यासकृत नहीं.

(शं.) मूल व्यासकृत होंगे उसमें क्षेपक (शूक, सूत वा अन्य पंडितों का) भाग होगा. (उ.) एक मन आटे मे १ तोला संखिया मिलने से उसका ग्रहण नहीं होता, ऐसे यदि व्यास का कोई वाक्य हो तो भी विश्वासपात्र न ठेरेगा. (शं.) क्या पुराण में अच्छी बातें नही हैं. (उ.) क्यों न हों. अरवीयन नाइट्स में क्या अच्छी बातें नहीं हैं, परंतु प्रमाणरूप से ग्रहण नहीं हो सकती; कारण उपर कहा गया. वैसे तो सच्ची अच्छी सयुक्त उपयोगी बात हरकोई की स्वीकारने योग्य है. **(शं.)** पुराणों में ऐसी अलंकारी बातें है जो लोग नहीं जानते. यथा वाराह, कच्छ, मच्छ, नृसिंह, वामन की बात का भेद थी. स्रो. ने सृष्टिक्रमभाव बताया है, तैसे शिव पुराण की ज्ञानसंहिता, भागवत के दशम स्कंध वगेरे वास्ते जान लो. (उ.) जिस दिन सर्वसंमति से सत् हित, उपयोग के प्रतिपाल हैं ऐसा रूप प्रसिद्ध होगा उस रोज विचारा जायगा. अभी तक तो उपर अनुसार है—कहां गीता, कहां भागवत का दशम स्कंध!! दशम स्कंध का गोपीनाथ यदि ७ से १२ साल तक का हो तो भी नीति मर्यादा के विरोधी बातें हैं. (शं.) स्मार्त संप्रदाय पांचों (विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश) देव को मानती है, अतः पुराण मान्य. जो ऐसा न होता तो सर्व मे पुराण प्रवृत्ति न होती. 'इतिहास पुराण पांचवां वेद है' ऐसा श्रुति (उपनिषद्) में कहा है. (उ.) जो मान्य पुराण है वे ब्राह्मण ऐतरेय आदि है, यह उपनिषद् पीछे बने हैं; अतः वोह वाक्य इनके लिये नही है और प्रवृत्ति से ही प्रमाण मानो तो हिंदुओं से अधिक कुरान की, उससे अधिक बायबल की उससे अधिक बौद्धों के मत तथा ग्रंथों की प्रवृत्ति है, उनमें अति व्याप्ति होगी; इसलिये शंका सयुक्त नहीं, किंतु सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग ही मुख्य सर्वतंत्र सिद्धात है.

(तटस्थ) हमारी मान्यता में यदि पुराणों में से असंभव * और निंदा * का विषय निकाल दिया जाय तो साधारणों के लिये ठीक जान पडते हैं यथा भागवत

---

* गुजराती भाषा में "शंकानोश" इस नाम का ग्रंथ बना है उसमें असंभव और निंदित विषयों की विगत है

के पंचम और एकादश स्कंध में बहुत भाग अच्छा है. किसी पुराण में भी व्यासजी का कथन नहीं, कौनसा पुराण कब बना, किसने बनाया और उनका भाग कैसे बढता गया, यह कहना मुश्किल है; परंतु बुद्ध और जिनके पीछे उनमें सं. १७०० तक बढाया गया है यह बता देना मुश्किल नहीं है.

पुराणों में कोई मत सिलसिलेवार क्रमबद्ध नहीं है; इसलिये जीवादि विषय में उनका लेख लिखना व्यर्थसा है. जीवों का यथाकर्म पुनर्जन्म मानते हुये भी सृष्टि आरंभ में जीव प्रकृति की उत्पत्ति भी मान लेते हैं.

पुराण के उत्तम और योग्य लेख के निषेध में हमारा प्रयोजन नहीं है. किंतु उसकी प्रमाणता और अप्रमाणता पर भार है. याने किसी प्रसंग पर उसका प्रमाण दिया जाय तो वोह वाक्य प्रमाणरूप से ग्राह्य नहीं हो सकता. सत्य-हितबोधक और सयुक्त हो तो कुरान, बायबल और अवस्ता का भी लिया जाता है; तो फेर पुराण का क्यों न लिया जाय? लेना चाहिये. केवल खंडन पर ही दृष्टि न रखनी चाहिये. जो मुसल्मानी काल में पुराणोक्त नाना भावना न होती तो हिंदू धर्म टिकना मुश्किल हो जाता, ऐसा मान सकते हैं.

सब पुराण बुद्ध के पीछे के नवीन हैं, ऐसा नहीं कह सकते; क्योंकि शंकराचार्य ने शारीरक भाष्य में भागवत धर्म का खंडन किया है (उपर लिखा है) और बुद्धदेव ने पुराण धर्म को अनुधर्म कहा है. (बुद्ध प्रसंग याद करो); इसलिये पुराणों में क्षेपक (बुद्ध पीछे की जितनी बातें वे) भाग है, और किसी ने मनघडत भी मिलाया हो, ऐसा जान पड़ता है. सब ही पुराण बुद्ध के पूर्व के या अमुक यह बताना सहेल नहीं है.

उपर शिव पुराण, वैष्णवी भागवत और देवी भागवत के जो मत लिखे हैं वे समष्टि भावना की दृष्टि से उत्तम जान पडते हैं, वैसे ही पुराणों में जो उत्तम-उपयोगी भाग हो उसका ग्रहण कर्तव्य है. इति.

तत्त्वदर्शन अध्याय १ के अंतर्गत वाला
"दर्शनसंग्रह" समाप्त हुवा.

ॐ